देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

Impact Factor
3.811

विशेषांक

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श

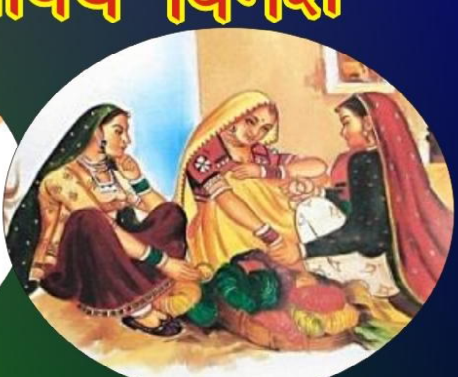

डॉ. आशा सहारण
प्रधान सम्पादक

प्रो. मधुबाला
विशेषांक सम्पादक

डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट
सम्पादक

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. ISSUE- (हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार–विशेषांक) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

प्रधान सम्पादिका :

डॉ. आशा सहारण

प्राचार्य, राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल–एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर–335001 (राज.)

विशेषांक सम्पादक :

मधुबाला, हिन्दी विभागाध्यक्ष
राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : nksihag202@gmail.com

मो. 09466532152

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. कुसुम कुंज मालाकार
हिन्दी विभाग,कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी, असम

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व जि.शि.अधिकारी, च. दादरी

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. राजपाल
राजकीय पी.जी. महाविद्यालय
हिसार, हरियाणा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पार्वती गोंसाई
सरदार पटेल वि.वि.,
गुजरात।

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र
बिहार।

डॉ. विनोद कुमार शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्होत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

***सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।**

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव–10, कृतिदेव–21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :- उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र; टेलीफोन, मोबाईल नं., ई–मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

☐ शोध पत्र 2000–2500 शब्दों (4–6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

☐ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

☐ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

☐ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/– रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/– रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	**पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)**
खाता धारक का नाम	:	**गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी**
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

हिसार सेमिनार विशेषांक-2021

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	10-10
2.	नई कहानी में नारी का अकेलापन, अजनबीपन और नारी विमर्श	एकता रानी	11-15
3.	मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में नारी विमर्श	धीरेंद्र सिंह थापा	16-20
4.	आधुनिक समाज में आदिवासी वैश्वीकरण की स्थिति	डॉ. बीना शर्मा, सुरेन्द्र कुमार	21-25
5.	आधुनिक हिंदी कहानी में पितृसत्तात्मक विद्रोह का आर्थिक विमर्श	निर्मला देवी	26-29
6.	समकालीन कहानियों में नारी-सम्बद्ध आर्थिक विमर्श	नेकराज मौर्य	30-33
7.	हिन्दी उपन्यास में किसान विमर्श	अनीता रानी	34-36
8.	हिंदी उपन्यास परम्परा में किसान विमर्श	हेत राम	37-40
9.	नई कहानी में दलित नारी की दयनीय स्थिति	निर्मल कुमार रांकावत	41-46
10.	हिंदी उपन्यासों में कृषकों का आर्थिक शोषण	मंजु रानी	47-50
11.	हिंदी उपन्यासों में जमीदारी प्रथा उन्मूलन और किसान विमर्श	निर्मला	51-54
12.	इक्कीसवीं सदी की कहानियों में समाज में दलित नारी विमर्श	माया रानी	55-58
13.	हिंदी पत्रकारिता में कृषि नीतियाँ और किसान विमर्श	राजेश कुमार बिश्नोई	59-63
14.	हिंदी साहित्य में पुरूष विमर्श : स्वरूप विश्लेषण	लक्ष्मी देवी	64-68
15.	ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ ਵਿੱਚ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਿੰਬ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ	Dr. Lakhwinder Kaur, Gurbhej Singh	69-73
16.	'हंस' सम्पादकीय दृष्टि और हाशिए का विमर्श	डॉ0 यशवन्त वीरोदय, ममता यादव	74-78
17.	हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श	पूनम कुमारी	79-81
18.	आठवां सर्ग : परिवेश और भाषा की सजगता का मणिकांचन संयोग (प्रकृति और भाषायी विमर्श)	डॉ. मोहन लाल जाट	82-86
19.	रमेशचंद्र शाह के उपन्यासों में दलित विमर्श	प्रतिमा	87-91
20.	ग्रामीण जीवन में महिलाओं की वर्तमान स्थिति	डॉ. उमाकांत सिताराम साळवकर	92-94
21.	संत वील्होजी का हिन्दी साहित्य को अवदान	पृथ्वीसिंह बैनीवाल बिश्नोई	95-100
22.	मधुकर सिंह के उपन्यासों में दलित विमर्श	भीम सिंह	101-104
23.	हिन्दी ग़ज़ल और ईसा मसीह	अजय कुमार 'अजेय'	105-110
24.	हिंदी भक्ति साहित्य में वर्ण-व्यवस्था एवं दलित विमर्श	दिलबाग सिंह	111-114
25.	आठवें दशक की हिंदी साहित्य की महिला उपन्यासकार के उपन्यास में स्त्री विमर्श	प्रा.डॉ.मालती डी.शिंदे (चव्हाण)	115-122
26.	पारिस्थितिक नारीवाद : हिन्दी साहित्य के संदर्भ में	महिमा. एम	123-127
27.	दहेज प्रथा और शिक्षा पर एक नजर	अनाम	128-132
28.	ऊषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में नारी-अस्मिता एवं नारी विमर्श	डॉ0 कविता चौधरी	133-137
29.	दलित विमर्श के संदर्भ में सिद्ध और नाथ साहित्य	डॉ. अरूण प्रसाद रजक	138-143
30.	आदिवासी संघर्ष एवं पात्र मनःस्थिति 'ग्लोबल गाँव के देवता' के विशेष संदर्भ में	JINCY JOSEPH	144-147

31.	हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श	डॉ. श्रीकांत बी. संगम	148-151
32.	हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श	डॉ. ज्योति पटेल	152-155
33.	हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श	बाल किशोर राम भगत	156-160
34.	नारी विमर्श	तहुरा नाज	161-164
35.	अल्पज्ञात लोक कवि मुंशीराम जांडली व गुणपाल कासंडा के सांगों में स्त्री विमर्श	डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय, जगदीश चन्द्र	165-169
36.	स्वयं प्रकाश की कहानियों में पारिस्थितिक सजगता	कनकलता. आ	170-172
37.	काशीनाथ सिंह की कहानियों में स्त्री-विमर्श के विविध आयाम	प्रीति पाण्डेय, डॉ. राजेश दुबे,	173-175
38.	हिन्दी उपन्यासों में किन्नर समाज की व्यथा कथा	डॉ. अमनदीप कौर	176-183
39.	आधुनिक परिप्रेक्ष्य में दलित राजनीति : एक चिंतन	नवीन	184-190
40.	हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना का अनुसंधान	डॉ सुबोध कुमार सिंह (शिवगीत), मनीश कौशल	191-195
41.	नारी जीवन की अभिशप्त नियति का प्रतिबिम्ब - शंकर शेष का रत्नगर्भा नाटक	डॉ० मानसिंह दहिया	196-200
42.	डॉ मनोज भारत के दोहा संग्रह 'दूजा नहीं कबीर' में नारी चिंतन	सुशील सोखल, डॉ. मौसमी परिहार	201-203
43.	औरत के लिए औरत में नारी-विमर्श	सुरिता देवी	204-209
44.	एस. आर. हरनोट की कहानी 'दारोश' में नारी विमर्श	रीना देवी	210-213
45.	हिन्दी साहित्य और दलित विमर्श	नवनीत	214-217
46.	जूठन : जीवन का दग्ध अनुभव एवं व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध का सृजन	निर्मला कुमारी	218-221
47.	जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास में चित्रित मजदूर विमर्श	प्राध्यापक उत्तम ओंकार येवल	222-226
48.	हरियाणा के गुरूकुल का हिंदी को योगदान	प्रदीप	227-229
49.	हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श	पूनम कुमारी	230-232
50.	दलित जीवन की त्रासदी (ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' के संदर्भ में)	पूर्णिमा कतरौलिया	233-236
51.	हिन्दी सिनेमा में किन्नर जीवन	डॉ. रचना पाण्डेय प्रो. श्रवण पाण्डेय	237-239
52.	मधु कांकरिया के कथा साहित्य में 'स्त्री विमर्श'	सुषमा, डॉ0 रेणू चाँदला	240-243
53.	हिंदी साहित्य बेरोजगारी विमर्श	रेशमा शकिल शेख	244-246
54.	डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' के काव्य में कृषक-जीवन	डॉ० सुधा बुंदेला	247-251
55.	समकालीन हिंदी बाल साहित्य का विकास और विभिन्न संस्थाओं का योगदान	सिरसिल्ला चंदना	252-257
56.	प्रभा खेतान और कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री विमर्श	नम्रता डॉ. प्रभात रंजन	258-261
57.	श्री अरविंद के विचारों का भारतीय राजनीतिक चिंतकों पर प्रभाव	डॉ० सतीश कुमार वर्मा सुनील दास	262-266
58.	किन्नर जीवन : एक त्रासदी	सुमन कुमारी	267-270

59.	प्रवासी साहित्यकार तेजेन्द्र शर्मा जी की कहानियों में भारतीय समाज का वर्णन	उधम सिंह	271-276
60.	मैत्रेयी पुष्पा की कहानियो में स्त्री चेतना	उज्ज्वल राठौर	277-281
61.	USE OF TECHNOLOGY IN TEACHING OF MATHEMATICS	ANIL KAUSHIK	282-286
62.	अज्ञेय की कविता में पारिस्थितिक संवेदना असाध्य वीणा के संदर्भ में	डॉ. जस्टी एम्मानुवल	287-291
63.	अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में अल्पसंख्यक विमर्श एवं सांप्रदायिक समस्याएं	रूपधर गोमांगो	292-298
64.	विभाजन की राजनीति चुने हुए हिन्दी उपन्यासों के विशेष संदर्भ में	डॉ.एन आर सेतु लक्ष्मी	299-301
65.	ग्लोबल गाँव का देवता में अभिव्यक्त आदिवासी जीवन	कविता	302-306
66.	जया जादवानी की कहानियों में नारी-विमर्श	बलप्रदा श्रीवास्तव	307-310
67.	नासिरा शर्मा के उपन्यासों में 21वीं सदी के बदलते जीवन मूल्य	कु. बंसती सेनापति, डॉ. प्रभात रंजन	311-313
68.	द्विवेदी युग एक विवेचन	जयपाल सिंह	314-317
69.	निर्मला सिंह के कथा साहित्य में नारी	भावना देवी	318-319
70.	प्रेमचंद की कहानियों में दलित चेतना	डॉ रमेश यादव	320-322
71.	मानसरोवर (कथा संग्रह)-नारी विमर्श	पिंकी	323-326
72.	नारी-विमर्श और भारतीय सांस्कृतिक परिदृश्य	डॉ. सतीश कुमार	327-330
73.	समकालीन हिंदी काव्य में आदिवासी विमर्श	यशपाल जंघेल	331-337
74.	साहित्य में किन्नर वर्ग का सामाजिक दृष्टिकोण	रमन कुमार	338-342
75.	स्त्री आत्मकथाओं में अभिव्यक्त सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिरोध	नाताशा इन्दुस्काया	343-349
76.	हमारी शिक्षा पद्धति और हिन्दी भाषा	डॉ. सुशील कुमार	350-353
77.	नारी लेखन में उभरता 'नई स्त्री' का स्वरूप	डॉ सुनीता देवी	354-357
78.	हिंदी आत्मकथाओं में दलित-विमर्श	विजय. एम. राठोड	358-361
79.	हिंदी उपन्यास : विकलांग/दिव्यांग पात्र	अनाम	362-369
80.	दलित कविता और पौराणिक दलित पात्र	प्रा. नवनाथ जगताप	370-373
81.	हिंदी पत्रकारिता को हरियाणा का योगदान	अनिल कौशिक	374-377
82.	हिंदी भाषा के क्षेत्र में गुरुकुल शिक्षा का योगदान	डॉ. सुशील कुमार	378-380
83.	हिंदी साहित्य : बाल विमर्श	तितिक्षा जी वसावा	381-384
84.	हिंदी साहित्य में नारी विमर्श	रिंकी कुमारी	385-388
85.	मैत्रेयी पुष्पा के कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श	डॉ. प्रवीण तुलशीराम तुपे	389-391
86.	हिन्दी ग़ज़ल में दलित चेतना	डॉ. जियाउर रहमान जाफरी	392-401
87.	नरेश मेहता के गद्य (उपन्यास) साहित्य में पारिवारिक संस्कृति	डॉ. उषस पी.एस. दिनेश भ्याण	402-405
88.	21वीं सदी के उपन्यासों में नारी की आर्थिक समस्या	डॉ. आशा सहारन, संगीता राव	406-410
89.	मधु कांकरिया का कथा साहित्य और नारी विमर्श	नरेन्द	411-414
90.	टॉपिक	अनाम	415-418
91.	स्वतंत्रता आंदोलन : "स्त्री और स्त्री साहित्यकार"	सुषमा रानी	419-421
92.	अष्टभुजा शुक्ल की कविताओं में 'कृषि-संस्कृति'	योगेश कुमार	422-425
93.	हिंदी कविता में युद्ध विमर्श	आरती देवराड़ी	426-429

सम्पादकीय-

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 11-15
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नई कहानी में नारी का अकेलापन, अजनबीपन और नारी विमर्श

–एकता रानी
पीएच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ (राजस्थान)

शोध सारांश :–

हिन्दी कथाकार ऊषा प्रियंवदा के सन्दर्भ में जब मूल्य मर्यादा और सामाजिक दायित्व के निर्वाह की बात उठती है तो भारतीय जीवन पद्धति में हुए परिवर्तनों की ओर बरबस ही ध्यान खिंच जाता है। भारतीय जीवनपद्धति की दृष्टि से नया काल था। पाश्चात्य जातियों के सम्पर्क मे आने के परिणामस्वरूप हमारी जीवन पद्धति में निरन्तर परिवर्तन होता गया और स्वतन्त्र होते–होते हमारी सभ्यता और संस्कृति, प्रत्येक क्षेत्र में, पाश्चात्य जीवन से प्रभावित हो गयी।

मूल शब्दः विषमता और भयानकता, अकेलापन और अजनबीपन, संयुक्त परिवार, मानसिक गहराइयां, विशुद्ध प्रेम।

बिंदु अग्रवाल ने नारी की स्थिति के सुधार को आर्थिक आधार से जोडते हुए लिखा है '' जिन घरों में बेटा अर्थोपार्जन का मुख्य सहारा है, उनमें बहु को सास से दबकर नहीं चलना पड़ता।'' इस भावना ने भारतीय जीवन में बड़ी विषमता और भयानकता के साथ आधुनिकता के लिए खींचतान करने की वृति जगा दी। अकेलापन और अजनबीपन हमारे जीवन पर बुरी तरह हावी होने लगा कि व्यक्ति, समाज में रहते हुए भी अलग अलग इकाई बन गया और उसे अपने अस्तित्व की चिन्ता सताने लगी। आर्थिक बोझ धीरे–धीरे संयुक्त परिवार की कमर तोड़ने लगा। सामाजिकता बिखरने लगी और उसके स्थान पर वर्ग, समूह, गुट, पैदा होने लगे । बड़े नगर, कस्बे यहां तक कि गांव भी इस अलगाव की वृति की लपेट में आ गये और संस्था में संस्था, इसी प्रकार संस्थाऍं पनपने लगी, यहॉं तक कि व्यक्ति अपने आप में ही एक संस्था बन गया। ''पति–पत्नी, माता–पिता और पुत्र–पुत्री, भाई भाई और भाई बहन तक एक दूसरे के लिए अजनबी और अपरिचित से हो गए और इस प्रकार की विभिन्न स्थितियों पर ढेर सारी कहानियॉं लिखी गयी। ''इन कहानियों के माध्यम से समाज और संस्कृति के सन्दर्भों में स्वातन्त्रयोत्तर–व्यक्ति' की खोज की गयी । नारी इस नवीन खोज का प्रमुख केन्द्र बना दी गयी। समाज में उसे भी अजनबीपन के साथ ऑंका जाने लगा।''

आधुनिक मनोविज्ञान ने पुरूष की मानसिक गहराइयों का जितना अन्वेषण किया है, उसके कहीं अधिक वह नारी की मानसिक गहराइयों में उतरने के लिए प्रयत्नशील रहा है। इतने पर भी 'नारी नामक समस्या उससे सुलझ नहीं पायी है। अतः सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि नारी क्या है और उसे आज तक किन कसौटियों पर परखने का प्रयास किया गया है।

सृष्टि के परिवर्तन के साथ नारी का स्वरूप, उसकी भूमिकाऍं भी परिवर्तित होती रही है परिणामतः <u>नारी का रूप अपने विकास क्रम में एकरूपता नहीं रखता। नारी विषयक प्राचीन मान्यताऍं जिस सामाजिक</u>

स्थिति, सांस्कृतिक चेतना और बौद्धिक विकास की भूमि पर विकसित हुई है वह आधुनिक मनोविश्लेषणवादी भूमि नहीं है।''वैदिक साहित्य में नारी के उदात्त एवं विशद व्यक्तित्व की अभिव्यंजना हुई है। समाज ने कर्तव्य और अधिकारों का बॅटवारा पुरूष और नारी में स्वभावतः रूचि और शक्ति के अनुकूल कर लिया था। उस काल में विद्याध्ययन, संस्कार आदि दोनों के जीवन में सान रूप से होते थे। माता पिता द्वारा उसका लालन–पालन पुत्र के समान ही होता था। विवाह के पश्चात वह पतिगृह की दासी नहीं सम्राज्ञी होती थी।''
ऋग्वेद में नारी को 'स्त्री हि ब्रह्मा वभूविथ' कहा गया है, उसके लिए मेना शब्द का प्रयोग भी हुआ है। यास्क के निरूक्त के अनुसार मेना का अर्थ है, मानयन्ति एनाः अर्थात जिनका पुरूष आदर करे । स्त्री शब्द भी लज्जाशीलता का द्योतक है । इसी प्रकार जाया और मातृ शब्द भी बड़े उदात्त भावों के द्योतक है। मातृ के रूप में नारी, नदी, जल, पृथ्वी, आदि के अर्थ में स्वीकृत हुई है। वैयाकरणों ने मातृ शब्द का मान + तृच अर्थात मान या आदर के अर्थ में प्रयोग किया है। नारी, मातृ रूप में निर्माणकर्त्री होने के कारण आदरणीया मानी गयी। संसार में जितने भी मानवीय संबंध हैं उनमें नारी का संबंध सबसे पवित्र है। नारी हृदय में अपनी संतान के लिए अमिट प्यार व स्नेह होता है। ''नारी की पूर्णता उसके मातृत्व में ही है। सच्चा मातृत्व वही है जिसमें अन्धा मोह नहीं होता, सच्चे मातृत्व में तो विशुद्ध प्रेम होता है और प्रेम का पादय, त्याग की धारा पर ही पनप सकता है। स्पष्ट है कि वैदिक चिन्तन ने नारी को अत्यन्त उत्कृष्ट एवं उदात्त भावकर्मभूमि पर प्रतिष्ठित किया। किन्तु ध ीरे–धीरे वेदों की मन्त्रदृष्टा और पुरूष स्त्रषटा नारी को गृहसीमा में बन्द रखने के प्रयास प्रारम्भ हुए, उसे पातिव्रत धर्म की शिक्षा दी जाने लगी, उसे गृहस्वामिनी और गृहदासी बनाया जाने लगा।

परिणामतः मध्ययुगीन भारत की वीरगाथाओं तथा रासों में चित्रित नारी वीरमाता, वीरपत्नी और वीर प्रेयसी बनाकर छोड़ दी गयी । नारी बना दी गयी रक्षणीया और पुरूष बन बैठा रक्षक विदेशी आक्रमणों के उस समय उसके जीवन चरितार्थता जौहर में खोजी जाने लगी, पति साधना की अनिवार्यता ने उसके मानसिक विकास को कुण्ठित कर दिया, पतिव्रता धर्म ने नारी का ''धर्मकाममोक्षाणां'' पति ने केन्द्रित कर दिया। नारी साधना के क्षेत्र में बाधा समझी जाने लगी।

भक्तिकाल तक पहुंचते–पहुंचते नारी नरक की खान बना दी गयी, उसकी निन्दा की जाने लगी। सन्त व भक्तजन भी नारी को घृणा की दृष्टि से देखते थे। एक स्थान पर भक्त कबीर कहते हैं–

नारी की झांई परत अन्धा होत भुजंग।
कबिरा तिनकी का गति, ते नित नारी के संग।।

हिन्दी कथाकार ने अबलाओं, बालविधवाओं, परित्यक्ताओं, सतियों और सौतों को लेकर कितनी ही सुधारवादी कहानियॅा क्यों न लिखी हों किन्तु नारी की स्थिति में कोई विशेष सुधार हुआ नहीं। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत हो चाहे राजनीतिक आन्दोलन की दण्ड व्यवस्था के अन्तर्गत, गॉधीवादी प्रेम के अन्तर्गत हो या फ्रायड के यौनवादी प्रेम के अन्तर्गत, प्रगतिवादी संघर्ष के अन्तर्गत हो अथवा मनोविश्लेषणवादी संघर्ष के अन्तर्गत, 'नारी, क्रय–विक्रय की वस्तु' से अधिक उपयोगी समझी नहीं गयी। नारी–विषयक भूमियॅा बदलीं, भूमिकाएँ नहीं। कथाकार मैत्रेयी पुष्पा की मान्यता भी इन तथ्यों से मेल खाती है।
आधुनिक हिन्दी कहानी में नारी की भूमिकाऍ साथ दो 'फ्रण्ट' पर ही रही थी। बाहरी लड़ाई थी विदेशी सत्ता के विरूद्ध जिसमें नारी पुरूष का साथ ही नहीं दे रही थी उसे स्फूर्ति, प्रेरणा और प्रोत्साहन देकर उसका

मार्गनिर्देशन भी कर रही थी। इसी के समानान्तर चल रही थी स्वतन्त्रता की भीतरी लड़ाई। इस लड़ाई का क्षेत्र था समाज, जिससे जूझ रहा था देश का सुधारक वर्ग। इस क्षेत्र में नारी ने प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकार की भूमिकाओं का निर्वाह किया।

इसीलिए डा0 सूतदेव ने नारी का सर्मथन करते हुए लिखा दिया ''मानव जीवन का सच्चा सौंदर्य इसी नारी नाम में निहित है।'' एक और तो नारी को लेकर सुधारवादी आन्दोलन हुए। इनसे प्रेरित हिन्दी कथाकार ने विधवा विवाह, बालविवाह, अनमेल विवाह, नारी–शोषण, अशिक्षा आदि अनेक समस्याओं पर आधारित रचनाओं के माध्यम से भारतीय नारी की स्थिति से समाज को परिचित कराया और उसे परिवर्तित होने का आहवान दिया। दूसरी ओर स्वयं नारी ने प्रगतिवादी कदम उठाया। उसने शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ किया, नारी स्वातन्त्रय की आवाज उठायी, सामाजिक परम्पराओं, कुरीतियों, रूढ़ियों और नारी–शोषण आदि के विरूद्ध विद्रोह करते हुए, बीसवीं शताब्दी के परिवर्तित दृष्टिकोण के साथ पुरूष के समकक्ष बैठने की घोषणा कर दी। हिन्दी कहानी कार ने नारी की इस स्वतन्त्र भूमिका पर आधारित अनेक कथाऍं लिखी और उसे अपनी स्थिति सुधारने की दिशा में नैतिक सहयोग दिया।

विदेशी शासन काल में साहित्यकार ने नारी का चित्रण शासकीय मनोवृतियों के अनुरूप किया, किन्तु धीरे–धीरे परिस्थितियों और प्रवृतियों ने पलटा खाया। राष्ट्रीय नवजागरण ने जनमानस में नवीन चेतना का संचार किया। जीवन, वासना की रंगीनियों से हटकर वास्तविकता की कठोर भूमि पर पैर जाने लगा। नारी और नारी विषयक मान्यताऍं नवीन दिशाओं का स्पर्श करने लगी।

आधुनिक युग की नारी अपने नारीत्व की मूल भूमिका और भावना के साथ वही नहीं है जो वेदों उपनिषदों के युग की गार्गी–मैत्रेयी, पौराणिक युग की सीता–सावित्री, मध्ययुग की संयोगिता पद्मिनी अथवा विक्टोरिया युग की पण्डिता रमा बाई थी। 1 20वीं शताब्दी के प्रथम चरण में ही वह पुरातनता से विद्रोह करना सीख गयी थी। अन्धविश्वासों के प्रति अविश्वास, परम्पराओं के प्रति आक्रोश, रूढ़ियों के प्रति विद्रोह और गृहित सामाजिक बन्धनों तथा नैतिकताओं के प्रति अवमानना लेकर उसने समस्त पुरातनता को झकझोरना शुरू कर दिया। अपनी इस नवीन चेतना से

सम्पन्न होकर सबसे पहले नारी ही लक्ष्मीबाई के रूप में भारतीय स्वाधीनता संग्राम में कूदी। नारी पुरूष के साथ चलकर राष्ट्रीय चेतना का अनिवार्य अंग बन गयी। हिंदी साहित्यकार ने सुधारवाद, मानववाद, गांधी वाद, समाजवाद, छायावाद, प्रगतिवाद इत्यादि अनेक नवीन सन्दर्भो में उसे विभिन्न राष्ट्रीय, सामाजिक वैयक्तिक भूमिकाओं पर चित्रित किया। नारी द्वारा भी नारी के सुन्दर, संश्लिस्ट और विश्लिष्ट रूप प्रस्तुत किये गये। कथाकार ने नारी को एकनिष्ठ प्रेम करने वाली के रूप में चित्रित करके उसके त्याग व बलिदान की भावना को प्रस्तुत किया है, वहीं दूसरी ओर उसको ऐसी प्रेमिकाओं के रूप में दर्शाया है जो अपने प्रेमी से तृप्त न होने पर किसी अन्य के प्रति आसक्त हो जाती है। ''स्त्री–पुरूष का आकर्शण एक प्राकृतिक सत्य है। इसी आकर्शण पर सृष्टि का विकास अवलंबित है। इसीलिए आदि काल से नर–नारी के संबंधों में प्रेम तत्व को अनिवार्य माना गया है।'' कृष्ण की राधिका राधावल्लभीय सम्प्रदाय के ललितकिशोरी, युगलकिशोरी, रसिकाप्रिया आदि रूपों को त्यागकर प्रियप्रवास की राष्ट्रबालिका बनकर कृष्ण को आहवान देने लगी, उर्मिला नारियों का नेतृत्व करते हुए अत्यचारी शासक रावण को चुनौती देने लगी, कामायनी के मधुर स्वर, कुटिया में, निरन्तर गूॅंजने लगे, 'चल री

तकली धीरे–धीरे, प्रिय गये खेलने की अहेर।' इसी के समानान्तर, 'वह तोड़ती पत्थर, मैंने देखा उसे इलाहाबाद के पथ पर' अथवा, 'अबला भी नारी है, सबला भी नारी है, नारी है शक्ति, भक्ति, नारी अनुरक्ति है' जैसे क्रान्तिदर्शी विचार जनमानस में उभरने लगे। परतन्त्रता की छटपटाहट और स्वतन्त्रता की तीखी प्यास से आकुल व्याकुल नारी की आत्मा ने घोषणा कीए ॅम ंतम दमपजीमत मजीपबंस कंउेमसे दवत कवससेए दवत इनदकसमे व चेंपवदे ंदक दमतअमेण ॅम ंतम उनबी ीनउंद इमपदहे उमद वत ंदक ूम ंतम पिससमक ूपजी जीम ेंउम नतहम वित तिममकवउण

तात्पर्य यह है कि अपने आधुनिक परिवेश में नारी पुरूष के समान और समकक्ष स्वातन्त्रय चेतना से सम्पन्न होकर जीवन के नवीन आयामों में अपनी विशिष्ट इकाई का निर्माण करने लगी। वस्तुतः आधुनिक नारी के लिए पतिव्रत्य धर्म की परिभाषा बदलने लगी है। ''आज की पढ़ी लिखी नारी पौराणिक पतिव्रतता का नाकाब उतारकर स्वतंत्र व्यक्तित्व की आकांक्षा करती है।'

भारत में अंग्रेजी राज्य को स्वातन्त्रय संग्राम की पहली चिनगारी से भस्मसात करने का प्रयास झॉसी की रानी लक्ष्मीबाई अर्थात् एक नारी ने ही किया था और तब से लेकर स्वातन्त्रय प्राप्ति के प्रथम क्षण तक आजादी की बलिदान परम्परा में अनगिनत नारियों ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में अपनी आहुति देकर स्वतन्त्रता की साड़ी को सुहागिन की चुनरी का रंग दिया है। इस युद्ध में नारी ने मॉ, बहिन, बेटी, पत्नी आदि अनेक भूमिकाओं पर, अपना और प्रियजनों का बलिदान दिया। वह स्वयं बलिवेदी पर चढ़ी, अत्याचारों की चक्की में पिसी, अपमानित, अनाहत, अनावृत की गयी, हॅसते–हॅसते उसने सब सहा, किन्तु इतनी महान परम्परा को देकर भी, उसे स्वातन्त्रय वीरों की परम्परा में उचित स्थान नहीं दिया गया। साहित्यकार ने उसे, याद किया अवश्य, किन्तु संस्कारों से अलग होकर नहीं। स्वर उसका भी वही रहा। 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी' से प्रारम्भ करके 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' पर अर्द्धविराम लगाता हुआ साहित्य अन्ततः पहुॅचा 'औरत एक फरेब' खाली जेब है' तक।

इस प्रकार भारतीय स्वतन्त्रता संग्रामों में नारी ने पुरूष से कहीं अधिक गम्भीर और महत्वपूर्ण भूमिकाएॅ निभायीं। उसने एक साथ दो संग्रामों में भाग लिया। बाहरी और भीतरी दोनों संग्रामों में उसका नारा रहा 'स्वतन्त्रता' इन दोनों संग्रामों में वह सैनिक नहीं, सेनापति बन कर लड़ी। हिन्दी कहानियों नारी की इन भूमिकाओं का चित्रण व्यापक पैमाने पर किया गया है ।

''फलतः निवृति भावना की प्रतिक्रिया स्वरूप अपेक्षिता नारी श्रृंगार की केन्द्र बिन्दु बन गयी । ... अपनी शारीरिक निधि की रक्षा के लिए पुरूष के सम्मुख आत्मसमर्पण करके निश्चिन्त सी हो गयी । पुरूष ने कवि बनकर उसके बाहय् सौन्दर्य के प्रशंसात्मक गीत गा–गाकर उसके व्यक्तित्व को स्थूल रूप तक ही सीमित कर दिया।

निष्कर्ष

वह अपनी रूप माधुरी में विभार हो गयी ।.....रंगीले कवि नारी के मोहक चित्र खींचते रहे । कलाकार की तूलिका नारी की उलझी लटों में उलझ गयी, वह नयन कटाक्षों से कटकर, उन्नत उरोजों से अटक कर उसके घोर विलासी रूप को चित्रित करती रही । इन चित्रों ने उसके सात्विक रूप को विस्मृत कर दिया। उसका सत्यम् ,शिवम् ,सुन्दरम् का रूप भौतिक सौन्दर्य के मादक रंगों से रंग गया। पौराणिक काल में गौतम, नारद, विश्णु आदि ने नारी की स्वतंत्रता का घोर विरोध किया। दूसरी ओर धर्म की महता बढ जाने के कारण हमारी

सामाजिकता का विधान हमारे धर्माचार्य ही करने लगे थे। उन्होनें मोक्ष प्राप्ति के लिए वैराग्य और सन्यास को महत्व दिया और नारी को वैराग्य एवं संसार के मार्ग में बाधा समझकर उसकी भरसक निंदा की। तैतरीय संहिता, मैत्रायनी संहिता, काश्क संहिता, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि में नारी के प्रति अत्यंत ही घृणित दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। ''योगवसिष्ठ'' में तो कामिनी के त्याग को ही स्वर्ग प्राप्ति के साधनों में सम्मिलत कर दिया गया।'

बिंदु अग्रवाल : हिंदी उपन्यास में नारी चित्रण :पृ0177

डा0 सावित्री मठपाल : जैनेंद्र के उपन्यासों में नारी पात्र भूमिका से।

डा0 सावित्री मठपाल : जैनेंद्र के उपन्यासों में नारी पात्र भूमिका से पृ056

आधुनिक हिन्दी मुक्तक काव्य में नारी, सावित्री डागा, पृ. सं. 121

डा0 सावित्री मठपाल : जैनेंद्र के उपन्यासों में नारी पात्र भूमिका से 5

डा0 सावित्री डागा, आधूनिक हिंदी मुक्तक काव्य में नारी पृ0 19

.आधुनिक हिन्दी मुक्तक काव्य में नारी, सावित्री डागा, पृ. सं. 129

डॉ0 राम कुमार वर्मा कबीर ग्रंथवली पृ0 166

डा0 सावित्री डागा, आधूनिक हिंदी मुक्तक काव्य में नारी पृ0 19

डा0 सावित्री डागा, आधूनिक हिंदी मुक्तक काव्य में नारी पृ0 19

आधुनिक हिंदी मुक्तक काव्य में नारी, सावित्री डागा, पृ0 सं0 183

जयशंकर प्रसाद : कामायनी : लज्जा सर्ग, पृ0 सं0 84

bjscs11@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 16-20
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में नारी विमर्श

–धीरेंद्र सिंह थापा
पीएच.डी.शोधार्थी, हिंदी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ (राजस्थान)

शोध सारांश :–

आज का राजनैतिक नेता अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए किसी को भी बलि का बकरा बना लेते हैं। सामाजिक संबंध, प्रेम और सहानुभूति का उनके लिए कोई अर्थ नहीं। उनका व्यवहार सामाजिक बंधनों को कोई महत्व नहीं देता। समाज जाए या भाड़ में जाए उनकी बला से। उन्हें तो हर तरह से अच्छे या बुरे ढंग से अपने स्वार्थों की सिद्धि करनी है। जातीय दंगे भड़काना समाज में विशैला वातावरण उत्पन्न करना। भाई को भाई से लड़ाना, धर्म के नाम पर बलवा करवाना जाति के नाम पर एक जाति को दूसरी जाति से भिड़वाना, साप्रंदायिक झगड़े करवाना, यह राजनीतिज्ञों का रोज का कर्म हो गया है। श्री जयप्रकाश नारायण का मानना है कि, '' सांप्रदायिकता का अंत सिर्फ सरकार को ही नहीं करना हैं जनता का भी इसमें कर्त्तव्य है और यथार्थ बात तो चयह है कि जनता ही इसे मिटा सकती हैं। समाज के प्रत्येक नागरिक का यह धर्म होना चाहिए कि जहां भी सांप्रदायिकता देखी उसका सर कुचल दीजिए।'' इसमें कोई संदेह नहीं कि कुछ राजनीतिक नेता अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए सांप्रदायिकता को प्रश्रय देते हैं, लेकिन आज तो हिंदू और मुसलमान सर्वहारा वर्ग हैं। वह सांप्रदायिकता के आधार पर प्रतिनिधित्व को स्वीकार नहीं करता। उसे रोटी–रोजी और आजीविका की ज्यादा चिंता है।

मैत्रेयी पुष्पा की लेखनी इस प्रकार देश में चल रहे नारी के संघर्ष के साथ चलती है और नारी की जिंदगी, व्यवस्था के खिलाफ लड़ाई, अपनी जिंदगी को बेहतर बनाने की उसकी आकांक्षाओं को आत्मसात् कराती है। इनकी कहानियां सीधे–सीधे नारी के संघर्ष –बोध से जुड़ती हैं क्योंकि वे उस लड़ाई को अर्थ देती हैं। वे मौजूदा व्यवस्था में आदमी की स्थिति का यथार्थ चित्रण करती हैं, उस यथार्थ की भयावहता, विद्रूपता को तेजी से उभारती हैं। फलतःये उस यथार्थ के बदले एक नए यथार्थ के नई व्यवस्था, के लिए पुरानी परम्परागत व्यवस्थाओं के खिलाफ आवाज उठाती हैं। निःसंदेह मैत्रेयी पुष्पा की कथाएं नारी की चिन्तानुकल संवेदना के स्तर पर बाहरी और भीतरी दुनियाओं से जबरदस्त टकराहट अनुभव करने वाली औपन्यासिक कहानियां मानी जा सकती है।

बीज शब्दः मैत्रेयी पुष्पा,परम्परागत व्यवस्था,औपन्यासिक कहानियां,चिन्तानुकल संवेदना, यथार्थ की भयावह स्थिति

नमिता सिंह की कहानी 'राजा का चौंक' राजनीति की अवसरवादिता की सजीव प्रमाण है। इस कहानी का कलुआ शहर आकर दुर्गासरण के पास नौकरी पाने से पहले चौंक पर एक धमाका करता है। बचुआ से उसकी नोंक–झोंक होती है। फिर होटल बनाने का काम शुरू होता है। होटल का उद्घाटन मंत्री करने वाला

है। यहांफजल का छोटा बच्चे हथगोला लेकर आता है। वह जैसे ही गोला फैंकता है तो फजल का बड़का दूसरी ओर से चाकू फैंकता है। इस घटना में दोनों भाई मारे जाते हैं। मंत्री दुर्गासरण इस सांप्रदायिकता का रंग देते हुए कहते हैं, अच्छा? मुसलमान था यह। पूरी तैयारी थी बदमाष की–चाकू भी, हथगोले भी। हे! भगवान! यह तो पूरा होटल उड़ा देता। वे पुलिस को इस सांप्रदायिक दंगे की सूचना देते हैं। अंत में सोचते हैं, अच्छा हुआ बच्चू लाल ने रास्ता साफ कर दिया। अब आगे आसानी होगी।'' इस प्रकार व बचपन के दो मित्रों को आपस में मरवाकर अपना पूंजीवादी भूमिका भी संवार लेते हैं।

आज का राजनैतिक नेता अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए किसी को भी बलि का बकरा बना लेते हैं। सामाजिक संबंध, प्रेम और सहानुभूति का उनके लिए कोई अर्थ नहीं। उनका व्यवहार सामाजिक बंधनों को कोई महत्व नहीं देता। समाज जाए या भाड़ में जाए उनकी बला से। उन्हें तो हर तरह से अच्छे या बुरे ढंग से अपने स्वार्थों की सिद्धि करनी है। जातीय दंगे भड़काना समाज में विशैला वातावरण उत्पन्न करना। भाई को भाई से लड़ाना, धर्म के नाम पर बलवा करवाना जाति के नाम पर एक जाति को दूसरी जाति से भिड़वाना, साप्रंदायिक झगड़े करवाना, यह राजनीतिज्ञों का रोज का कर्म हो गया है। श्री जयप्रकाश नारायण का मानना है कि, '' सांप्रदायिकता का अंत सिर्फ सरकार को ही नहीं करना हैं जनता का भी इसमें कर्त्तव्य है और यथार्थ बात तो चयह है कि जनता ही इसे मिटा सकती हैं। समाज के प्रत्येक नागरिक का यह धर्म होना चाहिए कि जहां भी सांप्रदायिकता देखी उसका सर कुचल दीजिए।'' इसमें कोई संदेह नहीं कि कुछ राजनीतिक नेता अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए सांप्रदायिकता को प्रश्रय देते हैं, लेकिन आज तो हिंदू और मुसलमान सर्वहारा वर्ग हैं। वह सांप्रदायिकता के आधार पर प्रतिनिधित्व को स्वीकार नहीं करता। उसे रोटी–रोजी और आजीविका की ज्यादा चिंता है।

राजनीति में पांव रखने के बाद आदमी अवसरवादी हो जाता है उसे केवल अपना ही स्वार्थ नजर आता है, लेकिन आज का मतदाता राजनेताओं की अवसरवादिता को अच्छी तरह से समझ गया है। यह बात कलचंद वर्मा का पात्र बाजाराम उनकी कहानी 'भंवरजाल' में कहता है– '' राजनीति में जाने के बाद आदमी कितने जल्दी और कैसे–कैसे रंग बदलता है, यह मैंने रसिकलाल को देखकर जाना। पहले लोगों से सीधे मुंह बात नहीं करता था। अब फिर चुनाव सिर पर हैं तो उनसे आशीर्वाद मांगता है। चाहता है फिर उसे वोट दो और चुनाव में जीता दो।

मनीराम बोला, ''.......और जीत जाने के बाद उसके तेवर फिर बदल जाएंगे। लोगों से सीधे मुंह बात नहीं करेगा। लोगों के काम नहीं करेगा। दादा, अब ऐसे अवसरवादियों को जनता समझ गई है। अ बवह उनके झांसे में नहीं आएगी। अब वह सचमुच ही योग्य व्यक्तियों का चुनाव करेगी।

राजनेता बहुत अवसरवादी होता है। वह समय के अनुकूल रंग बदल लेता है। चुनाव में खड़े राजनेता एक–दूसरे से मदद लेते हैं और अपने प्रबल प्रतिद्वंद्वी को किसी न किसी तरह खुश करने और चुनाव में खड़ा न होने के लिए तरह–तरह के ढंग अपनाते हैं। भवंरजाल कहानी में– ''मनीराम ने तम्बाकू मसलते हुए कहा, '' चौधरी जी, लगता है, तुम्हारे खड़े होने की बात से रसिकलाल को चिंता होने लगी है। इसलिए एक दिन तुमसे मिलने आया था। चाहता था कि तुम उसे चुनाव जीतने का आशीर्वाद दे दो। कितना धूर्त और चालाक आदमी है। यदि तुम उसे जीत का आशीर्वाद दे देते तो इसका मतलब यह होता कि तुम उसके खिलाफ खड़े नहीं हो

रहे हो।''

'' हां, यह बात तो हैं वाजाराम ने हंसकर कहा। उसे पैर छूते और आशीर्वाद मांगते देख, मैं समझ गया था कि वह चाहता है कि मैं उसके खिलाफ खड़ा न होऊं।''

हरिराम बोला, 'पर दादा, तुम्हारी चतुाई की दाद देता हूं। तुमने उसे विजयी भव का आशीर्वाद न देकर सिर्फ 'खुश रहो' का आशीर्वाद दिया। यदि उसे विजयी भव का आशीर्वाद दे देते तो इसका अर्थ होता कि तुम अपनी हार स्वीकार कर रहे हो.....और तुम अपने मुंह से अपनी हार कैसे सवीकार कर सकते हो?'' उसकी बात पर सभी लोग मुस्करा उठे।'' स्पष्ट है कि राजनेताओं का आचरण समय व अवसर के अनुकूल बदल जाता है।

इनकी कलम समाज की मूलधारा से विच्छिन्न उन लोगों के दुःख–दर्द की हमेशा साथी रही हैं, जो सदियों सें से प्रेम में उत्साहित रहे हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री–पुरुष की विभिन्न समस्याओं को अपनी तुलिका से उभारना शुरू किया। शशि,अनंत,रुचि,सिंधु,सुमंत आदि पात्र के माध्यम से इसी को लेखन का आधार इन्होंने बनाया। स्त्री जीवन, सामाजिक परिवेश, जीवन–दर्शन, राजनैतिक स्वार्थ, अमानवीयता, मूल्य बोध, संघर्ष, परिवर्तित मूल्य, आर्थिक विसंगतियां, पारिवारिक मूल्य, नैतिक कर्तव्यों का निर्वाह, सांस्कृतिक जीवन मूल्य आदि पहलुओं की समीक्षा की। मैत्रेयी पुष्पा जी का विद्रोह मुखोंटों और झूठे प्रदर्शन के प्रति है क्योंकि असलियत में उन आवरणों की तह के नीचे एक निहायत पस्त, कायर, परोपजीवी दुखी और निराश स्त्री–पुरुष होते हैं। उनका सांस्कृतिक बोध उसे आलोक मंजूषा को खूब पहचानता है। जब समाज जीर्ण–षीर्ण हो तो समाज में उदारता का होना ही मनुष्य की उदारता का प्रतीक है। मैत्रेयी पुष्पा जी एक बहुत ही सुप्रसिद्ध रचनाकार हैं। उन्होनें कथा साहित्य की हर मनुष्य के जीवन की हर परिस्थितियों का वर्णन बहुत ही सफलता से किया है। इस कथा साहित्य में विश्व के देशों से जुड़े लोग तथा ग्रामीण जीवन का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है। समाज में पनपता पारस्परिक प्रेम, द्वेश, छुआछुत, स्त्री, अंधविश्वास, अहंकार के प्रति स्पष्ट रूप से कथा साहित्य लिखा गया है। इनमें भाईचारे की भावना को भी दर्शाया गया है,जो कि समय असमय एक दूसरे की प्रति समर्पित है। मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी सदियों से माने जा रहे सत्य तथा उससे संबंधित मूल्यों पर भी प्रश्नचिन्ह लगाती हैं। मैत्रेयी पुष्पा अब तक प्रचलित सारी संबंध व्यवस्थाओं की प्रतिष्ठा और गौरव को तोड़ते हुए दिखाई देती हैं। इनके नारी पात्र इस प्रतिष्ठा और गौरवमुक्त होने की लड़ाई को लगातार जीते हैं और यह लड़ाई उनके जीवनत् जीवन बोध की तलाश को पर्याय बन जाती है। वैयक्तिक और निजी स्तरों पर स्वतंत्र धरातल पर जिंदगी जीने की तीव्र ख्वाहिष दृष्टिगत होती है। मूल्य पर उनके नारी पात्र किसी भी सुख को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं, भले ही वह सुख–सुरक्षा का हो, सुविधाओं का हो या जुड़ावों का। यह वह स्थिति है जब नारी अपने चिंतन को अपनी जीवन दृष्टि को ज्यादा महत्व देने लगती है और उसके सोचने के विपरीत जो भी दिशा जाती है वहां से वह मुड़ जाती है नए मार्ग पर । लेकिन मुड़ने पर जो निःसंगता, अकेलापन, मानसिक तनाव और बेचैनियां सामने होती है, उन्हें भी फैल जाने की भरसक साहसी मुद्रा वह अपनाए रखना चाहती है, अपनी लड़ाई से वह हारती नहीं थकती जरूर है।

विवेच्य कथा साहित्य से यह प्रमाणित हो जाता है कि उपलब्धि की अपेक्षा, निरंतर संघर्ष, सतर्कता और नारी

की आत्मा को मुक्त रखने के कर्तव्य को न भूलने का दृढ़ निश्चय ही अधिक महत्वपूर्ण अधिक प्रेरणादायक है। नारी वर्ग का केवल मुक्त होना ही काफी नहीं है। जो वह करना चाहती हैं उसे कर सकने में समर्थ होना ही अपने आप में एक अच्छी जिंदगी या अच्छे चरित्र की उपलब्धि नहीं है। उस संघर्ष, उस सतर्कता का ही नाम है जो मानसिक, या सामाजिक राजनीतिक या आर्थिक किसी भी तरह के दबावों को महसूस करती हैं और मुक्त होने की छटपटाहट को भोगती हैं।

अज्ञान और आवश्यकता का ज्ञान सारी आधारभूत शर्तें हैं और इन शर्तों को कथाकार पूरी चेतना से जी रही है। विवेच्य कथा साहित्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि आज के नारी वर्ग की मुख्य तकलीफ ही वहीं से प्रारंभ होती है जहां उसे अपने चारों ओर फैले खोखलेपन की संक्रामक गंध को महसूस कर लेती है और तब उसके लिए चुपचाप बैठे रहना कठिन और असहाय हो जाता है। आवश्यकता का ज्ञान या आवश्यकता का सही मूल्यांकन ही सही की तलाश संघर्ष–मुक्ति की ओर ले जा सकता है। यहां प्रश्न उठ सकता है कि क्या सचमुच उन आवश्यकताओं का कुछ अर्थ है, कोई मानवीय संगति है जिनके लिए आज के कहानीकार की लड़ाई जारी रहना चाहती है?

निःसंदेह मैत्रेयी पुष्पा में वह तीव्र संवेदना है जो किसी भी नारी–विरोधी स्थिति के दबाव को सहन नहीं कर सकती। लेकिन यह भी उतना ही सच है कि अधिकांश कहानियों में नारी पात्रों का व्यक्तित्व दूसरों की लड़ाई में विकसित नहीं होता केवल अपने तई, अपनी ही जड़ताओं को तोड़ने के लिए, उनकी संघर्ष–मुक्ति की लड़ाई होती है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि यह स्वतंत्रता का संघर्ष उन्हें कहीं नहीं ले जाता साफ शब्दों में वह नाकाफी और भटकाने वाला है। नारी वर्ग वाहयातों अस्थिर संबंधों को स्थापित करके अपने अवसाद को भूलना चाहता है।7 चोट खाए हुए आत्मविश्वास की पीड़ा को भुगतते हुए या तो भोंथरा और भावहीन बन जाता है। नारी वर्ग संवेदनशीलता की वजह से गहरी मानसिक यातना के शिकंजे में मुक्त होने की सुखी ख्वाहिश में जीता रहता है। वह संबंधों की कड़वाहट का जहर अपनी आंखों से पीते हुए एक भयावह और खौफनाक मनःस्थिति में जीता है।

उपलब्धि की बात यह है कि कहानीकार खौफ खड़ा करके मानवीय स्थितियों की कुरूपता पर चोट का अनुभव अवश्य दे देता है। यह भी नही ंतो एक बड़ी सी चुप धारण करके ही मुक्ति के अनुभव को प्राप्त कर लेना चाहता है। लेकिन यह मुक्ति काल्पनिक और स्वप्नजीवी का सुख ही बनकर रह जाती है, फलतः एक सुलगती हुई बेचैनी और विकलता विवेच्य अधिकांश कहानियों के नारी पात्रों का चरित्र बन जाती है।

संग्रथित नारी–बोध हमें विवेच्य कथाओं में नही ंके बराबर मिलेगा जो मिलता है वह काफी अस्तव्यस्त ओर विश्लेषित रूप में है। नारी पात्र अपने में ही इतने उलझ जाते हैं कि अपने से परे, अपने से बाहर निकलकर अपने बारे में सोच ही नहीं पाते। जो सामने आता है वह अपने ही बिंदु से, अपने ही स्तर पर, अपने को ही पाने का चिंतन है इस चिंतन में विचारात्मकता या विश्लेषणात्मक उतनी नहीं है जितनी एक भावुक और अत्यधिक संवेदनशील सोच है। अर्थात् ये कहानियां अन्र्तविरोधी कहानी को छोड़कर बहुत कम कहानियां ऐसी मिलेगी जिनमें की संघर्ष पीड़ा से भी अधिक उपलब्ध आजादी के वास्तविक स्वरूप और अनुभव को अभिव्यक्ति मिल सकती है। भारतीय युवा रचनाकार पश्चिम के अस्तित्वादी दर्शन से प्रभावित हुआ है इसमें कोई संदेह नहीं है। विवेच्य कथा साहित्य में नारी वर्ग से जुडे अस्तित्वादी अकेलापन अजनबीपन, आत्मनिर्वासन, बर्हिगमन,

निरंतर–विद्रोह–परपैचुअल रिबैलियन तथा बगावत की मानसिकताओं के दर्शन होते हैं लेकिन फिर भी मैत्रेयी पुष्पा चेतना की ईमानदारी को ही उभारती हैं। महत्वपूर्ण अंतर यह है कि सार्त्र आदि के स्वतंत्रता के दर्शन में जिम्मेदारी से, उत्तरदायित्व से पलायन या महज आत्मकेंद्रण नहीं है, जबकि मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी–आजादी की भूख या आकांक्षा बहुत बार अमानवीय, क्रूर और बहशी–सी हो उठती है। यहां आत्म–बोध के स्तर पर ही स्वतंत्रता की तलाश मिलती है, विरोध या बाधक तत्वों की दृष्टि यहां बिल्कुल अपेक्षित है या नकार दी गई है। अर्थात्, प्रेक्ष–बिंदु यहां बिल्कुल ही भुला दिए गए हैं।

डॉ. रघुवंष, जयप्रकाश नारायण के विचार, पृ0 302
जयप्रकाश नारायण, संघर्श की ओर (अनु. मंगलदेव शर्मा) पृ0 149
नमिता सिंह, राजा का चौंक (राजा का चौंक), पृ0 78
डॉ. रघुवंष, जयप्रकाश नारायण के विचार, पृ0 302
जयप्रकाश नारायण, संघर्श की ओर (अनु. मंगलदेव शर्मा) पृ0 149
कमलचंद वर्मा, भंवरलाल, (बेदखल) पृ0 43
हरीश पाठक, तिर्यक, (गुम होता आदमी) पृ0 23
कमलचंद वर्मा, भंवरलाल (बेदखल), पृ0 42.43

Snehthapa2014@gmail.com
bjscs11@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 21-25
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिक समाज में आदिवासी वैश्वीकरण की स्थिति

–**डॉ. बीना शर्मा,** शोध–निर्देशिका
–**सुरेन्द्र कुमार,** शोधार्थी
पीएच.डी. हिंदी, हिंदी विभाग, एम.एम.एच. कॉलेज, गाजियाबाद।

आज के समय के वैश्वीकरण की बात करे तो यहाँ आदिवासी समाज एवं लोगों को न के बराबर माना गया है। आदिवासी लोगों की सभ्यता एवं संस्कृति से उन्हें अलग करके ऐसा लगता है मानो वह इस धरती पर ही नहीं है। उनकी सामाजिक सुरक्षा करने के बजाए उन्हें मरा के सामान समझते हैं, आदिवासी समाज के वे सभी लोग अपने हक की लड़ाई के लिए सैकड़ों वर्षों से संघर्ष करते आ रहे हैं। वे आज भी अपने अस्तित्व को बचाने में लगे हैं। इतना कुछ होने के पश्चात् आज भी उन्हें एक अलग कौम के रूप में देखा जाता है। इस चलन की तुलना हम वर्ण व्यवस्था के चलन के समय से कर सकते हैं। यहाँ पर भी आदिवासी लोगों के लिए समाज में स्थान नहीं है। यदि उनके स्थान की बात करें तो उन्हें कहीं वनवासी या कही एकलव्य के रूप में माना जाता है। इसके अलावा इसे हम सबरी और निषाद के रूप में भी स्वीकार कर सकते हैं। आदिवासी समाज की अपनी एक अलग पहचान एवं सल्तनत भी रही है। वह न सिर्फ वंचित वर्ग या उपेक्षित वर्ग का सदस्य बनकर नहीं रहा है।

आदिवासी समाज ने अपनी सत्तारूढ़ के खातिर भी काफी संघर्ष किया। इसके फलस्वरूप उसे मान और सम्मान दोनों मिला। सामंती परिप्रेक्ष्य के अंदर उनमें हमें उनकी गहरी छाप देखने को मिलती रही है। आज उन्हें अपने कबीलों एवं गण का बंशिदा के रूप में दर्जा दिया जाने लगा है।

आदिवासी लोगों को प्रारंभ से ही जल, जंगल, जमीन में रहने की एक आदत बन चुकी है। इसी कारण वह इसे न तो कभी छोड़ना चाहता और न कभी छोड़ेगा। आज की बात करें तो सरकार आदिवासी समाज के सभी लोगों के लिए किसी भी कार्य में सही प्रकार से मदद करने में हिचकिचा रही है। यहाँ आदिवासी लोगों की असहमति, नाराजगी एवं उदासीनता के प्रति सहमत के बारे में कोई कदम नहीं उठाती नजर आ रही है।

आज के सत्तारूढ़ बाजार में आदिवासी लोगों का अपनी जमीन को लेने के लिए वह संघर्ष करता नजर आ रहा है। क्योंकि वहाँ जल, जमीन एवं अकूत खनिज संपदा मौजूद है। उनका अपना सामरिक एवं आर्थिक महत्त्व रहा है। सरकारों की अपनी स्थाई नीति में प्रभुत्व, वर्चस्व एवं एकाधिकार को माना गया है। यही कारण है कि सभी आदिवासी लोग हमेशा से विद्रोही बनकर रहते जा रहे हैं। आदिवासी लोगों के संघर्ष को हम आसानी से विद्रोह कह डालते हैं। आदिवासी लोगों के विद्रोह को उनके समुदाय के दायरे में समेट कर रख डाला। इसी कारण से उनके जीवन में प्राचीन काल के समय से ही आदिवासी समाज के लोगों के ऐसे संघर्ष को इतिहास

से बाहर कर डाला। उन्हें प्रकृति से अलग करके उन सभी के हाथों में हथियार थमा डाले। जिन्हें परिस्थितियाँ सब कुछ करना सिखा डालती है उस व्यक्ति को हम सिरफिरा कहते हैं।

आदिवासी मनुष्य की विशेषताएँ

(क) उनके हाथों में थमाए जाने वाले ऐसे हथियार जिनके बीच की दूरी के निर्माण में विध्वंस की दूरी तक देखने को नहीं मिलती।

(ख) वह अपने औजारों एवं हथियारों से खेती, पशुपालन एवं शिकार करता नजर आता है।

(ग) वह अंत तक मेहनत करता हुआ गाँव और बस्ती में संघर्ष करता हुआ नजर आता है।

(घ) उनकी जो असली पहचान होती है वह उनके तीर धुनष के साथ–साथ उनके नाच–गाने के मुखौटों में भी देखने को मिलती है।

(ङ) वह समाज में रहकर अपनी लड़ाई को ऐसे लड़ता है। जैसे मानों वह समाज में रहकर मग्न होता हुआ गाता एवं नाचता है। उनके सामूहिक अभियानों के कारण ही उन्हें हमेशा से ही गलत दिशा मिलती रही है। उनके अपने जीवन में सामूहिक शांति एवं सह–अस्तित्व की जो मुख्य पहचान रही है वह मुक्ति मानी गई है। आज के समय में वैश्विक की जो अर्थव्यवस्था होती है वह वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम नामिक फोरम के कारण चल रही है। इस फोरम की जो इस साल की बैठक हुई वह जनवरी 2015 में हुई थी। उस समय वित्तीय पूँजी जो थी उसके माध्यम से उसने आर्थिक विकास दुनिया की अधिकतर सरकार को अपने कब्जे में कर डाला। इसमें यह कहा गया कि जो हो रहा है। यदि उस होनी को ही न रोका गया तो पूरी दुनिया के पास आधी संपत्ति रह जाएँगी।

आर्थिक विकास : बात यदि हम आदिवासी समाज के आर्थिक विकास की करें तो वह संचालित प्रकृति और समाज के बीच संबंध स्थापित करने से होता है। जल, जंगल एवं जमीन पर से उसका अपना हक समाप्त नहीं हुआ है। आज के समय जो आर्थिक विकास का ढाँचा बनाया गया है। आज के समय जिसके लिए आंदोलन चलाए जा रहे हैं। वह देश, समाज एवं बहुसंख्यक के अच्छे के रूप में रहा है। उसका जो लाभ होता है वह किसी बड़े बहुसंख्यक लोगों को मिलता है। आदिवासी लोगों को नहीं। उन्हें अपने समाज की जमीन से अलग होकर या विस्थापन से बिछुड़ जाने का दर्द उसे हमेशा–हमेशा तक झेलना पड़ा।

आदिवासी समाज की समस्या : आदिवासी समाज का समाज से अलग रहना पूरी कौम के लिए एक गंभीर समस्या मानी गई है। आज आदिवासी समाज का वैश्वीकरण आदिवासी लोगों की समस्याओं जनसमस्याओं के समान होकर रह गई है। आज के इस वैश्वीकरण के दौर में जल, जंगल एवं जमीन को दावदेरी के रूप में स्वीकार किया गया है, वह भी जनसमस्याओं के समान। अनाज के भंडार की बात कि जाए जो वैश्वीकरण के ऐसे दौर में जल–जंगल, जमीन, निजीकरण की दावेदारी महत्त्वपूर्ण रही है। इन सभी के लिए आदिवासी समाज हमेशा से ही लड़ता रहा है।

सामाजिक व्यवस्था : ऐसी अविकसित अपरिपक्क रूप की सामाजिक व्यवस्था आदिवासी लोगों के विद्रोह के लिए मानी जाती है। जिस राज्य में जो सरकार होती है वह उस समाज से बिल्कुल अलग होती है। समाज में उसके लिए कोई जगह नहीं बचती। उसके सामाजिक एवं धार्मिक मूल्यों के कारण ही उसके केंद्र में ऐसी संस्कृति मौजूद है। जहाँ पर प्रकृति विराजमान है। इसी कारण वहाँ पर कभी कोई झगड़ा नहीं हुआ नहीं वह घायल या

समाप्त तक नहीं हो सका। आदिवासी लोग हमेशा से ही अपने में मस्त मौला बनकर रहता आ रहा है। उसमें हमें राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के दर्शन देखने को मिलते हैं।

वह अपने लिए सुधरी जगह अपनी असहमत समाज की व्यवस्था के कारण, वह पूरे समाज में बदलाव करने की बात कहता है। उनकी एक सामुदायिक उदासीनता उनकी सोच में मिल जाती है। इसी कारण से वह आज तक कुछ नहीं बोलता आया है। वहीं दूसरी तरफ वह अपने विद्रोह एवं संघर्ष में अपनी सारी शक्ति दाव पर लगा देता है। चाहे उसकी लड़ाई छोटी क्यों न हो मगर वह एक निर्णायक रूप लिए होती है।

आदिवासी समाज की लड़ाई : आदिवासी समाज की जो लड़ाई रही है वह रोमन सभ्यता के साथ गुलाम लोगों के संघर्षों के प्रति रही है। इसी विद्रोह के कारण देश में आदिवासी लोग बार–बार मिटते, लड़ते, हारते एवं मरते रहे हैं। समाज के प्रत्येक क्षेत्रा की बात करे तो सरकार कहती है कि प्राकृतिक संसाधन जो हैं उनमें जल, जंगल एवं जमीन इन सभी के विरुद्ध रही है। प्रारंभ में ब्रिटिश सरकार को भी सामंती समाज के संग लड़ना पड़ा। इसी कारण से वहीं गुरिल्ला एवं घनी जंगलों में युद्ध हुआ। ये युद्ध चार वर्ष तक इन दोनों के बीच हुआ। इसमें चाहे हार आदिवासी लोगों की हुई हो, मगर चाहे उन्हें फाँसी मिली हे, चाहे किसान मरे हो आदि ऐसी सब घटनाएँ हमें देखने को मिल जाती है। आदिवासी जो समाज रहा है वह न तो आर्थिक विकास की अनिवार्यता से न सही किंतु उन दोनों के बीच प्रकृति और समाज में एकरूपता अवश्य देखने को मिलती है। उसकी पूरी जिंदगी की सच्चाई भी यही रही है। उनमें जल, जंगल एवं जमीन के प्रति अपने दावेदारी समाप्त नहीं हुई। आज तक हुए राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक बदलाव के कारण उनमें बदलाव तक नहीं देखा गया।

आज के समय आर्थिक विकास के लिए उनके लिए अधिक कदम उठाए जा रहे हैं। वह भी एक साधन की तरह। आदिवासी लोगों का अपने समाज से अलग रहना एक महत्त्वपूर्ण घटना मानी गई है। इस समाज से प्रत्येक सरकार बचती रही है। समाज के जो चिंतक, आलोचक, लेखक, अर्थशास्त्री, उदारवादी व्यक्ति जो होते हैं वह समाज के अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के समर्थन किस्म समाज के अंतिम व्यक्ति के प्रति उत्थान की बातें करते नजर आते हैं। जबसे आदिवासी लोगों के जीवन में अस्तित्व की शुरुआत औपनिवेशिक दौर से शुरू हुई थी उसी समय से ही आदिवासी समाज के साहित्य की अवस्थिति को स्वीकारा जा सकता है। चाहे रूप उसका मौलिक हो मगर लिखित रूप की बात की जाए तो उनके समुदाय में उनके जीवन में उनकी लेखन प्रक्रिया एवं विचार की पद्धति हम औपनिवेशिक के समय से ही मान सकते हैं। यदि हम आदिवासी विमर्श के स्वरूप की बात करें तो इसका स्वरूप में हमें निखार दिखाई देता है। आज यह विमर्श अपने विस्थापन एवं विकास के सवालों के माध्यम से अपने अस्मिता एवं अस्तित्व की जड़ की खोज करने में लगा है आज यदि इस आदिवासी की बात करे तो यह साहित्य, कला, विचार एवं अपने इतिहास दर्शन में अपनी पहचान बनाता हुआ आगे बढ़ रहा है। ये हमें न केवल अपने स्व पर खड़ा हमें दिखाई देता है। साथ ही समाज या देश में औपनिवेशिक काल में पहले या बाद में हुए इन पर उत्पीड़न, अत्याचार, शोषण आदि के प्रति विद्रोह कर रहा है। इसमें हमें एक पुरुष के माध्यम से दूसरे पुरुष द्वारा किया जाने वाला अत्याचार एवं शोषण के प्रति विरोधी रहा है। प्रारंभ से ही मानव जाति ने मनुष्य को जाति–धर्म, लिंग, भेदभाव, नस्ल आदि के प्रति शोषण किया है। ये शोषण कभी धर्म, कभी जाति, कभी नस्ल एवं कभी लिंग के आधार पर किया है। वहीं कुछ जो समाजशास्त्री के लोग थे उन्होंने उसे ब्राह्मणवाद का नाम दे डाला। हम ऐसे संघर्ष के दर्शन उड़ीसा, झारखंड, बस्तर आदि के क्षेत्राों में देख सकते

हैं। यह विमर्श न केवल अपनी मातृभूमि के लिए संघर्ष कर रहा है बल्कि पूरे विश्व के एवं मनुष्य के लिए वह जल, जंगल एवं जमीन आदि के लिए विद्रोह कर रहा है।

हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए आदिवासी समाज हमारे लिए एक सवाल बना हुआ है। आजादी के बाद हम विकास की बढ़ती तीव्रता के साथ–साथ हमें आदिवासी समाज पर हमला होता नजर आ रहा है। इन आदिवासी का यह विद्रोह इनका अस्तित्व, अस्मिता एवं संकट के रूप में दिखाई देता है। प्राचीन काल में जब आदिवासी समाज एवं क्षेत्रों पर जब पूँजीपति वर्ग के लोगों ने औपनिवेशिक काल में उनकी समाज एवं संस्कृति पर बाहरी लोगों के द्वारा हस्तक्षेप देखने को मिलती है। आदिवासी लोगों की अपनी समाज में अभिरुचियाँ एवं रचनात्मक कलाकृतियाँ होती हैं। जो कि ये पुरखा साहित्य के रूप में मोखिक साहित्य में देखने को मिलती है। ये साहितय इनकी अपनी भाषा में राह है। इनकी मातृभाषाओं के साथ–साथ हिंदी साहित्य का मिलन भी हिंदीतर भाषाओं एवं हिंदी में हमें देखने को मिलता है। इसी कारण से यह आदिवासी साहित्य का मुख्य आधार बनकर रहा है। (अनुज–लुगुन 63–65)

हम किसी भी समाज की बात करें तो वह हमें दो रूपों में देखने को मिलते हैं। पहले में वह अपने समाज या समुदाय में रहकर जाना गया वही दूसरी तरफ समाज उसे जानेन की कोशिश में लगा। जैसे हम यूरोपियन की बात करे तो उन्होंने आदिवासी की नीग्रीह कहा क्योंकि उनके समाज के लोगों ने ब्लैक में ही अपना सम्मन खोज निकाला। दूसरी तरफ संविधान के समय उनकी बाँहों पर किसी तक ने ध्यान नहीं दिया। वही जिस भी व्यक्ति ने इनके प्रस्ताव की बात कही वही पर इन लोगों की भी काफी निंदा की गई थी। चाहे रामयण काल हो महाभारत काल हो या आधुनिक काल में रहनेवाले ऐसे समुदाय के लोगों तक ने उन पर हमेशा से हाशिये पर सभ्य डाली का काम हमें देखने को मिलता। यदि हम संविधान निर्माताओं की बात करे, लोग ये चाहते थे कि आदिवासी लोगों के प्रति रहने की चिंता मानी गई है। इन लोगों के प्रति न तो किसी आजाद देश ने कोई संघर्ष किया इनके लिए अच्छा कार्य किया न ही कोई सार्थकता दिखाने की कोशिश की गई।

अंग्रेजों के समय में जब अंग्रेजों ने प्राकृतिक संसाधनों में पाए जाने वाले दोहन का विरोध किया। इस बात को न तो स्वतंत्रा भारत में भी समझने की कोशिश की गई वही औपनिवेशिक का कार्य जारी रखा। इसके बाद से ही विस्थापन के पश्चात आदिवासी समाज ने अपने हक की लड़ाई के प्रति आवाज उठानी शुरू कर दी थी।

निष्कर्ष : आदिवासी समाज के सभी लोगों के साथ प्राचीन काल से ही भेदभाव होता आ रहा है। उन्हें उनके अधिकारों से वंचित करने के साथ–साथ उनकी जमीनों तक की पूँजीपति लोगों ने हड़प डाला है। उन्हें न तो शिक्षा के अवसर मिले, न उन्हें किसी भी प्रकार की सुविधा मिली उनके समाज में हम उपनिवेशवाद और वैश्वीकरण की स्थिति के दर्शन कर सकते हैं। ये सभी अभी तक समाज से बाहर एकजुट होकर निकलकर अपने अस्तित्व एवं अस्मिता को बचाने में पूरे–जी–जान से लगे हैं।

हमारा कर्तव्य सभी का कर्तव्य बनता है कि हम ऐसे नव उदारवादी वैश्वीकरण के संघर्षों में बदलाव करें, हमें ही सबको मिलकर कुछ नया करना होगा तभी आदिवासी समाज में हमें सुधार देखने को मिलेगा!

पुस्तक संदर्भ

(1) पुस्तक संदर्भ□आदिवासी अस्मिता प्रभुत्व और प्रतिरोध–समय से संवाद–6

संपादक–अनुज–लुभुन–प्रकाशक–अनन्य प्रकाशन ई–17, पंचशील गार्डन नवीन शाहदरा दिल्ली□110032 प्रथम संस्करण–2015

अध्याय–वैश्वीकरण और आदिवासी संघर्षों की दिशा–अलोक वर्द्धन (पेज–105–112 तक)।

(2) पुस्तक–वागर्थ भारतीय भाषा परिषद□संपादक–शंभूनाथ–प्रकाशक नंदलाल शाहदरा भारतीय भाषा परिषद् 36। शेक्सपियर सरणी; कोलकाता–17 संस्करण–अंक 284 मार्च–2019

अध्याय□आदिवासी साहित्य विमर्श–प्रस्तुति–अनुज लुभुन (पेज–63–65)

10

30

(3) वही सब अध्याय विस्थापन की समस्या ने आदिवासियों को सबसे ज्यादा परेशान किया है. महादेव टोप्पो (पेज–68–72)

पता : मकान नं. 23, गाँव मोती बाग–ए
नई दिल्ली–110021
मोबाइल नं. 9899549475, 8700507951
मेल : surender1483@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 26-29
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिक हिंदी कहानी में पित्तृसत्तात्मक विद्रोह का आर्थिक विमर्श

–निर्मला देवी
शोधार्थी पीएच.डी., हिंदी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ (राजस्थान)

शोध सारांश
समसामयिक परेवश में अर्थ जीवन के केंद्र में स्थापित हो गया है। आज व्यक्ति के सामाजिक, राजनैतिक संबंधा उसकी आर्थिक स्थिति में आंके जाते हैं। अर्थ का महत्व जीवन में इतना बढ़ गया है कि इसके अभाव में जीवन की सत्ता ही संभव नहीं। आर्थिक स्थिति का सुदृढ़ होना आज व्यक्ति के लिए बहुत जरूरी है, तभी समाज में उसका महत्व बढ़ता है। नए संबंधों के परिवर्तन की प्रक्रिया एवं संबंधों में बदलते हुए मूल्यों के आर्थिक परिवेश बहुत हद तक जिम्मेवार हैं। अर्थ के धरातल पर पारिवारिक, सामाजिक संबंध के मूल्य आलोच्य, कहानियों में अभिव्यक्त हुए हैं। जगदीश चंद्र के कहानी संग्रह 'पहली रपट' 'अलग–अलग नम्बर' ममला कालिया के कहानी संगह 'प्रतिदिन', देवकी नंदन अग्रवाल के कहानी संगह 'दहलीज पर' आदि की कहानियां अर्थ केंद्रित संबंधों की वास्तविकता पर आधारित है।

मूल शब्दः आर्थिक परिवेश, कामकाजी, पित्तृसत्तात्मक विद्रोह, व्यावसायिक संबंध, स्वावलंबन

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध संगोष्ठि में अर्थ से जुड़े वैषम्य, गरीबी, शोषण, बरोजगारी, महंगाई आदि विषयों को उभारने का प्रयास किया गया है। स्वतंत्रता के बाद नारी आर्थिक रूप से स्वावलंबी होना चाहती है। इसके लिए उसने आर्थिकार्जन में पदार्पण किया है। वह कामकाजी हुई हैं जिससे उसके पारिवाकर संबंधा में बदलाव आया है। व्यावसायिक संबंधों में रिक्तता और मधुरता दोनों विद्यमान है। कामकाज करते हुए महिला का दैहिक शोषण भी होता है। वह व्यस्त भी हो जाती है और कभी–कभी उसे अकेलेपन का शिकार भी होना पड़ता है। उसके अर्थ के साथ जुड़ेने से परंपरागत मूल्यों में भी परिवर्तन आया है। वह अधिक स्वतंत्र और स्वच्छंद हुई हैं। यौन–संबंधाों में भी उसने मर्यादाओं को तोड़ा है। उसमें बोल्डनैस आई है। इन सभी आर्थिक पक्षों को प्रस्तुत अध्याय में उभारना ही हमारा मंतव्य है।

गरीबी आदमी को तोड़ देती है और गरीबी में आदमी कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। 'सरेआम' कहानी में हरिहर बाबू गरीबी में उदर पूर्ति के लिए जो मोमजामा बिछाया करते थे, अब गरीबी में वह मोमजामा भी उनका साथ छोड़ रहा है और अब उनके पास इतने साधन नहीं हैं कि वह उस मोमजामे को बदल सकें। कहानीकार के शब्दों में–''झोले से मुड़ा–तुड़ा कपड़ा निकाल जमीन को पोंछकर जगह–जगह से खुद की तरह

तिरका नीला मोमजामा निकालकर बिछाने लगते हैं। वर्षों से उनका साथ दे रहा यह मोमजामा अब आगे चलने से साफ इन्कार कने लगा है और उसके साथ ही हरिहर बाबू को लगता है कि एक दिन यह भी परवती और मदन की तरह उन्हें छोड़ सड़क पर फैल जाएगा। सचमुच कुछ नहीं कर पाएंगे वे। शायद अब वे उसे बदल भी न पाएं। एक ठंडी लकीर धीरे से उनकी रीढ़ में रेंगी है और वे बुझ गए हैं।''

गरीबी जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप होती है। गरीबी से लड़ने के लिए घर का हर व्यक्ति अपने–अपने ढंग से प्रयास करता है। हरीश पाठक की 'शहर की मौत' कहानी में लेखक लिखता है–''पिता जब रिटायरमैंट के बाद भी परिवार के छह पेटों के लिए रोटी तलाशते दर–बदर साइकिल खटखटाते भटकते थे, ...तब उसने पाया कि भीतर कहीं मां की सिसकियां हैं और बगल में लेटा उसका छोटा भाई हिकारत से उसकी ओर देखते हुए उठा था और उसकी उपस्थिति को नजरअंदाज कर अपने गंदे कपड़ों को पहनकर रोज बिस्कुट फैक्टरी में जाने लगा था और ये सारी स्थितियां जब उसके सामने खुली, तो उसने भी एक दैनिक अखबार की नौकरी पकड़ ली थी और कलम घिसने लगा था।....जब महीने में अंत में चश्मा चढ़ाए शर्मा जी ने डेढ़ सौ रूपये उसकी हथेली पर रखे, तो उसे लगा जैसे अचानक रूपये सांप में तबदीलहो गए हैं और हथेली पर सहसा जहर टपक पड़ा है। सपने ज्यादा थे, पैसे कम।''

समाजशासत्र में निर्धनता उस दशा को कहते हैं'' जिससे कोई व्यक्ति या तो अपर्याप्त आमदनी के कारण या विवेकहीन व्यय के कारण अपने जीवन स्तर को इतना ऊंचा नहीं रख पाता जिसके द्वारा उसकी शारीरिक व मानसिक क्षमता कायम रह सके और वह अपने तथा अपने आश्रितों के लिए ऐसा स्तरन बनाए रख सकें जो उस समाज के स्तर के अनुकूल हो जिसका वह सदस्य है।'' दूसरे शब्दों में '' यदि किसी मनुष्य को जीवन की आवश्यकताएं, सुविधाएं और मनोरंजन के साधन समुचित परिमाण में उपलब्ध न हो तो उसे हम निर्धन कह सकते हैं।'' भारत में जिस व्यक्ति के पास खाने को दो समय का भोजन, रहने को मकान और पहनने को कपड़ा नहीं, वह निर्धन है। डॉ. अग्रवाल के अनुसार,''एक निर्धन व्यक्ति को उसकी गरीबी के कारण, भरपेट व संतुलित भोजन नहीं मिल पाता। उसका स्वाथ्य कमजोर होता है। उसमें काम करने और कमाने की शक्ति कम होती है। अतः उसे कम आय मिलती है और वह गरीब बना रहता है। इस रूप में भारत की अधिकांश जनता गरीबी के स्तर से नीचे का जीवन जी रही है।

अर्थ तत्व ने भी प्राचीन मूल्यों को बदलने में बहुत योगदान दिया है। यही कारण है कि उषा प्रियंवदा की कहानी 'जिंदगी और गुलाब के फूल' में कमाने वाली बहन के सामने बेरोजगार भाई छोटा हो गया है। नौकरी छूटने पर मंगेतर भी किसी दूसरे की हो जाती है। सुदर्शन चौपड़ा की कहानी 'जाले' का बाप अपनी कमाऊ बेटी के स्वछंद यौन संबंधों को सहता रहता है, किंतु उसका विवाह नहीं करता। मनू भंडारी की कहानी 'बाहों का घेरा' में मित्तल की पूंजी अर्थोपार्जन और अर्थसंग्रहण में लगे पति की उपेक्षा के कारण किसी के भी बाहों के घेरे में कसे जाने की इच्छा करते हैं।''

देश की आजादी के बाद भारत की आर्थिक दशा निरंतर बिगड़ती गई है। लोगों में धन संग्रह की प्रवृत्ति बढ़ी है। जिससे गरीब और अधिक गरीब हुआ है और अमीर ज्यादा से ज्यादा अमीर बना है। यदि यह कजा जाए कि अमीर और गरीब के बीच की खाई अधिक चौड़ी और गहरी हुई तो कोई अतिष्योक्ति नहीं है। इस आर्थिक वैशम्य ने देश के सामने अनेक समस्याएं पैदा कर दी हैं। राजनीति में बैठे लोगों ने इस आर्थिक वैषम्य को दूर

करने की जितनी कोशिश की है, यह उतनी ही अधिक उलझती गई है। यह जटिल और भयावह होती गई है। आम आदमी पूंजीपतियों की अर्थ नीति के कुचक्र में पिसता ही गया। आम–आदमी ऊंचे महलों में रहने वाले लोगों के आर्थिक तीरों की बौछारों से सदैव ही लहु–लुहान होता रहा है। आर्थिक विषमता के इस जहर ने आदमी की हैसियत को कम कर दिया है। धन का लोभी आदमी भेड़िया बन जाता है और सामान्य आदमी रोटी के दो टुकड़ों के लिए तरसता है। धनवान अपने कुकृत्यों पर गर्व करता है, और गरीब जीने के लिए जहदोजहद कर रहा है। आर्थिक वैषम्य से ऐसा विसंगत और क्रूर वातावरण उत्पन्न कर दिया है कि आदमी अपनी आदमीयत भूल गया है। छीना झपटी में आदमी रिष्तों को भी ताक पर रख देता है। शायद वह नहीं जानता कि विषमता के ये बीच दूसरों के लिए नहीं अपितु अपने लिए बो रहा है।

भारतीय सभ्यता, संस्कृति में जीवन के चार उद्‌देश्य माने गए हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनमें धर्म और मोक्ष प्रमुख माने जाते रहे हैं तो अर्थ और काम गौण। अर्थ सदैव साध नही बना रहा, यह कभी साध्य नहीं बन पाया, लेकिन आज की भौतिक परिस्थितियों में अर्थ पूरे जगत का भगवान बन गया है। यह जीवन के केंद्र में प्रतिष्ठित हो गया है। आज सभी संबंध धन के पैमाने से ही मापे जाते हैं। आज ऐसा कहा जाने लगा है कि यदि ईश्वर और धन की प्राप्ति करनी है तो पहले अर्थ का अर्जन करना पड़ेगा। अर्थ की पूंजा करनी पड़ेगी। आज अर्थ के बिना जीवन में किसी काम की बात नहीं की जा सकती, इसका महत्व जीवन में इतना बढ़ गया है कि इसके अभाव में व्यक्ति की अस्मिता, जीवन की सत्ता ही संभव नहीं। जीवन और जगत से जुड़े सभी मूल्य अर्थोन्मुखी हो गए हैं। यदि यह कहा जाए कि अर्थ जीवन का सर्वोच्च मूल्य हो गया है, तो कोई अतिश्योक्ति नहीं है। अर्थ का प्रभुत्व जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है। अर्थ के बिना सभी मूल्य, गुण और विशेषताएं गौण हो जाते हैं। अर्थ ही सभ्यता, संस्कृति, शराफत, ईमानदारी सभी का पैमाना बन गया है।

आर्थिक विषमता इतनी बढ़ गई है कि मानव भौतिक उपलब्धियों के पीछे इतना पागल हो गया है कि –''मानवीय गुणों के स्थान से धर्म स्थानों से हटकर जीवन स्तर आज बड़े–बड़े फाइव स्टार होटलों, डिस्कोथिक्स, वीयर हाउसेज में ढूंढा जाता है। हमारी इस दृष्टि का एक अन्य कारण है– तीव्रता से होता जा रहा शहरीकरण। गांवों की बजाय शहरों तक महानगरों में जीवन का बनावटीपन अधिक है। ये सब सुख–सुविधाएं कहां से उपलब्ध की जा सकती हैं, कौन व्यक्ति इन सुविधाओं का अधिकाधिक उपयोग कर सकता है? यह प्रश्न विचारणीय है। इन सब ऊंचे पैमान की सुविधाओं का केवल वह व्यक्ति उपयोग कर सकता है, जिसके पास अनाप–शनाप पैसा है। ईमानदारी की आय में तो आज एक परिवार को रोटी खिला पाना भी कठिन है। ये सुविधाएं प्रायः उन्हीं व्यक्तियों के पास दिखाई देती हैं जो या तो राजनीतिक नेता या काला–बाजारिय हैं या तस्कर हैं या जो उत्कोच लेते हैं। गरीब व्यक्ति तो आज भी इन सुविधाओं के नाम भी शायद नहीं जानता।'' आर्थिक विषमता इतनी बढ़ गई कि हर व्यक्ति अवैध तरीकों से धन कमाकर अमीर बनना चाहता है जबकि एक मजदूर सड़क पर मजदूरी करता है और शाम को अपने और अपने बच्चों के लिए भोजन का प्रबंध करता है। आज अर्थ जीवन का एक ऐसा पहलू बन गया है कि हर व्यक्ति अर्थ की प्राप्ति के लिए कितना भी नीचे गिर सकता है।

गरीबी एक सामाजिक आर्थिक समस्या है। इसे आर्थिक समस्या इसलिए कहा जाता है क्योंकि धनाभाव के कारण ही गरीबी उत्पन्न होती है तथा सामाजिक समस्या इसलिए है, क्योंकि धनाभाव की उत्पन्न दशाएं

सामाजिक जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव डालती हैं। गरीबी का तात्पर्य एक ऐसे अभावग्रस्त जीवन से है जो समाज के समााजिक आर्थिक कुसमायोजन से उत्पन्न होता है तथा जिसके फलस्वरूप व्यक्ति अपनी तथा अपने आश्रितों की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ रहता है।''

गरीबी कष्टकर होती है, पेट की आग बुझाने के लिए लोग दूर–दराज के देशों में रोजगार की तलाश में चले आते हैं। 'रोशनी के लिए' कहानी में कर्नाटक के किस गांव में रहने वाली इंदु का वर्णन करते हुए लेखक लिखता है–''जिसका नाम इंदु बताया गया था, अधेड़ वय की थी। श्याम वर्ण और कमजोर काया। रूखा चेहरा, रूखे बाल और मैले कपड़े। उसके हाथों में एक–एक चूड़ी थी। शरीर पर कोई गहने नहीं थे। चेहरे पर गहरे विषाद और शोक की छाया थी। वह सिर झुकाए और आंखें बंद किए पता नहीं किन विचारों में डूबी थी। उसका लड़का जिसकी उम्र करीब पांच वर्ष, मैली निकर और कमीज पहने था।''

निष्कर्ष

गरीबी की बेबसी और लाचारी में व्यक्ति नंगे पांव चलने पर मजबूर हो जाता है। 'चिंगारी' कहानी में रूक्को और उसकी बेटी घर से पांच किलोमीटर दूर नंगे पांव भैरो के मंदिर में पानी भरने जाती हैं। कहानीकार के शब्दों में–''पानी के दो घड़े उसने बड़ी के सिर पर रखे। दो घड़े अपने सिर पर रखे। फिर दोनों घर की ओर लौट पड़ी। विचारों में डूबी वह बड़की के पीछे चलने लगी। सहसा उसका ध्यान बड़की के पैरों की ओर गया। पैरों में चप्पलें नहीं थी। बेचारी नंगे पांव, तपती दोपहरी में, तपती पगडंडी पर चली जा रही थी। कैसी तेज गर्मी है। सूरज जैसे आग उगल रहा है। पगडंडी हो सकता है तवे की तरह जल रही हो। बच्ची के पैरों में कहीं छाले न पड़ जाएं? इस विचार से वह सिहर गई।'' इस संबंध में एक आलोचक का मत है कि–'' जो महिलाएं किसी पुरुष उच्चाधिकारी के अधीन काम करती हैं उनके सामने यह समस्या है कि कथित अधिकारी उन्हें कार्य कुशल कार्यकर्ता न मानकर सिर्फ स्त्री के रूप में ही देखता है। यदि वह उसकी प्रशंसा करते, उसके सौम्य और नम्र रहे तो संभव है कि अधिकारी अपने पद का दुरुपयोग करके महिला कर्मचारी से नाजायज फायदा उठाना चाहेगा।

संदर्भ :

हरीश पाठक, सरेआम (गुम होता आदमी), पृ0 110

हरीश पाठक, शहर की मौत (गुम होता आदमी), पृ0 15.16

डॉ. सत्यव्रत सिद्धांतलंकार समाजशास्त्र के मूल तत्व, पृ0 614.615

डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, समाजषास्त्र, पृ0 665

ए.एन.अग्रवाल, भारत का आर्थिक विकास एवं आयोजन, पृ0 17

राहुल भारद्वज, नवें दशक की हिन्दी कहानी में मूल्य विघटन, पृ0 104

डॉ. सरिता वाशिष्ठ, युगबोध और हिन्दी नारी, पृ0 225

डॉ. गोपाल कृष्ण अग्रवाल, सामाजिक विघटन, पृ0 287.288

कमलचंद वर्मा, रोषनी के लिए (बेदखल), पृ0 34

कमलचंद वर्मा, चिंगारी (बेदखल), पृ0 86

mrmcollegersnr@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 30-33
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन कहानियों में नारी–सम्बद्ध आर्थिक विमर्श

–नेकराज मौर्य
पीएच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ (राजस्थान)

शोध सार

गरीबी व्यक्ति का सबसे बड़ा अभिशाप है। गरीबी व्यक्ति से वह सब कुछ करवाती है जो वह नहीं करना चाहता, ठीक यही स्थित 'विरूद्ध' कहानी के कहानीकार सुदर्शन की है। वह कथाकार है। नगर में प्रतिष्ठित है। कहानी के क्षेत्र में उनका बहुत बड़ा नाम है। उस पर सरस्वती की जितनी कृपा है, लक्ष्मी उससे उतनी ही उदासीन है। गरीबी ने उसके जीवन को तार–तार कर दिया है। कहानीकार लिखता है– ''घर में जैसे ही कदम रखा था सोमू की कराहों ने उसे मथ कर रख दिया था। मालती उसके सिरहाने बैठी रो रही थी। सोमू दर्द के मारे छटपटा रहा था। उसकी आंखों में गहरी उदासी पसरी हुई थी। उसे स्थिति समझते देर नहीं लगी, वह तुरंत रमेश जी के घर भागा था और इतनी रात में वह कहां जाए। पैसे तो उसे मिल गए थे, लेकिन जिन शब्दों का उपयोग रमेश जी ने किया था, उन्हें वह सह नहीं पाया था। कुछ देर पहले का उत्साह तुरंत उड़ गया था। बार–बार वह सोचता रहा कि भेंट रमेश जी के मुह पर मार आए, पर सोमू की कराहों ने उसे ज्यादा सोचने का मौका ही कहां दिया? बस फिर कहीं रमेश जी से काम न पड़ जाए, इसी सोच को लिए वह यहां चला आया था, जबकि दिली तौर पर वह उनकी शकल तक नहीं देखना चाहता था। लेकिनये तो उसके सबसे ज्यादा पराजित क्षण हैं। क्या इसी दिन केलिए अपने आप को गलाया था?''

मूल शब्दःसमकालीन, जीवन का अभिशाप, निशाचर, अर्थोपाज्रन, आर्थिक शोषण

प्रस्तावना

यदि गरीब ने अधिकारी को मनमाना करने दिया, तो उसमें अपराध–भावना तथा सहकर्मियों के साथ उसका संबंध कटु हो जाता है। उसके सहकर्मी उसे नीची नजर से देखने लगते हैं और यदि कहीं उसने अपने अधिकारी को प्रसन्न नहीं रखा अपने काम में ही दिलचस्पी रखती रही तो उसके लिए अपनी नौकरी बनाए रखना अथवा पदोन्नति पाना कठिन हो जाएगा। उसके बारे में यही कहा जाएगा कि वह पदोन्नति के लिए कतई योग्य नहीं।'' पुरुष अधिकारी हर दृष्टि से महिला कर्मचारी को दबाए रखना चाहता है। इस संबंध में एक आलोचक का मत है कि–'' जो महिलाएं किसी पुरुष उच्चाधिकारी के अधीन काम करती हैं उनके सामने यह समस्या है कि कथित अधिकारी उन्हें कार्य कुषल कार्यकर्ता न मानकर सिर्फ स्त्री के रूप में ही देखता है। यदि वह उसकी प्रशंसा करते, उसके सौम्य और नम्र रहे तो संभव है कि अधिकारी अपने पद का दुरुपयोग करके महिला कर्मचारी से नाजायज फायदा उठाना चाहेगा।

यदि उसने अधिकारी को वैसा करने दिया, तो उसमें अपराध–भावना तथा सहकर्मियों के साथ उसका संबंध कटु हो जाता है। उसके सहकर्मी उसे नीची नजर से देखने लगते हैं और यदि कहीं उसने अपने अधिकारी को प्रसन्न नहीं रखा अपने काम में ही दिलचस्पी रखती रही तो उसके लिए अपनी नौकरी बनाए रखना अथवा पदोन्नति गरीबी मानव–जीवन का अभिशाप है। कमलचंद वर्मा की कहानी 'हरा जख्म' में इसका वर्णन करते हुए लेखक लिखता है– '' वह अपनी मां की हालत देखता था। हमेशा एक जोड़ी कपड़ों में दिखाई देती। हफ्ते में एक बार उन्हें धो लती और वापस उन्हीं को पहन लेती। दु:ख सहने करते असयम ही चेहरे पर झुर्रिया पड़ गई थी। उसके बापू की हालत अधिक खराब थी। सिर पर चार हाथ की पगड़ी, फटी–पुरानी जाकेट और लंगोटीनुमा धोती। पैरों में सस्ती चप्पलें, चूसे हुए आम की तरह चेहरा। सुबह से शाम तक पत्थर तोड़ने या मिट्टी ढोने का काम। बापू और मां के साथ वह भी काम में जुटा रहता। हृदय में इस बात की आशा बंधी थी कि कभी–न–कभी ठेकेदार को दया आएगी। वह उन्हें बंधन मुक्त कर देगा और वे अपने घर, अपने गांव को लौट जाएंगे।''

गरीबी जीवन का बहुत बड़ा कलंक है। पेट की आग बुझाने के लिए स्त्रियां, पुरुष गंदगी में से वस्तुएं इकट्ठी करते हैं। 'निशाचर' कहानी में लेखक लितख है, ''ये स्त्रियां हैं, रद्दी कागज बटोरने आई हैं, जहां कहीं कोई फटा कागज दफती का टुकड़ा, कोई फैंकी हुई चीज पड़ी मिलेगी, उसे झपटकर उठा लेंगी और कंधे से लटकते अपने झोले में डाल लेंगी, कोई चिगलियां, कोई सूखी लकड़ी के टुकड़े, अधजले कोयले, जो जहां से मिलेगा और पौ फटने से पहले ही मोहल्ले में से निकल जाएंगी।''

अर्थ जीवन की आधारशीला बन गया है। अर्थोपाज्रन के लिए लोग घटिया तरीकों का प्रयोग भी करते हैं। आज समाज में एक ओर धन के अम्बार लगे हैं, तो दूसरी ओर गरीब आदमी पैसे–पैसे को तरसता है, रोटी कमाने के लिए उसे धनी लोगों के तलवे चाटने पड़ते हैं, उनकी खुशामदी करनी पड़ती है, उनकी ठोकरें खानी पड़ती है। उनकी बेगारें पूरी करनी पड़ती हैं। '' आधुनिक युग में, आर्थिक दृष्टि से हमारे देश में सदियों से चले आ रहे दो वर्ग अमीर और गरीब के बीच एक अन्य वर्ग का भी उदय हुआ है। यह वर्ग मध्यम वर्ग के नाम से जाना जाता है। इस वर्ग की स्थिति और अधिक दयनीय है, यह वर्ग न तो बिल्कुल श्रमिक वर्ग की भांति ही जी सकता है, न अमीरों की भांति जी सकता है। इस वर्ग से हमारे समाज में कुछ विशेष ही अपेक्षाएं रखी जाती हैं। जिनमें से प्राय: यह ध्यान में रखा जाता है कि इस वर्ग को भले ही आय कम हो, उसका स्तर ऊंचा होना चाहिए। सामाजिक स्तर को ऊंचा बनाए रखने के लिए विवशत: उन्हें रिश्वत लेनी पड़ती है, झूठ बोलना पड़त है, चोर–बाजारी आदि काले–धंधों का आश्रम लेना पड़ता है। इसमें व्यक्ति का दोष नहीं है, दोष है हमारी व्यवस्था का।'' सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था के कारण ही आर्थिक शोषण बढ़ रहा है। निर्धन व्यक्ति समुचित आय प्राप्त नहीं कर पाता तो धनवान और शक्तिवान उसका शोषण करने से बाज नहीं आता। आर्थिक शोषण से योग्य, विवेकशील और शिक्षित व्यक्ति भी नहीं बचे, क्योंकि आज सिफारिष और पैसे जोर से अयोग्य व्यक्ति उनकी जगह नौकरियां ले लेते हैं और वह बेचारे परेशान ही रहते हैं।

भारतीय ग्रामीण परिवेश में छोटे और सामान्य किसान का भरपूर आर्थिक शोषण किया जाता है। इस संबंध में 'उसकी चाहत' कहानी में कमलचंद वर्ता लिखते हैं–'' बापू सुबह पांच बजे से चौधरी की चाकरी के लिए निकल जाते हैं। उन्हें खेतीहर मजदूर कहने की बजाय बंधुआ मजदूर कहना ज्यादा ठीक है। सालभर की नौकरी का सौदा, वह भी मामूलह रकम पर। मजबूरी में बापू उनका काम करने को तैयार हो जाते हैं, क्योंकि जरूरत

पड़ने पर वे कर्ज चौधरी से ही लेते हैं, उस कर्ज को भरने क`लिए और घर की जरूरत के लिए उन्हें सालभर का अनुबंध मानना ही पड़त थ। वे चौधरी के खेत के काम के अलावा उनके घर पर भी काम करते थे। सुबह पांच बजे से लेकर आठ बजे तक उनकी चौकरी में जुटे रहते हैं। रात को थके हारे लौटते हैं और रोटी खाकर सो जाते हैं।''

आर्थिक अभाव व्यक्ति को तोड़ देता है। ऐसे में कर्जा एक ऐसा मेहमान है, जो एक बार आने के बाद कभी वापिस जाने का नाम नहीं लेता, इस पर अनपढ़ होना तो और भी बुरा है और फिर यदि शराब की लत है तो व्यक्ति चिड़चिड़ा हो जाता है बात–बात पर लड़ने को दौड़ता है। यही दशा 'हरा जख्म' कहानी में गुंजू के बाप की है। उसने कई वर्श पहले ठेकेदार से कर्जा लिया था, वर्शों वह बराबर किस्तों में कर्ज के रूपये लौटा रहा है लेकिन ठेकेदार का कहना था कि उस पर दस हजार रूपये का कर्ज बाकी है। इसलिए जब तक कर्ज नहीं चुकाता, वह अपनी बीबी–बच्चों के साथ कहीं नहीं जा सकता। इसी बात को लेकर ठेकेदार से उसकी नोंक–झोंक रहती है। ठेकेदार उसे गालियां बकता, मारने को दौड़त था। घौंस देता था कि यदि उसने जबरदस्ती जाने की कोशिश की तो जिंदा नहीं बचेगा। भय के कारण उसका बापू चुप रह जाता था। पर डेरे पर ठेकेदार की अनुपस्थिति में उसे बहुत गालियां देता था। अपने गांव, अपने घर जाने की बात जोर–जोर से कहता था। ठेकेदार के अन्याय और जुल्म की बात खुलकर कहता था। अपनी मां, अपने बाप को याद करता था और अपनी बेबसी पर जोर–जोर से रोता था। नशे की हालत में बच्चे की तरह बिलखता था। कई लोग मिलकर चुप कराते। उसे धीरज ओर दिलासा देते, तब वह चुप होता था।''

घर में नौकर रखना एक फैशन–सा हो गया है और नौकर से चौबीस घंटे काम लेना और कभी–कभी उसे पीट देना उसका आर्थिक शोषण करना भीश्म साहनी की 'संभलके बाबू' कहानी में नायक 'मैं' जब फिल्म देखकर वापस आता है तो नौकर नत्थू दरवाजा खोलने में देर लगा देता है तो उस समय नायक के शब्दों में–'' उधर दरवाजा खुला, इधर मरे दाहिने हाथ ने घूसा लगा दिया और एक ही चमक में, पूरजोर घूसा, मेरी कमर के पास से उठकर, हवामें सनसनाता हुआ सीधे नत्थू के जबड़े पर उतरा। अगर रामू की ओर से प्रतिरोध की आशंका होती तो एक और झापड़ बायीं और से नत्थू के गाल पर पड़ने के लिए तैयार था, पर आमतौर पर वीर नायक एक ही झापड़ मारते हैं। एक ही तूफानी धौल, सनसनाता हुआ, जमकर बैठा था।''

गांव के पूंजीपति और धनवान व्यक्ति अपने यहां काम करने वाले लोगों का भरपूर शोषण करते हैं। हरीश पाठक की 'दबा हुआ विद्रोह' कहानी में कोशल के बाऊजी पटेल के यहां काम करते थे और एक ट्रक दुर्घटना में ज बवह पटेल का गल्ला शहर से जा रहे थे उनकी टांगे धड़ से अलग कर दी जाती हैं, कोशल पटेल से कहता है कि–'' बाऊजी इलाज का खर्चा अब आपको ही उठाना पड़ेगा, तो वह भड़क उठा– तुम किस मुंह से पैसे मांगते हो, रामरतन जिंदगी भर मेरा कर्ज नहीं चुका सकता। तुम मूल तो छोड़ो ब्याज भी नहीं दे पाओगे, मेरा खुद नुकसान हुआ है, सात हजार तो ट्रक ही मांग रहा है। पटेल की बात पर उसका आक्रोश उमड़ पड़ा था, उसे लगा था जैसे विद्रोह का ज्वालामुखी सहसा ही फूट पड़ेगा उसका लावा जहां–जहां छितराया जाएगा और पटेल को कस्मसात कर देगा। लावा फुट पड़ा था।.....तुम शोषक हो, निरंतर हमारा शोषण कर रहे हो, मैं तुम्हें छोडूंगा नहीं, मैं.....मैं तुम्हारी सब चालाकी जानता हूं। उसकी मुट्ठियां भिंच गई थी। सियाराम ने उसे पकड़ लिया थ, उधर अटारी से पटेल के लठैत झांकने लगे थे।''

शिक्षित विवाहित स्त्री द्वारा नौकरी करने की जो लहर आई है, उसका उसमें संपूर्ण व्यक्तित्व पर तथा उसके दांपत्य जीवन तथा पारिवारिक संबंधों पर असर पड़ना अनिवार्य है। अब उसे एक ओर गृहिणी और दूसरी ओर जीविकोपार्जन, दोनों की भूमिका निभानी पड़ती है। इस दोहरी भूमिका को निभाने में उसकी शक्ति और समय खर्च होता है और प्रायः इसे दोहरी भूमिका की परस्पर विरोधी आवष्कताओं के बीच जूझना पड़ता है। कामकाजी स्त्री को जो अतिरिक्त उत्तरदायित्व निभाना पड़त है, उसको लेकर इस प्रकार की अनेक अटकलबाजियां की गई हैं कि इस वजह से उसके दांपत्य और पारिवारिक जीवन पर गंभीर प्रभाव पड़ेंगे।'' परिवार उपेक्षित होता है, यह बात काफी सीमा तक सही है, लेकिन कामकाजी महिला ने परिवार के आर्थिक पक्ष को सबल बनाया है। अर्थ के अभाव में परिवार के लोग जिन इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर पाते थे, वह महिला के नौकरी में आने कारण पूरी होने लगी है। अतः कामकाजी महिला ने धर्नोपार्जन से परिवार को एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया है।

निष्कर्ष :-

शिक्षित विवाहित स्त्री द्वारा नौकरी करने की जो लहर आई है, उसका उसमें संपूर्ण व्यक्तित्व पर तथा उसके दांपत्य जीवन तथा पारिवारिक संबंधों पर असर पड़ना अनिवार्य है। अब उसे एक ओर गृहिणी और दूसरी ओर जीविकोपार्जन, दोनों की भूमिका निभानी पड़ती है। इस दोहरी भूमिका को निभाने में उसकी शक्ति और समय खर्च होता है और प्रायः इसे दोहरी भूमिका की परस्पर विरोधी आवष्कताओं के बीच जूझना पड़ता है। कामकाजी स्त्री को जो अतिरिक्त उत्तरदायित्व निभाना पड़त है, उसको लेकर इस प्रकार की अनेक अटकलबाजियां की गई हैं कि इस वजह से उसके दांपत्य और पारिवारिक जीवन पर गंभीर प्रभाव पड़ेंगे।'' परिवार उपेक्षित होता है, यह बात काफी सीमा तक सही है, लेकिन कामकाजी महिला ने परिवार के आर्थिक पक्ष को सबल बनाया है। अर्थ के अभाव में परिवार के लोग जिन इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर पाते थे, वह महिला के नौकरी में आने कारण पूरी होने लगी है। अतः कामकाजी महिला ने धर्नोपार्जन से परिवार को एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। पाना कठिन हो जाएगा। उसके बारे में यही कहा जाएगा कि वह पदोन्नति के लिए कतई योग्य नहीं।'' पुरुष अधिकारी हर दृष्टि से महिला कर्मचारी को दबाए रखना चाहता है।

संदर्भ :-

हरीश पाठक, विरूद्ध (गुम होता आदमी), पृ0 87

वीमन इन एम्प्लायमेंट, भारत सरकार का श्रम और रोजगार मंत्रालय, लेबर ब्यूरो, पैम्फलेट सीरिज 8, 1964

कमलचंद वर्मा, हरा जख्म (बेदखल), पृ0 27

भीष्म साहनी, निषाचर (निषाचर), पृ0 61.62

डॉ. सरिता वाशिष्ठ, युग बोध और हिन्दी नाटक, पृ0 227

कमलचंद वर्मा, उसकी चाहत (बेदखल), पृ0 55.56

कमलचंद वर्मा, हरा जख्म (बेदखल), पृ0 29

भीश्म साहनी, संभल के बाबू (निषाचर), पृ0 75.76

हरीश पाठक, दबा हुआ विदोह (गुम होता आदमी), पृ0 29

डॉ. प्रमिला कपूर, कामकाजी भारतीय नारी, बदलते जीवन मूल्य और सामाजिक स्थिति, पृ0 29

डॉ. प्रमिला कपूर, कामकाजी भारतीय नारी, बदलते जीवन मूल्य और सामाजिक स्थिति, पृ0 29

वीमन इन एम्प्लायमेंट, भारत सरकार का श्रम और रोजगार मंत्रालय, लेबर ब्यूरो, पैम्फलेट सीरिज 8, 1964

bjscs11@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 34-36
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी उपन्यास में किसान विमर्श

–अनीता रानी
पीएच.डी.शोधार्थी, हिंदी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ (राजस्थान)

शोध सारांश :–

उपन्यास साहित्य हिन्दी की सशक्त विधा है। उपन्यास में किसी घटना की विस्तृत जानकारी, तथ्य वर्णित होते हैं। हिन्दी के उपन्यासकारों ने विभिन्न विषयों को आधार बनाकर उपन्यासों की रचना की। हिन्दी कथा साहित्य में ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, जीवनीपरक, मनोवैज्ञानिक इत्यादि अनेक विषयों से सम्बन्धित उपन्यासों की रचना हुई है। हिन्दी में ग्रामीण जनजीवन से सम्बन्धित उपन्यास भी लिखे गए जिनमें किसान जीवन का बखूबी वर्णन किया गया है। भारतीय किसान का जीवन बहुत ही दरिद्रता, ऋणग्रस्तता एवं असहनीय कष्टों से भरा हुआ है। महाजनी सभ्यता का जाल अंग्रेजों ने भारत में फैलाया था। अकाल, कृषि की पैदावार का कम मूल्य, कर का बोझ आदि के कारण किसानों की दशा दिन–प्रतिदिन गिरती जा रही थी। नई व्यवस्था से किसानों को भारी संकटों का सामना करना पड़ा। शिवपूजन सहाय, मुंशी प्रेमचन्द, फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त, डॉ. बाबूराम, संजीव, सुनील चतुर्वेदी, पंकज सुबीर आदि उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से किसान आन्दोलन का यथार्थ चित्रण किया है।

बीज शब्द:दरिद्रता, ऋणग्रस्तता,असहनीय कष्ट, जमींदारी, चुलबुलाहट

प्रस्तावना :–

स्वतन्त्रतापूर्व हिन्दी उपन्यास में किसान विमर्श स्वतन्त्रता से पूर्व हिन्दी साहित्य में किसान जीवन से सम्बन्धित उपन्यासकारों में मुंशी प्रेमचन्द का नाम अग्रणी है। मुंशी प्रेमचन्द का 'गोदान' उपन्यास किसान जीवन का महाकाव्य माना जाता है। इस उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने किसान जीवन की यथार्थ स्थिति का वर्णन किया है। किसान जीवन की विभिन्न समस्याओं को उजागर करने में यह उपन्यास पूर्णतः सक्षम है। महाजनों एवं साहूकारों की शोषण प्रवृत्ति को इसमें बखूबी देखा जा सकता है। निम्न और उच्च वर्ग के संघर्ष को चित्रित करने में भी यह उपन्यास पूर्णतः सक्षम है। इसी प्रकार प्रेमचन्द जी के 'कर्मभूमि' उपन्यास में भी किसान समस्याओं को देखा जा सकता है। यह उपन्यास आधुनिक शिक्षा प्रणाली पर भी सवालिया निशान खड़ा करता है।

मुंशी प्रेमचन्द जी के उपन्यास 'गोदान' से पहले किसान जीवन को चित्रित करने वाला उपन्यास शिवपूजन सहाय का 'देहाती दुनिया' है। जिसमें गाँव में रहने वाले लोगों की दयनीय दशा और जमींदारों द्वारा किए जाने वाले शोषण का वर्णन किया गया है।

देहाती दुनिया

शिवपूजन सहाय का उपन्यास 'देहाती दुनिया' वि. संवत् 1983 (1926 ई०) में लिखा गया। इस उपन्यास में उन्होंने गाँव में रहने वाले व्यक्तियों की फटेहाल जिन्दगी का चित्रण किया है। गाँव में भोले–भाले लोगों पर हो रहे अत्याचारों के बारे में बताया है कि जो उच्च वर्ग के जमींदार हैं वो कैसे निम्न वर्ग के व्यक्तियों को परेशान करते हैं और किसान सारा दिन जमींदारों के खेतों में काम करते हैं, लेकिन फिर भी वे उनको दिनभर मेहनत की कमाई का पूरा हिस्सा भी नहीं देते, इतना अत्याचार होने पर भी गाँव का कोई भी व्यक्ति बाबू जी के विरुद्ध नहीं हुआ। निम्न वर्ग के लोग अत्याचारों को चुपचाप सहते रहते हैं। इस उपन्यास में अंधविश्वास, जादू–टोना आदि का भी चित्रण है। इसमें बचपन की चुलबुलाहट व एक माँ के प्यार का सुन्दर वर्णन है तथा इसमें अपने बेटे के भविष्य को लेकर पिता की चिंता को भी व्यक्त किया गया है।

उपन्यास में बाबू रामटहल सिंह जी बहुत बड़े जमींदार हैं। मनुष्य के पास पैसे व जमींदारी कितनी भी हो अगर उसके अंदर इंसानियत नहीं तो क्या फायदा ऐसे पैसों का। ऐसे ही बाबू जी के घर का माहौल भी ठीक न होने के कारण शादी भी नहीं हो रही थी, परन्तु वह पैसों के बल पर शादी करना चाहता था। बाबू जी बहुत ही अंधविश्वासी थे वे जादू–टोना में विश्वास रखते थे। पूजा–पाठ का दिखावा व इंसानों पर घोर अत्याचार करते थे। रामटहल जी अपने पुत्र भोलानाथ के भविष्य को लेकर भी चिंतित रहते थे। क्योंकि उनकी माँ उनसे निश्छल प्रेम करती है वो चिंतित है कि कहीं उनका बेटा लाड–प्यार में बिगड़ न जाए इसलिए वो उन पर गुस्सा करते हैं। भोलानाथ भी अपने पिता से बहुत प्यार करते हैं।

इस उपन्यास में दरोगा और पटवारी द्वारा भोले–भाले किसानों पर किए जाने वाले शोषण को भी दर्शाया गया है– ''दरोगा जी के किसी पुश्त में दया की खेती नहीं हुई थी। उनके पिता पटवारी थे। पटवारी भी कैसे? गरीबों की गर्दन पर अपनी कलम टेकने वाले! उनकी कलम की मार ने किसानों की कमर तोड़ दी थी, कितने बिना नाधा–पैना के हो गये थे, कितनों का देस छूट गया था, कितनों के मुँह के टुकड़े छिन गए थे।'' इसमें यह भी दर्शाया गया है कि गाँव की पाठशला में जो लड़के पढ़ते थे वो गुरु जी को सिधा देते थे कभी चावल, कभी गुड़। लेकिन जब पैदावार कम होती थी तो किसी लड़के का बाप आकर गुरु जी से कहता– ''गुरु जी इस साल पैदा बहुत नरम है। भदई और अगहनी ने कमर तोड़ दी। चैती का भरोसा है। खेत कमाते–कमाते तो पीठ की रीढ़ धनुही हो गई, मगर करम गवाही नहीं देता तो क्या करूँ? और कोई धंधा भी तो नहीं है। आप तो घर के आदमी हैं, हालत देखते ही हैं। आपसे किसान जीवन की समस्याएं कभी भी खत्म नहीं होती, जैसे– कभी सूखा, कभी पाला, कभी बेमौसमी बरसात आदि उसको चैन की साँस नहीं लेने देती, अगर इनसे बच जाए तो जमींदारों से कर्ज का बोझ उसे परेशान करता है।।

शिवपूजन सहाय ने किसान जीवन की संध्या का मनमोहक चित्रण उपन्यास में किया है। ''वहाँ जब खेत से हलवाहे अपने कँधे पर हल और आगे–आगे बैल लिये आने लगते थे, गायों को चराकर चरवाहे बस्ती की ओर अपनी गौओं के साथ लौट पड़ते थे, लंगूरी पूँछ उठाकर दौड़ती और हँकारती हुई गायें चाटने लगती थी, तब गुरु जी बरतावन करने की आज्ञा देते थे, जिसके समाप्त होते ही सब लड़के एक साथ ही गुरु जी को सलाम करके अपने–अपने घर की ओर दौड़ पड़ते थे।''

मुंशी प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि' उपन्यास की रचना सन् 1932 ई० में की। इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने तत्कालीन समाज की समस्याओं का उल्लेख किया है। इस उपन्यास का आरम्भ आधुनिक शिक्षा प्रणाली पर

सवालिया निशान खड़ा करता है तथा अन्त किसानों के ऊपर किए जा रहे अत्याचारों के समाधान के लिए गठित कमेटी से होता है। अमरकान्त को देहातों की स्थिति से अवगत होने का अवसर तब मिलता है जब वह और सलीम डॉ० शान्तिकुमार के साथ गाँव की आर्थिक स्थिति की जाँच पड़ताल करने निकले थे। अमरकान्त जाँच–पड़ताल के बाद कहता है–

''मैंने कभी अनुमान न किया था कि हमारे कृषकों की दशा इतनी निराशाजनक है।''

अमरकान्त गूदड़ के गाँव में पहुँच जाता है और वहीं कोई काम करने की सोचता है। गूदड़ ने जब खेती करने के लिए कहा तो उसी समय गूदड़ के बड़े लड़के प्रयाग ने कहा– ''खेती की झंझट में न पड़ना भैया। चाहे खेत में कुछ हो या न हो लगान जरूर दो। कभी ओला–पाला, कभी सूखा–बूड़ा। एक–न–एक बला सिर पर सवार रहती है। उस पर कहीं बैल मर गया या खलिहान में आग लग गयी तो सब कुछ स्वाहा।''2

गूदड़ का छोटा बेटा काशी कहता है कि किसानी में मरजाद (मर्यादा) है तो प्रयाग फिर से कहता है– ''मरजाद लेके चाटो। इधर–उधर से कमा के लाओ, वह भी खेती में झोंक दो।''

निष्कर्ष :

किसान पहले ही मर–मरकर साँस ले रहा था, लेकिन अब उसकी स्थिति बद से बदतर हो गयी। फसलों का मूल्य इतना गिर गया कि जो मूल्य 40 वर्ष पहले था वही अब हो गया, लेकिन लगान वहीं के वहीं खड़े थे उसमें कोई कमी नहीं आई। ''जब भाव तेज था, किसान उपज बेच–बाचकर लगान दे देता था, लेकिन जब दो और तीन की जिन्स एक में बिके तो किसान क्या करे। कहाँ से लगान दे, कहाँ से दस्तूरियाँ दे, कहाँ से कर्ज चुकाये।

संदर्भ :–

1. शिवपूजन सहाय, देहाती दुनिया, पृ. 76–77
2. शिवपूजन सहाय, देहाती दुनिया, पृ. 91
3. मुंशी प्रेमचन्द, कर्मभूमि, पृ. 20–21
4. मुंशी प्रेमचन्द, कर्मभूमि, पृ. 99

anitajonwal2010@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 37-40
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी उपन्यास परम्परा में किसान विमर्श

–हेत राम
पीएच.डी.शोधार्थी, हिंदी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ (राजस्थान)

शोध सारांश :–
किसान जीवन की दयनीय दशा, उनके ऊपर किए जाने वाले शोषित, किसान का धार्मिक मान्यताओं में विश्वास करना और अन्ततः कठिन परिश्रम करते हुए उसकी जीवन लीला का ही समाप्त हो जाना इत्यादि समस्याओं को चित्रित किया है।विकट समस्या आ खड़ी हुई; और यह दशा कुछ इसी इलाके की न थी। सारे प्रान्त, सारे देश, यहाँ तक कि सारे संसार में यही मन्दी थी।'' इस समस्या के समाधान के लिए किसान एकजुट हुए ताकि वो महन्त के सामने अपनी स्थिति को बता सकें और लगान की दर में कुछ कमी करा सकें। भोला चौधरी किसानों की सभा में कहता है– 'पंचों हमारे ऊपर जो लगान बंधा हुआ है वह तेजी के समय का है। इस मन्दी में वह लगान देना हमारे काबू से बाहर है। अब की अगर बैल बधिया बेचकर दे भी दें तो आगे क्या करेंगे।'' उस समय महन्त ऐसे जमींदारों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनसे मिलने के लिए नजराना भी देना पड़ता है।
मूल शब्दः किसान विमर्श, चौधरी, शोषित, महन्त, जमींदार के खेत

प्रस्तावना

'गोदान' उपन्यास के माध्यम से मुंशी प्रेमचन्द ने लिखा है–होरी धनिया से कहता है कि मुझे मालिक से मिलने जाना है इसी मिलते–जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है। धनिया होरी का विरोध करती है कि कुछ खा–पी के तो चला जा और साथ ही यह भी कहती है कि हम जमींदार के खेत जोतते हैं तो उसके बदले में लगान भी तो दे रहे हैं। होरी कहता है–''जब दूसरे के पाँवों तले अपनी गर्दन दबी हुई है तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है।'' गोदान के इस प्रसंग के माध्यम से ही प्रेमचन्द ने किसानों की स्थिति को स्पष्ट कर दिया कि किसान जमींदारों, साहूकारों के शोषण से पीड़ित हैं और जी–हजूरी के बिना उनका जीवन नर्क बन जाता है। रायसाहब जमींदार वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं और किस तरह से वे कारिदों के माध्यम से भोल–भाले किसानों को ठग रहे हैं। इसी प्रकार मँगरू साहू, दातादीन पण्डित भी किसानों को ठगने में कम नहीं है। होरी ने अपनी सारी फसल खलिहान में ही तौल दी लेकिन कर्ज अब भी 300 रुपये बाकी है– ''मँगरू साहू से आज पाँच साल हुए, बैल के लिए साठ रुपये लिए थे, उसमें साठ दे चुका था, पर वह साठ ज्यों के त्यों बने हुए थे। दातादीन पण्डित से तीस रुपये लेकर आलू बोये थे। आलू तो चोर खोद ले गए और उस तीस के इन तीन बरसों में सौ हो गए थे।''

स्वतन्त्रता के बाद के उपन्यासकारों में फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन,भैरवप्रसाद गुप्त का नाम प्रमुख रूप

से लिया जाता है। फणीश्वरनाथ रेणु हिन्दी के आँचलिक उपन्यासकार हैं। इन्होंने पूर्णियां जिले के 'मेरीगंज' गाँव को केन्द्र में रखकर 'मैला आँचल' उपन्यास की रचना की तथा तत्कालीन समय में किसानों की दयनीय दशा का बखूबी चित्रण किया है।

नागार्जुन ने 'बलचनमा' तथा 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास के माध्यम से जमींदारों के किसानों पर शोषण के साथ–साथ किसान परिवार के बच्चों को पढ़–लिखकर अफसर बन जाने पर गाँव वालों को घृणा की दृष्टि से देखने का प्रसंग भी उठाया है। इसी प्रकार भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यास 'गंगा मैया' में किसान के रूढ़िग्रस्त रीति–रिवाज, परम्पराएँ तथा टूटते हुए परिवारों को प्रमुखता से चित्रित किया गया है।

फणीश्वरनाथ रेणु का नाम हिन्दी के आँचलिक उपन्यासकारों में प्रमुख है। रेणु ने ग्रामीण जीवन का सजीव चित्रण अपने उपन्यासों के माध्यम से किया है। जनजीवन के सुख–दुःख, रहन–सहन, आपसी व्यवहार, तीज–त्यौहार इत्यादि का यथार्थ चित्रण रेणु जी ने किया है। 'मैला आँचल' उपन्यास की कथा की पृष्ठभूमि बिहार के पूर्णिया जिले का मेरीगंज गाँव है। 'मैला आँचल' उपन्यास में जाति के आधार पर तीन प्रमुख दल हैं– कायस्थ, राजपूत और यादव। अन्य जाति के लोग भी अपनी सुविधानुसार इन्हीं तीन दलों में बंटे हुए हैं। ब्राह्मण टोली तृतीय शक्ति हैं। भैरवप्रसाद गुप्त के इस उपन्यास में एक ऐसे गाँव का वर्णन है जहाँ के किसान आर्थिक शोषण के शिकार हैं और सामाजिक रूढ़ियों में फंसे हुए हैं। किसान जीवन में रूढ़िग्रस्त रीति–रिवाज, परम्पराएँ तथा टूटते हुए परिवार को इसमें चित्रित किया गया है। ''गोपीचन्द और मानिक दोनों बहुत ही बलशाली और सुन्दर हैं इस बात का गर्व उनके माँ–बाप को भी है। पिता ने उन्हें साँडों की तरह आजाद और बेफिक्रे छोड़ दिया था। खेलने खाने के यही तो दिन हैं फिर जिन्दगी का जुआ कंधे पर पड़ने के बाद किसे फुरसत मिलती है शरीर बनाने की? इसी वक्त की बनी देह तो जिन्दगी भर काम आयेगी।'' घर में दूध, घी की कोई कमी नहीं है अच्छी खेती–बाड़ी है। दोनों की पहलवानी की बातें गाँव के साथ–साथ आसपास के इलाकों में भी होने लगी। गाँव वालों ने भी यही सोचा कि दोनों गाँव का नाम पहलवानी में रोशन करेंगे इसीलिए प्रसिद्ध पहलवानों को चुनौती दी गई, लेकिन कोई भी युवा पहलवान चुनौती स्वीकार करने को सहमत नागार्जुन ने इस उपन्यास में यह वर्णित किया है कि जमींदारी प्रथा के कारण किस प्रकार बड़े–बड़े जमींदार छोटे किसानों तथा मजदूरों का शोषण करते हैं। छोटे किसानों की थोड़ी बहुत जमीन को भी अपने नाम लिखवाने के लिए क्या–क्या पैंतरे खेलते हैं तथा कैसे गरीबों को दाने–दाने के लिए मोहताज कर दिया जाता है। 'बलचनमा' उपन्यास का नायक बलचनमा है। इसमें बलचनमा ने आत्मकथात्मक शैली में अपने जीवन की समस्याओं, वेदनाओं और जमींदारों के शोषण को वर्णित किया है।

''मझले मालिक की निगाह हमारे उन थोड़े खेतों पर थी जिनमें मडुवा उपजाकर तीन–चार महीने का खर्च हम निकालते आये थे। उन्होंने सोचा–लौंडा अभी छोटा है। जमीन का रंग–ढंग अच्छा नहीं। कमाने लायक होने पर कटिहार या कलकत्ता कहीं न कहीं जरूर भाग जाएगा फिर कोई इसका क्या कर लेगा। अभी तो खैर इस औरतिया का अंगूठा निशान अपने कब्जे में है।'' ''सौ कसाई के एक कसाई, न लड़के का मोह न लड़की का, न भाई का, न बहन का, न बाप का मोह, न माय का! हॉय रुपैया, हॉय रुपैया! जब देखो तब रुपैया। मैं दो ही रोज रहा उनके यहाँ, इसी में समझ गया। खेती गृहस्थी के अलावे सूद–ब्याज पर दस–बीस हजार की 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास में रूपहली ग्राम की चार पीढ़ियों को दर्शाया गया है। जैकिसुन के परदादा का लगाया

हुआ वटवृक्ष 'बाबा बटेसरनाथ' है जिसके माध्यम से नागार्जुन ने बिहार के मिथिलांचल के रूपउली गाँव की संस्कृति, वहाँ की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं के साथ–साथ जमींदारी उन्मूलन तथा जमींदारों और किसानों के संघर्ष को भी दर्शाया है।

बाबा बटेसरनाथ

जैकिसुन को बताते हैं कि ''परसादीपुर, धनियापट्टी और रुपउली के किसानों पर इस जौन साहब ने तिनकठिया लागू कर दिया था...... एक बीघा में बीस कट्ठा जमीन होती है न! तो प्रति बीघा तीन कट्ठा जमीन में नील की खेती करने के लिए किसान मजबूर किये जाते थे।''3 इसके साथ ही बाबा बटेसरनाथ ने जैकिसुन को मिलजुल कर इन जमींदारों के अत्याचारों का सामना करने की बात भी कही है– ''तू जिस युग में पैदा हुआ है वह राजाओं–जमींदारों और सेठों, साहूकारों का युग नहीं, बल्कि तेरे जैसे आम नौजवानों का जमाना है.........'' असहयोग आन्दोलन के समय देश के प्रत्येक हिस्से में जागृति की एक नई लहर उत्पन्न हुई।

''मिदनापुर के किसानों ने लगानबंदी का आन्दोलन छेड़ दिया। दक्षिण में मलाबार के मोपलों ने बगावत कर दी। पंजाब में सरकार के पिट्ठू महन्तों के खिलाफ अकाली सिक्खों की घृणा भड़क उठी।''

समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों में डॉ. बाबूराम, संजीव, सुनील चतुर्वेदी तथा पंकज सुबीर के नाम प्रमुख रूप से लिए जाते हैं। डॉबाबूराम जी ने किसान जीवन को आधार बनाकर 'एक ओर अवधूत' और 'महाउद्धारक' उपन्यासों की रचना की। 'एक ओर अवधूत' में किसान परिवार में जन्म लेने वाले सन्त ब्रह्मानन्द सरस्वती जी के समाज सुधारक कार्यों का वर्णन किया गया है तथा 'महा उद्धारक' में दर्शाया गया है कि किस प्रकार अकाल पड़ने पर गुरु जाम्भो जी समस्त जनता का भरण–पोषण करते हैं।।

सुनील चतुर्वेदी ने 'कालीचाट' उपन्यास में किसान जीवन के संघर्षों को चित्रित किया है। संजीव का 'फांस' उपन्यास तत्कालीन समय में बढ़ रही किसान आत्महत्याओं को चित्रित करता है। पंकज सुबीर का 'अकाल में उत्सव' उपन्यास में किसान की दयनीय दशा का वर्णन करते हुए दर्शाया गया है कि एक तरफ गरीब किसान अपने परिवार का भरण–पोषण करने में सक्षम नहीं है और आत्महत्या कर लेता है तथा दूसरी तरफ मुख्यमन्त्री के शहर में आने पर बड़े–बड़े उत्सव मनाये जाते हैं, पैसे पानी की तरह बहा दिये जाते हैं।

डॉ. बाबूराम जी ने 'एक ओर अवधूत' उपन्यास में ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। किसान जीवन को चित्रित करने के साथ–साथ इस उपन्यास में एक ऐसे सन्त की कथा का वर्णन है जो पूरे विश्व में समाज कल्याण की भावना के लिए निरन्तर संघर्षरत है और असंख्य यज्ञों के माध्यम से समाज में आपसी भाईचारें की भावना और स्त्रियों के उत्थान के लिए अपनी दिव्य वाणी के द्वारा जन–जन को जागरूक करते हैं।

सन्त ब्रह्मानन्द सरस्वती का जन्म चूहड़माजरा के एक किसान परिवार में हुआ। किसान हमेशा ही दूसरों की सहायता के लिए तत्पर रहता है। घर में कोई कुछ माँगने आता है तो वह उसे खाली हाथ नहीं लौटाता। ग्रामीण जीवन की इस झलक को हम निम्नलिखित पंक्तियों में देख सकते हैं– ''राम्मी बड़ी करुणामयी थी। दूसरों की सहायता करने में सदा तत्पर रहती थी। घर आये को खाली हाथ नहीं जाने देती। वह अन्दर गई और एक चादर लाकर भिखारी को दे दिया।'' किसान की दिन–रात मेहनत करने वाली स्थिति को भी इस उपन्यास में देखा जा सकता है– ''बदामा बाड़े से पशुओं को देखकर उन्हें घास डालकर घर की तरफ आया और राम्मी से कहने लगा कि मेरी लाठी और दयोर (चादर) दे दे। मैं खेत में जा रहा हूँ। जंगली जानवर फसल को बिना

रखवाली के बर्बाद कर देते हैं। सुन्दरा कल ही थाई (चौपाल) में पुकार रहा था कि उसके सारे चने जड़ से जानवर खा गए। बेचारे के घर का गुजारा कैसे चलेगा? अपना भी जंगल वाला खेत बर्बाद होने का डर मैं जाता हूँ।''1

निष्कर्ष :–

उपर्युक्त संदर्भ में साफ–साफ बताया है कि किस प्रकार छोटे मालिक बलचनमा के छोटे से खेत को अंगूठा लगवाकर अपने कब्जे में कर लेता है और यही सच्चाई है। इस प्रकार जमींदार लोग अपनी जमींदारी को बढ़ाते रहते हैं और छोटे–छोटे किसानों का खूब शोषण करते हैं।

संदर्भ :–

1. मुंशी प्रेमचन्द, कर्मभूमि, पृ. 184
2. मुंशी प्रेमचन्द, कर्मभूमि, पृ. 186
3. प्रेमचन्द, गोदान, पृ. 7
4. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, पृ. 298–299
5. भैरवप्रसाद गुप्त, गंगा मैया, पृ. 9
6. नागार्जुन, बलचनमा, पृ. 13
7. नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ, पृ. 61
8. नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ, पृ. 64
9. नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ, पृ. 97
10. नागार्जुन, बाबा बटेसरनाथ, पृ. 90

bjscs11@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 41-46
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नई कहानी में दलित नारी की दयनीय स्थिति

-निर्मल कुमार रांकावत
शोधार्थी पीएच.डी., हिंदी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ (राजस्थान)

शोध सारांश :–

वर्तमान में दलित वर्ग मैला ढोने का कार्य नहीं करना चाहता। वह अपनी इस पुश्तैनी कार्य से निजात पाना चाहता है। एस.आर हरनोत की कहानी एम. डॉट.कॉम में गांव में रहने वाली महिला पात्र की भैंस मर जाती है। तब उसके घर में कोई नहीं होता है। वह अपने पड़ोस के दलित जाति के 'परसा' नामक व्यक्ति के घर जाती है और उसे अपने घर मरी हुई भैंस उठाने के लिए कहती है। मैला ढोने और मृत पशुओं को उठाने का काम सदियों से निम्न जाति के लोग ही करते आए हैं। परंतु 'परसा' भैंस उठाने से मना कर देता और कहता है "माफ करियो भाभी, तू तो म्हारी आपणी घर की है। कोई बामण–कनैत आया होता तो आंगण में खड़े बी नी होणे देता। अब म्हारे घर में न कोई बूट–जोड़ा गांठता है, न पशु फेंकता है। बच्चे नी मानते। बड़ा तो शिमला में अफसर बण गया है। छोटा बस टेशन पर दूकान करता है। तेरे को कैसे नी पता भाभी। मैं तो अब कहीं न आता न जाता।"

बीज शब्दः मैला ढोने, मृत पशुओं को उठाने, पंडित और ठाकुर, सशक्तिकरण, जिज्ञासा

'परसा' मैला ढोने के कार्य को लेकर सशक्त हुआ कि वह भविष्य में यह कार्य नहीं करेगा और ना ही अपने बच्चों को यह कार्य करने देगा। वह महिला सुनकर आश्चर्यचकित हो जाती है। 'परसा' आगे कहता है

"वो देख उधर, मेरा ठीया होता था। लड़कों का बथेरा समझाया कि मुए इसको तो रैहणे दो। पर कहां माने। अपणे काम से इतणी नफरत, जैसे ये बामण म्हारे से करते है। तोड़ दिया उसको। सारा समान बी पता नहीं कहां फेंक दिया। वहां अब लैटरींग बणा दी।"

'परसा' के घर से लौट रही महिला को 'बुधराम नाई' देख लेता है। महिला सारी बात 'बुधराम नाई' को बता देती है। 'बुधराम' उसे 'परसा' के लड़के 'महेंद्र' की दुकान पर ले जाता है। 'महेंद्र' महिला को समझाते हुए कहता है

''देख उधर, गांव के जितने भी आदमी है, उनके नाम पशुओं के साथ लिखे हैं। वो देख मेरा बी नाम है उंगली से बताने लगा। जब कोई पशु मरता है या पैदा होता है, इसमें दर्ज हो जाता है। फीस लगती है उसकी। अगर तेरा नाम होता, मिनट में ई–मेल करके महेन्द्र शहर से दो–चार आदमियों को बुला देता है और शाम तक तेरी भैंस ओबरे से बाहर।"

'महेंद्र' बताते हुए कहता है कि, माता जी आपका नाम हमारे पास नहीं है ना ही पशुओं की लिस्ट में।

पंडित और ठाकुरों ने तो अपना रजिस्ट्रेशन पहले ही करवा लिया है। आप भी करवा लो। महिला हैरान व परेशान होती हुई 'बुधराम' से पूछती है "माता जी। आपका नाम हमारे पास नहीं है। न ही पशुओं की लिस्ट। पंडतो–ठाकुरों ने तो पहले ही अपना रजिस्टेंशन करवा दिया है। आप भी करवा लो।" महिला 'बुधराम' को चिन्ता जताते हुए हैरान व परेशान होकर पूछती है–"पर बुधराम, वो भैंस को कैसे फैंकगे?" 'बुधराम' कहता है–"ताई। वो लोग शहर से अपनी गाड़ी में आएंगे। तेरी भैंस को ओबरे से बाहर निकालेंगे। ले जाएंगे। उसे काटेंगे, पर फेकेंगे नहीं। जैसा म्हारे चमार करते थे। मांस, हड्डियां, खाल सब अपने साथ लेते जाएंगे। न खेतों में गंदगी रही, न गिद्दों और कुतों का हुड़दंग।"

दलित समाज अपने आप को सक्षम बनाकर मेला ढौने के कार्य से मुक्त हो रहा है। शिक्षा के माध्यम से वह न्याय प्राप्त करने में सक्षम है। सूरजपाल चौहान की कहानी 'बहुरूपिया' में 'विशाल' दलितों को 'डॉ0 अंबेडकर' के विचारों में विश्वास रखने में प्रेरित करता है और कहता है कि शिक्षा के माध्यम से ही समाज में बदलाव लाया जा सकता है "दलित समाज के लोग बाबा साहेब डॉ॰ अम्बेडकर की शिक्षाओं को अपनाकर और पढ़–लिखकर आज कहां से कहां पहुंच रहे हैं–आप लोग भी उनके बताये मार्ग पर चलना शुरू कर दो, अपने बच्चों के हाथों से झाडू छीनकर दूर फेंक दो और कलम थमा दो, देवी–देवताओं की पूजा–अर्चना व पाखण्ड आदि से दूर रहो।"

'सुशीला टाकभौरे' की कहानी 'सिलिया' में भी 'सीलिया' शिक्षा के माध्यम से आत्मनिर्भर होती हुई विचार करती है "झाडू नहीं कलम। हां, कलम ही उसके समाज का भाग्य बदलेगी। वह खूब पढ़ेगी। सम्मान के उच्च शिखर पर पहुंचेगी। वह एक चिन्गारी है जो मशाल बनकर अपने समाज की प्रगति के मार्ग को प्रकाशित करेगी।" 'सिलिया' अपने मन में दृढ़ संकल्प लेती हुई शिक्षा के माध्यम से सदियों पुरानी प्रथाओं का अंत करने हेतु कहती है "मैं बहुत आगे तक पढूंगी, पढ़ती रहूंगी। उन सभी परम्पराओं के मूल कारणों का पता लगाऊंगी, जिन्होंने हमें समाज में अछूत बना दिया है। मैं विद्या, बुद्धि और विवेक से अपने आपको ऊंचा साबित करके रहूंगी। किसी के सामने झुकूंगी नहीं। न ही कभी अपना अपमान सहन करूंगी।"

'सुशीला टाकभौरे' की कहानी 'बदला' में 'कल्लू' को स्कूल में स्वर्ण जाति के सहपाठी तंग करते हैं। उसे मारते पीटते हैं, उसे गालियां देते हैं। 'कल्लू' सवर्ण जाति के प्रति विद्रोह का निर्णय लेते हुए कहता है
"वे लोग मेरे साथ स्कूल में खेलते है तब भी चिढ़ाते है। हमेशा जात–पात निकालते है। मेरा मजाक उड़ाते है, मुझे मारते हैं। इसलिए मैंने भी सोच लिया था एक दिन उनका खूब जमकर मजा चखाऊंगा, उनसे बदला लूंगा. ...।"

'ब्रह्मानंद' की कहानी 'संकल्प' में 'मोहन' द्वारा शिक्षा के माध्यम से दलित समाज को जागरुक किया जाता है। गांव में जातिगत भेदभाव कारण 'हीरा, डोम, मोहन' से अपने प्रति हुए भेदभाव को प्रकट करते हुए कहता है।

"भईया हम अछूत क्यों हैं? हमें मंदिर में पंडित क्यों नहीं जाने देता है। स्कूल का मास्टर साहब हमें सबसे पीछे क्यों बिठाता है?" 'मोहन' 'हीरा' की बातों में सशक्तिकरण व जिज्ञासा प्रवृति को देखकर जवाब देता है–"तुम इसलिए अछूत तो क्योंकि तुम्हारे अन्दर एक आग है। ऐसी आग जिसे ठाकुर छू ले तो जल कर भस्म हो जाएगा। तुम्हारे बाबा मेहनती थे, स्कूल के मास्टर को डर है कि यदि तुम पढ़ाई में उतनी ही मेहनत कर लो तो उससे

ज्यादा बुद्धिमान बन जाओगे। इसलिए स्कूल का मास्टर तुम्हें सबसे पीछे बैठाता है और रहा सवाल मंदिर का, तो बामनों को मंदिर में जाकर क्या मिलता है? कुछ नहीं। इसलिए तुम पढ़ाई करो और उस मास्टर से ज्यादा बुद्धिमान बनो। समझे।"

मोहन जब शिक्षा ग्रहण करने के लिए शहर जाने को तैयार होता है तो गांव की 'कंतों काकी' का बेटा 'शिवा' को भी साथ ले जाने को कहती है। मोहन उसे भी अपने साथ ले जाता है और शिक्षा पूरी होते ही वह मोहन भैया को कहता है– "भईया मैं प्रण लेता हूँ कि मैं अपने समाज एक व्यक्ति को जरूर शिक्षित करूंगा, दलित समाज पर अन्याय होता देख कभी भी समझौतावादी दृष्टि नहीं अपनाउंगा।"

'रत्न कुमार सांभरिया' की कहानी 'बात' में भी 'सुरती' का पति अपने बेटे 'राधू' की शिक्षा के प्रति अपना कर्तव्य समझते हुए कहता है– "गरीब के लिए पढ़ाई ही उसकी पूंजी होती है। अपना बेटा पढ़ाई में अव्वल है। अफसर बनेगा। कितने किसट उठा लेना। राधू के हाथ में किताब रखना।"

डॉ भीमराव अंबेडकर ने दलितों को एक नारा दिया था 'शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो' डॉक्टर भीमराव अंबेडकर के नारे से प्रेरित होकर दलित समाज सदैव उन्नति की ओर अग्रसर रहा है। सुरेश मारुतिराव की कहानी 'कहां गया तुम्हारा स्वाभिमान' में शिक्षा द्वारा जागरूकता, अन्याय का विरोध दिखाया गया है। कहानी में गांव के माध्यमिक स्कूल में मारुति पताके गुरुजी की नियुक्ति हुई। कहानी में राजाराम सुलोचना पर बुरी नजर रखता है और उसे अपने झांसे में ले लेता है। जब गुरु जी को इस बात का पता चलता है तो वह सुलोचना के घर जाकर उसके भाई बलबीर को शिक्षा के द्वारा प्रेरित करते हुए कहते हैं कि–''

"बाबा के स्वाभिमानी विचारों को अपनाकर समाज में सम्मान से जीना चाहिए। बलवीर तुम तो बी॰ए॰ तक पढ़े हो, घर में अम्बेडकरी विचारों को अपनाने की सीख देनी चाहिए और जो कोई हम पर अत्याचार करता है। उसका विरोध करने की शक्ति और ज्ञान को दलितों में जगाना चाहिए। कब तक ऐसा ही हमारे मां–बहनों की इज्जत लुटते रहे और हम आंख मूंदे बैठे रहे। कब तक हमारा समाज गुलामी के जंजीरों में कड़े रहे। क्यों आप युवा पीढ़ी संघटित होकर ऐसे कुकर्त्यों का विरोध नहीं करते? शिक्षित अशिक्षितों का मार्गदर्शक बने, उन्हें कानून और जीवन के महत्त्व का परिचय करायें, उनके मन में अपनों के प्रति स्वाभिमान जगाए।"

दलित समाज हमेशा से ही अशिक्षा से जूझता रहा है। आज के समाज में दलित शिक्षा को बहुत महत्व दिया गया है, क्योंकि केवल शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा सदियों पुरानी कुप्रथाओं और छोटी सोच से छुटकारा पाया जा सकता है। शिक्षा द्वारा ही अपने अधिकारों को प्राप्त किया जा सकता है। राजेंद्र बड़गुजर की कहानी 'हमारी जमीन हम बोएंगे' में लेखक 'राजकमल' द्वारा शिक्षा के माध्यम से दलित समाज को जागरूक करते हुए कहता है कि। "हमारे समाज को अगर किसी चीज की जरूरत है तो वह है शिक्षा, शिक्षा और केवल शिक्षा। शिक्षा के बिना ऐसे कोई भी साधन नहीं है, जिसकी मार्फत हमारा विकास हो सकता हो।"

सुशीला टाकभौरे की कहानी 'नई राह की खोज में लालचन्द' शिक्षा के माध्यम से दलित समाज में चेतना जगाते हुए वह कहता है कि साक्षरता का प्रचार प्रसार बहुत जरूरी है। शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए वह कहता है :– "भैया, सबसे पहले अपने बच्चों को पढ़ाओ। बिना पढ़ाई के कुछ नहीं हो सकता। पढ़ाई के लिए भी सिर्फ बच्चों पर भरोसा न करो, बल्कि मां–बाप खुद भी अपनी जिम्मेदारी को समझो। बच्चों की पढ़ाई का खर्च, उनकी जरूरतें, पढ़ाई के लिये समय और सुविधा सबका इन्तजाम किया जाये। तभी हमारे बच्चे पढ़

सकेंगे। मेहमाननवाजी में खर्च, मटन, मछली, तेल, मसालों का खर्च, शराब पीने–पिलाने का खर्च हमें नहीं करना चाहिए, तभी बचत करके हम बच्चों की पढ़ाई में कुछ कर पायेंगे। यह जो हमारा बारहों महिना, सालों साल, जिन्दगी भर कर्जा लेना और ब्याज भरते रहना चाहता है, इसमें हमारी पसीने की कमाई का कितना रुपया जाता है। हम हिसाब नहीं लगा पाते हैं। इसलिये हमें बात–बात में दौड़ कर कर्ज लेने की आदत को बदलना होगा।" लालचन्द बताता है कि केवल शिक्षा के द्वारा ही जीवन को सुधारा जा सकता है। वह अपनी बात जारी रखते हुए कहता है कि–'' "अगर अचानक मेहमान आ जाये तो हम कर्ज जरूर ले लेते है और अगर बच्चों की कॉपी–किताब खरीदना हो या उनकी फीस भरना हो तब कर्ज नहीं लेते है। तब यह सोच लेते है कि हम तो गरीब हैं, लाचार हैं बच्चों की पढ़ाई का खर्च नहीं उठा सकते हैं–ऐसा करना और सोचना नासमझी है। बच्चे ही हमारा भविष्य है, हमारी अगली पीढ़ी है। उनका जीवन सुधारना हमारा कर्त्तव्य है। बंगाली कहावत है–'रोटी कम खाओ मगर अपने बच्चों को पढ़ाओ' यह बात हमारे पूरे समाज ने सीखना चाहिए।"

दयानन्द बटोही की कहानी 'सुरंग' में दलित छात्र शिक्षा के द्वारा ही अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाते हैं। कहानी में डॉ विष्णु दलित छात्रों से भेदभाव करता है और उन्हें रिसर्च नहीं करने देता। लेकिन दलित छात्र अपने साथ हुए अन्याय का विरोध करते हुए कहते हैं।

"डॉ॰ साहब आप भूल जाएँ कि मैं हरिजन हूँ, गुलाम हूँ। पराधीनता की जंजीर टूटनी है। आज तक आप जैसे तानाशाह ने अंधेरे में हम लोगों को रखा है। अब मैं पूछता हूँ–आप क्यों रिसर्च नहीं करने देंगे?" वह आगे कहता है–"डॉ॰ साहब आप भूल जाएं कि आप लोग अंधेरे के बीच कुतर–कुतर कर हम दलितों को खाते डकारते रहे हैं, अब पचेगा ही नहीं आपको।''

डॉ विष्णु दलित छात्रों को एम.ए सेकंड क्लास होने के कारण उन्हें रिसर्च नहीं करने देते और उन्हें वाइस चांसलर के पास जाने की बात कहते हैं। लेकिन दलित छात्र क्रोधित होते हुए कहता है–'' "क्यों जाऊँ?"

"क्योंकि आप सेकेंड क्लास एम॰ ए॰ हैं। मार्क्स कम है रिसर्च नहीं कर सकते।''केवल मैं या और कोई। सभी डिपार्टमेंट में थर्ड क्लास रिसर्च कर रहे हैं मेरा तो सेकेंड क्लास है, केमिस्टी, फिजिक्स, हिस्टी इकानामिक्स में। अब अन्याय के खिलाफ विरोध करता हुआ करता है–"डॉ॰ साहब यह भूल जाइये कि आपसे दया की भीख मांग रहा हूँ। मैं पूछता हूँ आप लोग हरिजन कल्याण का ढिंढोरा क्यों पीटते हैं, आरक्षण कहां दे रहे हैं। जब लोग अच्छा कर रहे हैं तो आप कल्याण क्या करेंगे? चौदह प्रतिशत सुरक्षित का फतवा क्यों देते है? सरकार को तथा मानवता की आंख में धूल झोंक रहे हैं। मुझे आप रिसर्च नहीं करने दे कोई बात नहीं। लेकिन कोटा आपको पूरा करना है।"

कुछ छात्र मिलकर वाइस चांसलर के पास जाते हैं और उनसे पूछते हैः–''

"बात है हम लोग जानने आए हैं हरिजनों को सुविधा सिर्फ कागज पर है या व्यवहार में।

"सर ये गरीब हरिजन जाति के हैं हिंदी में सेकेंड क्लास एम॰ ए॰ पास हैं, विभागाध्यक्ष रिसर्च करने नहीं दे रहे जबकि अन्य लोग हरिजन छोड़कर हिंदी अलावा विज्ञान में जो थर्ड क्लास हैं रिसर्च कर रहे हैं।'

वाइस चांसलर 'मिश्रा' ने कहा–'क्या इसमें भी थर्ड क्लास रिसर्च कर रहे हैं। "जी हाँ लीना, नरोत्तम सिंह थर्ड क्लास है रिसर्च कर रहे हैं? सेकेंड क्लास तो कई हैं इनसे कम अंक वाले।"

वाइस चांसलर 'मिश्रा' ने न चाहते हुए भी लिखा–"हेड प्लीज कंसीडर द केस"

छात्र काफी समय के संघर्ष के बाद वाइस चांसलर को कहते हैं– "आप भी भानू जैसा कान में शीशा उड़ेलना चाहते हैं, द्रोणाचार्य जैसा अंगूठा का दान चाहते हैं। मगर याद रखिये। अंधेरे का सैलाब फाड़कर अपना हक लेंगे। आप जैसे कुटिल लोगों ने ही तो हरिजन–दुर्जन का भेद बनाने में सहयोग दिया है। आपका हम घेराव करेंगे।"

विश्वविद्यालय में छात्रों की भीड़ लगते हुए देखकर, विष्णु माफी मांगते हुए कहते हैं। आप इनका साथ क्यों दे रहे हैं?" डॉ॰ विष्णु अपनी जातिगत संकीर्ण मानसिकता में रह की ही यह सब बातें कहता है। सभी छात्र जाति को लेकर शिक्षा में हुए अन्याय का विरोध करता है। एक छात्र ने गरजते हुए कहा–"आप अपने विभाग में थर्ड क्लास रिसर्च करा रहे हैं, हरिजन सेकेंड क्लास भी रास न आया। रामनगीना की पत्नी सुरेश की बहन कौन क्लास एम॰ ए॰ में लायी है।" चारों तरफ शोर गुंजने लगता है–"मुर्दाबाद ! मानवता जिन्दाबाद। हम सब एक है।" एक छात्र 'रघुनाथ सिंह' डॉ॰ विष्णु द्वारा किए गए अभिनय को देखकर विद्रोह करते हुए कहता है– "बस–बस रहने दीजिए अपना फिलासफी, अनुमति देते हैं या आऊं।" 'डॉ॰ विष्णु' द्वारा किए गए अन्याय का विरोध कर दलित छात्र न्याय को प्राप्त कर लेता है–'डॉ॰ विष्णु' धीरे से कहता है–"ठीक है इन्हें रिसर्च करने की अनुमति देता हूँ लाइये एपलीकेशन और कुछ ही क्षणों में भीड़ इधर से उधर होने लगी।"

निष्कर्ष :–

'शंकरलाल मीणा' का मानना है कि शिक्षित एवं आत्मनिर्भर बनकर ही समाज को उन्नति की ओर अग्रसर किया जा सकता है। दलित समाज के साथ हुए अत्याचारों का विरोध करते हुए वह कहते हैं "भीतरी अन्याय और बाहरी गुलामी से मुक्ति के साधन अलग नहीं है या यूं कहा जा सकता है कि भीतरी अन्याय जो ऐतिहासिक और दूसरे कारणों से दलित पिछड़े आदिवासी समाज के साथ होता रहा है, उसका प्रतिशोध शिक्षित होकर, तार्किक व वैज्ञानिक सोच अपनाकर संगठित रहते हुए साहस के साथ किया जा सकता है।'' श्योराज सिंह बेचौन की कहानी 'शोध प्रबंध' में प्रोफेसर प्रताप सिंह अपनी कक्षा की छात्रा रीना का शोषण करता है और किसी से कुछ ना कहने की धमकी भी देता है। परन्तु रीना अपने साथ हुए शोषण को लेकर प्रो0 प्रताप सिंह के घर पर जाती है। जब प्रोसेसर प्रताप सिंह रीना को उसके घर आने का कारण पूछता है तो रीना क्रोधित होकर कहती है:–''"कुछ भी तो ठीक नहीं है, और उसकी वजह आप हैं। आप दो–दो चेहरे रखते हैं। सच कहूँ तो गिरगिट की तरह रंग बदल रहे हैं आप।"

संदर्भ :–

एस॰ आर॰ हरनोट, जीनकाठी तथा अन्य कहानियाँ, पृ॰ 46

एस॰ आर॰ हरनोट, जीनकाठी तथा अन्य कहानियाँ, पृ॰ 46

एस॰ आर॰ हरनोट, जीनकाठी तथा अन्य कहानियाँ, पृ॰ 46

एस॰ आर॰ हरनोट, जीनकाठी तथा अन्य कहानियाँ, पृ॰ 48

सूरजपाल चौहान, नया ब्राह्मण, पृ॰ 24

सुशीला टाकभौरे, संघर्ष, पृ॰ 49

सुशीला टाकभौरे, संघर्ष, पृ॰ 48

सुशीला टाकभौरे, संघर्ष, पृ॰ 60

ब्रह्मानंद, संकल्प, पृ॰ 24, बयान पत्रिका, फरवरी 2010
ब्रह्मानंद, संकल्प, पृ॰ 24, बयान पत्रिका, फरवरी 2010 पृ॰ 25
रत्न कुमार सांभरिया, काल तथा अन्य कहानियाँ, पृ॰ 15
सुरेश मारुतिराव मुले, कहाँ गया तुम्हारा स्वाभिमान, पृ॰ 41, बयान पत्रिका, सितम्बर 2009
राजेन्द्र बड़गूजर, हमारी जमीन हम बोएंगे, पृ॰ 13
सुशीला टाकभौरे, संघर्ष, पृ॰ 83
सुशीला टाकभौरे, संघर्ष, पृ॰ 83
दयानंद बटोही, सुरंग, पृ॰ 17
दयानंद बटोही, सुरंग, पृ॰ 17
दयानंद बटोही, सुरंग, पृ॰ 19
दयानंद बटोही, सुरंग, पृ॰ 20
दयानंद बटोही, सुरंग, पृ॰ 21
रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय, सामाजिक न्याय की अवधारणा, पृ॰ 38
श्योराज सिंह बेचैन, भरोसे की बहन, पृ॰ 96

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 47-50
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी उपन्यासों में कृषकों का आर्थिक शोषण

–मंजु रानी
पीएच.डी शोधार्थी, हिंदी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ (राजस्थान)

शोध सार

सेठ–साहूकारा किसान के ऋण पर मनचाही ब्याज दर लगाते हैं। साहूकारों के इस चंगुल से किसान बच नहीं सकता। फसल की अच्छी उपज हो जाए तो किसान ऋण के बोझ से राहत की साँस ले लेता है, लेकिन यदि फसल की उपज कम हो जाए तो किसान ऋण का मूल तो दूर ब्याज तक चुकाने में भी असमर्थ हो जाता है–''बदामा बाड़े में सन्तु, रामदिया और भुल्ला के साथ हुक्का पी रहा था। बदामे इस साल ठण्ड बहुत पड़ रही है। फसल भी ठण्ड के मारे दब–सी गयी है। बची खुची कसर जंगली जानवर कर रहे हैं। इस साल फसल कम होने के आसार हैं। सेठ लच्छमन तो मुँह की ओर देख रहा है। कैसे काम चलेगा? इस साल तो ब्याज भी नहीं पटे, मूल की तो बात ही छोड़ दो। किसान के सारे ही बैरी हो गए। बदामा बड़े विश्वास और श्रद्धा के साथ कहता है चिन्ता क्यों करते हो? रामजी सब ठीक करेंगे। वह सबका दाता है और बड़ा मेहरबान है।''

बीज शब्दः कृषक,आर्थिक शोषण, आत्महत्या, संसदीय कार्यप्रणाली, पार्लियामेंट

लड़की की शादी में दहेज देने की प्रथा वर्तमान समय में भी किसानों को मौत के मुँह में धकेल रही है। समाज में अपनी मर्यादा बनाये रखने के लिए किसान कर्ज की परवाह न करते हुए धूमधाम से शादी करता है। शिबू को अपनी बेटियों की शादी करनी थी और वह कोई सुयोग्य वर ढूँढ रहा था। लड़के का पिता अपनी तो कोई डिमाण्ड नहीं कहकर यह बात भी कह देता है कि आपका फर्ज बनता है कि आपकी बेटी सुखी रहे। ''रेट तो सबको पता ही है– एक हीरो हाण्डा, एक लाख नगद।'' अन्ततः शिबू भी कुएँ में कूदकर आत्महत्या कर लेता है।

उपन्यास के उत्तरार्द्ध में संजीव ने विजेन्द्र के माध्यम से गाँव में सभा का आयोजन करने, आत्महत्या के लिए किसानों का सरकार से अनुमति लेना, संसदीय कार्यप्रणाली पर सवाल खड़े करना इत्यादि प्रश्न उठाए हैं। युवा पत्रकार पराग देशपाण्डे अपनी कविता पढ़ते हैं– ''मैं उस सुइसाइडल बेल्ट का किसान हूँ/जो नहीं सिद्ध कर पाये अपने आत्महत्या करने के प्रमाण।'' देशपाण्डे ने मुआवजा देने के नाम पर किसानों के साथ किये जाने वाला अपमान भी दर्शाया है। भण्डारा जिले के किसान सरकार से फसल खराब होने पर आत्महत्या करने की अनुमति लेने गए थे। सरकार ने हवाई जहाज से मुआयना करा दिया कि किस खेत में कितना पानी है और ''300 रुपये शेतकरी को पूरे मकान के लिए 300!
चूहे की बिल भी ना बने! वाह रे तुम्हारा शेतकरी प्रेम! कितनी मेहरबान है

सरकार! भर दिया दामन वादों से! वादे! वादे! वादे!

कुछ किसान आपस में बात करते हुए संसदीय कार्यप्रणाली पर भी सवाल खड़े करते हैं– ''वह जो दिल्ली में पिलर–पिलर सजाकर मुकुट बनकर बैठी है खपडोई (खोपड़ी) पर, जिसे पार्लियामेंट कहते हैं, वहीं राजा रहते हैं, रानी रहती है, वह फैसला करते हैं कि यह बीज बोओगे कि वह बीज, हत्या है कि आत्महत्या, पात्र है कि अपात्र।'' संजीव ने इस उपन्यास में किसान की आय के बारे में भी वर्णन किया है। ''1970 में मजदूरी भी 2 रुपये पुरुष, 1 रुपये स्त्री और आज मर्द को 200 से 250, वहीं औरत को भी.....तब स्कूल टीचर को मिलते थे 150 रुपये प्रति माह और आज मिलते हैं 16 हजार रुपये से तीस–चालीस हजार, पेंशन अलग से।'' किसान से मजदूर, चरवाहे सभी अच्छे हैं कम से कम मजदूरी तो मिलती है किसान को तो अपनी मेहनत का फल भी नहीं मिलता।

उपन्यास में आकड़ें देकर स्पष्ट कर दिया गया है कि हर 8 मिनट में एक किसान की आत्महत्या हो रही है। किसान लोन पर ट्रैक्टर खरीद लेता है, लेकिन जब समय पर किश्त जमा नहीं होती तो ट्रैक्टर को बैंक वाले ले जाते हैं– ''अरे वो वसीम था न! ट्रैक्टर के लिए लोन लिया था। किश्त अदा न कर सकता, अभी–अभी उसका ट्रैक्टर खींचकर ले गये बैंक वाले।'' 1995 से 2010 तक पंजाब, गुजरात, कर्नाटक, तमिलनाडू, मध्यप्रदेश, बुन्देलखण्ड, छत्तीसगढ़ और महाराष्ट्र में कुल 2 लाख, 56 हजार 913, सर्वाधिक महाराष्ट्र 50 हजार, 481, तीन साल और जोड़े तो यह संख्या तीन लाख को पार कर जाती है। महत्वाकांक्षी और मजबूरी के लोन, ट्रैक्टर हो या मुलगा–मुलगी या घर की मरम्मत! लोन लेना और अदा न कर पाना।'' एक तरफ तो किसान को प्राकृतिक प्रकोप खत्म कर रहे हैं तो दूसरी तरफ बड़े–बड़े बिल्डर्स, करपोरेट वाले और दूसरे पैसे वाले सेठ देश की सारी लाभ देने वाली जमीन खरीद ही चुके हैं। आने वाले दिनों में खेती भी कारपोरेट घराने वाले करेंगे, किसान का नाम ही मिट जायेगा। ओले शायद हमें बख्श दें, टिड्डियाँ हमें बख्श दें, मगर ये टिड्डियों से भी खतरनाक है। ये लोग कुछ भी नहीं छोड़ते।''

कालीचाट उपन्यास मालवा के सिन्द्रानी गाँव की कथा पर आधारित है। इसमें भीमा महाजन द्वारा किए जाने वाले शोषण को दर्शाया गया है। किसान महाजन से कर्ज ले लेते हैं तथा यही कर्ज उनकी मृत्यु का कारण बन जाता है। वर्तमान समय में किस प्रकार से किसान अपनी जमीन से बेदखल हो रहा है। बैंक, बिचौलिये और नेता किस प्रकार भोले–भाले किसानों को अपने चंगुल में फंसा लेते हैं, कॉरपोरेट और फंडिंग ऐजेन्सियों के एनजीओ द्वारा लाभ का लालच देकर, किसान को खेत छोड़ने पर मजबूर करना इत्यादि सभी समस्याओं को सुनील चतुर्वेदी ने इस उपन्यास में दर्शाया है।

साहिबु एक छोटा सा किसान है उसकी दाहिनी टाँग बैलगाड़ी के नीचे आ गई थी जिस कारण डॉक्टर उस टाँग में अन्दर ही अन्दर सड़ाव होने कारण काटने के लिए कहते हैं। थोड़े दिनों में घाव भरने के बाद साहिबु भीमा बा के यहां हाली हो गया था। इलाज के लिए पैसे भीमा बा ने दिये थे इसीलिए उसने बदले में जमीन गिरवी रख ली थी। साहिबु अपनी पत्नी रेशमी के समक्ष जमीन छुड़ाने की चिंता करते हुए बातें करता है तो रेशमी कहती है कि मैं मेहनत मजदूरी करके सारे पैसे चुकाकर जमीन छुड़ा लूँगी। रेशमी का जवाब देते हुए साहिबु कहता है– ''रेशमी शेर का मुंडा से निवालो छुड़ाना सहज है पर भीमा बा से जमीन छुड़ानी आसान नी है।'' अकाल में उत्सव

यह उपन्यास 'सूखा पानी' एक छोटे से गाँव को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। इस उपन्यास में दो कथाएँ परस्पर साथ–साथ चलती हैं तथा दोनों ही एक दूसरे से जुड़ी हुई भी हैं। एक तरफ किसान की कथा तथा दूसरी तरफ प्रशासनिक अधिकारियों और कलेक्टर, तहसीलदार, पटवारी की कथा। 'सूखा पानी' गाँव में एक छोटा–सा किसान रामप्रसाद है जिसके पास दो एकड़ तीन डेसीमल जमीन है। दो भाइयों रामप्रसाद, भागीरथ और तीन बहनों में सबसे बड़ा था, रामप्रसाद और सबसे छोटा था भागीरथ। पिता के पास उस समय ओर भी जमीन हुआ करती थी, लेकिन बेटों–बेटियों की शादियाँ, घर परिवार के दूसरे खर्चों के चलते धीरे–धीरे जमीन सिमटती गई। रकबा छटता गया। पहले ऋण पुस्तिका में कई–कई खसरे डले थे। खतौनी में कई–कई स्थानों की जमीनों के खसरे रामप्रसाद के पिता के नाम पर दर्ज थे। एक शादी हुई और एक खसरा गया। कुछ जमीनें बेची गई तो कुछ जमीनें कर्ज न चुका पाने के चक्कर में हाथ से चली गई। गाँव में न केवल शादी बल्कि नुकता (मृत्युभोज) भी बड़े स्तर पर दिए जाने की परम्परा थी। बल्कि यह भी कहा जाता था कि भले ही शादी में कम खर्च हो जाए, लेकिन नुकता तो जोरदार होना चाहिए।

रामप्रसाद के पिता भी शादियाँ, नुकते, बीमारियों का इलाज इत्यादि करवाते–करवाते एक दिन खुद का नुकता करवाने के लिए रामप्रसाद और भागीरथ को छोड़कर चल बसे। रामप्रसाद बड़ा था एकाध साल स्कूल जाने का शौक पूरा करने के बाद उसे विद्यार्थी से किसान हो जाना पड़ा। भागीरथ छोटा था तो उसकी पढ़ाई ठीक से हो गई। पिता के मर जाने के बाद वह सारा बोझ जो उसके पिता के सिर पर था अब उसके सिर पर आ गया। एक बहन की शादी बाद में हुई। भागीरथ की पढ़ाई और उसका गोना पिता के बाद हुआ और इन सब में पिता ने जो पाँच एकड़ जमीन छोड़ी थी। वह ओर घटकर केवल दो एकड़ रह गई। भागीरथ ने भी पढ़ाई के दौरान ही शहर में स्थायी हो जाने की व्यवस्था कर ली थी। पिता ने जो कच्चा पक्का मकान बनवाया था उसे भी समय ने कोंच–कोंच कर खण्डहर सा कर दिया था। उसी खण्डहर में रामप्रसाद उसकी पत्नी कमला और उसके तीन बच्चे रहते थे। दो एकड़ जमीन में रामप्रसाद बहुत मुश्किल से घर का गुजारा चला रहा था। रामप्रसाद बुरी तरह से पारिवारिक उलझनों में उलझा हुआ था। फसल पककर तैयार हो जाती थी तो साहूकारों की लेने के लिए होड़ मच जाती थी। रामप्रसाद बटाई पर दूसरों के खेत लेकर उनमें भी खेती करता था तथा उसकी पत्नी दूसरों के घरों का कूटना–पीसना करने के साथ–साथ फसल कटाई के समय दूसरों के खेतों में दिहाड़ी पर काम कर लेती थी। कहने को किसान, लेकिन काम मजदूरों वाले।

किसान की फसल जब पककर तैयार हो जाती है तो मण्डी में उसके लिए समर्थन मूल्य निर्धारित होता है जबकि उस उपज को जो आगे अलग–अलग प्रोडक्ट्स में डालते हैं, उनके लिए कोई समर्थन मूल्य नहीं है। 1500 रुपये प्रति क्विंटल के समर्थन मूल्य पर बिकने वाली मक्का का मुर्गी छाप कार्न फ्लैक्स 150 रुपये में 500 ग्राम की दर से बिकता है।

मतलब यह है कि 300 रुपये किलो या तीस हजार रुपये क्विंटल की दर से। पन्द्रह सौ और तीस हजार के बीच बीस गुना फर्क है। बीस गुना। क्या यह बीस गुना आज तक किसी वित्तमन्त्री या कृषिमन्त्री को दिखाई नहीं दिया। क्या एक सीधा–सा लॉजिक किसी को नहीं दिखता कि जो किसान धूप, बरसात, ठण्ड में खेतों में अपनी जिन्दगी को झोंकते हुए पाँच महीने में जो फसल पैदा करता है, उसे केवल 1500 रुपये क्विंटल मिल रहा है और जो वातानुकूलित चैम्बर में बैठकर मशीन से उस मक्का को केवल पाँच मिनट में चपटाकर कॉर्न

फ्लैक्स बना रहा है, उसे बीस गुना, तीस हजार रुपये? समर्थन मूल्य तो है, मगर वह किसको समर्थन देने के लिए बनाया गया है, यह बेचारा किसान कहाँ जानता है।

निष्कर्ष : मण्डी में व्यापारी शोषण करते हैं तो गाँव में साहूकार ब्याज पर ब्याज लगाकर किसान को ओर अधिक कर्जदार बना रहे हैं– ''एक साहूकार के बारे में तो प्रसिद्ध था कि उसने अपना ही गणित और पहाड़े बना रखे हैं। किसान जब आता, तो वह अपना जोड़ भाग किसान को बताने लगता, ''देख भाई तीन महीने का हो गया ब्याज, तो ढाई सौ के हिसाब से ढाई सौ तिया पन्द्रह सौ और उसमें जोड़े चार सौ पिछले तो पन्द्रह सौ और चार सौ जुड़कर हो गए छब्बीस सौ। उसमें से तूने बीच में जमा किए तीन सौ, तो तीन सौ छठे छब्बीस सौ में से तो बाकी के बचे अठाइस सौ, ले माँड दे अंगूठा अट्ठाइस सौ पे। समझ में आ गया न हिसाब? कि फिर से समझाऊँ? किसान को फिर से समझने में भी क्या समझ में आना था। वह चुपचाप से अपना अंगूठा लगाकर उठ कर आ जाता था। रकम बढ़ती जाती, ब्याज बढ़ता जाता और जेवर धीरे–धीरे उस ब्याज के दलदल में डूबता जाता, डूबता जाता।''

संदर्भ :–

1. संजीव, फाँस, पृ. 72
2. संजीव, फाँस, पृ. 70
3. संजीव, फाँस, पृ. 72
4. संजीव, फाँस, पृ. 72
5. संजीव, फाँस, पृ. 72
6. संजीव, फाँस, पृ. 255
7. पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, पृ. 10
8. पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, पृ. 80
9. पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, पृ. 24
10. पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, पृ. 33

bjscs11@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 51-54
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी उपन्यासों में जमीदारी प्रथा उन्मूलन और किसान विमर्श

–निर्मला
पीएच.डी.शोधार्थी, हिंदी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ (राजस्थान)

शोध सारांश :–

किसान के जीवन के संत्रास को समझने के लिए आपको पूरी राजस्व प्रणाली को समझना होगा। राजस्व प्रणाली, जो कि किसान राजस्व वसूलने के लिए बनाई गई थी। वह प्रणाली कभी नहीं बदली। राजाओं और महाराजाओं के जमाने में भी वैसी ही थी, उसके बाद अंग्रेज आए तो उन्होंने भी उसे वैसे ही रखा और 15 अगस्त, 1947 के बाद की व्यवस्था वैसी की वैसी ही बनी रही। राजाओं के समय में बारह गाँवों पर एक बाहुबली होता था, जिसे जागीरदार कहते थे। इस जागीरदार का काम था किसानों से वसूली करना। लगान की, जुर्माने की। आजादी के बाद जागीरदार का नाम बदल दिया गया। अब वह जागीरदार से हो गया गिरदावर या अंग्रेजी में उसे एक ओर नाम मिला रेवेन्यू इन्सपेक्टर।

मूल शब्दः राजस्व वसूली, जागीरदार, न्यूनतम मूल्य, अधिकारियों, कर्मचारियों, सांसद

जागीरदारों के समय हर गाँव से वसूली करने के लिए, उस गाँव के सबसे बाहुबली को गाँव का पटेल बना देते थे। पटेल का काम होता था, गाँव के किसानों से डरा धमका कर वसूली करना। आजादी के बाद धीरे–धीरे पटेल भी समाप्त हुए और नये जागीरदार अथवा गिरदावर को अपने नीचे मिले पटवारी। मतलब यह कि जागीरदार के बन गए गिरदावर और पटेल के बन गए पटवारी और राजा? है न अपना कलेक्टर, वह किसी राजा से कम है क्या? नाम बदल गए, लेकिन काम वही का वही रहा। बस अन्तर यह है कि पटेलों को गाँव का पटेल बनाया जाता था और पटवारी हलकों का होता है। एक हलके में एक से अधिक गाँव होते हैं। राजस्व व्यवस्था में सबसे नीचे की कड़ी होता है चौंकीदार?.....चौंकीदार, पटवारी गिरदावर यह तीनों कितने महत्त्वपूर्ण लोग हैं, यह केवल किसान ही बता सकता है।

किसान के जीवन में बढ़ते दुःख उसकी पत्नी के शरीर पर घटते जेवरों से आकलित किए जा सकते हैं। नई बहू जब आती है तो नये घाघरे, लुघड़े, पोलके के साथ तोड़ी, बजट्टी, ठुस्सी, झालर, लच्छे, बैंदा, करधनी में चमकती है। फिर धीरे–धीरे उम्र बढ़ने के साथ खेती किसानी की सुरसा अपना मुँह फाड़ती है और महिलाओं के शरीर से एक–एक जेवर कम होता जाता है। जेवर जो शरीर से उतर कर किसी साहूकार की तिजौरी में गिरवी हो जाते हैं और किसान के घर की चीज एक बार गिरवी रखी जाए तो छूटती कब है? पहले सोने के जेवर जाते हैं, फिर उनके पीछे चाँदी के जेवर। हर जेवर जब गिरवी के लिए जाता है तो इस पक्के मन के साथ जाता है कि दो महीने बाद जब फसल आएगी, तो सबसे पहला काम इस जेवर को छुड़वाना ही है, लेकिन अगर यह पहला काम ही अगर सच में पहला हो जाता, तो इस देश में साहूकारों की तिजौरियाँ और

उनकी तौंदें इतनी कैसे फूल पाती। कई बार तो ऐसा होता है कि बहू के चढ़ावे के जेवर खरीदने का सुनार का कर्जा ही अभी माथे पर चढ़ा होता है और जेवर उसी सुनार के पास गिरवी के लिए पहुँच जाता है। सुनारों को भी पता होता था कि आज नहीं तो कल इस जेवर को हमारे पास ही वापस आना है, पहले गिरवी के रूप में और फिर डूबकर पूरे रूप में। ब्याज, ब्याज पर ब्याज और फिर ब्याज के ब्याज पर भी ब्याज, रकम बढ़ती जाती, उम्मीद डूबती जाती। बिजली का बिल भरने के लिए जब रामप्रसाद के पास पैसे नहीं होते, तो मजबूर होकर कमला रामप्रसाद को कहती है कि ''तोड़ी को रख के पैसा उठा लो सुनार के पास से।

किसान की फसल जब पक जाती है तो किसान को डर लगा रहता है कि कहीं बरसात न आ जाए, जब किसान फसल को खेतों से निकाल लेता है और सुबह–सुबह मण्डी में ले जाता है तो वहाँ व्यापारी फसल में काला दाना, माइश्चर इत्यादि सौ तरह के नुकस निकालकर उस फसल के न्यूनतम मूल्य को ओर भी कम कर किसान से खरीद लेते हैं और उसको अपने गोदामों में जमा कर बाद में महंगे दामों पर बेच देते हैं। हमारे देश में सोने, चाँदी के रेट में वृद्धि हो गई, कर्मचारियों की तनख्वाह में बढ़ोत्तरी हो गई, लेकिन किसान की फसल में केवल नाम मात्र की ही वृद्धि हुई है उदाहरण के लिए ''यदि किसान का समर्थन मूल्य भी पिछले पच्चीस सालों में बढ़े सोने के हिसाब से बढ़ता, तो उसे आज पन्द्रह नहीं साठ हजार मिलते और अगर अधिकारियों, कर्मचारियों, सांसदों, विधायकों के पैशाचिक वेतन आयोगों के हिसाब से सौ गुना बढ़ता, तो उनको आज दस क्विंटल के एक लाख मिलते। मगर नहीं उसे मिलता है केवल वह आठ क्विंटल प्रति एकड़ गेहूँ जो उसका परिवार साल भर खाएगा। उसके पास इतना भी नहीं बचा कि वह साल भर खाने के अलावा कुछ और काम कर सके। ....1975 में एक सरकारी अधिकारी का वेतन 400 रुपये था, वह जाने कितने वेतन आयोगों की अनुशंसाओं के चलते अब लगभग चाली हजार है, सौ गुना की वृद्धि उसमें हो चुकी है और खबर है सातवें वेतन आयोग का भी गठन हो गया है। भारत के एक सांसद को सब मिलाकर लगभग तीन लाख रुपये प्रतिमाह मिलता है, जिसमें सब प्रकार की सुविधाएँ शामिल हैं, लेकिन हम आज तक ऐसी कोई व्यवस्था नहीं बना पाए कि हमारे लिए अन्न उपजाने वाले किसान को तीन हजार रुपये प्रतिमाह उसके परिवार को चलाने का दिया जाता है।'' गाँवों में अक्सर ऐसा देखा जाता है कि यदि किसी सामूहिक कार्य या मंदिर इत्यादि का निर्माण करना है तो किसान को एकड़ के हिसाब से अपनी उपज में से हिस्सा देना होता है।

किसान की सारी उपज तो साहूकारों के पास चली जाती है उसमें से भी मंदिर की अलग निकालनी होती है। परिवार चलाने के लिए सिर्फ मुट्ठी में पसीने की बूंदें, यही है आज के छोटे किसान की वास्तविकता। किसान अनपढ़ होता है बैंक कर्मचारी अपनी मिलीभगत से उस अनपढ़ किसान की फोटो और अँगूठा लगाकर उसके नाम से किसान क्रेडिट कार्ड बनाकर उसमें से पैसे निकाल लेते हैं जबकि उस किसान को इस बारे में खबर भी नहीं है। जब पटवारी घर आर.आर.सी. लेकर आता है और किसान बैंक में जाकर पूछता है तो उसके प्राण निकलने को हो जाते हैं। बेमौसम बरसात और ओले रामप्रसाद की गेहूँ की फसल को तबाह कर देते हैं, गाँव में पटवारी जब नुकसान का ब्यौरा लेने आता है और फसल का नुकसान लिखता है तो उस समय पहले तो रामप्रसाद को यह कहा जाता है कि प्रति एकड़ एक हजार रुपये नुकसान लिखाने के लिए दे दें तो सब कुछ मिल जाएगा। पटवारी रामप्रसाद से दो एकड़ तीन डेसीमल के 2300 रुपये माँगते हैं। बेचारा रामप्रसाद इसी को रटने लग जाता है, क्योंकि उसके पास देने को कुछ नहीं है।

प्रशासनिक अधिकारी कलेक्टर, ए.डी.एम., एस.डी.एम. तथा अन्य अधिकारी उत्सव बना रहे हैं दूसरी तरफ किसान मुआवजे के लिए भटक रहे हैं। रामप्रसाद तंग आकर जब आत्महत्या कर लेता है तो प्रशासन मुख्यमन्त्री का इलाका तथा विपक्ष वालों से बचने के लिए रातों–रात अधिकारियों को रामप्रसाद के घर भेजता है। मामले को बदलने के लिए यह कहा जाता है कि किसान पागल हो गया था इसीलिए इसने आत्महत्या की है। रामप्रसाद के घर वाले प्रशासन की बातों में आकर ऐसा ही ब्यान दे देते हैं। आज हमारे देश में असंख्य ऐसे रामप्रसाद है जो निरंतर आत्महत्या कर रहे हैं। सरकारी अधिकारी उत्सव में लगे हुए हैं और यह उत्सव किसान के दम पर ही हो रहे हैं। अगर देश का किसान अन्न उत्पन्न नहीं करेगा तो कहाँ से होगा उत्सव। अन्नदाता अगर ऐसे ही आत्महत्या करता रहा तो देश एक दिन भूखा मर जाएगा। हिन्दी उपन्यासों में किसान जीवन की विभिन्न समस्याएँ ऋण, ब्याज, महाजनों द्वारा शोषण, अकाल, बाढ़, सूखा आदि चित्रित की गई हैं। स्वतन्त्रता से पूर्व किसान जीवन में जो समस्याएँ दृष्टिगोचर होती हैं उन सबका यथार्थ चित्रण मुंशी प्रेमचन्द जी ने 'गोदान' उपन्यास के माध्यम से किया है। किसान का अंधविश्वासी होना, ब्राह्मणवाद का बोलबाला, साहूकारों के अत्याचार इत्यादि सभी समस्याएँ स्वतन्त्रता से पूर्व उपन्यासों में देखने को मिलती हैं।

उपन्यास 'महा उद्धारक' श्री गुरु जाम्भेश्वर जी महाराज की जीवनी पर आधारित है। महा उद्धारकों की परम्परा युग–युगांतर से प्रचलित रही है। सतयुग में भक्त प्रह्लाद, त्रेता में सत्यवादी हरिश्चन्द्र, द्वापर में धर्मराज युधिष्ठिर और कलियुग में इसी परम्परा में गुरु जाम्भोजी का अवतार हुआ। इसीलिए बिश्नोई पंथ को प्रह्लाद पंथ भी कहा जाता है। गुरु जाम्भोजी का जीवन अनेक विचित्र घटनाओं और चमत्कारों से ओतप्रोत रहा है।

इस उपन्यास में लेखकद्वय ने गुरु जाम्भेश्वर जी महाराज के समाज उद्धारक दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए तत्कालीन समय में किसान दशा का भी यथार्थ चित्रण किया है। इस उपन्यास में ओलों की मार, अकाल की भयावह स्थिति, किसान जीवन की समस्याएँ तथा किसान का प्रकृति के लगाव इत्यादि प्रसंगों का रोचक चित्रण देखा जा सकता है। भयंकर गर्मी का चित्रण करते हुए इस उपन्यास में कहा गया है कि ''जेठ की दोपहरी है। सूरज तप रहा है। धरती मानो आग बरसा रही हो। पशु–पक्षी भीषण गर्मी के मारे तड़प रहे हैं। किसान अपने ऊँटों और बैलों के लिए वृक्षों की छाया ढूँढ रहे हैं। पक्षी प्यास से व्याकुल हैं। भयंकर लूओं से बचने के लिए लोग घरों में दुबके हुए हैं। गायें खेजड़ियों की छाया में बैठकर जुगाली कर रही हैं। कई वर्षों से लगातार वर्षा के दर्शन नहीं हुए हैं। इस मरुभूमि में जल का अभाव होना, गर्मियों में स्वाभाविक है। सभी जोहड़, पोखर और तालाब सूखे पड़े हैं।'' गोविन्द जी के प्रसंग में भी इस भीषण अकाल को देखा जा सकता है– ''गऊ माता भूख–प्यास से तड़प रही थी। पंछी भी प्यास के मारे रात–दिन चीं–चीं करते रहे। इस बार आषाढ़ सूखा चला गया और आसमान से एक बूँद भी पानी की नहीं गिरी। किसान जुते हुए खेतों में बीज का एक दाना भी नहीं बीज सके। दो वर्ष पहले अच्छा जमाना था। घास–फूस, बाजरे और ज्वार की कड़बी थी, उससे गुजारा हो गया। हॉय राम क्या करें, कहाँ जायें?''2 अकाल से मानव जीवन ही नहीं पशु–पक्षी तथा जानवर सभी दुःखी थे। कई बार परमात्मा ऐसा चमत्कार करता है कि सभी की जिज्ञासाएं शान्त हो जाती है और चेहरे पर खुशी खिल उठती है। ऐसा ही उस समय हुआ जब अकाल से जनता पीड़ित थी और आसमान में बादल मंडराने लगे– ''यह भी एक चमत्कार ही था कि अकाल सुकाल में बदल गया। किसानों के चेहरे प्रसन्नता से चमकने लगे। लोगों के मन हरे होकर, उनके दिलों में नई आशा का संचार हुआ। सबके दिल बाग–बाग हो गए। धरती में आल बहुत

हो गई। अब खेत बहुत रेतीले थे, किसान फिर भी बैलों, ऊँटों की तालाश करने लगे और बीज–भाड़ा का जुगाड़ करने लगे। जो लोग पीपासर और आसपास के गाँव छोड़कर जा रहे थे। उनकी खुशी, का कोई ठिकाना नहीं था। वे रुक गए और अपने–अपने खेत–क्यार सुधारने में लग गए। दूसरों के खेतों की डोल टूट गई थी। पानी बाढ़ की तरह दूसरों के खेतों में भर रहा था।''1

पशुपालन किसान जीवन का आधार है। गाँव में घी, दूध की किसान के घर कमी नहीं होती। गाय को पूजा जाता है और गऊ माता का जाया खेतों में हल द्वारा जुताई करता है और भरपूर उपज पैदा करने का आधार भी है। किसान पशुओं के गोबर को खेत में खाद के रूप में डालता है और अत्यधिक उपज पैदा करता है– ''लोहट जी के सैंकड़ों गाय थी। घी और दूध की कभी कमी नहीं थी। अकाल के कारण कुछ कमी जरूर आ गई थी। खेतों में गोबर का खाद डाला जाता था। इस कारण धरती माता बड़ी उपजाऊ हो गई थी।

बैलगाड़ियों द्वारा खाद खेतों में डाला जाता था। उनकी अधिक उपजाऊ धरती को देखकर आसपास गाँवों के लोग दाँतों तले उँगली दबाते थे और लोहट जी के भाग्य की सराहना करते न थकते थे।'' किसानों को केवल प्राकृतिक आपदाओं से ही खतरा नहीं होता अपितु जानवर भी कई बार पकी–पकाई फसल को नष्ट कर देते हैं– ''किसानों का धन तो केवल खेतीबाड़ी ही होती थी।

निष्कर्ष : स्वतन्त्रता के बाद किसानों की दशा में कोई सुधार दिखाई नहीं देता। किसान की स्थिति वही ऋणग्रस्तता की है, जमींदारों, साहूकारों द्वारा शोषण स्वतन्त्रता के बाद भी जारी है। किसान के परिवारों का टूटना, जोत का छोटी होना इत्यादि अनेक समस्याएँ किसान जीवन में बनी हुई हैं। समकालीन समय में किसानों ने अनेक नई समस्याओं का सामना किया। भूमि अधिग्रहण की समस्या प्रमुख रूप से उभरकर सामने आई।

किसान को उसकी भूमि का उचित समर्थन मूल्य नहीं मिलता। सरकार द्वारा किसानों के लिए विभिन्न कल्याणकारी घोषणाएँ की जाती हैं, लेकिन किसानों को उनका फायदा नहीं मिलता। किसान आत्महत्याएँ निरन्तर बढ़ रही हैं। सजीव का 'फाँस' उपन्यास किसान आत्महत्या को चित्रित करने वाला उपन्यास है। सरकार के पास मुख्यमन्त्री के शहर में आने पर उत्सव मनाने के लिए पैसे हैं, लेकिन एक गरीब किसान जो अपने परिवार का भरण–पोषण करने में असमर्थ है और आत्महत्या कर लेता है उसके लिए पैसा नहीं हैं। समकालीन समय में भी किसान ऋणग्रस्त है और उसका शोषण पूंजीपति लोग कर रहे हैं। किसानों के कष्ट का कारण शिक्षा का अभाव है। किसान सहज विश्वासी होते हैं और चालाक लोगों के फरेबों, झाँसों और चालाकियों का शिकार हो जाते हैं। पंडे–पुजारियों के अंधविश्वासों के चक्कर में वे फँस जाते हैं। दहेज प्रथा, मृत्युभोग, मुकदमेबाजी और पारस्परिक झगड़े भी उनके पतन का कारण है।

संदर्भ :–

1. पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, पृ. 22–23
2. पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, पृ. 22–23
3. पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, पृ. 43
4. डॉ. बाबूराम, डॉ. ब्रह्मानंद, महा उद्धारक, पृ. 176
5. पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, पृ. 43

nirmaladobhi@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 55-58

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं सदी की कहानियों में समाज में दलित नारी विमर्श

–माया रानी

पीएच.डी शोधार्थी, हिंदी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ (राजस्थान)

शोध सार :–

भारतीय संविधान में स्त्रियों को न्याय प्रदान करने के लिए अधियिम बनाये गए है। फिर भी स्त्री व पुरूष में असमानता है। जिससे महिलाओं के साथ अन्याय होता हैं समाज में पुरूष प्रधानता कायम हैं। जिससे स्त्री के पैदा होने से पहले व बाद में भी अन्याय होता हैं। जिससे कन्याभ्रूण हत्या को बढावा मिला हैं उसके बाद शिक्षा नौकरी विवाह, दहेज, तलाक जैसी स्थितियों का सामना करती है। घर में हिस्सा मांगने पर उसे घृणा की नजरों से देखा जाता है। आज भी नारी पर अत्याचार किये जाते है। शिक्षित होने के बावजूद भी वह पुरूषों के अधीन काम करती है। आज नारी हर क्षेत्र में कामयाब होने के बाद भी पुरूषों के अन्याय की भेंट चढती है। सच तो यह है कि कानून व्यवस्था में अधिकार होने के बाद भी उसे न्याय कम मिलता है। आज प्रत्येक महिलांए हर क्षेत्र में अपने अधिकारों की माँग करती है। पुरूषों की सोच बदलने के करण स्त्रियों की स्थिति में सुधार आयेगा।

मूल शब्दः कन्याभ्रूण हत्या, तमाशा नर्तकी, कानून व्यवस्था, वेश्यावृत्ति, समानाधिकार

कविता की कहानी 'तमाशा' में नायिका तमाशा नर्तकी बनने पर मजबूर है। वह अपने परिवार की जिम्मेदारियों के कारण ऐसा करने पर मजबूर हैं। 'नीला' अपने काम को लेकर शर्मिदा हैं। वह सोचती हैं। "वे औरतों, जो अपने परविार की जिम्मेवारियों की खातिर इस पेशे में आई, भ्रष्ट कैसे हो सकती है; और फिर इन लोगों को यह अधिकार दे दिया तो किसने कि ये तय करें कि कौन भ्रष्ट है और कौन पवित्र? नहीं, उसने कुछ भी गतल नहीं किया। वो ऐसे लोगों की हरकतों को मन से कैसे लगा सकती है। वह किसी के आगे झुकेगी–डरेगी नहीं"

समाज में नारी को ही अन्याय का शिकार होना पडता हैं। नीला प्रसाद की कहानी 'एक जुलूस के साथ–साथ' में लता कॉलेज में वेश्यावृत्ति के प्रति जागरूक होती है। वह इसे जड से खत्म करना चाहती हैं। कॉलेज की छात्रा अंजलि अन्य छात्राओं को बताती है। "जी॰ वी॰ दक्षित भारतीय है, कुंवारी है और कच्ची–ताजी युवतियाँ प्रौढ़ो के पास पहुँचा, तगड़ा कमीशन कमाती हैं। वे इन पैसों का क्या करती है, यह किसी को नहीं मालूम।"

सभी छात्राए 'लता' का इस घिनौने कार्य के अनयाय को समाप्त करने में सहयोग करती है। सभी धरने पर बैठकर जमकर विरोध करती है। 'लता' छात्राओं के सहयोग से प्रिंसिपल, डीन और वी॰ सी॰ के नाम जी॰ पी॰ की शिकायत दर्ज कराती है। सभी लड़कियों जोर शोर से नारे लगाते हुए विरोध करती है। "देह–व्यापार की आयोजक को संरक्षण देना बन्द रखो....."

लता व सभी छात्राओं के संघर्ष के बाद न्याय मिलता है। जी॰ वी॰ को कॉलेज से निकाल दिया जाता है। उसके जाने के बाद कॉलेज में जश्न मनाया जाता है। आज नारी अपनी विवाह के प्रति भी सचेत हुई है। भारतीय संविधान में विवाह सम्बन्धी कानून व दहेज उन्मूलन अधिनियम के प्रति जागरूक है। वह कानून द्वारा न्याय प्रदान करती है। समाज में भी परिवर्तन लाना चाहती है। इन्दु वाला की कहानी "नहीं माँ" में शिवांगी अपनी सहेली को विवाह के प्रति तैयार करती है। कि शादी तुम्हे करनी है ना कि तुम्हारे माँ–बाप को। वह संविधान में बनाये कानून के प्रति अधिकारों को सशक्त करते हुए कहती है– "अरे ! किस बात में कम हो तुम पुरूषों से। क्यों दबती हो, क्यों डरती है? तुम पुरूष की दासी नहीं प्रिया हो बल्कि उसके समान ही। समानाधिकार को सुरक्षित रखो और अपने मन से जिओ। तुम क्यों अध्किार छीनने देती हो? देखो, मेरी मानों, कह दो सबसे, यह तुम्हारा जीवन है, तुम जैसा चाहोगी वैसा ही जिओगी भी। फिर इसमें बुरा क्या है, शादी ही करना चाहती हो, भागना तो नहीं। भागना भी पडता तो मैं तो हेमन्त के साथ ही जाती, तुम भी ऐसा करो। क्यों बिन मौत करना चाहती हो?"

सुभाष नीरव की कहानी "औरत होने का गुनाह" में नायिका सुनीता जावेंद से शादी करना चाहती है। उसकी वहज से सउसे अपने पहले पति से तलाक मिलता है। उसे अपने दुःखी जीवन से छुटकारा मिल जाता है। परिवार वाले सभी उसका विरोध करते है। वह कहती है। "आप लोग मेरी चिंता छोड दें। मैंने अझैर जावेद में खूब सोच–समझकर ही फैसला लिया हैं। आप लोग तो पिछले चार सालों से मुझसे सारे संबंध खत्म किए हुए है। मैं तो आपके लिए कब की मर चुकी हूँ। पिता ने बेटी, भाईयों`न बहन को मरा समझकर इन चार वर्षों में एक बार भी सुध नहीं ली। फिर आज ये मृत संबंध एकाएक कैसे जीवित हो उठे? जावेद और मैं शादी करके रहेंगे। ऐसा करने से हमें कोई नहीं रोक सकता।"

'कालकी गोरकी' कहानी में दोनों पात्राएं ससुराल पक्ष से दुःखी है। दुसैन अपनी बहानों के साथ हुए अत्याचार के बारे में बताता है। जब उनके ससुराल वाले बहन को लेने आते है। तब उसकी बहन विरोध करती हुई कहती है– "बेसी है तो कुलसम को तलाक दे दो। इस फूटरीफरी छोरी के लिए कितने ही बींद (दूल्हे) मिल जायेंगे। चुपचाप रास्ता नापो।"

कालकी अपने विवाह के प्रति सशक्त है। क्योंकि दूल्हा विवाह करने से मना कर देता है। क्योकि वह काली है। यह सुनकर दोनों बहनों गुस्सा आ जाता है। गोरकी आक्रोश में आकर कहती है– "ये निठल्ले खुद अपनी शक्त नहीं देखते। एक तो हनुमान जी सा लगता हैं। जाइए–जाइए। हम इनसे शादी नहीं करेंगी।"

भानु प्रताप कुठियाला की कहानी 'क्या होगा माधुरी का' भी अपने साथ हुए अन्याय को लेकर जागरूक है। वह गुस्से में दहेज लोभियों को कहती है– "बहुत हो चुका, चुप रहिए। मैं सांवली हूँ, मेरी उमर ज्यादा है, मोहित से बडी लगती हूँ, मेरे मम्मी–पापा भीखमगे है, नहीं करनी मुझे यह शादी। क्या बेटियां नुमाइश की चीज है, जिसे जब चाहा पहले दुलारा, फिर फटकारा, निकल जाओं यहां से, फिर कभी इस घर में कदम न रखना और मम्मी के चाचा से कह देना कि माधुरी बिका नहीं है। वह भेड–बकरी नहीं है। तुम्हारे जैसी औरतों अपनी पतियों का अपमान सरेआम करती है। तुम्हारें घर में बेटी नहीं है इसीलिए तो तुम जैसी औरतों दूसरों की बेटियों का अपमान करती है, उनका सौदा करती है, उनके माँ–बाप को तरह–तरह के ताने देती है। अपने बेटों को बाजार में बिठाती है, और मोहित तुम भी एक बात मेरी सुनकर जाना, मां–बा पके कहने पर बाजार में बैठ जाना, खूब सौदा करेंगे

वह तुम्हारा।"

समाज में शादी के बाद भी स्त्री को दहेज के लिए तंग किया जाता है। परन्तु आज स्त्री कानूनी नियमों के प्रति जागरूक है। "यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र" की कहानी 'घरौंदा नहीं' में नायिका शादी के बाद ससुराल पक्ष के अन्याय के प्रति सचेंत है। वह एक शिक्षित नारी है। वह गुस्से में आकर अपने पति से कहती है– "पूरो एक बरस हो गया है, इस यातना घर की यंत्रणाओं को सहते–सहते। स्त्री का पीहर घर होता है और ससुराल मन्दिर, पर आपने मेरे मन्दिर को नरक बना दिया। हर बात की हद होती है, हद के बाहर कुछ भी नहीं सहा जाता। आप मर्यादा में आ जायें और अपने माँ–बाप को भी समझा दें। मैं अँगूठा छाप नहीं हूँ। बी॰ कॉम हूँ।"

वह अपने साथ हुए अन्याय का विरोध करती हैं। अब वह और सहन नहीं कर सकती है। वह साफ शब्दों में कहती है– "पत्नी सदा सहन करती है कि घर का नंगापन बाहर न जाये आप तो अन्याय पर अन्याय कर रहे हैं सुनिये, मैं तीन दिनों की मोहल्लत देती हूँ, फिर मैं अदालत के दरवाजे खटखटाऊँगी।"

सरोजा की सास उसे जलाकर मारने की धमकी देती है। इस पर वह भडक जाती है और अपनी सास को कहती है– "सासू माँ ! कहीं इतिहास न बदल जाये। आज तक बहुएँ ही जली है, कही ऐसा न हो अब सास का नम्बर आ जाये। मैं आज ही यह छोडकर जा रही हूँ। अब यहाँ रहना खतरे से खाली नहीं। मैने पढा है कि कई बार शत्रु अचानक हमला करके अपने विपक्षी को मार डालता हैं। ध्यान दीजिए, मेरे दहेज का सामान और नकदी मेरे घर पहुँचा दीजिए तो ठीक रहेगा, वर्ना कानून तो है ही।"

निष्कर्ष

आज की नारी पुरूषों की गुलाम नहीं है। वह स्वयं अपनी रक्षा कर सकती हैं। वह जीवन भर छत्रछाया में रहकर अन्याय सहन नहीं करेगी। वह अपने पति को आखिरी चेतावनी देती हुई कहती है– "मैं जानती हूँ। सात हजार रूप्ये कमाने वाली मैं दुधारू गाय जो अब हो गयी हूँ। एक बार सुनो, मैं उन विवाहिताओं में नहीं हूँ जो बार–बार ससुराल से निकाली जाती है और बार–बार अनुराधों पर आती है। मैं थूक कर नहीं चाटती हूँ, समझे?"

आज किसी भी चर्म व वर्ग की महिला कमजोर नहीं है। अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं। वह पुरानी परंपराओं से बाहर निकली हैं। वह पुरानी रूढिवादी नीतियों को अपनाना नहीं चाहती। एस॰ आर॰ हरनोट की काहनी "मिट्टी के लोग" में पात्रा अमरों अपने घर की नींव में पडिव से कोई शुभ मुहूर्त व पूजा नहीं करवाते। तो गाँव के पंडित कहते हैं। तुमने धर्म का अपमान किया है। लेकिन अमरों इन ढोगी बातों को नकारती हुई कहती है– "दादा! घर हम बना रहे है और तोहीन आप लोगों की हुई है। ये बातें जची नहीं कुछ। रही साइत–मुहूर्त की बात तो दादा आप तो बडें पंडत है। जरा बताना तो कि आज तक जिन भगवानों और देवताओं की आप पूजा करते करवाते आए है, उन्हें आपने कितनी बार देखा है?"

वह अंधविश्वास को महत्व न देकर शिष्टितापूर्ण पंडित से कहती है– "दादा! ऐसा भी नहीं है कि हमने बिना मुहूर्त औश्र पूजा वगैरह के ही घर का काम शुरू कर दिया। पहली बार तो दादा यह है कि हम ठहरे गरीब लोग। साइत मुहूर्त होते है बड़ी हवेलियों के जहां बीस–तीस कमरे हों और फिर घर पक्का हो। हमारा तो मिट्टी का मटकंध ाा है दादा। बस यूं समझ लो कि सिर ढकने लिए छोटी–सी छत। इसके लिए क्या पूजा और क्या पाठ! प्र हमने तो उस देवता–भगवान को अपने काम के लिए साक्षी बनाया है जो हमरी मेहनत की कद्र करता है और सदा हमारे साथ रहता है।"

संदर्भ :-

1. कविता, नदी जो अब भी बहती है।, पृ॰ 99
2. नीला प्रसाद, सातवीं औरत का घर, पृ॰ 31
3. भानु प्रताप कुठियाला, क्या होगा माधुरी का, बयान पत्रिका, अप्रैल 2010, पृ॰ 30
4. भानु प्रताप कुठियाला, क्या होगा माधुरी का, बयान पत्रिका, अप्रैल 2010, पृ॰ 30
5. आनंद प्रकाश, युग परिबोध, पत्रिका, दिसबंर, 2011, पृ॰ 5
6. इन्दुबाली, नहीं माँ, नहीं तथा अन्य श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ॰ 23
7. नीला प्रसाद, सातवीं औरत का घर, पृ॰ 31
8. भानु प्रताप कुठियाला, क्या होगा माधुरी का, बयान पत्रिका, अप्रैल 2010, पृ॰ 30
9. भानु प्रताप कुठियाला, क्या होगा माधुरी का, बयान पत्रिका, अप्रैल 2010, पृ॰ 30
10. भानु प्रताप कुठियाला, क्या होगा माधुरी का, बयान पत्रिका, अप्रैल 2010, पृ॰ 30
11. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, वाह किन्नी वाह, पृ॰ 99
12. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, वाह किन्नी वाह, पृ॰ 99

mayarani237886@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 59-63
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी पत्रकारिता में कृषि नीतियाँ और किसान विमर्श

–राजेश कुमार बिश्नोई
पीएच.डी. शोधार्थी, अध्यक्ष हिंदी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ (राजस्थान)

शोध सार :–

किसानों की समृद्धि एवं विकास के लिए सरकार समय–समय पर नई कृषि नीतियाँ लागू करती है, लेकिन इन नीतियों के बावजूद भी किसान की स्थिति में सुधार की संभावना अपेक्षाकृत कम है। ''भारत सरकार ने जुलाई 2006 में कृषि पर राष्ट्रीय नीति की घोषणा की। इसको भारत सरकार की नवीनतम राष्ट्रीय कृषि नीति की उद्घोषणा के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। यह नीति देश के प्राकृतिक संसाधनों– भूमि, जल एवं अनुवांशिक विधि को तकनीकी दृष्टि से सुदृढ़, आर्थिक दृष्टि व्यवहार्य, पर्यावरणीय दृष्टि से गैर–अधोगति कारक एवं सामाजिक दृष्टि से स्वीकार्य उपयोग द्वारा कृषि के सतत विकास को प्रोत्साहित करने के लिए बनाई गई थी। ऐसे उपाय प्रस्तावित हैं, जिससे जमीन पर जैविक दबाव बनाए रखने तथा कृषि भूमि के गैर कृषि उपयोग में अविवेकी बदलाव पर नियन्त्रण लगाया जा सके।

मूल शब्दः नवीनतम राष्ट्रीय कृषि नीति, अनुवांशिक विधि, अधोगति कारक, सतत विकास, अविवेकी बदलाव

अनुपयोगी बंजर भूमि का उपयोग कृषि एवं वनीकरण के लिए होना चाहिए।'' राष्ट्रीय कृषि नीति 2000 में सतत कृषि, खाद्यान्न एवं पौषणिक सुरक्षा, पशुपालन एवं मत्स्य विकास, प्रौद्योगिकी की उत्पत्ति एवं हस्तान्तरण, आगत प्रबन्धन, कृषि के लिए प्रोत्साहन, कृषि में निवेश आदि प्रमुख विशेषताएँ देखने को मिलती है। राष्ट्रीय किसान नीति 2007 में कृषि एवं सहकारिता विभाग कृषि मन्त्रालय, भारत सरकार ने किसानों की आय में सुधार करने, उचित मूल्य नीति, संस्थागत समर्थन में वृद्धि करने और भूमि में सुधार, जल एवं सहायक सेवाओं में सुधार इत्यादि पर जोर दिया।

राष्ट्रीय किसान नीति 2007 में कहा गया था कि ''उत्पादन के साथ–साथ किसानों के आर्थिक कल्याण पर अधिक ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। उत्पादन और वृद्धि के अलावा कृषि नीति का एक प्रमुख निर्धारक सामाजिक–आर्थिक आयाम भी होना चाहिए। अतः इस नीति का उद्देश्य उन प्रवृत्तियों और कार्यों को प्रेरित करना है जिसके फलस्वरूप कृषि प्रगति का आकलन करने में किसान परिवारों की आय में सुधार हो, न केवल कृषि से सम्बद्ध क्रियाकलापों में निवेश के लिए क्षमता को बढ़ाने के लिए।''

इस नीति में किसानों के लिए बीज, सिंचाई, विद्युत, मशीनरी, उपकरणों तथा ऋण पर्याप्त मात्रा में उचित मूल्य पर उपलब्ध करवाने की बात कही गई है। इसमें किसानों के लिए उपयुक्त और समयबद्ध क्षति पूर्ति के लिए उपयुक्त जोखिम प्रबन्ध के उपाय प्रदान करने की बात भी कही गई थी। इस नीति का एक प्रमुख लक्ष्य

यह भी था कि ''खेती को बौद्धिक रूप से प्रेरक और आर्थिक रूप से लाभप्रद बनाकर उच्चतर मूल्य वर्धन के लिए कृषि उत्पादों का प्रसंस्करण करना जिससे युवाओं को खेती की ओर आकर्षित करने और उसमें बनाए रखने में मदद मिल सके।''2

बजट 2016–17 में अगले पाँच साल में किसान की आय दोगुनी करने की बात कही गई। इस बजट में 3600 करोड़ रुपये का आवंटन कृषि क्षेत्र में किया गया और साथ में अनेक उपाय भी निर्धारित किए गए जिनमें न्यूनतम समर्थन मूल्य का फायदा सभी किसानों को देने का उपाय किया गया। साहूकारों के चंगुल से बचाने के लिए नौ लाख करोड़ का कृषि ऋण का प्रावधान भी किया गया। इस बजट में हर खेत तक पानी पहुँचाने की बात भी कही गई। वित्त मन्त्री अरुण जेटली ने कहा– ''खेती में उत्पादन व उत्पादकता बढ़ाने के लिए सिंचाई बहुत महत्त्वपूर्ण साधन है। देश की कुल खेती योग्य जमीन में आधे से भी कम असिंचित खेती होती है। वहाँ सिंचाई की सुविधा पहुँचाकर उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। सरकार ने आम बजट में इस दिशा में पहल की है।'' बजट में सिंचाई व्यवस्था के लिए 12517 करोड़ रुपये खर्च करने की बात कही गई। भारत में 14. 10 करोड़ हेक्टेयर कुल खेती योग्य जमीन में 46 फीसदी ही सिंचित है।2 इस ओर भी ध्यान दिया गया है। राजीव मिश्र ने अपने लेख में कहा है कि ''खराब सिंचाई व्यवस्था, बिजली का अभाव, बेहतर बीज की कमी जैसे कई पहलू कृषि उत्पादन पर नकारात्मक असर डालते हैं। कृषि उत्पादन को बाजार तक पहुँचाने में भी कई त्रुटियाँ हैं। न्यूनतम मूल्य निर्धारण, अनाज के रख–रखाव की व्यवस्था, वितरण प्रणाली और फसल बीमा योजना में आमूल–चूल परिवर्तन की आवश्यकता को लेकर मोदी सरकार गम्भीर दिखती है और इस साल के बजट में ऐसी कई योजनाएँ प्रस्तावित हैं जिसे दीर्घकालीन और प्रभावी माना जा सकता है बशर्ते उनका क्रियान्वन गम्भीरता और सच्चाई से हो।''

जिस तरह से स्वन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951–56 में कृषि क्षेत्र में विशेष ध्यान दिया गया और 60 दशक के हरित क्रान्ति ने भारतीय किसान को आत्मनिर्भर बनाने में अहम् योगदान दिया, ठीक वैसा ही ध्यान अगर अन्नदाता की तरफ दिया जाए तो भारतीय किसान उन्नति की अग्रसर होगा और देश का चहुमुखी विकास भी तभी संभव है।

भूमि अधिग्रहण और किसान विमर्श

हमारे देश में विभिन्न प्रकार के विकास कार्यों के लिए सरकार भूमि अधिग्रहण करती है। किसान जिस खेत में खून–पसीना एक कर मेहनत करता है वह उस भूमि को किसी भी कीमत पर देने को तैयार नहीं होता। वरिष्ठ टी.वी. पत्रकार सुधांशु रंजन ने इस बात को उठाया था कि भूमि अधिग्रहण को लेकर एक मध्यवर्ग की आवश्यकता है ताकि औद्योगिकरण एवं विकास की गति भी मंद न हो और किसानों को भी नुकसान न हो। वर्ष 1894 में ब्रिटिश इंडिया सरकार ने एक विधान बनाया जिससे देश के प्राकृतिक संसाधनों एवं भूमि पर सरकार का स्वामीत्व घोषित कर दिया गया। इस विधान के अनुसार सार्वजनिक हित के नाम पर सरकार द्वारा कोई भी जमीन कभी भी अधिकृत की जा सकती है। स्वतन्त्रता के बाद भी यह व्यवस्था चलती रही। उस समय मुआवजे की राशि तय करने का कोई सिद्धान्त नहीं था। भूमि अधिग्रहण को लेकर किसानों को अनेक संघर्षों का सामना भी करना पड़ा है।

लोकहित के काम जैसे– अस्पताल, नहर, सड़क, स्कूल, बाँध आदि को बनाने के लिए भूमि का अधिग्रहण

किया जाता है। 1991 में आर्थिक सुधार व वैश्वीकरण के पश्चात इसमें परिवर्तन देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए राजस्थान के सूरतगढ़ में 10,000 एकड़ भूमि में सेना के लिए छावनी क्षेत्र घोषित किया गया और सामाजिक दृष्टि से इसे लोकहित का माना गया।

भूमि अधिग्रहण कानून 2013 में पहली बार भूमि अधिग्रहण के लिए

भूस्वामियों की सहमति और सामाजिक प्रभाव के आंकलन को अनिवार्य बनाया गया। सहमति के लिए 70 प्रतिशत की सहमति होने की शर्त है। इसमें भू स्वामियों को अच्छा खासा मुआवजा देने का प्रावधान किया गया। भूमि अधिग्रहण नियम में कई नवीन तथ्य उभरकर सामने आये। इसमें कहा गया कि भू–अधिग्रहण प्रभावित परिवारों व कृषि श्रमिकों के लिए एक परिजन को नौकरी दी जाए, लेकिन एक बात यह भी है कि यदि किसी किसान की भूमि सड़क निर्माण में चली जाती है तो उनको नौकरी नहीं मिलती दूसरी तरफ यदि किसी किसान परिवार की भूमि अत्यधिक अधिगृहीत हो जाती हैं तो सरकार उसको सरकारी नौकरी भी देती है जैसे हरियाणा के हिसार जिले के खेदड़ गाँव में बने थर्मल पॉवर प्लांट में जिनकी भी भूमि अधिगृहीत हुई थी उनको सरकारी नौकरी का भी फायदा मिला था। दूसरा तथ्य यह भी उभरकर सामने आया कि निजी स्कूलों और अस्पतालों के लिए भी भूमि अधिग्रहण नहीं होगा, मात्र सरकारी संस्थानों, निगमों के लिए जमीन का अधिग्रहण होगा। परियोजना के लिए बंजर जमीन का अधिग्रहण करने की बात भी कही गई है।

हरियाणा में बन रही सड़क के बाईपास के लिए सरकार ने भूमि का अधिग्रहण किया। इस अधिग्रहण में किसानों के साथ हो रहे भेदभाव की बात उभरकर सामने आई। इनेलो ने आरोप लगाया है कि राज्य की भाजपा सरकार भूमि अधिग्रहण के लिए मुआवजा देने में भी किसानों के साथ भेदभाव कर रही है। 19 अगस्त, 2015 को हरियाणा के राज्यपाल प्रोकप्तान सिंह सोलंकी को ज्ञापन देते हुए इनेलो ने कहा कि कैथल बाइपास के लिए तितरम मोड़ से क्योड़क गांव तक प्यौदा, क्योड़क, हरसोला, सेगा, नरड़, ग्योंग उझाणा की भी जमीनें अधिग्रहण में रही है। इन गाँवों को जमीन का मुआवजा 12 लाख रुपये प्रति एकड़ क्लेक्टर रेट तय कर सोलेशियम और ब्याज राशि मिलाकर मात्र 27 लाख रुपये प्रति एकड़ आंका गया है जबकि जमीनों का मार्किट रेट 50 लाख रुपये से लेकर एक करोड़ रुपये प्रति एकड़ है। वैसे भी कलायत, पेहवा, ईस्माइलाबाद से गुजरने वाले बाईपास के लिए जो भूमि अधिग्रहित की गई है उसका मुआवजा 30 लाख रुपये प्रति एकड़ तय करके ब्याज सोलेशियम सहित 46 लाख रुपये दिये जा रहे हैं। सरकार द्वारा किए जा रहे भेदभाव के विरोध में इन गाँवों के किसान पिछले 29 दिनों से धरने पर बैठे हैं।''

26 जुलाई, 2016 को दैनिक जागरण हरियाणा में जमीन अधिग्रहण के लिए स्पष्ट नीति बनाने की बात कही गई। हरियाणा में जमीन अधिग्रहण की राह कभी आसान नहीं रही। विकास के नाम पर सरकारें बड़े पैमाने पर जमीन अधिग्रहण करती रही हैं। यहीं से कभी आन्दोलन आगे बढ़े तो कभी भ्रष्टाचार की जड़े पोषित होती दिखाई दी। भू–माफिया व सत्ताधारियों के आपसी तालमेल ने बड़े पैमाने पर कई घोटालों की नींव रख दी। ऐसे में पूरी प्रक्रिया ही सवालों के घेरे में आ गई। गुड़गाँव में ऐसे ही हाई प्रोफाइल मामले में गाँधी परिवार के दामाद रॉबर्ट वाड्रा पर भी आरोप लगे। इसके बाद पूरे देश में बवाल मचा तो नया अधिग्रहण कानून अस्तित्व में आया। इस बात से किसी को इनकार नहीं कि विकास की राह में महँगी जमीन पहली बाधा है। नई नीति से निवेश में भी बाधा आने लगी। पर साथ में किसानों के बारे में भी सरकार को सोचना ही होगा। सरकार को सुनिश्चित

करना होगा कि विकास का लाभ सबको मिले। किसान विकास के लिए अपनी जमीन दे रहा है तो उसके सामने संकट रोजगार का भी आ खड़ा होता है और परिवार की आजीविका का भी। ऐसे में सरकार को सुनिश्चित करना होगा कि विकास योजनाओं में किसानों को इस तरह शामिल करे कि वह स्वेच्छा से जमीन देने के लिए प्रेरित हो।''1

फसल बीमा योजना और किसान विमर्श

किसानों की फसल के सम्बन्ध में अनिश्चितताओं को दूर करने के लिए नरेन्द्र मोदी की कैबिनेट ने 13 जनवरी, 2016 को प्रधानमन्त्री फसल बीमा योजना को मंजूरी दी। प्रधानमन्त्री फसल बीमा योजना, किसानों की फसल के प्राकृतिक आपदाओं के कारण हुई हानि को किसानों के प्रीमियम का भुगतान देकर एक सीमा तक कम कराएगी। इस योजना के लिए 8800 करोड़ रुपयों को खर्च किया जाएगा। प्रधानमन्त्री फसल बीमा योजना के अन्तर्गत किसानों को बीमा कम्पनियों द्वारा निश्चित खरीफ की फसल के लिए 2 प्रतिशत प्रीमियम और रबी की फसल के लए 1.5 प्रतिशत प्रीमियम का भुगतान करेगा। इसमें प्राकृतिक आपदाओं के कारण खराब हुई फसल के खिलाफ किसानों द्वारा भुगतान की जाने वाली बीमा की किस्तों को बहुत नीचा रखा गया है, जिसको प्रत्येक स्तर का किसान आसानी से भुगतान कर सके। ये योजना न केवल खरीफ और रबी की फसलों को वाणिज्य और बागवानी फसलों के लिए भी सुरक्षा प्रदान करती है, वार्षिक वाणिज्यिक और बागवानी फसलों के लिए किसानों को 15 प्रतिशत प्रीमियम (किस्त) का भुगतान करना होगा।''

शुक्रवार 22 जनवरी, 2016 को दैनिक जागरण अखबार में 'किसानों को सुरक्षा कवच' आलेख छपा। जिसमें कहा गया कि ''पहली बार किसानों की किसी बीमा योजना को खेत में फसलों की बुवाई से लेकर खलिहान तक विस्तृत किया गया है। इसी महीने जारी की गई प्रधानमन्त्री फसल बीमा योजना के दायरे को इतना व्यापक रखा गया है कि किसानों को प्राकृतिक आपदा से फसल नष्ट होने पर भी नुकसान नहीं उठाना पड़ेगा। प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में लिया गया सरकार का यह फैसला सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से इतना महत्त्वपूर्ण है कि मौसम की मार से आत्महत्या तक के लिए विवश होने वाले किसानों के लिए यह योजना सुरक्षा कवच का काम करेगी।''

इस बीमा योजना में यह बात भी रखी गई कि फसल खराब होने के बाद या प्राकृतिक आपदा के तुरन्त बाद 25 प्रतिशत क्लेम सम्बन्धित किसान के बैंक खाते में सीधा पहुँच जाएगा। पूर्व की योजना में सिर्फ बैंक से ऋण लेने वाले किसानों को बीमा का लाभ मिलता था, परन्तु नई योजना में फसल बीमा को बैंक के ऋण से पूर्णतया डी लिंक कर दिया गया है जिससे अब इस योजना का लाभ बैंक से ऋण न लेने वाले किसानों को भी मिलेगा और अब छोटे, मध्यम और बड़े हर वर्ग के किसान के लिए फसल बीमा योजना उपलब्ध होगी। इस संरचनात्मक परिवर्तन की वजह से अब प्रधानमन्त्री फसल बीमा योजना वास्तव में सबके लिए हो गई है।''

पहले सौ फीसदी फसल खराब होने पर 2300 रुपये के प्रीमियम पर 19000 रुपये का क्लेम मिलता था, लेकिन अब 1500 रुपये के प्रीमियम पर किसानों को 30000 रुपये तक का क्लेम मिलेगा। 4 फरवरी, 2016 को दैनिक जागरण हरियाणा में 'फसल बीमा की बाधाएँ' आलेख प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक देविन्दर शर्मा का छपा। देविन्दर शर्मा ने कहा मुझे प्रधानमन्त्री फसल बीमा योजना से बहुत उम्मीदें थी।

2015 में आई बेमौसम बारिश और ओलावृष्टि के कारण उत्तरप्रदेश, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, मध्यप्रदेश

और महाराष्ट्र में बड़ी मात्रा में फसलें तबाह हो गई। जिसके परिणामस्वरूप कई किसानों ने आत्महत्या कर ली थी। ऐसे में कृषक समाज बड़ी उम्मीद भरी नजरों से देख रहा था हालांकि नई फसल बीमा योजना को लीक तोड़ने वाला बताने और सरकार की ओर से भी उसे गेम चेंजर कहने के बाद मैं जब इसकी गहराइयों में गया तब निराशाजनक तस्वीर सामने आई। प्रधानमन्त्री फसल बीमा योजना निश्चित रूप से बीमा कम्पनियों के लिए बड़ा उपहार है, लेकिन किसानों के दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह एक झुनझुने से ज्यादा नहीं है।'' इस मुआवजा राशि को किसानों के बैंक खाते में सीधा भेजने की बात भी कही गई। सरकार द्वारा खराब फसलों की गिरदावरी करवाने और मुआवजा राशि बाँटने के पश्चात् भी कर्जदार किसान आत्महत्या की ओर बढ़ रहे हैं। ''हालांकि सरकार ने बर्बाद फसलों की गिरदावरी कराई और मुआवजा भी दिया, लेकिन उससे क्या होना है? कर्ज लेकर खेती करने वाले किसानों पर ऐसा वज्रपात गिरा कि वे संभल नहीं पाए। गहरे सदमे और निराशा में डूबे कई किसानों ने आत्महत्या कर ली तो कुछ को दिल का दौरा पड़ गया।''

निष्कर्ष:

किसान को खराब फसल का मुआवजा उसकी फसल की गिरदावरी के बाद मिलता है। कई बार ऐसे तथ्य भी सामने आते हैं कि पटवारी और गिरदावर ने पैसे लेकर गिरदावरी कर किसी को अधिक मुआवजा बाँट दिया तो किसी को कम। ''इसमें कोई दोराय नहीं कि प्रदेश की बहुतायत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है और पिछले कई दशकों से हर वर्ष यह प्राकृतिक आपदा की मार झेलती आ रही है।

संदर्भ :–

1. कटार सिंह, ग्रामीण विकास सिद्धान्त, नीतियाँ एवं प्रबन्धन, पृ. 140247
2. राष्ट्रीय किसान नीति, भारत सरकार, 2007, पृ. 2
3. वही, पृ. 3
4. दैनिक जागरण, 26 मार्च, 2016
5. दैनिक जागरण, पानीपत, 1 मार्च, 2016, पृ. 4
6' दैनिक भास्कर, 19 अगस्त, 2015
7. दैनिक जागरण, हरियाणा, 26 जुलाई, 2016
8. 2 ीजजचरूध्धीपण्उण्पापचमकपंण्वतहध्प्रधानमन्त्री, फसल, बीमा योजना
9. दैनिक जागरण, हरियाणा, सम्पादकीय, 22 जनवरी, 2018
10. हंस–आज कहाँ है प्रेमचन्द के किसान? अंक मई 1916

bjscs11@gmail.com

rajbishnoi1990@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 64-68
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य में पुरूष विमर्श : स्वरूप विश्लेषण

–लक्ष्मी देवी

सुपुत्री श्री विनोद कुमार, गांव कैंरावाली डॉ.माखोसरानी, जिला–सिरसा (हरियाणा) 125055

शोध सार :–

प्राणी जगत में स्त्री–पुरूष एक–दूसरे के समान्तर है। स्त्री के अभाव में पुरूष का अस्तित्व असम्भव है। आरम्भ से ही स्त्री की विशेष प्रतिष्ठा है। स्त्री सदैव एवं सर्वत्र परिवार का आधार रही है। प्रत्येक समाज और राष्ट्र के सर्वांगीण उन्नयन में नारी की अहम् भूमिका रही है। स्त्री भगवान की ही अद्भूत कृति नहीं हैं वरन् मानवों की भी अद्भूत सृष्टि है। मनष्य निरन्तर अपने अन्तरतम से नारी के सौन्दर्य विभूति से विभूषित करता है। कविगण स्वर्णिम कल्पना के धागों से उसके लिए एक जाल सा बुनते रहते है। चित्रकार उसके स्वरूप को उसके बाह्य सौन्दर्य को अमरत्व प्रदान करते रहते है। मानव ह्रदय की वासना ने सदैव स्त्री को यौवन के ऐश्वर्य प्रदान किया है।

बीज शब्दः बाह्य सौन्दर्य का अमरत्व, स्मृति ग्रंथ, नारी शैतान का द्वार, पुरूष निसंग है, स्त्री आसक्त

स्मृति ग्रंथों में नारी के व्यक्तित्व एवं समाज में उसकी स्थिति का विशद् विवेचन हुआ है। हिन्दू धर्म ग्रन्थों में एक ओर नारी की प्रशंसा का प्राचुर्य हैं, दूसरी और नारी निन्दा भी कम नहीं की गई है। नारी निन्दा की यह भावना केवल भारत तक ही सीमित नहीं रही, संसार के अन्य धर्म ग्रंथों में नारी निन्दा का प्राबल्य रहा है। यूरोप के प्रसिद्ध लैटिन धर्मयाजक टारटुलियन ने नारी के सम्बन्ध में लिखा था कि नारी शैतान का द्वार है, दैवी नियम या धर्म का सबसे पहले त्याग करने वाली है। सेट आगास्टिन तो कहा करते थे कि नारी चाहे माता के रूप में हो, चाहे बहन के रूप में हो लेकिन हमें उससे सदैव सचेत रहना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक स्त्री में हौवा का निवास है।

इस संसार में स्त्री की माया–मोह या प्रेम–रन्जु से पुरूष का बाँधकर संसार के सब कार्यो का कारण बनती है। सृष्टि के विकास में नारी का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा हैः–''पुरूष निसंग है, स्त्री आसक्त। पुरूष निर्द्वन्द्ध है, स्त्री द्वन्दोन्मुखी। पुरूष मुक्त है, स्त्री बद्ध। यथार्थ पुरूष योगी, उदासीन और निर्जनवासी होता है। उसे निर्जन में रहना पसन्द आता है। स्त्री–पुरूष को योग से संसार की ओर उन्मुख करके कर्मशील बनाती है।

वैदिक काल में भारतीय समाज में स्त्री का सशक्त व्यक्तित्व सर्वत्र दृष्टिगत होता है, किन्तु उसकी दशा उतरोत्तरहीन होती चली जाती है। वैदिक काल में आत्मिक विकास की दृष्टि से स्त्रियों पुरूषों के साथ एक ही क्षेत्र में विचरण करती थी। धार्मिक क्षेत्र में भी उनका पुरूषों के समान ही अधिकार प्राप्त थे, किन्तु धीरे–धीरे स्त्रियों की शारीरिक दुर्बलतायें ही उनके लिए अभिशाप बन गई। पुरूषों ने उनके अधिकारों को अपहृत

करना प्रारंभ कर दिया। उपनिषदों और ब्राह्मणों के युग में स्त्रियों के धार्मिक अधिकार समाप्त कर दिये गये।

संबंधों में साम्य–वैषम्य

वैदिक साहित्य में 'स्त्री' शब्द नारी के लिए सबसे अधिक प्रयोग में आया। पाली–प्राकृत युग तथा अपभ्रंश काल में भी वह सजीव रहा। 'स्त्री' शब्द की व्युत्पति के सम्बन्ध में निरूक्तकार का मत है कि ''स्त्री'' शब्द ''स्तयै'' धातु से बना है। ''स्तयै'' का अर्थ है लज्जा भाव का विषेश उद्रेक होने के कारण वह 'स्त्री' कहलाती है।'' ''पुरूषों द्वारा नारी का आदर किया जाता है। अतः उसे 'मेना' कहा गया है, क्योंकि पुरूष संसर्ग की कामना से इसके पास जाते है, गमन करते हैं, इसलिए इसे 'ग्ना' कहा गया है।'' जो स्त्री अपने आपको पुरूष के प्रति समर्पित कर देती है, उसे 'वामा' कहते है। जिस स्त्री में शारीरिक बल की अपेक्षा मानसिक बल अधिक होता है उसे अबला कहते है।

प्राचीन भारतीय वाङ में नारी के सम्पूर्ण स्वरूप को विभिन्न पक्षों के बोध हेतु उसे अनेक नाम दिए गए है। नर से जुड़ी होने के कारण इसे साधारणतः नारी कहा जाता है। वेदों में इसे कन्या कहा गया है जिसका अभिप्राय एक ऐसी लड़की से है जिसे सब चाहें। जो होनहार कन्या सभी गुणों के साथ दुहना भी जानती हो, वह दुहिता कहलाती है। वेदों में स्त्री को पुरूष का आधा भाग माना गया है। एक ही आत्मा की स्थापना के स्त्री और पुरूष में कोई सैद्धान्तिक भेद नहीं माना गया।'' हमारे यहाँ ईश्वर तक की कल्पना 'अर्द्ध नारीश्वर' के रूप में की गई है।''

पत्नी से अभिप्राय उस स्त्री से है, जो पति के साथ यज्ञ आदि धार्मिक कार्यो को सम्पन्न करें। नारी को देवी कहकर पुरूष ने उसे मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया। उसके भाग्य में केवल देना और सहना बच गया। पुरूष कभी भी उसकी कारूणिक दशा और मन की प्यास को नहीं समझ पाया। ऋग्वेद में नारी को 'मैना' कहा गया है क्योंकि ''पुरूष उसे सम्मान देता है।'' लज्जा भाव की उद्रेक होने के कारण उसे स्त्री कहा गया हैं। स्त्री वह युवती कहलाती है, जो लज्जा से सुकड़े न कि दण्ड से। अपने लिए स्वयं पुरूष जुटाने वाली नारी को 'पोषिता' कहा जाता है तथा सौन्दर्य बिखेरने वाली 'वामा' कहलाई। संस्कृत हिन्दी कोरा में 'पोषिता' की परिभाषा इस प्रकार दी गई कि ''जब नारी स्वयं को पुरूष के प्रति समर्पित कर देती है तो 'पोषा' नाम की अधिकारिणी हो जाती है।''

नारी पुरूष के मन की लालसा जागृत करने के कारण 'ललना' कहलाई, क्षण–क्षण रूठने के कारण इसे 'मानिनी' और कामना जगाने के कारण इसे 'कामिनी' कहा गया। वेदों में पैंतीस वर्ष से अधिक आयु वाली पूजनीय नारी को 'महिला' कहा गया है।

स्त्री और पुरूष मिलकर ही एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण कर सकते है। इस प्रकार नारी पुरूष के साथ हर क्षेत्र में समान चलने की अधिकारिणी है। वह पुरूष की सहचरी, सहयोगिनी एवं प्रेरक शक्ति है।महादेवी वर्मा के अनुसार, ''पुरूष को यदि ऐसे वृक्ष की संज्ञा दी जाएं जो अपने चारों ओर से छोटे–छोटे पौधों का जीवन–रस चूसकर आकाश की ओर बढ़ता है तो स्त्री को ऐसी लत्ता कहना होगा जो पृथ्वी से थोड़ा सा स्थान लेकर सघनता में बहुत से अंकुरों का पनपाती हुई उस वृक्ष को विशालता को चारों ओर से ढ़क लेती है। प्रकृति ने केवल उसके शरीर को ही अधिक सुकुमार नहीं बनाया, वरन् उसे मनष्य की जननी का पद देकर उसके हृदय को अधिक संवेदनशील, आँखों को अधिक आद्रता और स्वभाव में अधिक कोमलता भर दी है।''

पुरूष का स्वरूप –

किसी व्यक्ति अथवा अवधारणा की सुनिश्चित परिभाषा करना या उसको सीमा रेखाओं में बाँधना सरल कार्य नहीं है। इसमें अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोनों प्रकार के दोश आ सकते हैं। विशय विवेचन की दृष्टि से पुरूष संबंध अवधारणा को मूल रूप से स्पष्ट करना आवश्यक है।

पुरूष शब्द अंग्रेजी के (डंद) शब्द की पर्यायवाची है। पर्सेन शब्द का प्रयोग भी पुरूष के लिए कभी–कभी किया जाता है। डॉ0 श्याम सुन्दर दास का मत है कि ''मनष्श्य, मान, मनुज, नर, पुरूष आदि शब्द विशिष्ट संदर्भ में अथवा मिले–जुले अर्थ में प्रयुक्त किये जाते है।

डॉ0 रामचन्द्र वर्मा ने पुरूष शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है– ''पु0 ।सं0 ।पुर। आगे जाना + । कुषण। मानव जाति का नर–प्राणी। उक्त प्रकार का वह व्यक्ति जिसमें विशिष्ट शक्तियाँ साम्यर्थ हो और जो वीरता या साहस के काम कर सकता हो। सांख्याकार ने इसे प्रकृति से भिन्न एक ऐसा चेतन मूल तत्व या पदार्थ माना है, जिसमें कभी कोई परिव्यम या विकास नहीं होता और जो स्वयं कुछ भी न करने और सबसे अलग रहने पर भी प्रकृति के सान्निध्य से ही सृष्टि की उत्पति सर्वनामों वर्गीकरण।''

प्राचीन आचार्यो ने भी पुरूष की व्याख्या की है। उन्होनें विभिन्न प्रकार के गुणों से युक्त विभिन्न प्रकार के पुरूषों की कल्पना की है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में कहा है –

''नानाशास्त्रार्थ सम्पन्नता गम्भीर्योदापशलिनी,
धैर्यत्यागगुणोयेता जेया प्रकृतिरूतमा।''

अर्थात् विभिन्न षास्त्रों को जानने वाला, गम्भीर, उदार, धैर्य, त्याग आदि गुणों से युक्त उत्तम प्रकृति का पुरूष जानो। अग्नि पुराण में आठ प्रकार के सात्विक गुणों से युक्त पुरूष का उल्लेख है – ''शोभा, विलास, मधुरता, स्थिरता, गम्भीरता, सुन्दरता, तेज तथा उदारता इन आठ गुणों से युक्त पुरूष होते है।''

पुरूष के विभिन्न रुप–

हमारे प्राचीन आचार्यो ने पुरूष में इन आदर्षो की कल्पना की है, परन्तु आज के संघर्शशील और बौद्धिक यांत्रिक युग में हम ऐसे पुरूष की कल्पना नहीं कर सकते। समाज–व्यवस्था के ढ़ांचे के साथ–साथ पुरूष जाति का आचरण और व्यवहार भी बदल गया है। आज का पुरूष अहंकारीवारी है उसमें आत्मविष्वास की कमी हैं। भौतिकवाद के प्रभाव के कारण वह कामुक स्वार्थी और अन्तर्द्वन्द–ग्रस्त बन गया है।

समाज एवं सभ्यता के विकास के क्रम में पुरूष–प्रधान समाज का उदय हुआ है तथा पुरूष नारी का शोषक एवं स्वामी बन गया। संसार का अटल नियम है कि शक्तिशाली सदैव दुर्बल पर राज्य करता है। प्रकृति की ओर से नारी की संरचना ऐसी है कि वह शारीरिक रूप से पुरूष से दुर्बल है। पुरूष की मांसपेशियां नारी मांसपेशियों की अपेक्षा अधिक सबल होती है। इसी दुर्बलता का फायदा पुरूष ने उठाया। महादेवी वर्मा का कथन है –

''उसने (पुरूष) कहीं उस स्त्री को देवता की दासी बनाकर पवित्रता का स्वांग भरा, कहीं मंदिरों में नृत्य कराकर कला की दुहाई दी, और कहीं केवल अपने मनोविनोद के लिए वस्तु मात्र बनकर अपने विचार में गुण ग्राहकता दिखाई।''

इस प्रकार पुरूष व हमेषा नारी पर हावी रहा। वैदिक काल में स्त्री को पुरूष के समान अधिकार

प्राप्त थे। ब्राह्मण युग में स्त्रियों में धार्मिक अधिकार पुरूष में खत्म कर दिये। बौद्धकाल में अनेक स्त्रियाँ निवाण की। खोज में भिक्षुणियाँ बनी पर सामाजिक क्षेत्र में उनकी स्थिति उत्तरोत्तर गिरती जा रही थी। मध्यकाल में नारी विलासिता का केन्द्र बन गई।''नारी की इस स्थिति के पीछे एक ओर देश की विशम परिस्थितियाँ थी तो दूसरी और पुरूष का भी इस दशा में कम हाथ नहीं था।'' रीतिकाल में नारी विषयक पुरूष दृष्टिकोण के बारे में डॉ0 नगेन्द्र का कथन है –''रीतिकाल में पुरूष को नारी विषेश की वैयक्तिक सत्ता से प्रेम नहीं था, उसके नारीत्व से प्रेम था।''

आधुनिक काल में स्वयं पुरूष ने नारी के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया। ब्रह्म समाज और आर्य समाज में स्त्रियों की शिक्षा और स्वाधीनता के प्रष्न को उठाया। धीरे–धीरे नारी विकास की ओर बढ़ती गई। राजनीति में भी पुरूष के साथ नारी ने भाग लिया। आज नारी निरन्तर आगे बढ़ रही है और उसने अपने खोए हुए व्यकितत्व को पुनः प्राप्त कर लिया है।

साहित्य के क्षेत्र में भी नारी ने अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय पुरूष के बराबर पुरूष स्थान बना लिया है। आज का लेखन महिला और पुरूष का विश्लेषण अलग–अलग करने लगा है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल के प्रारंभ तक लेखन के क्षेत्र में पुरूष की प्रधानता थी। महिला लेखिकाओं की संख्या बहुत कम थी। आधुनिक काल में महादेवी वर्मा ने साहित्य में उच्च स्थान बनाकर यह सिद्ध कर दिया है कि नारी पुरूष से साहित्य के क्षेत्र में पीछे नहीं रही है। वह नारी हृदय के प्रेम और व्यथा की कहानी जितने सजीव ढ़ंग से प्रस्तुत कर सकती है उतना पुरूष नहीं। नारी–नारी के दृष्टिकोण से नारी को चित्रित कर रही है। उसने उसके चित्रण में एक प्रामाणिकता तथा वास्तविकता का स्पर्श आ जाता है।

नारी और पुरूष समाज के दो अंग है। दोनों का व्यक्तित्व एक दूसरे से नितान्त भिन्न है। श्रेष्ठता अथवा हीनतरता का प्रष्न न उठाते हुए हम यहां केवल उसके पृथकत्व के प्रति संकेत कर रहे है। आधुनिक युग से पहले तथा आज भी पुरूष लेखक नारी को पुरूष दृष्टिकोण से देखते रहे है। आज नारी–नारी का चित्रण नारी दृष्टिकोण से कर रही है। उसके विशय नारी संबंधी ही है। इसमें पुरूष का चित्रण भी होता है।

'' (संज्ञा पु0) 1 – मनष्श्य । आदमी । 2 नर। किस पुश्त या पीढ़ी का कोई प्रतिनिधि। 3. सांख्य में एक अकर्त तथा असंग चेतन–पदार्थ जो प्रकृति से भिन्न तथा उसका पूरक अड़ा माना गया है। आत्मा। 4. विष्णु, 5. सूर्य । छ जीव। □. परमात्मा, 5. शिव

6. पुन्नागवृक्ष । 10, पारा, 11 घोड़े का अगले पैर उठाकर पिछले पैरों के बल खड़े होने की स्थिति । सीख। पांव 12. व्याकरण में सर्वनाम और उसके साथ आने वाली क्रियाओं के रूपों का वह भेद जिससे यह माना जाता है कि सर्वनाम अथवा क्रिया पद का प्रयोग वक्ता (कहने वाले) के लिए हुआ है अथवा श्रोता या सम्बोधन करने वाले के लिए जैसे – मैं उत्तम पुरूष है 'तुम' मध्यम पुरूष और 'वह' अन्य पुरूष । 13 – पति । स्वामी । 14 पूर्वज।''

निष्कर्ष

समाज में नारी और पुरूष का अपना स्वतंत्र महत्व है। संघर्ष, द्वन्द्व, विद्रोह का प्रभाव समाज पर अवश्य पड़ता है और व्यक्ति जीवन इससे प्रभावित न हो, असंभव है। समाज में राजनैतिक स्तर पर कुछ न कुछ उथल–पुथल निरंतर चलती रहती है, यही समाज की गतिशीलता का द्योतक है। स्वतंत्रतापूर्व इसका स्वरूप कुछ अन्य था और

स्वतंत्रता के उपरांत इसका रूप भिन्न है।

नारी का मूल्य–शरत् साहित्य, 15वां भाग, पृ0 16

बाणभट्ट की आत्मकथा (प्र0 स0) पृ0 110

डॉ0 सूतदेव हँस, उपन्यासकार चतुरसेन के नारी पात्र, पृ0 2

डॉ0 उमेश माथुर, आधुनिक युग की हिन्दी लेखिकाएँ, पृ0 27

क्मला रत्नम, कमला देवी, एक समर्पित व्यक्तित्व, पृ. 83

डॉ0 सूतदेव हंस, चतुरसेन षास्त्री के नारी–पात्र, पृ0 1

वमन शिव आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 841

महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, पृ0 32

डॉ0 श्याम सुन्दर दास, हिन्दी शब्द सागर, काशी ना0 प्र0 स0 1969, पृ0 3051

डॉ0 रामचन्द्र वर्मा : मान हिन्दी कोश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयोग, सन् 1964, तृतीय खण्ड, पृ. 539

आचार्य भरत मुनि, नाट्य शास्त्र, 34वां अध्याय, पृ0 457

शोभाविलासो, माधुर्य, स्थैर्य, गम्भीर्यमेव, च ललितचत्योगादार्थ तेजाष्टाविति पोरूष।'' अग्निपुराण – 3, पृ0क0 47

महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़िया, पृ0 90

डॉ0 शैल रस्तोगी, हिन्दी उपन्यासों में नारी, पृ0 10

डॉ0 नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका

नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ. 155

luxmisidhu95@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 69-73
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ ਵਿੱਚ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਿੰਬ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ

-Dr. Lakhwinder Kaur, Assistant Professor
-Gurbhej Singh, Research Scholar,
CT University Ludhiana Punjab

ਆਪਣੇ ਆਰੰਭਿਕ ਦੌਰ ਤੋਂ ਲੈਕੇ ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ ਜਿਸ ਮੁਕਾਮ 'ਤੇ ਅੱਜ ਪਹੁੰਚਿਆ ਹੈ, ਉਸ ਵਿੱਚ ਧਾਰਮਿਕ ਨਾਟਕਾਂ ਦਾ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਯੋਗਦਾਨ ਰਿਹਾ ਹੈ । ਆਧੁਨਿਕ ਮਨੁੱਖ ਆਪਣੇ ਵਿਅਕਤੀਗਤ ਵਿਕਾਸ ਵੱਲ ਜ਼ਿਆਦਾ ਧਿਆਨ ਦੇ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਉਸ ਦੀ ਰੁਚੀ ਧਰਮ ਨਾਲੋਂ ਦਿਨੋਂ-ਦਿਨ ਘੱਟ ਰਹੀ ਹੈ । ਧਰਮ ਤਾਂ ਕੇਵਲ ਬਾਹਰਲੇ ਵਿਖਾਵੇ ਤੱਕ ਸੀਮਤ ਰਹਿ ਗਿਆ ਹੈ। ਅਜੋਕੇ ਮਨੁੱਖ ਕੋਲ ਕਲਾ ਦੇ ਖੇਤਰ ਵਿੱਚ ਆਪਣੇ ਮਨੋਰੰਜਨ ਲਈ ਕਈ ਸਾਧਨ ਹਨ ਜਿਵੇਂ : ਫਿਲਮਾਂ, ਟੀ.ਵੀ. ਅਤੇ ਮੋਬਾਇਲ । ਮਨੁੱਖ ਆਪਣੇ ਆਤਮਿਕ ਉਦੇਸ਼ ਜਾਂ ਜੀਵਨ ਉਦੇਸ਼ ਤੋਂ ਭਟਕ ਚੁੱਕਾ ਹੈ ਅਜਿਹੇ ਵਾਤਾਵਰਨ ਵਿੱਚ ਮਨੁੱਖੀ ਜੀਵਨ ਨੂੰ ਇੱਕ ਵੱਖਰੀ ਸੇਧ ਦੇਣ ਲਈ ਧਾਰਮਿਕ ਨਾਟਕਾਂ ਦਾ ਜਨਮ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਇਹ ਧਾਰਮਿਕ ਨਾਟਕ ਲੋਕਾਈ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਜੀਵਨ ਦੇ ਉਦੇਸ਼ਾਂ ਅਤੇ ਵਿਰਸੇ ਨਾਲ ਜੁੜਨ ਲਈ ਪ੍ਰੇਰਿਤ ਕਰਦੇ ਹਨ। ਸਿੱਖ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬਾਨਾਂ ਦੀਆਂ ਮਨਾਈਆਂ ਗਈਆਂ ਜਨਮ-ਸ਼ਤਾਬਦੀਆਂ ਅਤੇ ਸ਼ਹੀਦੀ ਸ਼ਤਾਬਦੀਆਂ ਦੇ ਸੰਬੰ

ਧ ਵਿੱਚ ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕਕਾਰਾਂ ਨੇ ਗੁਰੂ ਸਾਹਿਬਾਨਾਂ ਅਤੇ ਹੋਰ ਮਹਾਂਪੁਰਸ਼ਾਂ ਦੇ ਜੀਵਨ ਸਬੰਧੀ ਅਨੇਕਾਂ ਨਾਟਕਾਂ ਦੀ ਰਚਨਾ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਇਸ ਹੱਥਲੇ ਖੋਜ-ਪਰਚੇ ਵਿੱਚ 'ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ ਵਿੱਚ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਬਿੰਬ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ' ਨੂੰ ਉਘਾੜਨ ਦਾ ਯਤਨ ਕੀਤਾ ਜਾਵੇਗਾ।

ਸਭ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਅਸੀਂ ਡਾ. ਹਰਚਰਨ ਸਿੰਘ ਦੁਆਰਾ ਰਚਿਤ ਨਾਟਕ 'ਪੁੰਨਿਆ ਦਾ ਚੰਨ' ਨੂੰ ਵਿਚਾਰਦੇ ਹਾਂ। ਇਹ ਨਾਟਕ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਜਨਮ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਦੇ ਸਮਾਜਿਕ ਜੀਵਨ ਦੇ ਚਿੱਤਰ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਨਾਟਕ ਵਿੱਚ ਉਸ ਸਮੇਂ ਮੁਗਲ ਹਾਕਮਾਂ ਦੁਆਰਾ ਆਮ ਲੋਕਾਂ ਨਾਲ ਕੀਤੇ ਜਾਂਦੇ ਦੁਰਵਿਵਹਾਰ ਨੂੰ ਚਿਤਰਿਆ ਗਿਆ ਹੈ। ਆਮ ਜਨਤਾ ਉੱਤੇ ਇੰਨੇ ਜ਼ਿਆਦਾ ਅੱਤਿਆਚਾਰ ਹੋ ਰਹੇ ਸਨ ਕਿ ਉਹਨਾਂ ਦਾ ਜਿਉਣਾ ਨਰਕ ਸਮਾਨ ਸੀ। ਕਿਸਾਨ ਤੇ ਮਜ਼ਦੂਰ ਹੱਡ ਤੋੜਵੀਂ ਮਿਹਨਤ-ਮੁਸ਼ੱਕਤ ਕਰਦੇ ਸਨ ਪਰ ਫਿਰ ਵੀ ਉਹਨਾਂ ਦੇ ਹੱਥ ਖ਼ਾਲੀ ਰਹਿ ਜਾਂਦੇ ਸਨ। ਲੋਕ ਭੁੱਖ-ਪਿਆਸ ਨਾਲ ਵਿਲਕਦੇ ਦਿਨ ਗੁਜ਼ਾਰ ਰਹੇ ਸਨ। ਮੁਗਲ ਸਾਮਰਾਜ ਦੇ ਬੁਰੇ ਸਲੂਕ ਕਾਰਨ ਕਿਸਾਨ ਆਪਣੀਆਂ ਜਮੀਨਾਂ ਛੱਡ ਕੇ ਭੱਜ ਰਹੇ ਸਨ । ਉਸ ਸਮੇਂ ਮੁਗਲਾਂ ਦੀਆਂ ਫੌਜਾਂ ਲੋਕਾਂ ਦੀਆਂ ਧੀਆਂ-ਭੈਣਾਂ ਨੂੰ ਚੁੱਕ ਕੇ ਲੈ ਜਾਂਦੇ ਸਨ ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਇੱਜ਼ਤ ਨੂੰ ਖਤਰਾ ਰਹਿੰਦਾ ਸੀ। ਸਰਬ ਲੋਕਾਈ ਆਪਣੇ ਧਰਮ ਤੇ ਇੱਜ਼ਤ ਨੂੰ ਬਹੁਤ ਪਿਆਰ ਕਰਦੀ ਸੀ ਪਰੰਤੂ ਮੁਗਲਾਂ ਦੁਆਰਾ ਲੋਕਾਂ ਨਾਲ ਬਹੁਤ ਧੱਕਾ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਸੀ। ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਧੱਕੇ ਨਾਲ ਧਰਮ ਬਦਲਾਉਣ ਲਈ ਮਜ਼ਬੂਰ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਸੀ।

ਹਿੰਦੂ ਧਰਮ ਦੇ ਲੋਕਾਂ ਨਾਲ ਇੰਨੀ ਧੱਕੇਸ਼ਾਹੀ ਤੇ ਮਾੜਾ ਵਿਵਹਾਰ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਸੀ ਕਿ ਉਹ ਆਪਣੀ ਮਰਜ਼ੀ ਮੁਤਾਬਿਕ ਕੁੱਝ ਵੀ ਖਾ-ਪੀ ਨਹੀਂ ਸਕਦੇ ਸੀ ਅਤੇ ਨਾ ਹੀ ਪਹਿਨ ਸਕਦੇ ਸਨ । ਜੇਕਰ ਉਹ ਮੁਸਲਮਾਨ ਧਰਮ ਨੂੰ ਅਪਨਾਉਣ ਤੋਂ ਇਨਕਾਰ ਕਰਦੇ ਸਨ ਤਾਂ ਉਹਨਾਂ ਨੂੰ ਮਾਰ ਦਿੱਤਾ ਜਾਂਦਾ ਸੀ । ਹਿੰਦੂਆਂ ਦੇ ਕਈ ਮੰਦਰ ਵੀ ਤੈਮੂਰ ਬਾਦਸ਼ਾਹ ਦੁਆਰਾ ਢਾਹ ਦਿੱਤੇ ਗਏ ਸਨ । ਨਾਟਕ ਦੇ ਅੰਤ ਵਿੱਚ ਜਦੋਂ ਬਾਬਾ ਮੂਲਾ ਮੁਗਲੋਂ ਹੱਥੋਂ ਮਾਰਿਆ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਉਹ ਮਰਦਾ ਹੋਇਆ ਇਹ ਬੋਲ ਆਖਦਾ ਹੈ:

ਮੂਲਾ: ਮੌਤ ਦਾ ਮੈਨੂੰ ਕੋਈ ਗਮ ਨਹੀਂ । ਖ਼ੂਨ ਆਜਾਈ ਨਹੀਂ ਜਾਵੇ ।
ਜ਼ੋਰ ਜ਼ੁਲਮ ਵਿਰੁੱਧ ਹੱਕ ਦਾ ਨਾਹਰਾ ਮਾਰਨ ਵਾਲਾ
ਕਾਮਲ ਮਰਦ ਪੈਦਾ ਹੋ ਚੁੱਕਾ........ ।[1]

ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਨਾਟਕ ਦੇ ਅਖੀਰ 'ਤੇ ਪੁੰਨਿਆ ਵਾਲੇ ਦਿਨ ਹੁੰਦਾ ਵਿਖਾਇਆ ਗਿਆ ਹੈ ਜਿਹਨਾਂ ਦੇ ਅਵਤਾਰ ਧਾਰਨ ਕਰਨ ਨਾਲ ਸਮਾਜ ਵਿੱਚ ਰੋਸ਼ਨੀ ਹੁੰਦੀ ਵਿਖਾਈ ਗਈ ਹੈ ।

'ਮਿਟੀ ਧੁੰਧ ਜਗਿ ਚਾਨਣ ਹੋਆ' ਇਹ ਨਾਟਕ 'ਪੁੰਨਿਆ ਦਾ ਚੰਨ' ਦਾ ਹੀ ਅਗਲਾ ਭਾਗ ਹੈ । ਜਿੱਥੇ ਪਹਿਲੇ ਭਾਗ ਵਿੱਚ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਅਵਤਾਰ ਧਾਰਨ ਕਰਨ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਦੇ ਸਮਾਜਿਕ ਜੀਵਨ ਨੂੰ ਚਿਤਰਿਆ ਗਿਆ ਹੈ ਉੱਥੇ ਹੀ ਇਹ ਨਾਟਕ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਜਨਮ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਦੇ ਸਮਾਜਿਕ ਜੀਵਨ ਨੂੰ ਚਿਤਰਦਾ ਹੈ । ਇਸੇ ਤਰ੍ਹਾਂ ਡਾ. ਹਰਚਰਨ ਸਿੰਘ ਆਪਣੇ ਇਸ ਨਾਟਕ ਵਿੱਚ ਦਰਸ਼ਕਾਂ ਨਾਲ ਸੰਵਾਦ ਰਚਾਉਣ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ ਜੀ ਦੀ ਵਾਰ ਵਿੱਚੋਂ ਲਈਆਂ ਇਹ ਤੁਕਾਂ ਲਿਖਦੇ ਹਨ :

"ਸਤਿਗੁਰ ਨਾਨਕ ਪ੍ਰਗਟਿਆ ਮਿਟੀ ਧੁੰਧ ਜਗਿ ਚਾਨਣ ਹੋਆ ।
ਜਿਉ ਕਰਿ ਸੂਰਜੁ ਨਿਕਲਿਆ ਤਾਰੇ ਛਪੇ ਅੰਧੇਰ ਪਲੋਆ ।
ਸਿੰਘ ਬੁਕੇ ਮਿਰਗਾਵਲੀ ਭੰਨੀ ਜਾਇ ਨਾਲ ਧੀਰਿ ਧਰੋਆ ।
ਜਿਥੈ ਬਾਬਾ ਪੈਰ ਧਰੈ, ਪੂਜਾ ਆਸਣੁ ਥਾਪਣਿ ਸੋਆ ।"[2]

ਇਸ ਨਾਟਕ ਵਿੱਚ ਇਹ ਦਰਸਾਇਆ ਗਿਆ ਹੈ ਕਿ ਕਿਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਆਮ ਲੋਕ ਜਾਦੂਗਰਾਂ ਦੇ ਪਿੱਛੇ ਲੱਗੇ ਹੋਏ ਸਨ ਅਤੇ ਅੰਧ-ਵਿਸ਼ਵਾਸ਼ਾਂ ਵਿੱਚ ਫਸ ਕੇ ਆਪਣੇ ਜੀਵਨ ਨੂੰ ਤਬਾਹ ਕਰਨ ਵਿੱਚ ਲੱਗੇ ਹੋਏ ਸਨ । ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਗੁਰੂ ਜੀ ਬਾਰੇ ਮਦਾਰੀ ਤੇ ਜਮੂਰਾ ਤੋਂ ਸੁਣ ਕੇ ਮਾਈ ਨੂਰਸ਼ਾਹ ਵੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਦਰਸ਼ਨ ਕਰਨ ਦੀ ਇੱਛਾ ਬਾਰੇ ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ:

ਨੂਰਸ਼ਾਹ : ਕੀ ਤੂੰ ਬਾਬਾ ਨਾਨਕ ਜੀ ਨੂੰ ਜਾਣਦਾ ਹੈ?
ਮਦਾਰੀ : ਹਾਂ, ਚੰਗੀ ਤਰ੍ਹਾਂ
ਨੂਰਸ਼ਾਹ : ਉਨ੍ਹਾਂ ਦਾ ਜਨਮ-ਸਥਾਨ ਦੇਖਿਆ ਹੈ?
ਮਦਾਰੀ : ਹਾਂ । ਰਾਇ ਭੋਇੰ ਦੀ ਤਲਵੰਡੀ ਮੈਂ ਕਈ ਦਫ਼ਾ
ਤਮਾਸ਼ਾ ਕਰ ਆਇਆ ਹਾਂ ।"[3]

ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਨੂਰਸ਼ਾਹ ਆਖਦੀ ਹੈ ਕਿ ਉਸ ਬਾਬੇ ਨਾਨਕ ਨੇ ਮੇਰੇ ਮਨ ਦੇ ਕਪਾਟ ਖੋਲ੍ਹ ਦਿੱਤੇ ਹਨ ਅਤੇ ਮੇਰੀ ਤਰ੍ਹਾਂ ਤੁਹਾਡੇ ਅੰਦਰ ਵੀ ਚਾਨਣ ਜਲਦੀ ਹੀ ਜਾਵੇਗਾ । ਜੋਗੀ ਬਾਰੇ ਦੱਸਿਆ ਗਿਆ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਕਿਵੇਂ ਆਮ ਭੋਲੇ-ਭਾਲੇ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਵਹਿਮਾਂ-ਭਰਮਾਂ ਵਿੱਚ ਫਸਾ ਰਿਹਾ ਹੈ ਤੇ ਉਹ ਰਾਜੇ ਦੇ ਸਾਰੇ ਦੁੱਖ ਦੂਰ ਕਰਨ ਬਾਰੇ ਵੀ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ । ਇਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਉੱਥੇ ਹੀ ਉਸ ਦੀ ਗੱਲਬਾਤ ਮਾਈ ਨੂਰਸ਼ਾਹ ਨਾਲ ਹੋਣ ਲੱਗਦੀ ਹੈ ਤੇ ਉਹ ਉਸਨੂੰ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਬਾਰੇ ਆਖਦੀ ਹੈ ਤੇ ਜੋਗੀ ਨੂੰ

ਕਹਿੰਦੀ ਹੈ ਕਿ ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਸਿੱਧਾਂ ਨਾਲ ਗੋਸ਼ਟ ਕਰਾਉ । ਜਦੋਂ ਮਾਈ ਨੂਰਸ਼ਾਹ ਨਾਲ ਪ੍ਰੋਹਤ ਗੱਲਬਾਤ ਕਰਦਾ ਹੈ ਤੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਬਾਰੇ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਸ ਨੂੰ ਪਤਾ ਨਹੀਂ ਕੀ ਹੋ ਗਿਆ ਹੈ ਉਹ ਆਖਦਾ ਹੈ :

ਪ੍ਰੋਹਤ : ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਚੁਰਾਹੇ ਵਿਚ ਖੜ ਕੇ ਕਹਿ ਰਿਹਾ ਹੈ :

"ਨਾ ਕੋਈ ਹਿੰਦੂ ਹੈ ਨਾ ਮੁਸਲਮਾਨ ।

ਦੇਵੀ ਦੇਵਤੇ ਸਭ ਬ੍ਰਾਹਮਣਾਂ ਦੇ ਵਹਿਮ ਭਰਮ ਹਨ ।

ਸੰਸਾਰ ਵਿੱਚ ਇੱਕੋ ਰੱਬ ਦਾ ਨੂਰ ਹੈ ।

ਕੋਈ ਉਚ ਨੀਚ ਨਹੀਂ ।

ਫਿਰ ਪ੍ਰੋਹਤ ਜਦੋਂ ਮੰਤਰੀ ਨਾਲ ਗੱਲ ਕਰਦਾ ਹੈ ਤੇ ਆਖਦਾ ਹੈ

ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਰਾਜਿਆਂ ਬਾਰੇ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ :

ਕਲਜੁਗ ਦੇ ਰਾਜੇ ਕਸਾਈ ਨੇ,

"ਰਾਜੇ ਸ਼ੀਹ ਮੁਕਦਮ ਕੁੱਤੇ ।।"[4]

ਇਸ ਨਾਟਕ ਵਿੱਚ ਇਹ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ ਕਿ ਕਿਸ ਪ੍ਰਕਾਰ ਮਾਈ ਨੂਰਸ਼ਾਹ ਜਾਦੂ-ਟੂਣਿਆਂ ਤੇ ਜੰਤਰਾਂ-ਮੰਤਰਾਂ ਵਿੱਚ ਵਿਸ਼ਵਾਸ਼ ਰੱਖਦੀ ਸੀ ਤੇ ਲੋਕਾਂ ਨੂੰ ਆਪਣੀਆਂ ਚਾਲਾਂ ਵਿੱਚ ਫਸਾ ਲੈਂਦੀ ਸੀ ਤੇ ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਭੂਮੀਆਂ ਜੋ ਚੋਰੀਆਂ ਕਰਦਾ ਸੀ ਤੇ ਰਾਜਾ ਵੀ ਹਉਮੈਂ ਤੇ ਹੰਕਾਰੀ ਬਿਰਤੀ ਵਾਲਾ ਸੀ ਇਹਨ੍ਹਾਂ ਸਾਰਿਆਂ ਉੱਤੇ ਜਦੋਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਕਿਰਪਾ ਹੋ ਜਾਂਦੀ ਤਾਂ ਉਹ ਸਾਰੇ ਹੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਮੁਰੀਦ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਹਨ । ਰਾਜਾ ਵੀ ਅੰਤ ਵਿੱਚ ਆਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ਮੇਰੀ ਜਾਦੂ-ਨਗਰੀ ਵਿੱਚੋਂ ਧੁੰਧ ਮਿਟ ਗਈ ਹੈ ਅਤੇ ਗਿਆਨ ਦਾ ਚਾਨਣ ਪਸਰ ਗਿਆ ਹੈ ।

ਸ.ਸ. ਅਮੋਲ ਦੁਆਰਾ ਰਚਿਤ ਨਾਟਕ 'ਪਤਿਤ ਪਾਵਨ' ਦਾ ਸੰਬੰਧ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਜਨਮ ਨਾਲ ਹੈ । ਇਹ ਨਾਟਕ ਨਾਟਕਕਾਰ ਨੇ ਡਾ. ਹਰਚਰਨ ਸਿੰਘ ਦੇ ਨਾਟਕ 'ਪੁੰਨਿਆ ਦਾ ਚੰਨ' ਤੋਂ ਪ੍ਰੇਰਿਤ ਹੋ ਕੇ ਲਿਖਿਆ ਹੈ । ਇਹ ਨਾਟਕ ਵੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਜਨਮ ਸਮੇਂ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਨੂੰ ਬਿਆਨ ਕਰਦਾ ਹੈ । ਇਸ ਨਾਟਕ ਨੂੰ ਲਿਖਣ ਦਾ ਉਦੇਸ਼, "ਕੇਵਲ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਸਾਹਿਬ ਦੇ ਅਵਤਾਰ ਧਾਰਨ ਵਾਲੇ ਸਮੇਂ ਨੂੰ ਹੀ ਉਘਾੜਨ ਤੱਕ ਸੀਮਤ ਹੈ ।"[5] 'ਨਾਟਕ ਵਿੱਚ ਪੇਸ਼ ਸਥਿਤੀ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਜਦੋਂ ਫ਼ਕੀਰ ਉਸ ਪਰਮਾਤਮਾ ਨੂੰ ਆਖਦਾ ਹੈ ਕਿ ਤੂੰ ਹੀ ਹਿੰਦੂ ਤੂੰ ਹੀ ਮੋਮਨ ਸਭ ਕੁਝ ਤੂੰ ਹੀ ਹੈ ਤੇ ਉਸ ਦੀ ਮਾਂ ਉਸ ਨੂੰ ਰੋਕਦੀ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਦੀਆਂ ਗੱਲਾਂ ਕਰਨਾ ਛੱਡ ਦੇ ਤੇ ਉਹ ਨਹੀਂ ਛੱਡਦਾ । ਫ਼ਕੀਰ ਦੀ ਮਾਂ ਨੂੰ ਡਰ ਹੈ ਕਿ ਕਿਤੇ ਕੋਈ ਉਸ ਦੇ ਪੁੱਤਰ ਨੂੰ ਹੀ ਮਾਰ ਨਾ ਦੇਵੇ ।

ਇਸ ਨਾਟਕ ਵਿੱਚ ਉਸ ਸਮੇਂ ਦੀ ਬਹੁਤ ਹੀ ਬੁਰੀ ਸਮਾਜਿਕ ਸਥਿਤੀ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ । ਜਦ ਸੂਦਰਾਂ ਨਾਲ ਬਹੁਤ ਹੀ ਬੁਰਾ ਵਰਤਾਉ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਉਹ ਆਖਦਾ ਹੈ :

ਸੂਦਰ : ਈਸ਼ਵਰ ਕੋਈ ਮਹਾਨ ਆਤਮਾ ਭੇਜੇਗਾ । ਔਹ ਕੋਈ ਪਤਿਤ ਪਾਵਨ ਆ ਰਿਹਾ ਏ । ਉਹ ਸਾਨੂੰ ਕੁਚਲਿਆਂ ਨੂੰ ਗਲ ਲਾਏਗਾ । ਤੁਹਾਡੇ ਬਣਾਏ ਨੀਚਾਂ ਨੂੰ ਉਚ-ਕਰੇਗਾ ਤੇ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਭੂਤ ਨਾਲ ਲੋਕ ਭਰਿਸ਼ਟੇ ਜਾਂਦੇ ਨੇ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਹੀ ਲੋਕ ਗਲ ਲਾਉਣਗੇ ।"[6]

ਬਲਵੰਤ ਗਾਰਗੀ ਦੁਆਰਾ ਰਚਿਤ 'ਗਗਨ ਮੈ ਥਾਲੁ' ਅਜਿਹਾ ਨਾਟਕ ਹੈ ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਜੀਵਨ ਕਾਲ ਨਾਲ ਸਬੰਧਤ ਘਟਨਾਵਾਂ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ । ਨਾਟਕ ਦੇ ਪਹਿਲੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਵਿੱਚ ਨਟੀ ਤੇ ਸੂਤਰਧਾਰ ਦੀ ਵਾਰਤਾਲਾਪ ਨੂੰ ਬਿਆਨ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ । ਰਬਾਬੀਆਂ ਦੀ ਟੋਲੀ ਜੋ ਕਲਿਜੁਗ ਰਥੁ ਅਗਨਿ ਕਾ ਕੂੜੁ ਆਗੈ ਰਥਾਵਹੁ" ਵਾਲਾ ਸ਼ਬਦ ਗਾਉਂਦੀ ਹੋਈ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਕਰਦੀ ਹੈ ਤੇ ਉਸ ਦਾ ਮੁੱਖੀ ਦੱਸਦਾ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਨਨਕਾਣਾ ਸਾਹਿਬ (ਪਾਕਿਸਤਾਨ) ਤੋਂ ਆਏ ਹਨ, "ਅੱਜ ਅਸੀਂ ਆਪਣੇ ਵਿਛੜੇ ਵਤਨ ਵਿੱਚ ਤੁਹਾਡੇ ਕੋਲ ਇਸ ਲਈ ਆਏ ਹਾਂ ਕਿ ਗੁਰੂ ਦੀ ਬਾਣੀ ਨੂੰ ਫਿਰ ਲੋਕਾਂ ਤੱਕ ਪੁਜਾਈਏ ।"[7]

ਨਾਟਕ ਦੇ ਦੂਜੇ ਅੰਕ ਵਿੱਚ ਮਲਕ ਭਾਗੋ ਵਾਲੀ ਸਾਖੀ ਬਾਬਰ ਦੇ ਹਮਲੇ ਬਾਰੇ ਭਵਿੱਖ ਬਾਣੀ, ਬਾਬਰ ਦਾ ਹਮਲਾ, ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨੂੰ ਕੈਦੀ ਬਣਾਇਆ ਜਾਣਾ ਅਤੇ ਅਖੀਰਲੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ ਵਿੱਚ ਬ੍ਰਾਹਮਣ ਜੋ ਪਹਿਲੇ ਅੰਕ ਵਿੱਚ ਅਛੂਤਾਂ ਦੇ ਪਰਛਾਵਾਂ ਤੋਂ ਵੀ ਡਰਦਾ ਸੀ ਦਾ ਬਦਲਾਵ ਹੋਇਆ ਦਿਖਾਇਆ ਗਿਆ ਹੈ ਤੇ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਕਰਤਾਰਪੁਰ ਜਾ ਕੇ ਵਸਣ ਬਾਰੇ ਦਰਸਾਇਆ ਗਿਆ ਹੈ ।

ਗੁਰਚਰਨ ਸਿੰਘ ਜਸੂਜਾ ਦੁਆਰਾ ਰਚਿਤ 'ਚੜਿਆ ਸੋਧਣ ਧਰਤਿ ਲੁਕਾਈ' ਇਕ ਬਹੁਚਰਚਿਤ ਨਾਟਕ ਹੈ । ਇਸ ਨਾਟਕ ਵਿੱਚ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਸਮੇਂ ਵਿੱਚ ਆਮ ਲੋਕਾਂ ਨਾਲ ਕੀਤੇ ਜਾਂਦੇ ਮਾੜੇ ਵਿਵਹਾਰ ਅਤੇ ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਕੀਤੀ ਜਾਂਦੀ ਲੁੱਟ-ਖਸੁੱਟ ਨੂੰ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ । ਜਦੋਂ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਵੇਈ ਨਦੀ ਵਿੱਚ ਇਸ਼ਨਾਨ ਕਰਨ ਗਏ ਵਾਪਸ ਨਹੀਂ ਪਰਤਦੇ ਤਾਂ ਉਹਨਾਂ ਦੇ ਪਿੱਛੋਂ ਉਹਨਾਂ ਦੇ ਪਰਿਵਾਰ ਅਤੇ ਸਰਬ ਲੋਕਾਈ ਦਾ ਬਹੁਤ ਮਾੜਾ ਹਾਲ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਤੇ ਉਹਨਾਂ ਦੇ ਮਨਾਂ ਵਿੱਚ ਕਈ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੇ ਵਿਚਾਰ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਕਰਦੇ ਹਨ । ਜਦੋਂ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਬਾਰੇ ਕੁੱਝ ਵੀ ਪਤਾ ਨਹੀਂ ਲੱਗਦਾ ਕਿ ਉਹ ਤਿੰਨ ਦਿਨ ਕਿੱਥੇ ਅਲੋਪ ਹੋ ਗਏ ਹਨ ਤੇ ਪਰਮਾਨੰਦ ਤੇ ਪੰਡਤ ਨਿਧਾ ਨਾਲ ਗੱਲ ਕਰਦਿਆਂ ਸਮੇਂ ਨਾਟਕਕਾਰ ਨੇ ਪਿੱਛਲ ਝਾਤ ਦੀ ਵਿਧੀ ਰਾਹੀਂ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਬਚਪਨ ਵਾਲੀ ਸੱਚੇ ਸੌਦੇ ਵਾਲੀ ਸਾਖੀ ਬਾਰੇ ਵੀ ਦੱਸਿਆ ਹੈ । ਇਸ ਨਾਟਕ ਵਿੱਚ ਉਸ ਸਮੇਂ ਦੀ ਸਮਾਜਿਕ ਹਾਲਤ ਪੇਸ਼ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ ਜਦੋਂ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਤਿੰਨ ਦਿਨ ਤੱਕ ਵਾਪਿਸ ਨਹੀਂ ਆਉਂਦੇ ਤੇ ਨਵਾਬ ਦੌਲਤ ਖਾਂ ਲੋਧੀ ਮੋਦੀਖਾਨੇ ਦੀ ਪੜਤਾਲ ਕਰਵਾਉਂਦਾ ਹੈ ਤੇ ਕਹਿੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਮੋਦੀ (ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ) ਨੇ ਮੋਦੀਖਾਨੇ ਵਿੱਚ ਹੇਰਾ ਫੇਰੀ ਕੀਤੀ ਹੈ ਤੇ ਗਾਇਬ ਹੋ ਗਿਆ ਹੈ ਤੇ ਜਿਸ ਕਰਕੇ ਉਹ ਬੀਬੀ ਨਾਨਕੀ ਦੇ ਪਤੀ ਜੈ ਰਾਮ ਨੂੰ ਫੜ੍ਹਨ ਲਈ ਭੇਜਦਾ ਹੈ । ਨਾਟਕ ਦੇ ਤੀਜੇ ਐਕਟ ਵਿੱਚ ਸੁਲਤਾਨਪੁਰ ਦਾ ਨਵਾਬ ਜਦੋਂ ਆਪਣੀ ਬੇਗਮ ਨੂੰ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਬਾਰੇ ਦੱਸਦਾ ਹੈ ਤਾਂ ਉਹ ਗੁਰੂ ਜੀ ਦੇ ਦਰਸ਼ਨਾਂ ਲਈ ਤਰਸਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਉਹ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨਾਲ ਗੱਲਾਂ ਕਰ ਰਿਹਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ :

ਨਵਾਬ : ਮੈਨੂੰ ਇਹ ਕੀ ਹੋ ਗਿਆ ਹੈ ਉਹਨਾਂ ਦੇ ਦੀਦਾਰ ਵਿੱਚ
ਕੋਈ ਅਜੀਬ ਕਸ਼ਸ਼ ਹੈ । ਦਿਲ ਕਰਦਾ ਹੈ... ਦਿਲ
ਕਰਦਾ ਹੈ ਨਾਨਕ ਮਹਾਰਾਜ ਦੇ ਕਦਮ ਚੁੰਮ ਲਵਾਂ... ।[8]

ਅੰਤ ਵਿੱਚ ਇਹ ਸਪੱਸ਼ਟ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ ਵਿੱਚ ਧਾਰਮਿਕ ਨਾਟਕਾਂ ਦਾ ਅਹਿਮ ਯੋਗਦਾਨ ਹੈ । ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਨਾਲ ਸਬੰਧਤ ਕਈ ਨਾਟਕਕਾਰਾਂ ਦੇ ਨਾਟ ਰਚਨਾਵਾਂ ਕੀਤੀਆਂ ਹਨ । ਇਹਨਾਂ ਨਾਟ ਰਚਨਾਵਾਂ ਰਾਹੀਂ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ ਦੇ ਉਪਦੇਸ਼ਾਂ ਨੂੰ ਦੱਸਿਆ ਗਿਆ ਹੈ ਕਿ ਕਿਰਤ ਕਰਨਾ ਤੇ ਵੰਡ ਛਕਣਾ, ਬੇਇਮਾਨੀ ਨਾ ਕਰਨਾ, ਗਰੀਬਾਂ ਤੇ ਲੋੜਵੰਦਾਂ ਦੀ ਸਹਾਇਤਾ ਕਰਨੀ । ਇਹ ਨਾਟਕ ਸਰਬ ਲੋਕਾਈ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਵਿਰਸੇ ਨਾਲ ਜੁੜਨਾ ਲਈ ਪ੍ਰੇਰਿਤ ਵੀ ਕਰਦੇ ਹਨ।

ਹਵਾਲੇ ਤੇ ਟਿੱਪਣੀਆਂ

1. 1 ਹਰਚਰਨ ਸਿੰਘ (ਡਾ.) ਪੁੰਨਿਆ ਦੀ ਚੰਨ, ਸਿੰਘ ਬ੍ਰਦਰਜ਼, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, 1969, ਪੰਨਾ 87
2. 2 ਭਾਈ ਗੁਰਦਾਸ ਜੀ, ਵਾਰਾਂ, ਸ਼੍ਰੋਮਣੀ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਪ੍ਰਬੰਧਕ ਕਮੇਟੀ, 1998, ਪਉੜੀ 27
3. 3 ਹਰਚਰਨ ਸਿੰਘ (ਡਾ.)ਮਿਟੀ ਧੁੰਧ ਜਗਿ ਚਾਨਣ ਹੋਆ, ਸਿੰਘ ਬ੍ਰਦਰਜ਼, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, 1969, ਪੰਨਾ 40
4. 4 ਉਹੀ, ਪੰਨਾ 66
5. 5 ਅਮਰ, ਆਤਮਜੀਤ ਸਿੰਘ (ਪ੍ਰੋ:) ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਨਾਟ-ਅਧਿਐਨ , ਅਮੋਲ ਸਾਹਿਤ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, ਪੰਨਾ 29
6. 6 ਸ.ਸ. ਅਮੋਲ, ਪਤਿਤ ਪਾਵਨ, ਗੁਰਬਖਸ਼ ਸਿੰਘ ਜ਼ੰਜੂਆ, ਅਵਾਮੀ ਪ੍ਰਿਟਿੰਗ ਪ੍ਰੈਸ ਈ.ਜੀ. ਰੋਡ, ਜਲੰਧਰ, 1957, ਪੰਨਾ99
7. 7 ਬਲਵੰਤ ਗਾਰਗੀ, ਗਗਨੁ ਮੈ ਥਾਲ, ਨਵਯੁਗ ਪਬਲਿਸ਼ਰਜ਼, ਚਾਂਦਨੀ ਚੌਕ ਦਿੱਲੀ, 1970, ਪੰਨਾ 26
8. 8 ਗੁਰਚਰਨ ਸਿੰਘ, ਚੜਿਆ ਸੋਧਣ ਧਰਤਿ ਲੁਕਾਈ, ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਅਕਾਦਮੀ, ਲੁਧਿਆਣਾ, 1969, ਪੰਨਾ 51

Gurbhej Singh s@o Nand Singh
Hargobind Nagar
St No-®v, Back Side Of Chand Marriage Palace
Tehsil and district- Faridkot Pin Code- vzvw®Û Punjab
Email id- gurshergillÀy@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 74-78
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'हंस' सम्पादकीय दृष्टि और हाशिए का विमर्श

–डॉ0 यशवन्त वीरोदय, असिस्टेन्ट प्रोफेसर
–ममता यादव, शोध छात्रा
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डॉ0 श0मि0रा0पु0 वि0वि0 लखनऊ उ0प्र0

मानवीय समाज में व्याप्त बहुत सी समता विषमता के बावजूद सभी मनुष्य एक लंबे समय से एक साथ जीते आ रहे हैं फिर भी हमारा समाज कई खंडों में बटा हुआ है इस विभाजन का प्रमुख कारण मनुष्य की चेतना में समाया हुआ श्रेष्ठताबोध दिखावापन और वर्चस्व की भावना है जिसके चलते सामाजिक जीवन के ताने–बाने में समाई सामूहिकता की भावना धीरे–धीरे क्षीण हुई तथा मनुष्य मनुष्य के बीच कई तरह के भेदभाव दिखाई दिए इसी भेदनीति का परिणाम है कि मानवीय जगत गहरी असमानता का शिकार है। अनवरत बढ़ती असमानता ने केवल ऊंच–नीच के भाव ही नहीं पैदा किए वरन् एक ऐसे समाज को निर्मित किया जो अपनी बुनियादी आवश्यकताओं से वंचित होता चला गया। अवसर, अधिकार, संसाधन से वंचित हाशिए का समाज (स्त्री, दलित, अल्पसंख्यक, आदिवासी और श्रमिक, किसान) अन्याय शोषण हिंसा अस्मिता संकट जैसी समस्याओं को झेलते हुए महसूसने लगा कि–''आखिर मैं भी आदमी हूं मुझे भी सम्मान और स्वतंत्रता से जीने का हक है।''1इस तप्त वाक्य के गहरे असहनीय एहसास से उपजी चेतना ने हाशिए की आवाज को उत्पन्न किया। आज तक दलित दमित वंचित वर्ग मुख्यधारा में शामिल होने हेतु अनेक क्षेत्रों में संघर्ष कर रहा है और मुखरता के साथ अपनी आवाज उठा रहा है। हाशिए के समाज के इस मुखर स्वर के निर्माण में अनेक भक्ति–कालीन कवियों के साथ ही अनेक भारतीय एवं पाष्चात्य विचारकों, महापुरुषों तथा लेखकों, क्रांतिकारियों के संघर्ष की एक लंबी दास्तां रही है 90 के दशक में उभर रही हाशिए की आवाज को बुलंद करने में राजेंद्र यादव संपादित पत्रिका का अतुलनीय योगदान रहा है।

ज्ञमल˘वतक. हाषिए का समाज, वर्चस्व, 'अस्मिता संकट', श्रेशठताबोध।

हाशिए के समाज में आए 'हाषिया' शब्द का सीधा और स्पष्ट अर्थ किनारा है। अर्थात किसी विस्तृत या बड़े भाग का वह हिस्सा छोर जो छोड़ा गया है। जिस प्रकार किसी पृष्ठ पर लेखन करते समय बायीं तरफ दीर्घपरंपरानुसार एक हिस्सा किसी कारणवश या जानबूझकर छोड़ दिया जाता है अर्थातउसे लेखन योग्य और उपयोगी नहीं समझा जाता है उसी प्रकार हमारे मुख्यधारा के शक्तिशाली वर्ग द्वारा उन्हें औरों से अलग, निम्न और कमतर समझ कर अलग कर दिया जाता है। मुख्य समाज द्वारा विभिन्न कारणों जैसे रीति रिवाज रहन–सहन भाषा लिंग धर्म अक्षमता और सामाजिक कमतर हैसियत के आधार पर हाषियाई महसूस करने के लिए विवश किया जाता है, जिससे यह अपने को षक्तिहीन और पराजित महसूस करते हैं और सामाजिक आर्थिक

राजनीतिक क्षेत्रों में अपनी भागीदारी नहीं कर पाते या नहीं करने दिया जाता है फिर यह समाज मूलभूत सुविध ााओं से वंचित होता चला जाता है हाशिए के समाज को परिभाषित करते हुए प्रोफेसर चौथी राम ने अपने साक्षात्कार में कहा है कि–''हाशिए के समाज से प्रायः तात्पर्य दलित समाज है, पिछड़ा समाज है, आदिवासी समाज है, किसान मजदूर यही सब तो हैं हाशिए का समाज मुझे लगता है कि जिन्हें हाशिए का समाज कहा जाता है वह बहुसंख्यक समाज हैं और आबादी के हिसाब से बहुसंख्यक समाज होने के नाते यह मुख्यधारा का समाज है लेकिन तमाम आर्थिक संसाधनों और शिक्षा से वंचित करके उन्हें हाशिए पर ढकेल दिया गया है और जो हाशिए के लोग हैं, कम आबादी (मुख्यधारा) वाले लोग हैं वह वर्चस्व बनाए हैं और वही मुख्यधारा के केंद्र में हैं।''1

भारतीय समाज के इसी षोशण,असमानता और अन्याय के विरूद्ध संघर्श, रूढ़ियों और आडम्बरों के खिलाफ जिहाद, षक्ति और सत्ता की अनीतियों,अत्याचारों के खिलाफ मुंषी प्रेमचन्द्र ने सन् 1930 में 'हंस' पत्रिका को षुरू किया था। जिसका पुनर्प्रकाषन कर राजेन्द्र जी अपने समय के संदर्भ में बदली हुई चुनौतियों और समस्याओं के लिए निर्भीकता के साथ आवाज उठायी समाज के प्रति जो चिन्ताएँ और प्रति बद्धताएँ प्रेमचन्द्र ने की थी राजेन्द्र जी ने उसी परम्परा को बेबाकी से आगे बढ़ाया। राजेन्द्र जी का हिन्दी साहित्य में बड़ा योगदान यह है कि उन्होने 'हंस' के माध्यम से हाषिए के विमर्ष को आन्दोलन का रूप दिया। हंस संपादकीय में राजेंद्र यादव लिखते हैं कि–''सिर्फ अमेरिकी जीवन का ही नहीं, संपूर्ण भारतीय समाज का यह एक रूपक है करोड़ों लोगों का एक समुदाय है जो हजारों सालों से ना जाने किन सुरंगों में भटकता, दम तोड़ता रहता है वह न कहीं हमारे साहित्य में आ पाता है ना संस्कृति और इतिहास में। बस्तियों से बाहर, जंगलों पहाड़ों में, खेतों खदानों में, लाखों लोग अदृष्य जिंदगी जीते रहते हैं। हमारे लिए अपने श्रम और सेवा समर्पित करते रहते हैं मगर हम उन्हें कहीं नहीं देखते। घर–घर में पर्दों के पीछे अनाम प्राणियों की कतारें हमारी सेवा करती और वंष चलाती रहती हैं, मगर उनका होना हमारी अपनी बड़ी दुनिया में कोई मायने नहीं रखता है।''2

भारतीय वंचित समाज के लिए हंस की भूमिका ऐतिहासिक साहित्यिक महत्व की है। वह साहित्य का मूल मंत्र 'सत्यम् शिवम् सुंदरम' का कुलीनता वादी दृष्टिकोण नहीं मानता बल्कि वंचितों का इतिहास कल से आज तक सिर्फ शोषण प्रताड़ना और यातना का रहा है। इसलिए हंस की दृष्टि में साहित्य का मूल मंत्र यातना, संघर्ष, और स्वप्न, का जुझारू सिद्धांत है। हम लोग आत्ममुग्ध अतीतजीवी, रूढ़िवादी, यथास्थितिवादी किस्म के मनुष्य हैं हंस ने हमें इस कूपमण्डूकता से बाहर निकालते हुए साहित्य के नए रूप हेतु प्रेरित किया है। हंस संपादकीय ने लेखकों और पाठकों को हर बहस–तलब मुद्दे प्रसंग पर एक नई दृष्टि दी है।विद्यानिधि कांटे की बात नाम से संपादित सांस्कृतिक मोर्चेबन्दी के इतिहास की भूमिका में लिखते हैं कि–''जिस इतिहास को स्वर्णिम कहते हम थकते नहीं हैं वह हाषियों और तहखानों में फेंक दिए गए लोगों की गुमनाम गाथाओं का इतिहास है। वह ब्राह्मणवादी वर्चस्व का ऐसा गौरवान्वित रोजनामचा है, जो भाग्य और भविष्य को न बदलने का दर्शन देता है। जो अतीत और इतिहास सवर्णों के लिए स्वर्ग है वह दलितों स्त्रियों के लिए नर्क है। इतिहास का सच इसीलिए एक नहीं है क्योंकि शोषित और शोषक का सच कभी एक नहीं होता।''3

बीसवीं शताब्दी के नौवें दशक के पहले विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से जिस हाशिए के समाज ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई थी उनमें स्त्री विमर्श तो हिंदी की दुनिया में छा गया था लेकिन जब हंस ने इसे साहित्य

के केंद्र में लाकर खड़ा किया तो स्त्री लेखकों के साथ–साथ दलित, अल्पसंख्यक लेखकों, कवियों, विचारकों को जन्म देकर नया मंच प्रदान किया जिनमें कुछ नाम प्रमुख हैं–प्रभा खेतान, मन्नू भंडारी, नासिरा शर्मा, चित्रा मुद्गल, मैत्रेई पुष्पा, सूर्य बाला, मृणाल पांडे, अर्चना वर्मा, जया जादवानी, निर्मला जैन, ओमप्रकाश बाल्मीकि,मोहनदास नैमिशराय, माता प्रसाद, तुलसीराम, कँाता भारती, डॉ धर्मवीर, अजय नवारिया, ष्यौराज सिंह बेचैन, डॉक्टर जयप्रकाश कर्दम, रमणिका गुप्ता, कँवल भारती, भगवानदास मोरवाल, रत्न कुमार सांभरिया इत्यादि।

'मैं हंस नहीं पढ़ता' षीर्शक पुस्तक में राजेन्द्र यादव 'पीड़ा के दावेदार' लेख में दलितों, स्त्रियों की दषा को प्रष्नांकित करते हुए दलित लेखकों को व्यवस्था परिवर्तन की तरफ संकेत करते हुए कहते है कि–

''दलित लेखकों को इस पर भी विचार करना होगा कि उनका लेखन सिर्फ आत्माभिव्यक्ति का सुख नहीं है, एक संघर्श और आन्दोलन का हिस्सा भी है, वह सिर्फ पीड़ा को कहकर उससे मुक्त (षास्त्रीय षब्दावली में विरेचित) हो जाना ही नहीं उस पीड़ा को अपनों में बांटकर सामूहिक मुक्ति का सपना भी है। सवाल यह भी है कि इसी वर्ण व्यवस्था को बनाये रखकर क्या दलितों का संघर्श खुद सवर्णों जैसा सम्मानित हो जाने तक जाता है। या सारी व्यवस्था को ही बदलने की बात सोचता है। भूलना यह भी नहीं चाहिए कि उनका सवर्णों की तरह सम्मानित और सत्तावान बनना, दूसरे 'नए दलितों को जन्म देना है।' जो जितने अपनों में से होगें उतने ही उन अपनो से बाहर – यहीं नहीं, सवर्ण बनने की आकांक्षा उन्हें ठीक उन्हीं कर्मकाण्डों और धार्मिक ढकोंसलों में ढकेल देगी जो उनकी अपनी समझ से असली सवर्णों की षक्ति है.................................... ।''4

हंस पत्रिका के द्वारा राजेन्द्र जी ने मिली जिन्दगी और सार्वजनिक जिन्दगी के बहाने काम वर्जनाओं को तोड़ने का काम कर साहित्य को लोकतांत्रिक बनाया। महिला, दलित, अल्पसंख्यक तथा अन्य वंचित समाज को राजेन्द्र जी ने हंस पत्रिका के माध्यम से अपने निजी संघर्श, पीड़ा की कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, में लिखने हेतु जगह उपलब्ध कराते हुए कहा कि हाषिये की यातना, संघर्श, सच, समाज की विकृतियां है,समाज का सच है, इसलिए समाज का यह नग्न रूप यथार्थ ढंग से सामने लाना जरूरी है। क्योंकि यह सच केवल व्यक्ति विषेश का सच नहीं है वह लिखते है–

''सदियों की गुलामी, सामाजिक स्थिति और असुरक्षा में बने रहने ने नारी के सारे आत्मविष्वास को छीन लिया है, उसे अपने होने और बनने की हर स्थिति में पुरूश की स्वीकृति– समर्थन चाहिए। कुछ क्षेत्रों में वह नारी को उन्मुक्त अनुमोदन देता है तो कुछ में झिड़क देता है। ''तुम्हारे बस का नहीं है।'' या तुम्हारे मतलब का नहीं है।''5

आगे वह लिखते है कि–''षिक्षा और संस्कार, उदारता और अनुषासन, नैतिकता और सदाषयता जैसी प्रेरणाओं से अभी तक हम यानी पुरूश ही तय किया करते थे कि नारी के तन और मन को कितना खोलना है और कितने बन्धन उसकी 'स्वतन्त्रता' में बाधक है, या कितनी मुक्ति उसके हित में है अर्थात् कितने खुलेपन को हम बर्दाष्त् कर लेंगे। अब नारी खुद तय करना चाहती है कि उसे कहां और कितने बन्धन चाहिए।''6

आज का स्त्री विमर्ष यह मांग करता है स्त्री को मात्र देह वस्तु न माना जाए बल्कि वह भी मनुश्य है उसे भी स्वतन्त्र जीवन, स्वतन्त्र निर्णय, पर्सनल स्पेस, लिंग समानता, अधिकार, अवसर के साथ सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि सभी क्षेत्रों में बराबर भागीदारी मिले, स्त्री विमर्ष को केवल देह मुक्ति तक सीमित करके देखना उचित नहीं है बल्कि स्त्री के सर्वांगीण विकास तथा उसकी मुक्ति को उसके वाह्य आन्तरिक पारम्परिक प्रतिबन्ध

ों से परे स्वतन्त्र, समग्र समाज की इकाई के रूप में देखा जाना चाहिए। स्त्री समाज जो चाहता है उसे महादेवी वर्मा के षब्दों मे आप देख सकते है–

''हमें न किसी पर जय चाहिए न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुता चाहिए न किसी का प्रभुत्व केवल अपना वह स्थान, वे स्वत्व चाहिए, जिनका पुरूशों के निकट कोई उपयोग नहीं है, परन्तु जिसके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगी। हमारी जागृत और साधन सम्पन्न बहिने इस दिषा में विषेश महत्वपूर्ण कार्य कर सकेंगी, इसमें सन्देह नहीं''7

स्त्रियों के साथ ही भारतीय जनतन्त्र में श्रमषील समाज, बेरोजगारी, बदहाली के दंष को झेल रहे है किसान लगातार अपनी मांगो, समस्याओं को सत्ता के समक्ष रखते रहे है, किन्तु सत्ता अपने पूंजी पतियों के हाथ गर्म करती रही है। यह उपेक्षा संघर्शषील वंचित समाज ने अनवरत झेली है जो इस सामन्ती व्यवस्था की देन है। 'इस बढ़ते पूंजीवाद, व्यवस्था, सत्ता ने संघर्शषील समुदाय के विकास में षोशक बन बाधा पहुंचाने का काम किया है, जिससे मेहनतकष इन्सान का अस्तित्व संकट में आया है। प्रेमचन्द्र के समय में भी किसान और जमीन की समस्या, भूमिहीन मजदूर के षोशण की समस्या, स्त्री, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक, की जो समस्याएं थी वह आज भी अपने समय के साथ परिवर्तित रूप में उपस्थित है। किसान आदिवासी, श्रमिक, क्रमषः कर्ज, जल, जंगल, जमीन, तथा काम काज की समस्या से आत्महत्या, विस्थापन तथा रोजगार हेतु षहरों की तरफ पलायन कर रहे है। उनकी फसलों, झुग्गी–झोपड़ियों पर अनेक तरह से अतिक्रमण जारी है इस अंसख्य समस्याओं का हल उसी दिन निकलेगा जिस दिन षोशित पीड़ित इकाईयां पूंजीवाद, सत्ता, व्यवस्था के दमन का विरोध एकजुट होकर करेंगी।

निश्कर्श रूप में हम कह सकते है कि यह 21वीं सदी न्याय चेतना की सदी है। इसमें वंचित आवाजें, हाषिए पर पड़ी मानवता, साहित्य–समाज, के केन्द्र में आयी है उसने हजारों सालों से चली आ रही परम्पराओं, मान्यताओं रूढियों से लैस सोच को बदला है और गैर बराबरी की तमाम फिलॉसफी को प्रष्नांकित किया है, किन्तु हाषिए के समाज को मुख्य धारा का हिस्सा बनने के लिए, उसमे षामिल होने के लिए अभी बड़े साहस और संघर्श की जरूरत है, क्योंकि सामाजिक व्यवस्था द्वारा–''पहले भी दलित और स्त्रियां षेश समाज से बाहर कर दी गई, अछूत और अनाम उपस्थिति भी सत्ता के लिए आज भी वे सिर्फ वोटों की गिनती में अमूर्त अस्तित्व भर है।''8 आषावादी राजेन्द्र यादव हाषिए के समाज की एकजुटता की तरफ संकेत करते हुए हंस सम्पादकीय में लिखते है कि–

''साम्प्रदायिकता एक ऐसे ध्रुवीकरण की प्रक्रिया है, जो सिर्फ विधर्मियों को छांटने तक नहीं रूकती, वह अपने भीतर के अधार्मिक और अवांछित तत्वों को भी अलगाने और परिणामतः उन्हें एकजुट होने की मजबूरी पैदा करती है। जब आप हरे रंग को पाकिस्तान और मुसलमानों का रंग करार देकर स्टेषन, बस्तियां फूंकेगे, तो वे करोड़ो–करोड़ किसान और आदिवासी भी आपके खिलाफ उठेंगे, जिनकी फसलें और जंगल हरे होने के लिए अभिषप्त है।''9

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. 'अपनी माटी'– दलित आदिवासी विषेशांक, अंक 19 सितम्बर– नवम्बर 2015, साक्षात्कार, आलोचक प्रो0 चौथीराम, दिनेष पाल और दीपक कुमार के साथ बातचीत, पृश्ठ–02

2. यादव राजेन्द्र, सांस्कृतिक मोर्चा बन्दी का इतिहास वाणी प्रकाषन, प्रथम संस्करण 2003, पृश्ठ संख्या– 93

3. विद्यानिधि, कांटे की बात भाग–11 की भूमिका (आह को चाहिए एक उम्र असर होने तक) वाणी प्रकाषन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2003

4. यादव, राजेन्द्र– ''मैं हंस नहीं पढ़ता' के 'पीड़ा के दावेदार' लेख से वाणी प्रकाषन दरियागंज नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2005 पृश्ठ सं0– 152

5. यादव राजेन्द्र, कांटे की बात' भाग–3 'स्त्रीगाथा लेख', वाणी प्रकाषन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1998 पृश्ठ सं0– 153

6. वही, पृश्ठ सं0 153

7. वर्मा, महादेवी– 'श्रृंखला की कड़िया,' लोकभारती प्रकाषन पंचम संस्करण 2019 पृश्ठ सं0 23–24

8. यादव, राजेन्द्र, सांस्कृतिक मोर्चाबन्दी का इतिहास वाणी प्रकाषन, दरियागंज नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003 पृश्ठ संख्या 15

9. यादव, राजेन्द्र, खामोष चिन्तन चालू आहे! वाणी प्रकाषन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004 पृश्ठ संख्या 143।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 79-81
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श

–पूनम कुमारी

सहायक प्रोफेसर (हिन्दी), राजकीय महाविद्यालय, रिठौज, गुरूग्राम।

सारांश :–

हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श आन्दोलन नारी को नए पंख और परवाज़ देने का माध्यम बना है। नारी–जीवन को लेकर उठे अनेक प्रश्नों ने उसके भीतर एक नवीन चेतना को जागृत किया है, परिणामतः वह उचित–अनुचित का तटस्थ निर्णय लेने में सक्षम बनी है। स्त्री को इसी सुदृढ़ता ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा उसकी निर्मित छवि 'नरक का द्वार', 'दुर्बलता का नाम','ताड़ना की अधिकारी' 'अबला' आदि की सरहदों को तोड़कर, स्वयं के अस्तित्व को संकीर्ण दायरे से बाहर निकालने का कार्य करती है। सदियों से पुरूषों की कलम सृजित नारी छवि को नकारते हुए, अब स्वयं स्त्री ने कलम को अपने हाथ में थाम लिया था और पूरे जोश के साथ स्त्री–मानस की परतों को खोलते हुए जड़ीभूत परम्पराओं का विरोध करके समाज और राष्ट्र को अपना लोहा मनवा रही है।

शब्दार्थः– विमर्श–जीवन्त बहस, जागृत–जगाना, स्वर्णिम–सुनहरा, कामिनी–कामवती, पितृसत्ता–पिता की सत्ता

भूमिकाः–

हिन्दी भाषा का फलक जितना विस्तृत है, हिन्दी साहित्य का क्षेत्र भी उतना ही विराट है। अनेकानेक वाद, धाराएं एवं विमर्शों की प्रवाहमान सरिताओं को हिन्दी साहित्य ने अपने भीतर समावेशित कर रखा है। इन्ही में से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विमर्श है–स्त्री–विमर्श। स्त्री विमर्श को भली प्रकार से समझने के लिए यह अति आवश्यक है कि हम पहले स्त्री–विमर्श का अर्थ समझ ले। विमर्श का सामान्य अर्थ है–जीवन्त बहस अर्थात् किसी घटना या स्थिति पर प्रत्येक कोण से चिन्तन–मनन एवं पुनरीक्षण करते हुए मानवीय संदर्भों में देखने का प्रयास करना। अंतः स्त्री को केन्द्र में सरकार सदियों से प्रताड़ित दर्द की दास्तान को बयान करते हुए, नारी को मानवीय नजरिये से देखने का प्रयास ही स्त्री–विमर्श है–''स्त्री के अनुभूति–मण्डल के आलोक में घटनाओं का विश्लेषण, पुरूष में स्त्री का नजरिया विकसित कर उसे अर्धनारीश्वर की गरिमा देना।''1

भारतीय इतिहास के स्वर्णिम इतिहास पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो स्त्री के भाग्यविधाता के रूप में सर्वत्त पुरूष का भी पाते है। वेद–शास्त्रों से लेकर आधुनिक काल तक स्त्री को रमणीय, कमनीय, वात्सल्य व प्रेम की प्रतिमा आदि शोभनीय अंलकार देने वाला स्वयं पुरूष ही है, वही दूसरी ओर उसे पद–2 पर छला गया है।''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः''2

जैसी महाउक्तियों स्त्री के लिए महज उपहास की सिद्ध हुई। नर से अलग नारी कोई अस्तित्व नही था। वह प्रत्येक स्थान पर दोयम और पुरूष की अनुगामिनी मात्र है। पाश्चात्य साहित्य जगत् की प्रसिद्ध लेखिका सीमोन

द बोउआर ने पुरूषों के द्वारा लिखे साहित्य को 'भावनाओं का लाला प्रकाश' माना है। वे लिखते है,''स्त्री की स्थिति अधीनता की है। स्त्री सदियों से ठगी गई है और यदि उसने कुछ स्वतन्त्रता हासिल की है तो बस उतनी में जितनी पुरूष ने अपनी सुविधा के लिए उसे देनी चाही। यह त्रासदी उस आधे भाग की है, जिसे आधी आबादी कहा जाता है।''3

हिन्दी साहित्य के आदि काल में स्त्री की स्थिति अत्यन्त प्रतिकूल एवं दयनीय है। अनेक रूढ़ एवं शोषणात्मक परम्पराओं से घिरी नारी है और उपेक्षित है। आदि काल के साथ–साथ भक्ति काल में संतों और योगियों का दृष्टिकोण नारी के प्रति संकीर्ण ही रहा है। उसे 'माया', 'ठगिनी', 'सापिनी' आदि कहकर उसकी अधिकतर भर्त्सना की गई है–

''नारी की झांई परत, अंधा होत भुजंग,
कबीर तिनकी कौन गति, नित नारी के संग।''4

सूफी कवियों ने 'नारी एक नूर है' कहकर उसके सौन्दर्यपरक रुप को उजागर किया हे किन्तु रीतिकाल के आते–2 स्त्री की स्थिति और भी अधिक कारुणिक हो गई थी। विलासी आश्रयदाताओं को खुश करने और पारितोषिक भूख के लिए इन कवियों ने नारी का सर्वत्र कामुक व अश्लील रुप की प्रस्तुत किया है। वस्तुतः आधुनिक काल में अनेक समाज सुधारकों स्त्री से जुडी अमानवीय रूढ़ परम्पराओं का विरोध करके, उनकी स्थिति में सुधार के लिए आवाज बुलन्द की है। द्विवेदी युगीन एवं छायावादी कवियों ने स्त्री के उपेक्षित, परित्यक रुप के प्रति सहानुभूति ही नहीं दिखाई बल्कि उसे देवी, माँ, सहचर एवं मित्र के रुप में दिखाकर, उसकी आदर्शात्मक छवि को गढ़ने का कार्य किया है। 'साकेत' 'यशोदरा','कामायनी' इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है। डॉ0 भारद्वाज इस संदर्भ में लिखते है–''छायावाद युग में नारी–उत्थान विशेष उल्लेखनीय है।''5

किन्तु स्त्री–विमर्श की प्रारम्भिक अनुगुंज हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा की रचना 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में देखने को मिलती है, जो स्त्री विमर्श की भावभूमि तैयार करने में उल्लेखनीय है।

हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श का स्वर 1960 के आस–पास जोर पकड़ने लगता है और आठवें दशक के आते–आते एक आन्दोलन का रुप धारण कर लेता है। वस्तुतः इस स्त्री–आन्दोलन को पाश्चात्य की गुंज बताया गया किन्तु यह सर्वथा गलत है। दुनिया के हर कोने में रहने वाली स्त्री का संघर्ष अपनी उन रूढ़ परम्पराओं एवं श्रृंखलाओं से था, जिन्होंने अलग–अलग ढंग से स्त्री का पद–पद पर बाँधकर उसकी स्वतन्त्रता का हनन किया है। इस समय स्त्री ने पुरुष द्वारा सृजित अंध संसार से बाहर निकलने के लिए अपने मन–मस्तिष्क को कुरदेना शुरू कर दिया था और स्वयं को मानवी–श्रृंखला में शामिल करने के लिए आगे चुकी थी! अतः स्त्री–विमर्श एक आन्दोलन के रुप में जोर–शोर से पूरे भारतवर्ष में हिलोरें लेता दिखाई दे रहा था। डॉ0 संदीप रणभिरकर कें अनुसार,''स्त्री–विमर्श स्त्री के स्वयं की स्थिति के बारे में सोचने और निर्णय करने का विमर्श है। सदियो से होते आए शोषण और दमन के प्रति स्त्री–चेतन ने ही स्त्री–विमर्श को जन्म दिया है।''6

कृष्णा सोबती, उषा प्रियम्वदा व मन्नू भण्डारी जैसी स्त्री–लेखिकाओं ने अपने अन्तर्द्वन्दों को उद्घाटित करके स्त्री–विमर्श को यथार्थ व जीवन्त धरातल प्रदान किया है। इन्हें के प्रभाव स्वरुप आठ के दशक तक, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, कृष्णा अग्निहोत्री, मंजुला भगत, नासिरा शर्मा, चित्रा मुद्गल आदि' महिला लेखिकाओं की एक अनवरत परम्परा दिखाई देती है, जिनके द्वारा स्त्री जीवन से जुडे विविध पहलुओं को इन्होंने निज

अनुभूतियों के साथ गम्भीरता के साथ प्रस्तुत किया है–

''मां–बाप ने पैदा किया था गूंगा
परिवेश ने लंगडा बना दिया
चलती रही परिपाटी पर
बैसाखियां चरमराती है
अधिक बोझ से अकुलाकर
विस्कारित मन हुंकारता है
बैसाखियों को तोड़ दूँ।''7

इस प्रकार हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श आन्दोलन नारी को नए पंख ओर परवाज़ देने का माध्यम बना है। नारी जीवन को लेकर उठे अनेक प्रश्नों ने उसमें एक नवीन चेतना को जागृत किया। निर्णय लेने की क्षमता एवं सुदृढ़ता ने पितृसत्ता द्वारा निर्मित छवियाँ 'नरक का द्वार' 'ताड़ना की अधिकारी' आदि परिसीमाओं को स्त्री अब लांघ कर अपना लोहा मनवा रही है। स्त्री–विमर्श जहाँ नारी की जीवन्त अनुभूतियों का दर्पण है, वहीं लैंगिग समानता एवं अधिकारों की समानता की माँग के कारण इस विमर्श को कई अपवादों, आलोचनाओं ओर विरोधों का भी सामना करना पड़ा। पाश्चात्य की गुंज, पारिवारिक–विच्छेद और भारतीय स्त्री की परम्परागत छवि का ह्रास आदि अपवाद स्त्री–विमर्श को लेकर दिखाई देते है। स्त्री की मुक्ति पितृसता के द्वारा पचा पाना असंभव–सा प्रतीत होता है। जिस पर डॉ0 ज्योति किरण ने बडे ही बेबाक ढंग से इस यथार्थ को शीशे में उतारते हुए लिखा है–''इस समाज में स्त्रियां अपनी समझ और काबिलियत जाहिर करती है तब वह कुलच्छनी मानी जाती है। जब वह खुद विवेक से काम करती है तब वह मर्यादाहीन समझी जाती है। अपनी इच्छाओं, अरमानों के लिए वह आत्मविश्वास के साथ लड़ती है, और गैर समझौतावादी बन जाती है, तब वह परिवार और समाज के लिए चुनौती बन जाती है।''8

निष्कर्ष :– निष्कर्ष रुप से कहा जा सकता है कि स्त्री विमर्श नारी जीवन को एक स्त्री के नजरिए से देखते हुए, उसे मानवीय श्रृंखला में शामिल करने का धरातल तैयार करता है। यह स्त्री द्वारा स्त्री के लिए शोषण का विरोध और मुक्ति का फलक है।

संदर्भ–सूची :–

1. अनामिका, स्त्री का अनुभूति मण्डल, पृ0 13
2. कल्लूल भट्ट, मनुस्मृति, पृ0 562 लोक
3. आजकलः मार्च 2013, पृ0 24
4. डॉ0 राम गोपाल सिंह जादौन, कबीर के काव्यादर्श, पृ0 76
5. डॉ0 अविनाश भारद्वाज, छायावाद युगीन काव्य, पृ0 38
6. पंचशील शोध–समीक्षा, पृ0 87
7. आजकलः मार्च 2013, पृ0 20
8. पंचशील शोध–समीक्षा, पृ0 87

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 82-86
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आठवां सर्ग : परिवेश और भाषा की सजगता का मणिकांचन संयोग (प्रकृति और भाषायी विमर्श)

–डॉ. मोहन लाल जाट
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर–हिन्दी, स्नातकोत्तर राजकीय कन्या महाविद्यालय, सैक्टर–11, चंडीगढ।

स्वातन्त्र्योत्तर नाटककारों और हिन्दी नाटकों के सम्बन्ध में डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल का सार्थक और सटीक विश्लेषण है–" हिन्दी के समकालीन नाटक–साहित्य में यथार्थ–अन्वेषी सृजनात्मकता के मोड़ों और प्रवृत्तियों के सार्थक संकेत साफ़ तौर पर उभरकर सामने आए हैं३३नाटक को अभिनय,संगीत, नृत्य तथा अन्य दृश्य कलाओं से समन्वित होना पड़ता हैरूइस अर्थ में नाटक एक जटिल विधा है। साथ ही निरन्तर जटिल से जटिलतर होते युग के भाव–बोध को दर्शक के सामने नाटय प्रस्तुतीकरण में सहज सम्प्रेषणीयता से पहुँचाने की समस्या भी विकराल रुप धारण कर उठी है।एक ओर हिन्दी का पिछड़ा रंगमंच और दूसरी ओर सहज जन–बोधगम्य भाषा का सवाल हिन्दी के नाटककार को नाट्य–सृजन में लगातार ललकारकर तोड़ता रहा है३३फ़िर भी पिछले दो दशकों में हिन्दी–नाटक में 'प्रयोग' की चर्चा सार्थक रुप में सामने आई हैं।नाटक में 'नयेपन' या 'प्रयोगशीलता' ने नयी नाट्य–भूमि को खोजने और रचने की ओर कदम उठाया है।इस प्रयत्न से इस दौर में हिन्दि नाटक का जैसे नया जन्म हुआ हैं। नाटक का नयी रंग–चेतना के बहुस्तरीय कार्यकलाप से एक जीवन्त संबंध तो बना ही है–वह रंगमंच की अपनी दुनिया को पूरी शक्ति से जीने और रचने की ओर भी प्रवृत्त हुआ है।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास– डा नगेन्द्र,पृष्ठ–746–747)

इधर स्वातन्त्र्योत्तर नाटककारों की पंक्ति में प्रयोगधर्मी नाटककार सुरेन्द्र वर्मा ने अपने नाटकों में कथ्य,पात्रान्वेषण,परिवेश और उद्धेश्य को नूतन भाषा–शैली में पृथक ढंग से दर्शाने की सफ़ल हिमाकत की है। मोहन राकेश की अचानक मृत्यु के बाद हिन्दी नाटक में उत्पन्न निराशा–पराजय को डा लक्ष्मीनारायण लाल और डा शंकर शेष के बाद सुरेन्द्र वर्मा के नाटय प्रयोग हिन्दी नाटक तथा रंगमंच के क्षेत्र में एक नई अलख जगाते, नाटक तथा रंगमंच का नवीन घनिष्ठ संबंध दर्शाते,भाषा एवं परिवेश के प्रति सजगता का अहसास और उसके बीच अंतरूसंबंधों की पूरकता को उसकी समृद्धि में अंकित करते प्रतीत होते हैं।अपनी पहली नाट्य कृति ' सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरणा तक' से हिन्दी नाट्य क्षेत्र में धूमकेतु की तरह छाए वर्माजी ने आगे भी 'आठवां सर्ग' एवं 'सेतुबंध,नायक खलनायक विदूषक,द्रौपदी' (तीन नाटक) जैसी सशक्त अभिनय की रचनाएं देकर हिन्दी नाटक तथा रंगमंच को समृद्ध बनाया। भारतीय इतिहास और पुराण से लेकर आधुनिक जीवन की आधुनिकता को कथ्य एक नूतन दृष्टि से नव चेतना को हिन्दी रंगमंच पर सफ़लतापूर्वक उतारा है।

किसी भी कृति के कथ्य तथा उद्देश्य की सफ़लता का रंग उसके परिवेश पर निर्भर होकर चढ़ता है।

उदात्त कथ्य की प्रस्तुति के लिए,उद्देश्य की प्राप्ति के लिए परिवेश का चयन भी उदात्तता से करना पड़ता है और फ़िर इन सभी की संवाहिका भाषा के शब्दों का चयन भी उसी के अनुरुप करना औंखली में दिए सिर समान है। उदात्त्ता में सर्वागीणता का होना अत्यावश्यक है, नहीं तो वह कृति सामाजिक तथा आलोचक की निंदा का शिकार होने से नहीं बच सकती है।

'आठवां सर्ग' में भारतीय इतिहास के गुप्तकालीन परिवेश को सजगता से सुरेन्द्र वर्मा ने सर्वथा अनुकूल भाषा–शैली में साक्षात अवतरित किया है। नाटक के प्रांरभ में ही सुरम्य वातावरण में कीर्तिभट्ट–प्रियंवदा आपसी नमस्कार करते हैं और तत्पश्चात कीर्तिभट्ट क्षिप्रा नदी के किनारे के स्वप्न में (गोधूलि वेला में) खो जाता हैरू कीर्तिभट्ट–'गोधूलि की वेला भी३३शिप्रा का किनारा३३३अपने–अपने घौंसलों को लौट रहे पक्षियों का कलरव३३।किनारे से टकराती हुई लहरों का सरस संगीत३३वातावरण में सुगंधि थी–नवमलिका की कलियों की,प्रणय की,मिलन की३घ्तभी देखा कि तुम चंपक के झुरमुटों के बीच३३हाथ में लीला–कमल लिये३।मंद मंथर गति३सकुचाती३लजाती३।' यहं क्षिप्रा के किनारे का गत्यात्मक शब्द–चित्र लेखक ने रंगमंच पर चलते–चलते उभार दिया है,जो कला का जोखिम लेना है। प्रेम के लिए इससे अच्छा परिवेश और भला कहां ?

गुप्त राजाओं की राजधानी उज्जैन में कोलाहल हर दिन गोष्ठियों–सभाओं के रुप में परवान चढ़ता रहता था। राजकवि कालिदास भला ऐसे में रचना का प्रणयन कैसे कर पाते ? इस हेतु कालिदास ने क्षिप्रा का किनारा ही चुना,जहां उगते–ढलते सूर्य के साथ प्रकृति साहित्य में प्रविष्ट हो सके। कीर्तिभट्ट कहता हैरू'लेकिन नहीं३३राजधानी में कोलाहल होता है३हर दिन गोष्ठियां और सभाएं की जाती है।३३मन एकाग्र नहीं हो पा्ता।३३भीतर से निकलते तो उपवन में आ जाते! उपवन से निकलते तो बाहर वन में जा पहुँचते३३।प्रातरूकाल देखता कि उषा की लाली परख रहे हैं,आधी रात को देखता कि उजली चाँदनी में टहल रहे हैं।' प्रकृति को जीने वाले कालिदास आज क्यों इतने प्रकृति की वास्तविकता के सजल कवि बने हुए है? यह स्वतरू स्पष्ट है। सभा में कालिदास के द्वारा 'कुमारसंभव'के 'आठवेंसर्ग' के सस्वर पाठ करते समय सभी सभासद मंत्रमुग्ध थे लेकिन जैसे ही उसमें शिव–पार्वती की काम–क्रीड़ा का चित्रण आया,सभी जन एक सुर में कालिदास की भर्त्सना करने लगे और कालिदास अपने मिलने वाले सम्मान के बदले मिले इस अपमान को भूलने के लिए एकांत क्षिप्रा के किनारे चले आए।लेखक ने स्वयं कालिदास के मुख से यह सत्य स्वीकरा है–" नगर के बाहर चला गया था३शिप्रा के निर्जन तट पर३गहरा अँधेरा था वहाँ और गहरी शांति३ऊपर घने बादलों में चंद्रमा का हल्का–सा आभास और सामने बहुत दूर पर्वत श्रेणियों के धुँधले उतार–चढ़ाव३हवा रुकी थी।पत्ता तक नहीं हिलता था।लहरें भी निश्चल थीं। ३ बस,कभी–कभी बालू के छोटे–छोटे कगार नदी में धसक जाते थे।चौंककर वृक्षों की ऊपरी शाखों पर कोई पक्षी पर फ़ड़फ़ड़ाता,चह्चहाता३और फ़िर मौन,फ़िर नीरवता३।" आज भी प्रकृति की यह शरण कालिदास के अन्तर्बाह्य संघर्ष को समकालीनता दे रही है लेकिन आज लेखक की प्रकृति–शरण कहां?

यौवन की सहजात काम–लालसा, तृप्ति हेतु समागम और फ़िर प्रथम समागम के सुखद अहसास को सुरेन्द्र वर्मा ने अनुसूया–प्रियंवदा की रहस्य–रोमांच भरी बातचीत में उत्सुकतापूर्वक दिखाया है।दोनों कालिदास–प्रियंगु मंजरी के रात्रिकालीन आलिंगन,काम–कलाप तथा शयन–कक्ष का वर्णन अभिनयपूर्वक करती है जो अहसास हम भी पढ़ते या देखते या सुनते समय कर सकते हैं–

'प्रियंवदारूद्वार के खुलते ही सुगन्धि का एक झौंका–सा निकलेगा।एक कुमारी कन्या के नासा–रन्ध्रों के लिए यह

गंध बिलकुल अनजानी होगी,पर हे मेघ–से काले कजरारे केशोंवाली!तुम रुकना नहीं भीतर चली जाना।
अनुसूयारूफ़िर?
प्रियंवदारूगवाक्ष बन्द,हल्का अँधेरा!३पलंग के पास कुछ खाली चसक होंगे।उन पर दो युगल अधरों के स्पर्श जैसे अभी तक कसमसा रहे हैं।
अनुसूयारूऐसा?
प्रियंवदारूकुछ देर चुपचाप उस शैय्या को परखना।उस पर अधखिली कलियाँ बिखरी होंगी–ग्लान्३दोहरी हो चुकी पंखुरियों को हल्के से छूना,तो दो शरीरों के तृप्त दबाव का अहसास होगा।
अनुसूयारूसचमुच?
प्रियंवदारूशुभ्र–श्वेत चादर पर यहाँ–वहाँ सिकुड़नें होंगी।एक ओर कुरंटक पुष्पों की माला पड़ी होगी–प्रगाढ़ आलिंगन में मसली हुई।सिरहाने एक कर्णफूल होगा,पैताने टूटी मेखला।
अनुसूया"बेचारी !
प्रियंवदारूकुछ पल चुपचाप खड़ी रहना,तो धीरे–धीरे कई ध्वनियाँ उभरेंगी।
अनुसूयारूजैसे ?
प्रियंवदारूवस्त्रों की सरसराहट्३आभूषणों की झंकार,साँसों की तीव्रता३बाहों का कसाव।"
कालिदास–प्रियंगु मंजरी के कामकेलि का यह सजग चित्रण प्रत्येक नायक–नायिका(युवाओं) के लिए प्रथम समागम हेतु उपदेश तथा सुरम्य उद्बोधन है,भले ही इसमें संश्लिष्टता में लिपटी अश्लीलता ही क्यों न हो। प्रेम में उन्मत्त नारी प्रेम और प्रेमी को पाने के लिए जहाँ परिवार–समाज की सभी मर्यादाएँ लाँघ जाती है,वहीं वही नारी अपनी मर्यादा पर प्रतीकात्मक रुप में आँच को भी नहीं सह पाती है और सर आम जाने से घबराने लगती है,लज्जित महसूस करती है। यही तो भारतीय संस्कृति की मर्यादा है जिसे हमें आगे बढ़ाना होगा।जब कालिदास 'कुमारसंभव' के 'आठवां सर्ग' का चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की सभा में सस्वर पाठ करता है तो उसकी प्रिया प्रियंगुमंजरी लज्जित होती दिखती है,क्योंकि सब उसी की तरफ़ नजर गढ़ाए होते है। प्रियंगु कालिदास से कहती है प्रेम भरे अन्दाज में–"यह क्यों नहीं कहते कि मुझे लज्जित करने का आनंद कहाँ से मिलता?३अब मैं कैसे जाऊँ राजमण्डप में?३३माता–पिता,परिवार के कुल संबंधी,गुरुजन,सब सखियाँ,सहेलियाँ,निम्न और उच्च सारे पदाधिकारी,सामन्त और माण्डलिक,संभ्रान्त नागरिक और उनकी धर्मपत्नियाँ,दौवारिक,प्रतिहार और दासियाँ–सभा में उपस्थित एक–एक व्यक्ति समझ जाएगा कि काव्य की यह उमा(संकेत सहित) वह बैठी है३सामने!"
लोकोत्सव लोक की खुशी के ध्योतक होते हैं। भारतीय जनमानस के चेतन–अचेतन में सदियों से जमे लोक–विश्वासों का भी 'आठवां सर्ग' में लेखक ने बखूबी चित्रण किया है। सभा में कालिदास के सम्मान के बजाय होने वाले अपमान को लेखक ने ईमानदारी से खिंचा है लेकिन इसके पूर्व उज्जैन की फ़िजा में लोक–उत्सव 'मदनोत्सव' का चित्र कालिदास द्वारा प्रियंगु के सामने जिस मार्दवपूर्ण भाषा में खींचा गया है,वह श्लाघनीय बन पड़ा है।कालिदासरू"आज मदनोत्सव है और उसे मनाने के लिए नगरवासी जैसे मदोन्मत्त हो उठे हैं३सामूहिक करतल ध्वनि और अकेले मृदंग का मधुर घोष३३मर्दल का गुरु गंभीर गर्जन और चर्चरी की दूर–दूर तक गूंजनेवाली उन्मादिनी लय,उड़ती मालाएँ,बिखरे केशपाश,३श्रम से लाल हुए कपोल और माथे पर स्वेद–बिन्दु३महलों के गवाक्षों में मुखमंडल जड़े हुए३नीचे पिचकारी लिए ढीठ युवतियां और ऊपर से सोल्लास बरसता हुआ अबीर

और गुलाल३ऐसा घना और निरंतर३कि दिशाएं तक धूमिल हो उठी हैं३।" कालिदास के ये कल्पनागर्भित उड़ान भरते शब्द हू–ब–हू वर्मा जी के अलावा किसकी बुद्धि की उपज हो सकते है? उज्जैन में मनाए जाने वाले उत्सवों–होली,मदनोत्सव,कामोत्सव और साहित्योत्सव–को सुरेन्द्र वर्मा ने नाटक की पात्रा प्रियंवदा के मुख से बार–बार वर्णित करवाया है,जिसमें भले पुनरोक्ति हो लेकिन वह कथ्य की माँग भी है। कम शब्दों में सांकेतिक–आलंकारिक भाषा में प्रियंवदा उत्साहपूर्वक कहती है–और फ़िर राजपथ पर ऐसी भीड़ है कि साँस को भी निकलने का रास्ता नहीं मिलता।एक तो कामोत्सव का कामना जगाने वाला दिन३फ़िर 'अभिज्ञानशाकुंतलम' की स्वर्ण जयंती३फ़िर शासन द्वारा स्वामी का अभिनंदन३।जैसे एक साथ एक ही दिन तीन–तीन त्योहार३तनिक बाहर निकलकर देख लोगों की चपलता से मानों वातावरण में भी तरंगे उठ रही हैं।"

गुप्त–साम्राज्य के 'स्वर्णिम काल' के पराक्रमी और संस्कृति–प्रेमी शासक चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के समय साहित्य,संस्कृति,शासन और प्रजा–कल्याण की श्रीवृद्धि हुई ही,लेकिन उस समय धर्म,समाज और राजनीति में धीरे–धीरे दबे पाँव अव्यवस्था,ढोंग,भ्रष्टता जैसी विकृतियां भी पनपने लगी थी।साहित्य में ऊठापटक चरमोत्कर्ष पर थी आज की भाँति। लेखक कालिदास के 'कुमारसंभव' के 'आठवें सर्ग' के मूल्याँकन हेतु गठित समिति से आहत कालिदास की मनोभावना को यों प्रश्नात्मक–व्यंग्यमयी भाषा–शैली में उजागर करवाता है–"कालिदासरू(चोट खाए स्वर में)मैं भी उन्हीं निर्णायकों के बारे में जानना चाहता हूँ,धर्मराज। वे वाड्मय के तो पंडित होंगे ही? नकाव्यशास्त्र का भी गहरा अध्ययन किया होगा? संस्कृत के पूरे साहित्यिक इतिहास के जानकार होंगे?३उनका सौन्दर्य–बोध बहुत परिष्कृत होगा?दृष्टि बड़ी सूक्ष्म होगी?३वे भाव प्रवण होंगे?संवेदनशील होंगे?उदार विचारवेत्ता होंगे?विशाल ह्दय होंगे?३साहित्य–प्रेमी के जिस आदर्श रुप की कल्पना की ज सकती है,वह जैसे उनमें साकार हो उठा होगा?" यह आज के कलाकार की अन्तरूपीड़ा भी है,जो सोचनीय है। उस समय के परिवेश को दुखी कालिदास के सामने स्वयं उसका आश्रयदाता चन्द्रगुप्त दुखी स्वर में यों प्रकट करता है–"कान खोलकर सुन लो कि धर्मगुरु केवल अश्लीलता की घोषणा से ही संतुष्ट नहीं होंगे।वे चाहते हैं कि तुम्हें कोई दंड भी मिले और अगर ऐसा नहीं किया गया तो वे राजप्रासाद के सामने आमरण अनशन पर उतर आएंगे३(बलपूर्वक)प्राण दे देंगे अपने!३(क्षणिक विराम)शायद तुम्हें यह पता नहीं कि बंगेश्वर ने आस–पास के राजाओं के साथ मिलकर एक संघ बना लिया है और गुप्त साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा कर दी है।शायद तुम्हें यह भी नहीं मालूम कि सेनापति आम्रकार्दव के यहां रात के अँधेरे में संदिग्ध व्यक्ति आते–जाते देखे गए हैं।शायद तुम यह भी नहीं जानते कि तुम्हारे और मंजरी के ब्याह से ब्राह्मण और क्षत्रिय–दोनों ही जातियों में असंतोष है और सेना के एक बड़े भाग पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ा है।" आज भी शासक की यही दुर्दशा है!

रंगमंचानुकूल भाषा में चित्रात्मकता,गत्यात्मकता,अभिनय और रंग–निर्देशों का होना अत्यावश्यक है।इधर के नाटककारों में यह सत्य कम फ़लीभूत दिखाई देता है लेकिन सुरेन्द्र वर्मा ने प्रियंगुमंजरी के माध्यम से उदासी,संशय,गर्वोक्ति के साथ रंगमंचीय दृष्टिकोण को हमारे समक्ष सार्थकता से प्रस्तुत किया है। कालिदास के सम्मान समारोह के बीच में अचानक गायब हो जाना रंगमंच पर उदासी के साथ जिज्ञासा को भी बढ़ा देता है–"प्रियंगुरू(कुछ खोई हुई–सी)कैसा मनोहर दृश्य था३।रंगशाला के चारों ओर कलानुरागी नागरिकों की एक–पर–एक परतें३अंदर घुसने को आतुर मानवीय हिलोरें३और रंगशाला के भीतर उज्जयिनी का३भद्रलोक३मंच

पर सम्राट और सत्ता के पाँच प्रतीक३अभिनंदनीय नाटककार का आसन खाली है। ३वायु की गति वाला धावक कुटीर तक जाता है। ३३लौटकर यही कहा जाता है कि३कविकुल गुरु का कोई पता नहीं!” यहां रंगमंचीय परिवेश की सजगता के साथ–साथ लेखकीय स्वातंत्र्य का परिवेश भी इंगित हो गया है। यहां से निकलकर कालिदास फ़िर अपनी क्षिप्रा के किनारे चले जाते हैं,जहां उनको अपनी लेखकीय सृजना की नव ऊर्जा और क्षमता मिलती है।शायद क्षिप्रा कालिदास और सुरेन्द्र वर्मा की लेखकीय ऊर्जा,शांति,क्षमता का दिव्य–स्रोत है और शरण–स्थल भी। उसकी नीरवता के बीच ही लेखक की भाषा में इन्द्रधनुषी रंगोपयुक्त तीव्रता आ पाई है।

सारांशतरू ‘आठवां सर्ग’ का परिवेश मुख्यतया उभरा है–स्वप्न रुप में,लोक विश्वासों–लोकोत्सवों के रुप में,मन के अन्तरूगह्वरों से निकलते संवेगों के रुप में,कालिदास–प्रियंगु मंजरी के काम–प्रणय के अंतरंग प्रसंगों में,कालिदास के सम्मान पूर्व की तैयारी में,अपमानित कालिदास की उद्वेलनपूर्ण स्थिति में,क्षिप्रा के प्रातरू–संध्या समय के शान्त और कलरव से भरे किनारों के वर्णन में तथा गुप्त साम्राज्य की तत्कालीन पतनोन्मुखी स्थितियों के चित्रण में।इसके अलावा प्रियंगु के स्वप्नों की भयावहता तथा अपशकुन के प्रतीकों में लेखक ने लोक–विश्वासों को रेखांकित किया है। इन सभी दृश्यों को चाँदनी की भाँति मुकम्मल और उज्जवल बनाया है सुरेन्द्र वर्मा की ध्वनि,चित्र,लय,और गति युक्त भाषा ने। वाकई ‘‘आठवां सर्ग’ एक बारगी कालिदास के बाद सुरेन्द्र वर्मा जी की लेखनी का जीवंत संस्पर्श पाकर पुनरू जीवंत हो उठा है। और जी उठा है वह परिवेश,जिसकी उत्कृष्ट कला के बीच भय,विद्रोह,ढोंग जैसा आद्रित आवरण था,जिसे कलाकार से लेकर शासक तक देख तो रहे थे लेकिन चुप थे –कथित आशंका के चलते, जैसा कि आज है।

सन्दर्भ और सहायक ग्रन्थ सूची :–

1 आठवां सर्ग– सुरेन्द्र वर्मा (1976)

2 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में राष्ट्रीय चेतना– डा मोहन लाल जाट

3 हिन्दी साहित्य का इतिहास– डा नगेन्द्र

4 साठोत्तरी रंगमंचीय हिन्दी नाटकों का अनुशीलन– डा आभा त्रिवेदी

मोबाइल 9016142497, 9016399517

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 87-91
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रमेशचंद्र शाह के उपन्यासों में दलित विमर्श

–प्रतिमा

शोध छात्रा, हिंदी विभाग, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, परिसर अल्मोड़ा।

शोध सारांश :–

दलित का अर्थ सामान्यतः उन जातियों के लिए प्रयुक्त किया जाता है जो समाज में सवर्ण जातियों के द्वारा उपेक्षित एवं शोषित होते आये हैं साहित्य समाज की सभी समस्याओं एवं मानव से लेकर प्राणी मात्रा के संघर्षों को प्रकाशित करता है। रमेशचंद्र शाह के उपन्यासों में दलित जाति के साथ किए जाने वाले भेदभाव एवं शोषण का यथार्थ चित्रण हुआ है। इनके साहित्य में सवर्णों की दलितों के प्रति अनुदारता एवं अमानवीयता का चित्रण हुआ है। रमेशचंद्रशाह का 'किस्सा गुलाम' उपन्यास पूरा दलित पर केन्द्रित है।

बीज शब्द : दलित, पीड़ा, शोषण, त्रासदी अभाव।

समकालीन उपन्यास साहित्य में रमेशचंद्र शाह का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने हिंदी साहित्य में उपन्यास, कहानी, संस्मरण, कविता, आलोचना आदि विधाओं पर लेखन कार्य किया है। इन्हें 2014 में 'विनायक' उपन्यास पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है। पदम श्री एवं व्यास सम्मान प्राप्त हुआ हैं। हिंदी साहित्य में इनकी पहचान कुमाऊँ अंचल के अल्मोड़ा जनपद से है। अब तक इनके 11 उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। 'गोबर गणेश', 'किस्सा गुलाम', 'पुनर्वास', 'पूर्वापर', 'सफेद परदे पर', 'आखिरी दिन', 'आप कहीं नहीं रहते विभूति बाबू', 'असबाब–ए–वीरानी', 'कथा सनातन', 'विनायक', 'कम्बख्त इस मोड़ पर' उपन्यास हैं।

प्राचीन भारतीय समाज को वर्ण–व्यवस्था के आधार पर चार भागों में बांटा गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इस व्यवस्था में शूद्र एक ऐसा वर्ग था। जिसका कार्य पूरे समाज की सेवा करना था, किंतु उस समय न कोई सामाजिक विषमता थी और न ही किसी को किसी प्रकार का अभाव था। शरीर के अंगों की भांति प्रत्येक वर्ग एक–दूसरे के पूरक थे परंतु कालांतर में व्यवस्था बिगड़ती गई और शूद्र समाज का दीन हीन वर्ग बनकर रह गया। धीरे–धीरे उस पर अत्याचार किए जाने लगे, उसका जीवन अभावों और व्यथाओं में बीतने लगा और वह समाज में पूर्णतः असहाय बनकर रह गया। दलित साहित्य आधुनिक भारतीय साहित्य की एक विशेष शाखा के रूप में उभरकर आज हिंदी वाङ्मय की मुख्य धारा अनेक अवरोधों के बावजूद लगभग अप्रभावित और अबाधित प्रवाह के साथ गतिशील है।

दलित शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के दल् धातु से हुई है। जिसका अर्थ है तोड़ना, हिस्से करना या कुचलना, हिंदी शब्दकोश में इसका अर्थ मसला हुआ। दबाया हुआ, रौदा हुआ, मान–मर्दित किया गया है। दलित का अर्थ सामान्यतः उन जातियों के लिए प्रयुक्त किया जाता है जो सामाज में सवर्ण जातियों के द्वारा उपेक्षित

एवं शोषित होते आये हैं। समाज में सवर्ण जातियों के द्वारा दबाई हुई जातियों के लिए भी दलित शब्द का प्रयोग होता है। भारतीय समाज में भी दलितों को उपेक्षित किया जाता रहा है। दलित को संदर्भित अर्थ में बताते हुए ओम प्रकाश बाल्मीकि लिखते हैं : ''दलित शब्द शक्ति के लिए प्रयोग होता है जो समाज व्यवस्था के तहत सबसे निचले पायदान पर है। वर्ण व्यवस्था ने जिसे अछूत या अंत्यज श्रेणी में रखा है। जिसे संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया.....।''1

दलित साहित्य के प्रखर चिंतक डॉ0 विमल थरोट कहती हैं : ''दलित साहित्य जन्म के आधार पर जातिगत भेदभाव के कारण रूढ़ियां समाज के हाशिए पर रखे गये दलित समुदाय का किया गया शोषण, अपमान, अवहेलना, घृणा और तिरस्कार से उभरे आक्रोश की रचनात्मक अभिव्यक्ति है।''2

साहित्य समाज की सभी समस्याओं एवं मानव से लेकर प्राणिमात्र के संघर्षों को प्रकाशित करता है। हिंदी साहित्य में भी अनेक लेखकों के दलितों के जीवन संघर्षों का चित्रण किया है।

वर्तमान संदर्भों में दलित शब्द उस संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हुआ है। जो समाज के दीन–हीन, अभावग्रस्त और शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जिसे कालांतर में समाज के उच्च वर्ग द्वारा पीड़ित किया गया है और जो सामाजिक विषमता और अन्याय सहन कर रहा है जबकि वैदिक साहित्य के ग्रंथों के अध्ययन से विदित होता है कि भारतीय समाज व्यवस्था में जाति नाम की कोई चीज नहीं थी और जाति व्यवस्था समाज में बाद में आई थी। धर्म–संहिता जिसके आधार पर समाज में ब्राह्मण को पहले और शूद्रों को चौथे स्थान पर रखा गया। इसमें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य द्विज कहलाए जिसका अर्थ है दूसरा जन्म। यह दूसरा जन्म उपनयन संस्कार को कहा गया। इतना ही नहीं इन्हें पढ़ना–लिख्ना, अपना व्यवसाय करना, धन अर्जित करना और इनके वस्त्र धारण करने पर प्रतिबिंध लगा दिया गया। हिंदी दलित साहित्य में जहां वैचारिक पृष्ठभूमि की बात है। वह चार्वाक दर्शन, बौद्ध दर्शन, नाथ–सिद्धों संत साहित्य से होता हुआ अंबेडकर दर्शन में समाविष्ट है। चार्वाक दर्शन का विकास ऐसे युग में हुआ था, जब अंधविश्वास एवं रूढ़िवादिता की प्रधानता थी। ब्राह्मणों की अत्यधिक प्रशंसा होती थी। यदि दलित साहित्य पर गहराई से विचार किया जाए तो साहित्य की इन तीन धाराओं का उदय एक साथ नहीं हुआ। हिंदू धारा के साहित्य में दलित–विमर्श राष्ट्रीय आंदोलन की देन है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जब दलित मुक्ति का प्रश्न उठा और पूना पैक्ट के बाद जब गांधी जी ने उछूतोद्धार के लिए काम किया तो हिंदू साहित्यकारों का भी इस समस्या की ओर ध्यान गया। प्रेमचंद इस धारा के अत्यंत सशक्त कहानीकार है।

दलित साहित्य का आंदोलन 1960 के बाद मराठी में शुरू हुआ। इसकी बुनियाद डॉ0 भीमराव अंबेडकर के आंदोलन ने डाली हिंदी साहित्य में दलित साहित्य परंपरा का औपचारिक रूप से श्रीगणेश भले ही पिछले अस्सी के दशक में हुआ है, परंतु व्यावहारिक रूप में संत साहित्य में इसका उदय हो चुका था। जब दलित वर्ग का उत्पीड़न अपने चरम सीमा को पार कर रहा था, तो चौदहंवी शताब्दी में कबीर का जन्म हुआ। कबीर स्वभाव से ही फक्कड़ अलमस्त एवं निष्पक्ष मानवीय दृष्टिकोण से परिपूर्ण थे। संत कवियों ने स्पष्ट घोषण कर दी थी कि सभी में ब्रह्म और आत्मा का समावेश समान रूप से होने के कारण सभी मनुष्यों को एक परमात्मा की संतान मानते हैं। इन संत कवियों में प्रमुख रूप से कबीरदास, रैदास, मीराबाई, गरीबदास, दादू, नानकदेव, रज्जब पीपा आदि हैं। इन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था एवं जाति–पाति का जमकर विरोध किया साथ ही सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से मानव समानता के दृष्टिकोण को जाग्रत किया।

रमेशचंद शाह ने अपने उपन्यासों में दलित समाज का चित्रण किया है इनका 'किस्सा गुलाम' उपन्यास तो दलित विमर्श पर ही लिखा गया उपन्यास है। अंशिक चित्रण 'गोबर गणेश', 'विनायक', 'आप कहीं नहीं रहते विभूति बाबू', 'पुर्नवास' आदि उपन्यासों में दलितों का रहन–सहन और उनके जीवन की सामाजिक व आर्थिक समस्याओं का चित्रण किया है। इनके उपन्यास किस्सा गुलाम में भारतीय समाज के हाशिए में स्थित दलित जाति से संबद्ध हैं और भारतीय जाति व्यवस्था से अत्यंत उपेक्षित एवं तिरष्कृत चित्रित हुए हैं। इसके साथ ही भारतीय समाज व्यवस्था के दबे, कुचले शोषित और अपेक्षित जीवन के संदर्भों का अंकन भी हुआ है। दलितों को उच्च वर्ग सदैव घृणा की दृष्टि से देखता है तथा अछूत की भावना से ग्रसित रहता है।

इनके 'गोबर गणेश' उपन्यास में दलित समाज का एक प्रसंग चित्रित है। 'नारायण डूम है' विनायक उच्च सवर्ण हिंदू परिवार का होकर भी उसका दोस्त नारायण शूद्र है। छोटे बच्चों में भी छुआ छूत एवं जातिगत भेदभाव की बात देखने को मिलती है वो डूम है, चंदू बोला था, मास्साब ब्राह्मण है। डूम को कैसे छुएंगे3 विनायक यह जानता भी नहीं है। डूम क्या होता है। विनायक को याद आता है मां की बीमारी के समय में घर में काम करने एक औरत आती थी। मां कई बार कहती थी वह डूम है उसने अपनी माँ को कई बार 'डूम–डूम' कहते सुना था। माँ की बीमारी के दिनों में कई दिनों तक बर्तन मांजने के लिए एक औरत उनके घर आती रही थी। वह भी माँ ने बतलाया था डूम है। माँ यों तो उसके साथ बड़े प्रेम से बोलती थी ...मगर उसे छूती नहीं थी। कोई रोटी, कपड़ा या रुपया पैसा भी देना होता तो ऊपर से ही उसके फैले हुए हाथ या आंचल में डाल देती थी।''4 इस उदाहरण से समाज में दलितों के साथ होने वाले जातिगत भेदभाव का यथार्थ चित्रण हुआ है।

इनका 'किस्सा गुलाम' उपन्यास एक ऐसे कथानायक की कहानी को बंया करता है जो एक पिछड़ी जाति में पैदा होने के कारण जन्मना 'बहिष्कृत' होने की चेतना से बिधां हुआ है वस्तुतः पिता और पुत्र के इस उपन्यास के दोनों प्रतिनिधि चरित्र वर्तमान भारतीय समाज के गहन अंतर्द्वन्द्व को अविस्मरणीय रूप से उजागर करते हैं। इस उपन्यास में दलित आंदोलन की जिक्र भी आया है। इसका एक अंश दृष्टव्य है जब काशी विश्वनाथ मंदिर में हरिजनों के प्रवेश को लेकर आंदोलन छिड़ा हुआ था और एक धार्मिक नेता ने क्या नाम था। उसका, करपाती? हाँ करपात्री ने कहा था कि ''मंदिर प्रवेश करने से इन हरिजनों को क्या मिल जाएगा। शास्त्रों में लिखा है कि एक सवर्ण को गर्भ–गृह में देवता के दर्शन करने में जितना पुण्य प्राप्त होता है। उतना पुण्य तो शूद्र को केवल बाहर से मंदिर का कलश देख लेने से ही मिल जाता है। क्या गांधी जी इतना भी नहीं जानते? फिर वे जिद पर क्यों तुले हैं'5

शूदों की स्थिति को किस्सा गुलाम उपन्यास में दिखाया गया है।समाज में शूद्र की सामाजिक स्थिति किस तरह की थी वह यहां देखी जा सकती है, यह शूद्र नाम की चीज ही खत्म हो जाती कि नहीं? जितने भी सवर्ण घेरे के बाहर के लोग हैं सबके सब एक ही झटके में इसाई बन जाते तो यह जो तमाशा देखने को मिल रहा है आज–हरिजनों को जिंदा जला दिया जाने का बलात्कार और लूटपाट का कम से कम यह तो देखने को नहीं मिलता'6

इस उपन्यास में इन जातीय भेदभाव का बालमन पर पड़ने वाले प्रभाव का चित्रण भी उपन्यासकार द्वारा किया है कुन्दन के विद्यालय में उसके साथ होने वाले दुर्व्यवहार से वह दुखी है इस कारण ही उसे अपने नाम के पीछे लगने वाला जाति बोधक शब्द भी पसंद नहीं है। कुन्दन का अर्थ तो उसे नहीं मालूम। पर नाम बुरा नहीं लगता,

अच्छा ही लगता है। बस उसके साथ चिपका हुआ यह 'टम्टा' अच्छा नहीं लगता, अच्छा ही लगता है। बस उसके साथ चिपका हुआ यह 'टम्टा' अच्छा नहीं लगता। कुन्दन जोशी होता, कुन्दन सिंह पालनी होता तो कितना अच्छा रहता।''7 विद्यालय में दलितों से किए जाने वाले पक्षपात को कथानायक के कथन के माध्यम से चित्रित किया गया है : ''घरेलू परीक्षाओं में तो उसे इस संदेह से कभी छुटकारा नहीं था कि शिक्षक लोग जान–बूझकर उसे एक नीची जात के लड़के को फर्स्ट नहीं आते देते। दूसरा तीसरा कर देते हैं। पर बोर्ड की परीक्षा में ऐसा अन्याय होने की गुंजाइश ही नहीं थी। वहां तो परीक्षक के सामने सिर्फ रोल नम्बर ही होता है, जो न डूम होता है न ब्राह्मण।''8

कुन्दन शूद्र होने की भावना से जीवनभर ग्रसित चित्रित है। उसे लगता है शूद्र होने के कारण ही भागीरथी ने उसे ठुकराया उसे विश्वास हो गया कि भागीरथी ने उसे शूद्र होने के कारण ठुकराया है। उसे विश्वास है कि उसका पिता भी अंततः अपने शूद्र होने के आगे लाचार है और वह लाख कोशिश कर ले, लाख परतें चढ़ा ले अपने ऊपर, वह कभी इस हीनभावना से न तो खुद उबरेगा, न दूसरों को उबरने देगा।''9

इस उपन्यास का कथानायक जीवन पर्यन्त शूद्र होने के कारण दुःखी रहता है। वह सोचता है उसके नाना के पास हवेली है तो कुन्दन को लगता है उन्हें कोई डूम नहीं कहता लेकिन तभी वह यह भी सोचता चित्रित है कि पिता जी के पास तो हवेली या डिगरी कुछ भी नहीं है फिर भी लोग उन्हें महत्व देते हैं तो क्या जिस डूम के पास हवेली होती है और जो नेता बन जाता है, या डिग्री ले आता है, वह डूम नहीं रह जाता? बड़ा आदमी हो जाता है? मगर पिता जी के पास तो हवेली फवेली, डिगरी–फिगरी कुछ भी नहीं है। फिर भी, कुन्दन देखता है, लोग उनको भी थोड़ा बहुत मानते ही है। कोई 'डूम' कहके देखे उनको।''10

कथानायक कुन्दन का पिता नारायण राम टम्टा भी शूद्र होने से दुःखी चित्रित है मेरी एकमात्र योग्यता यही है कि मैं शिड्यूल कास्ट हूँ, समझी?...शिड्यूल कास्ट नहीं होता तो इतनी हायतोबा भी नहीं मचती। इतने बरस हो गये मुझे काम करते। कभी देखा तूने इन लोगों को मुझमें जरा भी दिलचस्पी लेते? जब मेरे लोग ही मुझे अपना प्रतिनिधि नहीं मानते तो आचार्यजी के कहने से क्या होता है? जब शिड्यूल कास्ट ही चाहिए, तो जो उसकी ठेकेदारी कर रहे हैं, उन्हीं को मौका मिले। फिर तो मैं खटकूंगा ही उनकी आंखों में, क्या नहीं खटकूंगा ...तू ही बता।11

इनके 'आप कहीं नहीं रहते विभूति बाबू' उपन्यास में जातीय भेदभाव का चित्रण हुआ है आप जैन हैं क्या? सरनेम से तो लगता है......' जी नहीं। जैन तो नहीं हूँ।' तो बोले, 'तो आप किस कास्ट को बिलॉग करते हैं?' .....'अरे भाई', विभूति बाबू बोले मैं तो अपने को ही बिलांग नहीं करता कास्ट वास्ट क्या जानूॅ।12इस उपन्यास से एक और उदाहरण दृष्टव्य है मनीषा मण्डल में मुहल्लों के ब्राह्मण लड़के भी थे, गांवों से शहर पढ़ने आए ठाकुर लड़के भी। उसमें बाजार के व्यापारियों के लड़के भी थे और वे भी, जिन्हें 'शिड्यूल कास्ट' कहा जाता था।''13

इनके 'विनायक' उपन्यास में दलित वर्ग में पैदा होने वाले नारायण राम का चित्रण है ''विनायक को अचानक याद आ गया कि इसी चंदू ने तो उससे कहा था ''नारायण डूम है।'' मगर... वो इसने कहा था, कि लच्छू ने? जो भी हो, कहा तो था जरूर।''14 विनायक उपन्यास से इसी तरह एक अंश और उद्धृत है।''जहाँ विनायक जैसे गोबर गणेश ही नहीं, नरैण सरीखे निहायत निरीह और दबे–कुचले लोग भी अपनी परिस्थिति से ऐसा बदला ले सकते हैं, जैसी उम्मीद उनसे कोई नहीं करता था वैसा करके दिखा सकते हैं तो, दूसरी तरफ इस सारे

परिवर्तन और प्रगति के बीचोबीच अभी कितने सारे गड्ढे दीखते हैं आत्म–विस्मृति और अपनों की ही बेकद्री के और उदासीनता के, जिन्हें वोट बिना यह देश और यह समाज कभी एकजुट नहीं हो सकता।''15

रमेशचंद्र शाह के उपन्यास साहित्य में दलित जाति के कठिन संघर्षों का यथार्थ चित्रण हुआ है। इनके उपन्यास साहित्य में दलित चरित्र चित्रित हुए हैं फिर भी इनके उपन्यास साहित्य में चित्रित कतिपय दलित चरित्र समाज में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि रमेशचंद्र शाह के उपन्यास साहित्य में चित्रित दलित चरित्र जहां एक ओर अभावग्रस्त जीवन जीने की विवशता झेलते दिखाई देते हैं। वही ये चरित्र सवर्णों की स्वार्थलिप्सा, अवसरवादिता, अनुदारता एवं अमानवीयता से अपार कष्ट पाते दिखाई देते हैं। इनके उपन्यास साहित्य में चित्रित दलितों का जीवन संघर्षों के साथ शुरू होता है और संघर्ष करते हुए समाप्त हो जाता है। वे समाज में अपनी प्रतिष्ठा के लिए ही संघर्ष नहीं करते हैं; बल्कि अपनी दिनचर्या चलाने के लिए भी संघर्ष करते दिखाई देते हैं।

संदर्भ :–

1–□ वाल्मीकि ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली 2005, पृ013

2–दलित दखल,पृ0205

3–रमेश चंद्र शाह,गोबर गणेश,राजकमल प्रकाशन,1977,पृ055

4–वहींपृ055

5–रमेश चंद्र शाह,किस्सा गुलाम, वाणी प्रकाशन संस्करण 2012 पृ022

6–वहीं पृ022

7–वहीं पृ057

8–वहीं पृ0149

9–वहीं पृ0189

10–वहीं पृ063

11–वहीं पृ0119

12–रमेशचंद्र शाह 'आप कहीं नहीं रहते विभूति बाबू', वाग्देवी प्रकाशन, संस्करण 2001,पृ082–83

13–वहीं पृ064

14–रमेश चंद्र शाह, 'विनायक',राजकमल प्रकाशन, तीसरा संस्करण 2016,पृ0201

15–वहीं पृ0203–204

मोबा0 8938976523

ई मेलः चतपलं1992ण्न ⁄ हउंपसण्बवउ

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 92-94
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ग्रामीण जीवन में महिलाओं की वर्तमान स्थिति

-डॉ. उमाकांत सिताराम साळवकर
विभागाध्यक्ष, नैशनल कला व विज्ञान महाविद्यालय अंभई, ता. सिल्लोड, जि. औरंगाबाद, महाराष्ट्र।

भारत में सामाजिक प्रवृत्तियाँ की स्थिती सदैव एक जैसी नही रही है बल्कि भारत में स्त्रि के विभिन्न स्वरूप है जैसे वह लक्ष्मी, विद्याषक्ति और सौदर्य का प्रतिक है। जितना आदर भारतीय स्त्री का अपने देष मे है उतना संभवतः संसार के किसी भी देष में देखने और पढने को नही मिलता है। पर दूख है कि उसकी दुर्बलताओं पर एकाधिकार कर लिया और उसे अपनी दासी बनाकर एक भोग की वस्तू के जैसा जीवन व्यापन करना पडा। विभीन्न समाज सुधारकोने स्त्री उध्दार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिसमे राजा राममोहन राय, स्वामी सरस्वती, विवेकानंद, केषव दास गोविंद रानडे और म. गांधी ने अहम भूमिका निभाई है।

स्वतंत्रता के पश्चात स्त्रि ने अपने अधिकारो और कर्तव्यो के प्रति नई चेतना जगाई। इसलिए वे आज छोटे पद से लेकर बडे–बडे पदो पर कर्तव्य रत है। इसके साथ साथ ग्रामीण क्षेत्र मे स्त्रियो की स्थिती शहरो के परिप्रेक्ष मे आज भी सोचनीय और दयनीय बनी हूई है। इसका मूख्य कारण सामाजिक रूढी परंपरा में पिछडा पन होना।

ग्रामीण क्षेत्र में स्त्रियो की स्थिति एवं कारणः

ग्रामीण क्षेत्रों के गाव कस्बो, झुग्गी झोपडीयो में स्त्रि सामाजिक रूप से बहुत पिछडे हूई है, गरीबी और बेकारी, बेबसी, लाचारी झोपडीयो में कराह रही है, व्यक्ति व्यक्ति को दो। समय का भोजन भी नही मिल पाता है। उनके लिए रहने को खूला आसमान और भूमी है। न उसके पार घर है न खाने को दो समय का भोजन और न शरीर को ढकने को वस्त्र, षिक्षा उनसे काफी दूर है, अन्धविष्वास और रूढियो ने उनकी चेतना को भावना हीन बना दिया है। इन निर्धन समाज में स्त्रियो की स्थिति अत्यंत दयनीय और सोचनीय है। इन स्त्रियो ने अपने अधिकारो के प्रती जागरूक होनी चाहिए।

विवाह परंपराः

ग्रामिण क्षेत्र में विवाह के ऐसे कठोर रूढीवादी नियम है जो लडका और लडकी को ज्यादा से ज्यादा नियमो से जकडती है। पुरूषो को विभिन्न छूट दि गई है। विवाह की ऐसी परंपरा है जिसमे स्त्री ही पिसती गई वह आज भी कुछ जगह गाव, कस्बो मे स्त्रि अपनी पसंद से विवाह नही कर सकती भले ही वे षिक्षीत हो। आज भी ग्रामीण क्षेत्रो में स्त्रि की षिक्षा योग्यता और कूषलता ग्रामिण जीवन में महत्व नही दिया जाता।

बाल–विवाहः

समाज का वास्तविक रूप हमे गर देखना है तो हमे गावो, कस्बो आदिवासी के बस्ती मे विदारक रूप दिखाई देता है काफी छोटी आयू मे ही लडकी का विवाह कर उस पर ग्रहस्ती का भार लाद दिया जाता है।

छोटी आयू मे ही माता बनने के कारण वे रोग ग्रस्त होती है। इस प्रकार की परिस्थितियो में स्त्री की स्थिति परिवार और समाज दोनो मे दयनीय बनती जा रही है।

संयुक्त परिवारः

संयुक्त परिवार में महीला की अपनी कोई इच्छा एव कोई अधिकार नही होते उसे सुबह सबसे पहले उठना पडता है रात में सबसे बाद में सोना होता है। वास्तव मे संयुक्त परिवार ने स्त्रियो को दासी बनाकर रखा गया उसे अन्धविष्वासी और रूढीवादी बनाया गया है। उसे बचपन सेही चूला, बरतन माजना, आदि घरेलू कामो को लगाया जाता है वे असंख्य यातनाओ को सहते हूऐ स्त्रि ने पूरूषो के अत्याचारो के विरूध्द आवाज नही उठाई है।

ग्रामिण स्त्री अषिक्षित, निर्धन वे स्वय किसी प्रकार का कार्य नही कर सकती जिससे वे खूद की स्थिती सूधार ना सके। ग्रामिण क्षेत्रो मे हमेषा ही चौकटी के बाहर जाकर नौकरी करना परिवारीक नियमो के विरूध्द समझा गया है। परिवार मे स्त्रियो की स्थिति गूलामो से कम नही सूबहा से लेकर रात तक उसे काम ही काम करना पडता है। बावजूद इसके पति से डाट, मार और गाली सूनने को मिलती है।

परिवारीक विघटनः

संयुक्त परिवार के चलते भाई भाईयो मे जमीन जायदाद के कारण आज साधारणतः विवाह के पश्चात पति–पत्नी अपना घर अलग बसाते नजर आये है। संयुक्त परीवार के घरोमे झगडे आणि अधिक मात्रामे होने कारण नवयूवक अब अलग रहना पसंद कर रहे है। गांव की स्त्रिया अब घर के बाहर काम, मजूरी, नौकरी आदि को जाती हूई नजर आयी है। अपने अधिकार तथा कर्तव्यो को समझने की कोसीष कर रही है।

बदलता परिवेषः

सरकार अषिक्षित तथा अज्ञानता को दूर करने के लिए गांव–गांव मे बेसीक स्कूल, पाठषालाएँ आदि षिक्षा संबधीत अनेक योजनाएँ बनाकर षिक्षा का प्रसार हो रहा है। कस्बो में लडकीयो के हाई–स्कूल, डिग्री कॉलेज खोले गये इनके परिणामस्वरूप अब ग्रामीण समाज मे षिक्षित लडकीया षिक्षा पाने हेतू स्कुलो, महाविद्यालयो दिखाई दे रही है। इन लडकीयोको अपने परिवार में सम्मान एव इनकी राय भी परिवारो मे ली जा रही है। जब की पहले इस सम्मान एव षिक्षा उसकी आषा आकांक्षाओ को दबा दिया जाता था।

टेलीव्हीजन से ग्राम्य जिवन में आया बदलावः

ग्रामिण जिवन मे नगरो, शहरो की तरह आज गावो मे टेलिव्हीजन पर दिखाई जाने वाली धारावाहीक एव भिन्न विभिन्न कार्यक्रमो कें प्रसारण से ग्रामीण स्त्रियो के जिवन के स्थिति में बदलाव आया हूआ दिखाई देता है। टेलिव्हीजन, मोबाईल आदि के साधनो मे प्रगति होने से गाँव, कस्बो, नगरो और महानगरो से जूडने से ग्राम्य जिवन मे समाचारपत्रो, सिनेमा, टी.व्ही. केबल आदि के माध्यमोद्वारा गांव में नगर की संस्कृति और सभ्यता पहूच रही है। अब ग्रामिण स्त्रिया अधिक मात्रामें नगरो मे आकर आपनी आवष्यकता के अनूसार चिजे खरीदती हूई दिखाई दे रही है। नगरोसे संपर्क स्त्रियो के आधुनिक, प्रगतिषिल बनाने साहयक होता दिख रहा है।

महिला प्रषिक्षण संस्थाएः

सरकार महिला सक्षमिकरण को चलते गाव, कस्बो एव नगरो मे महिला प्रषिक्षण संस्थाओ को अनूदान देते हूए इन प्रषिक्षण संस्थाओ मे कपडा–सिलना और काटना, कालीन बनाना किचन से जूडे बारीक काम कॉटन को

बूनना, माचिस बनाना आदि ऐसे कई कोर्सेस है जो परिवारीक कार्योसे मुक्त होकर स्त्रियाँ इन कार्योमे अतिरिक्त आय प्राप्त करने हेतू उने प्रषिक्षीत किया जाता है। इससे उनकी स्थिति में थोडा–बहुत सुधार आता हूआ दिखाई देता है।

स्वयं–सेवक महिला के संदर्भ मेः

आज अनेक प्रकार की योजनाओ में महिला स्वंय सेविकाये घर घर जाकर स्थियो को स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, बच्चो के पालन पोषन, महिला बचत योजना, आदि के बारेमे दे स्वय सेवक महिला कार्यरत है इससे देष की प्रगति का परिचय होता दिखाई देता है। स्त्रियोपर इन सभी चीजो का प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर पडता है और वे नये तरीकिसे अपनी स्थिति का मुल्यांकन कर समाज के साथ चलने का प्रयास करती है। यही सभी तथ्य उसकी आर्थिक सामाजिक स्थिति, सोच और मानसिकता मे भी परिवर्तन लाने हेतू मदत करते है।

ग्रामिण समाज की स्त्रियो की स्थिति पूर्व जैसे नही रही उसकी परिवारिक और सामाजिक स्थिति में विभिन्न परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई पडते है संयुक्त परिवार टूटने से उनके अधिकारो में परिवर्तन आया है और उनकी आर्थिक स्थिति स्त्री सषक्त होती दिखाई दे रही है। वे गाव जो कस्बो तथा नगरो के निकट है जहा लडकीयो के स्कूल और कॉलेज है जहा लडकिया षिक्षित होकर आपने आधिकारो के प्रति जागरूक होती नजर आ रही है।

संदर्भः

1. देहातो मे सामाजिक आर्थिक संबधो का बदलता हुआ प्रतिमान, लेखक योगेन्द सिह आवृती 1958.
2. भारत मे परिवर्तीत हूए गाव, लेखक एस.सी.दूबे, आवृती 1958.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 95-100
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संत वील्होजी का हिन्दी साहित्य को अवदान

–पृथ्वीसिंह बैनीवाल बिश्नोई
संस्थापक सदस्य, जाम्भाणी साहित्य अकादमी, 313, सैक्टर–14, हिसार (हरियाणा)–125001

हरियाणा के रेवाड़ी जिले में जन्मे संत वील्होजी शिरोमणी बिश्नोई पंथ में सबसे सशक्त और समाज सुधारक संत माने जाते हैं। पंथ संस्थापक श्री गुरु जम्भेश्वर जी के बाद वे ही धर्म–नियमों से पथ भ्रमित हो रहे लोगों को पुनः सही मार्ग पर लाए। महात्मा वील्होजी के जीवन और कार्यों के बारे में अन्य जाम्भाणी साहियत्यकार व कवियों जिसमें संत सुरजनजी पूनिया, संत केसोजी गोदारा, परमानन्दजी बणियाल, गोबिन्दराम जी बागड़िया, साहबरामजी राहड़ आदि ने अपनी रचनाओं में विस्तृत उल्लेख किया है। जाम्भाणी और राजस्थानी महाकवि संत साहबरामजी राहड़ रचित ग्रन्थ जम्भसार (प्रति संख्या 193) में तीन प्रकरणों 21, 22, 23 में विस्तार से संत वील्होजी के बारे में लिखा है। कालक्रम के अनुसार वील्होजी के जीवन को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम, उनके शिरोमणी बिश्नोई पंथ (समाज) में दीक्षित होने से पूर्व तक तथा दूसरा, शिरोमणी बिश्नोई पंथ (समाज) में दीक्षित होने के बाद।

जम्भसार के प्रकरणों 21, 22 में विभिन्न प्रसंगों में शिरोमणी बिश्नोई पंथ के संस्थापक गुरु श्री जम्भेश्वर भगवान की भविष्यवाणी के रूप में वील्होजी का परिचय दिया गया है, जो उनके जीवन के प्रथम भाग की पृष्ठभूमि कही जा सकती है। एक समय श्री गुरु जाम्भोजी ने निज सब संतो के मध्य हजूरी शिष्य संत रेड़ोजी, संत निहालदास जी और रणधीरजी बाबल तीनों को महंत बनाया परन्तु चौथी गद्दी के महन्त की सफेद पोशाक, जाम्भाणी टोपी, चोळा, माळा और चाद्दर एक संदूकची में रख दी। तब साधुमण्डली ने श्री गुरुदेव से इस बारे पूछा तो गुरु जी बोले, ष्एक स्वान्ती शाहष नामक बादशाह जो मेरा शिष्य हो गया था, उसने रेवाड़ी (वर्तमान में हरियाणा प्रदेश का एक जिला मुख्यालय है) में एक बढ़ई (खाति) के घर जन्म लिया है, जिसका नाम वीठल है। मेरे अंतर्ध्यान होने (संसार सागर छोड़ने) के आठ वर्ष बाद वह यहाँ आयेगा। वही इस पंथ को चलाएगा और आगे बढ़ाएगा। तब हजूरी संत रेड़ोजी ने पूछा कि हम सब उन्हें जानेंगे कैसे ?

तब श्री गुरु जाम्भोजी ने बताया कि वह मेरे द्वारा कहे गए सबदों को एक बार सुनकर ही पुनः बोल देगा। उसकी पुरोहित वृति देखकर उसको चौथा महंत बना देना। उसे मेरा ही स्वरूप मानना (21वाँ प्रकरण)। दूसरे (प्रकरण 22) के अनुसार श्री गुरु जाम्भोजी विक्रमी संवत 1593 में 85 वर्ष तीन महीने की आयु में निज धाम सम्भराथल धोरे से उठकर लालासर गाँव के बाहर 3–4 किलोमीटर दूर एक कंकैड़ी के नीचे जाकर बैठ गये। संतों ने उनके अंतर्ध्यान का विचार देख कर प्रार्थना की कि ष्हे गुरुदेव, आप जाने से पूर्व पंथ का धणी (जिम्मेदार संत) तो किसी को जरूर कीजिए। तब गुरु जाम्भोजी ने निज प्रथम कथन विस्तार से बताते हुए वह

संदूकची सम्भलवा दी तथा आठ वर्ष बाद वील्हो जी के आने पर उसे देने को कहा। उन्होंने यह भी बताया कि वह जनमान्ध है परन्तु ज्यूं ही यह जाम्भाणी टोपी उसके सिर को छुएगी, उसे उसकी दृष्टि पुनः प्राप्त हो जायेगी। फिर आठ वर्ष बाद विट्ठल विक्रमी सम्वत 1601 में फाल्गुण बदी अमावस्या को मुकाम मंदिर में आये और गुरदेव की बताई बातें उनमें मिल गई तो ऊदौजी ने उन्हें वह संदूक सौंप कर गुरु मंत्र दे दिया।

इनका वास्तविक नाम विट्ठलदास था। इनके शिष्य संत सुरजनदासजी पुनिया ने इनको इसी नाम से याद किया। शिरोमणी बिश्नोई पंथ में ये वील्हजी, वील्होजी और वील्हेश्वरजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका जन्म विक्रमी संवत 1589 (सन् 1532) में हरियाणा के रिवाड़ी में दहिया जाति के श्रीमती आनन्दा बाई–श्री परसो, परशुराम सुथार (खाति) के घर में हुआ। चार वर्ष की आयु में ये आंखों से अन्धे हो गये थे, परन्तु ये बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि, सत्संगी, धार्मिक–प्रवृति वाले और अच्छे गायक भी थे। इनकी स्मरण शक्ति भी बहुत तीव्र थी। एक दिन गुजरात से एक साधु आकर रिवाड़ी में रूका। तब बिट्ठलदासजी बच्चों के साथ साधु के पास आये। सायंकाल संत ने कुछ साखी, सबद गाये जो सुनकर वे वाह ! वाह! कह उठे। वील्होजी ने साधु के गाई सभी रचनाएं ज्यूँ की त्यूँ गाकर सुणा दी। साधु बहुत प्रभावित हो संस्कारी जानकर उनके पिता से उनकी माँग की। साधु उसे लेकर गंगा की ओर चले गए। कुछ समय बाद बाल बिट्ठलदासजी साधुमण्डली के साथ भ्रमण करते हुए हिम्मटसर गाँव में पधारे। अगले दिन प्रातः ही मंदिर मुक्तिधाम मुकाम (गुरु जाम्भोजी का समाधि स्थल) में हो रहे श्रीजम्भवाणी सबद–पाठ की ध्वनि सुनी। उन्होंने एक बिश्नोई स्त्री से पूछा क्या दक्षिण दिशा में कोई मंदिर है ? तब वह औरत बोलीः हाँ जम्भद्वारा है, आप भी जाकर दर्शन कीजिए।

साहबराम जी कृत जम्भसार प्रकरण 22 के अनुसार स्नान के बाद 4–5 साधु–संतों के साथ वे मंदिर मुक्तिधाम मुकाम पर आए। मंदिर के चौक पर गुरु जाम्भोजी के हजूरी शिष्य रेड़ोजी तथा नाथोजी आदि साधुओं के संग अनेक शिरोमणी बिश्नोई जन विशाल हवन के साथ श्रीजम्भवाणी सबद पाठ कर रहे थे। पूरे सबद सुन वील्होजी को ज्ञानानुभव हुआ और सबद कंठस्थ हुए, और गुरु जाम्भोजी कहे वचनों अनुसार दी गई टोपी से वील्होजी के आंखों की ज्योति पुनः लौट आई, जिसके पश्चात वील्होजी ने आत्म– निवेदन करते हुए बहुत ही मार्मिक एवं दर्दभरी साखी बोलकर निज उद्धार प्रार्थना की और बिश्नोई पंथ में शामिल होने की इच्छा प्रकट की। उनकी प्रार्थना स्वीकार कर हजूरी संत महात्मा नाथोजी ने अमृतमयी पाहळ प्रदान कर वील्होजी को पंथ में दीक्षा दी। जाम्भाणी साहित्य के प्रमाणानुसार यह घटना विक्रम संवत 1611 (सन् 1554) में कार्तिक सुदि सप्तमी की है। तब वील्होजी की आयु 22 वर्ष थी।

शिरोमणी बिश्नोई पंथ में दीक्षित होने के बाद बहुत से समाज सुधार के कार्यों के साथ साहित्य लेखन आरम्भ किया। साहित्य लीपिबद्ध करना संत वील्होजी ने ही आरम्भ किया था। उन्होंने पंथ की कुशलक्षेम और आर्थिक स्थिति और सुधार का पता एक दूसरे को लग जाने के उद्देश्य से मुक्तिधाम मुकाम मंदिर पर और जोधपुर की फलौदी तहसील में जाम्भा गाँव में स्थित शिरोमणी तीर्थ जाम्भोळाव (जम्भसरोवर) पर मेळे आरम्भ करवाए। उपरोक्त सभी बातों की पुष्टि इनके शिष्य महात्मा सुरजनदासजी पुनिया के एक कवित से हो जाती हैः–

तीरथ जाम्भोळाव, चौत चिठिये मिलायो।
मेळो मंड्यो मुकाम, लोक आसोजी आयौ।
अमर थाट बाकरा करै, खेजड़ी रखावै।

अग्यांनू उथपे गति सोह ग्यांन मिळावै।
बंधिया सील पोथो कथा, सुपह पंथ संवारियौ।
सीझत आठ साका किया, वील्ह बैकुंठ सिधारियौ।।

संत साहबरामजी राहड़ ने उनकी देश में साम्प्रदायिक देन की यह कह कर बहुत ही सटीक व्याख्या की है कि जिस धर्म की जड़ श्री गुरु जाम्भोजी थे, वील्होजी उसके स्तम्भ थे और अन्य साधु, संत एवं महात्मा धर्म वृक्ष की डाळियों के समान थे। वील्होजी ने धर्म पंथ का पुनरुद्धार किया। पंथ के प्रति आस्था और विश्वास के नशे को फिर से चढ़ाया। वील्होजी ने पंथ का सुधार किया, महाराजा जोधपुर से राजकीय शक्ति प्राप्त की, तालाब बनवाए, वन एवं वन्यजीवों (वन्य सम्पदा) की रक्षा और 29 धर्म–नियमों का कड़ाई से पालन करने बारे समाज को बड़े स्तर पर जागरूक किया।

उनका न केवल जाम्भाणी साहित्य बल्कि राजस्थानी और हिन्दी साहित्य को भी महान अवदान है। राजस्थानी व हिंदी साहित्य में संत वील्होजी जैसा व्यक्तित्व और कृतित्व दुर्लभ है। उनके परम शिष्य संत सुरजनदासजी पुनिया ने अपने मरसियों में भविष्यवाणी करते हुए कहा था कि मरुधरा को वील्होजी जैसा व्यक्ति, भक्त, साहित्य और पंथ चिन्तक दूसरा नहीं मिलेगा,

सुक्रत ग्यान सलेह, दीन पति पुरी दाखवै।
वीठळदास बलेह, मिलै न सारी मुरधरा।।158।।
बाग बिलखो दीठ मै, बड़ भागे बिठळ।।
अंब गयो घरि आपणै, मरण सुरिजमल।।159।।

महात्मा वील्होजी जी की अब तक निम्नलिखित रचनाएं प्राप्त हुई हैः–

1. कथा थड़ाबंध (छंद 53)
2. कथा औतारपात (छंद 142)
3. कथा गुगळियै की (छंद 86)
4. कथा पूल्होजी की (छंद 25)
5. कथा द्रोणपुर की (छंद 63)
6. कथा जैसलमेर की (छंद 112)
7. कथा झोरड़ां की (छंद 32)
8. कथा ग्यांनचरी (छंद 130)
9. कवत परसंग का (छंद 13)
10. सच अखरी विगतावली (छंद 54)
11. साखियां दस (10)
12. हरजस इक्कीस (21)
13. विसन छत्तीसी (छंद 37)
14. छप्पय ––45

15. मंझ अखरा दूहा–अवतार का (26)
16. छटक साखियाँ (दोहे–13)
इनमें से एक क्रमांक दस (10) सच अखरी विगतावली का विस्तृत विवरण एवं विवेचन निम्नलिखित है, जो वो गूढ़ ज्ञान है जो वील्होजी का हिन्दी साहित्य को महान अवदान माना जाता है,
10 सच अखरी विगतावली
यह 64 दोहों–चौपाइयों की रचना है। इसमें प्रतिदिन लोक व्यवहार और आम बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले अनेक अशुद्ध शब्दों, वाक्यों और उक्तियों के साथ उनके सही प्रयोग बताये गये हैं। इसके शीर्षक से ही स्पष्ट करते हैं (सचअखरी=सत्याक्षरी) कि इसका वर्ण्य विषय ही सही शब्दों की विगत देना है।
उनके अशुद्ध–शुद्ध के प्रयोगों के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं,

1. अशुद्धः आंधी झांख
शुद्धः बाव, पुवंण (वायु, पवन)
2. अशुद्धः– तैं कितकै बरसायो मेह? कहै–बरसायो उमके गांय।
(प्रश्न–तूने मेह कहाँ बरसाया?, उत्तर–अमुक गाँव में बरसाया।)
शुद्धः– तूं कित हो जदि बूठो मेह?, मेह म ही हूं तो उंण ठांय।
(प्रश्न–जब मेह बरसा तब तू कहाँ था?, उत्तर–मेह में मैं अमुक स्थान पर था)
5. अशुद्धः– बळद पीयो–बैल पिया। गाय पीवी–गाय पीयी।
शुद्धः– बळदे पाणी पीयो।
(बैलों ने पानी पिया)।
गाएं पांणी पीयो।
(गाय ने पानी पिया)।
11. अशुद्धः– पंथ कित जयसी?
(प्रश्न हैः रास्ता कहां जायेगा?
(उत्तर हैः यह रास्ता अमुक गाँव जायेगा)।
क्योंकि पंथ कितकै आवै न जाय।
शुद्धः इण पंथ जाईजै किणी गांय ?
(प्रश्नः इस रास्ते से किस गाँव को जाया जायेगा ?)
रास्ता न कहीं जाता और न आता है)।
18. अशुद्धः गाडा गाडी हांक्यो (गाड़ा, गाड़ी को हांका)
शुद्धः बळद हांक्या (बैलों को हांका या चलाया)
19. अशुद्धः बळद भर्या (बिणजारा कहता है–बैल भरा)।
शुद्धः छाटी छाली (छाटी छाली या बोरा भरा)।
29. अशुद्धः घाणी चूरो (घाणी को चूरा, दळा या मसळा)।

शुद्धः तिल चूर्या, जो चूरीजै, सोई कहणा। (तिल चूरा, जो वस्तु चूरी जाये उसी का नाम लेणा चाहिए)।

30. अशुद्धः आटो पीस्यौ (आटा पीसा)।

शुद्धः अन्न (अनाज) पीस्यौ। (अन्न या अनाज पीसा)।

31. अशुद्धः दाळि दळी (दाळ दली)।

शुद्धः जो अन्न चीर्यो सोई कहणां। (जो अन्न दळा/दला जाए, उसी का नाम लेणा चाहिये।

33. अशुद्धः डाची घड़ा लादो। (ऊँटणी, घड़ा लादो)

शुद्धः लादण लादणा लादो। (पशु पर भार/घड़े रखो/लादो)

35. अशुद्धः घोड़ा ऊंट बीड़ो। (घोड़ा ऊंट कसो)

शुद्धः पूठी उपरि, मांढियै, पलांण। (घोड़ा, ऊंट की पीठ पर पिलाण मांडो यानि उनकी पीठ पर काठी या आसण लगाओ)।

उल्लेखनीय है कि यह समूचे मध्ययुगीन राजस्थानी साहित्य और हिन्दी साहित्य में अपने ढ़ंग की अनूठी रचना है। निर्विवाद रूप से इसका भाषा शास्त्र के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कवि ने बहुत ही सूक्ष्मदृष्टि से दिन प्रतिदिन लोक व्यवहार में प्रयुक्त तथा प्रचलित बोली और उसके शुद्धाशुद्ध प्रयोगों की परख करते हुए उसे सोदाहरण स्पष्ट किया है। बोलचाल में जिन छोटे मोटे अशुद्ध प्रयोगों की ओर आमतौर पर किसी का ध्यान नहीं जाता, वील्होजी ने उन्हीं की ओर ध्यान आकर्षित किया और कराया, जिसे पढ़–सुनकर अनपढ़ और आम व्यक्ति/लोग भी अपनी बोली/भाषा पर सतर्कता से सोचने, बोलने, लिखने और विचार करने को बाध्य हो जाता है। इसमें लोकभाषा की लाक्षणिक शक्ति और अर्थ का सहज ग्राह्य और सुन्दर रहस्योद्घाटन किया गया है। इससे वील्होजी का मरुभाषा के मार्मिक ज्ञान और उनकी तल–स्पर्शिनी और व्यापक (गहरी) दृष्टि का पता चलता है। आम लोगों में शुद्ध भाषा का प्रयोग और लोकव्यवहार ही उनका प्रमुख ध्येय था, जिसकी सार्थकता वे इस प्रकार सिद्ध करते हैं, मोक्ष प्राप्ति के इच्छुकों को श्रीजम्भवाणी से ज्ञान ग्रहण करना चाहिये, श्री सतगुरुदेव भगवान जाम्भोजी ने झूठ त्याग कर सच बोलने को कहा है। जैसे पंक्ति दृष्टव्य हैः

जे जंण करै सुरग की आस। गुरवाणी संभल परगास।
फुरमायो साचो बोलणो। कूड़ बोल्यै अवगण घणौं।।4।।

जैसे विष्णु नाम सत्य है, वैसे ही सतगुरु जी कहते हैं, वह सत्य होने के कारण माननीय होता है। जैसे पंक्ति दृष्टव्य हैः

साचौ नांव विसन को, सतगुरु कह्यो स साच।
गुर सोई सत बंदियौ, जींह को अवचळ वाच।।1।।

जिसकी पहचान सत्य से है, मोक्ष का अधिकारी भी केवल वही है। जैसे पंक्ति दृष्टव्य हैः–

साच पियारो साम्य हरि, सति साच दीवांणि।
सुरां सभा सो सांचरे, जिंह सांच सूं पिछांणी।

जैसे व्यापारी वस्तु को तराजू से पूरा तोलता है, वैसे ही शब्दों को पूरा तोलना चाहिये।

जैसे पंक्ति दृष्टव्य हैः–

जेह बोपारी तोलणों, वाषर पूरो तोलिए।

ओछो द्यै पूरो कहै, अतरो कूड़ न बोलि।।48।।

वील्होजी का भाषा–ज्ञान और बोली सुधार का यह प्रयास हिन्दी के संत–भक्ति साहित्य में अति दुर्लभ है, विरल है। इसके अतिरिक्त परम विद्वान संत श्री वील्होजी रचित भिन्न भिन्न राग–रागनियों में गेय दस साखियां, भिन्न–भिन्न राग–रागनियों में गेय 21 हरजस प्राप्त है।

इसके साथ ही उमाहो ष्बाबो जम्बू दीपे परगट्यो, चौहचकि कियौ उजासष् 22 दोहे, धनांसी में गेय ष्उमाहोष वील्होजी की सर्वाधिक चर्चित–प्रचलित और हृदयग्राही रचना है, जो उन्होंने जीवन के अंतिम समय और स्वर्गारोहण से कुछ समय पूर्व ही रामडावास में कही और गाई थी। इस रचना में उन्होंने विष्णु अवतार सतगुरुदेव भगवान जाम्भोजी का महिमागान कर और उनसे उन्हें दर्शन देने और मोक्ष प्रदान कर निज चरणों में स्थान देने की कामना की है।

सन्दर्भ ग्रन्थः–

1. श्रीजम्भवाणी मीमांसा– डॉ. हीरालाल माहेश्वरी।
2. श्री जम्भदेव चरित भानू– महात्मा ब्रह्मानन्द जी।
3. श्री जम्भसार– साहबराम जी राहड़।
4. श्री जम्भसागर– कृष्णानंद आचार्य।
5. जाम्भोजी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य– डॉ. हीरालाल माहेश्वरी।

9518139200, 9467694029

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 101-104
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मधुकर सिंह के उपन्यासों में दलित विमर्श

–भीम सिंह
पीएच.डी. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, समरहिल, शिमला–171005

आज जब पूरे देश में दलित विमर्श और दलित आन्दोलन की धूम है, तो हमें कहानीकार, उपन्यासकार और नाटककार मधुकर सिंह याद आते हैं। मधुकर सिंह ऐसे रचनाकार रहे है, जिन्होंने समाज के हाशिये के लोगों को अपनी रचनाओं का प्रमुख पात्र बनाया और उनकी सामाजिक स्थिति से हमें अवगत करवाया। मधुकर सिंह ने अपने उपन्यासों में ग्रामीण समाज को रेखांकित करते हुए दलितों की स्थिति का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया है मधुकर सिंह ने अपने उपन्यासों में दलित, शोषित, पीड़ित वर्ग की दयनीय स्थिति का चित्रण प्रस्तुत किया है। मधुकर सिंह ने अपने उपन्यासों में दलित शोषण के विविध पहलुओं को बड़ी गहराई से व्यक्त किया है। दलितों का जाति आधारित शोषण किया जाता है। अतः निम्नवर्ग अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करता है। मधुकर सिंह ने वर्ग संघर्ष द्वारा दलितों मे आ रही चेतना की ओर भी संकेत किया है। मधुकर सिंह ने दलित चेतना के विविध आयामों को विविध रूपों में प्रस्तुत किया है। उन्होंने पात्रों के द्वारा जातिविहीन समाज की कल्पना करके, रूढ़ि, परंपराओं को त्यागकर राजनीति में समानता स्थापित करने तथा ग्रामीणों में चेतना जगाकर दलितों की जागृति का वर्णन अपने साहित्य में किया है।

वर्तमान समय में शहरों का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। लोग गाँव को छोड़कर शहरों की तरफ जा रहे हैं। लेकिन दलित वर्ग के अधिकतर लोग अभी भी गाँव में रहते है। शहरों में जाति–पाति का भेदभाव इतना नहीं है, जितना कि गाँव में है। इसीलिए ग्रामीण समाज में दलित चेतना का जागृत होना अति आवश्यक है। यह जागृति केवल शिक्षा के माध्यम से आ सकती है। ग्रामीण दलित समाज में सदियों से शिक्षा का अभाव रहा है। 'महात्मा ज्योतिबाफूले' जैसे महान समाज सुधारक ने सबसे पहले दलितों की शिक्षा के लिए प्रयास किया। इसके पश्चात 'डॉ॰ भीमराव अंबेडकर' ने इस बारे में व्यापक कार्य किया इन महान समाज सुधारकों के संघर्षों के परिणाम स्वरूप ग्रामीण दलित समाज के लोगों को शिक्षा प्राप्त हो सकी।

मधुकर सिंह के उपन्यास 'सोनभद्र की राधा' का नायक गोबिन एक दलित युवक है। उसके पिता गाँव के सामंत नगेसर मिसिर के घर हलवाहे का काम करते है, पर वह अपने बेटे गोबिन को पढ़ाना चाहता है ताकि गोबिन पढ़ लिखकर कोई बड़ा अफसर बन सके। गोबिन पढ़ने में बहुत अच्छा है। उसे कविता लिखने का भी शौक है। वह अपने नाटक तथा कविताओं के द्वारा लोगों में स्वाभिमान की भावना जगाता है। इस स्वाभिमान की भावना को गोबिन द्वारा लिखित 'कविता' में देखा जा सकता है।

''आवो,

जो बाज हमारी चैन छीनकर
आकाश में भाग रहे हैं –
हम उनका पीछा करें
हमारे पास लड़ाई के लिए क्या है।
आवो, सहस्रो, लाखों हाथों को एक में जोड़ दो,
और सीना तानकर जातियों के सामने खड़े हो जाओ
मेरे दोस्तों,
आवो''1

इस प्रकार हम देखते है कि गोबिन समाज में व्याप्त जाति–पाति व भेदभाव के खिलाफ लोगों को एकजुट होने के लिए आग्रह करता है। गोबिन अपने समाज के प्रति जागरूक है। वह इस बात को भली–भान्ति जानता है कि दलित समाज के लोगों को एकजुट किए बिना इस जातिवाद के खिलाफ नहीं लड़ा जा सकता है।

मधुकर सिंह के उपन्यासों में दलित समाज का जो वर्णन हुआ है वह बहुत ही स्पष्ट है। उसमें कहीं अनुभूति की सच्चाई झलकती है, तो कहीं परिवर्तन के बीज दिखाई पड़ते है। इसका मूल कारण यह है कि मधुकर सिंह स्वयं दलित परिवार से संबंध रखते थे। संचेतन कहानी आंदोलन के प्रवर्तक महीप सिंह इस संदर्भ में लिखते है की ''दलित साहित्य को सही पहचान दलित वर्ग में जन्मे लेखकों ने ही दी। उन्होंने इस पीड़ा को अपनी हथेली पर रखे हुए अंगारे की तरह महसूस किया।

इस प्रकार के लेखन ने इस वर्ग द्वारा भोगे हुए उपेक्षा, अपमान और व्यथा को तो अभिव्यक्ति दी ही है बल्कि उस समाज व्यवस्था की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है जिसमें एक पूरा का पूरा वर्ग इन स्थितियों को झेलने के लिए मजबूर कर दिया गया है।''2

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात दलित समाज में भी बहुत बदलाव दिखाई देता है। औद्योगिकीकरण और शिक्षा के व्यापक प्रचार–प्रसार का दलित समाज पर भी असर पड़ा और उनमें अपने पारिवारिक और सामाजिक स्तर को सुधारने की चेतना जाग उठी। पहले दलित समाज के लोग अपने गाँव व कस्बों में अपना जीवन व्यतीत करते थे परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् वह अपनी आजीविका कमाने के लिए शहर में आकर बसने लगे। शहर में गाँव की तरह बंदिशे न होने के कारण वे हर क्षेत्र में नौकरी करते हैं। मधुकर सिंह के उपन्यास 'सबसे बड़ा छल' का प्रमुख पात्र देवनाथ सिंह भी नौकरी करने के लिए गाँव से कोलकत्ता शहर चला जाता है। इसका वर्णन करते हुए मधुकर सिंह कहते है ''कोलकत्ता में वह हजारों मजदूरों का एकमात्र नेता था, जिससे सामान्य जनता से लेकर मंत्री तक भी भय खाते थे''3 इस कथन से स्पष्ट है कि दलित समाज विभिन्न प्रकार के व्यवसाय अपनाकर अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने में सफल साबित हो रहे है। गाँव में जात–पात का भेदभाव होने के साथ–साथ अर्थोपार्जन के साधन न होने के कारण दलित समाज के लोगों को अपनी जीविका चलाने के लिए विभिन्न स्तरों पर संघर्ष करना पड़ता है। इसी कारण लोग गाँव से शहरों की तरफ पलायन कर रहे है। मधुकर सिंह के उपन्यास 'सोनभद्र की राधा' में गोबिन गाँव की इस भेदभाव एवं घुटनपूर्ण जिंदगी से ऊबकर शहर चला आता है। वह अपने दोस्त से कहता है कि ''हम शहर चलकर रिक्शा खीचेंगे, शांति से दो रोटी मिल जाएगी। कोई वहाँ छोटा–बड़ा समझने वाला तो कहीं नहीं मिलेगा।''4

आजादी से पहले भारतीय दलित समाज की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय थी। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलितों को केवल निम्नस्तर के कार्य करने पड़ते थे। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इस वर्ग की स्थिति में भी थोड़ा–बहुत बदलाब आया है। आज दलित वर्ग के लोग अपने पारंपरिक धंधों को छोड़कर शहरों की तरफ निकले है। आधुनिक युग में औद्योगिकीकरण और शिक्षा के बढ़ते महत्त्व के कारण शहरों में रोजगार के नए–नए साधन उपलब्ध हो रहे है। कारखानों में तथा सरकारी नौकरियों में अपनी–अपनी काबिलियत के आधार पर रोजगार का लाभ समाज के दलित वर्ग ने बड़ी मात्रा में लिया है। दलितों की इस बदलती हुई आर्थिक स्थिति का चित्रण मधुकर सिंह के उपन्यासों में देखा जा सकता है।

'सोनभद्र की राधा' उपन्यास का नायक गोबिन अपने भाईयों में एक नयी सोच पैदा करने के लिए नाटक में हिस्सा लेते हुए कहता है कि ''हम लोग अबतक जो कुछ भी करते रहे हैं, उससे जिंदगी का कोई मतलब नहीं। हम लोग जिंदगी के बहुत करीब, बहुत समांतर ऐसे नाटक गाँव–गाँव खेलेंगे, जिसे देखकर लोगों के भीतर से आपसी वैमनस्य पिघल जाए और लोग अधिकार की लड़ाई में एकजुट होकर आगे बढ़े''5

इस प्रकार हम देखते है कि आज पूरा दलित समाज आपसी मतभेदों को भूलकर अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए एकजुट हो रहा है। गोबिन अपने सिरीपुर के गाँववालों को एकजुट होकर खेती करने का प्रोत्साहन देता है। गोबिन का मानना है कि गाँव की जमीन पर सभी गाँव वालों का समान रूप से हक है। गोबिन गाँव के लोगों को एकजुट करते हुए कहता है कि ''भाई रे! आज हमारा नया दिन है। आज से हम एक जाति, एक आदमी है। आज हम भेद की सारी दीवारें तोड़कर नई जमीन के चारों ओर खड़े होकर संकल्प लेते है– हम एक समाज और एक परिवार है''6

गोबिन जैसे पढे–लिखे युवा आज अपने समाज के लोगों को जागरूक कर उनमें सामाजिक चेतना विकसित कर रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् दलितों को कानून की दृष्टि से बराबर का अधिकार दिया गया है। आजाद भारत में एक अमीर व्यक्ति के मत का मूल्य भी उतना ही है, जितना कि एक निर्धन व्यक्ति के मत का मूल्य है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विधानसभाओं व लोकसभा में दलित वर्ग के लिए कुछ स्थान आरक्षित किये गये हैं ताकि वे अपने समाज के लोगों की समस्याएं वहाँ पर रख सके। दलित समाज में शिक्षा का प्रचार–प्रसार होने के कारण आज वे राजनीति के दांव–पेंच समझ रहे है। राजनेताओं के लोकलुभावन वादों से वे अच्छी तरह वाकिफ हैं। इसी कारण वे किसी भी नेता के बहकावे में न आकर तटस्थ रूप से अपना मतदान करते हैं।

सारांश रूप मे कहा जा सकता है कि मधुकर सिंह हिन्दी के दलित साहित्य परम्परा के पहले समर्थ लेखक है। दलित अनुभूति और दलित चेतना को पूरी शक्ति के साथ इन्होंने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। इनके उपन्यासों में वेदना और विद्रोह की जो अभिव्यक्ति हुई है वह हमें साहित्यिक न लगकर वास्तविक प्रतीत होती है। मधुकर सिंह के लेखन ने आने वाले दलित लेखकों के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। भविष्य में जब दलित संघर्ष का इतिहास लिखा जाएगा, तो मधुकर सिंह के उपन्यासों की चर्चा उसमें जरूर की जाएगी, क्योंकि मधुकर सिंह के उपन्यासों के पन्नों–पन्नों पर दलित चेतना की वेदना और विद्रोह की अभिव्यक्ति हुई है। यही दलित चेतना मधुकर सिंह के उपन्यासों की उपलब्धि है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :
1. मधुकर सिंह, सोनभद्र की राधा, पृ० 77
2. सुभाष सेलिया, आजकल : अगस्त 2001, पृ० 31
3. मधुकर सिंह, सबसे बड़ा छल, पृ० 10
4. मधुकर सिंह, सोनभद्र की राधा, पृ० 27
5. मधुकर सिंह, सोनभद्र की राधा, पृ० 93
6. मधुकर सिंह, सोनभद्र की राधा, पृ० 20

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 105-110
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी ग़ज़ल और ईसा मसीह

–अजय कुमार 'अजेय'
शोधार्थी, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली।

मेरी रुचि और शोध दोनों का विषय और क्षेत्र 'हिन्दी ग़ज़ल' है किन्तु 'हिन्दी ग़ज़ल और ईसा मसीह' !! इस विषय पर मेरा ध्यान कभी नहीं गया था लेकिन जब जुलाई, 2020 में नौकरी के चलते मेरा शिलांग (मेघालय) आना हुआ, तब यहाँ के समाज व संस्कृति के बारे में जानने की आकांक्षा हृदय में उत्पन्न हुई। परन्तु इस आकांक्षा के पूर्ण होने में अभी बहुत सी बाधाएं थी, सबसे पहले तो अट्ठाईस दिन तक क्वारांटाइन रहने का दंश झेलना पड़ा क्योंकि यहाँ के लोग और प्रशासन दोनों ही भयंकर सख्त हैं। इस अवधि में, जैसे ही मैं ज़रा पढ़ाई पर या काम पर ध्यान लगा पाता कि तभी हमें एक से दूसरी जगह स्थानांतरित कर दिया जाता और स्थान–परिवर्तन का यह सिलसिला लगातार चलता रहा अतः कुछ खास जानकारी न हासिल कर सका। इसके बाद कार्यालय और घरेलू कामों ने ऐसा घेरा कि फिर फ़ुरसत निकालना एक भगीरथ प्रयास हो गया। बीच–बीच में कभी खासी (क्षेत्रीय भाषा) सीखने की कोशिश, तो कभी गारो (अन्य क्षेत्रीय भाषा) समझने का प्रयास होता रहा लेकिन सफलता नहीं मिल सकी। इसी व्यस्तता के बीच एक दिन किसी सहकर्मी ने मेरे विषय और शोध के बारे में पूछ लिया और चर्चा के बीच यह बात आ गई कि मेघालय में ईसाई धर्म को मानने वाले बहुत हैं। तब ज़िक्र हुआ कि मैं ग़ज़लें लिखता–पढ़ता हूँ तो क्या मैंने कभी कोई ग़ज़ल ईसा मसीह के बारे में भी पढ़ी है? बस यही एक प्रश्न मेरे मन में उतर गया और किसी कोने में जाकर बैठ गया।

अपने शोध कार्य के दौरान मैंने एक पुस्तक देखी थी दृ अक़ायदनामा। संभवतः यह शब्द दृ अक़ायदनामा, क़ायदा का बहुवचन है। मेरी याद से, यह पुस्तक सन् 1866 ई. में प्रकाशित हुई थी और सवाल जवाब की शक्ल में खुदाई (ईश्वरीय) बातों से भरी हुई थी। काफी खोजने पर भी इसकी प्रति पुनः उपलब्ध नहीं हो सकी। किन्तु मैं तिथि के बारे में आश्वस्त हूँ क्योंकि वह मैंने अपनी नोटबुक में लिख ली थी। इस पुस्तक की ख़ास बात है कि इसकी भाषा तो हिन्दी है लेकिन इसकी लिपि रोमन है अर्थात आजकल जिस रोमनी–हिन्दी का प्रयोग हम मोबाइल आदि में संदेश भेजने के लिए करते हैं, वह तो 155 साल से भी अधिक पुरानी है। इसी प्रकार रोमनी–हिन्दी में लिखी एक और पुस्तक भी मैंने देखी थी, जिसका प्रकाशन वर्ष सन् 1872 ईस्वी था। इन दोनों पुस्तकों को यदि न देखा होता तो मैं संभवतः ईसा मसीह के बारे में कोई ग़ज़ल पढ़ने संबंधी प्रश्न को भुला चुका होता लेकिन प्रश्न और पुस्तक दोनों से प्रेरणा मिली और इस संबंध में खोज शुरू कर दी, यह बात अक्तूबर, 2020 की है। लगभग चार महीने की खोज के बाद, मैं दो किताबें हासिल कर सका और उनमें ईसा मसीह से संबंधित छह ग़ज़लें प्राप्त कर सका। मेरे विचार से ऐसी और भी बहुत सी ग़ज़लें होंगी लेकिन फिलहाल यह सिद्ध

करने के लिए कि ईसा मसीह के लिए ग़ज़लें लिखी गई हैं, ये छह ग़ज़लें काफी हैं।

हिन्दी ग़ज़ल पर विचार करें तो हिंदी ग़ज़ल अनेक पड़ावों से गुजर चुकी है। आलोचना के क्षेत्र में भी इस पर काफी काम हो चुका है और अभी बहुत सा काम होना बाकी है। अभी भी कुछ क्षेत्र अछूते से रह गए हैं, जिन पर शोधार्थियों और आलोचकों की दृष्टि नहीं पड़ी है। हालाँकि एक बड़ी बहस अभी भी हिंदी गजल के उद्भव को लेकर चल रही है और मानने वाले अमीर खुसरो को भी हिन्दी का पहला ग़ज़लकार मानते हैं और कहने वाले दुष्यंत को भी हिन्दी ग़ज़ल का प्रणेता मानते हैं लेकिन मैं यहाँ पर एक तथ्यपरक बात रखना चाहूँगा कि अभी तक आलोचकों द्वारा द्विवेदी युग और छायावादी युग की सभी ग़ज़लों को नहीं देखा गया है यदि वे उन सारी ग़ज़लों को देख लेंगे तो निश्चित रूप से मान लेंगे कि अभी हम हिन्दी ग़ज़ल का बहुत छोटा हिस्सा ही देख सके हैं और उसी के आधार पर हिन्दी ग़ज़ल के उद्भव और विकास से जुड़ी हमारी समस्त मान्यताएं आधारित हैं, जो कि बहुत ठोस या मजबूत न ही कही जायें तो बेहतर होगा। बहरहाल, अभी तो हम अपने नये विषय पर चर्चा करेंगे। हिन्दी ग़ज़ल भारत में जितनी राष्ट्रीयता, सामाजिकता और जातीयता को अभिव्यक्त करने के लिये प्रयुक्त हुई है, उससे बहुत पहले इसका प्रयोग ईसाई मिशनरियों द्वारा भारत में ईसाईयत के प्रचार के लिए किया जा चुका है। इस आलेख में ऐसी ही कुछ ग़ज़लें और उनका विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

पहली ग़जल

ष्गुनाहों को अपने जो हम देखते हैं ।
तो ग़ज़बे इलाही बहम देखते हैं ।।
अगर ग़ौर करते हैं फिआलों को अपने ।
तो लायक जहन्नुम हैं हम देखते हैं ।।
अरे दिल तू ग़फ़लत में कब लग रहेगा ।
तेरे वास्ते दर्द ओ ग़म देखते हैं ।।
गुनाहों में ऐ दिल रहा तू जो मायल ।
सज़ा उसकी पाओगे हम देखते हैं ।।
तुम्हारे गुनाहों की बख़्शिस के खातिर ।
मरा है मसीह खुद यह हम देखते हैं ।।
जो पकड़े वसीलः शिताबी मसीह का ।
हयात ई बक़ा उन में हम देखते हैं।।ष

उपरोक्त ग़ज़ल आत्म–मंथन की ग़ज़ल है, इसमें समर्पण और भूल–सुधार की भावना है। इसमें इस मान्यता का भी वर्णन किया गया है कि संपूर्ण मानव जाति को इसके पापों से मुक्ति दिलाने के लिए ही ईसा मसीह स्वयं सूली पर चढ़ गये थे। इस ग़ज़ल में कई शब्दों में संशोधन की आवश्यकता है किन्तु पाठ–परिवर्तन न हो इसलिए जैसा शब्द मूल–पुस्तक में लिखा है ठीक वैसा ही ऊपर दिया गया है। परंतु पाठकों की सुविधा के लिए उनका संशोधित रूप भी दिया जा रहा है। यहाँ दर्द ओ ग़म के स्थान पर दर्द–औ–ग़म, बख़्शिस के स्थान पर बख़्शीश, हयात ई बक़ा के स्थान पर हयात–ए–बक़ा होना चाहिए।

दूसरी ग़ज़ल

ष्मसीह पुकारता है ऐ गुनाहगारो ।
मुहब्बत की आवाज़ सुनो ऐ प्यारो ।।
गुनाह के बोझ से जो दबे हो तुम ।
चले आओ उसके पास ऐ ज़ेरबारो ।।
मसीह हलीम है और गुनाह बख़्शिन्दः ।
शिताबी बोझ को उसके उठाओ ऐ यारों ।।
तुम दिल में आराम उसी से पाओगे ।
और दोज़ख़ से बचोगे ऐ प्यारो ।।
बार बार यह आजिज़ यही पुकारे है ।
मसीह के पास चले आओ सब ख़ताकारों ।।ß

उपरोक्त ग़ज़ल में ईसा मसीह के पैगाम को जनता तक पहुँचाने की कोशिश की गई है। इसमें यह दिलासा दिलाने का प्रयास है कि ईसा मसीह सब लोगों को उनके गुनाहों से मुक्ति दिलायेंगे और उन्हें नरक (दोज़ख़) की यातनाओं से भी बचायेंगे अतः सभी ख़ताकारों (गलती करने वालों को ईसा मसीह की शरण में जाना चाहिए।। इस ग़ज़ल में शब्द संशोधन की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है।

तीसरी ग़ज़ल

ष्हमारे दिल की हालत को खुदा जाने या हम जानें ।
मसीह से है हमें उलफ़त खुदा जाने या हम जानें ।।
मोहब्बत की बिछी चौसर लगी है जान की बाज़ी ।
फिदा है जान ईसा पर खुदा जाने या हम जानें ।।
कलाम ई पाक की बरछी लगी दिल पर मेरे तिरछी ।
कलेजा हो गया चलनी खुदा जाने या हम जानें ।।
मुहब्बत के समंदर में डली ईमान की किशती ।
चली जाती है बेख़तरे खुदा जाने या हम जानें ।।
न दुश्मन की मुझे दहशत नहीं तुफ़ान का खटका ।
मसीह है नाखुदा अपना खुदा जाने या हम जानें ।।
यही है आरजू अपनी रहे हम साथ ईसा के ।
नहीं चाहते जुदा होना खुदा जाने या हम जानें ।।
चलो साबिर इबादत को झुकाओ सिर मसीहा को ।
ना होवे ज़ाहिरी उलफ़त खुदा जाने या हम जानें ।।ß

उपरोक्त ग़ज़ल विशुद्ध हिन्दी की ग़ज़ल है, इसमें प्रयुक्त शब्दावली आमफ़हम है। इसमें ईश्वरीय–प्रेम की झलक है और उसका आलम्बन ईसा मसीह पर है। इस ग़ज़ल में कलाम ई पाक के स्थान पर क़लाम–ए–पाक, चलनी के स्थान पर छलनी, किशती के स्थान पर कश्ती या किश्ती, तुफ़ान के स्थान पर तूफ़ान कर लेने से इसकी गेयता और सरल व शुद्ध हो जायेगी। नाखुदा का अर्थ नाव चलाने वाला होता है, यदि हम इसका

भारतीयकरण करें तो नाखुदा का अर्थ खिवैया होगा।

चौथी ग़ज़ल

ष्जरा टुक सोच ऐ ग़ाफिल कि क्या दम का ठिकाना है ।
निकल जब यह गया तन से तो सब अपना बिगाना है ।।
मुसाफिर तू है और दुनिया सरा है भूल मत ग़ाफ़िल ।
सफ़र मुल्क इ अदम आख़रि तुझे दरपेश आना है ।।
लगाता है अबस दौलत पै क्यों तू दिल को अब नाहक ।
न जावे संग कुछ हरगिज़ यही सब छोड़ जाना है ।।
ना भाई बन्धु है कोई न कोई आशना अपना ।
बखूबी गौर कर देखा तो मतलब का ज़माना है ।।
लगे रहो याद में हक़ की अगर अपनी शफ़ा चाहो ।
अबस दुनिया के धन्धों में हुआ गुल क्यों दिवाना है ।।ष

उपरोक्त ग़ज़ल पूर्ण रूप से एक दार्शनिक ग़ज़ल है। इसमें जीवन की क्षणभंगुरता का निरूपण है। दूसरे, यह भौतिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति को भी नकारने का संदेश देती है। संसार मिथ्या है और सब कुछ यहीं छोड़ जाना है अर्थात् न साथ कुछ लाये थे और न ही साथ कुछ जायेगा। इसके शब्दों का संशोधित रूप या अर्थ इस प्रकार है दृ सरा (अर्थात् सराय), मुल्क इ अदम (के स्थान पर मुल्क–ए–अदम) आदि।

पाँचवीं ग़ज़ल

ष्मेरा नहीं है कोई मददगार या मसीह ।
तू ही है हम सभों का मददगार या मसीह ।।
अब ले ख़बर शिताब न कर बार या मसीह ।
फ़रियाद मेरी तुझसे है हर बार या मसीह ।।
तेरे सिवाय कोई नहीं यार या मसीह ।
बंदः हूं तेरे दर का गुनाहगार या मसीह ।।
तू ही है आसियों का ख़रीदार या मसीह ।
अज़बसकि(६) हूं गुनाहों में गिरिफ़तार या मसीह ।।
करता है आसियों को तू ही प्यार या मसीह ।
हम आसियों की तुझसे है गुफ़तार या मसीह ।।
तेरी तरफ सभों की है रफ़तार या मसीह ।
करता हूं मैं गुनाहों का इक़रार या मसीह ।।
हूं मैं गुनाह में अपने शर्मसार या मसीह ।
हरगिज़ ना डालियो मुझे दर नार या मसीह ।।
शैतान मुझसे करता है तकरार या मसीह ।
रूहुलकुद्स की दे मुझे तलवार या मसीह ।।

आसी को है तुझी से तो दरकार या मसीह ।
तुझ बिन करेगा कौन मुझे पार या मसीह ।।ﮦ

उपरोक्त ग़ज़ल ईसा मसीह को ही मानव जाति का अंतिम आलंबन घोषित करने का प्रयास करती है। इसके शब्दों का संशोधित रूप या अर्थ इस प्रकार है – सभों (अर्थात् सभी), गिरिफ़तार (गिरफ़्तार), नार (संभवतः नरक, दर नार अर्थात् नरक के बीच), रूहुलकुद्स (रूह–उल–कुद्स एक ख़ुदाई व्यक्ति है, एक ऐसा वुजूद जिसमें अक़्ल, ख्वाहिशें और मर्ज़ी है) आदि।

छठी ग़ज़ल

ष्सुनो है जान मन तुमको यहां से कूच करना है ।
रहो तुम यादे हक़ में जब तलक यहां आब दाना है ।।
अरे ग़ाफ़िल तू क्यों भूला है इस दुनिया के लालच में ।
रखो कुछ खौफ़ भी हक़ का अगर जन्नत को जाना है ।।
करो टुक ग़ौर तुम दिल में कहा क्या क्या तुम्हें उसने ।
किया था हुक्म जो हक़ ने उसे तुमने न माना है ।।
पड़े सोते हो ग़फ़लत में ज़रा टुक आंख को खोलो ।
हुई है शाम उठ बैठो मुसाफ़िर घर को जाना है ।।
न दौलत काम आवेगी न इस दुनिया से कुछ हासिल ।
अगर तुम सोच कर देखो यह सब कुछ छोड़ जाना है ।।
जो मलकउलमौत आवेगा तुम्हें इस जा से लेने को ।
बहाना क्या करोगे तुम वह तुमसे भी सयाना है ।।
खुदा जब तुझ से पूछेगा तू क्या लाया उस आलम से ।
दिया था उमर और दौलत तू क्या तोहफा कमाया है ।।
अगर ग़ाफ़िल रहे हक़ से तुम्हें दोज़ख़ में डालेगा ।
रहे हो याद में हक़ की तो जन्नत घर तुम्हारा है ।
हयात अबदी(?) अगर चाहो तो कह यीशू मसीह से तू ।
वही शाफ़ी है उम्मत का वही का कि जिसका नाम यीशू है।
सलीब ऊपर उसे रखकर किया है क़त्ल ज़ालिम ने ।
उसे मत भूलना आसी वही तेरा ठिकाना है ।।ﮦ

उपरोक्त ग़ज़ल भी मानव जीवन के अस्थायित्व का वर्णन करती है। इसमें सासांरिक मायाजाल में पड़कर भ्रमित होने और ईसा मसीह के संदेश को न मानने की बात कही गयी है। इसके संशोधित शब्दों का रूप या अर्थ इस प्रकार है – जान मन (जाने मन), आब दाना (आबो–दाना अर्थात् दाना–पानी), मलकउलमौत (अर्थात् यमराज) आदि।

अतः उपरोक्त ग़ज़लों एवं उनके विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं हिन्दी ग़ज़ल का प्रयोग धार्मिक प्रचार–प्रसार के लिए ईसाई मिशनरियों द्वारा भारत में किया गया तथा ईसा मसीह से संबंधित ये ग़ज़लें भी हिन्दी

ग़ज़ल साहित्य का हिस्सा हैं। इन ग़ज़लों पर विदेशी होने का आरोप लगाया जा सकता है लेकिन हिन्दी ग़ज़ल की पौध और फसल दोनों ही भारत–भूमि पर तैयार हुए हैं अतः इन ग़ज़लों को विदेशी कहना अनुचित होगा। बल्कि हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि ईसाई धर्म के प्रचार के लिये विभिन्न पदबन्धों, गीतों व छन्दों का प्रयोग करते समय मिशनरियों ने हिन्दी ग़ज़ल की शक्ति को महसूस किया और इनकी रचना करायी। हम यह भी देखते हैं कि एक तरफ भारतेन्दु सामाजिक–धार्मिक उत्थान के लिए लेखकों से ग़ज़ल आदि लिखने की अपील करते हैं तो वहीं दूसरी तरफ ईसाई मिशनरी हिन्दी ग़ज़लों का प्रयोग ईसा मसीह और उनके संदेशों के प्रचार–प्रसार के लिये करते हैं तात्पर्य यह कि हिन्दी ग़ज़ल का प्रभाव भारतीय जनमानस पर स्पष्ट और गहरा पड़ा हुआ था जिसका प्रयोग सभी सजग रचनाकार व मिशनरी आदि करना चाहते थे।

संदर्भ :–

गीतमाला, हिन्दी हिम्न् बुक, कंपाइल्ड एंड पब्लिश्ड फॉर दि कैनेडियन मिशन बाई जॉन मोर्टन डी. डी. प्रिंटड ऐट दि कैनेडियन मिशन प्रेस, तानापूना, त्रिनिनाद, 1912, सेकंड एडिशन, पृ. सं. 40

गीतमाला, हिन्दी हिम्न् बुक, कंपाइल्ड एंड पब्लिश्ड फॉर दि कैनेडियन मिशन बाई जॉन मोर्टन डी. डी. प्रिंटड ऐट दि कैनेडियन मिशन प्रेस, तानापूना, त्रिनिनाद, 1912, सेकंड एडिशन, पृ. सं. 41

गीतमाला, हिन्दी हिम्न् बुक, कंपाइल्ड एंड पब्लिश्ड फॉर दि कैनेडियन मिशन बाई जॉन मोर्टन डी. डी. प्रिंटड ऐट दि कैनेडियन मिशन प्रेस, तानापूना, त्रिनिनाद, 1912, सेकंड एडिशन, पृ. सं. 42

गीतमाला, हिन्दी हिम्न् बुक, कंपाइल्ड एंड पब्लिश्ड फॉर दि कैनेडियन मिशन बाई जॉन मोर्टन डी. डी. प्रिंटड ऐट दि कैनेडियन मिशन प्रेस, तानापूना, त्रिनिनाद, 1912, सेकंड एडिशन, पृ. सं. 43

गीत और भजन, नॉर्थ इंडिया ट्रैक्ट सोसायटी द्वारा संग्रहीत, प्रिंटेड ऐट इलाहाबाद मिशन प्रेस, प्रथम संस्करण 1875, पृ. सं. 117–118

ीजजचेरू//.हवजुनमेजपवदे.वतह/भ्पदकनेजंदप/भ्पदकनेजंदप–भ्वसल–ैचपतपज.ीजउस

गीत और भजन, नॉर्थ इंडिया ट्रैक्ट सोसायटी द्वारा संग्रहीत, प्रिंटेड ऐट इलाहाबाद मिशन प्रेस, प्रथम संस्करण 1875, पृ. सं. 119

ajaykajey@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 111-114

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी भक्ति साहित्य में वर्ण–व्यवस्था एवं दलित विमर्श

–दिलबाग सिंह

शोधार्थी पीएच.डी. हिंदी, गुरु काशी विश्वविद्यालय, तलवण्डी साबो बठिण्डा (पंजाब)

शोध सार :–

निर्गुण हिन्दी संत–काव्य में जाति–भेद की प्रायः निन्दा की गयी है किन्तु यहाँ यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि इन सन्तों के अथक प्रयासों के बाद भी मध्यकालीन समाज जाति–पाति की सामंती जकड़न से मुक्त नहीं हो पाया। व्यक्तिगत स्वर कभी भी मुख्यधारा का स्वर नहीं बन पाये, किन्तु वे जीवित सदैव रहे। आधुनिक–काल में अंग्रेजी शासन–काल में पूरा भारत निर्धनता और भुखमरी का शिकार हो गया। किन्तु इसका दुष्प्रभाव दलितों पर सर्वाधिक हुआ, क्योंकि अंग्रेजी शासन द्वारा नवीन भू–व्यवस्था, अंग्रेजी–शिक्षा से उपजे व्यवसाय तथा नौकरी के अवसरों का लाभ दलित–वर्ग को प्राप्त नहीं हो पाया। किन्तु यूरोपीय मूल्यों के भारत आगमन तथा भारतीय बौद्धिक–वर्ग द्वारा इन मूल्यों को स्वीकार करने के उपरान्त सामाजिक नवजागरण का आन्दोलन पैदा हुआ। उसमें अस्पृश्यता तथा दलित–वर्ग की समस्याओं को भी इंगित किया गया।

बीज शब्दः जाति–भेद, वंशानुगत उत्तराधिकारी, वैश्य और शूद, वर्ण–व्यवस्था, कुलीन वर्ग

वर्ण–व्यवस्था की स्थापना ने ही वंशानुगत उत्तराधिकारी परम्परा को जन्म दिया। ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय का क्षत्रिय तथा वैश्य और शूद्र के पुत्र भी वैश्य और शूद्र होंगे। हालाँकि यह कट्टरता वैदिक युग में कुी कम थी, किन्तु जैसे–जैसे ब्राह्मण धर्म का विकास होता गया, वर्ण–व्यवस्था में कट्टरता आती गयी। यद्यपि बौद्ध धर्म का उदय ही रूढ़िवादी जाति–व्यवस्था के समर्थक ब्राह्मणों की प्रतिक्रिया स्वरूप ही था, किन्तु उसे भी पूर्ण सुलता न मिली। भिन्न जाति के लोगों को अपना पैतृक कर्म बदलने का अधिकार नहीं था। दास की सन्तान हमेशा दास ही होती थी, जिसका क्रय–विक्रय किया जाता था। ठीक इसी तरह कुलीन वर्ग में भी यह परम्परा थी, किन्तु इस परम्परा का प्रभाव इस वर्ग पर सापेक्ष था। यह वर्ग अपने पूर्वज की सम्पति का ही अधिकारी नहीं होता था बल्कि उसे विरासत से सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त होती थी। सम्पत्ति के इस केन्द्रीकरण ने भी सामन्तवादी जड़ों को मजबूत किया। डॉ. रामशरण शर्मा के अनुसार, गुप्तकाल से सम्मंडलों और जिलों के पद उत्तरोत्तर वंशानुगत होते चले गए।

फलतः एक ओर केन्द्रीय सत्ता की जड़ खोखली होती गई और दूसरी ओर प्रशासन का स्वरूप और भी सामन्तवादी होता चला गया। वर्णाश्रम धर्म का मुख्य प्रयोजन साधनवान शासक श्रेुियों के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक नियंत्रण को वंश परम्परा के रूप में सुरक्षित रखना और साधनहीन श्रेणी को कभी भी साधनवान होने का अवसर न देना था ताकि वे निरन्तर स्वामी श्रेणी की सेवा और उनके लिए आवश्यक पदार्थ उत्पन्न करने के कठिन और अप्रिय श्रम करने के लिए विवश रहें। वर्णाश्रम व्यवस्था एक चाल थी, जो उच्च वर्ग के हितों

को पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित रखती थी। बाद में इसके अनेक सामाजिक प्रभाव पड़े। वर्ग–विभाजित समाज व्यक्तिगत पूँजी की संस्था के मेल से एक ओर शोशण–उत्पीड़न का चक्र चला जिसे मध्य काल में 'कर्मचक्र' और 'संसार चक्र' कहा गया, तो दूसरी ओर चिन्तन कर्म से अलग हो गया। शारीरिक श्रम को अपमानजनक, अधम और शूद्र कर्म माना गया। मानस या मानसिक श्रम को श्रेष्ठ, पूज्य और कुलीन माना गया क्योंकि श्रम प्रक्रिया को नियंत्रित करने वाला यही है।

अतएव सोचने वाले ब्राह्मम तथा क्षत्रियों ने ज्ञान, मानस, चैतन्य, आत्मा, समाधि, रस–भोग को ही सर्वोत्तम तथा सत्वोद्रिक घोषित किया। इस तरह ये विचार ही 'शासक विचार' बने और हमारे सम्पूर्ण इतिहास क्रम से मेहनत करने वाले शूद्रों तथा किसानों के विचार अर्थात मेहनती जनता की चेतना समाज में प्रमुखता नहीं पा सकी। यही आदर्श व अध्यात्मवाद का सार है। वर्ग–विभाजित समाज में शासक वर्ग हमेशा अवकाश भोगी वर्ग रहा है। अतः यह ब्रह्मानन्द, रसानन्द, विषयानन्द की साधना एक साथ करता रहा अतः व्यक्तिगत सम्पत्ति के साथ शोशण और चिन्तन के साथ अवकाश का जुड़ जाना एक ऐतिहासिक प्रक्रिया रही है। इस प्रकार आरम्भ से ही समाज में वर्ग रहे हैं जो श्रम और धर्म की पृष्ठभूमि से उभरे और बाद में सम्पत्ति का आधार लेकर फैले। वर्ग–विभाजन का स्पष्ट उद्देश्य श्रम प्रधान वर्ग का उच्च वर्ग द्वारा शोशण किया जाना और अपने विशेषाधिकारों को सुरक्षित रखने का षड्यन्त्र था।

प्राचीन भारतीय व्यवस्था धर्म–आधृत थी। सारे सामाजिक कर्मों के मूल्यांकन का आधार धर्म था और ध र्म ही न्याय व्यवस्था का आधार था। धर्म ने ही आगे जाकर राज्य के समर्थन में उसे देवत्व का अंश प्रदान किया। इलाहाबाद के स्तम्भाभिलेख में समुद्रगुप्त का उल्लेख न केवल चारों दिगपालों, कुबेर, इन्द्र और यम की बराबरी में किया गया है, बल्कि वह ईश्वर की भाँति माना गया है, जो सृष्टि के संहार का कारण है। प्राचीन भारत में धर्म पालन का मुख्य अर्थ वर्णाश्रम धर्म के ही पालन से था।पुरोहित राजा का केवल धार्मिक गुरु मात्र नहीं होता था, बल्कि शासन का आवश्यक अंग होता था। धर्म–प्रधान राज्य होने के कारण धर्म और शासन हमेशा एक–दूसरे के आश्रित रहे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है भारत का दार्शनिक वर्ग उच्च वर्ग से आया हुआ है क्योंकि दासों की अधिकता के कारण इनके पास चिन्तन के लिए पर्याप्त समय होता था और इसी चिन्तन का परिणाम धर्म संबंधी दर्शन है।

इस तरह इनका दर्शन स्वाभाविक रूप से अपने वर्गहित के साधन का माध्यम बनकर आया। जातिगत भावना को कायम रखने के लिए कर्मुल के सिद्धान्त का भी आश्रय लिया गया। अर्वाचीन काल के कर्म–सिद्धान्त को भी इस प्रथा को धार्मिक पवित्रता प्रदान करने के लिए इस्तेमाल किया गया। सामन्तवाद के अन्तर्गत कर्म और कर्मुल के विश्वास ने ओर भी गहरी जड़ें जमा लीं। इस ुकर्मुल के भोग की मान्यता ने भारतीय समाज में निम्न वर्णों के शोशण को औचित्य ही नहीं प्रदान किया, विद्रोही चेतना को हमेशा कुंठित किया और भाग्यवाद को प्रश्रय दिया।

हमारे देश में धर्म के दुरुपयोग पर डॉ. राधाकृष्ण जैसे धर्मनिष्ठ लोगों को कहना पड़ा कि ुधर्म के दुरुपयोग के कारण हमें बहुत क्षति उठानी पड़ी है, यद्यपि हम उच्च स्वर में घोषित करते रहे हैं कि नर की सेवा ही नारायु की सेवा है, लेकिन ऐसे मतों और ऐसी प्रथाओं को वहन करते आ रहे हैं, जो असामाजिक हैं। धर्म के इस गलत प्रयोग के कारण ही कार्लमार्क्स ने इसे 'अीम की गोली' तथा शोषितों के 'विद्रोह का निकास द्वार' कहा

है, जो व्यक्ति को आत्म–सन्तोषी और भाग्यवादी बनाकर उसके विद्रोह की क्षमता को नष्ट कर देती है। वह अपनी वर्तमान अवस्था को पूर्व–जन्म का फल मान बैठता है और अगले जन्म के भय से वर्तमान में चुप बैठा रहता है। हिन्दू धर्म सामंतवाद की जरूरतों को उसी प्रकार अभिव्यक्त करता था, जिस प्रकार प्राचीन ब्राह्मणवाद उदीयमान दास–प्रथा की आवश्यकताओं को अभिव्यक्त करता था। मार्क्स का मत था कि धर्म लोगों को काल्पनिक सुख का विश्वास देता है अतः यथार्थ सुख के लिए धर्म की समाप्ति आवश्यक है। उन्हीं के अनुसार इतिहास में 'वैयक्तिक पूँजी' को पवित्र बनाने के उद्देश्य से धर्म का स्वरूप आवश्यकतानुसार परिवर्तित रूप में विस्तृत होता गया है।

इस प्रकार चाहे शास्त्रों के कोई प्रमाण न भी हों, लौकिक परम्परा दलितों की ही परम्परा है। ये सभी मौखिक रूप में ही लोक में, खासकर दलितों के समाज में प्रचलित हैं। आज भी दलित परिवार में ऐसे अनेक लोक देवी–दवेता पूजे जाते हैं, जिनमें बन्नी–गौरया, सोखा, कारिक, भुइयां आदि खासे प्रसिद्ध हैं। इनकी परम्परा और गाथाओं में आदिम भारतीय समाज की झलक मिलती है। "इसी परम्परा में लोरिकदेव जैसे पराक्रमी सम्राट, राजा सहलेस, सोरठ आदि लोग आते हैं, जिनकी शास्त्रों में कहीं चर्चा नहीं हैं। इसके बाद का इतिहास लिखित से अधिक मौखिक ही हैं। इसमें विभिन्न देव–पुरूशों के अलावा दलितों के इतिहास–पुरुष भी शामिल हैं, जिनकी छिटपुट चर्चा कहीं–कहीं मिल जाती हैं। ऐसे लोगों को पहचानना एक शोधपूर्ण कार्य होगा, क्योंकि शास्त्रों ने अनेक दलित ऋषियों को भी अपनी परम्परा में मिला लिया है। कबीर, रैदास जैसे सन्त और कवि दसी परम्परा की देन हैं।

हजारों वर्षों से अंधेरे कुहासे में बन्द दलित समाज ज्ञान से वंचित रहा है। उनके उठकर खड़े होने का संघर्ष, दिन प्रतिदिन होने वाले अपमान, उनके अनुभव और समूचे घटनाक्रमों को देखने का उनका दृष्टिकोण है। इन सबका प्रतिबिम्ब साहित्य में पढ़ना अपरिहार्य है। इसके केन्द्र में सामाजिक परिवर्तन का उद्देश्य निहित है और साथ ही आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक अधिकार की चेतना भी विद्यमान है। इन सबके संयुक्त रूप से एकाकार होने पर ही समाज में समता, बंधुता और न्यायपूर्ण व्यवस्था के उद्देश्य में दलित साहित्य की सोच और सरोकारफलीभूत हो सकता है। निश्चित रूप से इस साहित्यिक आन्दोलन का निरंतर विकास हो रहा है। आरंभ से अब तक के इतिहास में इस साहित्यिक आन्दोलन का निरंतर विकास हो रहा है। आरंभ से अब तक के इतिहास में इसे संघर्ष करना पड़ा है। यह संघर्ष व्यावहारिक आन्दोलन और साहित्यिक स्वरूप दोनों ही स्तरों पर चला है किन्तु एक लंबी संघर्ष–यात्रा के पश्चात् अब दलित साहित्य एक अच्छे पड़ाव पर है। प्रारंभिक दौर में विरोधी रूख रखने वाले आलोचकों की भी अब स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। इसका प्रसार बढ़ा है, लेखकों की संख्या और गुणवत्ता में सुधार आया है। श्री माताप्रसाद ने अपनी पुस्तक "हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा" में ऐसे बहुत सारे लोकगीतों का संकलन किया। उसी से यहाँ कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं। श्री संतराम न्यायी अपने लोकगीत में कहते हैं–

"बाल्मीकि तुलसी से कहिगै इक दिन कलयुग आयेगा।
ब्राह्मण होई के धर्म न जानि है, सूदै राज चलावेगा।
बड़ कौमन के अत्याचार ते धरती जब गरू आई।
देखि– देखि भगवानों का मन दुःख शर्म ते भरि जाई।

एक–एक रोटिन कै खातिर ई गरीब इज्जत बेचि है।
बात–बात में बड़ कौमो जब, खूब गरीबन का पिटि है।”

इस लोकगीत में जहां आशा व्यक्त की गई है कि एक दिन भारत में शूद्रों का राज होगा, वहीं उनकी गरीबी, अषिक्षा तथा दुर्दषा का भी उल्लेख किया गया है।

निष्कर्ष

वस्तुतः धर्म आरम्भ में सामाजिक व्यवस्था का विधान करने वाला माध्यम था। किन्तु बाद में धर्म का अर्थ एक अदृश्य ब्रह्म से लिया जाने लगा और जब धर्म का संबंध बाह्य आडम्बरों और वर्ग विशेष के स्वार्थ साधन से जुड़ा तभी उसके विरुद्ध आन्दोलन हुए। बौद्ध धर्म ने ब्राह्मण प्रभुता को नकारा और उसने अपने संघ में शूद्र, अछूत, दास एवं अबलाओं को शरण दी। मध्ययुग में सन्तों का धार्मिक आन्दोलन भी सामाजिक वर्ण–व्यवस्था को चुनौती देकर मानवतावादी समाज की स्थापना के संदर्भ में था।

डॉ. रामशरण शर्मा, भारतीय सामन्तवाद, पृ. 22
यशपाल, शोषक श्रेणी के प्रपंच, गांधीवाद की शव परीक्षा, पृ. 93
डॉ. रमेश कुन्तल मेघ, आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, पृ. 95
के. दामोदरन, भारतीय चिन्तन परम्परा, पृ. 219
नवल किशोर, मानववाद और साहित्य, पृ. 30
डॉ. राधकृष्णन, आकेशनल स्पीच्स एण्ड राइटिंग, रिलिजियन एण्ड इट्स प्लेस इन ह्यूमन लाइपफ, पृ. 286
के. दामोदरन, भारतीय चिन्तन परम्परा, पृ. 215
लोकायत और लोकदेवता : डॉ0 रामप्रवेष सिंह, पृ0 45
हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा, माताप्रसादः पृष्ठ–316

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 115-122
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आठवें दशक की हिंदी साहित्य की महिला उपन्यासकार के उपन्यास में स्त्री विमर्श

-प्रा.डॉ.मालती डी.शिंदे (चव्हाण)
नारायणराव वाघमारे महाविद्यालय, आ.बालापुर, जि. हिंगोली (महाराष्ट्र)

आठवे दशक की हिंदी साहित्य की महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के माध्य्म से उपन्यास विधा को अग्रेसर करने का प्रयास किया हैं। अमृता प्रीतम के"पक्की हवेली" उपन्यास में एक नन्ही बच्ची की जिज्ञासा और उसके वहम का चित्रांकन हुआ है। नन्ही बच्ची को 'पक्की हवेली में भूत प्रेतों का साया दिखाई देता हैं। बच्ची के मन में भूतप्रेत का वहम ऐसा घर कर गया है कि उसके पिता के लाख समझने पर की भूतप्रेत नाम की कोई चीज इस हवेली में नही है, फिर भी उसके सिर से बहुत का वहम उतरता ही नही और वह नन्ही बच्ची इसी वहम से पीडित दिखाई देती हैं। इस उपन्यास पर मनोवैज्ञानिकता का पुट दिखाई देता हैं।

शिवानी जी का "कैजा" उपन्यास- कैजा याने सौतेली माँ ,इस उपन्यास में सौतेली माँ का भार वहन कर अनाचारी और रुग्ण प्रेमी से स्वेछा से विवाह रचाकर एक आधुनिक डॉक्टर युवती की मनोदशा किस परिस्थिति में परिणित होती है,इसका विस्तार से चित्रण हुआ हैं। उपन्यास के प्रमुख पात्र नन्दी और सुरेश दोनों विवाह पूर्व काम सुख भोग चुके हैं। नन्दी को लगता हैं वह सुरेश से इस रुग्ण अवस्था मे भी विवाह करेगी तो उसके बच्चे को बाप मिलेगा ,लोगों के जबान पर ताले लग जायेंगे वह भी कौमार्यावस्था में माँ बनने की पीड़ा से भीतर ही भीतर परेशान है। उसे लगता हैं यह दाग भी धूल जाएगा तो दूसरी तरफ सुरेश की छटपटाहट, मानसिक अंतर्द्वंद्व और पशताप की भावना को भी उजागर करती हैं। "कौन कहता है, मैं तेरी कैजा हूँ पगले। कौन" रोहित के मन मे भी यह भव भर हुआ प्रतीत होता हैं। कि वह अपने असली माँ बाप को जान लेना चाहता हैं। सारा उपन्यास दुःखो, चिन्ताओ,बेमेल विचारों ,तनावों आदि से भरा हुआ लगता हैं।

कृष्णा सोबती जी का उपन्यास" कुछ और भी" पहाड़ीइलाके को केंद्र में रखकर रच गया है इसमें दो मित्रों के बीच के संम्बंध को उदघाटित किया है।उनके सूरज मुखी अंधेरे के,मित्रो मार्जनी, ए लड़की, दिलो दानिश ऐसे अनेक उपन्यास हैं। कुछ और भी उपन्यास की कथा कृत्या के आसपास घूमती हैं। इसमे दोनों मित्रो का संम्बंध एकदम पवित्र और सुरक्षित हैं। प्रेम में सेक्स की ललक कही भी नही दिखाई देती। दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए लगते हैं। इसलिए दोनों में प्रेम,बिल्कुल निष्कलंक,निर्मल सोने जैसा प्रतीत होता है। जहाँ ऐसा प्रेम अंकुरित होता है वहा पवित्रता से सरोबार चारित्रिक ऊँचाई की जलक दिखती हैं यही सच्चे प्रेम की सच्ची परिणीति हैं।ऐसे प्रेम में न यौनाचार होता हैं न,दुराचार और न ही बलात्कार हो पाता है।

नासिरा शर्माजी ने " ठीकरे की मंगनी" उपन्यास में लिखा है।हालात की मार से पैदा हुई एक

लड़की 'महरूख' की यह कहानी हैं। दूसरी तरफ यह कहानी 'रफतभाई ' की भी है।मगर दोनों में जो बुनियादी फर्क है वह नजरिये का हैं। कुछ अपने को हातात के हवाले कर देते हैं। और कुछ इस टूटन को नया अर्थ देकर यह बताते हैं कि यह जीवन अंतिम चौराहा नही है इस जिंदगी में बहुत सारे चौराहे आपको मिलेंगे और आप होंगे जो अपने रास्ते को पहचानते नाक की सीध में चलते हुए अपनी मंजिल पर पहुचेंगे।इन्ही रास्तो पर चलनेवाला पात्र हैं'महरूख' जो जिंदगी को अपने नजरिये से देखकर एक पहचान,एक अर्थ देती हुई जनसमुदाय की आवाज में।उदय होती हैं।

सूर्यबाला जी ने "दीक्षान्त" उपन्यास में 'शर्मा सर' के माद्यम से कनिष्ट एवं वरिष्ठ महाविद्यालयों में पैर पसारे हुये भ्रष्टाचार ,ईर्ष्या,द्वेष टांग खिंचाई, चमचागिरी, अनुशासनहीनताअवज्ञा,नैतिक,पाठण्डी की जीती जागती तस्वीर प्रस्तुत की है।और यह संकेत किया है कि ऐसे माहौल में ईमानदार , कर्मनिष्ठ ,संकोची,अनुशासनप्रिय,व्यवहारकुशल,चारित्रिक और नैतिकता की पवित्रता में विश्वास करनेवाले पाकसाफ एवं उच्च शिक्षित शर्मा सर जैसे शिक्षक इतनी घृतं महसूस करने लगते हैं कि वे मौत का वरण करने में ही अपना कल्याण समजते है।यद्यपि की यह कदम किसी माने में प्रशंसनीय नही कहा जा सकता, इससे तो उनके चरित्र की निर्बलता ही उजागर होती हैं यह घटने यह संकेत करती हैं कि वे समस्याओं से जुझने में असमर्थ हैं। उनका डटकर सामना करने की हिम्मत उनमे हैं ही नहीं उनका आत्मबल लाचार हैं, जो उनमे हैं भावना को जन्म देता हैं। लेखिका ने अपनी भूमिका में लिखा है–"अंधेरा चाहे जितना गहरा हो,एक नन्हा दिया जलाने की अपनी कोशिश तो बरकरार रखती हैं।'नपुंसक पूरा तंत्र हैं।"साथ ही सूर्यबाला जी ने अपना उपन्यास"अग्निपंखी" में मृत्यु की या जीवन की आशंका अभिव्यक्त की है। इस उपन्यास का पुरुष पात्र पढ़ लिखकर नोकरी की तलाश में इधर उधर भटकता हैं। घुस देने के लिए उसके पास पैसे नही है। और सब गांववालों के कटाक्ष सुनते सुनते उसके कान पक गए। तब वह मुंबई नगरी में जा पहुंचा वह वहा वाचमैन की करने लगता हैं।स्लम एरिया में एक ज़ोपडी लेता हैं।और पगार के पैसों से वह खूब सामान खरीदता है।और गाँव आ जाता हैं" मिनटों में घर बाहर जयशंकर का रुतबा छा गया। जिसे देखो वही निहाल हाथ कंगन को आरसी क्या? जूते देखो तो चरमर ,घड़ी तो सुनहले पटवाली, जेब मे रंगीन रुमाल चमचम पेन सुखराम हलवाई तक के लिए महीन चारखाने के अंगोछे और पट्टीदारों के बच्चों के लिए लेमन चूस "जूस" अब उसके शहरी ठाटबाट का ठिकाना नही था।जयशंकर अपनी नवविवाहिता के साथ मुंम्बई आता हैं।वह वह जैसे तैसे गुजर करने लगता है। माँ को भ्रम में रखता हैं।कि वह अच्छी नोकरी करता है। उसने अपनी विपद गाथा नही गाई। सबको रेशमी भ्रमजाल में रखा ।उसकी माँ भी मुंम्बई जाती है छोटीस ज़ोपडी में गुजरा करना उनके लिए त्रासदी बन जाता है।वह अब भी अपनी असलियत को छिपाये रखता है माँ बेटे में कहा सुनी भी हो जाती हैं और माँ गांव चली जाती है।क्योंकि उसके मन मे यह भाव पैदा हो गया था कि जयशंकरके लिए अब अपना गाँव अपना ही रह गया है। वह मुंबई को ही अपना सब कुछ समझने लगा है।

नमिता सिंह का उपन्यास "आपनि सलीके" नीलिमा के मिथ्या दर्प और दलित ईशु के लाचार व्यक्तित्व का एक रिकॉर्ड है। ईशु ही इस उपन्यास का प्रमुख दलित पुरुष पात्र हैं। जो परिस्थितियों की भवर में ऐसा फसा हुआ था कि मौत के अलावा उनके पास और कोई अन्य विकल्प नही बचा था। लेखिकने यहाँ दलित वर्ग के निर्बल बिंदु को उभारा है। नीलिमा दर्प जो सच नही है उससे लबालब भरी हुई है। वह अपनी माँ सावित्री से

कहती है "लाख उजड़ गया लेकिन नाम तो है, खानदान तो है।इससे समाज मान सन्मान देता है। हमारे संस्कार जुड़े है खानदान से। ",माँ फटकारते हुए कहती है– "ऐसा कौनसा तोप है तुम्हारा खानदान?कौन पूछता है उन्हें तुम्हारी हवेलियों की ऊंची दीवारों के पीछे और रेशमी पर्दे के। भीतर खून में क्या क्या मिलावट होती रही है ये कौन जाने?" बेटी नीलिमा ने ठाकुर हो के भी बिना जाने ही दलित ईशु से विवाह कर लिया था और वास्तविकता जानने के बाद वह ईशु का परित्याग करती है और अपने किये पर पछताती भी है यह नीलिमा बेटी की नादानी भी है।

कठगुलाब' उपन्यास में मृदुलागर्ग ने पढ़े लिखे भारतीयों के अमेरिका की ओर पलायन कर जाने के मुद्दे को अहमियत दी है और यह स्पष्ट संकेत दिया है कि जब ये लोग वहाँ की अति भौतिकवादी संस्कृति से ऊब जाते हैं तब पुनः भारत की ओर वापस आने लगते हैं। जीजा द्वारा जबरदस्ती साली के साथ बलात्कार की घटना को भी रेखांकित किया है। साली स्मिता को अमेरिका में पतझड़ और शिशिर ऋतु में अपने घर मे लगाए हुए "कठगुलाब" की याद आती है वह अमेरिका में रहकर ढेर सारे अनुभव अर्जित करती है। लेखिकने यह विशेष रूप से अंकित किया है कि अमेरिका जैसे पश्चिमी देश भौतिकता के भवँर में ऐसा फॅसे हुए हैं कि चाहकर भी उसमे से बाहर नही निकल पा रहे हैं। वहां समृद्धि तो है लेकिन मानसिक शांति नहीं। परिवारों में टूटन और घुटन व्याप्त है। स्त्री पात्र को श्रीमुख से लेखिकने कहलवाया है कि"मैं मर्द नही होना चाहती मैं दर्द बाँटना चाहती हूं।

पद्मा सचदेव 17 अप्रैल 1940 में जम्मू में जन्मी डोगरी की लोकप्रिय लोकगीतों की कवयित्री लेखिका है।इनका 'अब न बनेगी देहरी' उपन्यास में एक स्थान पर। लिखा है"वाह रे भारत वर्ष जहाँ स्त्री जिंदा रहने पर विधवा और मरने पर सुहागिन हो जाती है।"यह कथन भारतीय मानसिकता की एक संकुचितता को दर्शाता है। भारत मे जिंदा विधवा की जिंदगी नरक से भी बदतर हो जाती थी।उसे न तो पुनर्विवाह करने का अधिकार था न तो वह किसी मंगल कार्य मे भाग ले सकती थी। उसका पहनावा भी अलग होता था। जब वह मर जाती तो दाहसंस्कार पूर्व उसका सोलह श्रृंगार किया जाता था। है न यह हास्यास्पद प्रथा रेवती इस उपन्यास की नारी एक महन्त गिरी बाबा से प्यार कर उससे गर्भवती होती है।मन मे बच्चे को जन्म दे कि इच्छा है।उसकी बुआ ने ऐसा ही करके आत्महत्या कर ली थी। रेवती बुआ की समाधि पर माथा टेकने जाती है और कहती है," मैं जीऊँगी बुआ मैं जीऊँगी। अब हमारे खानदान में कभी किसी की देहरी न बनेगी।"

' अग्निपर्व' में त्रुता शुक्ल ने कहा है–लेकिन यह मुकाम है क्या ?" उपन्यास की कथा जियावन सिंह के बड़े लड़के अवधेश सिंह के इर्दगिर्द घूमती है। वह एक नंबर का लंम्पट और दुष्ट है जो आतंकवादियों के गिरोह में सम्मिलित होकर लूटपाट और गोलीबारी करता है एक दिन वह गिरफ्तार कर लिया जाता है और जेल की हवा खाता है। दूसरी कथा सुमेर सिंह के चारो तरफ गुँथी हुई है। सुमेर सिंह घायल अवस्था मे पटना के अस्पताल में दाखिल करवाये जाते हैं ,लेकिन उनकी माटी की काया माटी में मिल जाती है। उनका माटी में विलीन हो जाना ही इस उपन्यास की कथा का अग्निपर्व है।

अलका सरावगी का 'कलिकथा–वाया बाईपास ' आजादी के पूर्व से लेकर आजतक की एक वास्तविक कथा है जो अपने भीतर एक ऐतिहासिक और मारवाड़ी परिवार की छ पीढियों के उत्तर चढ़ाव को समेटे हुए हैं। वैसे इस उपन्यास का फलक इतना बृहद है कि कुछ कहिये ही नही और इसी पर ढेर सारी ऐतिहासिक

एवं पारिवारिक कथाएँ पसरी हुई है। प्रभा खेतान के बाद अलका जी ने मारवाड़ी परिवारकी एक जीवंत तस्वीर इस उपन्यास में पेश की है। यह छ पीढ़िया कलकत्ते में गुजरी है। इससे एक हकीकत सामने आई है कि ओसवाल वनियो का आजादी की लड़ाई में योगदान रहा है।

मैंत्रयी पुष्पा का ' ज़हलानुत' उपन्यास में कहा है –मैं तुम्हारा ताबेदार हु मा ,तुम्हारे हुकुम का गुलाम।"ज़हलानुत' एक लघु उपन्यास है। जो रही मासूम राजा। का आधागाँव, रेणुजी का मैला आँचल और प्रेमचंद का गोदान के बाद कि एक अन्यतम उपन्यास कृति है। जिसमे ग्रामीण परिवेश परिव्याप्त है। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि बुंदेली ग्रामीण किसान परिवार है। उपन्यास में केवल बालकिशन और सुमेर के माँ की ही उपस्थिति दिखाई देती है, क्यो की सुमेर के पिता का अंतकाल पहले ही हो चुका है। बालकिशन छोटा बेटा है और वह अपने माँ के लिए सदा छोटा ही बना रहा है। सुमेर की पहली पत्नी शीलो बालू की ओर आकर्षित होती है बालू इस उपन्यास का जुलानुत है यह मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं।जो अपनी माँ और शीलो के बीच रस्सी पर चलते हुए नट की भाँति जुल रहा है, कभी दये कभी बाएं। मैत्रियी जी का "इदन्नमम" उपन्यास की मूल कथा मंदाकिनी की है और इसके साथ कई उपकथाएं भी जुड़ी हुई है।जो उस समय ग्रामीण,सामाजिक,आर्थिक राजनीतिक परिस्थितियों का नग्न चित्र प्रस्तुत करती है। हवन करते हाथ जलते हैं।आहुति के रूप में जीवन की आग में जली गई समिधा जलती है।लेकिन "इदन्नमम" भाव से डाली गई आहुति यह में असफलता पर शोक नही होता क्योंकि जो कुछ मैं अर्पण कर रहा हूँ यह मेरा नही है। और मेरे लिए भी नही है। मन्दाकिनी अपने आपको समिधा की भाँति अर्पण कर देती है।वह अपने गांव में व्याप्त अन्याय यवं अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करती है। मठाधीशों की रखैल नही बनती अपने शील सदाचार को बचाकर मठाधीशों का समाजसुधार में उपयोग करती है।यह साहसी ,स्वावलंबी स्त्री अपनी मंजिल प्राप्त कर लेती है। मैत्रयी जी का जन्म 30 नवम्बर 1944 अलीगढ़ जिले के सिकुड़ी गाँव मे हुआ ।इनके स्मृतिद्वंश ,बेतवा बहती रही,चाक, अल्मा कबूतरी आदि उपन्यास है।

मृणाल पांडे का जन्म 1946 में टीकमगढ़ मध्यप्रदेश में हुआ। इनके विरुद्ध ,पटरंगपुराण,"रास्तो पर भटकते हुए" चर्चित उपन्यास के प्रारंभ में ईशोपनिषद का वाक्यांश सत्य के मुख पर लगा है। सोने का ढक्कन प्लेट किया है। इससे मूलकथा का संकेत प्राप्त होता है– "किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति की रहस्यमयी रखैल का मासूम गर्वीला बच्चा उंगली पकड़कर मंजिरी को अपने साथ उन रास्तो पर भटकता है, जहाँ पैर रखने से वह कतराती रही हैकृबेटी की स्मृति के सहारे मंजरी एक स्याहपाताली गंगा के दर्शन करती है। जो देश के मर्म राजधानी के तलघर में कई रहस्यमय भेदों को छुपाये वह रही हैकृदो मौतों की तफतीश के बहाने मंजिरी अपने निजी जीवन ,विवेक यवं अपनी अंतरात्मा की परिक्रमा करते हुए रास्तो पर भटकती है।मंजिरी पत्रकार तो है ही वह केस के थ तक पहुंचने के लिए कठिन प्रयास करती है।मंजिरी की शादी एक डॉक्टर के बेटे के साथ होती है उसने योरोप में ही एक लड़की को चुन रखा है उसे यह शादी मंजूर नही है। मंजिरी को छोड़कर चला जाता है। तो श्वसुर उसके दुःख पर मरहम लगाने का काम करते हैं। बहुत ही चालकी के साथ तलाख के समय समजोता कर लिया और संजय तुम अभी कम उम्र है, इस उम्र में घव जल्दी भर जाते हैं तन के भी और मन के भी यह तुम्हारे अपने फ्लैट की चावी है।तुरंत तलाक दे के एवज में मुझे एक धनाढ्य बस्ती में एक पूरा फर्निश्ड रेंट हाउस फ्लैट खरीद कर दिया गया थ।"

उषा प्रियंवदा के "अन्तर्वशी" की बनारस की बन्सरी उर्फ वनश्री या अमेरिकन 'बाना' प्रेम की

भूखी है।वह चाहती है कि उसे कोई खूब प्रेम करे,इतना कि मैं उस प्रेम में पागल बन जाऊं और उसके बाहुपाश में बन्धकर छककर आनंद उठाऊ लेकिन उसका दुर्भाग्य की उसका पति अपने सेक्स की भूख मिटाकर उससे परे हो जाता है।बाना के प्रेम की भूख मिटती ही नहीं वह अतृप्त की अतृप्त रह जाती है।उसके प्रेम अभिलाषा की पूर्ति सारिका से होती है।सारिका की जहाँगीर से सगाई होती है और वह टूट जाती है। वह भारत लौटती है बाद में उसकी हत्या होती है। सारिका के बाद क्रिस्टिन के साथ समलैंगिक संम्बंध से बना की इच्छा पूर्ति होती है। राहुल शिवेश का मित्र भी उसकी प्रेम अभिलाषायोंको शांत करने में मदद करता है। शिवेश बाना का पति अपने व्यापार कार्य मे ही व्यस्त है। वह उसकी अभिलाषओनके समझ नही रहा है।

"आंवा" चित्रा मुदगल जी का उपन्यास है चित्र जी का जन्म 10 दिसम्बर 1944 में मद्रास में हुआ उन्होंने भरतनाट्यम का विधिवत प्रशिक्षण लिया और लेखन कार्य मे रम गई आंवा इस उपन्यास में ट्रेड यूनियन ने और श्रमिकोंको ड़यॉं में रखकर कथानक को उभारा है कथा का क्षेत्र व्यापक है मुंबई के चर्च। गेट से घाटकोपर,विक्रोली,चेंबूर,विलेपार्ले, कल्याण,पवई लेक तक धड़ल्ले से पसरा हुआ है 28 अध्यायों का उपन्यास इसमे कई पुरुष पात्र जो विविध भाषाओंके है जिन्हें मंच पर लाकर क्रांतिकारी कदम उढ़ाकर उपन्यास में चार चांद चित्र जी ने लगाए है उपन्यास में नमिता पांडे की कथा है सिद्धार्थ से बचने के लिए वह संजय को संरक्षक समझती है। उसीसे नमिता गर्भवती हो जाती है। उसके साथ ही जागोरी की नेता विमलाबाई को उभारा ।स्मिता और गौतमी की कथा अलग ढंग से है।नेहा की कहानी बहुत ह्रदय विदारक है। नेहा यानी गौतमी का पति शराबी ,व्यभिचारी ,अत्याचारी पुलिस अधिकारी था। गौतमी उससे त्रस्त थी। तलाक लेकर दूसरी शादी करती है और उसके कलाकर पति के नवयुवक बेटे से ही गर्भवती होती है।यह उपन्यास नारी को हर तरह के अवमूल्यन से बचने को उत्प्रेरित करता है। चित्र जी का आंवा यह उपन्यास काले धंधो, व्यभिचारी ,उत्पीडन,दैहिक,दोहन,शोषण का एक जलता हुआ बीभत्स एवं घिनौना दस्तावेज है। इसी आंवा में नारी दिन रात पाक रही है और पकने के बाद भट्टी से बाहर निकल रही है। उसका एक नया क्रांतिकारी चेहरा पुरुष समाज के सामने चुनौती बनकर उभर रहा है। हर प्रकार की समस्याओं को जुझने और उसका मुँहतोड़ जवाब देने का अथक प्रयास करने के लिए तत्पर दिखाई देती है।

मीनाक्षी पूरी जी के"पहचान बेचहरे" उपन्यास में पंजाब प्रांत के जालंधर और लुधियाना क्षेत्रों से आनेवाले शरणार्थी खालिस्तान की समस्या के कारण योरोप में शरण खोजते हैं। इन स्थान में बसे अप्रवासी भारतीयों की जीवनगाथा है। उन्होंने जर्मन भाषा भी सीखी है और वहाँ की लड़कियों से शादियां भी की है। इसके बावजूद भी वे वहां पर जीवन को सार्थक बनाने के प्रयास में भृष्ट होकर उल्लू साध रहे हैं या उल्लू बन रहे हैं। कोलोन रेन नदी पर बसा जर्मनी का एक विख्यात सांस्कृतिक,एवम धर्मिक केंद्र है। आठवे दशक में वहा डॉक्टर, इंजीनियर,बनने के लिए भारतीय छात्र जाते थे। और वही के होकर रह जाते थे। उसके बाद छात्रों का आनाजाना कम हो गया ।उपन्यास में अनेक प्रेम कथाएँ उलझी है। सोन्या का लव अफेयर एक जर्मन लड़के के साथ बढ़ रहा है।गाबि और सतीश की प्रेमलीला कई सालों से चल रही है। सतीश की पत्नी शारदा पति के वकील से ही इश्क फरमाती है।इसमें आयोजित और प्रेम विवाह के अंतर को भी अंकित किया है। भारतीय समाज की स्थिति आबि भी पश्चिम देशो जैसी नहीं है। लेखिकने लिखा है– "सीता ,सावित्री,दमयंती,द्रोपदी––––जैसी औरतो से इस पतिव्रत धर्म की अपेक्षा की जाती है। परंतु आज की भारतीय नारी यह माँग पुरुषोसे भी करना

चाहती है क्योंकि आज का पुरुष वर्ग नारी के प्रति ऐसे त्याग और उत्सर्ग के लिए तैयार नही है।यह क्यों?

सुषमा वेदी विदेश में रहते हुए उपन्यासों का सृजन करके अंतराष्ट्रीय प्रसिद्धि पाई उनका "हवन" यह उपन्यास जिसका उर्दू और अंग्रेजी अनुवाद भी हुआ है। हवन उपन्यास के पात्र भारतीय है लेकिन कोलोन और न्यूयॉर्क में रहते हैं लेखिका भी न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय(कोलंबिया)मे आद्यपन कर रही है।यवं कि गुड्डो यह प्रमुख स्त्री पात्र हैं। जिसके पति प्रेमकुमार चड्डा दिल्ली में सरकारी अफसर थे। गुड्डो विधवा हो चुकी है उसे एक बेटा है।उसकी 45 वर्ष की उम्र है। उसकी उत्कट जिजीविषा ,व्यवहार कुशलता, आर्यसमाजी आस्तिकता, आस्था, और विकासोन्मुख ,जीवन के लिए सतत संघर्षरत रहने की कथा चित्रित है।"गुड्डो को सारे संस्कार,नैतिकता और मूल्य इन्ही हवन से मिलते थे।" गुड्डो की चोटी बहने पिंकी और गीता भी न्यूयार्क में है वे और उनके पति भी वहाँ पर नोकरी करते हैं।उसकी भाभी भी वही रहती थी उसने ही गुड्डो और उसके बेटे राजू को न्यूयॉर्क बुलाया था।ऐसा लगता है कि पश्चिमी देश की चकाचौंध मेंभारतीय लोग औंधे मुँह पड़े हुए हैं।भारतीय संस्कार कहि पीछे रह गया है। गुड्डो जुनेजा के साथ यौन संबंध स्थापित करके परमसुख का अनुभव करती है। स्त्री पुरुष दोनों सेक्स की तृप्ति के लिए किसी भी अन्य स्त्री पुरुष के साथ यौन संबंध स्थापित कर लेते हैं यह भी एक त्रासदी है। सुषमा वेदी जी का "लौटना " में समस्त भारतीयों के अमेरिका प्रवास की कथा को उदृत किया है। उपन्यास के प्रमुख पात्र विजय और मीरा है। विजय के उदर विचारो से मीरा प्रभावित है।"विजय उसे अच्छा लगता है,शालीन सॉफिस्टिकेटेड वेल मैनर्ड, एकदम स्मार्ट और पॉलिश्ड –भरोसेवाली इंसान "आरे हिन्दुस्थानी बस कहते ही है लौटना लौटता कोई नही "लौटना" एक औरत की अपनी अस्मिता की खोज की कहानी है, जो एक नए परिवेश में अपने टिकने के लिए एक सही बिंदु तलाश रही है।मीरा एक नर्तकी है इसलिए वह गृहस्थी में बंधना नही चाहती उपन्यास में भरतीय उच्च शिक्षा पी.एच.डी. की उपाधि के गिरते स्तर की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। अमेरिका में इन डिग्रियों का कोई महत्त्व नही है ।अमेरिका शिक्षा पद्धति पर प्रकाश डाला है। नारी विमर्श पर प्रहार भी हुआ है।

प्रभा खेतान जी का जन्म 1942 में हुआ। कलकत्ता में पली बढ़ी ।उनके उपन्यासों मेंछिन्नमस्ता, आओ पे पे घर चले ,तालाबंदी ,अग्निसंभवा,पिलीअन्धी यह है। "पीली आँधी"में तीन तीन पीढ़ियों की औरतें ,सौ डेढ़ सौ साल की यात्रा करते हुए अपनी अपनी बात कहते हुए आजतक पहुँचती है । प्रभाजी स्वयं मारवाड़ी समाज की है। मारवाड़ी वनियोकि कथा कही है। इसमें निसहाय किशन को बिसेसर लाल सहारा देते हैं और कहते हैं 'बाकी मेहनत और तकदीर आपकी,' उपन्यास में मारवाड़ी वानिया किसी पचड़े में नही पड़ना चाहते और न किसी से दोस्ती न किसीसे बैर। वे अपने स्वजातीय भाइयों को सहारा देते हैं और उन्हें सावधान भी करते हैं। अजनबियो से बचकर रहना है और अपने पैरों पर खड़ा होकर आगे बढ़ना।

राजी शेठ ने अपने उपन्यास " निष्कवच" में मूल्यारिक्त लालची युग उजागर किया है। बासु और नीरा दोनों सूंदर नृत्य प्रस्तुत करते हैं।रमण के पिता नीरा की शादी रमण से करते हैं ।विशाल और बासु दोनों परम मित्र हैं। नीरा इतना लालची और स्वार्थी निकलेगी इसका बासु को पता नही था। वृतांत दो में मार्था की कथा है नायक वसीम भारत की मिट्टी के साथ जुड़ा है। इसीलिए वह मार्था की तरह स्वछंद और बिंदास होकर नही रह पाता है। वसीम मानसिक अंतर्द्वंद्व से पीड़ित हैं। मार्था को कोई चिंता नही वह आत्मनिर्भर और व्यवहारिक भी है। वह स्वतंत्र है। पश्चिम में लड़कियां एक ही पुरुष के प्रति समर्पित नही होती,जब कि भारत

मे ऐसा नही है। नीरा की कथा मौसेरे भाई विशाल के माद्यम से प्रस्तुत की गई हैं। "हमारा शहर उस बरस" गीतांजलि श्री ने "लाशो के खेत मे गोभी की फसल " का उल्लेख किया है। जब हमारा शहर सांम्प्रदायिक दंगो से त्रस्त हो जाता है।आगजनी,मारकाट,दहशत रोजमर्रा के जीवन बनकर एक भयावह सहजता पाते आ रहे थे। 'अपने ही ख्याल के नीचे छिड़े दंगे से दरवेश होने की कोशिश है।इस गाथा का मूल अपने को नंगा करने का प्रयास ही अपने शहर को समझने उसके प्रवाह को मोड़ देने की एक मात्र शुरुआत हो सकती हैं। दंगा करना अथवा दंगा हो जाना जैसे जिंदगी का एक हिस्सा बन गया है।दंगा होने के लिए कोई एक कारण नही है।मामूली कहासुनी भी दंगे में परिवर्तित कर दिया जाती हैं। इसमे सेकुलरिज्म का उपहास भी संकेतित है।नाद रानी का 'तत्वमसि'में प्रेम की विसंगत संगति में पहाड़ ,जंगल और नदी इन रूपकोंके माध्यम से इसी विक्रमसिद्धार्थ के बीच ईर्ष्या द्वेष विरहिन त्रिकोणीय प्रेम सम्बंध को देखकर अज्ञेयजी के "नदी के द्वीप' के भुवन रेखा गौरा की याद ताजा हो जाती है।इस त्रिकोणीय उच्च संबंध में लेश मात्र भी ईर्ष्या द्वेष की भावना व्याप्त नही है। रेखा भुवन के साथ गौरा की शादी करके ही दम लेती है। 'तत्त्वमसि' के पात्र एक दूसरे के मददग़ार है।कोई किसी के लिए अवरोध नही खड़ा करता मानसी पहुँचे हुए सिद्ध संत की तरह श्रद्धालुओं और शंकालुओं के प्रश्नों का उत्तर प्रभावशाली ढंग से देते हुए उनका मार्गदर्शन करती है। अपने मार्ग पर एक गुरु की भाँति, साथ चलने का आव्हान भी करती है। और तत्त्वमसि की स्थिति तक पहुचती है।

चंद्रकांता जी का "कथास तीसर" एलान गली जिन्दा है, यहाँ वितस्ता बहती है, अपने अपने कोणार्क यह उपन्यास है। 'कथास तीसर' में बनते बिगड़ते कश्मीर का आख्यान है। इस उपन्यास में कश्मीरी पंडितों की चार पीढ़ियों की कथा है।कश्मीर में आज भी पंडित समाज आतंकवाद से पीड़ित हैं कथा लल्ली की दूसरी बेटी कात्यायनी में केंद्रित है। उच्च शिक्षा प्राप्त करके वह मेडिकल डॉक्टर बनती हैं। और अपनी इच्छानुसार डॉ. कर्तिकेय से शादी करती है। वे दोनों सेवा भाव से रोगियों का उपचार करते हैं। आतंकवादी अपने साथियोके इलाज के लिए उन्हें उठा ले जाते हैं।इसमे कथाओंकी भरमार है ,लल्ली की ननंद सोना की कहानी अत्यंत रोचक है। सोना के पति माधव की हत्या 1931 के दंगे में हो जाती है। इसी क्रम में पृथ्वी की लड़की विजया और डॉ.अफजल के प्रेमसंम्बद्ध और विवाह की बाते भी है। वास्तव में उपन्यास की कथा उन कश्मीरी ब्राह्मणों की कथा है जो आज भी पौराणिक परिपाटी को मानते हैं ज्योतिषी आनंदजु का विश्वास है कि " जन्मना जयते शुद्र; संस्कार त द्विज उच्च ते ।" वे वितस्थत ता को गंगा की भाँति पवित्र मानते हैं। आज वही आतंक ,हत्या, निष्कासन का कठिन दौर फिर आ गया है। जब सिकन्दर के आतंक से वादी में पंडितों के कुल जिरह घर बचे रह गए थे । जो कि नई शक्ल में नए करणोंके साथ पर व्यथा कथा वही है। मानवीय यंत्रणा और त्रास की चिरन्तन दुःख गाथा ।"

इसप्रकार हिंदी साहित्य में विदुषी महिलाओं ने उनके अपने विचार उनकी जबानी उनकी इन सभी रचनाओं के द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.शिवानीकृकैजा
2.अमृता प्रीतमकृपक्की हवेली
3.कृष्ण सोबतीकृकुछ और भी

4.नासिरा शर्माकृठीकरे की मंगनी

5.सूर्यबालाकृदीक्षान्त,अग्निपंखी

6.नमिता सिंहकृअपनी सलिबे

7.मृदुलागर्गकृकठगुलआब

8.पद्मा सचदेवकृअब न बनेगी देहरी

9.ऋता शुक्लाकृअग्निपर्व

10. मैत्रियी पुष्पाकृजुलानुत

11.अलका सरावगीकृकलिकथा वाया बाई पास

12.मृणाल पांडे—– रास्तो पर भटकते हुए

13.चित्रा मुदगलकृआवा

14.उषा प्रियंवदाकृअन्तर्वशी

15.मीनाक्षी पूरीकृपहचान बे चेहरा

16.सुषमा वेदीकृहवन,लौटना

17.प्रभा खेतानकृपिलीअन्धी

18.राजी सेठकृनिष्कवच

19.गीतांजली श्रीकृहमरा शहर उस बरस

20.जया जादवानीकृतत्वमसि

21.चंद्रकांताकृकथा सतीसर

मो. 9421867650

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 123-127
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पारिस्थितिक नारीवाद : हिन्दी साहित्य के संदर्भ में

–महिमा. एम
शोधछात्रा, हिन्दी विभाग, यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम, केरल।

पारिस्थितिक दर्शन का उद्‌भव 1970 के आसपास हुआ जिसकी चार प्रमुख शाखाएँ हैं–गहन परिस्थितिवाद,सामाजिक परिस्थितिवाद,पारिस्थितिक मार्क्सवाद और पारिस्थितिक नारीवादद्यपारिस्थितिकी को अंग्रेज़ी में 'म्बवसवहल' कहते हैंद्यनारीवाद को अंग्रेज़ी में 'थ्मउपदपेउ' कहते हैंद्यपरिस्थितिवाद और नारीवाद का समन्वित रूप है पारिस्थितिक नारीवाद जिसे अंग्रेज़ी में 'म्बव–मिउपदपेउ' कहते हैंद्यइको–फेमिनिज़म शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 'इन्स्टिट्यूट आफ सोशियल इकोलजी' ने कियाद्य कारन वारन के अनुसार दृ"प्रकृति और स्त्री पर पुरुष के आधिपत्य की आलोचना तथा प्रकृति और स्त्री के संबंध में लिंगातीत एक नीतिशास्त्र है इको–फेमिनिज़मद्य"1 इको–फेमिनिज़म नामक संकल्पना की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत करने का श्रेय फ्रेंच फेमिनिस्ट फ्रान्स्वा द युबोन को हैद्य1974 में फ्रेंच भाषा में रचित उनकी पुस्तक 'स्म थ्मउपदपेउम वन सं उवतज'(थ्मउपदपेउ वत क्मंजी) के 'स्म थ्मउपदपेउम वन सं उवेज'(जीम ज्पउम वित म्बव–थ्मउपदपेउ) शीर्षक अध्याय में इको–फेमिनिज़म की नींव डाली गयी थीद्यउनसे पहले शूलामित फयरस्टोन ने नारीवाद के अंदर छिपे पर्यावरण के अंश की सूचना दी थीद्य1962 में रेचल कर्सन ने अपने पुस्तक 'जीम ैपसमदज ैचतपदह' में रासायनिक खाद के अत्यधिक उपयोग के कारण निशब्द होती वसंत ऋतु का उल्लेख भी किया था द्यलेकिन इस नयी विचारधारा का नामकरण एवं रूप निर्धारण करने के पीछे फ्रान्स्वा द युबोन ही हैद्य

पारिस्थितिक नारीवाद की चार प्रमुख शाखाएँ हैं–आध्यात्मिक पारिस्थितिक नारीवादें(चपतपजनंस म्बव–मिउपदपेउ),सांस्कृतिक नारीवाद(ब्नसजनतंस म्बव–मिउपदपेउ),सामाजिक पारिस्थितिक नारीवादें(वबपंस म्बव–मिउपदपेउ)और समाजवादी पारिस्थितिक नारीवादें(वबपंसपेज म्बव–मिउपदपेउ)द्यमेरी मुल्लर के अनुसार "म्बव–मिउपदपेउ पे ' उवअमउमदज जींज `ममे ' बवददमबजपवद इमजूममद जीम म•चसवपजंजपवद 'दक कमहतंकंजपवद वत जीम दंजनतंस ूवतसक 'दक जीम `नइवतकपदंजपवद 'दक वचचतमेपवद वा िवउमद. "2पारिस्थितिक नारीवाद लिंग भेद से ऊपर उठकर मनुष्य को मनुष्य की तरह देखने का संदेश देता हैद्य स्त्री को मानव के रूप में मान्यता देनेवाले एक समाज की स्थापना करना और पुरुष मेधावित्व को समाप्त करना इसका लक्ष्य हैद्यनारी और प्रकृति को हाशिए से केन्द्र की ओर लानेवाली एक वैश्विक विचारधारा है पारिस्थितिक नारीवादद्यइस दिशा में लिखी गयी प्रमुख रचनाएँ हैं– मेडम नेस्त्रा किंग की ^Feminism and Art*] ^Feminism and the Revolt of Nature*] ^The Ecofeminist Imperative*]esjh Mkyh dh ^Gyn Ecology*]lwlu fxzQ dh ^Woman and Nature*]djksfyu ejpsUV dh ^The Death of Nature*]dkju okju dh ^Feminism and

Ecology : Making Connections*]*Ecological Feminism*]*Feminism:Women]Culture]Nature*आदिद्यपारिस्थितिक नारीवाद पृथ्वी के समस्त जीव–जंतुओं को समान दृष्टि से देखकर उनके बीच एक अंतःसंबन्ध स्थापित करने का सार्थक प्रयास हैद्यपारिस्थितिक नारीवादियों का दावा है कि पुरुष–सत्तात्मक समाज द्वारा पीडित समाज और धरती का उद्धार केवल नारी द्वारा ही संभव हैद्य

भारत में पारिस्थितिक नारीवाद आधुनिक काल की कोई नयी संकल्पना नहीं है क्योंकि वैदिक काल से ही प्रकृति और स्त्री के आपसी संबन्ध को भारतीयों ने स्वीकारा हैद्यऋग्वेद के पृथ्वीसूक्त में कहा गया है कि "माता भूमिः पुत्रोहं पृथिव्या" अर्थात् पृथ्वी हमारी माँ है और हम उनके पुत्र हैंद्यभारतीय संस्कृति में पहले से ही पृथ्वी को माता मानकर उसकी आराधना और पूजा करते आये हैंद्यआधुनिक काल के भारत की प्रमुख पारिस्थितिक नारीवादी है वन्दना शिवाद्य1993 मे वन्दना शिवा और जर्मन समाजवादी मरिया माइस ने 'इको–फेमिनिज़म रू रिकनक्टिंग ए डिवैडेड वेल्ड' (म्बव–मिउपदपेउ रूत्मबवददमबजपदह । क्पअपकमक ॅवतसक)शीर्षक पुस्तक का प्रकाशन किया थाद्यवन्दना शिवा द्वारा लिखित एक चर्चित पुस्तक है 'स्टेइंग एलाइव रूविमेन,इकोलजी आन्ड डेवलपमेन्ट"(ेजंलपदह ।सपअमरूॅवउमद,म्बवसवहल ंदक क्मअमसवचउमदज'.

समकालीन हिन्दी साहित्य के लगभग सभी साहित्य विधाओं में पारिस्थितिक नारीवाद की झलक देख सकते हैंद्यनारी और स्त्री के आपसी संबंध को उद्घाटित करने में ये सक्षम हैंद्यकोई भी विचारधारा एक दिन अचानक प्रस्फुटित नहीं होता,उसके बीज सालों पहले से ही बोया जाता हैद्यउसी प्रकार हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में पारिस्थितिक नारीवाद का पुट छायावादी रचनाओं से ही पाया जाता हैद्यहिन्दी साहित्य की एक उत्कृष्ट उपलब्दि है 'कामायनी'द्यइसमें नारी को पुरुष की प्रेरक शक्ति मानते हुए प्रसाद जी कहते हैं–

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो,विश्वास रजत नग पग तल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो,जीवन के सुन्दर समतल में"3

इन पंक्तियों के ज़रिए कवि नारी में निहित लोकरक्षक रूप को अभिव्यक्त करते हैंद्यवह सबके जीवन में अमृत प्रवाहिनी बनकर बहती हैद्य समस्त जीवजंतुओं का पालन–पोषण करने की क्षमता है उसमें समाविष्ट हैद्य'कामायनी' में श्रद्धा के रूप का जो वर्णन है वह बिल्कुल प्रकृति के अनुरूप हैद्यजैसै–

"नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ वन बीच गुलाबी रंग"4

उपभोग संस्कृति का मुख्य नारा है 'भोगो और फेंको'द्यआधुनिक पारिस्थितिक संकट इसीका परिणाम हैद्यहिन्दी के प्रख्यात कवि ज्ञानेन्द्रपति की कविता है 'नदी और साबुन'द्यइममें जल प्रदूषण की चर्चा करते हुए कवि उसके कुछ विशेष कारण इसप्रकार प्रस्तुत करते हैं–

"स्वार्थी कारखानों का
तेजा़बी पेशाब झेलते
बैंगनी हो गयी हैं तुम्हारी शुभ्र त्वचाद्य"5

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि नदी के साथ–साथ नारी पर होनेवाले अत्याचारों की ओर भी इशारा करते हैंद्यजैसे स्वार्थी कारखानों की वजह से नदी की शुभ्र त्वचा मलिन हो जाती है वैसे स्वार्थी मानव के कारण नारी का शारीरिक

शोषण हो जाता है,उसकी इज्ज़त बदनाम हो जाती हैद्य

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में समसामयिक सामाजिक स्थितियों का खुल्लंखुल्ला चित्रण हैद्यपारिस्थितिक नारीवाद के प्रभाव से हिन्दी उपन्यास भी अछूता न रहेद्य मैत्रेयी पुष्पा,नासिरा शर्मा,मृदुला गर्ग,महुआ माजी,संजीव आदि उपन्यासकारों ने नारी और प्रकृति के आपसी संबंध को प्रस्तुत करने के साथ–साथ उनके शोषण और अवमूलन को लेकर गहन चिंता भी प्रकट की हैद्यइस दृष्टि से महत्वपूर्ण उपन्यास है मृदुला गर्ग का 'कठगुलाब' जिसमें गाँव के विकास योजनाओं से उत्पन्न भयानक स्थिति का चित्रण हैद्यइस उपन्यास के प्रत्येक नारी पात्र पुरुष–सत्तात्मक समाज के शोषण का शिकार हैद्यस्मिता,असीमा और नर्मदा इसके मुख्य नारी पात्र हैंद्यस्मिता का बचपन खुशहाली में बीता थाद्यतब उसके माँ–बाप थे और और उसकी ज़िन्दगी फूलों से लदी कठगुलाब की झाडी के समान थीद्यमाँ–बाप की मृत्यु के बाद उसे कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ाद्यविवाह के पहले स्मिता का शोषण जीजा ने किया तो विवाह के बाद पति द्वारा उसका शोषण होता हैद्यसालों बाद वह अपना गाँव गोधड़ में वापस आती है तो वही पुरानी कठगुलाब की झाड़ी को फूलते हुए देखती हैद्यउसमें जिजीविषा उत्पन्न होती है और वह नये सपने बुनने लगती हैद्यइस उपन्यास का दूसरा प्रमुख पात्र है असीमाद्यवास्तव में उसके माँ–बाप ने उसका नाम सीमा रखा था लेकिन आगे चलकर उसने अपना नाम बदलकर असीमा रखाद्यइसीसे उसका चरित्र स्पष्ट है कि वह किसी सीमा में बँधे रहना पसंद नहीं करतीद्यवह मर्दों के समान वेशभूषा पहनती है और कभी शादी न करने का निर्णय भी लेती हैद्यवह साधारण औरतों की तरह डरपोक और कायर नहीं है और न ही उसके मन में विवाह,पति,बच्चे आदि के प्रति कोई आकर्षण हैद्यस्मिता के साथ मिलकर वह गुजरात के गोधड़ गाँव में लड़कियों को प्रारंभिक शिक्षा देने के लिए स्कूल खोल देती हैद्यवह ऐसा समाज का सृजन करना चाहती है जहाँ लड़का–लड़की भेदभाव न होद्यइस उपन्यास का और एक नारी पात्र है नर्मदा जो अनपढ़ दलित नारी हैद्य ये तीनों नारी पात्र पुरुष– समाज के प्रहार को चुपचाप सहने को तैयार नहीं हैद्यवह आत्म–निर्भर होकर,पुरुष–सत्तात्मक समाज के अत्याचारों के प्रति आवाज़ उठाना चाहती हैद्यउन्होंने गाँव की बूढ़ी औरतों के सहयोग से उस बंजर इलाके में पेड़–पौधे उगाने का कार्य आरंभ कियाद्यइसप्रकार स्मिता,असीमा और नर्मदा के प्रयास से गोधड़ गाँव जो एक समय बंजर पडा था ,ऊसर बन जाता हैद्यपेड़ उगाने और उसका संरक्षण करने के लिए वे गाँव की औरतों की एक सहकारी संस्था बनाती है जिसका नाम है 'कुटुम्ब'द्यइन औरतों को पेडों के प्रति उतना ही लगाव था जितना अपने बच्चों सेद्यनारी का प्रकृति के प्रति संवेदनशील होना और उसके संरक्षण के लिए कार्यरत होना इस उपन्यास में चित्रित हैद्यगाँव के मर्द पहले इन सबका विरोध करते थे लेकिन आगे चलकर 'कुटुम्ब' को पुरुष का सहयोग मिलने लगाद्य'कुटुम्ब' के साथ मिलकर स्मिता और असीमा बारिश का पानी बचाकर रखने की योजना भी बनाती हैंद्यइसप्रकार प्रकृति और नारी का आपसी संबंध,उनका शोषण और उद्धार को चित्रित करने में लेखिका सिद्धहस्त हैंद्य

महिला उपन्यासकारों में नासिरा शर्मा का नाम विशेष उल्लेखनीय हैद्यपर्यावरण प्रदूषण और नारी शोषण पर आधारित उनका उपन्यास है 'कुइयाँजान'द्यइस उपन्यास का मुख्य नारी पात्र है खुरशीदआरा जो हमेशा अपने परिवारवालों की सेवा करती रहती हैद्यममता और वात्सल्य का प्रतीक है खुरशीदआराद्यप्रस्तुत उपन्यास में नारी और समुद्र की तुलना करते हए जमीर अब्बास कहते हैं–"तुम बीबी समंदर होद्यतुमने कभी समंदर के सूखने की बात सुनी है?कभी नहीं न? बस तुममें और समंदर में एक ही फर्क है कि उसका पानी खरा है,इंसान पी नहीं

सकता और तुम्हारे अंदर का पानी मीठा है क्योंकि उसमें ममता की घुलावट हैद्यसमंदर खारा सही, तो भी इंसान को बहुत कुछ देता हैद्य"6 इस उपन्यास के ज़रिए लेखिका जल प्रदूषण की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती हैंद्यआजकल प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि हरियाली धरती से गायब होती जा रही हैद्यप्रकृति सारे जीव–जंतुओं का पालन–पोषण करती रहती है,और उलटे में मानव उसका शोषण करते रहते हैंद्यइस दृष्टि से खुरशीदआरा और प्रकृति के बीच बहुत कुछ समानताएँ हैंद्यदोनों के मन में सेवा भाव हैं,ममता और प्यार हैं फिर भी लोग उनका शोषण करने पर तुले हुए हैंद्यखुरशीदआरा ने अपनी पूरी ज़िन्दगी ससुराल को बनाने संवारने में गुज़ारीद्यलेकिन जब देवर उस घर का बंटवारा करने की बात कहता है,तो उसका दिल टूट जाती हैद्य

पारिस्थितिक नारीवाद की दृष्टि से सशक्त उपन्यास है मैत्रेयी पुष्पा का 'इदन्नमम'द्यइसमें एक ओर ठेकेदारों द्वारा प्रकृति का शोषण चित्रित हैद्यसोनपुरा प्राकृतिक संसाधनों,पहाड़,जंगल,नदियाँ आदि से संपन्न एक आदिवासी गाँव थाद्यलेकिन जब से पहाडों का ठेका उठाने के लिए बाहर से ठेकेदार आने लगे तब से प्रकृति का शोषण होने लगाद्यक्रशरों के चलते–चलते गाँव के खेत बंजर बन जाते हैंद्यक्रशरों में काम करनेवाले अधिकांश लोग आदिवासी इलाके के थेद्यपेट भर खाने की उम्मीद से वे हाड़–तोड़ मेहनत करते हैंद्यलेकिन उन्हें एक वक्त भी भरपेट खाने की स्थिति नहीं हैद्यठेकेदार उनका खूब शोषण करते हैंद्यमन्दाकिनी(मन्दा) इस उपन्यास का मुख्य नारी पात्र है जो सोनपुरा गाँव और गाँववालों की रक्षक बन जाती हैद्यउसमें अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने की ताकत थीद्य वह मज़दूरों को इसके लिए प्रेरणा देती है और गाँववालों के सहयोग से सामूहिक संघर्ष भी चलाती हैद्यगाँव की सबसे बड़ी माँग थी एक आस्पताल और ट्राक्टरद्यमंदा के नेतृत्व में यह दोनों सपने सच बन जाते हैंद्यमन्दा अपना पूरा जीवन गाँववालों की सेवा करने के लिए समर्पित करती है और इसप्रकार वह सोनपुरा गाँव की माँ बन जाती हैद्यप्रस्तुत उपन्यास में नारी शोषण को भी उद्घाटित किया हैद्यमहेन्दर सिंह की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी प्रेम(मन्दा की माँ) को रतन यादव शादी करता हैद्यलेकिन उनका लक्ष्य यह था कि प्रेम की संपत्ति हड़पने के साथ–साथ मंदा की संपत्ति भी छीन लेद्यबऊ की संपत्ति का एकमात्र वारिस होने के कारण मंदा को भी वह अपने साथ रखना चाहता हैद्यलेकिन जब प्रेम को इस बात की पता चलती है तो वह रतन यादव का विरोध करती हैद्यइसके फलस्वरूप प्रेम को बहुत यातनाएँ झेलनी पड़ती हैद्यमन्दा की सुरक्षा के लिए बऊ उसे लेकर 'शयामली'गाँव के जागीदार पंचम सिंह के पास जाती हैद्यउसके कहने पर बऊ अपने ज़मीन की जिम्मेदारी पंचम सिंह के छोटे भाई गोविंद सिंह को सौंपती है और अपना गाँव छोड़कर दूर चली जाती हैद्यसालों बाद जब बऊ और मन्दा अपने गाँव वापस आती हैं तो उन्हें पता चलती हैं कि गोविंद सिंह ने उन्हें धोखा दिया है और अपना ज़मीन उसने अभिलाख को बेच दिया हैद्यइसप्रकार प्रस्तुत उपन्यास में एक ओर बाहर से आये ठेकेदारों द्वारा प्रकृति का शोषण होती है तो दूसरी ओर बाहर से परिवार में आये रतन यादव के द्वारा मन्दा,प्र और बऊ का शोषण होते हैंद्य

महुआ माजी का बहुचर्चित उपन्यास है 'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ उदास'द्यइसमें प्रकृति और नारी का आपसी संबंध, प्रकृति शोषण आदि को उकेरा गया हैद्यइसका मुख्य पात्र है प्रज्ञा जो लंदन विश्वविद्यालय से समाजशास्त्रीय विषय पर शोध करने के लिए मरंग गोडा गाँव में पहूँचती हैद्यउसकी माँ भारतीय होने के कारण माँ के मुँह से भारत के जंगलों एवं प्राकृतिक सुषमा के बारे में उसने बहुत कुछ सुनी थीद्यइसलिए जब वह सारंगा के घने जंगल को देखती है तो उसके सौन्दर्य पन पूरी तरह मुग्ध हो जाती हैद्यप्रकृति को देखकर उसे

ऐसी लगती है जैसे कोई नव युवती श्रृंगार करती हुई उसके सामने घड़ी हैद्यबरगद के पेड़ से लटकती हुई जटाओं को देखकर उसे ऐसी लगती है जैसे बेटे होकर अपने पिता को सहारा देते हैंद्यइसमें विकास के नाम पर होनेवाले अत्याचार, पारिस्थितिक संकट, आदिवासियों का विस्थापन आदि को लेखिका ने अभिव्यक्त किया हैद्ययूरेनियम और लौह खदानों का जो बुरा असर प्रकृति पर पड़ता है उसको चित्रित करने में लेखिका सफल हुई हैंद्यआदिवासी स्त्रियों की दर्दनाक स्थिति की ओर भी लेखिका इशारा करती हैद्यसंजीव के 'धार' और 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यासों में भी नारी और प्रकृति के शोषण की गाथा हैद्य

पारिस्थितिक नारीवाद से प्रभावित कुछ महत्वपूर्ण कहानियाँ भी लिखी गयी हैं जिनमें उल्लेखनीय हैं– अज्ञेय की 'हीली बोन् की बतखें',मृदुला गर्ग की 'इक्कीसवीं सदी का पेड़','विनाशदूत','बर्फ बनी बारिश','मेरे देश की मिट्टी' चित्रा मुद्गल की 'जीनावट',जंगल आदिद्यनिष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि यह केवल मनुष्य का ही नहीं बल्कि संपूर्ण चराचर के कल्याण को लक्ष्य करती हुई एक वैश्विक विचारधारा हैद्य

संदर्भ ग्रन्थ–सूची

1.इकोफेमिनिज़म,के.वनजा,पृ.सं.14

2.इंटरनेट से

3.कामायनी,जयशंकर प्रसाद,पृ.सं.34

4. कामायनी,जयशंकर प्रसाद,पृ.सं.13

5.गंगातट,ज्ञानेन्द्रपति,पृ.सं.17

6.कुइयाँजान,नासिरा शर्मा,पृ.सं.330

उंसनऊीपउं / हउंपस.बवउ

डवइपसम – 9746975187

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 128-132

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दहेज प्रथा और शिक्षा पर एक नजर

–अनाम

पता

भूमिका :–

हमारे समाज में प्राचीन व मध्यकाल में बहुत सारी बुराईयॉ भी है जैसे बाल विवाह,सती प्रथा, दहेज प्रथा, शिशू बलि इत्यादि। लेकिन दहेज प्रथा समाज में सभी रिश्तों को तार तार कर रही है। समय समय पर अनेक समाज सुधारको और नेताओं ने इस सामाजिक अभिशाप को मिटाने का भरसक प्रयास किया है लेकिन दु;ख की बात यह है कि इसे मिटाने की जितनी कोशिशें हो रही है उतनी ही यह समस्या बढती जा रही है। दहेज रूपी दानव हमारे सामाजिक जीवन को नष्ट–भ्रष्ट कर रहा है। न जाने कितनी निरीह और निर्दोष बेटियॅा दहेज रूपी जाग में बलि जा चुकी है।

दहेज का अर्थ व स्वरूप

दहेज शब्द अरबी शब्द जहेज से बना है जिसका प्रयोग सौगात के लिए होता है। वेदों में इस प्रथा का हल्का सा परिचय मिलता है। उस समय माता–पिता के बाद अपनी बेटी को अपनी छोटी सी गृहस्थी बसाने के लिए कुछ बर्तन,चारपाई,बिस्तर,गाय,चावल,आदि देते थे। कन्या पक्ष के लोग लडकी के प्रति अपना स्नेह प्रंकट करने के लिए उसे यथाशक्ति उपहार भी भेंट करते थे। इसके आरभं कब हुआ यह कहना कठिन है। लेकिन इतना तो निश्चित है कि प्राचीन कथाओं और काव्यों में दहेज प्रथा के कुछ संकेत प्राप्त है। वस्तुत; प्रत्येक बेटी को अपने पिता का घर त्यागकर ससुराल में जाना होता है। इसलिए पिता अपनी संपित का कुछ भाग दहेज के रू॰ में अपनी बेटी को इसलिए देता है। ताकि वह ससुराल में जाकर सुखपूर्वक अपना जीवन–यापन कर सके।

वर्तमान स्थिति

अकसर समाचार पत्रों में हमे इस प्रकार के समाचार पढने को मिलते है। कि सास ने बहू पर तेल डालकर आग लगा दी दहेज के लोभियों ने बारात लौटाई ,स्टोल फट जाने से नवविवाहिता वधू का देहांत हो गया आदि। इस तरह की खबरें पढकर हमारे रोगटे खडें हो जाते है। आज कन्या के गुण और शील को नही देखा जाता बल्कि उसके दहेज को देखा जाता है। खुले आम वर की बोली लगाई जाती है। दहेज में प्राप्त उपहारों से वर पक्ष का मान बढता है। फलस्वरूप दहेज एक सामाजिक आवश्यकता के कारण उसके सारे अवगुण छिप जाते हैं। दहेज की प्रथा बढने का मुख्य कारण है वर पक्ष की लोभी प्रवृति ही अस कुरीति को बढा रही हैं।

दहेज प्रथा का मुख्य कारण

हम दहेज प्रथा का मुख्य कारण राह पाते है कि स्वतत्रंता के बाद भी हम नारी को पुरूष की बराबरी का हिस्सा नही दे पा रहे हैं। लडके वाले स्वयं को लडकी वालों से श्रेष्ठ समझते है। यही कारण है कि लडकी वाले लडके वालों की दहेज की मागं पूरी करते है।

दहेज प्रथा का समाधान

दहेज प्रथा कि समस्या की दूर करने का एक उपाय नारी का आत्मनिर्भर होना भी हो सकता है। एक आत्मनिर्भर नारी आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होती है। जो नारी घर की चारदीवारी में बद कर नही रहती वह सास व ननद के तानों से बच जाती है। साथ ही सास को भी बहू के नाराज होने से उसकी आय न मिलने का भय बना रहता है। अत; वह अपनी बहू से अचछा व्यवहार करती हैं। आज भारत सरकार के द्वारा कई प्रकार के कारण बनाए गए। इनमे से दहेज प्रथा सिधे 1961 बनाया हैं। इसके अलावा सरकार द्वारा बेटिया को पढाने या उनके विकास के लिए कई प्रकार की योजनाएँ बनाई जाती है। जैसे कन्या समृदि योजना, लाडली योजना, व शगुन योजना इत्यादि।

दहेज प्रथा के दुषपरिणाम

दहेज प्रथा के कारण महिलाओ का कितना शोषण हो रहा है। उनको कितना प्रताडित किया जा रहा है। आए दिन खबरों मे आता रहता है कि दहेज के लिए लडके वालो ने लडकी को जिदां जलाकर मार डाला या फिर उसको घर से बाहर निकाल दिया। इससे आप सीधा अनुमान लगा सकते है कि लोगों की मानसिकता उनके सोचने की शकित कितने हद तक निचे गिर गई है। दहेज प्रथा के कारण जब भी किसी परिवार मे लडकी पैदा होती है तो लोग खुश होने की वजह सहम जाते है कयोकी उनको इस बात की चिता सताती है कि अब इसके विवाह के लिए दहेज कहा से लाएगे। दहेज का यह विकराल रूप हम बढते हुए देख रहे है। इसके खिलाप हम कोई आवाज नही उठा रहे है। जिसके कारण आए दिन लडकियो का शोषण होता रहता है अगर आप दहेज लेते या देते है और या फिर इसका समर्थन करते है तो आप भी कानुन की नजरों मे गुनहगार है। इसलिए जब भी आप ऐसे होते हुए देखे तो इसका विरोध करें और पुलिस को इसकी सूचना दें।

लडकियो का शोषण

दहेज प्रथा के कारण आए दिन लडकियो का शोषण हो रहा हे कयोकि जब लडके वालों को शादी मे पर्याप्त धन नही मिलता है तो वे लडकियो से कहते है कि मांग करें अगर वह ऐसा नही करती है तो वह उसे मानसिक और शारीरिक रू‐ से प्रताडना देते है कभी–कभी यह प्रताडना इतनी बढ जाती है कि लडकिया आत्महत्या तक कर देती हे। वर्तमान में तो यह भी देखने मे आया है कि लडकियों को दहेज के लिए या तो उन्हें जिदां जला दिया जाता है या फिर उन्हें कही ओर ले जा कर उनकी हत्या कर दी जाती है। साख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वमन मत्रालय कि 2016 की रिपोर्ट के अनुसार 7621 महिलाओं को दहेज के लिए मार दिया गया।

लडकियों के साथ भेदभाव

दहेज प्रथा के कारण लडकियों का उन्ही के परिवार में भेदभाव किया जाता है कयोकी लोग मानते हे कि लडकियॅा तो पराई होती है इसलिए वे उनको ना तो पढाते लिखाते है ना ही उन्हें किसी प्रकार के कार्य

करने की आजादी देते है। कई परिवारों मे तो यह भी देखा गया है कि लडको की तुलना मे लडकियों को खाने और पहनने के लिए कम वस्तुए दी जाती है उन्हे घर से बाहर जाने की आजादी नही होती।

घटता लिगांनुपात

छहेज प्रथा के कारण लोग अपने घर में लडकियां नही चाहते है वह लडकियों को कोख में ही मरवा देते है जिसके कारण वर्तमान में लडकें और लडकियों के लिगानुपात में भारी अतंर देखा गया हे। वह लडकी होने को सिर्फ खर्चा मानते है। जिस कारण बेचारी लडकियों को बिना किसी कसर की कोख मे ही मरवा दिया जाता है इसके खिलाप कई कानून भी बनाए गए हैं।

जनसख्ंया वृद्धि

जनसख्ंया वृद्धि भी दहेज प्रथा का एक दुष्परिणाम है क्योकी जहा पर अब लडकियों के कोख में मारने पर सख्त कारवाई होने लगी है वहा पर लोग अब लडकियों को भी तो नही मारते है। लडके की चाह में ते एक के बाद एक बच्चे पैदा करते रहते है जिसके कारण जनसख्यां वृद्धि होती है।

देश के विकास की राह मे रोडा

दहेज प्रथा के कारण जनसख्या वृद्धि होती है तो बेरोजगारी भी उतनी ही बढती है जिसके कारण देश के विकास की राह में बाधा आती है और इससे देश की महिलाओं का शोषण भी होता है उनके`मान सम्मान को भी ठोस पहुचंती है। बाहरी देशों के लोग सोचतें हे कि जहां पर महिलाओं को सम्मान नहीं होता वहां के लोग कैसे होंगे इसलिए लोग यहां आने से कतराते है जिससे हमारे देश का विकास नही हो पाता है।

परिवार का विघटन

ओषित दहेज न मिलने पर ससुराल वाले बहु को कई प्रकार की बातें सुनातें है उसे अपमानित करते हैं। इससे परिवार का विघटन होता है।

आत्महत्याए

आए दिन समाचार मिलते है कि ससुराल वाले कम दहेज की बात को लेकर बहु को विभिन्न प्रकार की यातनाए्र देते थे जिनसे तगं आकर उसने आत्महत्या कर ली। वस्तुत; स्त्रियों द्वारा की जाने वाली आधी से अधिक हत्याओं के पीछे दहेज का कारण ही होता हैं। अनेक कुमारियां भी माता पिता का दहेज की चितां से मुकित दिलाने हेतु स्वंम ही आत्महत्या कर लेती है। दहेज के बल पर धनवानों की कुरूप व दोषयुक्त कन्याए भी अच्छा पति पा जाती है और गरीब परिवार की सुदंर और योगय कन्याएं बुढे कुरूप तथा अनपढ व्यकितयों से ब्याह दी जाती हैं।

दहेज प्रथा को रोकने के उपाय

दहेज नामक इस प्रथा न हमारी सोच को इतना नीचे गिरा दिया है कि अब हमें दहेज लेने पर शर्म तक नही आती है। ऐसा लगता है कि दहेज का दशं इतना घातक हो गया है कि ने हमारे जमीर को भी दिया है यह कम होने की वजह दिन प्रतिदिन बढती ही जा रहा है जो कि हम और हमारे समाज के लिए बहुत घातक है। दहेज प्रथा को रोकना कोई बडा कार्य नही है कयोकि अगर दहेज प्रथा को दो मुख्य किरदार लडका और लडकी ही इसका विरोध करने लगेंगे तो इसकी कमर वही टूट जाएगी।

दहेज प्रथा को रोकने के लिए लडका और लडकी को दो बाते अपनानी होगी

अगर आप लडकी है तो किसी भी ऐसे परिवार में शादी ना करे जो दहेज की मांग करते हो या फिर आप को जरा सा भी ऐसा लगे कि यह परिवार आपके लिए सही नही है तो तुरंत शादी के लिए मना कर दों। अगर आप लडका है तो अपने घरवालों से साफ कह दे कि मे शादी तभी करूगा जब आप लडकी वालों से दहेज नहीं लेगे। लेकिन हमें पता है कि दहेज प्रथा को खत्म करना इतना आसान नहीं हे कयोकि किसी ना किसी के मन में तो खोट आ ही जाती है लडके वाले लडकी को इतना गुमराह कर देते है कि वह दहेज लेने के लिए तैयार हो जाता है इसलिये हमें दहेज प्रथा को रोकने के लिए कुछ कारगर उपाय खोजने होगें जो कि इस प्रकार है।

दहेज प्रथा के खिलाफ कानून बनाकर

हमें सरकार से निवेदन करना चाहिये कि वह दहेज प्रथा के खिलाप सख्त से कानून बनाकर इस प्रथा को रोकने का प्रयास करें वर्तमान में कुछ ऐसे काम भी आए है जो कि दहेज प्रथा को रोकने के लिए बनाए गए है उनमें प्रमुख है दहेज प्रतिबंध अधिनियम 1961 जिसके अतर्गत दहेज लेना और देना दोनों दडकारी है।

लडकियो को शिक्षित बनाकर

हमें लोगों मे जागरूता फैलाने होगी कि लडकियों को जितना हो सके उतना ज्यादा पढाया जाए उन्हें शिक्षित किया जाए जिससे कि वह कार्य भी कार्य करने मे सक्षम हो और उनको शादी करने के लिए दहेज भी नही देना पडेगा। शिक्षा ही हर विनाशकारी बीमारी का तोड हे। अब तो सरकार भी बेटियों को पढानें के लिए निशुल्क शिक्षा व्यवस्था जारी कर चुकी है बस लोगो को इस बारे मे बताना है कि लडकियां लडको से कम नही होती है।

लडका और लडकी में भेदभाव बंद करें

हम लडकी और लडका मे भेदभाव करते रहेगें दहेज प्रथा को उतना ही अधिक बल मिलता रहेगा इसलिए इसे लडका और लडकी में भेदभाव बंद करना होगा लडकी को भी वही सभी सुविधाए देनी होगी क्योकी एक लडकें को दी जाती है। लडकी को भी उतना ही प्यार दिया जाए जितना कि लडके को दिया जाता है।

दहेज प्रथा के खिलाप सामाजिक जागरूकता फैलाना

दहेज प्रथा के खिालाप हमें समाज में जागरूकता लानी होगी कयोकी लोगों की सोच इस कदर गिर चुकी है कि उन्हें दहेज के अलावा और कुछ भी नही सोचता इसलिए हमें गॉव–गॉव जाकर दहेज प्रथा के खिलाप चेतना के लानी होगी वहा के लोगों को बताना होगा कि इससे देश का कितना नुकसान हो रहा है। हम स्कूल मे ऐसे कार्यक्रम और नाटक होने चाहिये जिस दिन के माघ्यम से समझाया जा सके कि लडका और लडकी समान होते है उन्हे किसी भी प्रकार भेदभाव नहीं करना चाहिये और दहेज लेना और देना दोनों ही पाप है दडंकारी हैं लोगों की सोच को बदलना होगा।

हमे दहेज प्रथा का विरोध करना होगा

जब भी आप किसी भी विवाह में जाए तो वहां देखे कि दहेज लिया और दिया तो नही हा रहा है अगर ऐसा होता है तो आपको ऐसे विवाह में नही जाना चाहिये जहा पर दहेज प्रथा को बढावा मिलता हों सब की जिम्मेदारी बनती है कि आपको भी दहेज के लिए हा की जगह ना कहना होगा क्योकी आपके जीवन मे भी कभी ना कभी यह पल जरूर आएगा ।

आप दहेज प्रथा के विरोध में हीन भावना फैला सकते है जब कोई भी व्यकित है दहेज जे रहा होता है तो सिर्फ इतना कह दे कि लडकी वालो ने दहेज देकर लडके को खरीद लिया बस यह इतना सफर भी इतना असर कर जाएगा कि लडकें के मन मे दहेज प्रथा के खिलाप हीन भावना उम्पन्न हो जाएगी और वह दहेज लेने से इकांर करेगा। चल रही है ये तेज आंधिया गुजर जाएगी मत घूना इन चिरागों को वरना अगुलियॉ जल जाएग ीमत जलाओ बेटियों को मान और दौलत के लिए वरना एक दिन आप की भी बेटिया जल जाएगी।

उपसहांर

दहेज प्रथा में हसंते खेलते परिवारों को उजाड दिया है इसके कारण कई बहू बेटिया की जिदगी खराब हो गई है दहेज प्रथा के कारण हमारे समाज के लोगों की सोच इतनी गिर गई है। वह दहेज लेने के लिए किसी हद तक जा सकते है इसका उदाहरण आप आए दिन आने वाले समाचार और अखबारों मे देख सकते है कि केसे लोग दहेज के लिए अपनी बहुओं की हत्या कर देते है या फिर उनका इतना शोषण करते है िकवह खुद मजबूर हो सकती है आत्महत्या करने के लिए अब बहुत हुआ दहेज प्रथा के खिलाप हमें आवाज उठानी होगी अगर आज हम ने आवाज नहीं उठाई तो कल हमारी ही बहन–बेटियों इसका खिलाप आवाज उठाली होती तो आज यह नही होता हमें लोगों की पहचान उसकी सोच को बदलना होगा अगर हग विरोध नही करेगे तो कौन करेगा।

देकर दहेज खरीदा गया ह ैअब दुल्हे को, कही उसे के हाथो दुल्हन बिक न जाए।

त्मिमितमदबमेरू.

1ण ‘श. डवदमलबवदजतवसण्बवउण 8 डंतबी 2007ण ।तबीपअमक तिवउ जीम वतपहपदंस वद 11 रंदनंतल2012ण

2ण त्ंदप श्रमजीउंसंदप – च्ण्झण क्मज ;1995द्धण क्वूतल क्मंजी ंदक ।बबमे जव श्रनेजपबम पद ।ंसपेे लनहरू म्उचवूमतउमदजए सूं ंदक क्वूतल क्मंजीण्चचण 36ए38ण

3ण च्ंतें क्पूंद ंदक चममलनीप क्पूंद;1997द्धण सूं त्मसंजपदह जव क्वूतलए क्वूतल क्मंजीए ठतपकम ठनतपदपदह त्ंचमए ंदक त्मसंजमक व्मिदबमण क्मसीप रू न्दपअमतेंस सूं चनइण ब्वण चण 10ण

4ण ळववहसम ॅपापचमकपंण

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 133-137
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ऊषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में नारी–अस्मिता एवं नारी विमर्श

–डॉ0 कविता चौधरी
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

शोध सारांश :–

ऊषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में नारी जीवन के विविध आयामों में व्याप्त मानवीय संवेदना एवं संघर्ष–मुक्ति की पीडा को विवेचित–विश्लेषित किया गया है। ऊषा प्रियंवदा हिंदी साहित्य की एक उच्च कोटि की साहित्यकार हुई हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से न केवल नारी समाज के स्वरूप को प्रदर्शित किया है, बल्कि समाज में व्याप्त कुरीतियों को भी उजागर करने का प्रयास किया है। आलोच्य कृतियों की रचयिता ऊषा प्रियंवदा जी के व्यक्तित्व, लेखनी के प्रभाव, ग्रहणशीलता और व्यक्तित्व निर्माण तथा उनका रचनात्मक परिचय दिया जाएगा। ऊषा प्रियंवदा ने कहानी के अतिरिक्त अन्य विधाओं का भी सृजन किया है। उपन्यास,आत्मकथा और कहानियों द्वारा इन्होंने अपने रचना साहित्य को गति प्रदान की है।

मूल शब्दः स्वतंत्र घोषित,घरेलू जिम्मेदारियों का अहसास, कुरीतियों, विविध आयाम, आदर्श चरित्र।

नारी के स्वरूप का विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा है। इसमें मुख्य रूप से नारी को केंद्र बिंदु मानकर नारी के स्वरूप का विवेचन किया गया है, जिसमें बताया गया है कि नारी इस संसार की धुरि है। इसके सहयोग के बिना सृष्टि का चलायमान रहना संभव नहीं है। इसके बिना पुरुष या मानव जीवन में एक अभाव बना रहता है। इसके बिना साहित्य सृजन असंभव सा जान पड़ता है।

जायसी, कबीर आदि कवियों ने नारी वर्णन में ही परम, प्रियतम, परमात्मा की रहस्यमयी झांकी देखी। तुलसीदास जी ने भी अपनी रचनाओं में अराध्य जगत माता सीता के आधार पर नारी का आदर्श चरित्र चित्रण किया है। नारी स्वरूप विवेचन में साहित्यकारों ने धर्म ग्रंथों को आधार के रूप में ग्रहण किया है। आदि पुरुष मनु ने भी कहा है कि ''यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते, रमन्ते तत्र देवता।''

नारी के स्वरूप का विवेचन शब्द कोशों में भी किया गया है। इनमें मुख्य रूप से नारी ने मातृ रूप, पत्नी रूप, कन्या या पुत्री रूप का वर्णन किया गया है। इसके साथ–साथ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नारी के स्वरूप का विवेचन किया जाएगा।

प्राचीन भारतीय ब्राह्मय में नारी के अनेक रूपों का चित्रण किया गया है। उसमें नारी के चार रूप प्रमुख है। देवी, माता, बहन या कन्या और पत्नी। वेदों में अदिति, उषा, सीता, सूर्या, सरस्वती आदि वे नारियां है, जिनका सम्मान व पूजन आज भी समाज करता है।

ऊषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में नारी के प्रत्येक रूप का न केवल विस्तार से वर्णन किया है। अपितु स्त्री की स्वतंत्रता और उसके अधिकारों के प्रति सजग रहने की प्रेरणा दी है। स्वतंत्रता स्वयं स्त्रीलिंग शब्द है,

किंतु जब स्वतंत्रता की बात उठती है तो उसका कुछ हिस्सा ही नारी को मिल पाता है और वह स्वतंत्रता नाममात्र की ही होती है, क्योंकि पुरुष वर्ग द्वारा नारी भी यह आधुनिकता का लबाधा ओढ़े हुए जारी है। भारत में अंग्रेजी शासन से मुक्ति दिलाने में सबसे पहले स्वतंत्रता का बिगुल रानी लक्ष्मी बाई ने बजाया था। परंतु स्वतंत्रता के बाद वही नारी आज अपनी स्वतंत्रता के लिए प्रयास कर रही है। आधुनिक जीवन में नारी पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर प्रगति के पथ पर अग्रसर है, लेकिन पुरुष नारी की स्वतंत्रता का हनन करने का प्रयास करता रहा है। नारी को अबला और कमजोर समझ कर उसकी स्वतंत्रता को बांधने का प्रयास करता रहा है। ऊषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में नारी के विभिन्न रूपों का प्रभावशाली एवं यथार्थ रूप प्रकट करने का प्रयास किया है। नारी की स्वतंत्रता और उसकी स्थिति को उजागर करने का प्रयास ऊषा प्रियवंदा ने अत्यंत प्रभावशाली रूप में किया है।

भारतीय जीवनशैली में नारी को हमेशा से ही एक अबला और कमजोर स्वीकार किया गया है। यानी नारी के स्वरूप और उसकी शारीरिक क्षमता को हमेशा कम आंका गया है, लेकिन नारी की यह स्थिति पुरुषों के प्रभाव के कारण ही बनी है। नारी प्राचीन समय से ही अबला समझी जाती रही है और यही स्थिति आधुनिक युग में भी देखी जा सकती है। अबला जीवन तुम्हारी यही कहानी आंचल में दूध आंखों में पानी, महाकवि निराला की इस पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी को अबला ही समझा जाता रहा है तथा उसको प्रत्येक कार्य में नारी अपने जीवन में अनेक प्रकार की भूमिकाओं का निर्वाह करती है तथा प्रत्येक स्थिति में वह दूसरों के प्रति अपने आप को समर्पित कर देती है, लेकिन फिर भी उसका शोषण ही किया जाता है। चाहे उसका पति हो या उसके घर का कोई अन्य सदस्य।

नारी अपने जीवन की परिस्थितियों से लड़ते–लड़ते इतनी थक जाती है कि कभी–कभी उसे अपने जीवन में एक साथी की जरूरत अनुभव होने लगती है। यहीं पर नारी अपने जीवन में एक अकेलापन महसूस करती है कि कहीं पर कोई उसकी बात सुने तथा ऊउसका प्रोत्साहन करें ताकि उसके जीवन में मधुरता और सरसता आ सके। नारी के जीवन की यह ऊस्थिति उसे सोचने पर मजबूर कर देती है कि वह इतनी कमजोर तो नहीं थी कि उसे किसी का सहारा ढूंढ़ने की जरूरत पड़े लेकिन दूसरों को देखकर कभी–कभी ऐसा मन में आ जाता है।

नारी अपने जीवन में अनेक ऐसे निर्णय ले लेती है, जिसके लिए उसे बाद में पछताना नहीं पड़ता है, क्योंकि पुरुष नारी की कमजोरियों का फायदा उठाना अच्छी तरह जानता है और यही स्थिति नारी को अपनी ही नजरों में अबला और कमजोर बना देती है। ऐसी स्थिति में वह अपने को कोसती है, छटपटाती है, लेकिन कुछ भी नहीं कर सकती। यही अचला के साथ भी हुआ।

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी अपने आप को मजबूत तो कर लेती है, लेकिन परिस्थितियों से लड़ते हुए वह हार मान लेती है, जो उसकी पराजय का कारण बनता है।

कभी–कभी स्त्री की पारिवारिक परिस्थितियां उसके आने वाले भविष्य को गर्त में पहुंचा देती है। परिवार के सदस्य अपनी जिम्मेदारी से मुक्त होना चाहते है, लेकिन उस मुक्ति में नारी का बंधन ऐसी बेड़ियों से बांध दिया जाता है जिसके पाश में वह बंधती ही चली जाती है और उसके जीवन से खुशियों और कल्पनाओं का संसार खत्म हो जाता है।

नारी दूसरों की खुशियों के लिए अपने जीवन की अभिलाषाओं, इच्छाओं और आकांक्षाओं का त्याग कर देती है तथा अपने जीवन की किसी भी प्रकार की परिस्थिति को भोगने के लिए तैयार रहती है।

ऊषा प्रियंवदा ने अपनी कहानियों में नारी के अबला रूप का चित्रण बड़ी ही सजीवता से किया है कि किस प्रकार विभिन्न प्रकार के कष्ट, दुख तकलीफ सहकर भी पुरुष के आगे हमेशा नारी नतमस्तक रहती है। पुरुष प्रधान समाज में नारी की इच्छाओं और योग्यता का आंकलन नहीं किया जाता केवल उसका शोषण किया जाता है और उसकी जिंदगी को बोझिल बना दिया जाता है।

नारी का एक स्वरूप सबला भी है, जिसके आधार पर नारी को शक्ति का प्रतीक माना गया है। प्रेमचंद जी ने नारी को प्रेम, त्याग और बलिदान की प्रतिमूर्ति स्वीकार किया है, वहीं अन्य साहित्यकारों ने भी नारी को सशक्त एवं सुदृढ़ मानसिकता की धनी के रूप में स्वीकार करते आए हैं।

स्वतंत्रता संग्राम से लेकर आधुनिक युग तक नारी के वर्चस्व का बोलबाला है। पुरुष चाहे कितना ही नारी के अस्तित्व को उसके गुणों को दबाने का प्रयास करें, नारी की प्रतिभा अपने आप निखर उठती है। नारी के इसी प्रारुप को सभी साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों ने स्वीकार किया है कि नारी अबला नहीं सबला है। उसमें परिवर्तन की शक्ति निहित है। वह न केवल अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए स्वतंत्र है, बल्कि अपने भविष्य का चुनाव करने के लिए भी स्वतंत्र है वह जिस मार्ग को चाहे उसका चुनाव कर सकती है। वह कठिन से कठिन कार्य को पुरुषों की तरह कर सकती है। आधुनिक युग में हम नारी के बढ़ते वर्चस्व को देख सकते हैं कि प्रत्येक क्षेत्र में नारी का दबदबा है। चाहे वह विज्ञान का क्षेत्र हो, चाहे राजनीति या पारिवारिक व्यवस्था उसके त्याग और बलिदान को सभी नमन करते हैं और करते रहेंगे। ऊषा प्रियंवदा ने भी अपनी कहानियों के माध्यम से नारी के सबला रूप को एक सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है।

यहां परिवार की व्यवस्था को देखा जा सकता है कि किस प्रकार परिवार के खर्चों का बोझ एक स्त्री ने उठा रखा है और नारी होने के अपने कर्तव्यों का भली भांति पालन कर रही है, जबकि पुरुष हृदय अपने आपको चोटिल और कुंठित स्थिति में पाता है। वर्तमान समय में आर्थिक परिस्थितियां ही व्यक्ति की जीवनशैली का निर्धारण करती है। ऐसा स्पष्ट उदाहरण ऊषा प्रियंवदा की कहानियों में देखा जा सकता है कि किस प्रकार जब परिवार में पुरुष कमाता ना हो तथा स्त्री कमाती हो तो पुरुष की अहमियत कम हो जाती है।

भारतीय संस्कृति अपने आप में एक महान संस्कृति रही है। इस संस्कृति का व्याख्यान देश–विदेश सभी जगह किया जाता है। भारतीय संस्कृति ने नारी को विशेष स्थान प्राप्त है। यहां नारी को घर की लक्ष्मी के रूप में स्वीकार किया जाता है, लेकिन यह बात इतनी तर्कसंगत लगती नहीं। भारतीय समाज में नारी पर जितने अत्याचार किए जाते हैं उन सबसे यही लगता है कि वह घर की देवी नहीं, बल्कि घर की दासी हो। लेकिन बदलते परिवेश में नारी ने अपनी भूमिका को परिवर्तित किया है। जिस प्रकार विदेशों में नारी की स्वतंत्रता का हनन नहीं किया जा सकता। वहां पर नारी स्वयं आगे बढ़कर प्रत्येक कार्य को करती है। उसका प्रभाव अब भारतीय पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवस्था में भी देखने को मिलता है, क्योंकि पाश्चात्य संस्कृति में कुछ गुण भी है, लेकिन पाश्चात्य संस्कृति के कुछ दोष भी है जो भारतीय संस्कृति और वातावरण के अनुरूप नहीं है।

उपरोक्त उदाहरण में पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है कि किस प्रकार नारी तथा स्त्री के संबंधों में मुखरता के साथ–साथ अश्लीलता भी आ रही है। चाहे वह दात्पय संबंध हो या अन्य कोई संबंध

कुछ सामाजिक बुराईयां जैसे शराब पीना आदि कई कुरीतियां पाश्चात्य संस्कृति की देन है। जिसे हम आसानी से अपना रहे हैं और अपनी गिनती उच्च वर्ग में करते हैं।

पहले स्त्रियों को रात को घर से बाहर निकलना प्रतिबंधित माना जाता था, लेकिकन वर्तमान में यह एक सामाजिक श्रेय के रूप में गिना जाने लगा है। लोग क्लबों तथा पार्टियों में जाते हैं तथा वहां पर शराब आदि नशे करके पूरी रात झूमते हैं।

इन पंक्तियों में देखा जा सकता है कि किस प्रकार पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण दांपत्य संबंधों में भी कटुता बढ़ती जा रही है तथा परिवारों में टूटन तथा विखंडन अत्यधिक बढ़ गया है जिसका कारण पाश्चात्य संस्कृति ही है।

आज नारी अपने आपको बाहरी कार्यों में इतना व्यस्त रखना चाहती है कि उसे अपनी घरेलू जिम्मेदारियों का अहसास ही नहीं रहता जिसके कारण भी दांपत्य–संबंधों में भी कटुता पनपने लगती है। वर्तमान समय में नारी अपने आपको सामाजिक कार्यों में व्यस्त रखने पार्टियों और क्लबों में जाकर अपने सामाजिक स्तर को उठाने का प्रयास करती है, लेकिन वह अपनी पारिवारिक संपदा को खोती जा रही है।

यह स्त्रीत्व और सतीत्व की मर्यादा भारतीय परिवार व्यवस्था की धुरी है। भारतीय समाज सभी नारियों से ऐसे ही पतिव्रत धर्म की अपेक्षा करता है।

"थोड़ी देर में उनकी पत्नी हाथ में अर्घ्य का लोटा लिए निकलीं और अशुद्ध स्तुति कहते हुए तुलसी में डाल दिया। उन्हें देखते ही बसंती भी उठ गई। पत्नी ने आकर गजाधर बाबू के मन में फांस–सी कारक उठी, अपने–अपने काम में लग गए हैं– आखिर बच्चे ही हैं।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है कि किस प्रकार नारी अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर चुकी है। वह अब समाज की चिंता नहीं करती उसे केवल अपनी खुशियों से सरोकार है। चाहे वह किसी भी रूप में मिले वह अपने सपनों को पाना चाहती है।

ऊषा प्रियंवदा ने अपनी कहानी संसार में नारी की प्रत्येक स्थिति का वर्णन अत्यंत मुखरता से किया है। ऊषा जी ने नारी को संसार में प्रमुख स्थान दिया है। नारी के बिना समाज तथा परिवार की कल्पना भी नहीं की जा सकती, लेकिन उसकी मानसिक स्थिति को कोई समझने का प्रयास भी नहीं करता, जिसके कारण वह हमेशा तनावग्रस्त रहती है तथा अपने आपको कठिन परिस्थितियों में अकेला पाती है। यही पर नारी अपने मन की व्यथा किसी को कह भी नहीं पाती।

निष्कर्ष

नारी मन अपनी व्यथा को किसी के सामने प्रदर्शित करने से हिचकिचाता है। क्योंकि नारी की अपनी एक अलग दुनिया होती है। नारी सभी प्रकार की जिम्मेदारियों का निर्वाह बड़ी ही कुशलता से करती है, लेकिन अपने आपको वे परेशानियों से मुक्त नहीं रख पाती। यही कारण है कि सबका बोझ अपने ऊपर सहने के बाद वे तनाव की स्थिति में रहती है। यही कारण है नारी मन अपनी व्यथा को कहने से डरता है कि कहीं उसको कमजोर न समझ लिया जाए। तनाव की यही स्थिति नारी को विचलित कर देती है।

ऊषा प्रियंवदा द्वारा रचित 'मेरी कहानियां' में पृष्ठ नं. 37

ऊषा प्रियंवदा द्वारा रचित 'मेरी कहानियां' में पृष्ठ नं. 51

ऊषा प्रियंवदा द्वारा रचित 'जिंदगी और गुलाब के फूल' में पृष्ठ नं. 91
ऊषा प्रियंवदा द्वारा रचित 'मेरी कहानियां' में पृष्ठ नं. 75
ऊषा प्रियंवदा द्वारा रचित 'मेरी कहानियां' में पृष्ठ नं. 64
ऊषा प्रियंवदा द्वारा रचित 'मेरी कहानियां' में पृष्ठ नं.85
ऊषा प्रियंवदा द्वारा रचित 'जिंदगी और गुलाब के फूल' में पृष्ठ नं.63
ऊषा प्रियंवदा द्वारा रचित 'मेरी कहानियां' में पृष्ठ नं. 49
ऊषा प्रियंवदा द्वारा रचित 'मेरी कहानियां' में पृष्ठ नं.3–4
ऊषा प्रियंवदा द्वारा रचित 'मेरी कहानियां' में पृष्ठ नं.2

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 138-143
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दलित विमर्श के संदर्भ में सिद्ध और नाथ साहित्य

–डॉ. अरुण प्रसाद रजक
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, गोरुबथान गवर्नमेंट कॉलेज, कलिम्पोंग
उच्च शिक्षा विभाग, पश्चिम बंगाल सरकार।

मानव समाज के विकास की प्रक्रिया का इतिहास अत्यंत प्राचीन रहा है द्य कार्ल मार्क्स ने 'कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' में पहला वाक्य लिखा है– "अभी तक आविर्भूत समस्त समाज का इतिहास वर्ग– संघर्षों का इतिहास रहा है द्य"1 लेकिन भारतीय समाज के संदर्भ में वर्ण और जाति की अवधारणा वर्ग की अवधारणा की अपेक्षा कहीं अधिक जटिल और संश्लिष्ट है द्य हाँलाकि वर्ण– व्यवस्था और जाति– व्यवस्था, वर्ग– व्यवस्था की तरह ही आर्थिक परिस्थितियों की उपज है लेकिन सम्पति और अधिकार के जन्मना केन्द्रीयकरण से वर्ण– व्यवस्था का जन्म हुआ द्य प्राचीन काल में वर्ण और वर्ग अभिन्न थे द्य कालान्तर में जाति– व्यवस्था का उद्भव हुआ और सम्पूर्ण भारतीय समाज को इसकी गिरफ्त में जकड़ता चला गया द्य जाति और वर्ण की व्यवस्था ने भारत के सामाजिक ढाँचे को अत्यधिक जटिल बना दिया द्य यह जाति संबंधी धारणा भारतीय संस्कृति में वैदिक काल से चली आ रही है द्य इसे वर्णाश्रम व्यवस्था भी कहते हैं द्य इस व्यवस्था के तहत जो व्यक्ति जिस वर्ण में जन्म लेगा, वह व्यक्ति उसी वर्ण का कर्म करेगा द्य वर्ण–व्यवस्था जन्मना श्रम– विभाजन का परिणाम है द्य इतिहासकार के० दामोदरन की टिप्पणी है– "चातुर्वर्ण्य, अथवा समाज का चार वर्णों में विभाजन, भारतीय दास–प्रथा का एक विशिष्ट रूप था द्य"2

चातुर्वर्ण्य के अवैज्ञानिक अवधारणा को आदिकालीन सिद्धाचार्यों ने चुनौती दी द्य तत्कालीन समाज के व्यवस्था–विरोधी और रुढ़िवादी प्रवृत्तियों को पूर्णतरू नकारने वाले सिद्ध कवियों के विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की इस स्थापना पर विचार किया जाना चाहिए– "84 सिद्धों में बहुत से मछुए, चमार, धोबी, डोम, कहार, लकड़हारे, दरजी तथा बहुत से शूद्र कहे जाने वाले लोग थे द्य अतरू जाति खंडन तो वे आप ही थे द्य नाथ संप्रदाय भी जब फैला तब उसमें भी नीची और अशिक्षित श्रेणियों के बहुत से लोग आये जो शास्त्रज्ञान संपन्न न थे द्य जिनकी बुद्धि का विकास बहुत सामान्य कोटि का था द्य"3 संभव है कि आचार्य शुक्ल यह कहना चाहते हैं कि कविता कहने के लिए उच्च जाति में बुद्धि संपन्न होना आवश्यक है द्य उनमें यदि शास्त्रज्ञान सम्पन्नता होती तो वे ब्राह्मणवाद और उनकी जड़ नीतियों पर कठोर उक्तियों का प्रयोग बिल्कुल न करते द्य

हिंदी सहित्येतिहास लेखन का 'व्यवस्थित, क्रमबद्ध और प्रामाणिक कार्य' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया द्य आचार्य शुक्ल के 'व्यवस्थित, क्रमबद्ध और प्रामाणिक' इतिहास लेखन की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि सिद्धों–नाथों को यथोचित स्थान नहीं दिया गया द्य इसी तरह साहित्येतिहास के अनेक मोटे– मोटे ग्रन्थ लिखे गयें, जिनमें सिद्धों– नाथों को अछूत अभंग की तरह ज़मीन के एक कोने में बैठने की बित्ता भर जगह तो दे दी गयी,

लेकिन साहित्य के खाट पर बराबरी में बैठने की इजाजत कभी नहीं मिली द्य उन्हीं सिद्धों में आदि विद्रोही कवि सरहपा आते हैं द्य सरहपा की विचारधारा में सब समान थे द्य शूद्र एवं ब्राह्मण में कोई अंतर नहीं था द्य वे कहते हैं कि जिस क्षण यह मन अस्त यानि विलीन हो जाता है, उस क्षण सारे बंधन टूट जाते हैं द्य उस समरस सहज अवस्था में कुछ भी भेद नहीं रहता, न शूद्र, न ब्राह्मण–

"जव्वे मण अत्थमण जाहि तणु तुट्टइ बन्धण द्य
तब्बे समरस सहजे बज्जइ णउ सुइ ण बम्हण द्यद्य"4

कविता सामाजिक अधिकार की लड़ाई लड़ने के लिए इसलिए राजी होती है क्योंकि वह सबको एक समान मानती है द्य सबके दुःख–दर्द, वेदना–संवेदना को अभिव्यक्ति प्रदान करती है द्य फिर विरोधों और अन्यायों से लड़ना तो कवि और कविता का स्वभाव है द्य परिवर्तन ही इनकी नियति है द्य इस नियति को आज से बहुत समय पहले सर्वप्रथम सिद्धों एवं नाथों द्वारा पहचाना गया था द्य बाद में इसे धारदार बनाने की प्रक्रिया कबीर और रैदास शुरू करते हैं द्य सामाजिक विषमताओं को ख़त्म कर समानता की आवाज बुलंद करने वाले सिद्धों पर अपना मत रखते हुए आलोचक बच्चन सिंह ने सही कहा है– "जहाँ तक सिद्ध जाति–पांति की प्रथा, ऊँच–नीच का भेद, शास्त्र विजड़ित तत्त्ववाद और वाह्याडम्बर का विरोध करते हैं वहाँ तक उनकी भूमिका निस्संदेह प्रगतिशील है द्य वे अत्यंत तीखे और दो टूक ढंग से उनका खंडन करते थे द्य बाद में खंडन का यह स्वर कबीर में और भी जोरदार ढंग से प्रतिध्वनित हुआ द्य"5

हिंदी साहित्य के विकास परंपरा पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि दलित हिंदी कविता सही अर्थों में सिद्धों, नाथों एवं कबीर की परंपरा का विकास है द्य कविता के वाह्य सौंदर्य से अधिक उसके आतंरिक भावों एवं दृष्टियों को प्रधानता दे तो सिद्धों– नाथों की कविता मुक्ति की एक आवाज़ है द्य ऐसी कविताओं को कलावादी– सौंदर्यवादी फार्मूले से पारंपरिक विश्लेषण न करके नई आलोचना पद्धति से इसका मूल्यांकन करे तो इसका मर्म समझ पाएंगे द्य बजरंग बिहारी तिवारी से हुई बातचीत में शरण कुमार लिम्बाले नए सौंदर्यशास्त्र की ओर इंगित करते हुए कहते हैं– "दलित साहित्य का विषय, आशय अलग है, दलित साहित्य का नायक और स्वर अलग है द्य दलित साहित्य कला नहीं, पोलिटिकल डाक्यूमेंट है द्य इसका लक्ष्य मानव–मुक्ति है पाठक का आनंद नहीं द्य इसकी थ्योरी अपने अधिकार और स्वतंत्रता की भावना से विकसित हुई है द्य इसे ध्यान में रखकर इस साहित्य की चर्चा होनी चाहिए द्य ऐसी चर्चा के लिए हम अलग सौंदर्यशास्त्र की बात करते हैं द्य"6 अर्थात् जिस मानसिकता से ग्रसित होकर सिद्ध, संत आदि की वाणियों एवं कविताओं को ख़ारिज करने का प्रयत्न किया गया था और लगभग आज भी किसी न किसी रूप में ऐसा किए जाने का प्रयास जारी है, दलित आलोचक एवं साहित्यकार इस प्रवृत्ति को एक सिरे से नकारते हैं द्य होना भी चाहिए द्य यदि शरीर का कोई अंश दर्द से पीड़ित है तो हृदय से उल्लास और उमंग के स्वर नहीं, दुःख एवं वेदना के आह फूटते हैं द्य दलित हिंदी कविता इसी आह की उपज है द्य सिद्धों– नाथों की कविता भी ऐसी ही है द्य

आदिकाल के सिद्ध– नाथ साहित्यकार अभिजन संस्कृति के विरुद्ध जिस समानान्तर चिंतन धारा को लेकर चल रहे थे, वह दिग्भ्रमित समाज का सही मार्गदर्शन कर मानव को उसकी वास्तविक पहचान से अवगत कराने पर बल दे रहा था द्य इस चिन्तन– दर्शन पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि यह परम्परा चार्वाक, नागार्जुन, महावीर जैन, गौतम बुद्ध आदि से शुरू हुई, जो बाद में सिद्ध– नाथ साहित्य के रूप में पल्लवित हुई द्य यही

परम्परा हिंदी साहित्य के मध्यकाल में संत कबीरदास में प्रवाहित हुई द्य यह धारा आम जनता से जुड़ी रही द्य मनुष्य के अस्मिता पर गहराए संकट के विरोध में प्रतिवाद की आवाज़ बुद्ध के समय से चली आ रही थी द्य हिंदी साहित्य में सर्वप्रथम सिद्धों ने भेदभाव के वर्गीय चेतना, जिसकी अंधी आध्यात्मिकता के कारण वर्ण– व्यवस्था की उपज हुई, के प्रति प्रतिवाद का स्वर उठाकर दबी– कुचली जनता को जागरूक किया द्य उसके ठेकेदार ब्राह्मण और सामंती लोग थें जिनके कारण निम्न जाति के लोग यातनाएँ सह रहे थें द्य तत्कालीन परिस्थितियों के कारण दलित जातियों में विद्रोह की भावना जगी जिसे हम चर्यागीतों और दोहाकोशों के माध्यम से देख सकते हैं द्य इनमें से अधिकांश कवि निम्न श्रेणी की जनता से ही आए थें, जिनमें मनुष्यत्व की भावना कूट–कूट कर भरी थी द्य क्या कारण था कि पहली बार साधना के क्षेत्र में शूद्र और नारी साधकों को आना पड़ा? अधिकांश सिद्ध कवि वर्णाश्रम व्यवस्था से पीड़ित थे, इसलिए इनका मुख्य उद्येश्य समतामूलक समाज की स्थापना और वर्णाश्रम धर्म का विरोध करना रहा हैद्य वर्ण–व्यवस्था के आवरण को ओढ़कर वे कैसे सो सकते थे? पंडितों द्वारा फैलाए गए वाह्याडम्बर और आचारहीनता का आक्रोश सिद्धों के साथ नाथों की वाणी में स्पष्ट परिलक्षित होता है द्य गोरखनाथ स्पष्ट कहते हैं कि मूर्खों की सभा बैठना और पंडितों से विवाद करना एक बराबर है–

”मूरिष सभा न बैसिबा अवधू पंडित सौं न करिबा बादं द्य“7

आदिकालीन साहित्य में सिद्ध और नाथ धाराएँ भले ही कुछ हद तक परस्पर विरोधी लगती हैं किंतु दोनों का मुख्य उद्येश्य एक ही है और वह है– मानव मात्र की समानता की भावना द्य इसका प्रभाव सामाजिक संरचना तथा सामान्य जनता पर भी पड़ा द्य परस्पर विरोधी से लगने वाले दोनों खेमों को यदि गौर से देखें तो पाएँगे कि दोनों पूर्णतरू क्रांतिकारी है द्य परिवर्तन दोनों चाहते हैं, मुक्ति की छटपटाहट दोनों में हैं द्य दोनों मुक्ति और आमूलचूल परिवर्तन कर नयी व्यवस्था गढ़ना चाहते हैं द्य विचारधारा में दोनों संप्रदाय अलग– अलग हैं पर सामाजिकता के मामले में एक हैं द्य संपूर्ण लोकाश्रय आदिकालीन साहित्य सबाल्टर्न चेतना से लैस मानववादी चिंतन का साहित्य है द्य सांप्रदायिकता, धार्मिक कट्टरता और अनेक दूसरी सांमंती रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष में प्रेरणा का एक अक्षय स्रोत है– सिद्ध– नाथ कवियों की कविता द्य भक्ति संप्रदाय को जनान्दोलन का रूप देने के लिए कबीर लुकाठी लिए खड़े बाजार में गुहार लगा रहे थें, यह क्रन्तिकारी चेतना की मशाल उन्हें पूर्ववर्ती सिद्ध– नाथ साधकों से मिली थी द्य जाति–प्रथा की निंदा करते हुए कबीर ने हिंदू और मुसलमान दोनों से प्रश्न किया है–

”जो तू बाँभन बाँभनी जाया, आन बाट है क्यूँ नहिं आया ?
जो तू तुरक तुरकिनी जाया, भीतर खतना क्यों न कराया ?“8

तत्कालीन सांमतवादी समाज–व्यवस्था में समाज के ठेकेदारों का विरोध करना साहस का काम है द्य ऐसा काम वही कर सकता है जिसे परिणाम की चिंता नहीं होती है द्य मनुष्यत्व की भावना को आगे रखते हुए अति तार्किक रूप से ब्राह्मणवादियों से कबीर ने प्रश्न किया है–

”हमारे कैसे लौहू तुम्हारे केसे दूध द्य
तुम कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद द्यद्य“9

कबीर शुरू से ही लोगों को मनुष्यत्व को अपनाने के लिए प्ररित करते रहें द्य इन सब के पीछे उनका सामाजिक अनुभव काम करता है द्य वे अनुभव के ज्ञान को महत्त्व देते हुए शास्त्रीय पण्डितों को चुनौती देते हैं द्य कबीर

की इस विचारधारा से हिंदी दलित आंदोलन प्रेरित और प्रभावित होता रहा है और रहेगा द्य

सिद्धों, नाथों और कबीर की वाणी प्राचीन और मध्यकालीन समाज को समझने की एक दृष्टि और समझ विकसित करती है द्य आज साहित्य में विमर्श के स्त्रोत की खोज करते हुए हम कबीर तक जाते हैं, लेकिन कबीर को अकेले पढ़कर उनकी विचारधारा को नहीं समझा जा सकता है द्य उनको सम्पूर्णता में समझने के लिए सिद्ध एवं नाथ साहित्य के विचारधारा की पड़ताल करनी होगी द्य चौरासी सिद्धों और नव नाथों की परम्परा में अधिकांश कवियों का अवर्ण तबके से शामिल होना एवं साहित्य के शुरूआती दौर में अपनी उपस्थिति दर्ज कराना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है द्य विमर्श की परम्परा की चर्चा करते हुए दलित साहित्यकार डॉ० सूर्यनारायण रणसुभे लिखते हैं– "मध्यकाल में संतों ने फिर से सबको सम्मिलित कर विभिन्न प्रश्नों पर बहस शुरू कर दी थी– ऐसे प्रमाण भक्ति साहित्य के निर्गुण सम्प्रदाय में और उसके भी पूर्व सिद्ध– नाथ संप्रदाय में मिलते हैं द्य ••••• यहाँ विमर्श की परम्परा बड़ी लम्बी, प्रदीर्घ ऐसी रही है द्य"10

शास्त्र और काव्यशास्त्र के पक्के समर्थक आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी आलोचना के प्रतिमान निर्मित करते समय निम्न– जातियों से आने वाले सिद्धों और नाथों की भाषा और विचार दोनों को अशुद्ध माना द्य यहाँ ध्यान देने की बात है कि संस्कृत भाषा, साहित्य और काव्यशास्त्र सभी अभिजन समाज के जीवन तक सिमित थे और शोषितजनों के प्रति अवज्ञा और अपमान का भाव बद्धमूलक था द्य अकारण नहीं है कि अभिजनों की दृष्टि में शोषितजनों की भाषा और विचार अशुद्ध मानी जाती है द्य ध्यान देने की बात यह भी है कि भाषा समाज से आत्मसात की जाती है, जबकि सिद्धों– नाथों का समाज 'वहिष्कृत समाज' था जो नगर या गाँव से दूर होते थे द्य इसलिए वहिष्कृत समाज की भाषा भी वहिष्कृत मानी गयी द्य उनके विचार कितने ही क्रान्तिकारी क्यों न हो जब भाषा ही शुद्ध नहीं तो उन विचारों की भला क्या कीमत ?

चर्यागीतों में प्रचलित तत्कालीन जातिवाद का आभास मिलता है द्य एक चर्या में कण्हपा बताते हैं डोम्बी का वास नगर के बाहर झोपड़ी में है– "नगर बाहिरि रे डोंबि तोहारि कुड़िआ द्य"11 यहाँ पर सिद्ध कण्हपा समाज में प्रचलित छुआ–छूत के प्रबल भाव की अभिव्यक्ति कर रहे हैं द्य प्रकारांतर से वे भले ही किसी गंभीर आध्यात्मिक चिंतन को प्रश्रय दे रहे हों परंतु प्रकट रूप में वे समाज में प्रचलित जातिवाद के भाव का मुलोच्छेदन करने को तत्पर प्रतीत होते हैं द्य उन दिनों हिन्दू समाज के भीतर अस्पृश्यता की भावना काम कर रही थी, जिस कारण उच्चवर्ण वाले न केवल अन्त्यजों का स्पर्श मात्र नहीं करते थे अपितु इसके कारण इसे नगर के बाहर बसाया जाता था द्य धर्म और दैनन्दिन जीविका अर्जन के कर्म को देखकर उच्च श्रेणी के लोग डोम जाति को अछूत मानते थे द्य इसी कारण ब्राह्मण पंडित डोम जाति के लोगों को शरण नहीं देते थे द्य गाँव और नगर के बाहर ही डोम जाति की बस्ती हुआ करती थी द्य तांत बनाना, मछली पकड़ना, नाव चलाना, चूना बनाकर बेचना, इत्यादि उनके उपार्जन के आयाम थे द्य कण्हपा की डोमिन की भांति अछूत समझी जानेवाली शबरी के विषय में शबरपा ने वर्णन किया है कि वह किसी ऊँचे पर्वतीय स्थान व टीले में निवास करती है द्य12 इसी तरह ढेण्ढणपा की चर्या में कैवर्त कहता हैदृ मेरा घर टीले पर है, कोई पड़ोसी नहीं है द्य अतिथि द्वार पर खड़े हैं और हांड़ी में भात का दाना नहीं है–

"टालत मार घर नाहि पड़वेशी द्य
हाड़ीत भात नाहि निति आवेशी द्यद्य"13

दलित विमर्श का साहित्य अपनी अंतर्वस्तु, स्वरूप और संवेदना में अभिजन साहित्य से मूलतरू भिन्न है तो उस साहित्य का सौंदर्यशास्त्र भी अभिजन साहित्य के कलावादी सौंदर्यशास्त्र से भिन्न होगा द्य भूखे पेट वालों का सौन्दर्यबोध और भरे पेट वालों का सौन्दर्यबोध दोनों एक कैसे हो सकता है ? साहित्य के पारम्परिक सौंदर्यशास्त्र और सामाजिकता का आधार रस है, जो भरतमुनी के 'नाट्यशास्त्र' से चलकर पंडित जगन्नाथ के 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' तक स्थापित हो चुका है द्य किन्तु भारतीय समाज का रसवादी सौन्दर्यबोध सिद्धों– नाथों के समाज और साहित्य पर लागू नहीं होता द्य अतरू यहाँ जीवन की समस्याएं, मानवीय प्रेम, स्नेह, सौहार्द और श्रम ही समाज की रूचि और सौन्दर्यबोध है द्य सिद्धों– नाथों का साहित्य विद्रोह और नकार के संघर्ष से निर्मित है द्य आचार्य शुक्ल ने सिद्धों– नाथों की भाषा, साहित्य और उनके विचारों का मूल्यांकन करते समय उनपर 'संस्कृत बुद्धि, संस्कृत ह्रदय और संस्कृत वाणी' का अपना आलोचकीय निर्णय लाद दिया द्य शास्त्र और काव्यशास्त्र के प्रति अपने विशेष आग्रह के चलते उन्होंने सिद्ध– नाथ साहित्य के जनतांत्रिक मूल्यों और उसके सामाजिक सरोकारों को नज़रंदाज़ कर तात्त्विक समीक्षा को ही अधिक महत्त्व दिया जिसके चलते मनुष्य– केन्द्रित मानवतावादी साहित्य के सौन्दर्यबोध की घोर उपेक्षा हुई द्य सिद्धों और नाथों ने सामंती ढाँचे के भीतर प्रचलित कर्मकांड, अन्धविश्वास, मूर्तिपूजा और तिर्थाटनों पर प्रबल प्रहार किया द्य उन्होंने ऐसा करके सही मायने में अपमानित और पददलित जनता को सचेतन बनाने का प्रयास शुरू कर दिया था द्य निश्चय ही यह उनका सकारात्मक पक्ष है द्य उन्होंने वर्णाश्रम और जाति– पाति पर बेलौस और खुला आक्रमण किया द्य यह सीधे– सीधे पुरोहितवाद पर कड़ा प्रहार था द्य उन सभी को आचार्य शुक्ल 'नीची और अशिक्षित जनता' के खाते में खड़ा करते हुए कहते हैं– "अपने को रहस्यदर्शी प्रदर्शित करने के लिए शास्त्रज्ञ पंडितों और विद्वानों को वे फटकारना भी ज़रूरी समझते थें द्य"14

सिद्ध– नाथ संप्रदाय शूद्र बहुल संप्रदाय था द्य इन कवियों ने निश्चित रूप से छुआ–छूत का दंश सहा होगा द्य वे लगातार 'स्वसंवेद्य अनुभव' पर बल दे रहे थे जो दलित साहित्य 'भोगे हुए यथार्थ' और 'अनुभव की प्रमाणिकता' से मेल खाती है द्य वे वेदों की सत्ता को नकारते हैं और पुराणों को ख़ारिज करते हैं द्य क्योंकि वेद और पुराण में बने नियमों के आधार पर ही दलितों का शोषण हुआ है द्य सिद्ध और नाथ साहित्यकार अपनी रहस्यदर्शिता प्रदर्शित करने एवं जनता को चमत्कृत करने के लिए शास्त्रों की आलोचना करते थें, जैसा कि आचार्य शुक्ल कहते हैं, यह सही नहीं है, बल्कि समाज में समरसता को स्थापित करने के लिए ब्राह्मण, शैव, शाक्त, जैन आदि के साथ– साथ बौद्ध दर्शन में आई रुढ़ियों का भी उन्होंने खुलकर विरोध कियाद्य

ब्राह्मणवाद का विरोध, समतामूलक समाज की स्थापना, सामन्ती ताकतों का खात्मा, श्रम की महत्ता जैसे साहित्यिक स्वर इसे दलित विमर्श की बिन्दुओं से जोड़ता है द्य डॉ० चौथीराम यादव कहते हैं "मूल बात यह नहीं है कि इन कवियों (सिद्धों–नाथों) के साहित्य रस– कोटि में नहीं आते हैं बल्कि यही कि वे बुद्ध के सामाजिक चिंतन से प्रभावित ब्राह्मणवाद विरोधी जीवनदायी साहित्य है जो दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र की पृष्ठभूमि बनाते हैं द्य दलित साहित्य की तरह ये भी कलावाद और शास्त्रवाद विरोधी साहित्य है द्य"15 दलित चिंतक सूरज बड़ात्या सिद्धों– नाथों के विमर्श की परम्परा को आधुनिककालीन अम्बेडकरवाद से जोड़ते हुए कहते हैं– "वैदिक परम्परा और सत्ता को बुद्ध चुनौती देते हैं, लगभग वह प्रारम्भिक बौद्धकालीन और नाथों– सिद्धों से होता हुआ संतों के यहाँ समागम करता है और आगे चलकर वह बाबा साहेब डॉ० अम्बेडकर के यहाँ सैद्धांतिक रूप पाता

है।"16

संदर्भ– सूची

1. मार्क्स–एंगेल्स, 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा–पत्र', नेशनल बुक एजेंसी, कोलकाता, प्रथम मुद्रण, 1997, पृष्ठ–35
2. दामोदरन, के०, 'भारतीय चिंतन परम्परा', पीपल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, दूसरा संस्कार, 1979, पृष्ठ– 64
3. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 2005, पृष्ठ–9
4. संकृत्यायन, राहुल, 'दोहाकोश', बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, वि० 2014, पृष्ठ– 22
5. सिंह, डॉ० बच्चन, 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ–30
6. लिम्बाले, शरणकुमार, 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र', अनु०–रमणिका गुप्ता, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2014, पृष्ठ–173
7. बड़थ्वाल, पीताम्बर दत्त, 'गोरखबानी', हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1999 वि., पृष्ठ–43
8. विवेकदास, 'कबीर साहब', कबीरवाणी प्रकाशन केंद्र, वाराणसी, 1978, पृष्ठ– 191
9. विवेकदास, 'कबीर साहब', कबीरवाणी प्रकाशन केंद्र, वाराणसी, 1978, पृष्ठ– 191
10. रणसुभे, डॉ. सूर्यनारायण, 'विमर्श अवधारण, स्वरूप और प्रकार' सं०– बी०बी० कुमार, 'चिंतन– सृजन त्रैमासिक (पत्रिका)', आस्था भारती, दिल्ली, अक्टूबर– दिसंबर, 2016, पृष्ठ– 87
11. बागची, प्रबोधचंद्र, 'चर्यागीतिकोष', विश्वभारती प्रकाशन, शान्तिनिकेतन, 1956, पृष्ठ– 33
12. बागची, प्रबोधचंद्र, 'चर्यागीतिकोष', विश्वभारती प्रकाशन, शान्तिनिकेतन, 1956, पृष्ठ– 92
13. बागची, प्रबोधचंद्र, 'चर्यागीतिकोष', विश्वभारती प्रकाशन, शान्तिनिकेतन, 1956, पृष्ठ– 108
14. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 2005, पृष्ठ–9
15. यादव, डॉ० चौथीराम, 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' प्रेम प्रभाकर(सं०), 'अंगचंपा'(पत्रिका), भागलपुर, अप्रैल– जून, 2014 , पृष्ठ– 118
16. बड़ात्या, सूरज, 'सामाजिक विकास की प्रक्रिया और दलित चेतना' (आलेख), सं०– दीपक कुमार, देवेन्द्र चौबे, 'हाशिये का वृतान्त', आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा, प्रथम संस्करण, 2011, पृष्ठ– 243

मो.– 7003098240
ईमेल– arunrajak28@gmail-com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 144-147
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासी संघर्ष एवं पात्र मनःस्थिति 'ग्लोबल गाँव के देवता' के विशेष संदर्भ में

-JINCY JOSEPH
HST Hindi, St. Theresas BCHSS Chengaroor

शोध सार :-

1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण की नीतियों से तेज हुई आदिवासी शोषण की प्रक्रिया के प्रतिरोध स्वरूप आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक ऊर्जा आदिवासी साहित्य है। 21 वीं सदी में जब भूमण्डलीकरण, औद्योगीकरण अपने चरम पर है तथा विकास के नाम पर आदिवासी समुदाय को उसके मूलभूत आवश्यकताओं जल, जंगल, जमीन' से बेदखल किया जा रहा ऐसे में संकट केवल उनके अस्तित्व पर ही नहीं उनकी संस्कृति पर भी है। इसी बात को केन्द्र में रखकर आदिवासी समुदाय पर केन्द्रित उपन्यास है 'ग्लोबल गाँव के देवता' ।

आदिवासी वह है, जिनको पहचान के नाम पर वनवासी, जंगली का दर्जा दिया जाता है। आज विकास के नाम पर उनका विस्थापन किया जा रहा है। शोषण दमन की परिस्थितियाँ पैदा की जा रही हैं। इससे आदिवासी जीवन की न केवल स्वायत्तता, राष्ट्रीयता और सामूहिकता संकटग्रस्त हुई है बल्कि उसके अस्तित्व पर भी प्रश्नचिन्ह लगता जा रहा है । अंग्रेजों के जमाने से ही उनके अस्मिता का आन्दोलन शुरु हो गया था। बाबा साहब अम्बेडकर ने भी आदिवासी समस्याओं की ओर सबका ध्यान खींचा था और संविधान बनाते समय इनके संरक्षण या आरक्षण का प्रावधान किया था । आदिवासियों का शोषण केवल बाहरी शक्तियों ने ही नहीं, बल्कि भारत के आन्तरिक उपनिवेशवादियों ने भी जमकर किया। आदिवासियों की समसामयिक स्थिति को दृष्टिकेन्द्र में रखकर मधु काँकरिया लिखती है कि – ष आदिवासियों को जंगल, नदी और पहाड़ों से घिरे उनके प्राकृतिक और पारंपरिक परिवेश से बेदखल किया जा रहा है। अभी तक वह अपने विश्वासों, रीति रिवाजों, लोकनृत्यों और लोकगीतों के साथ कुओं, मवेशिओं, नदियों, तालाबों और जडी–बूटियों से संपन्न एक जन समाज में रहता आया है। इसकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति रही है। उसका अपना विकसित अर्थतंत्र था। वह अपने पुश्तैनी पारिवारिक, पारंपरिक और कृषि पर आधारित कुटीर धंधों से परंपरागत था। पर आज खुले बाजार की अर्थव्यवस्था ने सदियों से चले आये उनके पुश्तैनी और पारंपरिक धंधों को छोटा कर डाला है। ष

आदिवासी साहित्य से तात्पर्य उस साहित्य से है जिसमें आदिवासियों के जीवन संघर्ष और सामाजिक स्थिति की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई हो, फिर चाहे वह आदिवासी द्वारा लिखा गया हो या गैर आदिवासी द्वारा। आदिवासी साहित्य को विभिन्न नामों से विश्व में जाना जाता है। यूरोप और अमेरिका में इसे 'नेटिव

अमेरिकन लिटरेचर', 'क्लर्ड लिटरेचर', 'स्लेव लिटरेचर' और 'अफ्रीकन–अमेरिकन लिटरेचर' कहा गया। अफ्रीकी देशों में 'ब्लैक लिटरेचर' और ऑस्ट्रेलिया में 'एबोरिजिनल लिटरेचर' कहते हैं। हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में सामान्यतः 'आदिवासी साहित्य' ही कहा गया है। आदिवासी साहित्य बहुमुखी व्यापक और यथार्थपरक है। यह प्रतिबद्ध लेखन है जिसका लक्ष्य है, समाज या मानव का कल्याण । आदिवासी लेखन विविधताओं से भरा हुआ है। मौखिक साहित्य की समृद्ध परंपरा का लाभ आदिवासी रचनाकारों को मिला है। आदिवासी साहित्य की उस तरह कोई केंद्रीय विधा नहीं है, जिस तरह स्त्री साहित्य और दलित साहित्य की आत्मकथात्मक लेखन है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक–सभी प्रमुख विधाओं में आदिवासी और गैर–आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी जीवन समाज की प्रस्तुति की है। आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संघर्ष में उपन्यास को अपना मुख्य हथियार बनाया है।

दो दशक पूर्व भारत की केंद्रीय सरकार द्वारा शुरू की गई आर्थिक उदारीकरण की नीति ने बाजारवाद का रास्ता खोला। मुक्त व्यापार और मुक्त बाजार के नाम पर मुनाफे और लूट का खेल आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन से भी आगे जाकर उनके जीवन को दांव पर लगाकर खेला जा रहा है। आंकड़े गवाह हैं कि पिछले एक दशक में अकेले झारखंड राज्य से 10 लाख से अधिक आदिवासी विस्थापित हो चुके हैं। इनमें से अधिकांश लोग दिल्ली जैसे महानगरों में घरेलू नौकर या दिहाड़ी पर काम करते हैं। विडंबना यह है कि सरकार के अनुसार राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में मूलतरू कोई आदिवासी नहीं है, इसलिए यहां की शिक्षण संस्थाओं और नौकरियों में आदिवासियों के लिए आरक्षण या कोई विशेष प्रावधान नहीं है। विकास के नाम पर अपने पैतृक क्षेत्रों से बेदखल किया या विस्थापित होना पड़ रहा है। श स्वर और नई शताब्दी श में रमणिका गुप्ता ने बताया है – ष आज तक आदिवासी अपने शोषण का मूक दर्शक बना रहा है। महाजन, ठेकेदार, दलाल, राजा, नवाब या मैदानी लोग सब उसके जंगलों को और उसकी औरतों को लूटते रहे हैं। उसका रोजगार छीनते रहे हैं। विस्थापन उसकी जिन्दगी का दर्द बना दिया गया है। आजादी के बाद देश के विकास का हर कार्यक्रम सहज आदिवासी संस्कृति की कीमत पर हुआ है। विकास की कीमत वह अपने विस्थापन से अदा करता रहा हैद्यष

आजादी से पहले आदिवासियों की मूल समस्याएं वनोपज पर प्रतिबंध, तरह–तरह के लगान, महाजनी शोषण, पुलिस–प्रशासन की ज्यादतियां आदि थी जबकि आजादी के बाद भारतीय सरकार द्वारा अपनाए गए विकास के गलत मॉडल ने आदिवासियों से उनके जल, जंगल और जमीन को छीनकर उन्हें अपनी ज़मीन बेदखल कर दिया। विस्थापन उनके जीवन की मुख्य समस्या बन गई। इस प्रक्रिया में एक ओर उनकी सांस्कृतिक पहचान उनसे छूट रही है, दूसरी ओर उनके अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न खड़ा हो गया है। आदिवासी अस्मिता के संकट के कारण भारतीय समाज का परिदृश्य बदला है। इस बदलते हुए परिदृश्य को हिन्दी साहित्यकारों ने बखूबी समझा और अपने लेखन में प्रमुखता से जगह भी दी है। उपन्यासकारों ने भी आदिवासी जीवन को व्यथा व्यक्त कर अपने उपन्यासों के माध्यम से आदिवासी अस्मिता को पहचानने की कोशिश की हैं । आदिवासी जीवन को प्रस्तुत करने वाले महत्त्वपूर्ण उपन्यासकारों में मनमोहन पाठक, संजीव, पुन्नी सिंह, राकेश कुमार सिंह एवं रणेन्द्र प्रमुख हैं जिन्होंने आदिवासी जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संदर्भों को प्रमुखता से उठाया है।

प्रसिद्ध उपन्यासकार रणेन्द्र का 'ग्लोबल गाँव का देवता' एक महत्त्वपूर्ण एवं चर्चित उपन्यास है। वर्ष

2009 में प्रकाशित यह उपन्यास वस्तुतः आदिवासियों–वनवासियों के जीवन के सन्तप्त का सारांश है। रणेन्द्र ने प्रस्तुत उपन्यास में झारखण्ड के असुरों की संघर्ष गाथा का बहुत ही स्पष्ट और निर्मम चित्र खींचा है जो अपनी नियति (मृत्यु) के खिलाफ लड़ रहे हैं। जहाँ एक ओर इनके विरुद्ध ग्लोबल गांव के देवता हैं जैसे सिण्डालको और वेदांग तो दूसरी ओर एम–पी– और विधायक हैं। इसके अतिरिक्त तीसरी ओर शिवदास बाबा जैसे धार्मिक ठेकेदार भी हैं। इस त्रिदलीय सन्धि के सामने संघर्ष कर रहे असुरों को अपनी नियति का एहसास है लेकिन वे अपनी इस नियति को चुपचाप प्राप्त नहीं होना चाहते। ग्लोबल गाँव के देवता आकाश मार्ग से या दो सैटलाइट की सहायता से आदिवासी जमीन, संपत्ति, और अन्य संसाधनों की खोज करते है और सोचते है कि इन पर हमारा हक है, इसलिए वे वहाँ पर रह रहे आदिवासियों को विस्थापित करना चाहते है । ग्लोबल गांव के देवता' की कथा–भूमि लोकतांत्रिक भारत की है। अतः इसमें हमारे द्वारा चुने गए नेता भी महत्वपूर्ण किरदार हैं। ऐसा नहीं है कि भौरा पाठ के असुरों की लोकतांत्रिक सरकार में आस्था नहीं है। प्रधानमंत्री को लिखा गया उन का पत्र इस बात का ठोस सबूत है कि उन्हें इस बात का दोषी नहीं ठहराया जा सकता कि वे लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं के विरुद्ध लड़ रहे हैं। उन्हें दिखावे का लोकतंत्र नहीं चाहिए। एक ओर जिस ज़मीन पर वे रहते हैं उस ज़मीन से निकाले गए खनिजों से निकली कमाई से सुन्दर शहर बसाये जा रहे हैं और दूसरी ओर उन्हें इसके बदले दोयम दर्जे के मजदूर की जिन्दगी देकर सन्तुष्ट किया जा रहा है। इसी उपन्यास में रणेन्द्र ने असुरों का जो संघर्ष मुख्य धारा के साथ रहता है, वह संघर्ष केवल आज का नहीं है बल्कि सदियों से लगातार पीछे रहने के लिए विवश किए जाते रहे असुरों की कहानी का मर्म खोलता है। वे असुर लालचन के चाचा के पूजे (हत्या किए) जाने से इसे विगत हजारों वर्षों से चले आ रहे संघर्ष और मिटाए जाने के षड्यन्त्र के रूप में देखते हैं और लिखते हैं यह केवल एक लालचन्दा के चाचा की हत्या का सवाल नहीं था। न वह पहली बार जमीन के टुकड़े के लिए हुई थी। यह तो हजारों साल से चल रहे घोषित–अघोषित युद्ध की नवीनतम कड़ी मात्र था। कटे सिर ने हमारी काल व देश की समझ को गडबड़ा दिया था।''2

'ग्लोबल गाँव के देवता' असुरों का वैश्विक परिप्रेक्ष्य पेश कर उसका इतिहास प्रस्तुत करता है साथ ही साथ इस भूमण्डलीकरण के दौर में उनकी सांस्कृतिक पहचान के ऊपर हो रहे हमलों को भी उद्घाटित करता है। उपन्यास की एक पात्र ललिता के शब्दों में असुर संस्कृति को समझा जा सकता है हमारे महादनिया महादेव वह नहीं हैं लंगटा बाबा के है। हमारे महादेव यह पहाड़ है, जो हमें पालता है। हमारी सरना माई न केवल सखुआ गाछ में बल्कि सारी वनस्पतियों में समाई है। हम सारे जीवों से अपने गोत्र को जोड़ते है। छोटे जीवों, कीट–पतंगों को भी अपने से अलग नहीं समझते। हमारे यहाँ 'अन्य' की अवधारणा नहीं है जिस समाज के पास इतनी बड़ी सोच हो उसे किसी लंगटा बाबा या किसी और की शरण में जाने की जरूरत ही क्या है?"3 रणेन्द्र ने अपने उपन्यास में 'ग्लोबल गांव के देवता' में आदिवासी समाज के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विविध पहलुओं पर हो रहे शोषण दमन को ग्लोबल सोच के साथ दिखाया है । विकास के नाम पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ सरकार के साथ मिलकर ऐतिहासिक रूप में शोषित आदिवासियों का पुनः शोषण कर रही हैं। उनकी प्राकृतिक संपदा पर कब्जा कर अपने उत्पादन को बढ़ावा दे रही हैं। यदि यह वर्ग शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाये तो माओवादी या नक्सलवादी घोषित कर मार डालते है। ये कम्पनियाँ बाज़ार और आर्थिक आधिपत्य के सहारे अपनी अदृश्य सत्ता स्थापित करती हैं। जो उनके रास्ते में आ जाते है या प्रतिरोध करते हैं उन्हें कुचलकर ये आगे जाते

हैं। उपन्यास के अंत में रणेन्द्र बहुत ही भावुकता के साथ कहता है दृ "ग्लोबल गाँव के देवता खुश थे। जो लड़ाई वैदिक युग में शुरू हुई थी, हज़ार–हज़ार इन्द्र जिसे अंजाम नहीं दे सके थे, ग्लोबल गाँव के देवताओं ने वह मुकाम पा लिया था। असुर–बिरिजिया, बिरहोर–कोरबा, आदिम जाति आदिवासी सब मुख्यधारा में शामिल होने ही वाले थे। मुख्य धारा की लहरें चाँद छूने को बेताब थीं। वह लहराती–इठलाती राज्यों की राजधानियों से होती वाया दिल्ली, वाशिंगटन डी.सी की ओर दौड़ी जा रही थी ।ˆ5 बिना पुनर्वास किए प्रतिरोध करनेवाले प्रतिनिधियों की लैंड मांइस बिछाकर धज्जियाँ उड़वा देने का क्रूर काम में ग्लोबल गाँव का देवता 'वेदांग' सफल हो जाती है। वैश्वीकरण ने वस्तुतः भूमि का हकदार आदिवासियों का कैसे काम तमाम कर डालता है यह अत्यधिक चिन्ताजनक विषय है। यहाँ पर लेखक ने आधुनिक जनतंत्रीय सत्ता एवं उसकी मानव विरोधी नीतियों का नकाब खोलकर दिखाया है जिससे पाठकीय संवेदना अत्यंत तीव्रतर हो उठती है। तमाम यातनाओं के बावजूद भी आदिवासी समाज अपने संघर्ष को नहीं छोड़ता बल्कि वह निरन्तर संघर्ष के साथ विश्व पटल पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है। आदिवासी विमर्श आज साहित्य का केन्द्र ही नहीं , बल्कि उसकी आवश्यकता है।

1. रमणिका गुप्ता , आदिवासी स्वर और नई शताब्दी , पृ – 10–11
2. सं . डॉ . उषा कीर्ति राणावत , आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य , पृ . 17
3. रणेन्द्र , ग्लोबल गाँव के देवता , पृ.32
4. रणेन्द्र , ग्लोबल गाँव के देवता , पृ 72
5. रणेन्द्र श ग्लोबल गाँव के देवता पृ . 100

M. 9633714949

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 148-151
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श

–डॉ. श्रीकांत बी. संगम
सह प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, सी.एस.बी. कला, एस.एम.आर.पी. विज्ञान और
जी.एल.आर. वाणिज्य स्नातक महाविद्यालय, रामदुर्ग–591123

दलित शब्द का इतिहास लगभग सौ वर्षों पुराना है। अनेक विद्वानों ने दलित शब्द को अनेक अर्थों में प्रयोग किया है। कुछ विद्वानों का कहना है कि दलित एक जाति के लिए नहीं बल्कि दबे–कुचले लोगोंके लिए प्रयोग होता है। दलित का अर्थ शोषित, उत्पीडित तथा पद दलित स्वीकार किया गया है। दलित शब्द एक आधुनिक शब्द है। इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग महात्मा ज्योतिबा पुले ने किया था। उसके बाद बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने किया था। बहुजन शब्द पालि भाषा शब्द है। इस शब्द को बताने वाले गौतम बुद्ध थे। उनका नारा 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' था। महात्मा गाँधी ने सन्‌ 1932 में अछूत समाज के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया था।

दलित शब्द की उत्पत्ति संस्कृत धातु 'दल' से हुई है, जिसका अर्थ है तोड़ना, हिस्से करना, कुचलना आदि से है। मानक हिन्दी शब्द कोश में 'दलित' का अर्थ दलिद्दर दरिद्र, गया बीता और बहुत ही निम्न कोटि का कहा गया है। संस्कृत हिन्दी शब्द कोश में दलित का अर्थ 'दलन' किया हुआ, गिरा हुआ और अविकिसित कहा गया है। मानक हिन्दी कोश में दलित का अर्थ 'जिसका दलन हुआ हो, मसला या रौंदा गया हो जो दबाया गया हो, कुचला गया हो अर्थात्‌ जिसे पनपने और बढ़ने नहीं दिया गया हो और ध्वस्त या नष्ट किया गया हो अर्थात्‌ दलित वर्ग समाज का वह निम्नतम वर्ग है जो ऊँचे वर्ग के लोगों के उत्पीड़न के कारण आर्थिक दृष्टि से बहुत ही हीन दशा में हो जैसे दास प्रथा, सामंतशाही व्यवस्था में कृषक और पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूरी।

डॉ. भीमराव अंबेडकर दलितों के मसीहा और मार्गदर्शक माने जाते हैं। इनके मार्ग का अनुसरण करके जो साहित्य लिखा जा रहा है वही दलित साहित्य है। दलित साहित्य की वेदना 'मैं' की वेदना नहीं बल्कि पूरे समाज की वेदना है। महात्मा ज्योतिबा पुले ने कहा है– 'गुलामी की यातना को जो जानता है, वही जानता है और जो जानता है वही पूरा सच कह पाता है। सचमुच राख ही जानती है जलने का अनुभव और कोई नहीं।'

दलित विमर्श का सामान्य अर्थ पीडित, शोषित व दबाया गया, लोगों में अपने अधिकारों के प्रति सजगता एवं जागृति से है। दलितों के बारे में किया गया विचार ही दलित विमर्श कहलाता है। सदियों से सामंती परंपरा व सामाजिक विसंगतियों की दीवार को ढ़हाकर स्वाभिमान के महल का निर्माण करना दलित विमर्श का ही परिणाम है। हिन्दू श्रेणी में सबसे निचली श्रेणी में धकेले गए लोग जब शिक्षित संगठित व संघर्षशील बनकर अपने अस्तित्व की पहचान तथा सम्मानजनक जीवन जीना चाहते हैं, तो वह उन लोगों की चौतन्य–प्रक्रिया है। क्योंकि विमर्श का संबंध मन से है। मन से संबंधित होने के कारण मननशील प्रक्रिया है। व्यक्घ्ति जब आंतरिक व बाह्य रूप

से चेतनशील बन जाता है तो वह अस्तित्व की पहचान को सार्थक बनाने में समर्थ हो जाता है। दलित विमर्श या संदर्भ में दलित व्यक्ति जब शोषणों व अत्याचारों से ऊबकर व अन्य सामाजिक कुवृत्तियों से बाहर निकलकर एक सभ्य समाज की कल्पना करता हुआ मान–सम्मान व स्वाभिमान से जीना चाहता है तो यह उसके मन का विमर्श कहलाता है।

हिन्दी साहित्य में दलित–विमर्श मध्यकाल में भक्ति आन्दोलन के साथ आरंभ हुआ था। जब जातिगत संकीर्णता अपने चरम पर पहुँच गयी तो निम्नवर्ग का आक्रोश उभरा। मानव मात्र में एक ही परमतत्व के दर्शन करनेवाली भारतीय संस्कृति में जातिगत कट्ध्टरता का मूलोच्छेद करने के लिए जो संत आगे बढ़े वे उन निम्न जातियों से आये थे, जिन्होंने अत्याचार को सहन किया था, इसलिए वे जातिवादी व्यवस्था पर तीव्र कटाक्षेप करते हैं। नामदेव, कबीर और रविदास जैसे संतों ने दलितों की पीड़ा को अत्यंत मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है। इन संतों का स्वप्न था समतामूलक समाज की स्थापना। इसके साथ ही मध्यकाल के अन्य संत जो दलित वर्ग से नहीं आये थे, वे भी दलितों के शोषण मुक्ति के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त की है।

दलित साहित्य का इतिहास बहुत पुराना है। दलित साहित्य जिस क्रांति का हिमायती है वह बहुत पहले ही आरंभ हो चुकी थी। स्वतंत्र भारत में उसे प्रोत्साहन मिला और वह गतिशील हो गई। वर्तमान दलित साहित्य उसी क्रांति की संतान है, जो बहुत पहले संत साहित्य के रूप में आरंभ हो चुकी थी। दलित साहित्य आज जो निषेध और नकार की भाषा बोलता है, उसके बीज कई बर्षों पहले संत साहित्य में अंकुरित हो गये थे। 'साहित्य मूलतः एक मानसिक क्रिया, एक सर्जनात्मक और आत्मचौतन्य उडाम माना जा सकता है। यद्यपि वह इस अर्थ में सामाजिक रूफ से आकार ग्रहण करता है कि लेखक प्रचलित बौद्धिक इतिहास का अंग होता है, अपने साथ के लोगों की भाषा, प्रवृत्तियों और तर्जों का भागीदार होता है और उन मूल्यों को व्यंजित करता है, जो समाज राष्ट्र या युग के किसी अन्वेषणीय संदर्भ में प्राप्त होते हैं।'

दलित साहित्यकार अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ रचनाकार्य से जुडकर साहित्य की सृजनात्मकता में मानवीय सरोकारों, संवेदनाओं और स्वतंत्रता, भाईचारे की भावनाओं को स्थापित करता है। उसकी दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति और उसकी पीड़ा, उसके सुख–दुख महत्वपूर्ण है। उसमें दलित हो या स्त्री, उसके प्रति रागात्मक तादात्म्य स्थापित करना दलित साहित्य का प्रमुख प्रयोजन है। दलित चिंतन ने नया आयाम देकर साहित्य की भावना का विस्तार किया है। पारंपरिक और स्थापित साहित्य को आत्मविश्लेषण और पुनर्विश्लेषण के लिए बाध्य किया है। झूठी और अतार्किक मान्यताओं का निर्ममता से विरोध किया है। अपने पूर्व साहित्यकारों के प्रति आस्थावान रहकर नहीं, बल्कि आलोचनात्मक दृष्टि रखकर दलति साहित्यकारों ने पुनर्मूल्यांकन की जद्ध्दोजहद शुरु की है, जिससे जड़ता टूटी है। साहित्य आधुनिकता और समकालीनता की अग्रसर हुआ है।

दलित साहित्य ने बाबा साहब डॉ. अंबेडकर के मूलमंत्र शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो, की सही व्याख्या प्रदान कर दलितों में एक नई वैचारिक क्रांति पैदा की है, जिससे देश की सत्ता व संपदा में राजनीतिक क्षेत्रों में भारी उथल–पुथल मचा दी है। समाज परिवर्तन का जो काम हिन्दी साहित्य कई शताब्दयों में कभी नहीं कर पाया, दलित साहित्य ने वह 2–3 दशकों में राजनीतिक क्षेत्र में भारी मात्रा में कर दिखाया। देश की इक्कीसवीं सदी कैसी होगी, दलित साहित्य उसकी रूपरेखा का अंकन करके आगे बढ़ रहा है।

दलित लेखन केवल दलितों के अधिकार एवं मूल्यों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक संदर्भों के साथ

जुडकर समूचे समाज की अस्मिता और मूल्यों की पहचान बनता है। रमणिका गुप्ता कहना है कि "दलित साहित्य उस दबी हुई अस्मिता को प्राणवान मानव–अस्मिता का हिस्सा बनाने की लड़ाई लड़ रहा होता है, जब वह वर्णविहीन, वर्गविहीन, जातिविहीन समाज बनाकर एक मानवीय समाज बनाने की घोषणा करता है। जनवादी, प्रगतिशील और जनतांत्रिक साहित्य जो भारत के जन्मना जाति के संदर्भ में केवल वर्ग की ही बात करते एक तरफा, कहेंकि इकहरा हो गया था, दलित साहित्य ने सामाजिक समानता और राजनीतिक भागीदारी को भी साहित्य का विषय बनाकर उनकी आर्थिक समानता की अधूरी मुहिम को पूर्णता दी। इन तीनों मुद्दों पर समानता प्राप्त किए बगैर मनुष्य पूर्ण समानत प्राप्त नहीं कर सकता। दलित साहित्य इस पूर्ण समानता के लिए संघर्षरत है।

भारत के आधुनिक समाज की यह विडंबना ही कही जाएगी कि लोकतांत्रिक विचारों और मूल्यों तथा समानता और भाईचारे के प्रचार–प्रसार के बावजूद जातिगत भेदभाव और छुआछूत जैसी बीमारियों हमारे भारतीय समाज का अपरिहार्य अंग बनी हुई है। दलित साहित्यकारों ने इसी छुआछूत को मिटाने के लिए और समाज में अपनी स्थिति की उपस्थिति दर्ज करने के लिए साहित्य का सृजन करना प्रारंभ किया। डॉ. अंबेडकर का यही सपना था कि अपनी आर्थिक तंगी के बावजूद शिक्षा पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। आज के दलित साहित्यकारों के प्रेरणास्रोत हैं। हिन्दी दलित साहित्य की समृद्धि के शिखर तक पहुँचाने में ओमप्रकाश वाल्मीकी का सर्वाधिक योगदान रहा है। इसी कारण वाल्मीकी जी हिन्दी दलित साहित्य में सर्वोच्च स्थान के अधिकारी बने हैं। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि दलित साहित्य के लिए आधुनिक काल एक स्वर्ण युग है, जिससे दलितों की प्रधानता है। दलित समाम में परिवर्तन की कामना ही दलित साहित्य की अंतिम लक्ष्य है।

निःसन्देह देश में जातिवाद की समस्या भयावह है। आज दलित साहित्य में जड़–रूढ़ जातिवादी सामाजिक संरचना को बदलने की शक्तिनिहित है। सदियों से शोषण का शिकार दलित वर्ग संघर्षरत है कि वह भी स्वतंत्रता, समानता व सम्मान को प्राप्त कर सके। जब कि प्रकृति ने किसी के साथ भेदभाव नहीं किया तो, समाज में भेदभाव क्यों? आज दलित साहित्य सहजता की ओर बढ़ रहा है। समाज में शोषित वर्ग की समस्याओं को सामने लाने वाले दलित साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है।

अबला को सबला बनानेवाला, शोषित को मुक्ति देने वाला, अपमानित को सम्मान दिलानेवाला, मूक को वाणी देने वाला, निम्न को ऊँचे स्तर पर बिठाने वाला, अनंत मानव का साहित्य, दलित साहित्य है। भेदभाव रहित समाज का निर्माण करनेवाला यह साहित्य आधुनिक युग की देन है। अंबेडकर जी के विचार से प्रभावित यह साहित्य आज नई व्यवस्था का प्रेरणा स्रोत है। परंपरागत नैतिक, धार्मिक, पाखंडी मान्यता को हटाने वाले नए साहित्य का यह रूप है। दलित साहित्य माणवता का पक्षधर होने के साथ समता का प्रचारक है। जाति को ध्वस्त करके मानव समाज का निर्माण करनेवाला प्रगतिवादी, समाजवादी विचारों का प्रतिपादक है। काल्पनिकत की अपेक्षा यथार्थ की भूमि पर खरा उतरने वाला मानवी मन का सच्चा प्रेमी, आत्मा की आवाज 'दलित साहित्य' है। यह विशिष्ट जाति, पंथ, धर्म का न होकर समस्त शोषित, पीड़ित, उपेक्षित, शापित मानव का साहित्य–वृद्ध साहित्य है।

संदर्भ सूची रू

1) हिन्दी कथा साहित्य में दलित विमर्श– डॉ. प्रीति

2) दलित साहित्य रू स्वरूप एवं महत्व– डॉ. सोनिया दहिया
3) दलित विमर्श रू एक चेतना–निर्मला
4) दलित विमर्श रू अवधारणा और इतिहास– डॉ. ममता देवी
5) दलित साहित्य रू आशय, आंदोलन और अवधारणा– डॉ. रामचन्द्र
6) आधुनिक हिन्दी दलित विमर्श व नवजागरण– मुक्ता
7) दलित विमर्श रू स्वानुभूति बनाम सहानुभूति का सवाल– डॉ. निरंजन कुमार

मो 9483216469

Email: sbshindi@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 152-155
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श

–डॉ. ज्योति पटेल
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), शा.स्नातकोत्तर महाविद्यालय, टीकमगढ़, (म.प्र.)–472001

प्रस्तावना :–

हिन्दी कथा साहित्य्य में स्ध्त्री विमर्श जिसमें नारी जीवन की अनेक समस्ध्याऐं देखने को मिलती है। हिन्ध्दी साहित्य्य में छायावाद काल से स्ध्त्री विमर्श का जन्ध्म माना जाता है। महादेवी वर्मा की श्रृंखला की कंड़िया नारी सशक्तिकरण सुन्ध्दर उदाहरण है।

प्रेमचंद्र से लेकर आज तक अनेक पुरूष लेखकों ने स्ध्त्री समस्ध्या को अपना विषय बनाया लेकिन उस रूप में नहीं लिखा जिस रूप में स्ध्वयं महिला लेखिकाओं ने लिखी है। अतरू स्ध्त्री विमर्श की शुरूआती गूंज पश्चिम में देखने को मिली है सन् 1960 के आसपास नारी सशक्तिकरण ने जोर पकड़ा जिसमें चार नाम चर्चित हैं। ऊषा प्रियंवदा, कृष्ध्णा सोबती, मन्ध्नू भण्ध्डारी एवं शिवानी आदि लेखिकाओं ने नारी मन की अंतरवेदना एवं आप बीती घटनाओं को उकेरना शुरू किया और आज वर्तमान युग में स्ध्त्री विमर्श ज्ध्वलंत मुद्दा है।

हिन्ध्दी साहित्य में पिछलें कुछ वर्षो से नारी विमर्श की चर्चा होती है और यह उपन्यासो और कहानियो के संदर्भ में अधिक देखी और दिखाई जा रही हैं। विमर्श कोई भी बुरा नही होता, क्योंकि साहित्य का एकमात्र उद्देश्य मनोरंजन मात्र नहीं है बल्कि अनेक प्रासंगिक विषयों पर चर्चा चिंतन–मनन और विमर्श भी है। हिन्ध्दी साहित्ध्य लिखना और पढ़ना मात्र दिमागी ऐयाशी नहीं है। अथवा खाली बैठे ठलुओं की समय काटने की जुगाड़ नहीं है, तो जीवन में उठने वाले अनेक प्रश्ध्नों से उलझना ही पड़ेगा। यदि कोई इनसे पीछा छुड़ा भी ले पर साहित्ध्यकार पर साहित्ध्यकार इनसे मुक्ध्त नहीं हैं।
आठवें दशक तक आते–आते यहीं विषय एक आंदोलन का रूप ले लिया जो शुरूआती स्ध्त्री विमर्श से ज्ध्यादा शक्तिशाली सिद्ध हुआ। आज मैत्रेत्री पुष्ध्पा तक आते–आते महिला लेखिकाओं की बाढ़ सी आ गयी, जो पितृसत्ध्ता समाज को झकझोर दिया। नारी मुक्ति की गूँज अब देह मुक्त्घि के रूप में परिलक्षित होने लगा। साहित्ध्य में महिला लेखन के रूप में उपलब्ध्ध विभिन्ध्न कहानियों, कविताओं, तथा आत्ध्मकथाओं में स्ध्त्री की दैहिक पीड़ा से परे जाकर उसकी वर्गीय, जातीय एवं लैंगिक पीड़ा का वास्ध्तविक स्ध्वरूप प्रतिबिंबित क्ध्यों नहीं हो पा रहा है? स्ध्त्री साहित्ध्य के सवालों के मूल्ध्यांकन के संदर्भ में भी हिन्ध्दी आलोचना में गैर–अकादमिक एवं उपेक्षापूर्ण रवैया क्ध्यों मौजूद है। साठ के दशक में पुरूष वर्चस्ध्ववाद की साध्माजिक सत्ध्ता और और संस्ध्कृ ति के विरूद्ध उठ खड़े हुए और स्त्रियों के प्रबल आन्ध्दोलन को नारी वादी आन्ध्दोलन को नाम दिया ।
एक प्रश्ध्न यह भी है कि क्ध्या नारियों द्वारा लिखित साहित्ध्य में ही नारी विमर्श हुआ है और पुरूष लेखकों द्वारा

लिखित साहित्य्य नारी विमर्श से शून्य्य है। असल में बींसवीं शती में जब से अनेक लेखिकाऐं उभरी हैं और उन्ह्हें पर्याप्प्त प्रसिद्धि मिली है, तब से साहित्य्य में नारी विमर्श की अधिक चर्चा होने लगी है। आज कल अनेक लेखिकाऐं कहानी और उपन्य्यास लिख रही हैं। और उनकी रचनाओं में नारी विषयक समस्य्याओं का खुला चित्रण हो रहा है। नारी विमर्श क्य्या है यदि नारी के रूप का चित्रण का चित्रण मात्र अथवा नारी के मनोंविकारों, हावभावों आदि का चित्रण मात्र अथवा नारी की अंतृप्प्त कामनाओं का चित्रण मात्र नारी विमर्श है तो यह तो साहित्य्य के आदिकाल से होता है और रीतिकालीन साहित्य्य इस के लिए बदनाम है। अभी तक हिन्द्दी साहित्य्य में नारी विमर्श केवल नारियों के गलत साहित्य्य की चर्चा तक सीमित हैं और उस में पुरूष लेखकों द्वारा नारी समस्य्याओं पर लिखित साहित्य की चर्चा नही की जाती है। अमृतलाल नागर का उपन्य्यास 'अब मैं नाच्यों बहुत गोपाल' जिस की नायिका ब्राह्मण होकर भी अछूत बन गई या बना दी गई है, नारी विमर्श से बाहर समझा जाता है। इसी प्रकार विष्णु प्रभाकर का उपन्य्यास 'अर्द्धनारीश्ववर' ,जो नारी के बलात्क्कार की समस्य्या पर केन्द्रित है, नारी विमर्श का मील का पत्थ्थर नही माना जाता । इन के स्थ्थान पर मृदुला गर्ग, ऊषा प्रियम्ब्बदा, मंजुलभगत, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, ऊषा प्रियम्ब्बदा, मंजुल भगत, ममता कालिया आदि के अनेक उपन्यास और कहानियाँ नारी विमर्श केन्द्र्र बने हुए है।

राजेन्द्र्र यादव की पत्रिका 'हंस' के माध्य्यम से अनेक लेखिकाओं को प्रकाश ही नहीं मिला बल्कि प्रसिद्धि भी मिली। यादव ने लेखिकाओं को बड़ी संख्य्या में छापा, जो प्रशंसनीय है, और इतना ही नहीं हंस को नारी विमर्श की प्रत्रिका बना दिया। यह काम अन्य्य पत्रिकाओं के माध्य्यम से भी हुआ, जैसे कहानियॉं, नई कहनियॉं, माया, सारिका आदि पत्रकाओं से।

भारतीय राष्ट्रीय आन्द्दोलन के दौर में अपनी जातीय अस्मिता की पहचान और जनता के अधिकारों के माँग के साथ–साथ स्त्री मुक्ति का स्व्वप्प्न भी देखा जा रहा था। नवस्व्वतंत्र भारतीय राष्ट्र ने महिला आन्दोलनों को यह विश्व्वास भी दिलाया था कि बड़े उद्देश्य्यों की प्राप्ति के पश्च्चात् स्त्रीदृमूलक प्रश्न्न ज्य्यों के त्य्यों बनें हुए है। और तर आर्थिक, सामाजिक मौन उत्प्पीड़न अपेक्षातया अधिक गहरे, व्य्यापक निरंकुश और संगणित रूप से कायम है। स्त्री आन्द्दोलनों को इन समस्त्त चुनौतियो से लड़कर ही अपनी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त्त करना होगा। निश्चित रूप से इसका स्वरूप अन्य्य मुक्तिकामी आन्द्दोलनों से किसी रूप में भिन्न्न नहीं हैं। जो वर्गीय, जातीय नस्लीय आधार पर समाज में हो रही हिंसा एवं असमानता के प्रति संघर्षरत है तथा एक समतामूलक समाज निर्माण हेतू प्रतिबद्ध है, जो सत्त्तामूलक ज्ञान की रूढ़ सीमाओं को तोड़कर ज्ञान को उसके वृहद् रूप में प्रस्त्तुत करता है। यह समाज के प्रत्य्येक तबके के अनुभवों को केन्द्र्र में रखकर ज्ञान के प्रति नया दृष्टिकोण विकसित करने के लिए प्रतिबद्ध है। जो सत्त्तामूलक ज्ञान की रूढ़ सीमाओं को तोड़कर ज्ञान को उसके वृहद् रूप में प्रस्तुत करता है। विशेष तौर पर स्त्री विषयक मुद्दों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पक्षों पर अपनीराय रखते हुए जेंडर समानता आधारित समाज के निर्माण की ओरी अग्रसर है। अंतरविषय अध्ययन होने के कारण यह विषयों के साथ ज्ञानात्म्मक संबंध भी कायम करता है। स्त्री प्रश्न्नों के प्रति अकादमिक जगत में स्प्पेस बनाने के लिए भी स्त्रीवाद पढ़ने के बाद लोग स्त्रीवादी बने ही परन्त्तु यह संभव हो सकेगा। कि ज्ञान के लिए क्षितिज के रूप में वह उसके बारें में समझ रखते हो।

आमतौर पर स्त्री विमर्श के आकदमिक होने के उपरांत यह आरोप लगते रहे है।, कि इसके कारण

आन्ध्दोलनों का संस्थ्थानीकरण हुआ है एवं लोग स्थ्त्री मुद्दों को टेक्ध्स्ट के रूप में पढ़ने लगे हैं। बहुत हद तक यह सही भी है परन्ध्तु धीरे–धीरे ही सही स्थ्त्री स्थ्थान बना पाने में सफल हो रही है। इसे शैक्षिक संस्थ्थाओं के उदारवादी चेहरे के रूप में भी देखा जा सकता है। या यूँ कहें कि यह ब्राह्मणवादी पितृसत्ध्तात्ध्मक ज्ञान व्ध्यवस्थ्था की मजबूरी भी है कि वह इस किस्ध्म ने विमर्शो को तरजीह दे।

हिन्ध्दी साहित्ध्य में स्थ्त्री विमर्श की शुरूआत छायावाद काल से माना जाता है। महादेवी वर्मा की कविताओं में वेदना का विभिन्ध्न रूप देखने को मिलता है। उसकी श्रृंखला की कंड़िया स्थ्त्री सशक्तिकरण का सुन्दर उदाहरण है। जिसमें नारी जागरण एवं मुक्ति का सवाल ही उठाया गया है। ऐसा साहित्ध्य जिसमें स्थ्त्री जीवन की अनेक समस्थ्याओं का चित्रण हो, स्थ्त्री विमर्श कहलाता है। समाज के दो पहलू स्थ्त्री–पुरूष एक दूसरे के पूरक है। किसी एक के अभाव में दूसरें का अस्तित्ध्व नहीं हे। उसके बाद भी पुरूष समाज ने महिला समाज को अपने बराबर की समानता से वंचित रखा। यही पक्षपात दृष्टि ने शिक्षित नारियों को आन्ध्दोलन करने को मजबूर किया जो आज ज्ध्वलंत मुद्दा नारी–विमर्श के रूप में दृष्टिगोचर है।

आदिकाल से ही नारियों की दशा दयनीय एवं सोचनीय थी। स्त्रियों की अवस्थ्था को सुधारे बिना जगत के कल्ध्याण की कोई सम्ध्भावना नहीं है। विवेकानंद जी महिला समाज की वास्ध्तविक दशा से चिंचित, देश एवं समाज के भलाई महिला समाज के तरक्ध्की के बगैर असंभव बताया है।

स्थ्वातंत्रयोत्ध्तर हिन्ध्दी गद्यकार एवं कवि रघुवीर सहाय जी नारी जीवन का वास्ध्तविक चित्र खींचा है, उन्होंने अपने काव्ध्य में स्थ्वतंत्रता के बाद स्थ्त्री जीवन की अनेक समस्थ्याओं को विषय बनाया है। जिस भारत स्थ्त्री वैदिक काल में 'यंत्र नार्यस्ध्तु पूज्ध्यंते तंत्र रमते देवता' कहा जाता था। आज वही अनेक शोषण का शिकार हो रही है। वह कहता है।

"नारी बेचारी है पुरूष की मारी
तन से क्षुदित है लपक कर झपक कर अंत में चित्ध्त है।"

स्थ्त्री की दशाओं पर अनेक समाज सुधारकों ने चिन्ध्ता व्ध्यक्ध्त किया ओर यथा सम्ध्भव दूर करने का प्रयास भी जिससे नारी की स्थिति में परिवर्तन हुआ। ब्रम्ध्ह समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, रामकृष्ध्ण मिशन तथा अनेक सरकारी संगठनों ने नारी शिक्षा पर जोर दिया जिसका सकारात्ध्मक परिणाम आया।

आज स्थ्त्री समाज सभी क्षेत्रों में अपनी भागीदारी निभा रही है। राजनैतिक हो या सामाजिक, आर्थिक हो या सांस्ध्कृतिक,उसके बाद भी यह लड़ाई क्ध्यों?

बीसवीं शताब्ध्दी के अंतिम दशक में स्थ्त्रीवादी विचार को पनपने का सुअवसर मिला। भूमण्ध्डलीकरण ने अपने तमाम अच्ध्छाईयॉ एवं बुराईयों के साथ सभी वर्ग के शिक्षित स्त्रियों को घर से बाहर निकलने का अवसर दिया। परिणामस्थ्वरूप स्थ्त्री अपने वर्जित क्षेत्रों में ठोस दावेदारी की औंर स्थ्वावलम्ध्बन के दिशा में तीव्र प्रयास भी सामने आए। स्थ्त्री विमर्श वस्ध्तुतरू स्थ्वाधीनता के बाद की संकल्ध्पना है। स्थ्त्री के प्रति होने वाले शोषण के खिलाफ संघर्ष है। पितृसत्ध्तात्ध्मक व्ध्यवस्थ्था ने स्थ्त्री समाज को हमेशा अंधकारमय जीवन जीने को मजबूर किया है। लेकिन आज की नारी चेतनशील है। जिसे अच्ध्छे–बुरे का ज्ञान है। इसलिए अब इस व्ध्यवस्थ्था का बहिष्ध्कार कर स्थ्वच्ध्छंदात्ध्मक जीवन जीने को आतुर दिखाई पड़ती है। नारी अस्तित्ध्व को लेकर अपने–अपने

समय पर कई विद्वानों ने चिन्ध्ता व्यक्ध्त किया हैं।

तुलसीदास जी ने ढोल, गवार शुद्र, पशु, नारी सकल ताड़ना, के अधिकारी कहकर नारी को प्रताड़ना के पात्र समझा है। तो मैथिलीशरण गुत्ध्त जी ने 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी ऑचल में दूध और ऑखों में पानी' कहकर नारी की स्थिति पर चिन्ध्ता व्यक्ध्त की है।

किन्ध्तु अब स्थिति बदल चुकी है, क्ध्योंकि छठें शताब्ध्दी के पहले तक सिर्फ पुरूष लेखकों का अधिकार था, महिला लेखन को काऊच लेखक कहकर हॅसी उड़ाई जाती है। लेकिन अब स्ध्त्रीदृविमर्श का डंका बज रहा है, क्ध्योंकि आठवें दशक तक आते–आते महिला लेखिकाओं की बाढ़ सी आ गई। उसके बाद भी प्रसिद्ध लेखिका 'सीमोन द बोउआर' के उक्ध्त कथन महिला समाज में परिलक्षित होती है।

'स्ध्त्री की स्थिति अधीनता की है। स्ध्त्री सदियों से ठगी गई है और यदि उसने कुछ स्ध्वतंत्रता हासिल की है, तो बस उतनी ही जितनी पुरूष ने अपनी सुविधा के लिए उसे देनी चाही। यह त्रासदी उस आधे भाग की है, जिसे आबादी कहा जाता हैं।

संदर्भ सूची–

1. आजकल मार्च 2020 पृष्ध्ठ 20
2. अक्षरा जनवरी–फरवरी 2019 पृष्ध्ठ 32
3. अक्षरा मार्च–अप्रैल 2019 पृष्ध्ठ 16
4. साक्षात्ध्कार दिसंबर 2018 पृष्ध्ठ 19
5. समकालीन भारतीय जनवरी–फरवरी 2016 पृष्ध्ठ 23
6. साक्षात्ध्कार अप्रैल 2016 पृष्ध्ठ 26

mail drjyotipatel0906@gmail.com

Mobile 9399141045

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 156-160
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श

–बाल किशोर राम भगत
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी के.एम.टी. शासकीय कन्या महाविद्यालय, रायगढ़ छ.ग.

दलित साहित्य की अवधारणा में संकुचित और व्यापक दोनों पक्ष शामिल है। दलित चिन्तकों का संकुचित धारणा वाला वर्ग दलित साहित्य को जाति से जोड़ा अर्थात सामाजिक स्तर पर उत्पीड़ित, विषेष रूप से अस्पृष्य मानी जाने वाली जातियों द्वारा रचे साहित्य को दलित साहित्य के क्षेत्र में रखता है। दलित साहित्य को व्यापक दृष्टि से देखने वाला वर्ग जातिगत सामाजिक उत्पीड़न के साथ अन्य प्रकार के सामाजिक उत्पीड़न–आर्थिक, लैंगिक आदि के साहित्य में सृजन को भी दलित साहित्य के दायरे में षामिल करता है और ये चिन्तक दलित जीवन के चित्रण के लिए दलित दृष्टि अथवा दलित विष्व दृष्टि का ग्रहण दलित साहित्य के सृजन के लिए अनिवार्य मानते हैं। ये चिन्तक दलित साहित्य को विष्व के महान मानवतावादी साहित्य के अभिन्न अंग के रूप में देखते हैं, इसी कारण वे विष्व के ब्लैक साहित्य अथवा संघर्ष केन्द्रित अन्य यथार्थवादी साहित्य का अपनी परम्परा का अंग मानते हैं।

दलित विमर्ष की अवधारणा वस्तुत :'दलित' षब्द से जुड़ी है।'दलित' का क्या अर्थ है अथवा 'दलित' किसे कहते है? इस सदर्भ में 'दलित' षब्द की संकुचित तथा व्यापक दोनों ही प्रकार की व्याख्याएं विभिन्न विद्वानों द्वारा की गयी है।'दलित' षब्द की संकुचित व्याख्या जाति विषेष से संबंधित है। ब्रिटिष औपनिवेषिक काल में जिसे 'डिप्रेस्ड क्लासिज' कहा गया, उसे ही दलित माना जाता है। 'दलित' के अर्थ के संदर्भ में अरविन्द कुमार/कुसुम कुमार ने अपने 'हिन्दी थिसारस' में दलित के कई संदर्भगत अर्थ दिये हैं। एक अर्थ है– षोषित, एक अर्थ है– पराजित जिसमें दमित, विजित आदि अनेक भावार्थ सम्मिलित है। ज्ञान षब्दकोष में दलित का अर्थ रौंदा, कुचला, दबाया हुआ, पदाक्रान्त के साथ हिन्दुओं में वे षुद्र, जिन्हें अन्य जातियों के समान अधिकार प्राप्त नहीं है। माताप्रसाद ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा' में दलित षब्द के अनेक प्रयोगात्मक अर्थो की चर्चा की है जिनमें चाण्डाल, अस्पृष्य, अछूत आदि षामिल है। उपेक्षित, अपमानित, उत्पीड़ित, प्रताड़ित भी इसी श्रेणी में आने वाले षब्द हैं। दलित षब्द के व्यापक सामाजिक अर्थो में गुलाम, भूमिहीन, बन्धुआ और गरीब किसान भी सम्मिलित है। डॉ.आरती झा के अनुसार– ''दलित षब्द का सामान्य अर्थ है–दरिद्र और उत्पीड़न, इसका अर्थ दबा, कुचला, अपमानित और प्रताड़ित प्राणी होता है। आज 'दलित' का अर्थ अनुसूचित जातियों और जनजातियों के रूढ़ अर्थ में होने लगा है। जिसका दलन व दमन हुआ हो, दबाया गया हो, जो उत्पीड़न, षोषित, सताया, गिराया, उपेक्षित, घृणित, रौंदा, मसला, कुचला, विनष्ट, मर्दित, पस्त, हत्साहित और वंचित हो वह दलित है। दलित किसी जाति व धर्म का कोई षब्द नहीं है। वह कोई भी हो सकता है। षुद्र हो, स्त्री हो या अन्य कोई भी हो।'' डॉ.चन्द्रकान्त

बांदिवडेर के अनुसार –'' जिन जातियों को महात्मा गांधी ने 'हरिजन' कहा था, वे ही जातियॉं दलित नाम से पहचानी गयी।''डॉ.पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी का कहना है–''दलित एक संवेदन है विचार, जिसका अर्थ दबाया गया मनुष्य, किसी भी जाति, वर्ण, धर्म, मन एवं भौगोलिक क्षेत्र का हो दलित है।'' कॅवल भारती ने अपना विचार प्रकट करते हुए दलित षब्द की व्याख्या इस प्रकार की है–'' दलित वह है जिस पर अस्पृष्यता नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया। जिसे षिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया, सिर्फ वही दलित है। ''

हिन्दी में दलित समाज की पीड़ा सर्वप्रथम पन्द्रहवीं –सोलहवीं षताब्दी में भक्तिकाल के सन्तों की रचनाओं में मुखरित हुई और उन्होंने निर्भीकता से समाज में फैली इन कुरीतियों के विरोध में अपनी आवाज बुलन्द की। तत्कालीन घोर रूढ़िवादी समाज में यह एक बहुत बड़ा और जोखिम भरा कदम था। आधुनिक युग में अभी तक दलित–विमर्ष के काव्य का आरंभ सन् 1914 में प्रकाषित हीरा डोम की कविता '' अछूत की षिकायत'' से माना जाता है। परन्तु दलित आकलन को गति देने वाले सामाजिक व्यक्तित्व स्वामी अछूतानंद हरिहर के काव्य के प्रकाष में आने के बाद यह समय 1914 से हटकर बीसवीं षताब्दी के बिल्कुल षुरू में चला जाता है। सन् 1905 में हीरालाल अजमेर में आर्यसमाज में दीक्षित हुए और यहीं इनका नाम हरिहरानंद पड़ा। सन् 1922 में आपने विराट अछूत जाटव सम्मेलन का आयोजन किया और अपने समाज के लिए आदि हिन्दू' षब्द की घोषणा की। आपके जीवनकाल में प्रकाषित रचनाएं हैं– षम्बूक मुनि–;नाटकद्ध, रामराज्य न्याय– ;नाटकद्ध,मायानंद बलिदान पर बलिदान– अपूर्ण ;नाटकद्ध। आपकी प्रकाषित रचनाओं में ''हरिहर भजनमाला'', विज्ञान भजनमाला और आदि हिन्दू भजनमाला भी है। हीरा डोम वाराणसी के रहने वाले थे सितम्बर 1914 में विख्यात हिन्दी पत्रिका ''सरस्वती'' में आपकी कविता ''अछूत की षिकायत'' छपी जो भोजपुर में रचित है। बीसवी षताब्दी में जिन ध ाराओं से प्रभावित होकर दलित–विमर्ष की प्रस्तुति हिन्दी कविता में हुई है, उनमें आर्यसमाज काव्यधारा, गांधीवाद में राष्ट्रीय आन्दोलन की काव्यधारा, प्रगतिषील साहित्य की काव्यधारा और डॉ. अम्बेडकर से प्रभावित काव्यधारा में चित्रित दलित जीवन को अपने विष्लेषण और इन कविताओं के संकलन का आधार बनाया है। आर्यसमाज से प्रभावित कवियों के दलित चित्रण में माताप्रसाद, नाथूराम षर्मा षंकर, रूपनारायण पाण्डेय, निरंकारदेव सेवक, दीपचन्द्र निर्मोही, सुमन, अनंतराय मित्र अनंत आदि कवियों ने दलित–विमर्ष के चित्र प्रस्तुत किये हैं। हिन्दी काव्य में भारतेन्दु हरिष्चन्द्र ने सर्वप्रथम निम्न पंक्तियॉं कहकर छुआछुत का विरोध किया–''
बहुत हमने फैलाये धर्म । बढ़ाया छुतछात का कर्म ।।

गांधीवाद से प्रभावित होकर अछूतोध्दार को विषय बनाया और दलितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की । जिनमें प्रमुख रूप रामचन्द्र षुक्ल की 'अछूत की आह' कविता और सुभद्रकुमारी चौहान, मैथिलीषरण गुप्त, सियारामषरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, गयाप्रसाद षुक्ल, हरिकृष्ण प्रेमी, माखनलाल चतुर्वेदी, भगवतीषरण वर्मा, आरसी प्रसाद सिंह, वियोगी हरि, जगन्नाथप्रसाद मिलिंद, रामगोपाल षर्मा दिनेष और दुलारेलाल भार्गव आदि हैं।

प्रगतिवादी विचारधारा के कवियों में सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत, नरेन्द्र षर्मा, नागार्जुन, रामविलास षर्मा, सुमित्रानंदन पंत, बालकृष्ण षर्मा नवीन, रांगेय राघव, नरेन्द्र षर्मा, षिवमंगल सिंह सुमन, गोरख पाण्डेय, धूमिल, लीलाधर मंडलोई, षमषेर बहादुर सिंह, मुक्तिबोध आदि सम्मिलित हैं। इन कवियों ने दलित जीवन

की पीड़ा को वर्ग समाज द्वारा किये जा रहे षोषण के साथ प्रस्तुत किया । हिन्दी के आंचलिक गीतों और लोकगीतों के अन्तर्गत प्रकाष लखनवी द्वारा रचित 'षोषित कुमार'' ;आल्हाद्ध घिसुआ कवि द्वारा रचित ''मूरति में धूत'', माता प्रसाद मितई द्वारा रचित गीत ''सोनवा का पिंजरा'', राजवैद्य माताप्रसाद सागर द्वारा रचित'' अछूत वीरांगना'' तथा गोकरण लाल करूणाकर द्वारा रचित रचनाओं में दलित जीवन की पीड़ा मुखर हुई है।

डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा से प्रभावित कवियों ने प्रबन्ध काव्य और स्फूट काव्य में अपनी रचनाएँ की है। इनमें अनंगदास कृत ''भीमचरित मानस'', लक्ष्मीनारायण सुधाकर कृत '' भीमसागर'', बाबूलाल सुमन कृत '' अम्बेडकर महाकाव्य'', जवाहरलाल कौल कृत ''मसीहा दलितों का'', गोरखनाथ करूणाकर कृत आल्हा छंद में ''भीमचरित मानस'' और माता प्रसाद कृत '' भीमषतक'' आदि प्रबन्ध काव्य प्रमुख हैं। स्फूट काव्य में बाबूलाल सुमन, रणजीत सिंह, मनोहरलाल प्रेमी, केदारनाथ प्रभात, सियारामषरण आदित्य, उदय प्रकाष सिंह, पी.डी.टण्डन, रामेष्वर पवन, आनंद स्वरूप, बाबूराम सागर, गुरूप्रसाद विद्यार्थी, ज्ञानेन्द्र प्रसाद, दुर्गाचरण सरसंका, आर.पी. कौषल, विनोद कुमार, ष्यामलाल षर्मा, लालचन्द्र राही आदि दलित षोषण का विरोध किया है। डॉ.अम्बेडकर से अनुप्राणित कुछ काव्य संकलन भी प्रकाषित हुए हैं जिनमें ओमप्रकाष बाल्मीकि कृत ''सदियों का संताप'' तथा बस्स ! बहुत हो चुका'', मलखान सिंह कृत '' सुनो ब्राह्मण', कुसुम वियोगी कृत ''व्यवस्था के विषधर'', सी.बी. भारती कृत '' आक्रोष'' प्रमुख है। इसके अतिरिक्त डॉ.सुखबीर सिंह की लम्बी कविता ''बयान बाहर'' दलित यंत्रणा और संघर्ष की प्रभावी अभिव्यक्ति है। चन्द्रकुमार वरठे की कविता ''क्रान्ति का प्रतीक'' में तथाकथित प्राचीन संस्कृति के प्रति दलित आक्रोष को व्यक्त किया गया है। मोहनदास नैमिषराय की कविता ''क्रान्ति का हथौड़ा'' तथा नयानंद बटोही की कविता '' द्रोणाचार्य सुनें'' में दलित पीड़ा ही मुखर हुई है।

हिन्दी के गद्य साहित्य के अन्तर्गत उपन्यास एवं कहानी विद्या का आरंभ बीसवीं सदी की षुरूआत अर्थात 1901 के लगभग माना जाता है। उपन्यास सम्राट मुंषी प्रेमचन्द्र से सही अर्थो में कहानी का विकास माना जाता है। प्रेमचन्द्र की सद्गति, पूस की रात, कफन, ठाकुर का कुऑ, जुर्माना आदि कहानियों में दलित जीवन की यथार्थता अभिव्यक्ति हुई है। गोदान, कर्मभूमि, रंगभूमि, गबन, प्रेमाश्रम आदि उपन्यासों में प्रेमचन्द्र ने सूरदास, देवीदीन, खटीक, सलोनी, मुन्नी, सिलिया जैसे दलित चरित्रों को जिस मानवीय संवेदना से प्रस्तुत किया है, उससे उनके गहन मानवतावादी और दलित पक्षधर सरोकारों का ज्ञान होता है। पाण्डेय बेचन षर्मा उग्र के उपन्यास ''बुधुआ की बेटी'' में निम्न श्रेणी के दलित समुदाय के संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के ''अलका'' और ''निरूपमा'' उपन्यासों तथा ''कुल्ली भाट'' और ''बिल्लेसुर बकरिहा'' कहानियों में दलित विमर्ष ही प्रकाषमान हुआ है।

प्रेमचन्द्र के बाद के काल में आचार्य चतुरसेन षास्त्री के उपन्यासों 'गोली', 'बगुला के पंख', रांगेय राधव कृत 'कब तक पुकारू', उदयषंकर भट्ट कृत 'सागर लहरे मनुष्य', अमृतराय कृत 'बीज', फणीष्वरनाथ रेणु कृत 'मैला ऑचल', यादवेन्द्र षर्मा चन्द्र कुत 'पत्थर के ऑसू', 'हजार घोड़ों का सवार', भैरवप्रसाद गुप्त कृत 'सती मैया का चौरा', रामदरष मिश्र कृत 'जल टूटता हुआ', रामकुमार भ्रमर कृत 'मोतिया', मन्नू भण्डारी कृत 'महाभोज' उपन्यासों में दलित समस्या को किसी न किसी रूप में उभारा गया है। अमृतलाल नागर द्वारा रचित 'नाच्यौ बहुत गोपाल ' तथा जगदीषचन्द्र द्वारा रचित 'धरती धन न अपना ', नरककुण्ड में वास' और 'जमीन अपनी तो थी ' उपन्यास तो दलित जीवन को केन्द्र बनाकर ही रचे गये हैं। जयप्रकाष कर्दम के उपन्यास 'छप्पर ' में दलित

जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है। रमणिका गुप्ता के लघु उपन्यासों 'सीता ' और 'मौसी' में दलितों की जीवनगाथा प्रकाषित हुई है।

हिन्दी गद्य में सन् 1991 के आस पास भगवान दास की आत्मकथा 'मैं भंगी हूँ ' प्रकाषित हुई। यह वास्तव में व्यक्तिगत आत्मकथा न होकर पूरी जाति की सामाजिक आत्मकथा है। सृजनात्मक दलित आत्मकथा लेखन के क्षेत्र में मोहनदास नैमिषराय, ओमप्रकाष बाल्मीकि, कौषल्या बैसंत्री, ष्योराज सिंह बेचैन, कुसुम वियोगी, सूरजपाल चौहान आदि उल्लेखनीय हैं। मोहनलाल नैमिषराय की आत्मकथा 'अपने–अपने पिंजरे ' सन् 1995 में प्रकाषित हुई। ओम प्रकाष बाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' सन् 1997 प्रकाषित हुई । इसके प्रकाषन से न केवल हिन्दी में बल्कि पंजाबी में भी खूब हलचल हुई फलस्वरूप षीघ्र ही इसका पंजाबी अनुवाद 'जूठ 'षीर्षक से प्रकाषित हुआ ।''तिरस्कृत'–सूरजपाल चौहान की कथाएं हैं। इनके अतिरिक्त ''झोपड़ी से राज भवन''–माता प्रसाद, ''मेरा बचपन मेरे कंधों पर''–ष्योराज सिंह 'बेचैन', ''मेरी पत्नी और भेड़िया''–डॉ.धर्मवीर,'' षिकंजे का दर्द ''–सुषील टाकभौरे आदि आत्मकथाएं भी पाठकीय आदृति प्राप्त कर चुकी है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य दलित लेखकों की आत्मकथाओं के कुछ अंष पत्र–पत्रिकाओं में छपकर प्रकाष में आये।

हिन्दी गद्य की नाटक–एकांकी विधा के अन्तर्गत माताप्रसाद की रचना 'अछूत का बेटा ' उल्लेखनीय है। दलित विमर्ष और आलोचना के क्षेत्र में डॉ.धर्मवीर, तुलसीराम, एन.सिंह, चमनलाल, पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी, विमल थोरात, जवरीमल पारीख, ष्योराज सिहं बेचैन आदि के नाम चर्चित है। रमणिका गुप्ता द्वारा सम्पादित 'युद्धरत आम आदमी' ने दलित साहित्य को केन्द्र में रखकर अनेक विषेषांक प्रकाषित किये हैं। 'पष्यन्ती 'ने भी दलित साहित्य अंक छापा है और दलित साहित्य वार्षिकी के सम्पादक के रूप में जयप्रकाष कर्दम हमारे समक्ष आये हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि हिन्दी साहित्य के पद्य एवं गद्य में दलित–विमर्ष पर्याप्त मात्रा में हुआ है। प्रगतिवादी साहित्य और दलित साहित्य दोनों ही अपने समाज से जुड़े कटु यथार्थ की अभिव्यक्ति अपने साहित्य में करते हैं। मनुष्य और उसके सुख–दुख तथा संघर्ष को दोनों ही लेखक अपनी रचना के केन्द्र में रखते हैं। दलित साहित्य का लेखक जहॉ जातिगत आधार पर उत्पीड़ित अवमानित मानवता के आक्रोष, विद्रोह और दुख पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करता है, वहीं प्रगतिवादी साहित्य का लेखक वर्ग पर आधारित संघर्ष पर अधिक बल देता है। प्रगतिवादी साहित्य और दलित साहित्य के लेखक दोनों ही षोषणमुक्त समतामूलक समाज के निर्माण के हमराही हैं। पचहत्तरवॉ वर्ष की आजादी , वर्षो की आरक्षण नीति, मण्डल आयोग से उत्पन्न राजनीतिक उथल–पुथल के पष्चात यद्यपि भारत में षक्ति सन्तुलन काफी हद तक दलितों के पक्ष में हुआ है तथापि एक ओर लालू– मुलायम– षरद यादव और दूसरी ओर कांषीराम –मायावती के उभार के बाद भी यह निष्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि दलित वर्ग भारतीय समाज की प्रधान धारा में सामाजिक और सांस्कृतिक रूप में पूर्णतया समाहित हो गया है। दलित जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा आज भी पीड़ित–षोषित जीवन गुजार रहा है। अतः आज आवष्यकता है ऐसे साहित्य की जो इनमें षिक्षा के प्रति जागरूकता उत्पन्न कर सके और अपने अधिकारों के प्रति सजग बना सके।

संदर्भ ग्रंथों की सूची–

1. भारतीय एवं पाष्चात्य काव्यषास्त्र,डॉ.गंगा सहाय 'प्रेमी', हरीष प्रकाषन मन्दिर आगरा पृष्ठ संख्या–147–152

2. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. गंगा सहाय 'प्रेमी' हरीष प्रकाषन मन्दिर, आगरा पृष्ठ संख्या–233–239
3. डॉ.आरती झा, भारत में दलित साहित्य एवं दलित चेतना,नव विकास षोधविषेषांक–2012 पृ.60
4. ओम प्रकाष बाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य षास्त्र, 2014 पृ.32

ईमेल–kishorebhagat884@gmail.com
मो.नं. 9981634746, 7999711354

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 161-164

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नारी विमर्श

–तहुरा नाज

शोधार्थी, 2855, गली बिष्टियान, 1st Floor, कूचा चलान, दरियागंज

हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श जिसमें नारी जीवन की अनेक समस्याएँ देखने को मिलती हैं। प्रेमचन्द से लेकर आज तक अनेक पुरूष लेखकों ने स्त्री समस्या को अपना विषय बनाया लेकिन उस रूप में नहीं लिखा । जिस रूप में स्वयं महिला लेखिकाओं ने लिखा है। वैसे ''नारी विमर्श'' यह शब्द पश्चिम में षमिउपदपेउष का हिन्दी पर्याय है। परन्तु पश्चिम और पूर्व में नारी को लेकर भिन्न दृष्टि है। भारत में हजारों वर्ष की रूढ़ियों परम्परा और प्रचलन को तोड़ नया कुछ करने की बात करती है। वहाँ नारी किसी परम्परा को नहीं तोड़, वर्तमान से ही विद्रोह कर रही है। मानो वह नारी अपनी आसमिता का बोध लेकर अपनी मुक्ति की तरफ बड़ रही है। आज उसमें यह बोध जाग उठा है कि वह स्वयं भी पुरूष के समकक्ष एक इकाई है। अतः किसी रूप में गुलाम या अधीनस्थ नहीं । पुरूष उस पर वर्चस्व न जमाये। अतः वह चाहती है कि सभ्यता का अर्थ है मनुष्य पशु प्रवृति पर विजय प्राप्त करे । स्त्री पुरूष के बीच कोई पाशविक संपर्क नहीं रहना चाहिए । वह दोनों साथी बनकर रहे। यही मूल भावना है। इस प्रकार स्त्री विमर्श एक प्रकार की चिन्तन धारा है। जहाँ स्त्री के प्रति एक विशेष दृष्टि से चिन्तन वस्तु रूप में देखा । उसके गुण दोषों पर विचार ऐसे किया जैसे कोई बाह्य पदार्थ हो । नारी एक जींवत सत्ता स्वीकार होती है। भारत में युगों से स्त्री संबंधी विमर्श शास्त्रीय आधार की तरह लोकतात्विक आध ाार पर भी स्पष्ट है।

लोकमानस में 2 तरह की स्त्री – 1) सुखिया 2) दुखिया ।

साठ के दशक में पुरूष वर्चस्ववाद की सामाजिक सत्ता और संस्कृति के विरूद्ध उठ खड़े हुए स्त्रियों के प्रबल आंदोलन को नारीवादी आंदोलन का नाम दिया गया । वस्तुतः नारीवादी आंदोलन एक राजनीतिक आंदोलन है जो स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं दैहिक स्वतन्त्रता का पक्षधर है। स्त्री मुक्ति अकेले स्त्री की मुक्ति का जश्न नहीं है। बल्कि यह सम्पूर्ण मानवता की मुक्ति की अनिवार्य शर्त है। यह आसमिता की लड़ाई है । इतिहास में यह साबित भी किया है कि आधी आबादी को शिरकत के बगैर क्रांतियाँ सफल नहीं हो सकती । आमतौर पर स्त्री विमर्श के अकादमिक होने के उपरान्त यह आरोप लगते रहे कि इसके कारण आंदोलनों का संस्थानीकरण हुआ है एवं लोग स्त्री मुद्दो को टेक्स्ट के रूप में पढ़ने लगे है । बहुत हद तक यह सभी सही है परन्तु धीरे–धीरे ही सही स्त्री अध्ययन परम्परागत ज्ञान की दुनिया में अपने लिए स्थान बना पाने में सफल हो रहा है। इसे शैक्षिक संस्थाओं के उदारवादी चेहरे के रूप में भी देखा जा सकता है। या यूँ कहे कि यह ब्राह्मणवादी पितृसत्तामक ज्ञान व्यवस्था की मजबूरी भी है कि वह इस किस्म में विमर्शो को तरजीह दे। भारत

में नारी विषयक चिंतन का इतिहास बहुत पुराना है । प्राचीन काल में यहाँ नारी को लगभग समान स्थान दिया गया है। क्योंकि उसके बिना कोई राजकार्य, धर्म–कार्य दान–दक्षिणादि संभव नहीं होता । उसी प्रकार नारी को समाज में हर क्षेत्र में पूरा अधिकार एवं दायित्व था । वह वेदाध्ययन ही नहीं, वेदा की ऋचाओं की स्रष्टा है यज्ञादि उसके बना संपन्न नहीं हो सकते थे । उसी प्रकार जो भी पुरूष संकल्प करता नारी बिना सम्भव न था । वह सन्यास या अन्य आश्रम में जाता स्त्री से अनुमति जरूरी थी । शुरू में उनमें लिंगाधारित समस्या ही न थी । कोई शोषण न था । धीरे–धीरे बाह्य सस्पर्श में आता गया । मनुष्य का भिन्न संस्कृति से संबंध होना और फैलाव के कारण विभिन्न समस्याएँ पैदा हुई ।

पश्चिम में आधुनिक नारी विमर्श :

आज नारी विमर्श एक देश, जाति या धर्म का आंदोलन नहीं है। बीसवी सदीं में इसने अनेक रूप लिए और अनेक रूप लिए और अनेक ढंग से चर्चा हुई । उनमें कुछ नामों की चर्चा की जा रही है ।

1) लिबरल फेमिनिज्म :– अमेरिका में जोएफ कनेडी ने 1961 में 'कमीशन आन द स्टेटस आफ वीमन' गठित किया । पर काम बहुत ढीला चला तो वहीं बेटी फायडन आदि ने सिविल राइटस संगठन और ''नेशनल आर्गनाइजेशन फार विमन'' गठित किया । संस्था का गठन 1966 ई. में हुआ । इनमें कामकाजी महिलाएँ थी । ये लिबरल फेमिनिज्म की विश्वासी थी । इन्होंने जेएस मिल से प्रेरणा ली । जो कहते है भार ढ़ोने में महिला उन्नीस है । परन्तु बौद्धिक और नैतिक क्षमता एक है ।

2) रेडिकल फेमिनिज्म :– 1968 में टाइग्रेस एटकिंसन के नेतृत्व में लिबरल ग्रुप रेडिकल ग्रुप से अलग हुआ । योजनाबद्ध दंग से एक–एक संस्था में राजनैतिक और आर्थिक ढंग से संरचनात्मक परिवर्तन घटाएँ । साहित्यिक आलोचना में ष्ुंहमे व ूिवउमदष इन्हीं रेडिकल फेमिनिज्म को चलाया है पितृसत्तात्मक समाज में यह धारणा है । कि स्त्रियाँ क्रीतदासी की तरह उनकी पहुँच के भीतर रहने को या लाचार हैं।

3) समाजवादी स्त्रीवाद स्त्री के संघर्ष में फ्रेडरिक एंजेलस में ष्जीम वतपहपद व जीम ंिउपसल चतपअंजम चतवचमतजल ंदक जीम ेजंजपष लिखा हैं। वे कहते है कि स्त्री का शोषण वहाँ से शुरू हुआ जहाँ से वैयक्तिक सम्पति का प्रावधान हैं। उत्पादन के साधनों पर जिन थोड़े से लोगों का प्रभुत्व हुआ, वे मर्द थे और ''कापोरेट कैपिटलिज्म'' तथा इंपीरियालिज्म के साथ मेल शावेनिज्म उन्हीं की देन है।पितृसत्तात्मक समाज के मूल में पूँजीवाद । यदि हर वर्ग हर समुदाय की स्त्रियों का अभ्युदय होना है– वर्ग विशेष की चुनी हुई स्त्रियों का नही तो पूँजीवादी व्यवस्था ही ध्वस्त कर देनी होगी ।

हिन्दी कथा साहित्य में नारी–राजनीतिक –सामाजिक स्तर पर नारी आस्मिता की स्थापना और गरिमा के लिए काफी प्रयास हुए। नारी का सुखद भविष्य उसे न्याय समानता और स्वतन्त्रता प्रदान बिना संभव नहीं । परम्परागत नारियों का बंधन तोड़ना जरूरी था । इनमें मुख्य मुद्दे थे – पुरूष–स्त्री समानता शिक्षक, विवाह, नौकरी, व्यवसाय आदि में दोनों लोगों का समान अधिकार हो । आजादी के बाद संविधा में समान अधिकार दिया । जनता में वोट का समान अध्किार मिला । पर व्यावहारिक रूप में बहुत कुछ छूट गया । शोषण चला, दहेज उत्पीड़न, वेतन का तारम्तय रहा । पर नारी इसमें उठ खड़ी हुई ।

रामायण महाभारत में नारी के साथ जो हुआ वह अकल्पनीय है। विलास की साधना बनी । उसे अबला कहा गया । सतीत्व की परीक्षा और सती–असती के मानदंड पुरूष–स्त्री समाज में भिन्न–भिन्न हुए । इस तरह नारी

समाज में हाशिये पर आ गई। हिन्दी साहित्य में वीरगाथा युग में वह इज्जत और प्रतिष्ठा का प्रतीक बनी । अतः उस पर बांदिश लगी । सती बहु–विवाह, अंध–विश्वास आदि कुरीतियाँ नारी जीवन को संकट में ले गयी । सबसे बड़ा संकट था । सती प्रथा का नारी को पति के साथ चिता पर बैठा दिया जाता । पति नहीं तो स्त्री भी नहीं । इस दकियानुसी प्रथा का खंडन किया राजामोहन राय ने । फिर भी यह प्रथा आज भी चोरीछिपे चल रही है। हमारा समाज इसे धर्म का नाम दे देता है। लेकिन भक्तिकाल में अवहेलना भी झेली । उसको द्वितीय दर्जे का इंसान कहा । जबकि रीतिकाल में आकर नारी मांसलता प्रमुख हो गई। भोग्यता रूप ही ज्यादा चित्रित हुआ । दरबारी और सामंती युग में नारी को महिला उसके सौन्दर्य, उसकी मांसलता अथवा काल रुप पर निर्भर करने लगी ।

परन्तु आधुनिक युग में परिवर्तन होता है। सती प्रथा का अंत, विधवा–विवाह, बाल–विवाह पर प्रतिबंध, शिक्षा का प्रचलन आदि क्रमबारी सुधार चले । नारी की स्थिति में जबरदस्त सुधार आया । अतः भारतेंदु हरिश्चन्द्र के साहित्य में नारी के बदलें रुप की तस्वीर उभर कर आने लगी । 20 वीं सदी के प्रारम्भ में गांधी जी ने सुधार की आवाज उठाई। वह मुख्यधारा में जुड़ती है। स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया । महिला रचनाकारों ने इसे अनदेखा नहीं किया । प्रेमचन्द ने नारी शोषण का विरोध किया । नारी का सबल रुप चित्रित हुआ। कुछ ही समय में जैनेन्द्र ने परम्परागत नारी की मूर्ति का भंजन किया । घर परिवार पति के बंधनों से मुक्त करने प्रोत्साहित किया । माँ–पत्नी, पुत्री से हटकर नारी का आसतित्व क्या हो, इस पर विचार किया । जैनेन्द्र कथा साहित्य में नारी की 'मर्यादा' की बात कह शोषण से मुक्त किया ।

1947 के बाद नारी घर से निकली । स्कूल, कॉलेज, बाजार, दफतर गई। सामाजिक स्थिति बदली पर नई समस्याए आयीं । घर–बाहर दोनों जगह पुरूष वर्चस्व के खिलाफ खड़ी हुई । फिर भी हार नहीं मानती । संघर्ष और साहस से बदले परिवेश को स्थापित किया । इस नई कहानी की पात्र पुराने मूल्यों, जंजीर, रुढ़ियों, आधुनिक सभ्यता के तथाकथित अधिकारों में बदले संदर्भ में नारी की स्थिति उभरी । इनमें कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मन्नु भंडारी, प्रभा खेतान, उषा प्रियम्बदा, मैत्रेयी पुष्पा को महत्व दे सकते हैं।

20वीं सदी के छठे दशक के शेष में विद्रोह और तीखा होता है। संयुक्त परिवार प्रथा के विभिन्न पक्षों पर सवाल उठाये गए । राजेन्द्र यादव से नारी चेतना के संकेत रुप दिये । संयुक्त परिवार कुचलना चाहता है, पर संभव नहीं होता ।

अब वह ''माँ तक की पत्नीत्व की उपेक्षा करती है। मन्नू जी कहती है –आज की ''मैं'' इतनी निर्बल और निरीह नहीं कि मुझे जीवन बिताने के लिए कोई सहारा चाहिए । इस युग में वह अपनी ताकत पहचान रही है। विवाह संस्था की मोहताज नहीं रह जाती ।

कामकाजी महिला घर का दायित्व लेकर भरण–पोषण करती है। पर वह जो चाहती है वह भी करने की इच्छुक है। कमलेश्वर ने नगरीय परिवेश की पर लिखी नारी की विद्रूप, विसंगतियों और समस्याओं पर प्रकाश डाला । ''काली आंधी'' में पत्नी राजनेता बनकर पति और संतान का साथ नहीं निभा पाती । ''तलाश'' कहानी की विधवा कामकाजी है पर मानसिक और शरीरिक स्वतंत्रता में अपनी पुत्री बाधक बनती है। अंदर घुट रही है लाचारीवश व्यक्त नहीं कर पाती । नैतिकता उसके कदम रोक लेती हैं।

इस प्रकार उषा प्रियवंदा और कमलेश्वर की नारी आर्थिक आत्म निर्भर है। व्यक्तित्व के टकराव से समस्या बन

जाती है। दोहरी भूमिका निभाती है।

इस प्रकार आजादी के बाद नारी को पारिवारिक दायरे से बाहर निकाल सामाजिक सरोकार और जीवन में यथार्थ से जोड़ा गया । उस काल में कृष्णा सोबती, शिवानी, ममता कालिया और अनिता ओलक प्रमुख था । अपने सजग और संशक्त नेतृत्व में ये स्त्री संसार की जटिलताओं को व्यक्त करने में सफल रही । आगे चलकर आध ुनिक नारी की मनस्थिति, पारिवारिक जीवन और मुख्यतः दापंत्य जीवन को लेकर कथानक रचे गये । विभिन्न देश भाषा और रंगों के बावजूद गहरा इंसानी सरोकार मिलता है। उत्पीड़ित नारी जीवन की अनुभूतियों को चित्रण करने में मेहरुन्निसा परवेज, नासिरा शर्मा ने काफी आविस्मरणीय कहानिया लिखी । जीवन मूल्यों, परम्परा और आधुनिकता के टकराव, नारी मन की धनीभूत पीड़ा संबंधों में दरार आदि को रुपाकार देने में सूर्यबाला, चित्रामुद्गल, चंद्रकांता का नाम उल्लेखनीय है। यहाँ पर नारी मुक्ति ही नहीं, देश और समाज की अन्य अनेक समस्याएँ भी जीवंत है। वैसे तो आज कई पीढ़ियाँ साथ–साथ लिख रही है। परन्तु पिछले दशक में ही शामिल हुई कथाकारों जैसे महुआ माझी काफी चर्चित हुई हैं। इनमें आदिवासी नारियों और मुस्लिम चरित्रों का अंतर्मन तक गहराई से खोला गया हैं। नारी मन की कोमल संवेदना बड़ी संजीदगी से अंकित करती है। देह की मादक्ता से बंधी है। परन्तु हल्की भावुकता से बचकर लिखने में सफल हो रही है ।

वास्तव में हिन्दी का स्त्री लेखन एक समृद्ध परम्परा का निर्माण करने में समर्थ हुआ है। यह युवा पीढ़ी अपनी सृजनघात्री और संर्घषशील लेखन से हिन्दी साहित्य को और भी समृद्ध करेगा । इसमें आत्माभि व्यक्ति के साथ–साथ आत्मसजगता का रेखांकन प्रमुख हो गया है। समाज नियंता बनने के लिए वह बहुमुखी नेतृत्व लेकर बड़ रही है।

स्त्री की आजादी का प्रश्न हमारी सारी बहसों का मुख्य मुद्दा है। 'यंत्र कार्यरत पूज्यंते रमंते तत्र देवता' के ख्यालों में केवल स्त्री को ऊँचा उठाया गया है, उसे मानवीय बनने नहीं दिया गया । उसे पूज्य भाव से सराहा गया, मंदिरों की सीढ़ियों केवल चढ़ाई गई। मुश्किल से 30–35 वर्ष हुए जन साहित्य में स्त्री–विमर्श और दलित–चेतना की आहट सुनाई पड़ी है। 'खूब लड़ी मर्दानी वो तो झांसी वाली रानी थी' । एक समय बलिदानियों का श्लोक थीं । वे हिन्दी वीर काव्य श्रृंखला की महत्वूपर्ण कड़ी हैं। अल्पायु पायी थी । उसका अधिकांश भाग कारागार में व्यतीत हुआ था । शिवरानी देवी, ऊषा मित्रा,विद्यावती कोकिल आदि महिला रचनाकारो ने घर परिवार समाज और देश सभी को अपनी दृष्टि के केन्द्र में रखा है ।

मो0– 8076102597

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 165-169
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अल्पज्ञात लोक कवि मुंशीराम जांडली व गुणपाल कासंडा के सांगों में स्त्री विमर्श

–डॉ. अनिल कुमार पाण्डेय, सहायक प्राध्यापक
–जगदीश चन्द्र, शोधार्थी,
हिन्दी विभाग (पीएच.डी), लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय (पंजाब)

नारी विमर्श की चर्चा करते ही हमारे मानस पटल पर संसार की आधी आबादी यानि महिला की छवि उकरने लगती हैद्य वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय तक विभिन्न परिस्थितियों व परिवेश से जुझती हुई नारी अपनी अस्मिता एवं स्वाभिमान के लिए संघर्ष करती हुई भी प्रतीत होती है। हरियाणवी लोक साहित्य में लोक कवियों ने सांगों के माध्यम से नारी की स्थिति का चित्राकंन करने का काम किया गया है, अल्पज्ञात सांगी मुंशीराम जाड़ली व गुणपाल ने नारी के विविध रूपों का प्रस्तुतीकरण अपने सांग साहित्य में किया हैद्य उनके सांग साहित्य में नारी के ममत्व रूप से लेकर अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए तत्पर संघर्षों की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है, लोक साहित्य जहाँ आम जनमानस की पृष्ठभूमि को लिए होता है, वहीं वह समाज के मार्गदर्शन का भी काम करता है।

शब्द संकेतः– हरियाणवी, लोक साहित्य, अल्पज्ञात, लोककवि, सांग, नारी, अस्मिता, ममत्वद्य

स्त्री पूरे भारतवर्ष में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या का आधा भाग है। जो समाज पर उतना ही अधिकार रखती है, जितना की पुरूष। यदि बात वैदिक काल की कि जाए तो स्त्री को देवी की तरह पूजा जाता था। स्त्री की व्यथा ही नारी विमर्श की जन्मदात्री है। यह व्यथा सहित्य में ही नहीं बल्कि पूरे समाज की स्त्रियों की उतरदायी है। साहित्य स्त्री विमर्श के जरिये स्त्री के सम्मान व प्रगति के लिए कठोर कसमकस की मांग उठाता है।

यदि हम बात करें भारतीय इतिहास की तो वैदिककाल से लेकर आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिक काल से नारी की स्थिति हिंदी साहित्य में समाहित हो जाती है। लेकिन जहां प्रारम्भ में नारी को पूजनीय समझते थे वहीं ऋग्वेद काल में ही नारी उपेक्षा का शिकार होने लगी। किसी भी समाज की प्रगति उस समाज की स्त्रियों की प्रगति से जोड़कर देखी जा सकती है। लेकिन भारतवर्ष में भी नारी अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ती आ रही है। उसकी पहचान पुरूष प्रधान समाज में पंगु जान पड़ती है।

आदिकाल में भी हम देखते हैं कि जहां पर एक ओर कवि वीर रस से पूरित कविताएं रच रहे थे तो वहीं दूसरी ओर नारी के श्रृंगारिक पहलु की अभिव्यक्ति वो कर रहे थे । सिद्धों की प्रतिक्रिया स्वरूप जो नाथ सम्प्रदाय उभर कर आया, उसने नारी की अवहेलना की। जैन साहित्य को हम नहीं नकार सकते। इन्होंने स्त्री को कामवासना

के मूल तक सीमित रखा। आगे यदि हम भक्तिकाल की बात करें तो कुछ उपदेशात्मक बातें हमारे मानसपटल पर आती है कि नारी की क्या सीमाएं होनी चाहिए। किन्तु वहां भी स्थिति कुछ संतोषजनक नहीं है। इस समय तक आते–आते नारी घर की चारदीवारी और परदे में कैद हो चुकी थी। क्योंकि वह लगातार भारत पर बाह्य आक्रमणों के प्रभाव के कारण और मुगलों के प्रभाव व नजरिये से असुरक्षित महसूस कर रही थी। संतों ने नारी को मोक्ष मार्ग में बाधा मानकर उसकी अवहेलना की है। सूफियों ने तो फिर भी कहीं न कहीं नारी को काव्य में स्थान दे ही दिया। इन्होंने नारी को विश्व का नूर तक कह दिया।

बात जहां तुलसीदास जैसे जनकवि की आती है तो उन्होंने भी नारी के संबंध में परम्परावादी दृष्टिकोण को ही महत्व दिया। उनका कहना है कि–

''ढ़ोल गंवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़न के अधिकारी।"1

देखा जाए तो भक्तिकाल कहने को तो हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है परंतु नारी इस युग में भी उपेक्षा का शिकार बनी रही।

रीतिकाल में नारी भोग– विलास की शिकार हो गई। जहाँ नारी का घोर श्रृंगारिक चित्रण कवियों की राजसी मनोस्थिति का द्योतक है। तत्कालीन समाज में नारी के उत्पीड़न के प्रति कोई सरोकार नहीं था। मध्ययुग तक आते–आते स्त्री पति के हाथों की कठपुतली मात्र बनकर गुजार कर रही थी। समाज में अनेक कुप्रथाओं व विषमताओं ने जन्म ले लिया। लेकिन इसी काल में स्त्रियों के सुधार के लिए प्रयास होने लगे। 19वीं शताब्दी स्त्रियों के लिए वरदान साबित हुई, अनेक समाज सुधारकों ने सफल आंदोलन चलाए।

आधुनिक काल में भारतीय नवजागरण के साथ ही नारी के पक्ष में भी आवाजें उठने लगी थी। नारी की स्थिति के प्रति संवेदनाएं जागृत हुई। इस काल में नारी शिक्षित व आर्थिक रूप से सम्पन्न हुई है। वह पुरूष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर प्रत्येक क्षेत्र में अपनी पहचान बना चुकी है। परंतु इतना होते हुए भी विडम्बना यह है कि कहीं दृ न – कहीं नारी नैतिकता व मानसिक घुटन की शिकार है।

हरियाणवी साहित्य में भी नारी का वर्णन यथोचित किया गया है। नारी के विविध रूपों की अभिव्यक्ति भी हरियाणवी लोक साहित्य में हुई है। हरियाणा प्रदेश जिसकी अपनी बोली व लोक संस्कृति है। इस प्रदेश की बोली हरियाणवी है, इस बोली में लोक साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया है। यहाँ के लोककवियों ने अपनी भावभिव्यक्ति में यहाँ की संस्कृति, धर्म, रीति–रिवाज, तीज–त्योहार, रहन–सहन, खान–पान व नारी विमर्श का सजीव चित्रांकन किया है। लोक सहित्य अक्सर लोकगीतों के माध्यम से ही आगे बढ़ा है। हरियाणवी बोली के लोक साहित्य में जहां सामाजिक ताने–बाने, हास्य– व्यंग्य व जीवन शैली का जीवंत प्रस्तुतीकरण है। वहीं समाज की विद्रुपताओं को भी प्रकट किया गया है। लोक कवियों ने समाज की धूरी नारी के प्रति अपने दृष्टिकोण को उजागर किया है। कौरवों और पांडवों की क्रीड़ास्थली रही यह हरियाणा की भूमि और यहां की संस्कृति अपने अंदर विपुल समावेशी परम्परा को समेटे हुए है। यदि हम नारी विमर्श की बात करें तो महाभारत काल में नारी के स्वाभिमान व उसकी आस्मिता के लिए युद्ध लड़ा गया। पुराने समय में अक्सर महिलाओं को स्वयंवर चुनने तक का अधिकार प्रदान था। हमारे लोक कवियों ने उन्हीं समृद्ध परम्पराओं व नारी अधिकारों को लोक साहित्य व सांग के माध्यम से उजागर किया है। 'जयमल–फत्ता, अंजना–पवन, दुष्यंत–शकुंतला, सती मदनरेखा आदि सांग नारी अभिव्यक्ति के बेजोड़ नमूने है।

हरियाणा में स्त्रियों की सामाजिक व राजनीतिक गतिविधियों में सहभागिता को नकारा नहीं जा सकता। यहां भले ही सेविकाओं व जनसामान्य की स्त्रियों के साथ अच्छा व्यवहार न हुआ हो परन्तु राज रानियों के अधिकारों की अवहेलना कहीं दिखाई नहीं पड़ती। हरियाणा की इस समृद्ध सांग परम्परा में अनेक अल्पज्ञात लोक कवियों ने अपनी कलम के जादू द्वारा नारी के प्रति अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने का काम किया है। लोक कवि कहीं – न – कहीं सामाजिक परिवेश में अछूते नहीं रह सकते हैं। उन्होंने अपने समय में प्रचलित लोकगीत, रागनियों में शब्दों के जाल द्वारा सांगों में नारी विमर्श को पिरोने का काम किया है। ऐसे अल्पज्ञात सांगियों में मुंशीराम जांडली व महाशय गुणपाल कासंडा भी प्रमुख है। उन्होंने अपनी सांग परम्परा (कला) में नारी विमर्श को उजागर करने का काम किया। उनके द्वारा प्रकट किए गए सांगों में नारी की श्रृंगारिक चेष्टांए, वात्सल्य भाव, संवेदना, स्वाभिमान, कर्त्तव्य,दायित्व, एकनिष्ठा एवं त्याग की प्रतिमूर्ति के रूप में चित्रित करने का काम किया। नारी समाज का आधार स्तम्भ है, उसके बिना समाज की परिकल्पना भी संभंव नहीं है। अल्पज्ञात सांगियों ने अपने लोक साहित्य में नारी के विविधता से परिपूर्ण जीवन को चित्रित किया हैद्य सांगी मुंशीराम ने नारी के प्रति अपने दृष्टिकोण को उजागर करते हुए अपने सांग 'जयमल–फत्ता के माध्यम से मुंशीराम जांडली ने स्त्री के प्रति अपनी संवेदनात्मक अनुभूति को प्रकट किया है। उन्होंने कहा है कि –

मेरी जिंदगी बरबाद होई, के जयमल जतन बणाऊं मैं।
दुनियां म्हं मुंह काला होग्या, क्यूकर शक्ल दिखाऊं मैं।।
इस जीणे तै मरणा आच्छा, मेरा जयमल शीश काट ले।
कोट किले और फौज रीसाले, सारा राज–पाट ले।।
जो बहू बेटी नै खोटा बोलै वो माणस जहर चाट ले।।2

इन पंक्तियों के माध्यम से लोककवि ने नारी के स्वाभिमान का सजीव चित्रांकन किया है। एक नारी अपने अधिकारों व अस्मिता के लिए संघर्ष करती हुई प्रति होती है।

'कथा पूर्णभक्त' में मुंशीराम ने नारी के अनमेल विवाह का चित्रांकन किया है–

जिस दिन तैं ब्याही मुकलाई,
सारा दिन टूटै अंगड़ाई।
सारी रात नींद ना आई, होरी कायल चांद – से छोरे।
दिन कटज्या तो रात कटै ना, न्यूं ढ़ंग ढाल चांद – से छोरे।।3

इन पंक्तियों के माध्यम से नवयौवना नायिका की भाव भंगिमा व श्रृंगारिक चेष्टाओं की अभिव्यक्ति हुई है। नायिका अपने यौवन–काल में अपने प्रियतम के प्रति असीम लगाव व प्रेम को प्रकट करती है। इसके लिए उससे एक पल भी दूरी सहन करना संभव नहीं है। 'कथा राजा हरिश्चन्द्र ' व मां चपला रानी' सांगों में लोक कवि मुंशीराम व गुणपाल कासंडा जी ने नारी के ममत्व भाव को उजागर करने का काम निम्नलिखित पंक्तियों में किया है–

तेरी माता रूक्के देरही एक बर बोलिये रोहताश।
रो–रो कै पागल हो ली बैठा हो लिये रोहताश।।
लाल मेरा दुनियां तै खो दी मैं, ल्हास तेरी लिए खड़ी गोदी मैं।
एक बार हो सोदी म्हं, नेत्र खोलिये रोहतास।।4

अन्य
राम्भ–राम्भ मर जाया करै सै जैसे बछड़ा गां का रे।
न्यूं मर ज्यागा मेर लाल बता के सुख देख्या मां का रे।।
के अपराध कर्य इसनै हुआ पूरे सात दिनां का रे।
मेरी सोक नै रड़कै था कांटा लिकड़ गया पां का रे
उसके मन की पूरी हुई जा सारा भेद बताइयो रे।
बिलख–बिलख कै..........................5
कवियों के अनुसार नारी के अंदर मौजूद मातृत्व भाव संसार की सबसे अनमोल निधि है। इस मातृत्व भाव के कारण ईश्वर भी बाल रूप में कहीं–कहीं इस ममता की छाव को ग्रहण करने के लिए इस धरा पर अवतरित होते हैं। एक माँ जटिल परिस्थितियों को सहन करती हुई अपनी संतान के प्रति अपने ममत्व को उडेलती है। इन पदों में माँ की अपने बेटे के खोने की वेदना प्रस्फुटित हुई है। करूणा की इस अनुभूति को लोक कवियों ने अपने सांगों के माध्यम से प्रकट करने का काम किया है।
लोक कवि गुणपाल जी ने भी मुंशीराम की तरह अपने सांगों में नारी के प्रति अपने दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने का काम किया है। उनके सांग 'चंद्रा बहन व भाई सूरज सिंह राजपूत' के माध्यम से भाई–बहन के पवित्र रिश्ते का प्रस्तुतीकरण किया गया है। एक भाई अपनी बहन के सम्मान की रक्षा के लिए अपने ऊपर झूठे आरोप को ले लेता है। वह किसी भी प्रकार से बहन की अस्मिता को आंच नहीं आने देता है लोककवि ने निम्न पंक्तियों के माध्यम से बताया है किः–
सोच लिया जीजा बचावन का ढ़ग
बहन ये तो मनै जीतना था जंग।
हे सूरज सिंह मरजा के हो जागा चाला क्यों आंसू तै मुहं धोवै
तेरा बदला.................6
इसी प्रकार गुणपाल कासंडा जी ने अपने सांग 'कलावती संतराम' में नारी के सतीत्व व एकनिष्ठ भाव का वर्णन किया है। निम्न पंक्तियों के माध्यम से भावाभिव्यक्ति प्रदान करते हुए लोक कवि कहते हैं –
दुर्गा कहूं तनै बीरमती झांसी की लक्ष्मी बाई।
धन–धन सै तनै कलावती मेरी नार बहादुर पाई........7
इन पंक्तियों में कवि ने एक ऐसी औरत के बारे में बताया है जो किन्हीं भी परिस्थितियों में अपने सतीत्व धर्म के मार्ग से जरा भी विचलित नहीं होती और अपने पति के विश्वास को जीत लेती है।
लोककवि गुणपाल ने अपने सांगों के माध्यम से वर्तमान समाज में अश्लीलता की विडम्बना का पर्दा फास किया हैद्य जार कर्म की दुषित मानसिकता का बखान उनके सांग 'हरप्यारी सेठानी' में देखा जा सकता हैद्य व्यभिचार नारी अस्मिता का एक ज्वलंत प्रश्न हैद्य कवि का कहना है कि दृ
परधन बीर बिराणी पै ललचाया ना करते
अपनी नीयत डिगाकै धोरै जाया ना करते 8
प्रस्तुत पंक्तियों में नारी के अंदर मौजूद पति दृ पत्नी की एकनिष्ठता का भाव दृष्टिगोचर हुआ हैद्य

निष्कर्ष रू—

साहित्य सामाजिक परिवेश का आईना होता हैद्य हरियाणा के लोकसाहित्य की अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले लोक कवियों व सांगियों ने अपनी जीवन शैली के माध्यम से नारी के प्रति भावात्मक व संवेदनात्मक प्रस्तुतीकरण किया है वह अनुपम हैद्य इन अल्पज्ञात सांगियों ने सामाजिक ढाँचे की धूरी नारी के विविध स्वरूपों को संजोकर उसके विमर्श की व्यथा को प्रकट करने का काम किया हैद्य यह व्यथा उनके सांगों में बड़ी सार्थक बन पड़ी हैद्य

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः—

1. डॉ. सौ. जे. एम. देसाई 'आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी' विद्या प्रकाशन पृष्ठ दृ ३८
2. डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, 'मुंशीराम जांडली ग्रंथावली— पृष्ठ 143
3. वही पृष्ठ 170
4. वही पृष्ठ 113
5. डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर 'महाशय गुणपाल कासंडा हरियाणवी ग्रंथावली' पृष्ठ 201
6. वही पृष्ठ 196
7. वही पृष्ठ 155
8. वही पृष्ठ 162

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 170-172

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वयं प्रकाश की कहानियों में पारिस्थितिक सजगता

–कनकलता. ओ

शोध छात्रा, कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्चिन।

बाजारवाद के वर्तमान युग में मनुष्य इतना स्वार्थी हो गया है कि वह प्रकृति को बेरहमी से दोहन कर रहा हैद्य वह प्रकृति को निचोड़कर उसे चूस–चूसकर अपनी भौतिक सामग्रियां बटोरने के लिए भागदौड कर रहा हैद्य पर्यावरण संकट का मुख्य कारण मनुष्य की भोग लिप्सा हैद्य पर्यावरण हमारे चारों ओर का आवरण हैद्य वह सम्पूर्ण जीव – जगत को चित्रित करने वाले अनेक घटकों का सामूहिक नाम हैद्य जीव–जंतुओं और उनके पर्यावरण के परस्पर संबंधों के अध्ययन को ष्इकोलॉजीष्(म्बवसवहल) या ष्पारिस्थितिकीष् कहते हैंद्य भारतीय संस्कृति अरण्य संस्कृति हैद्य हम प्राकृतिक शक्तियों में दैवीय शक्ति का आरोप लगाकर उनकी पूजा करते थेद्य प्रकृति और मानव के बीच माँ–बेटे का संबंध थाद्य आज वह संबंध टूट रहा हैद्य बढ़ती जनसंखा, औध्योगीकरण, शहरीकरण और विकास योजनाओं से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा हैद्य इनके दुष्परिणाम हैं – तेजाबी वर्षा, ओज़ोन परत का क्षरण, सुनामी, अकाल, बाढ़, बढ़ता तापमान, भूकंप, पिघलती बर्फ, बदलते मौसम आदिद्य पर्यावरण प्रदूषण आज विश्व भर की गंभीर समस्या बन गई हैद्य समकालीन हिन्दी साहित्य में इस पारिस्थितिक संकट का चित्रण देख सकते हैंद्य

स्वयंप्रकाश समकालीन हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध हस्ताक्षर हैंद्य उनका जन्म 20 जनवरी 1947 में इंदौर(मध्यप्रदेश) में हुआ थाद्य उन्होंने कहानी, उपन्यास, संस्मरण, निबंध, नाटक, आदि क्षेत्रों में अपना योगदान दिया हैद्य वे जनवादी पत्रिका ष्क्योंष् , ष्चकमकष् और वसुधाश का भी संपादक रह चुके हैंद्य उन्होंने ष् मधुमती कहानी विशेषांकष् का भी संपादन किया हैद्य ष्मात्रा और भारष्, ष्सूरज कब निकलेगाष्, ष् आधी सदी का सफरनामाष् ष्आएंगे अच्छे दिन भीष् आदि प्रमुख कहानी संग्रह हैंद्य उनकी कहानियां विचारोत्तेजक हैंद्य उनकी कहानियों में पारिस्थितिक विमर्श के दायरे में आनेवाली कुछ कहानियां हैं– ''बलिष्, ''नैनसी का धूड़ाष् और ष्संधानष्द्य

''बलिष् में एक आदिवासी गाँव में कारखाने के आने पर आए बदलाव का चित्रण किया हैद्य श्ष्मंगलीष् नामक आदिवसी लड़की के माध्यम से ग्रामीण जीवन में आए परिवर्तनों को प्रस्तुत किया हैद्य शहरवाले आदिवासी गाँव के ज़मीन के नीचे छुपे कीमती पत्थर लेने के लिए कारखाने बनवाते हैंद्य इससे गाँव की सहज जीवन नष्ट होता हैद्य वे पेड–पौधों को काटते हैं– '' पेड़ काटेद्य उनकी जगह पक्के मकान खड़े हो गएद्य भूमि समतल कर दी गईद्य बड़ी–बड़ी मशीनेंद्य मकान और मकान के बीच भी डामर की सड़कद्य सारी ज़िंदगी बदल गईद्य''1 गाँव के बच्चे सब जो पहले गाय–भैंस आदि के पीछे जाते थे, काम केलिए कारखाने जाने लगते हैंद्य वहां की ग्रामीण ज़िंदगी बदलने लगती हैद्य

शहरवाले आदिवासी लोगों को अपने घर में नौकर बनाकर रखने लगते हैंद्य मंगली को भी उसके घरवाले मामी और साहब के घर में नौकरानी बनकर जाने को कहते हैंद्य कुछ दिन बाद वे मंगली को शहर ले जाते हैंद्य शहर का माहौल उसे अच्छा नहीं लगता हैद्य धीरे–धीरे वह इस नए माहौल को अपनाने लगती हैद्य वह शहर के तौर–तरीकों से परिचित होती हैद्य एक दिन मंगली को ले आने उसके पिताजी आते हैंद्यमामी भी उसे ज़बरदस्ती गाँव वापस भेजती हैद्य वह न शहर की होती है न गाँव कीद्य उसकी इस असहाय स्थिति पर लेखक लिखते हैं– "लड़की को बहुत असहायता का अनुभव हुआद्य उसे लगा, जैसे अब वह तैर नहीं रही है, सिर्फ बह रही हैद्य बहना आसान है, तैरना कठिन ३.लेकिन तैरनेवालों को पता होता है कि उसे कहाँ जाना है अथवा कहाँ नहीं जाना हैद्य बहने वाले के हाथ में कुछ नहीं होताद्य"2 गाँव वापस आने पर उसमें भारी बदलाव दिखाई देता हैद्य अब उसे गाय, भैंस, कीचड आदि पसंद नही हैद्य उसे अब तेल–मसाले में तरकारी भुनकर खाना,चाय पीना आदि पसंद हैद्य उसमें साफ़–सफाई का विचार आ गया हैद्य वह खाने से पहले हाथ धोने और मक्खियाँ उड़ाने लगती हैद्य वह साईकल भी चलाती हैद्य कुछ दिन बाद मंगली की इच्छा के विरुद्ध उसकी शादी एक शराबी, निकम्मे आदमी से करवाता हैद्य सुहागरात में पति उसका बलात्कार करता हैद्य अंत में वह शोषण की बलि वेदी पर चढ़कर आत्महत्या करती हैद्य इस तरह प्रकृति के साथ मंगली भी विनाश की बलि वेदी पर खडी हैद्य

"नैनसी का धूड़ा" कहानी में ष्धूड़ा" नामक बैल और नैनसी नामक आदमी के द्वारा मनुष्य के अमानवीय व्यवहारों का पर्दाफाश किया हैद्य इसमें मानव का जानवरों के साथ किये जा रहे अमानवीय व्यवहार और मानव–मानव के बीच का आत्मीय संबंध आदि चित्रित हैद्य इसमें दो कहानियाँ समानांतर चलती हैं एक नैनसी का और दूसरी धूडे कीद्य धूडे को कई अत्याचार सहना पड़ता हैद्य एक मूक जानवर होने के कारण वह इन अत्याचारों को बयान नहीं कर पाता हैद्य लेकिन उसकी आँखों से उसका दर्द एवं विवशता हम देख सकते हैं– "सूनी, काली पानीदार, बड़ी–बड़ी आँखें, टग– टग आसमान को ताक रही हैद्य उनमें कोई ऊष्मा, कोई जीवन, कोई हरकत नहीं हैद्य एक त्रासद याचना है सिर्फ श्मुगती दिलाओश्द्य"3 वह मनुष्य के अत्याचारों से मुक्ति चाहता हैद्य

बचपन से ही वह मनुष्य के अत्याचारों का शिकार बनते आ रहा थाद्य जब वह बचपन में खेत में खेलकूद करके थककर दूध पीने माँ के पास आता है तो मनुष्य उसे खींचकर दूर कर दिया जाता हैद्य प्रकृति ने हर माँ के थन में अपने बच्चों के लिए दूध भर दिया हैद्य लेकिन स्वार्थी मानव उस माँ– बच्चे की संवेदनाओं को नज़रंदाज़ करते हैंद्य मनुष्य उनका दूध बेचकर पैसा कमाता हैद्य यह अत्याचार की शुरुआत हैद्य उसे बिना वजह मारने पर दुखी होकर यों सोचता है–" क्यों, क्यों मारा उसने? तुम मुझे दूध भी नहीं दोगे और घास भी नहीं दोगे खाने! क्यों?"4

गाँव में अकाल होने पर नैनसी धूडे को पचास रूपये में बेचता हैद्य नैनसी तो मजदूरी की तलाश में रामनगर चला जाता हैद्य नए घर में नैनसी को कई अत्याचार सहना पड़ता हैद्य वे उसका सींग काट देते हैंद्य उसके गर्दन पर भी चोट लगा थाद्य उसपर मक्खियाँ आती हैंद्य धीरे–धीरे उसमें पीप पड गई और गंधाने लगीद्य कोई भी उसकी शुश्रूषा नहीं करता हैद्य वह गाँव की और वापस लौटता है–" धीरे–धीरे अपने मरियल बीमार शरीर और उसके उपजीवियों को ढोते हुए न जाने किस चेतना...किस अंतरूप्रेरणा , किस आवेग के सहारे...उसने अपने गाँव की डगर ढूंढ लीद्य "5 अंत में उसकी मृत्यु होती हैद्य मानव की तरह जानवर

भी अपने गाँव और घर से बहुत प्यार करते हैंद्य यहाँ स्वयंप्रकाश जी ने मूक–निरीह प्राणी की मूक संवेदनाओं को वाणी देने का प्रयास किया हैद्य दूसरी तरफ नैनसी भी झूठे आरोप में फंसकर मुजरिम बन जाता हैद्य अंत में बीमार होता हैद्य बैल की तरह उसके शरीर पर फोड़े–भूसी हो जाता है और मर जाता हैद्य नैनसी और धूड़ा दोनों मनुष्य के अमानवीय व्यवहारों के कारण तरस–तरस कर मरते हैंद्य

”संधानष कहानी में महानगर में रहने वाले विश्वमोहन का गाँव की ओर वापसी को चित्रित किया हैद्य वह मध्यवर्गीय परिवार का एक व्यक्ति है जिसे गाँव में रहना पसंद हैद्य लेकिन पत्नी और बच्चों के कहने पर वे घूमने के लिए महानगर जाते हैंद्य महानगर की भीड़ ,भागती ज़िंदगी और चकाचौंध उनको आकर्षित करते हैंद्य कुछ दिन बाद गाँव वापस आने पर भी महानगर की यादों से मुक्त नहीं हो पाते हैंद्य उन्हें गाँव की ज़िंदगी बेरंग सी लगती हैंद्य इस बीच उनके घर में महानगर में रहनेवाले दोस्त और परिवार आते हैंद्य वे महानगर की ज़िंदगी से ऊबकर गाँव आए थेद्य वे गाँव के स्वच्छ जीवन का महत्व इनको समझाते हैंद्य वर्तमान समय में लोग शिक्षा, नौकरी, चिकित्सा आदि के लिए महानगर में रहते हैंद्य वे पहले इस चकाचौंध में फंस जाते हैंद्य लेकिन कुछ दिन बाद वे अपने को अकेला और असुरक्षित महसूस करने लगते हैंद्य क्योंकि महानगर में सब अपने– अपनी ज़िंदगी में व्यस्त हैंद्य उन्हें दूसरों के बारे में सोचने का समय नहीं हैद्य लेकिन गाँव में सब एक साथ मिलजुलकर रहते हैंद्य वहां लोगों के बीच में आत्मीय संबंध हैंद्य स्वयं प्रकाश जी ने इसमें गाँव की ओर लौटने का आह्वान देते हैंद्य

स्वयंप्रकाश जी की तीनों कहानियों में प्रकृति ही मुख्य विषय हैद्य उन्होंने मनुष्य की मनुष्य और प्रकृति विरोधी रवैये को इन कहानियों में सूक्ष्म ढंग से प्रस्तुत किया हैद्य

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.आधी सदी का सफरनामा (कहानी संग्रह) – स्वयंप्रकाश ,पृ.160
पेंगुइन बुक्स इण्डिया, नई दिल्ली, 110 066

2.वहीं – पृ.188

3.वहीं – पृ.106

4.वहीं – पृ.108

5.वहीं – पृ.119

मोबाइल नंबर 9526933667

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 173-175
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

काशीनाथ सिंह की कहानियों में स्त्री–विमर्श के विविध आयाम

–प्रीति पाण्डेय, शोधार्थी
–डॉ. राजेश दुबे, शोध–निर्देशक
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

'स्त्री–विमर्श' का शाब्दिक अर्थ है 'स्त्री से संबंधित विचार या विवेचन' अर्थात् स्त्री से जुड़े हुए महत्वपूर्ण पहलुओं की चर्चा। नारी–विमर्श स्त्री–पुरुष में समानता, स्वतंत्रता और उसकी अस्मिता की पहचान बनाने की एक कोशिश का नाम है। स्त्रियों के प्रति रूढ़ हो चुकी मान्यताओं, परंपराओं के प्रति असंतोष व उससे मुक्ति का स्वर है स्त्री–विमर्श। पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे नैतिक–मूल्यों, मापदण्डों व अंतर्विरोधों को समझने व पहचानने की गहरी अंतर्दृष्टि है। परिवार स्त्री–विमर्श और उससे जुड़े प्रश्नों की मुख्य धुरी है। परिवार के इर्द–गिर्द ही स्त्री–जड़ता व शोषण के बीज दिखाई देते हैं।

स्त्री–विमर्श सदियों से चले आ रहे मौन को अभिव्यक्ति देने का माध्यम है। स्त्री–विमर्श साहित्य में 'विमर्श' के रूप में साठ से सत्तर के दशक के आस–पास आता है। इस 'विमर्श' का मुख्य उद्देश्य स्त्रियों को सामाजिक, आर्थिक तथा मानसिक शोषण से मुक्ति दिलाकर उन्हें पुरुष के समान अधिकार दिलाना एवं उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व और अस्मिता को प्रतिष्ठित करना है और यह कभी आंदोलन या कभी साहित्य के माध्यम से आगे बढ़ता रहा है। इसमें आधुनिकता के सार्थक तत्वों को स्वीकार करने वाले समकालीन कथाकार काशीनाथ सिंह का नाम अग्रणी है। उन्होंने अपनी साहित्य–यात्रा के दौरान घटित होने वाली घटनाओं से स्त्रियों के जन–जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों एवं उनसे उत्पन्न समस्याओं से जूझती स्त्री का यथार्थ चित्रांकन अपनी कहानियों में किया है।

सृजनात्मक चेतना से परिपूर्ण एवं कथा–संसार में अपना सर्वोत्कृष्ट स्थान स्थापित करने वाले काशीनाथ सिंह के अब तक क्रमशः दस कहानी–संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं– 'लोग बिस्तरों पर' (1968), 'सुबह का डर' (1972), 'आदमीनामा' (1978)', कविता की नयी तारीख' (1979), 'कल की फटेहाल कहानियाँ' (1980), 'सदी का सबसे बड़ा आदमी' (1986), 'प्रतिनिधि कहानियाँ' (1982), 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ' (1994), 'कहानी उपाखान' (2003), 'पत्ता–पत्ता बूटा–बूटा' (2016)।

उपर्युक्त कथा–संग्रहों में संकलित कहानियों में कथाकार ने स्त्री–आकांक्षा को ऐसी शक्ति दे दी है कि मर्यादा, विवशता, नैतिकता और पारिवारिक सीमाओं में बँधी स्त्री अपनी मुक्ति, आकांक्षा और अस्मिता के नए ध रातल खोजने हेतु सतत प्रयत्नशील है। विकसित, विकासशील और अल्पविकसित देशों में स्त्री स्वतंत्रता की माँग करने लगी है। समय एवं आवश्यकता के साथ बढ़ती हुई माँग शिक्षा, आर्थिक निर्भरता और संवैधानिक अधिकारों का आधार लेकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री–शक्ति की स्थापना कथाकार का मूल उद्देश्य है।

लेखक ने 'कस्बा, जंगल और साहब की पत्नी' कहानी में नारी–जीवन की यथार्थ समस्याओं को मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि से जोड़ते हुए बहुत ही कुशलता पूर्वक उकेरा है। इस कहानी में मिस्टर गोठी अपनी पत्नी मिसेज गोठी को कार्य में व्यस्त होने के कारण समय नहीं दे पाते, तो उनके प्रेमाभाव में मिसेज गोठी सोचती है कि– ''जबकि एक औरत देखने में अच्छी हो, शरीर हृष्ट–पुष्ट हो, बात करना जानती हो, अखबार भी पढ़ लेती हो, कोई कैसे छोड़ सकता है ? और असल बात तो यह कि कोई छोड़ना ही क्यों चाहेगा ? लेकिन... हे ईश्वर... वे माथे का पसीना पोंछने लगी।''1 अर्थात् आज भी नारी का अंतर्मुखी स्वभाव उसके दुःख एवं चिंता का कारण बना हुआ है। अंतर्मुखी नारी के मन की चिंता का कारण उसके जीवन में उपेक्षित प्रेम का अभाव है।

'सूचना' कहानी में स्त्री के शारीरिक सौंदर्य के प्रति आम आदमी की कामातुर मानसिकता का यथार्थ चित्रण किया है। कहानी में गाँव की एक लड़की पानी से डूबी सड़क पार कर एक छोर से दूसरे छोर तक जाना चाहती है। पानी पिंडलियों तक होने के कारण वह साड़ी को घुटनों तक ऊपर कर लेती है तो, ''सबकी निगाह उस लड़की पर है। वे तरह–तरह की आवाजें निकाल रहे हैं, सीटियाँ बजा रहे हैं और ठहाके लगा रहे हैं, यार माल तो बड़ा पटाखा है।''2 यह कहानी स्त्री के प्रति कुदृष्टि और विकृत मानसिकता रखने वाले पुरुषों एवं समाज से रू–ब–रू कराती है।

'एक बूढ़े की कहानी' अपनी ही पाँच साल की लड़की के साथ किए गए वीभत्स बलात्कार का अंकन है। इस कहानी के माध्यम से कथाकार ने सभ्यता एवं संस्कृति का देश कहे जाने वाले भारतीय समाज में स्त्री की दुर्दशा को जड़ सहित उखाड़कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। लेखक ने अबोध बच्ची की दुर्दशा का यथार्थ चित्रण करते हुए लिखा है– ''ओफ, आप जानो कि बिस्तर पर पट्टियों का पुलिंदा मालूम पड़ती है। उसकी जाँघें, कुलहे और धूस हो चुके हैं और आधा बदन पलस्तर के अंदर है। कहते हैं कि उसकी टट्टी और पेशाब के रास्ते फटकर एक हो गए हैं। शरीर पर खरोंच के निशान अब भी बाकी हैं। मुझे जो उसके लिए अपरिचित और बूढ़ा बाबा है – देखते ही अपने बदन पर चादर खीचंने लगी, जैसे कोई सयानी लड़की हो – लजाधुर।''3 कथाकार वर्तमान समाज में आए दिन होने वाली इस प्रकार की वीभत्स घटनाओं के बीच पनपते समाज के भविष्य की चिंता करते नज़र आते हैं।

वर्तमान समाज की स्त्रियों में एक ओर अपनी स्त्रीत्व की रक्षा का खतरा मँडरा रहा है, तो दूसरी ओर अर्थाभाव से पीड़ित होकर नौकरी बचाने के लिए अपनी प्रतिष्ठा को भी दाँव पर लगाने को मजबूर है। काशीनाथ ने 'अपने लोग' कहानी में नौकरी बचाने के लिए स्त्री के यौन–समस्या के संश्लिष्ट रूप का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है– ''दफ्तर में बॉस के स्टेनो के साथ अनैतिक संबंध हैं, उसकी भनक चपरासी को भी होती है, किंतु स्टेनो मजबूर है अगर बॉस को खुश नहीं रखा, उनकी इच्छा नहीं पूरी की तो नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा।''4 अर्थात् आर्थिक विपन्नता से उत्पन्न मनःस्थिति स्त्री के भटकने का कारण बनी।

'हस्तक्षेप' कहानी में शहर के किनारे बस्तियों में रहने वाली निम्नवर्गीय नारी की दशा का वर्णन कथाकार ने किया है। कहानी में जंगी नामक युवक अपनी पत्नी को बड़ी ही बेरहमी से मारता–पीटता है और बस्ती के लोग स्त्री को बचाने के बजाय तमाशा देखते नज़र आते हैं। 'इक्कीसवीं सदी के देश का सफर' कहानी में स्त्री को एक मनोरंजन का साधन और मानवीय वासना–तृप्ति का साधन मात्र बताया गया है।

'संकट' कहानी में सैन्य नायक राधो छुट्टी पर घर आता है, तो वह अपने नवजात शिशु के आगमन पर

खुश होने के बजाय काम–वासना की तृप्ति न होने पर उसका संपूर्ण स्वभाव अस्वाभाविक हो जाता है। इतना ही नहीं वह अपनी पत्नी को मारता–पीटता भी है। यहाँ पर लेखक ने स्त्री को हर परिस्थिति में मजबूर पाया है।

काशीनाथ सिंह की बहुचर्चित एवं सुप्रसिद्ध कहानी 'कविता की नयी तारीख' में उत्तरार्द्ध की कहानी स्त्री के नेतृत्व में आगे बढ़ती है। ''वैसे कहानी कहने का काम तो पुरुष ही करता है, पर घटनाओं की बागडोर स्त्री संभाल लेती है – वह स्त्री जो बात–बात पर किस्मत का रोना रोती रहती थी। अपने पति के अपमान का बदला यही स्त्री लेती है।... और यह वही स्त्री है जो मेहमान नवाजी के ऐश को लात मारकर अपनी टूटी–फूटी गिरस्ती में वापस लौटने के लिए पति को मजबूर कर देती है। गरज़ कि फैसला लेने में पहल करती है – ऐसा फैसला जिसके बारे में स्वयं पति डाँवाडोल है। यह स्त्री उस दौर की है जब हिंदी में न तो नारी–मुक्ति आंदोलन की हवा चली थी और न 'स्त्री–विमर्श' बौद्धिकों का शगल था। इस दृष्टि से 'कविता की नयी तारीख' की पत्नी सोना आठवें दशक की एक नई स्त्री है।''5

काशीनाथ सिंह अपनी कहानियों में 'कंट्रास्ट' और 'समानांतरता' की युक्ति का बहुत ही खुबसूरती से इस्तेमाल करते हैं। 'अपना रास्ता लो बाबा' और 'कविता की नयी तारीख' को साथ–साथ पढ़ने से अमानवीकरण की इस प्रक्रिया के प्रति कहानीकार की राय का खुलासा ज़्यादा होता है। ये दोनों ही कहानियाँ एक विशिष्ट अर्थ में आधुनिक स्त्री के व्यवहार, शिक्षा, सुरुचि और सुसंस्कृति का एक गंभीर विमर्श प्रस्तुत करती है। कहानीकार ने ग्रामीण एवं शहरी स्त्री के जीवन के विविध पक्षों को चित्रित किया है। एक तरफ ग्रामीण स्त्री–जीवन में आने वाली समस्याओं एवं बाधाओं को तोड़तर आगे बढ़ने के लिए स्त्रियों को प्रेरित करते हैं, तो दूसरी तरफ शहरी स्त्रियों से अपनी सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा करने की अपील भी करते हैं।

काशीनाथ सिंह ने अपने कथा–साहित्य में स्त्री–विमर्श पर गंभीरता से विचार किया है एवं उनकी समस्याओं को सुलझाने की सिफारिश भी की है। कथाकार का मानना है कि स्त्रियों को उनका अधिकार अवश्य मिलना चाहिए, परंतु स्त्रियों को भी अपने अधिकार का दुरूपयोग कतई नहीं करना चाहिए। बहुत हद तक स्त्रियों की दशा एवं दिशा दोनों में परिवर्तन हुआ है। स्त्रियाँ शिक्षा, समाज एवं राजनीति के क्षेत्र में भी अहम भूमिका निभा रही हैं।

काशीनाथ सिंह ने अपनी कहानियों में स्त्री की युगीन समाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, पारिवारिक, अकेलेपन, अजनबीपन आदि समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। आपकी कहानियों में स्त्री के जीवन पर जातिगत सामाजिक विसंगति, स्त्री–पुरुष में आर्थिक तंगी को लेकर आए दिन होने वाले विवाद से पारिवारिक विघटन जैसी सामान्यतः घटित होने वाल घटनाएँ यथार्थ रूप में चित्रित हैं। इस प्रकार काशीनाथ सिंह ने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज में व्याप्त स्त्री–विमर्श के सभी पहलुओं पर अपनी दखल दी है, जो भारतीय समाज में महिला सशक्तिकरण का मूल आधार बन सकती है।

संदर्भ–सूची

1. सिंह, काशीनाथ. कहानी उपाखान. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, तेरहवाँ संस्करण, 2019, पृ. 53.
2. वही ; पृ. 147.
3. वही; पृ. 82.
4. जगताप, रमेश. काशीनाथ सिंह का कथा–साहित्य. कानपुर : चन्द्रलोक प्रकाशन, पहला संस्करण, 2014, पृ. 61.
5. सिंह, कामेश्वर प्रसाद कथा शिखर काशीनाथ सिंह. नई दिल्ली : कौटिल्य बुक्स, दरियागंज, पहला संस्करण, 2021, पृ. 70.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 176-183

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी उपन्यासों में किन्नर समाज की व्यथा कथा

–डॉ. अमनदीप कौर

असिस्टेंट प्रोफेसर, गुरु नानक गर्ल्स कॉलेज, सतपुरा, यमुनानगर 135003

साहित्य और समाज परस्पर एक–दूसरे से संबंधित है। समाज में जो कुछ व्याप्त है, वह सब साहित्यकार की संवेदना, चिंता और चिंतन का विषय होता है। जिसकी अभिव्यक्ति के द्वारा वह समाज में अपनी भूमिका का निर्वाह करता है। साहित्य समाज के बदलते स्वरुप, रुचियों और परिस्थितियों के सम्मुख एक चुनौती के रुप में आता है। वह अपने समय की कलात्मक अभिव्यक्ति करता है, साथ ही समाज में हो रही उथल–पुथल और बदलावों को दिखाते हुए मानवीय संवेदनाओं से वंचित हो रहे समाज की ओर से लड़ाई भी लड़ता है। साहित्यकार परिस्थितियों से प्रभावित होकर ही साहित्य का सृजन करता है। यौनिक अस्पष्टता के कारण तिरस्कृत जीवन जीने को विवश तृतीय लिंगी समाज ने भी साहित्यकारों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है और पाठकों को इन लोगों के समस्यापरक जीवन से रुबरु करवाया। साहित्यकारों ने किन्नर समाज की समस्याओं, असमानता, लैंगिक विकृति के कारण तिरस्कृत एवं उपेक्षित जीवन जीने के यथार्थ को दिखाया है। तृतीय लिंगी समाज अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ते हुए अनेक प्रकार की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अवरोधों से जूझ रहा है। आज ये अपने हक की लड़ाई लड़ रहे है।

किन्नर या हिजड़ों से अभिप्राय उन लोगों से है, जिनके जननांग पूरी तरह विकसित न हो पाए हों अथवा पुरुष होकर भी स्त्री स्वभाव के बीच रहने में सहजता महसूस होती है। किन्नरों को चार शाखाओं में विभाजित किया गया है – बुचरा, नीलिमा, मनसा और हंसा। बुचरा शाखा में जन्मजात, नीलिमा शाखा में जबरन बनाए गए, मनसा शाखा में अपनी इच्छा से बने और हंसा शाखा में उन्हें स्थान दिया जाता है जो शारीरिक कमी के कारण किन्नर बनते हैं। डॉ. रमाकांत राय के शब्दों में :– " हिजड़ा होना प्राकृतिक है। शरीर विज्ञान के दृष्टिकोण से गुणसूत्रीय विशिष्टता को कभी सम्मान की नजर से नहीं देखा गया। इसे हीन दृष्टिकोण से देखे जाने के तमाम सामाजिक–ऐतिहासिक उदाहरण भरे पड़े हैं।"1

आज भारतीय समाज और साहित्य में किन्नरों की समस्या एक सामाजिक समस्या का रुप धारण कर चुकी है। किन्नर वर्ग अपनी अस्मिता और अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहा है। पहले समाज में थर्ड जेंडर के साथ समान व्यवहार किया जाता था, परन्तु वर्तमान समय में समाज इन्हें हेय मानता है, घृणा की दृष्टि से देखता है। जैसे वह मनुष्य नहीं किसी ओर ग्रह के प्राणी हों। आज भारत में इनकी संख्या सात से आठ लाख के आस पास होगी और यह छोटा सा समुदाय साधारण जीवन जीने के लिए कठिन संघर्ष कर रहा है। ये नाच गाकर, बधाई बजाकर तथा शुभ अवसरों पर नेग लेकर अपना पालन पोषण करते हैं। ये जन्म से ही समाज की उपेक्षा, उपहास, तिरस्कार सहने को अभिशप्त है। सबकी उपेक्षा व उपहास सहने वाला किन्नर समाज भी आम आदमी की तरह

जीने का अधिकार रखता है। लेकिन समाज की मानसिकता आज भी उनके प्रति रुढ़िवादी बनी हुई है। वर्तमान में सुप्रीम कोर्ट द्वारा किन्नरों को तीसरे लिंग के रुप में मान्यता दिए जाने के बावजूद इनकी सामाजिक स्वीकार्यता और समाज में भागीदारी को लेकर संकट बना हुआ है। किन्नर समुदाय पूरी ताकत से अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत है।वर्तमान युग में किन्नर समुदाय अपमान और परिहास का विषय बन गया है, समाज ने उन्हें अपनी जरूरतों के हिसाब से चुना है, वह मांगलिक और शुभ अवसरों पर इनको नाच–गवाकर विदा कर देता है। कुछ रुपये–पैसे देकर इन्हें अपनी देहरी से विदा करना समाज अपनी जिम्मेदारी समझता है। शेष दिन केवल उपहास, रोजी–रोटी का संकट, तिरस्कार और उपेक्षा जैसी परिस्थितियों से इन्हें गुजरना पड़ता है। जिसके कारण समाज का यह अंग अभिशापित जीवन व्यतीत करने को विवश हो रहा है। हिन्दी साहित्य के अनेक जागृत और सजग साहित्यकारों ने किन्नर समाज की इस वास्तविकता को अपने उपन्यासों में बयां करके, किन्नर समुदाय की समस्याओं को उजागर करने का प्रयास किया है।

हिन्दी साहित्यकारों ने किन्नर समुदाय से संबंधित अनेक उपन्यास लिखे हैं। इन उपन्यासों में किन्नर समुदाय के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक पक्ष का चित्रण है। उपन्यासकारों ने किन्नर समुदाय की पीडा, अपमान, शोषण आदि को यथार्थवादी धरातल पर प्रस्तुत किया है। किन्नरों को उनकी अस्मिता से परिचित कराया और समाज में उन्हें जीने लायक सम्मान और अधिकार प्राप्त कराने का प्रयास किया है। किन्नर सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से शोषित है।

नीरजा माधव कृत 'यमदीप' उपन्यास किन्नरों की संवेदना, किन्नरों के मन की अतल गहराईयों में हिल्लोरे लेने वाली भावनाओं एवं उनके जीवन यथार्थ की पर्तो को खोलता है। यमदीप उपन्यास की नायिका नाजबीबी उर्फ नंदरानी है, जो महताब गुरु के आधिपत्य में बनारस स्थित किन्नर बस्ती में रहती है। चालीस वर्षीय नाजबीबी किन्नर ही इस उपन्यास की मुख्य पात्र है। उसके साथ चमेली, शबनम और मंजू हैं। वे बीस–पच्चीस किन्नरों की बस्ती में रहते है। वहां गली में एक पागल स्त्री प्रसव वेदना से तड़पती एक बच्ची को जन्म देकर मर जाती है। बच्ची के जन्म के बाद सभी वहां से हटने लगते हैं, तब नाजबीबी उस बच्ची को लेकर कहती हैरूद्द श्अब कोई पूछनहार नहीं इसका तो क्या हम भी छोड़ जाएंगे? अरे हम हिजड़े हैं......इन्सान हैं क्या जो मूंह फेर लें।श्2 उस बच्चे को लेने के लिए समाज तैयार नहीं हुआ, तब किन्नर नाजबीबी समाज पर व्यंग्य प्रहार करके उस बच्ची को अपने साथ ले जाता है, उसे सोना नाम देता है और माँ बनकर उसका पालन पोषण करता है।लेखिका ने किन्नरों की ममता और मानवीय संवेदना को उजागर किया है। इस उपन्यास में मानवी और आनन्द कुमार के माध्यम से किन्नरों से संबंधित ऐतिहासिक संदर्भो को रेखांकित करने के साथ–साथ उनकी समस्याओं एवं मानसिक यातनाओं को उजागर किया गया है। साथ ही उनकी सामाजिक उपयोगिता की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया है।लेखिका का मानना है कि किन्नरों की अवहेलना करने की बजाय उन्हें रोजगार उपलब्ध कराया जाए तो वे अपनी पारम्परिक भूमिका से बाहर आ सकेंगे और स्वतंत्र रुप से इज्जत से जीवनयापन कर सकेंगे।

डॉ. अनुसूईया त्यागी के 'मैं भी औरत हूँ' उपन्यास में लेखिका स्वयं स्त्रीरोग एवं प्रसुती विशेषज्ञ है। उन्होनें ऐसी दो बहनों की कहानी लिखी है, जिन्हें स्वयं या उनके परिवार को लबें समय तक उनके तृतीय लिंगी होने का आभास तक नहीं होता। उपन्यास में मास्टर तुलसीराम की दोनों बेटियां लैंगिक विकृतियों के साथ पैदा हुई हैं। यह बात न तो लडकियाँ जानती हैं और न ही माता–पिता। छोटी बेटी रोशनी को तो उस समय पता चलता

है, जब गांव के लड़के उस का बलात्कार करना चाहते है और उसे हिजड़ा कहकर भाग जाते हैं। तभी रोशनी को लगता है उसके शरीर में कुछ न कुछ अधूरा है। इधर मंजुला की बढ़ती उम्र से परेशान मां सोचती है, मंजुला सत्रह की होकर अठारहवें में लग गई है, लेकिन उसे मासिक स्त्राव अब तक क्यों नहीं शुरु हुआ? अब वो कोई आलस्य नहीं करेगी, कल ही दोनों लड़कियों को गाजियाबाद दिखाकर लाएगी। अगले दिन पति—पत्नी दोनों बेटियों को डॉ. रमन्ना के नर्सिंग होम लेकर जाते हैं। जब ऑप्रेशन करवाने के लिए जाते हैं, तब सबसे पहले उनके मन में समाज का भयानक चेहरा सामने आता है। तुलसीराम डॉक्टर से कहते हैंरूदृ श्डॉक्टर साहब, मैं दोनों बेटियों को लेकर आ गया हूँ, अब आप दोनों बेटियों का ऑप्रेशन कर दीजिए, पर आपसे प्रार्थना है कि आप हमारे बारे में किसी को भी न बताए, हम यह सब गुप्त रखना चाहते हैं। आप तो जानती हैं कि हमारे समाज में यदि यह सब बातें पता चलेंगी तो लड़कियों की शादी होना भी मुश्किल हो जाएगी।श्3 चौधरी साहब के कथन से भारतीय समाज का वास्तविक चित्र हमारे सामने आता है।ऑप्रेशन करके दोनों बेटियों को स्त्री रुप दिया जाता है। लेखिका ने जहां शरीर विज्ञान और चिकित्सा संबंधी विवरण शामिल किए हैं, वहीं तृतीय लिंगी व्यक्ति की मानसिकता का भी खुलासा किया है। उपन्यास में किन्नरों की समस्याओं का गहन चिंतन करके सैद्धान्तिक रुप में घटनाओं का चित्रण किया गया है।

महेन्द्र भीष्म कृत 'किन्नर कथा' उपन्यास किन्नरों को अपने सम्मान और अधिकारों के प्रति जागरुक करता है। 'किन्नर कथा' के माध्यम से किन्नरों की आह और वेदना की उपस्थिति दर्ज की गई है, जो अपने ही परिवार और समाज से निरन्तर दुखों की पीड़ा झेलते रहते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में रानी आभा सिंह की कोख से दो जुड़वा बच्चियां जन्म लेती हैं, दोनों में से एक शिशु के जननांग अविकसित थे। जब आभा को इस सत्य का पता चलता है तो उस पर दुखों का पहाड़ टूट पड़ता है। वह जानती है कि राजा का व्यवहार गुस्सैल है, वह कभी भी इस बच्ची को अपनी संतान के रुप में स्वीकार नहीं करेगें। इसी कारण आभा चार वर्ष तक इस सत्य को छुपाये रखती है, लेकिन एक दिन राजा को अकस्मात् ही इस घटना का पता चल जाता है और वह क्रोधित होकर कहते हैंरूदृश्हे भगवान! हमारी संतान हिजड़ा! वीर बुंदेला खानदान में हिजड़ा ने जन्म लिया और उसे कानों—कान खबर नहीं, इतना बड़ा धोखा, इतना बड़ा विश्वासघात।श्4 इसी कारण वह अपनी बेटी सोना को मरवाने की योजना अपने दीवान पंचम सिंह के साथ बनाता है, ताकि समाज में उन्हें अपमानित न होना पड़े। इसी कारण वह अपनी पुत्री को दीवान पंचम सिंह को सौंप देता है, ताकि वह उससे छुटकारा पा सके।

उपन्यास का एक अन्य किन्नर पात्र तारा को भी इसी कारण घर परिवार से दूर होना पड़ता है। तारा के माता—पिता उसे दूर नहीं करना चाहते पर तारा का भाई उसे बिल्कुल बर्दाश्त नहीं कर पाता। तारा के स्त्रैण स्वभाव के कारण सभी उसका मज़ाक उड़ाते। तारा स्कूल में लड़कियों से तो बोल लेता पर लड़कों से नहीं बोल पाता। जब परिवार वालों ने उसकी जाँच करवाई तो पता चला कि वह किन्नर है। इस कारण उसके परिवार वालों का रवैया बदल जाता है।प्रस्तुत उपन्यास में नकली किन्नरों की समस्या को भी उठाया गया है, नकली किन्नरों के कारण ही असली किन्नरों का जीवन संकट में पड़ गया है और अपने अस्तित्व को बनाए रखने की चिंता उन्हें सताने लगी है। 'किन्नर कथा' उपन्यास में भी नकली किन्नरों के कारण असली किन्नरों का वजूद खतरे में पड़ जाता है। उपन्यास की पात्र नगीना क्रोधित होकर कहती हैरूदृ श्आज साला कोई नामर्द रंडुवे, तीन—तीन बच्चों का बाप बन बैठे हैं और साड़ी पहनकर सारा हक मारने पर तुले हैं, इनको बहुत शौक है हिजड़ा

बनने का, जाओ सालो बहुचर माई अगले जन्म में तुम सभी की मुराद पूरी कर दे, तब जानेंगे ये कि हिजड़ा होने का क्या दर्द होता है?''5हमारे समाज के अभिन्न अंग किन्नर समुदाय पर लिखा गया यह उपन्यास कहीं न कहीं हमारे समाज को किन्नरों की पीड़ा, दुख–दर्द, जीवन जीने की विभीषका और भंयकर त्रासद स्थिति से अवगत कराना चाहता है।

प्रदीप सौरभ जी के 'तीसरी ताली' उपन्यास में उभयलिंगी, किन्नरों में समलैंगिकता को प्रधान विषय बनाया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में गौतम नामक व्यक्ति के परिवार का वर्णन करते हुए उनके घर से कहानी की शुरुआत हुई है। उनके घर बेटा पैदा होता है, किन्तु जब हिजड़े उनके दरवाजे पर तीसरी ताली बजाते हैं तो गौतम अपने घर का दरवाजा नहीं खोलता। गौतम और उनकी पत्नी घर में बच्चा पैदा होने की खुशी महसूस नहीं कर पाते। क्योंकि खुशियां भी लिंग पर निर्भर करती हैं। गौतम अपने किन्नर बेटे को समाज की नजरों से हमेशा दूर ही रखता है। लेकिन अंततः सामाजिक अवहेलना के कारण उसे बच्चे को त्यागना पड़ता है। प्रदीप सौरभ कहते हैं किरूदृ शहम विकलांग और विक्षिप्त व्यक्ति को पूरी जिन्दगी साथ रखते हैं, लेकिन शारीरिक रुप से स्वस्थ इस वर्ग को साथ रखने को तैयार नहीं है।'' विनीत उर्फ विनीता, जो अपने आप में एक बहुत ही जीवंत चरित्र है, लेकिन अन्दर से बिल्कुल टूटा, असहाय, खालीपन समेटे था। दूसरे शब्दों में कहें कि मृतप्रायः है। वह कामयाब है– जमाने की दृष्टि में। लेकिन अपने मन की कोठरी में वह नितान्त अकेला है। वह अपने एकाकीपन को किसी के साथ साझा भी नहीं कर सकता। अपनी आधी–अधूरी जिन्दगी के साथ कामयाबी का नकाब ओढ़े जीवन जीने का प्रयास ही उसके चरित्र को जीवंत बनाता है।

उपन्यास का एक ओर पात्र आनन्दी आंटी जो अपनी बेटी निकिता को पढ़ाना–लिखाना चाहती है, ताकि बड़ी होकर वह अपने पैरों पर खड़ी हो सके। उन्हे समाज की कोई परवाह नहीं लेकिन सच्चाई इसके विपरीत है, जिसके चलते उन्हे निराशा का मुँह देखना पड़ता है। फिर चाहे लड़कियों का स्कूल हो या लड़कों का, दोनों जगह एक ही जवाब मिला किरूदृ शजेंड़र स्पष्ट न होने के कारण हम दाखिला नहीं दे सकते हैं। यह स्कूल सामान्य बच्चों के लिए है, बीच वाले बच्चों को दाखिला देने से स्कूल का माहौल खराब हो जाता है।श6 यह कैसी विडम्बना है या समाज का नियम है कि एक बालक चाहे कैसा भी है, उसे उसके माता–पिता अपने साथ रखकर पालन–पोषण करना चाहते हैं, वे उसके हर गुण–अवगुण के साथ उसे स्वीकारना चाहते हैं। लेकिन समाज दीवार बनकर खड़ा हो जाता है। यह तो जानवरों से भी बदतर स्थिति है। प्रस्तुत उपन्यास में किन्नरों की वर्जित दुनिया का चित्रण है। 'तीसरी ताली' उपन्यास में समलैंगिकता, गे मूवमेंट, लिंग परिवर्तन, अप्राकृतिक यौनात्मक जीवन शैली और असली–नकली किन्नरों की समस्याओं को व्यक्त किया गया है। इस उपन्यास में कुछ रोचक तथ्य भी सामने आते हैं, जैसे–किन्नर लोगों का शादी करना, करवाचौथ रखना, एक रात के लिए सुहागन बनना और अगले दिन विधवा हो जाना, विधवा होने पर विलाप करना, मंगलसूत्र तोड़ने की प्रथा आदि।'तीसरी तीली' को हिन्दी का साहसी उपन्यास कहा जाना चाहिए। किन्नर समाज बहिष्कृत और दंडितों जैसा जीवन जीने के लिए मजबूर है। 'तीसरी ताली' यह किन्नरों के सुख–दुःख की आवाज है। उनके जीवन का दर्पण है।

निर्मला भुराड़िया का 'गुलाम मंडी' उपन्यास एक प्रमुख कृति है जो सन् 2014 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास यौन शोषण, स्त्री देह व्यापार, मानव तस्करी और किन्नरों को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। प्रस्तुत उपन्यास दो मुख्य कथाओं पर आधारित है। पहली कथा विश्वभर में बच्चों और औरतों की खरीद–फरोख्त की है जिसे

मानव तस्करी कहा जाता है। दूसरी कथा है—किन्नर वर्ग की, जिन्हें पग—पग पर अपनी अधूरी पहचान यानी लिंग स्पष्ट न होने के कारण तिरस्कृत होना पड़ता है। जबकि इसमें उनका स्वयं का कोई दोष नहीं होता। प्रस्तावना में लेखिका ने लिखा हैरू्द श्आखिर यह बाकी इंसानों की तरह मानवीय गरिमा के हक़दार क्यों नहीं? बस यही प्रश्न हमेशा से दिमाग में था। इसलिए इस नावेल में किन्नरों के पात्र रचे गए हैं और उनके बारे में उनकी तरफ से लिखा गया, समाज की ओर से नहीं। उनका पक्ष जानने समझने के लिए मैं कई किन्नरों से मिली हूँ उनके आवास पर भी गई हूँ। किसी किरदार को रचने के लिए आपको पर काया प्रवेश करना पड़ता है। उस किरदार में उतरना पड़ता है।श7 इसीलिए लेखिका की कृति पड़कर लगता है कि उपन्यास यथार्थ धरातल पर रचित है। उपन्यास में दो मुख्य पात्र कल्याणी और जानकी है। इनके अतिरिक्त जानकी की बहन लक्ष्मी व कुछ किन्नर पात्र हैं। आरम्भ में कल्याणी और किन्नर अंगूरी का मिलन होता है। अंगूरी के अनुरोध करने पर कल्याणी उसके साथ उनके डेरे पर जाती है और वहां पर भिन्न—भिन्न मानसिकता वाले किन्नरों से मिलती है। इनमें गुरु का बहुत मान होता है। उपन्यास में किन्नरों की सम्पति हड़पने के लिए नकली किन्नर बनने जैसी घटना भी उजागर हुई है। इस उपन्यास में लल्लन नामक नकली किन्नर के माध्यम से इस तथ्य को स्पष्ट किया गया है। इसके लिए वे पुलिस में शिकायत भी करते हैं किन्तु पुलिस का निराशाजनक उत्तर मिलता हैरू्द श्पुलिस—कलेक्टर में शिकायत भी की थी कि लल्लन हिजड़ों का नाम बदनाम कर रहा है। हिजड़ों के नाम पर वारदातें कर रहा है पर पुलिस ने यह कहकर टाल दिया कि जाँच कैसे करें, किसी की भी मर्जी के बगैर लिंग परीक्षण करना न कानूनी है न प्रजातांत्रिक।श8 ऐसा सिर्फ इसलिए कहा गया क्योंकि पुलिस कुछ करना नहीं चाहती थी।

उपन्यास में रमीला अपने स्कूल जाने के विषय में बोलती है तो हमीदा शर्मिला के बारे में बताते हुए उसे कहती हैरू्द श्बड़े मजे से कह रही है स्कूल की उम्र हो गयी थी। कोई भरती करता क्या पाठशाला में ? पहले पूछते मेल की फीमेल। अपनी वो शर्मिला है न, छोरा बनके भरती हुई थी, तो बहनजी ने एक दिन चड्डी उतरवा ली थी उसकी और जूते मार के स्कूल से निकलवा दिया था उसको। उमराव गुरु के कुनबे ने शरण दी थी उसको नही तो भूखे मर जाती वो भी।श9 अंगूरी भी समर्थन देते हुए व किन्नरों की व्यथा को स्पष्ट करते हुए कहती है कि उन्हें सब जगह से दुत्कारा जाता है। यही प्रश्न थर्ड जेंडर का प्रत्येक व्यक्ति कर रहा है कि उसको दुत्कारने की वजह ठीक नहीं है। उन्हें भी जीने का पूर्ण अधिकार है। उपन्यास का अंत लेखिका ने सुखान्त किया है। 'गुलाम मंडी' उपन्यास विश्व स्तर व देश के अन्दर मानव तस्करी, देह व्यापार, नारी शोषण की कड़वी सच्चाई से रुबरु करवाता है। इसके साथ ही किन्नर विमर्श के विविध सवालों को सामने लाते हुए उनके प्रति सकारात्मक बर्ताव करने की बात भी करता है।

चित्रा मुद्गल बहुमुखी प्रतिभा की धनी है। एक ओर वे सजग एवं क्रियाशील साहित्यकार है तो दूसरी ओर सक्रिय एवं सफल समाज सेविका। चित्रा जी ने समाज की मुख्यधारा से अलग किन्नर वर्ग की संवेदनाओं को आत्मसात करते हुए 'पोस्ट बॉक्स नं 203, नाला सोपारा' उपन्यास की रचना की। यह उपन्यास संवेदनात्मक उपन्यास है और किन्नर समुदाय के दैनिक यथार्थ, संवेदना, पीड़ा और दर्द से अवगत कराता है। प्रस्तुत उपन्यास एक किन्नर बेटे विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली और उसकी माँ वंदना के पत्र व्यवहार के माध्यम से किन्नरों के संघर्षपूर्ण जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति है। उपन्यास में बिन्नी के बिमली बनने की घटना मार्मिक है। अपने अविकसित लिंग के कारण परिवार व समाज द्वारा बहिष्कृत बिन्नी अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्ष करता

है। वह सदियों से चली आ रही घृणित व क्रूर मानसिकता का विरोध कर समाज को यह समझाना चाहता है, कि शारीरिक कमी के कारण मनुष्य को मनुष्य न मानना बहुत गलत है। विनोद परिवार से विस्थापित होकर परिवार की याद में तड़पते हुए माँ से कहता हैरूद् श्तूने मेरी बा, तूने और पप्पा ने मिलकर मुझे कसाईयों के हाथ मासूम बकरी—सा सौंप दिया। मेरी सुरक्षा के लिए कोई कानूनी कार्यवाही क्यों नहीं की? क्यों वह अनर्थ हो जाने दिया तूने, जिसके लिए मैं दोषी नहीं था।श10 विनोद अकेलेपन व अन्तर्द्वन्द्व के समय में अपनी माँ को पत्र लिखता है। वह अन्तर्द्वन्द्व में रहकर अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने की हिम्मत रखता है।

बिन्नी संघर्षशील व्यक्ति है, वह किन्नरों के पारम्परिक पेशे भीख मांगने, नेग मांगने के पक्ष में नहीं है। और किन्नर गुरु के अत्याचारों के बावजूद अपनी पढ़ाई जारी रखता है। बिन्नी जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण रखता है वह जननांग विकलांगता को इतना बड़ा दोष नहीं मानता कि जीना ही छोड़ दिया जाए। बिन्नी कहता हैरूद् श्जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है, लेकिन इतना बड़ा भी नहीं है कि तुम मान लो कि तुम धड़ का मात्र वही निचला हिस्सा भर हो। मस्तिष्क नहीं हो, दिल नहीं हो, धड़कन नहीं हो, आँखें नहीं हो। तुम्हारे हाथ—पैर नहीं हैं। हैं.......हैं......सब वैसे ही है जैसे औरों के हैं। सुनो पहचानो! पहचानो! अपने श्रम पर जियो, मनोरंजन की दक्षिणा पर नहीं। हिकारत की दक्षिणा जहर है—जहर। तुम्हें मारने का जहर, तुम्हें समाज से निकालने का जहर।श11 उपन्यास के अंत में माँ अपनी मृत्यु से पहले अपने किन्नर बेटे को सार्वजनिक रुप से स्वीकार कर अपनी सम्पति तीनों बेटों में बराबर बांटने की घोषणा करती है। किन्नर समाज अपनी अस्मिता को प्रतिष्ठित करने के लिए जी जान लगा देता है, किन्तु फिर भी मात्र एक शारीरिक कमी के कारण समाज में तिरस्कृत होकर जीने के लिए अभिशप्त है। किन्नरों के प्रति समाज के नजरिये को बदलने में इस उपन्यास की उल्लेखनीय भूमिका है।

महेन्द्र भीष्म कृत 'मैं पायल' आत्मकथात्मक उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास लखनऊ की किन्नर गुरु पायल सिंह के जीवन संघर्ष की गाथा है। जिसमें प्रत्येक किन्नर के अतीत के संघर्ष की झलक परिलक्षित होती है। विस्थापन का दंश कष्टकारी होता है, प्रत्येक किन्नर को सर्वप्रथम यही दंश अपने परिवार से भुगतना होता है। किन्नर समाज के लोग अलिंगी देह को लेकर जन्म से मृत्यु तक अपमानित, तिरस्कृत और संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हैं। आजीवन अपनी अस्मिता की तलाश में ठोकर खाते हैं। इस उपन्यास का मुख्य पात्र जुगनु उर्फ पायल किन्नर है। जुगनु का जन्म क्षत्रिय परिवार में हुआ था, जब उनके पिता को पता चलता है कि जुगनु एक किन्नर है, तब से वे उसका मुंह भी देखना पसंद नहीं करते। जुगनु बहुत छोटी थी तब उसको 'हिजड़ा' के बारे में पता नहीं था। एक दिन पायल के पिता दारु के नशे में उसे गाली देते हैंरूद् श्ये जुगनी! तुम क्षत्रिय वंश में कलंक पैदा हुई है, साली हिजड़ा है।श12 प्रस्तुत कथन से पता चलता है कि किन्नरों को उनके परिवार के लोग कलंक के रुप में देखते हैं। उपन्यास में पायल की माँ उसके शरीर को लेकर चिंता जाहिर करती है, परन्तु वह हमेशा अपनी बेटी के प्रति समर्पित रही, पायल को माँ के प्यार में कोई कमी महसूस नहीं हुईरूद् श्ईश्वर को पता नहीं क्या मंजूर था, अच्छी—खासी लड़की जैसी लड़की लगती है।श्इस कथन से स्पष्ट होता है कि माँ अपनी सन्तान के प्रति भेदभाव नहीं रखती है। माँ की संवेदना पायल के □प्रति है, लेकिन पिता का क्रोध खतरनाक है। पायल जीवन में संघर्ष को जारी रखते हुए काम की तलाश में जुट जाती है और आकाशवाणी में नौकरी करती है। जिसे पिता कलंक कहता है, वही पायल अच्छी नौकरी करती है, अपने परिवार के प्रति समर्पण का भाव रखते हुए माँ

से चोरी मिलती है और उनकी पैसों से सहायता भी करती है। फिर पायल धीरे–धीरे किन्नर का पेशा अपनाती है और सफल किन्नर गुरु बनती है। इस उपन्यास में किन्नरों की समस्याओं के साथ–साथ एक माँ की वेदना, तृतीयलिंगी औलाद के प्रति पिता का आक्रोश भी देखने को मिलता है। किन्नर को सर्वप्रथम घर से तिरस्कृत, उपेक्षित किया जाता है। लेकिन पायल जैसी संघर्षशील पात्र से बहुत कुछ सीखने को मिलता है। भीष्म जी ने किन्नरों की सामाजिक समस्याओं को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है, जैसे– पारिवारिक उपेक्षा और रिश्तेदारों की प्रताड़ना, समाज का भय, मानसिकता का परिवर्तन, पितृसतात्मक समाज, आर्थिक संकट और शैक्षणिक संघर्ष।

भगवंत अनमोल कृत 'जिन्दगी 50–50' उपन्यास के नायक अनमोल के भाई हर्षा को किन्नर होने का दंश झेलना पड़ता है। नायक अनमोल का छोटा भाई और उनकी एकमात्र संतान, दोनों ही किन्नर हैं। अपने बच्चों का किन्नर होना उनके परिवार वालों के लिए एक श्राप के समान था। लोगों की मानसिकता ऐसी है कि सब किन्नरों से आशीर्वाद की कामना करते हैं परन्तु अपने घर में किन्नर का होना बर्दाशत नहीं है। अनमोल कहता हैरूदृ श्मेरा छोटा भाई एक किन्नर है, पर उसका किन्नर होना मानो हमारे परिवार के लिए एक अभिशाप था। उसके जन्म के बाद शायद ही कोई दिन ऐसा हो जो हमने चैन से गुजारा हो। इसका जिम्मेदार न वह था, न ही मेरे माता–पिता। पर उसके किन्नर होने को अभिशाप में बदल दिया था हमारे तथाकथित समाज ने।श13 अनमोल का पिता उसके छोटे भाई से प्यार नहीं करता, क्योंकि वह हर्षा का किन्नर होना उसी का ही दोष समझता है। उन्हें अपने बेटे हर्षा के सुख से ज्यादा समाज का भय रहता था। समाज स्वयं तो किन्नर से घृणा करता है, परन्तु उसके परिवार वालों को भी उससे नफरत करने के लिए विवश कर देता है। अनमोल के पिता समाज में अपनी इज्जत खोने के डर से उस मासूम बच्चे को मारने के लिए तैयार हो जाता है।परन्तु माँ और भाई अनमोल उसे बचा लेते हैं, फिर भी पिता का प्यार उसको नसीब नहीं होता। हर्षा को बचपन से लेकर बड़े होने तक कई जगहों पर अपने किन्नर होने के कारण कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अंत में अपनी जिन्दगी से त्रस्त होकर वह हार मान लेता है, और फांसी लगाकर इस जिन्दगी को अलविदा कह देता है। परन्तु मरने से पहले वह अपने भाई अनमोल को चिट्ठी लिखकर कहता हैरूदृ श्जिन्दगी में हर किसी में कमी होती है। सबकी जिन्दगी 50–50 होती है, जैसे दिन और रात.....अंधेरा और प्रकाश....आपने हमेशा मेरे शारीरिक पक्ष को ही देखा. ....मेरी कमजोरी ही आपको दिखी.....समाज की परवाह करते–करते आप यह भी भूल गए कि मैं भी एक इंसान हूँ.....आपके स्नेह प्यार की भूखी हूँ.....मेरी जिन्दगी के इस हिस्से को आपने अनदेखा ही कर दिया......नतीजा यह हुआ कि मैं इस दलदल में आज फंस गई हूँ। इसलिए मैं छोड़ कर जा रही हूँ आपको आपके समाज के साथ।श14अनमोल ने अपने भाई को पल–पल पिसते और अपमानित होते देखकर दृंढ़ निश्चय किया कि वह अपने बेटे सूर्या को ऐसी कष्टपूर्ण जिन्दगी नहीं देगा, बल्कि अच्छी जिन्दगी के लिए उसकी मदद करेगा। उसे हर क्षेत्र में आगे ले जाएगा। उसने अपने बेटे को पढ़ा लिखाकर काबिल बनाया। उसे अपने पैरों पर खड़े होने का वजूद दिया। अंततः अपने पिता के सहयोग से सूर्या 'प्राइवेट डिटेक्टिव एजेंसी' खोलने का लाइसेंस प्राप्त कर लेता है। उपन्यासकार ने यहां रुढ़िवादी, सामाजिक मान्यताओं को चुनौती देते हुए समाज में एक नई ऊर्जा का संचार किया है। यदि प्रत्येक किन्नर के माता–पिता अनमोल की तरह सोचते हैं तो उन्हें कभी भी अपने घर–परिवार से विस्थापित होकर हाशिये पर जिन्दगी गुजारनी नहीं पड़ेगी।

निष्कर्षतरू कह सकते हैं कि हमारे समाज में किन्नर समुदाय हाशिए पर जीवन व्यतीत कर रहा है। सामाजिक स्वीकृति प्राप्त न होने के कारण यह समुदाय संघर्षरत है। सम्पूर्ण उपन्यास किन्नरों पर होने वाले अत्याचारों का दस्तावेज हैं। किन्नरों के उद्धार के लिए कोई कल्याणकारी योजना नहीं बनी है। उपरोक्त उपन्यासों में किन्नर समुदाय की व्यथा–यातना–संघर्ष और जिजीविषा की अनवरत यात्रा है, लेकिन उसके साथ–साथ सम्पूर्ण समाज, व्यवस्था और व्यक्ति के अंदर छिपी कलुषित प्रवृतियां, स्त्री की नियति, बाल मन की यौनिक जिज्ञासाएं, प्रेम के गहरे अर्थ, देह की जरूरत, नैतिक मूल्यों की निरर्थकता, अमानवीय सामाजिक विषमता, माँ की ममतामयी छवि की अपरिहार्यता और उसे महत्व देने की जरूरत जैसे अनेक सवाल उठाए गए हैं। उपन्यासों में समाज के तीसरे समुदाय की उपेक्षा और तिरस्कार का चित्रण है। उनके प्रति मानवीय संवेदना अपेक्षित है एवं उनके उत्थान के लिए, उन्हें मनुष्य का दर्जा दिलवाने में समाज एवं शासन की भूमिका की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. वाड़मय (त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका), खंड़– तीन, थर्ड जेंडर कथा आलोचना, पृ. 71
2. नीरजा माधव, यमदीप, पृ. 12
3. डॉ. अनुसूईया त्यागी, मैं भी औरत हूँ, परमेश्वरी प्रकाशन–नई दिल्ली, पृ. 26
4. किन्नर कथा, महेन्द्र भीष्म, पृ. 24
5. वही, पृ. 88
6. तीसरी ताली, प्रदीप सौरभ, वाणी प्रकाशन, पृ. 139
7. निर्मला भुराड़िया, गुलाम मंड़ी, सामयिक प्रकाशन–नई दिल्ली, पृ. 5
8. वही, पृ. 67
9. वही, पृ. 67
10. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नं. 203, नाला सोपारा, सामयिक प्रकाशन–नई दिल्ली, पृ. 11
11. वही, पृ. 50
12. महेन्द्रभीष्म, मैं पायल, अमन प्रकाशन–रामबाग कानपुर, पृ. 26
13. भगवंत अनमोल, जिन्दगी 50–50, पृ. 143
14. वही, पृ. 206

डॉ. अमनदीप कौर
अस्टिंट प्रोफेसर
गुरु नानक गर्ल्स कॉलेज, संतपुरा
यमुनानगर, 135003
9354855646, 7015093138
म्उंपस पक द्ृ ंउंदउंद956ण्ंउ ⁄ हउंपसण्बवउ

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 184-190
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में दलित राजनीति : एक चिंतन

–नवीन
शोधार्थी, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

भारतीय संविधान के अनुसार किसी जाति धर्म लिंग के आधार पर किसी भी व्यक्ति के साथ भेदभाव नहीं बरता जाएगा, लेकिन भारत में हिन्दू धर्मावलम्बियों की जनसंख्या अधिक होने के कारण सदा से उनका ही बोलबाला रहा है। अन्य धर्मावलम्बी संवैधानिक समानता के बावजूद, अपने आपको दूसरे दर्जे का नागरिक समझते है।

वस्तुतः इस परम्परा के खिलाफ सबसे पहले सिद्ध और नाथ कवियों ने आवाज़ उठाई। इसका प्रभाव दलित साहित्य पर पड़ा कि मध्यकाल में निर्गुण शाखा के अनेक कवियों ने वर्णव्यवस्था और जाति प्रथा पर प्रहार किया। स्वतंत्रता पूर्व तक भारत की यही स्थिति रही जो वर्तमान समय में राजनीति की है। उस समय दलित वर्ग के लोगों का मंदिरों में प्रवेश कर पाना सम्भव नहीं था इसी व्यवस्था से त्रस्त होकर दलित मध्यकाल में बौद्ध धर्म, इस्लाम तथा ईसाई आदि धर्म की और उन्मुख होने लगे थे।

उसके बाद दलित समाज में डॉ आंबेडकर के रूप में पहली बार प्रखर व्यक्ति मिला जो दलित साहित्य के लिए ज्योति स्तम्भ साबित हुआ और जिसने युगों से अँधेरे में भटकते हुए इस युग को राह दिखाई।

वह बीसवीं सदी का दूसरा दशक था जब 1914 में महावीर प्रसाद द्विवेदी की यशस्वी पत्रिका सरस्वती में दलित कवि हीरा डोम रचित 'अछूत की शिकायत' प्रकाशित हुई थी।1 इसके बाद क्रांति,लोकतंत्र,आधुनिकता और मानवाधिकारों को समर्पित पूरी शताब्दी में अछूत अपनी इस शिकायत के निराकरण की प्रतीक्षा करते रहे। उन्होंने शिकायत करने का हर जरिये का इस्तेमाल किया। उन्होंने परम्परा के दरबार में हाजिरी लगायी और अत्यंज से शूद्र बनने की कोशिश करके जाति के दायरे के भीतर धीरे–धीरे ऊपर उठना चाहा। भक्ति आंदोलन से पहले तो वे ईश्वर के दरबार से भी बहिष्कृत थे। संत कवियों ने उन्हें ईश्वर को उलाहना देना सिखाया था। लेकिन आधुनिकता के जमाने में उन्होंने समतामूलक विचारधारा से लाभ उठा कर कर्मकांड आधारित श्रेणीक्रमावली समाज व्यवस्था की जगह नागरिक समाज की स्थापना में अपनी मुक्ति तलाशनी चाही। गांव में बसनेवाले इस महादेश के वचितों ने शहर को अपनी उम्मीदों का केंद्र बनाया। दलितों ने तालमेल से ले क्र बगावत तक, स्वतंत्रता–संघर्ष की मुख्यधारा के विपरीत अंग्रेजों की कथित सामाजिक तटस्थता का इस्तेमाल करने से ले कर भारतीय गणराज्य की संवैधानिक बुनियाद डालने तक, प्रतिवेदन देने से लेकर रक्तपात करने तक, कानून तोड़ने से लेकर संविधान सम्मत उपायों तक एवं शिक्षा, आरक्षण और मतदान के जरिये सत्ता में हिस्सेदारी की कोशिशों से लेकर अंतराष्ट्रीय मंचों पर आवाज़ बुलंद करने तक तमाम कोशिशों के कारण।

आमतौर पर माना जाता है कि धर्म और परम्परा में नीची जातियों के ऊपर उठने की गुंजाइशें उस जगह खत्म हो जाती है जहाँ से अछूतबाड़े की सीमा शुरू होती है।

दूसरी तरफ सामान्य तर्क के अनुसार हिन्दू समाज के दायरे से बाहर निकल कर अछूत को अछूत नहीं रहना चाहिए था लेकिन उस समय उसकी विडंबना और जटिल हो गई जब इसे अथवा मुसलमान बन क्र भी उसने खुद को चर्च और मस्जिद से बहिष्कृत पाया। बौद्ध धर्म के पूरी तरह कर्म–कांड–मुक्त संस्करण को अपनाने के बावजूद उन्हें पूरे नागरिक की हैसियत नहीं मिल पायी। 5 जिस समय हीरा डोम हिन्दी भाषी समाज के सामने शिकायत कर रहे थे उसी के आस–पास तेलुगु के महाकवि गुर्रम जाषुवा की कविता के एक प्रशंषक ने उनसे उनकी जाति पूछी थी और जैसे ही जाषुवा ने अपना अछूत होना घोषित किया वैसे ही वह काव्य–प्रेमी घृणा से भर क्र चला गया। 6 इस घटना के करीब साथ–पैंसठ साल बाद आज़ाद भारत से चलती हुई ट्रैन में कहानीकार कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने जैसे ही अपने सहयात्री को अपनी भंगी जाति का परिचय दिया वैसे ही उसकी सारी आत्मीयता नफरत में बदल गयी और उसने मुँह फेर लिया। 7

1919 में आम्बेडकर साउथबरो आयोग के सामने दावा किया था कि अछूतों के अलग मतदाता–मंडल बनाये जाने चाहिए। यहीं वह क्षण था जब आधुनिक राजनीत में दलित–हितों को सुरक्षित करने का आंदोलन शुरू हुआ। आज उसकी यात्रा डरबन सम्मलेन के रूप में इस मुद्दे के भूमंडलीकरण तक पहुँच चुकी है। जाहिर है कि मंजिल अभी दूर ही है और यहाँ ऐसी मंजिल है जिसे पाने का यूटोपियाई दावा करने तक की स्थिति में कोई नहीं है। दलित संगठनों का ज्ञापन बताता है कि राजनीतिक लोकतंत्र की अभी तक की कोशिशें और उसका मौजूदा रूप सामाजिक समता की उपलब्धि में सिर्फ एक हद तक ही मदद कर पाया है और उस हद को समता का नाम देना इस धारणा के साथ घोर अन्याय होगा।

दलित आंदोलन के स्रोतों की खोज से शुरू हुई यह बौद्धिक यात्रा इतिहास,संस्कृति, अस्मिता, चेतना, साहित्य, अवमानना के राजनीतिक सिद्धांत और ज्ञान मीमांसा के क्षेत्रों से गुजरने के बाद पुस्तक के दूसरे हिस्से में व्यावहारिक राजनीति में होने वाली दलीय होड़ की जाँच–पड़ताल करती है ताकि भारतीय गणराज्य के संविधान द्वारा प्रदत्त सार्विक मताधिकार की समाज परिवर्तनकारी ताकत की असली थाह ली जा सके। यह हिस्सा राजनीति में दलित उभार के दूरगामी नतीजों के साथ–साथ मुख्यतः दलित राजनीति के तीन आयामों से सबंधित है जिनमे से एक को आजकल मनुवाद विरोधी बहुजन समाज की राजनीति के लोकप्रिय नाम से जाना जाता है। और दूसरा रूप दलितों को भूमिहीन खेतिहर किसान के रूप में संगठित करने के नक्सलवादी प्रयासों से सम्बंधित है।

तीसरे हिस्से में यहाँ दलित मीमांशा उन ताजा बहसों पर एक गहरी नज़र डालती है जो अभी तक किसी नतीजे पर नहीं पहुंची है लेकिन जिनकी परिणामतयो में सालित प्रश्न को आमूल चूल बदल डालने की क्षमता है। ये बहसें भूमंडलीकरण साथ दलितों संबंधो की प्रकृति को खोजने की कोशिश करती हुई भी लगती है।

राष्ट्रीय आंदोलन एक आधुनिल गतिविधि होते हुए भी दलित प्रश्न को या तो बाद में निबटाये जा सकने वाले पचड़े के रूप में देखता था या फिर आधुनिक विचार श्रेणियों और राजनीति का इस्तेमाल करने की बजाय इस मसले को परम्परा के औजारों से हल करने के पक्ष में था। पहली प्रवृति की नुमाइंदगी अगर नेहरू और उनके वामपंथी साथियों के हाथ में थी तो दूसरी प्रवृति के सबसे बड़े प्रवक्ता स्वयं गाँधी थे। नेहरू और नम्बूदिरीपाद

एंड कम्पनी के लिए दलित प्रश्न से चिढ़ने या उसे आंदोलन के फौरी अजेंडे पर न मानने के आग्रह के उदाहरण आसानी से पेश किये जा सकते है। एक तरह से इन नेताओं को आज़ादी के आंदोलन के लिए दलितों की जरुरत ही नहीं थी। वे मानते थे कि आज़ादी के बाद सतत विकास के माध्यम से सामाजिक विषमता की समस्या का समाधान कर लिया जाएगा। दूसरी तरफ गाँधी दलितों को आंदोलन में जगह देने के लिए तो उत्सुक थे लेकिन आम्बेडकर की निगाह में उनके पास फार्मूला यह था कि फिलहाल अस्पृश्य दलितों को स्पृश्य शूद्र बन कर संतुष्ट हो जाना चाहिए ताकि भविष्य में बेहद लम्बी सामाजिक धार्मिक प्रक्रिया के जरिये वे शूद्र समाज के दायरे बढ़ सकें। गाँधी द्विज जातियों में छुआछूत के प्रति पापबोध पैदा करके उन्हें आत्म शुद्धि के रस्ते पर चाहते थे और उन्हें अछूतों से उम्मीद थी की वे अपनी शिकायतों का आधुनिक राजनीति के दायरे में समाधन करने की कोशिश नहीं करेंगे।

दलितों और उनके नेतृत्व ने परम्परा के रस्ते को ठुकराने के साथ ही नेहरू और गाँधी के रवैयों को भी अस्वीकार किया और मुक्ति के अपने तीन अलग परिपेक्ष्य विकसित किये। इनकी दागबेल उन्नीसवीं सदी में ज्योतिबा फुले ने डाल दी थी। फुले की ब्राह्मणवाद विरोधी परियोजना मुक्ति के कई स्तरों को एक साथ स्पर्श करती है। इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। की कभी बीसवीं सदी के महात्मा ने उन्नीसवीं सदी के इस महात्मा से प्रेरणा ली दलितों दलितों को स्पृश्य शूद्रों से जोड़ने का अभियान के सूत्रधार फुले ही थे। गाँधी शूद्र अत्यंज संसर्ग को ब्राह्मण धर्म के दायरे के भीतर और फुले उसके बाहर घटित करना चाहते थे। फुले ने इसे बहुजन समाज करार दिया।

गुलामगिरी खत्म करने के लिए फुले का जोर भट ब्राह्मणो यानि पुरोहितों का वर्चस्व खत्म करने पर था इसलिए वे चौथे और पंचम वर्ण से धर्म–कर्म करा सकने वाले अपने खुद के पुरोहित तैयार करने की अपील करते थे। अछूतों और शूद्रों को शिक्षित करने की पहली उल्लेखनीय मुहिम उन्होंने ही चलाई थी। फुले न होते तो आम्बेडकर भी न होते क्योंकि महारों के लिए पहली पाठशाला उन्होंने थी। इसीलिए अम्बेडकर ने अपने तीन गुरुओं में बुद्ध और कबीर के बाद फुले को ही स्थान दिया। फुले के माध्यम से दलित आंदोलन को दो तरह की विरासते और मिली। उन्होंने तटस्थता दी और कहा कि ब्रिटिश शासन धार्मिक रूप से निष्पक्ष है इसलिए सामाजिक संघर्ष में उसके प्रभाव निचली जातियों किया जा सकता है। इसके अलावा फुले ने राजा बलि बहुजन राज्य और आर्य अनार्य संघर्ष के मिथकों की रचना की जिसमे बहूजाओं के लिए अस्मिता रचना के सम्भावनापूर्ण तत्त्व थे। फुले का चिंतन, कर्म और व्यूह रचना आज भी दलित बहुजन राजनीती और सामाजिक संघर्ष में तटस्थ शक्तियों का लाभ उठाने के संदर्भ प्रासंगिक बनी हुई है।

आंबेडकर ने फुले की विरासत को विकसित किया और पहली बार जाति के मसले को ऊपर से देखने के बजाय नीचे से देखने की कोशिश की। पहली बार दलित समाज अपने हितों के लिए चलाए जाने वाले आंदोलन को अपने हाथ में लेता दिखाई दिया।

गोलमेज सम्मेलनों के जरिये उन्होंने तत्कालीन राजनीती में अनूठे हस्तक्षेप किये। इसी दौरान दक्षिण भारत में द्रविड़ आंदोलन के रूप में ई वी रामास्वामी पेरियार के रूप में तीसरा परिप्रेक्ष्य विकसित हो रहा था। पेरियार की समझ यहाँ थी कि दलितों या आदि–द्रविड़ों का कल्याण गैरब्राह्मणों के साथ व्यापक मोर्चा बनाने में है। उनकी गोलबंदी के दायरे में ब्राह्मणों के आलावा सभी जातियां आ जाती है। जाहिर था कि दलित इस आंदोलन पर

अपना नेतृत्व स्थापित करने के बारे में सोच भी नहीं सकते थे। पेरियार के आत्मसम्मानवादी कार्यकर्ता छुआछूत के खिलाफ आवेश से भरे हुए थे लेकिन उनकी यह युद्धमुद्रा पूर्वदलितों के नादारों जैसे हिस्सों के लिए ही ज्यादा कारगर साबित हो सकती है। दलितों के संदर्भ में पेरियार सीमाएं साफ़ थी और बीसवीं सदी के पास आम्बेडकर का कोई विकल्प नहीं था। बाबासाहेब भी पेरियार के ब्राह्मण–विरोधी द्रविड़वाद आलोचनात्मक निगाह से देखते थे।

अगर 1932 में गाँधी ने अनशन का अस्त्र चला कर अपनी बात न मनवा ली होती तो अछूतों को मिले पृथक मतदाता मंडलों के कारण भारतीय राजनीति काफी कुछ बदल गयी होती और आगे चल क्र इसी कारण समग्र समाज की संरचना में गुणात्मक परिवर्तन आम्बेडकर को सारे जीवन गाँधी के सामने झुक जाने का अफ़सोस। रहा आम्बेडकर का यह दुःख आज भी दलित राजनीति में समय समय पर व्यक्त होता रहता है। आज भी डी एस 4 जैसा नया दलित संगठन अपनी यात्रा की शुरुआत पूना समझौते के खिलाफ आंदोलन से करना पसंद करता है।

आधुनिक राजनीति के युग में दलितों के लिए सबसे उत्तेजक सवाल यह था कि उनकी राजनीतिक नुमाइंदगी कौन करेगा। इसके प्रमाण उपलब्ध हैं कि गोलमेज सम्मेलनों में अछूतों के सवाल पर हुई गाँधी और अम्बेडकर की टक्कर को बंबई से लेकर आगरा तक दलित समाज द्वारा बड़े ध्यान से देखा गया था। दरअसल, गाँधी और अम्बेडकर के इस विवाद को आधुनिक दलित आंदोलन के स्त्रोत की तरह भी पढ़ा जा सकता है। यह विवाद आज तक भारतीय राजनीति का एक रूपक बना हुआ है। आज भी यह विवाद दलित नेताओं को गाँधी की आलोचना के लिए सामग्री मुहैया करा रहा है। आज भी गाँधीवाद से प्रेरणा लेने वाले बुद्धिजीवी और राजनीतिक नेता इस विवाद की रोषनी में अपने विचारों की जाँच–पड़ताल करने पर मजबूर हैं क्योंकि दलित–प्रष्न पर गाँधी की आलोचना का मतलब गैर दलित समाज की सामाजिक अनुदारता को नये सिरे से नंगा कर देना ही होता है।

आत्मसम्मान को दलित–समाज और राजनीति के क्रेंदीय विमर्ष की तरह स्थापित करने देने के बाद यह मीमांसा उसकी एंटीथीसिस अवमानना के आयाम खोजती है। दलित परिप्रेक्ष्य में गहन समाजषास्त्रीय अध्ययन करने वाले गोपाल गुरू का विचार है कि अवमानना को समझने में उदारतावादी और मार्क्सवादी नजरिये नाकाम रहे है। अवमानना के ऐतिहासिक विकास–क्रम, उसके सामाजिक घटनास्थल और अवमानना के षिकारों द्वारा उसके निराकरण की संभावित रणनीति का सूत्रीकरण करने वाला यह आलेख समसामयिक समाजषास्त्र में कुछ नीवन श्रेणियों का समावेष करने की पहल करता है। गोपाल मानते हैं कि दलित नित्य प्रति अवमानना के दौर से गुजरते रहते हैं इसलिए वह उनकी आत्म–परिभाषा में बदल जाती है। अवमानना द्वारा प्रदत्त पहचान के जरिये वे जान पाते हैं कि वे क्या हैं और क्या नहीं है। अवमानना उत्पीड़ित की शक्ति बन जाती है। गाँव से लेकर शहर तक और खेत से लेकर कारखाने तक दलितों की अवमानना का यह क्रम लोकतांत्रिक–उदारतावादी राज्य में कानूनी रूप से प्रतिबंधित होते हुए भी परिवर्तित रूपों में जारी रहता है।

अवमानना के अंदेषों से मुक्त होने के लिए अछूत जो परियोजनाएँ चलाते रहे हैं, उनमें अतीत–रचना और अस्मिता–निर्माण का भारी महत्व है। फुले ने राजा बलि के मिथकीय राज्य का सूत्रीकरण करके बहुजन समाज को गर्व करने लायक इतिहास देने की कोशिश की थी। अम्बेडकर ने यही काम अछूत कौन थे जैसा सवाल उठा

कर दिया। वेदों और धर्म शास्त्रों को खंगाल कर और स्टेनली रोज के नस्ली सिद्धांत के साथ–साथ हबैटी राइजली के मानवशास्त्रीय अध्ययन की समीक्षा करके अम्बेडकर ने निष्कर्ष निकाला कि अछूत पहले कभी क्षत्रिय थे। दलितों को एक सम्माननीय इतिहास देने के लिए अम्बेडकर ने ब्राह्मण–क्षत्रिय विवाद में क्षत्रिय पक्ष के साथ हमदर्दी दिखायी। उन्होंने ब्राह्मणों की बौद्धों के प्रति घृणा में अस्पृश्यता का स्त्रोत तलाशा और स्पष्ट दावा किया कि इस प्रथा का चलन संभवतः चार सौ ईसवी के आसपास हुआ होगा।

बाबा साहेब की ये धारणाएँ प्राचीन भारत के इतिहासकारों के बीच विवाद का विषय बनी हुई हैं लेकिन अतीत–रचना के उनके प्रयासों से उत्तर–अम्बेडकर पीढ़ी को काफी प्रेरणा मिली। क्षत्रिय–स्त्रोत का आग्रह सतर के दषक के दलित बुद्धिजीवियों को युद्ध, शौर्य और संघर्ष की मानसिकता की तरफ ले गया। हजारों वर्ष से ग्रामीण भारत में गाँव के बाहर पड़ा रहने वाला अंत्यज ऐसे स्थान की तलाष के लिए निकल पड़ा जहाँ से उसे बहिष्कृत किया जाना संस्थागत रूप में उभर रहा था। दलित–चेतना उत्तरोत्तर नगर–केन्द्रित होती गयी और दलित साहित्य नागरिकता की खोज में जाति पूछे जाने के औचित्य पर सवालिया निषान लगाने लगा। दलित–चेतना की इन धाराओं की षिनाख्त करते हुए अभय कुमार दुबे अपने चर्चित आलेख नये शहर की तलाष में जाति–विरोधी प्रत्यय की सीमाओं और दलित–चेतना की रेडिकल संभावनाओं को सामने लाते हैं। वे मराठी, कन्नड़, हिंदी, सहअस्तित्व में जीवित है।

आजादी के बाद उपलब्ध शैक्षिक अवसरों, आरक्षण और संसदीय राजनीति के कारण दलित समाज में धीरे–धीरे उभरा एक छोटा–सा अभिजन वर्ग अक्सर तीखी बहर का केंद्र बनता रहा है कि क्या इस वर्ग को आज भी आरक्षण की जरूरत है और आर्थिक रूप से ऊँचा उठ जाने के बाद व्यापक दलित समाज के साथ इसके रिश्ते कैसे हैं। दलितों के अभिजन में विजय बहादुर सिंह ने उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के .... दलित–अभिजनों के साथ विभिन्न मुद्दों पर बातचीत करके इन सवालों के जवाब देने की कोशिश की है। यह अध्ययन दलित–अभिजनों के बारे में प्रचलित कई तरह की गलतफहमियों को तोड़ता है। समाज के अन्य अभिजनों के मुकाबले ये दलित नाम मात्र के अभिजन ही हैं और इस हालत में पहुँचने के लिए उन्हें जिस पीड़ा और संघर्ष से गुजरना पड़ा है, उसका शतांष भी समाज के अन्य हिस्सों को नहीं झेलना पड़ता। तीन पीढ़ियों के तुलनात्मक अध्ययन से निकला यह यथार्थ बताता है कि दलित–अभिजनों को बाकायदा अभिजन बनने में काफी समय लगेगा। आधुनिकीकरण और शहरीकरण की प्रक्रिया से लाभान्वित होने वाले ये अभिजन अपने समुदाय के मित्र, चिंतक और मार्गदर्षक की भूमिका निभा रहे हैं। जाति–प्रथा की विषम अभिव्यक्तियों के खिलाफ उनमें आक्रोष की कमी नहीं है लेकिन जब तक उनके पास बहुजन समाज पार्टी जैसा संगठित राजनीतिक माध्यम नहीं आता तब तक उनका 'मोक्ष' निजी से सामुदायिक नहीं हो पाता।

लोकतंत्र को अपने अनुकूल बनाने का .... के दायरे में की थी। सामाजिक इंजीनियरिंग के लिए उनके पास सार्विक मताधिकार और आरक्षण के शक्तिषाली औजार थे। संविधान के कारण ही अदालतों ने जातिगत ऊँच–नीच को न्यायिक व्याख्या का आधार बनाना बंद कर दिया था। गाँधी की व्यूह–रचना दलितों से पृथक मतदाता मंडल का अधिकार छीन चुकी थी जिसके कारण उत्तर–अम्बेडकर युग में काँग्रेस के प्रभाव से स्वतंत्र नेतृत्व का विकास नहीं हो पाया। जैसे ही कांगेस के राजनीतिक रूतबे का क्षय हुआ और जगजीवन राम सरीखे नेहरूयुगीन नेताओं का विदागीत लिखा गया वैसे ही दलितों के बीच स्वाभाविक रूप से फुले–अम्बेडकर

विचारधारा मुखर हो गयी। ऐसे लोग प्रभावशाली नेताओं के रूप में उभरे जिनका द्विज अभिजनों के बीच आमतौर से मजाक उड़ाया जाता था। एक पार्टी के शासन की विराट छाया में दलित अपना राजनीतिक दावा ठीक से पेष नहीं कर पाते थे लेकिन गठजोड़–राजनीति के जमाने में उन्हें अपनी संख्यात्मक शक्ति के लाभकारी दोहन का अवसर मिला। अस्सी और नब्बे के दषकों में दलित राजनीति के उभार ने सब का ध्यान आकर्षित किया और राजनीति में जाति के महत्त्व पर जोरदार बहस फिर से चालू हो गयी। इससे पहले इस बहस की शुरूआत पचास के दषक में लोहिया ने पिछड़ी जातियों के राजनीतिक उभार के संदर्भ में की थी।

नयी परिस्थिति का रोचक पहलू यह था कि लोहिया द्वारा उठाये गए इस मुद्दे का पूरी तरह से समाधान हुए बिना ही दलितों के दावे ने बहस को काफी आमूलवादी रूझान दे दिये। एक तरफ मंडल आयोग की सिफारिषों ने ने पिछड़ी जातियों की साठ के दषक से ही जारी राजनीतिक गतिषीलता को निर्णायक आवेग दिया और दूसरी तरफ दलितों ने उत्तर प्रदेश में पिछड़ों, अतिपिछड़ों और अल्पसंख्यकों के साथ गठजोड़ करके .... में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के उत्थान को रोक दिया। इस घटना में भारतीय राजनीति को परिवर्तित करने की जोरदार संभावनाएं थी। विख्यात राजनीति शास्त्री रजनी कोठारी ने दलित उभार के मायने में इस परिघटना के दूरगामी परिणामों पर पैनी निगाह डाली। कोठारी लंबे अरसे से राजनीति में जातिवाद का प्रदूषण फैल जाने की प्रचलित थीसिस को नकारते हुए जातियों के राजनीतिकरण के सिद्धांत का प्रतिपादन कर रहे थे। लोकतांत्रिक राजनीति में होने वाली दलीय होड़ में जातियों की भागीदारी के समाज–परिवर्तनकारी आयामों में उनकी गहरी दिलचस्पी थी। इसलिए दलित उभार के कारण उठी बहस में उनका हस्तक्षेप स्वाभाविक ही था।

अभय कुमार दुबे का लंबा विवरणात्मक आलेख बहुजन समाज र्पाअी और गुरू किल्ली दलित–बहुजन शक्तियों के व्यावहारिक राजनीतिक पक्ष का जायजा लेते हुए नमूने के तौर पर बसपा द्वारा उत्तर प्रदेष में राजसत्ता संभालने के तजुर्बे का विष्लेषण करता है। दलितों और पिछड़ों के राजनीतिक रवैयों के बीच अंतर दिखाने के बाद इस लेख में उन कारणों की शिनाख्त करने का प्रयास है जो बहुजन समाज की रचना में बाधक साबित हुए है। यह विवरण बताता है कि कांशीराम और मायावती द्वारा संचालित यह दलित राजनीति अम्बेड़करवादी राजनीति से कितनी भिन्न है, यह उत्तर–अम्बेडकर राजनीति का प्रतिनिधित्व करती है या नहीं, आरक्षण के गर्भ से निकली दलित सरकारी कर्मचारियों की विषाल बिरादरी की अनूठी राजनीतिक परियोजना के रूप में बसपा दलितों को एक विषाल राजनीतिक समुदाय में बाँधने के लक्ष्य में कहाँ तक कामयाब हो पायेगी, बसपा के प्रयोग में समग्र भारतीय राजनीति की सफाई करने की क्या–क्या संभावनाएँ थीं और किसी परिवर्तनकारी आर्थिक कार्यक्रम के बिना दलित–अस्मिता स्थापित करने के एकांत प्रयासों का क्या नतीजा निकल सकता है।

आधुनिकता के आईने में दलित उत्तर–गाँधी और उत्तर–अम्बेडकर कालावधि में स्थित है। व्यक्तित्व और कृतित्व के रूप में अम्बेडकर इसके सकारात्मक संदर्भ–बिंदु हैं। उनके महत्व और प्रासंगिकता की प्रतिष्ठा गाँधी के व्यक्तित्व और कृतित्व के सापेक्ष होती है। उन्नीसवीं सदी में ज्योतिबा फुले की बहुजन व्यूह–रचना, तटस्थता की थीसिस और आर्य–अनार्य संघर्ष का मिथकीय परिप्रेक्ष्य इस कालावधि का आंतरिक इतिहास है। भारतीय उदारतावाद का लड़खड़ाता विकास, आधुनिकतावाद की विकासवादी निष्पति और औपनिवेषिक हस्तक्षेप के कारण बदली परिस्थिति इसके बाह्य कारक हैं। इस मीमांसा में भागीदारी करने वाले कुछ अध्येनेताओं को दलित समाज का प्रत्यक्ष अनुभव है और गैर दलित समाज से आये अध्येता इस अनुभव की भरपायी दलितों और

समतामूलक समाज के पक्ष में अपनी वैचारिक निष्ठा से करते हैं। उनके आलेखों में तर्कों, पद्धतियों और शैली की विविधता है लेकिन वे जिन बातों पर एकमत हैं उनका सूत्रीकरण इस प्रकार किया जा सकता हैरू

उदारवाद के विकास की सीमाओं पर बहस जारी रहते हुए भी इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि संविधान के तीन प्रावधानों ने आजाद भारत में दलितों के लिए राजनीतिक समता हासिल करने के लिए खासी गुंजाइषें मुहैया करायी। सार्विक मताधिकार, आरक्षण और अदालतों पर कर्मकांड–आधारित श्रेणी क्रम को मद्देनजर रखते हुए न्यायिक व्याख्या करने की रोक से दलितों को एक ऐसा धर्म–जाति निरपेक्ष संसदीय और सरकारी क्षेत्र मिला जिसमें वे अपनी मुक्ति परियोजना चला सकते थे। इसी दायरे में उन्होंने अपनी पार्टियों का निर्माण किया, सत्ता के समीकरणों को प्रभावित कर सकने लायक मतदान करना सीख और अपने समाज में धीरे–धीरे एक अभिजन तबके को जन्म दिया। उन्होंने नाना प्रकार से अस्मिता रचना की मुहिमें चलायीं और राजनीति के स्तर पर अपना एकीकृत समुदाय बनाने के प्रयास किये। इस समय भी मुख्य गतिविधियां इसी गुंजाइश में हो रही हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. माता प्रसाद, हिंदी साहित्य में दलित काव्य धारा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1993, पृष्ठ 312–314
2. ओम प्रकाश वाल्मीकि, जूठन, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृष्ठ 158–159
3. भीमराव रामजी आंबेडकर, कांग्रेस और गांधी ने अछूतों के लिए क्या किया, अनुवाद–जगन्नाथ प्रसाद कुलीन, समता साहित्य प्रकाशन, लखनऊ–1988
4. ज्योतिबा फुले रचनावली(दो खंड), संपादक एल जी मेश्राम, विमल कृति, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1994
5. संपादक अभय कुमार दुबे, आधुनिकता के आईने में दलित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 191-195
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना का अनुसंधान

–डॉ सुबोध कुमार सिंह (शिवगीत), शोधनिदेशक एवं प्राध्यापक
–मनीश कौशल, शोधार्थी,
विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, (झारखण्ड)

साहित्य समाज का दपर्ण होता है। किसी राष्ट्र के उत्थान और पतन में साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। साहित्य समाज का मूल्यवान धरोहर है। साहित्य हमेशा मानवीय एवं राष्ट्रीय एकता और अखंडता का पक्षधर रहा है। यद्यपि राष्ट्रप्रेम और देश प्रेम की भावना वैदिक काल से ही भारतीय साहित्य में मिलता है, परंतु आधूनिक काल के प्रारंभ में युरोपिय उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की प्रतिक्रिया से अनुप्राणित राष्ट्रीयता युक्त जिस विशाल साहित्य का निर्माण हुआ वह हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगाली आदि सभी भारतीय भाषाओं में समान रूप से प्राप्त होता है।

अपना देश अपनी भाषा, अपनी संस्कृति से लगााव और जुडाव हर मानव का सहज स्वभाव है। जननी जन्मभूमि से प्रेम की यह प्रेरणा हमें भारतीय वांगमय की इन पंक्तियों से सहज प्राप्त होती है।

'' जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयशी।''1

संसार में वैदिक साहित्य से प्राचीन आज कोई साहित्य नहीं है। इतना ही नही संसार का कोई भी देश गर्व के साथ ऐसी घोषणा नहीं कर सका है कि

माता भूमिः पूत्रोहं पृथिव्याः (अथर्ववेद)2

भारतीयों ने वैदिक युग में ही ऐसी घोषणा की है कि भूमि माता और मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ। यह अपनी जमीन अपनी राष्ट्रीयता के प्रति लगााव का परिचायक है। संस्कृत प्राकृत अपभंश सहित विविध देशी भाषाओं में अपने प्यारे भारत देश और यहाँ के कण –कण के प्रति आत्मीयता का भाव अभिव्यक्त हुआ है।

हिन्दी काव्य में राष्ट्रीयता की भावना का विस्तार मूलतः दो रूपों में हुआ है। मुस्लिम आक्रांताओ और उसके कुर अत्याचारो के विरोध में और बाद में अंग्रेजी शासकों के दमनात्मक रवैये के खिलाफ। आधुनिक हिन्दी काव्य का संबंध इस द्वितीय चरण से है और प्राचीन काव्य का प्रथम से, राष्ट्रीयता के निमित्त मातृभूमि की वंदना, देश के प्राचीन गौरव का गान, अतीत के प्रति लगन संधर्ष की भावना, अत्याचारियों के विरूद्ध धृणा का भाव, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी वस्तुओं का प्रचाार, पारस्परिक एकता पर बल, दलितोत्थान, चरखा और खादी तथा स्वदेशी उत्पादों के प्रति लगाव इत्यादि को कवियों अपने काव्य का विषय बनाया है इनमें कुछ विषय ऐसे हैं जिनका संबंध मात्र आधुनिक काल से है। आदिकालिन हिन्दी काव्य में महाकवि चंदरवरदायी के काव्य में वीरतापूर्ण वर्णण, ऐसी ही राष्ट्रीयता का कायल है। चंद्र ने जातीय गौरव के रूप में तथा शत्रु से विजय के लिए संस्कृति और विराटता के गायन के माध्यम से राष्ट्रीयता का गान सर्वत्र किया है। वीरगाथा काल में राष्ट्रीयता

की भावना का पर्याप्त प्रभाव दिखता हैं।

भक्तिकाल में राष्ट्रवाद की भावना धर्म एवं अध्यात्ममूलक बनी रही। रहीम, कबीर, तुलसी, मीरा, जायसी आदि कवियों ने शांति, अंहिसा, धर्म सदाचरण, राष्ट्रभक्ति को लिया उन सबके लिए केवल भारत ही नहीं पूरा ब्रह्माण्ड और समष्टि तथा जड –चेतना सभी प्रकार के तत्त्वों में एकत्व स्थापित करना था क्योंकि वे सभी में एक ही चैतन्य का वास है ऐसा मानते थे। उनकी राष्ट्रवादी विचारधारा आज की आधुनिक राष्ट्रवादी विचारधारा की सहायक एवं पोषक हैं। भक्ति काल में तुलसी के राम राज्य की कल्पना में साफ रूप से राष्ट्रीयता का परिचय दिलाता है। निश्चय ही तुलसी ने अपने राष्ट्र की मंगल कामना करते हुए ही लिखा –

'मुखिया मुख सो चाहिए,
खान पान को एक!
पालइ पोसइ सकल अंग,
तुलसी सहित विवे।।'3

भक्तिकाल के अन्य कवियों ने भक्ति भावना के संचार के साथ यथा स्थान राष्ट्रीयता की भावना को भी विस्तार देने का प्रयास किया है।

रीतिकाल में शृंगारिक भावों का बाहुल्य कविता में रहा फिर भी भूषण जैसे कवि भी हुए जो रीतिमुक्त तरीके से अपनी विचारधारा में मस्त थे। भूषण ने राष्ट्रवादी कविताओं का आलेखन किया है। उन्होने छत्र साल और शिवाजी को राष्ट्र के उन्नायक, महानायक, तारणहार बताकर विदेश मुस्लिम आक्रांताओं से भारत को बचाने और रक्षित करने के लिए उनकी प्रतिष्ठा की। शिवाजी को राष्ट्रनायक के रूप में प्रस्थापित करते हुए कहते हैं –

''शिवाजी न होते तो सुन्नत होती सबकी।''4

रीतिकाल में भी भूषण आदि कवि इस दिशा में सतत् प्रयत्नशील रहे हैं। 1857 की क्रांति चीख –चीख कर यह बता रही है कि 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की जमीन का निर्माण कहीं – न –कही रीतिकाल के अंतिम चरण के कवियों द्वार किया गया है। निश्चय मानिये की व्यवहारिक रूप से भारतेन्दु युग आरंभ होने (1850–1900 ई0) से पूर्व ही अर्थात 1857 की क्रांति का बीज कहीं –न–कहीं भूषण और इनके जैसे अनेक राष्ट्रवादी कवियों ने बोए होगें।

हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना को आधुनिक रूप में प्रारंभ करने का श्रेय भारतेन्दु को है बल्कि कहा जा सकता है कि भारतीयों में राष्ट्रीय भावना को आधुनिक रूप में जगानं का काम अंग्रेजी की शासन पद्धति ने भी किया, अंग्रेजो की प्रतिक्रया में राष्ट्रीयता के भाव समाज तथा हर भारतीय भाषा के साहित्य में पनपे। हाँ कह सकते हैं कि यह प्रतिकिया भारतेन्द्र मंडल के कवियों के कारण ही हो सकी। इन्होनें तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार ही राष्ट्रवाद को साहित्य के माध्यम से – मूलतः काव्य के माध्यम से प्रसारित और प्रचारित करना आंरभ कर दिया। भारतेन्दु ने तत्कालीन स्थिति के अनुसार लोगों को केवल अपनी सुशुप्ता अवस्था का ज्ञान कराया जो वर्तमान स्थिति पर लोगों से रोने का निवेदन कर रहे थे –

''आवहु सब मिलि रोवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत –दुर्दशा न देखी जाई।।5

ग ग ग ग ग ग ग ग ग ग

निज भाषा उन्नति अहै, सव उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय कौ शूल।।6
ग ग ग ग ग ग ग ग ग ग
अंग्रेज राज सुख साज साज्यों अति भारी।
पै धन विदेस चलि जात अहै अति ख्वारी।।''7

हालांकि भारतेन्दु का युग संकट का युग था फिर भी राष्ट्रीयता के अमर गायन जिस हद तक वे कर सकते थे, करते रहे। इस मंडल के अन्य कवियों ने भी अपनी बंधी हुई स्थिति में राष्ट्रीयता के अमर बेल को अपने स्तर से पनपाने का प्रयास कि जो आगे चलकर विस्तृत कैनवास पर नजर आता है। द्विवेदी युग में यह परंपरा क्रमशः बलवति हुई। ''भारत –भारती' के माध्यम से मैथिलीशरण गुप्त जी ने इस काम को और आगे बढाया

''हम कौन थे, क्या हो गए
और क्या होंगे अभी
आओ विचारे हम समस्याएँ सभी''8

जैसी पंक्तियों से मानो राष्ट्रीयता की भावना की संचार हो उठाा इस युग के कवियों ने राष्ट्रीयता को अपनी कविता का मुख्य विषय बनाया। राष्ट्रीय कविताओं के कवि के रूप में श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' इत्यादि के नाम अधिक विख्यात है। श्रीधर पाठक की कविता ' जय – जय प्यारा भारत देश' तो प्रायः प्रार्थना के रूप में मान्य हो गई थी एक अंश देखिए –

''जय –जय शुभ्र हिमाचल –शृंगा।
कलरव निरत कलोलिनि गंगा।
तेजपुंज तपवेश
जय – जय प्यारा भारत देश।''9

श्री सोहनलाल द्विवेदी की भावना तो भारत भूमि की वंदना के लिए तत्पर है –

''वंदना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो
हों जहाँ बलिशीष अगणि, एक सिर मेरा मिला लो।''10

इस समय के कवि जनता को जागरण का गान तो सुनाता ही है राष्ट्र की वेदी पर बलिदान के लिए आह्वान भी करता है। 'नवीन' जी जैसे कवियों ने अन्य कवियों को भी ऐसी रचनाएँ करने के लिए आह्वान किया है –

''कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल–पुथल मच जाए।''11

किन्तु जब देश ही पराधिन था तो लेखनी भी तो पराधीन ही थी बेचारे कवि क्या कर पाते।
इसी विवशता को सुभद्रा कुमारी चौहान इस प्रकार व्यक्त करती हैं –

''भूषण अथवा कवि चंद नहीं,
बिजली भर दे वह छंद नहीं।
है कलम बंधी स्वच्छंद नहीं।12

छायावाद के नाम पर यह भले आक्षेप है कि उन्होनें देश के तत्कालिन राष्ट्रीयता को अपने काव्य में स्थान नही

दिया है, हांलाकि यह आंशिक सत्य है। छायावादी कवि खुलकर आंदोलन में भाग भले नहीं ले रहे थे पर वे तटस्थ भी नहीं थे। प्रसाद जी अपने नाटकों में देश प्रेम को पनपा रहे थे।

'' अरूण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक किनारा।''13

इन पंक्तियों के माध्यम से वे देश के गौरव का गायन कर रहे थे स्वतंत्रय समर के पथ पर बढते सेनानियों के साथ कदम – से– कदम मिलाकर प्रचलन गीत भी गाते चल रहे थे।

''हिमाद्रि तुग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वंय –प्रभा–समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती।14

निराला को देश 'महाप्राण' मान ही नहीं सकता था यदि उनमें देश और देशवासियों के प्रति अप्रतिम लगाव न होता निराला भी भारत का मंगलगान कुछ इस प्रकार कर रहे थे –

''भारती, जय, विजय करे।
कनक – शस्य –कमल धरे।15

'जागो फिर एक बार', 'बादल राग' राम की शक्ति–पूजा' जैसी रचनाओं में स्वदेश के उत्थान का संकल्प सहज रूप से देखा जा सकता है।

रामधरी सिंह 'दिनकर' का संपूर्ण काव्य साहित्य भारतीय राष्ट्रीयता का अमर गायन प्रतीत होता है। रामधारी सिंह 'दिनकर' तो भारत के लिए स्वर्ग को चुनौती देने से नही चूकते :–

''दूध–दूध ओ, वत्श तुम्हारा।
दूध खोजने हम जाते हैं।
हटो व्योम के मेघ, पंथ से।
स्वर्ग लूटने हम आते है।''16

कहा जा सकता है कि स्वतंत्रवता संग्राम के क्रम में राष्ट्रीयता की भावना हिन्दी कविता का मूल स्वर है – आजादी अर्थात 1947 ई0 के पश्चात् राष्ट्रीयता की भावना वेग की दृष्टि से थोडा कमजोर जरूर होती है पर यह मरती नहीं। अंग्रेजों के शासन के अंत से इस भावना को अपना लक्ष्य प्राप्त हो चूका था ऐसे में इसका कमजोर पडना स्वाभाविक है, पर यह मरी नहीं विविध नाम और रूपों से अ़द्यतन कविता तक में चलायमान है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जीवन के हर क्षेत्र में नई आशाओं–आकांक्षाओं ने जन्म लियां। इन आशाओं –अकांक्षाओं को आर्थिक – समाजिक एवं सांस्कृतिक स्वाधीनता के अभाव में सही दिशाओं मे फूलने –फलने का अवसर नहीं मिल सका। धीरे –धीरे जनता के उमंगों पर अवसाद खिन्नता और मोह–भंग का अंधेरा गहराने लगा। फलतः नई कविता आंदोलन मोह–भंग आत्मनिर्वासन, अकेलापन विसंगति–विद्रुपता आदि के भाव बोध को लेकर रचना करने आया। हिन्दी के कवियों नें राजनीति में हो रहे बदलाव और इसके अच्छे फैसले पर भी खुब लेखनी चलाई चीन द्वारा भारत पर हुए आक्रमण पर दिनकर जी ने कांग्रेस के एक सदस्य होते भी पूरजोर भर्सना की :–

''रे, रोक युधिष्ठिर को न यहाँ,
जाने ने उसके स्वर्ग धीर।
पर, फिर हमें गांडीव गदा,

लौटा दे अर्जून भीम वार।17

गोपाल सिंह नेपाली ने चीन युद्ध के समय भारतीयों का आह्वान करते हुए कहा है :

शंकर की पूरी चीन ने सेना को उतारा
चलीस करोडो को हिमालय ने पुकारा
हो जाय पराधीन नहीं गंगा की धारा
गंगा के किनारे ने शिवालय को पुकार।18

गोपाल सिंह नेपाली

आपातकाल के दौरान नागार्जुन एवं अन्य कवियों में खुल कर जय प्रकाश नारायण का समर्थन अपनी कविताओं से किया और इंदिरा को जमकर कोशा। आतंकवाद एवं सीमा पर अतंकी हमले एवं पाकिस्तान नापाक मंसुवे पर हरिओम पवार जैसे कई मंचीय कवियों ने देश का हौसला बढाया। ठीक इसी प्रकार सांप्रदायिकता, भष्टाचार जातिवाद भाईभतिजावाद, राजनीति के अपराधीकरण पर भी कवियों ने अपनी चिंता प्रकट की हैं । इस प्रकार हिन्दी काव्य साहित्य में आदिकाल से लेकर अबतक राष्ट्रवाद की धारा अनवरत गति से चली आ रही है। अनेक कवियों ने राष्ट्रीय चेतना के लिए अपने उद्गार प्रकट की है। ऐसी सोच से देश के प्रति समपर्ण, आत्मबलिदान, देशगौरव–राष्ट्राभिमान और राष्ट्रनायको के प्रति प्रेम और बलवती होती हैं।

संदर्भ

1. रामधारी सिंह 'दिनकर' (संस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ संख्या –68
2. ''मागध'' कृष्ण ना0 प्रसाद, हिन्दी साहित्य युग और धारा पृष्ठ संख्या –614
3. छास तुलसी – रामचरित मानस, अयोध्या कांड (315 दोहा) पृष्ठ संख्या –397
4. भूषण – शिवा बावनी
5. 'मागध' पृष्ठ संख्या– 620
6. भारतेन्दु समग्र – ब्रजरत्न दास
7. ''मागध '' पृष्ठ संख्या 240
8. गुष्त मैथिलीशरण – भारत भारती (215 ई0) पेज –14 लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
9. ''मागध'' – 621
10. ''मागध'' – 621
11. ''मागध'' – 621
12. ''मागध'' – 621
13. ''मागध'' – 622
14. ''मागध'' – 622
15. ''मागध'' – 623
16. ''मागध'' – 622
17. ''मागध'' – 622
18. नेपाली गोपाल सिंह – हिमालय ने पुकारा (1963)

Email.id manishkaushal810@gmail.com

Mob No. 9955495449

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 196-200
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नारी जीवन की अभिशप्त नियति का प्रतिबिम्ब – शंकर शेष का रत्नगर्भा नाटक

–डॉ० मानसिंह दहिया
गांव–निगाना कलां, जिला– भिवानी, हरियाणा।

शोध का सारांश :–

हिन्दी–साहित्य में नारी की भावनाओं को केन्द्र में रख कर अनेक साहित्यिक–ग्रंथों की रचना की गई है। इन ग्रंथों में नारी के हृदयस्थ भावों तथा पीड़ाओं को मुखर वाणी प्रदान की गई है। नारी के निस्वार्थ प्रेम तथा आत्मिक सौंदर्य–बोध को प्रकट करने में अनेक साहित्यकारों ने अपना अवदान दिया है। इन्हीं साहित्यकारों में एक नाम है–शंकर शेष।

शंकर शेष का समस्त साहित्य मानवीय भावनाओं को प्रतिबिम्बित करता है। इनके कुछ नाटकों का कथानक नारी जीवन के विभिन्न स्वरूपों के इर्द–गिर्द घूमता है। इसी प्रकार का एक नाटक है–रत्नगर्भा। प्रत्येक पुरुष की उन्नति तथा प्रगति के मूल में नारी की प्रेरणा, सहयोग, निस्वार्थ प्रेम आदि कार्य करते हैं, परन्तु कभी–कभी पुरुष का अहं नारी के इन भावों को स्वीकार नहीं कर पाता। भौतिकता की चकाचौंध से प्रभावित हुए पुरुष के सामने सौंदर्य के नये प्रतिमान उभरते हैं तथा पुरुष मांसल सौंदर्य में ही नारी के जीवन की सार्थकता को रूपायित करने लगता है। प्रेम का मांसल स्वरूप कभी भी अटल सत्य नहीं हो सकता। बनावटी प्रेम की आस्था कभी भी डगमगा सकती है। वस्तुतः वही प्रेम सत्य है, जो आन्तरिक सौंदर्य से प्रकट होता है। आन्तरिक सौंदर्य ही शावश्त है, नित्य है। जिस व्यक्ति की अन्तरात्मा आत्मिक सौंदर्य को महसूस कर सकती है, वह व्यक्ति ईश्वरतुल्य बन जाता है।

बीज शब्द– नारी जीवन, मांसल तथा आन्तरिक सौंदर्य, भौतिकता, निस्वार्थ प्रेम।

शोध का विषय–

शंकर शेष का रत्नगर्भा नाटक इला तथा सुनील के जीवन संघर्ष की कथा को प्रस्तुत करता है। सुनील उच्च शिक्षित है। वह लन्दन से 'हृदय–विशेषज्ञ' (हार्ट स्पेशलिस्ट) का कोर्स करके लौटा है। उसकी पत्नी का नाम इला है। इला ने सुनील की पढ़ाई के लिए अपने सारे जेवर बेच दिए थे। जब सुनील इग्लैंड में पढ़ाई कर रहा था, तो स्टोव फटने कारण इला का चेहरा आग में झुलस जाता है तथा उसका चेहरा विकृत हो जाता है। इला ने इस बात की सूचना सुनील तक नहीं पहुँचाई, क्योंकि इस घटना को सुनकर उसकी पढ़ाई में व्यवधान उत्पन्न हो सकता था। जब सुनील पढ़ाई पूरी करके अपने घर पर लौटता है तथा इला का विकृत चेहरा देखता है, तो उसके जीवन में तूफान खड़ा हो जाता है। इसी तूफान का वेग इला तथा सुनील के जीवन के सभी प्रसंगों

को प्रभावित करता है। रत्नगर्भा नाटक की कथावस्तु में जीवन के इन्हीं प्रसंगों को कथावस्तु का आधार बनाया गया है।

रत्नगर्भा नाटक के माध्यम से शंकर शेष ने तथाकथित प्रतिष्ठित वर्ग पर खुला व्यंग्य किया है। यह प्रतिष्ठित वर्ग बनावटी जीवन भोगने में आस्था रखता है तथा इस आस्था का इतना अभस्त हो चुका है कि वह नारी के बाह्य सौंदर्य पर ही आसक्त हो चुका है। सुनील का जगदीश नामक मित्र है, जो इसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। वह कहता है –"किसी का सुन्दर मन लेकर क्या चाटोगे? प्रेम और मन अब 19वीं शताब्दी की बातें हैं सुनील! अब आदमी धीरे–धीरे मन से तन की ओर बढ़ रहा है। आज समाज में प्रायः हर आदमी का मन रुग्ण है। आज समाज में उसी की प्रतिष्ठा है, जिसके पास सुन्दर तन है, और उस तन की रक्षा के लिए काफी धन है।"1

डॉ० शंकर शेष ने 'इला' के माध्यम से नारी के अभिशप्त जीवन की झांकी प्रस्तुत की हैं। इला का चेहरा विकृत होते ही उसकी जीवन–दृष्टि में बदलाव आ जाता है। वह संयमित जीवन जीने की कोशिश करती है। उसमें अद्भुत जीवट के साथ–साथ जिजिविषा का भाव भी परिलक्षित होता है। जीवन की इन दुष्कर तथा अयाचित परिस्थितियों के साथ जुझते हुए भी वह आपा नहीं खोती, अपितु इस विषम परिस्थति के दर्द को टांकने की कोशिश करती है। परन्तु दुर्भाग्य उसका साथ नहीं छोड़ता है। उसका दर्द समाप्त होने की बजाय बढ़ता ही जाता है तथा जीवन में एक क्षण ऐसा भी आता है जब वह अपनी परछाई से भी खौफ खाने लगती है। वह चाहती है कि उसका पति उसके वर्तमान को सहर्ष स्वीकार करे।

इला– सुनील, मैं जानती थी, मेरी विकृत सूरत देखकर तुम्हारा हृदय फट जाएगा। मेरा चेहरा विकृत होते ही मैं आत्महत्या कर लेना चाहती थी, पर आशा के एक पतले से धागे ने आज तक मुझे जीवित रखा है सुनील। आज मैं सौंदर्य की मूर्ति नहीं, उसके प्रेत के रूप में तुम्हारे सामने खड़ी हूँ। अब यदि तुम्हारा उदार अन्तःकरण उसे स्वीकार करता हो, तो अपना लो, नहीं तो ठोकर मार दो।2

जब नारी के सामने इस प्रकार की विकट स्थिति आती है, तो वह टूट जाती है। चेहरा झुलसने के कारण किसी की आन्तरिक सुन्दरता में कोई कमी नहीं आती है, किन्तु संसार ने सौंदर्य के अपने प्रतिमान गढ़ रखे हैं। इन प्रतिमानों में केवल बाह्य–सौंदर्य तथा ऊपरी चमक–दमक को ही देखा जाता है। यदि किसी दुर्घटना के कारण बाह्य सौंदर्य नष्ट हो जाता है, तो व्यक्ति के आन्तरिक सौंदर्य में कोई अन्तर नहीं आता, किन्तु संसार के लोग इस बात को सिरे से नकारते है। संसार के अधिकतर व्यक्ति बाह्य सौंदर्य के उपासक ही हैं। परन्तु वास्तविक प्रेम त्वचा का ग्राहक नहीं होता है। प्रेम विश्वास का सहारा लेकर आगे बढ़ता है तथा उसी विश्वास रूपी अमृत को पीकर अमर हो जाता है। जब मांसल सौंदर्य इस विश्वास में बाधक बनता है, तो इस स्थिति में प्रेम का कोई स्वरूप प्रतिफलित नहीं हो सकता।

नारी का जीवन प्रेम तथा विश्वास की धूरी पर ही चलता है। जब कोई नारी 'इला' जैसी स्थिति की शिकार हो जाती है, तो वह स्वयं को असहाय, लाचार तथा बेबस महसूस करती है। इस स्थिति में उसका जीवन त्रिशंकु बन जाता है, जो इधर–उधर दोलायमान रहता है, परन्तु किसी एक स्थिति पर स्थिर नहीं रह पाता। इला को जीवन के माध्यम से नारी की इसी दुःखद त्रासदी को व्यंजित करते हुए शंकर शेष कहते हैं–

इलाः– मेरा मन विश्वास करने के लिए उतावला हो उठता है सुनील, पर तुम उसे बार–बार तोड़ देते

हो। सुनील मैं मरना चाहती हूँ। पर तुम्हारी घृणा में नहीं ....। तुम्हारी गोद में सिर रखकर तुम्हारे पवित्र प्रेम की छाया में हमेशा के लिए आँखें मूँद लेना चाहती हूँ। सुनील, मैं उसी क्षण की प्रतीक्षा में हूँ। सुनील केवल एक बार मुझे विश्वास दिला दो कि तुम केवल मेरे हो केवल मेरे। इस विश्वास में बंधी मृत्यु भी ग्राह्य होगी, आकर्षक होगी।3

भारतीय नारी की एक अन्यतम विशेषता यह है कि वह अपने पति को परमेश्वर मानती है। आज की स्थिति में भी पति का स्थान नहीं बदला है। वह अपने पति के प्रत्येक अत्याचार को अपनी नियति मानकर सहन करती रहती है। वह पतनोन्मुख तथा पशुतुल्य आचरण करने वाले पति में भी परमेश्वर की छवि देखने की अभ्यस्त हो चुकी है। वह अपने पति के विरुद्ध किसी भी प्रकार की शिकायत को सुनना ही नहीं चाहती। 'रत्नगर्भा' नाटक में जब इला का चेहरा विकृत हो जाता है, तो उसका पति सुनील उससे घृणा करने लगता है और वह इला की बहन 'माया' से नजदीकी बढ़ाने की कोशिश करता है। माया को ये सब अच्छा नहीं लगता। वह इस बात की सूचना 'इला' को देती है, तो वह माया से कहती है कि तुम सुनील के साथ विवाह कर लो।

इलाः– हाँ, सच कहती हूँ माया। मैं अपने पति को पशु बनते नहीं देखना चाहती। वे केवल एक सुन्दर स्त्री का प्रेम चाहते हैं। तू निःसंदेह सुन्दर है। तुझे पाकर वे अवश्य सुखी हो जाएंगे। तू मेरी इतनी सी बात मान ले माया।

मायाः–पागल हुई हो दीदी। अपनी बहन को घर में सौत बनाकर रखेगी ? तू समझती है मैं तेरी सौत बनना चाहूँगी। दीदी, मैं ऐसा करने से पहले आत्महत्या कर लूँगी।

इलाः– इसे तू पागलपन समझती है, मैं नहीं। मैं जानती हूँ इसके लिए तुझे त्याग करना पड़ेगा। परन्तु मेरा पति इस पतन के गर्त से अवश्य ऊपर उठ जायेगा। उसमें इन्सानियत की पुनः प्राण प्रतिष्ठा हो पाएगी। अपने पति को मनुष्य बनाने के लिए मैं बड़े–से–बड़े त्याग कर सकती हूँ माया।4

इला तथा माया के उपरोक्त शब्दों में इला की बेबसी झलकती है। वह प्रत्येक स्थिति में अपने पति का आदर करती है। उसे पता है कि उसके पति सौंदर्य के उपासक हैं, तो वह अपनी बहन के सामने ही अपने पति के विवाह का प्रस्ताव रख देती है। एक नारी का इससे बड़ा त्याग क्या हो सकता है। इस स्थिति में इला का सबसे बड़ा सहारा बनती है, उसकी बहन माया। वह इला को बार–बार समझाती है कि केवल चेहरा झुलसने से ही सुन्दरता नष्ट नहीं हो जाती है। व्यक्ति की वास्तविक सुन्दरता उसके आचरण तथा व्यवहार में होती है। यदि सौंदर्य सत्य है, तो कुरुपता भी उतना ही बड़ा सत्य है। कुरुपता भी सत्य का ही एक रूप है। जब इस कुरुपता का सामना सुनील से होता है, तो वह पथभ्रष्ट हो जाता है तथा जुआ, शराब आदि की लत लगा बैठता है। इनके साथ–साथ व्यक्तित्व की स्वर्ण–कुंजी कहलाने वाले चरित्र को भी गंवा बैठता है। सुनील का मित्र जगदीश उसे बहकाता रहता है तथा सुनील उसकी बातों को सत्य मानकर अपने बसे–बसाए घर को उजाड़ने की कोशिश में लगा रहता है। सुनील का चरित्रगत सौंदर्य भी डगमगा जाता है। वह स्थिति बड़ी घातक होती है तथा प्रत्येक नारी को मर्मान्तक पीड़ा का आभास कराती है। सुनील की इस स्थिति को प्रकट करते हुए डॉ० सुरेश गौतम तथा वीणा गौतम ने लिखा है–"पथभ्रष्ट हो सुनील इला से घृणा ही नहीं करता, अपितु व्यक्तित्व की स्वर्ण कुंजी 'चरित्र' को भी जगदीश के हाथों गिरवी रख देता है। वासना की पंकिल कीचड़ में उसे वही चन्द्रमुखी इला दिखाई नहीं देती, जो उसकी प्रेरणा, प्राण–चेतना थी, व्याधियों से घिरी इला और अर्थ–लोलूप लोगों के

तकाजे सुनील के व्यक्तित्व को मुक्ति के रास्ते की ओर जाने नहीं देते। भावना को जब भावना से विजित किया जाता है, तो मनुष्यता का यशस्तिलक होता है, जब भावना पर स्वार्थ के सीलन भरे पैबन्द लगाए जाते हैं, तो मनुष्यता और उसके चिरपालित शाश्वत सत्य, प्यार जैसे भाव भी पराजित हो जाते हैं। इसलिए इतनी वैज्ञानिक उन्नति–प्रगति के बाद भी आदमी का जानवर उसके अन्दर आज भी उतना ही वहशी और खूंखार है।5

इला का विकृत चेहरा उसके जीवन–मरण का प्रश्न बन जाता है। इस विकृत चेहरे के कारण सुनील भी उससे पीछा छुड़वाना चाहता है। वह इला का ईलाज करने के बहाने उसे धीमा–जहर पिलाता है। जब इला को इस बात का पता चलता है, तो उसके जीने की इच्छा ही समाप्त हो जाती है। वह सुनील से कहती है–

इला– तुम ... तुमने तुझे विष पिलाना चाहा ...... मारना चाहा .... आखिर क्यों ..... चंद चाँदी के सिक्कों के लिए। डॉक्टर होकर दवा के बहाने विष ... इतना सब झूठ ...... फरेब .... क्या अब तक का तुम्हारा प्रेम केवल दिखावा था ..... आखिर यह सब किसलिए ..... तुम्हारी दृष्टि में शरीर का सौंदर्य इतना बड़ा हो गया ..... मन की भावना और उसके सौंदर्य का कोई महत्व नहीं है। वैसे तो मैं ही तुम्हारे जीवन से हटना चाहती थी .... किन्तु तुम्हारे प्रेम ने मुझे बांध लिया था ..... इतने छल प्रपंच की क्या आवश्यकता है? क्या पति–पत्नी के बीच इतनी सच्चाई जरूरी नहीं ? (कुछ निश्चय से) लाओ दो मुझे जहर ..... यदि मौत से तुम्हें सुख मिलता हो, तो घोंट दो मेरा गला .... बढ़ाओ हाथ।6

नाटकीय तनाव की इस स्थिति में नारी के स्वाभाविक गुणों की झलक दिखाई देती है। पति तथा पत्नी के रिश्तें के बीच सच्चाई होनी चाहिये और जब इस सच्चाई पर झूठ की परतें चढ़ाई जाती हैं, तो पति–पत्नी के बीच के सभी सम्बंधों पर संदेह का आवरण छा जाता है। यह आवरण इतना गहरा होता है कि संसार की कोई भी ताकत इस आवरण को छेद नहीं सकती। संदेह का यह आवरण निरन्तर गहराता जाता है तथा एक दिन रिश्तों को ही समाप्त कर देता है।

नारी का प्रेम निस्वार्थ भाव पर टिका हुआ है। पुरुष का विश्वास उसके प्रेम को परिष्कृत तथा संस्कारित करता है। ऊपरी चकाचौंक से प्रभावित हुआ व्यक्ति वास्तविक 'रत्नगर्भा' के स्वरूप से परिचित ही नहीं हो पाता। इसी अर्थ को व्यंजित करते हुए डॉ० प्रकाश नारायण जाधव कहते हैं कि– दुनिया के सामने खूबसूरती ही तो सबसे बड़ा सवाल नहीं है। यदि कुछ दिनों तक गुलाब का खिलना बंद हो जाये, तो इस दुनिया की चाल नहीं रुक जायेगी और यदि औरतों का सौंदर्य कुछ दिनों के लिए मुरझा भी जाये, तो क्या दुनिया मिट जायेगी। सौंदर्य और सौंदर्य ये सब सीमित वर्ग के नखरे हैं। वास्तविक सौंदर्य तो हर कहीं दिखाई देता है। इस धरती माँ की काली मिट्टी क्या सुन्दर नहीं है। भगवान ने खूबसूरती के मामले में सबके साथ न्याय नहीं किया।...... प्रेम मनुष्य को शरीर सौंदर्य से उस पार देखने की शक्ति देता है। साथ ही वह सदैव विश्वास का अमृत पीकर जीता है। चर्म सुन्दरता तो बाह्य है। सुन्दरता मन की चाहिए, विश्वास की चाहिए, विचार व्यवहार की चाहिए, आचरण–उत्सर्ग बलिदान की चाहिए, जल बिन मछली–सी तड़फन की चाहिए।7

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि रत्नगर्भा नाटक के माध्यम से शंकर शेष ने नारी–सौंदर्य का एक नया विमर्श खड़ा किया है। जो व्यक्ति केवल बाह्य–सौंदर्य का उपासक है उस व्यक्ति की आँखें नारी के वास्तविक सौंदर्य को नहीं देख पाती हैं। जिस प्रकार इला का विकृत चेहरा उसके जीवन–मरण का प्रश्न बन जाता है। यदि यही स्थिति उसके पति सुनील के साथ घटित हुई होती, तो स्थिति इतनी मर्मान्तक नहीं होती,

क्योंकि इला सुनील के इस स्वरूप से भी प्यार कर लेती। किन्तु पुरुष का अहं उसे ऐसा करने से रोकता है। पुरुष का आदर्श ऊँचाइयों पर जाकर बदल जाता है। वह स्वाभाविक गुणों की सभी परतों को छिन्न–भिन्न करते हुए चलता है और काल्पनालोक की रंगिनी का शिकार होकर अपने घर की शांति को नष्ट कर बैठता है।

इला के चरित्र के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया गया है कि त्याग, श्रद्धा, विश्वास, बलिदान आदि ही प्रेम के वास्तविक स्वरूप के निर्धारक है। शंकर शेष ने इस नाटक में प्रेम के सही स्वरूप को परिभाषित किया है। इस नाटक का मूल उद्देश्य यही है कि शाश्वत प्रेम ही शीर्ष मुकुट पहनने का अधिकारी है। जीवन को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला कारक प्रेम ही है। प्रेमी व्यक्ति प्रत्येक वस्तु में सौंदर्य देखता है तथा यही सौंदर्य उसके जीवन को ऊर्जा से भर देता है। नारी के बाह्य व्यक्तित्व में ही सुन्दरता नहीं है, अपितु उसकी चरित्रगत तथा आचरणगत शुद्धता को देखा जाना चाहिये।

वस्तुतः शंकर शेष ने रत्नगर्भा नाटक के माध्यम से नारी–जीवन की मर्मांतक वेदना को अभिव्यक्ति प्रदान की है। यह अभिव्यक्ति इतनी मुखर है कि व्यक्ति मात्र के भीतर स्थित शाश्वत प्रेम की वीणा के तारों को छेड़ती है तथा उसके भीतर प्रेम के सही स्वरूप को रागात्मक अभिव्यंजना प्रदान करती है।

संदर्भ ग्रंथ–सूची

1. शंकर शेष समग्र नाटक, रत्नगर्भा, संपादक–हेमंत कुकरेती, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ०–57
2. वही, पृ०–54
3. वही, पृ०–87
4. वही, पृ०–64
5. नटशिल्पी शंकर शेष, सुरेश गौतम, वीणा गौतम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ०–65
6. शंकर शेष समग्र नाटक, रत्नगर्भा, संपादक–हेमंत कुकरेती, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ०–91
7. शंकर शेष का नाटक–साहित्य, प्रकाश नारायण जाधव, साहित्य रत्नालय, कानपुर, पृ०–34

मो० न० 9728842148

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 201-203
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ मनोज भारत के दोहा संग्रह 'दूजा नहीं कबीर' में नारी चिंतन

–सुशील सोखल, शोधछात्रा
–डॉ. मौसमी परिहार, सहायक प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग, र. टै. वि.वि. भोपाल (मध्य प्रदेश)

भारतीय संस्कृति सतत् प्रवाहमान, सहज, सरल निरंतर परिमार्जन को ग्रहण करने वाली रही है। यही कारण है कि यहां अनेक संतों महात्माओं, साहित्यकारों महापुरुषों के व्यक्तित्व–कृतित्व की छवियां सदैव प्रतिबिंबित–आभासित होती रही हैं। यहां किसी भी परिवर्तन की स्वीकार्यता है,जड़ता नहीं है, यही कारण है कि शासन, धर्म, चिंतन की अनेक धाराध्‍ यहां सहजीविता के सिद्धांत का अनुकरण करते हुए बह रही हैं।यहां कोई धर्म, पंथ,दर्शन या वाद कभी विवाद का कारण नहीं बना।वर्तमान कालखंड में सहजीविता की इसी सहोदरी संस्कृति के उपवन के चिंतन–दर्शन के सभी आयामों को एक बार पुनः सशक्त करने वाले कलमकार बन कर उभरे हैं श्दूजा नहीं कबीरश के दोहाकार डा० मनोज भारत। इस दोहा संग्रह में इसके पढ़ने वाले प्रत्येक पाठक के चिंतन मनन के प्रपात को जागृत करने का सामर्थ्य है इनके दोहे कबीर, रहीम वृन्द की सखियों की तथा बिहारी की श्रृंगार रसिकता की परिपाटी को आगे बढ़ाने वाले हैं। इसमें वर्तमान जीवन परिस्थितियों की सच्चाई तथा संभावित प्रतिकूल परिणामों की चेतावनी के स्वर हैं। कबीर की नारी कभी माया बन भक्ति अवरोधी होती है।तो कभी साँप को भी अंधा कर देती है वहीं डा० मनोज भारत के द्वारा चित्रित नारी सर्वशक्ति है संपन्न हो नर की सहपथिक बनती है। जैसे रू

नारी है नारायणी, इसके रूप हजार।
ब्रह्मा विष्णु महेश भी, इसका ही विस्तारध्‍ पृष्ठ सं. 57

काव्य के शब्द भाव के साथ–साथ कहीं उसमें एक किशोर रूपाशक्त भी मचलता प्रतीत होता है। अपनी नायिका पर मुग्ध वह प्रेमी विद्यापति, जायसी और बिहारी की तरह ही अपने प्रिय पात्र के अप्रतिम रूप–सौंदर्य का विभिन्न उपमानों से नख–शिख वर्णन करता है रू

ग्रीवा गति है मोर सी, सरिता की धार।
लट बल खाती सर्प सी, रुक देखे संसारध्‍
नासा नयन अधर उदर, मुख ग्रीवा रमणीक।
अग्र पृष्ठ है सृष्ट सब, कद कटि भाप सटीकध्‍ पृष्ठ सं. 59

लेकिन नारी के रूप सौन्दर्य का अद्भूत गुणगान करते हुए भी वे पूर्ण शालीनता के अनुचारी हैं । लम्पटता कामुकता की अपेक्षा समर्पण त्याग की भावनाएं उनके साहित्य के संदेश को व्यापक बनाती हैं उनके चित्रण में

एक मुग्ध प्रेमी तो है लेकिन कामुक नहीं। वे भारतीय संस्कृति सम्मत परिवारिक व्यवस्थाओं, रीति–परम्पराओं का पोषक है

उदाहरणार्थ रू

माँ सम आशुतोष नहीं, पत्नी जैसा मीत।
गुरु समान हितकर नहीं, नहीं बहन सी प्रीतद्द पृष्ठ सं. 26

गणना की दृष्टि से नारी की दुनिया के लगभग आधी आबादी है। किंतु अपने त्याग, समर्पण, निष्ठा, कर्मठता में उसका पलडर नर से अधिक भारी है। वास्तव में नारी ही सृष्टि की जननी है समस्त कलाएँ उसी के प्रश्रय से विस्तार पाती है। डा० मनोज भारत भी नारी के बिना संसार को रस–रंगहीन घोषित कर देते हैं–

कर्कश कुटिल और जटिल , बेशऊर बदरंग।
होगा नारी के बिना, जीवन ये बे–ढंगद्द पृष्ठ सं. 57

डॉ मनोज भारत वर्णित नारी चपला चंचला होते हुए भी काम –उपकरण मात्र नहीं है। उनकी नारी अबला नहीं सबला है वह हर क्षेत्र में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्शाने के सामर्थ्य से युक्त है। उन्हीं के शब्दों में –

नारी जब भी थाम ले, कोई कलम कृपाण।
सब में ही बेजोड़ है, देती स्वयं प्रमाणद्द पृष्ठ सं . 56

दोहाकार मनोज भारत का स्वर नारी दमन का विरोधी है। किंतु यत्र नार्यस्तु पूज्यते की धारा का पोषक चिंतक आह्वान करता है। कि उसकी पूजा भले ही मत करो लेकिन उसे बराबरी का दर्जा अवश्य दो समानता के अवसर मिले मात्र से ही नारी अपनी समस्त बाधाओं पर विजय पा सकती है । सम–भाव युक्त पंक्तियां देखिए –

मत कुचल न सर पर बिठा, चलने दे बस साथ।
कर लूँ हर तूफान से, फिर मैं दो–दो हाथद्द पृष्ठ सं . 56

इन दोहों में नारी के विभिन्न किरदारों में मां, पत्नी, बेटी, बहन, प्रेमिका आदि का व्यापक चित्रण मिलता है उपेक्षित बेटियों की मान स्थापना को उद्धत कवि लिखता है –

बेटी से घर बार है, बेटी से संसार।
बेटी कुल की मेखला, रिश्तो का आधारद्द पृष्ठ सं. 19

डॉ मनोज भारत के दोहों में नारी के प्रति आदर–वंदन का भाव है ।पठित कविताओं के नारी के पत्नी रूप का चित्रण वर्णन अधिकांश रचना व्यंग्य और उपहास के रूप में किया जाता है। मंचील कविताओं में तो पत्नी के उपहास के बिना पत्नी वर्णन की कल्पना ही नहीं हो सकती। लेकिन डॉ मनोज भारत का चिंतन नितांत विपरीत है। वे पत्नी के बारे में लिखते हैं –

माघ मास की धूप–सी, फागुन से है रंग
पत्नी पावन चौत–सी, सावन–सा है संगद्दपृष्ठ सं . 62

यद्यपि पत्नी की सलाह उसकी बंदिशें व्यक्ति को बुरी लग सकती हैं लेकिन डॉक्टर भारत के शब्दों में वे वैध की कड़वी दवाई की भांति व्यक्ति का भला ही करती हैं। वे कहते हैं –

कड़वा कितना भी रहे, क्षार करेला नीम।

फिर भी करते हैं भला, पत्नी मित्र हकीमः पृष्ठ सं. 62

नारी शिक्षा में अवरोध , दहेज प्रथा, परिवार का निर्णयों में नारी की अवमानना, कन्या भ्रूण हत्या जैसी विद्रूपताएं आज भी नारी के प्रगतिपथ की अवरोधक बनी हुई है। लेकिन डॉक्टर भारत वर्णित नारी इनसे हार मानकर निराश नहीं होती वह चुनौती देती हुई यलगार करती है –

काट परों की बेड़ियाँ, दे मेरा सम्मान।

अंबर में भी देखना, मेरी अथक उड़ानः पृष्ठ सं. 57

डॉ मनोज भारत नारी के मां, पत्नी, बहन, बेटी, प्रेमिका आदि प्रत्येक रूप में हमारा धर्म है। उनमें नए प्रतीक, उपमान और मौलिक चिंतन शैली उन्हें अपने समकालीन रचनाओं में अग्र पांक्तेय बनाती है। नारी सशक्तिकरण के युग में कवि का यह संकलन नारी के गौरव को महिमामंडित रखता करता है।

नाम – सुशील सोखल पत्नी श्री मुकेश कुमार

पता – शिक्षा मार्ग, नजदीक– वैश्य सी. सै. स्कूल भिवानी (हरियाणा)

पिन कोड – 127021

मो. – 9468050991, 9466053474

ई.मेल – `नईीपउनामीं/हउंपस.बवउ

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 204-209
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

औरत के लिए औरत में नारी–विमर्श

–सुरिता देवी
पीएच.डी. हिन्दी, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, समरहिल, शिमला–171005

नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में 'नारी विर्मश' शीर्षक सर्वथा एक नया आकर्षण है। जिस प्रकार नदी का प्रवाह पुरानी सड़ी हुई घास–फूस को बहाकर ले जाती है उसी तरह नासिरा शर्मा ने भी पुराने अवैज्ञनिक विचार, रीति–रिवाज़, अंधविश्वास आदि को नकारा हैं और अग्निपथ पर चलने का सहास जुटाया है। उनके विचार में, नारी प्रेम संगीत, त्याग, कर्त्तव्यनिष्ठा का प्रतीक हैं। नारी की शारीरिक सरंचना तथा सकारात्मक गुणों की दृष्टि में रखकर यदि नारी का शोषण होता है तो लेखिका उसे कभी सहन नहीं करती। वह अपने नारी पात्रों के दवारा विद्रोह करवाती है और अंधेरे से उजाले की ओर जाने की मशाल जलाती है। 'औरत के लिए औरत' में नासिरा शर्मा ने औरत को एक निष्ठावान्, कर्मठ, धैर्यवान और बलिदान करने वाली एक ऐसी साहसी नारी माना है जिसका मुकाबला दुनिया का कोई दूसरा दुर्बल प्राणी नहीं कर सकता।

आज 'स्त्री–विमर्श' का मुहावरा हिन्दी साहित्य में एक बहस का मुद्दा बना है। 'स्त्री–विमर्श' का उदय सामूहिक रूप से पश्चिमी देशों से हुआ। व्यक्तिगत स्तर पर नासिरा शर्मा ने 'स्त्री–विमर्श' का उदय उस समय से माना है। जब से औरत ने घर की चुनौतियों के बीच रहना स्वीकर किया है। आज से लगभग 70 साल पहले स्त्री को एक दासी, एक भोग्या वस्तु, बच्चों को पैदा करने वाली मशीन के रूप में देखा जाता था। उसका प्रतिबिम्ब नासिरा शर्मा में मिलता है। मैक्सिकों में राष्ट्र महिला सम्मेलन में वर्ष 1975 को महिला बर्ष घोषित किया गया। इसी के कारण पूरे एक दशक में संसार भर में नारी चेतना को लेकर काम शुरू हुआ, नई दिशाएं, नई सम्भावनाओं की खोज हुई। नारी उत्थान और नारी उत्पीड़न को लेकर नए कानून एवं योजनाएं बनाई।

हिन्दूस्तान में राजा राम मोहन राय और नजीर अहमद जैसे व्यक्तित्व नारी के प्रति जड़ परम्पराओं और अत्याचारों को बुनियाद से उखाड़ फैकना चाहते थे। इसी तरह 1920 में अखिल भारतीय महिला समिति संस्थाओं ने भी पीड़ित, शोषित, सती प्रथा, परदा, बाल–विवाह के विरूद्ध अपनी आवाज़ बुलद की थी, जिसका अनुभव स्त्रियों ने परिवार के स्तर पर कभी–कभी किया हैं। 1972 में सेवा संस्था द्वारा औरतों के लिए बराबर मजदूरी और उनके दस्तकारी द्वारा रोजगार की तलाश, बिचौलियों से बचाव और सहीं दाम पर माल की बिक्री जैसी योजनाएं शुरू की गई। 1974 ने 'समानता की ओर' रिपोर्ट में महिलाओं के पिछड़ेपन का न केवल परदाफाश हुआ, बल्कि तथ्य के साथ–साथ यह सच भी उजागर हुआ कि स्त्री की स्थिति में योजनाओं और कानून में कोई बदलाव नहीं आया। कुछ मिलाकर सारे काम जो 'औरत' को लेकर अजांम पर रहे हैं वह अपनी जगह महत्वपूर्ण हैं और जब वह दूसरी स्त्री के प्रति संवदेनशील होगी। नासिरा शर्मा ने 'औरत के लिए औरत' में नारी विमर्श से सम्बधिंत निम्न बिन्दुओं का वर्णन किया है–

मर्दो की कुंठाओं को झेलती औरतें

हमारे समाज में अकसर बहुओं को सजा के तौर पर मायके न जाने देना और पिता का किसी करीबी रिश्तेदार से कहा सुनी हो जाने पर, पति का उसे न मिलने का आदेश, पत्नी को चाहने या न चाहने के बाबजूद मानना पड़ता हैं। यह एक तरह की हिंसा है, जिससे लड़कियां बड़े गहरे संताप से गुजरती हैं। उनका खाना–पीना उनके हलक में अटकता है। इस आक्रोश का उद्गार ज्यादातर घरों में अधेड़ उम्र के पहुंचने पर निकलते देखा जाता है, जब औरतें पूरी तरह हठधर्मी बन जाती है। प्रत्येक बंधन को तोड़ने पर उतारू हो जाती हैं। ऐसी औरतों को कर्कशा, बदज़वान, बाहियता औरत का सम्बोधन मिलने लगता है। कभी–कभी औरत माँ–बाप के बीच के पन्पी कटुता की वजह से अपना अलग संसार बसाने लगती है। मर्द भी अपनी दिलचस्पी बाहर ढूंढ लेता है। अकेली बची औरत जिसको जबान लड़ाने की बड़ी सजा भुगतनी पड़ती है। उसका खर्चा–पानी बंद हो जाता है और अन्दर बाहर की प्रताड़ना सहती हुई, प्रताड़ित स्त्री किसी भी न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटा सकती क्योकि सारे सबूत उसी के खिलाप जमा होने लगते हैं।

औरत की स्थिति को बदलने मे स्वयं औरत उपयोगी भूमिका अदा कर सकती है। जरूरी नहीं है कि यह बदलाव किसी आन्दोलन, किसी विद्रोह, किसी भी निर्भरता से शुरू हो, स्वयं औरते अपनी दयनीय स्थितियों को सुधारने की कोशिश करें तभी परिदृश्य बदलेगा। कानून परम्परा, रीति–रिवाज़ से स्वयं औरत को अपना पक्ष उठाना चाहिए ताकि अपने को स्वयं देखने का उसका नज़रिया बदले और फिर पूर्ण विश्वास के साथ अपने साथ होने वाले गैर इनसानी व्यवहार को नकारने का धर्म निभा सके।

बेड़िया तोड़ती नंगी औरतें

भारत में उत्तर–पूर्व में स्थित नागालैंड में मुख्य रूप से सोलह कबीले हैं, जिसमें से आंगामी, आओं, सेन, लोपा की स्थिति सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से दूसरों से बेहतर है। इनमें शिक्षा भी अन्य कबीलों से ज्यादा है। प्रकृति–प्रेमी नंगे लड़के–लड़की में कोई फर्क नहीं रखते। वहां अधिकतर प्रेम विवाह ही होते हैं। पहले लड़कियों की शादी में केवल उसका सलीखा देखा जाता था कि 'चाय की रस्म' के समय जब लड़के वाले लड़की वाले के घर लड़की देखने आते हैं तो लड़की के सलीके के पहचान चाय की रंगत और शक्कर की मिकदार से नापी जाती है कि क्या उसमें पड़ी चाय की पत्ती एवं शक्कर की मिलावट सही है। दूसरा, उनका बनाया खाना, अंदाज से पूरा उतरता हैं कि सारा परिवार खा ले और कम न पड़े। अब स्थिति बदल चुकी है अब नागाओं को जीवन साथी चाहिए, केवल घर चलाने वाली नहीं।

नगा समाज आज पुरुष प्रधान समाज है। इसलिए घर का सरा काम नगा महिला को करना पड़ता है। यदि वह कामकाजी हुई तो भी यह जिम्मेदारी उसको अकेले निभानी पड़ती है। क्योंकि घर और बच्चों की हर अच्छाई और बुराई का श्रेय माँ को ही दिया जाता हैं। वर्तमान समय में नगा महिलाओं की सबसे चिंता है– पैतृक सम्पति में हिस्सा न मिलना। वहां यदि पुरूष प्रधान समाज है। इसलिए पिता के देहांत के बाद जायदाद मां को मिलती है। यदि लड़का न हुआ या सिर्फ लड़की ही हुई तो मां के कहने के बाद लड़किया पिता की जायदाद से वंछित रह जाती है और उसकी जायदाद चाचा के बेटे के नाम हो जाएगी। इस स्थिति को नगा औरतें स्वीकार करती आ रही है। नगा समाज ईसाई धर्म स्वीकार करने के बाद नए और पुराने का मिश्रण लगता है। परन्तु वास्तव में लोग परम्परावादी एवं पारिवारिक व्यवस्था को महत्व देने वाले हैं। इसलिए इन प्रगतिशील नारियों ने इस बंध

ान से मुक्ति पाने का एक रास्ता ढूंढ रखा है कि माँ चाहे तो अपने पति की जायदाद को बेच सकती है। माँ अपना घर चाहे एक समय में ही सही अपनी बेटियों को बेच दे, ताकि वह इस कानूनी राह से अपने पिता की संपति की हकदार बन सके। आज यह देखने की जरूरत है कि पुरानी पीढ़ी तर्क के आधार पर कितनी शक्तिशाली अपने को बना सकती है। आज इस आन्तरिक संघर्ष को खुद औरत, अपने पुराने बन्धन को तोड़ने के लिए यत्नशील हैं।

फूंक–फूंककर रखना होगा हर कदम

सभ्यता का प्रारम्भ खेती से माना जाता है। खेती करना औरतों ने शुरू किया। उस समय मर्द आखेट करने जाता था, औरतें अपने आस–पास के अवलोकन से बीज से कल्ले कूटने का भेद जान गई थी। औरत सृष्टि है; इस संसार की आबादी का स्त्रोत है। इसलिए उसकी जिम्मेदारी किसी भी प्रकार के सामाजिक पतन, भ्रष्टाचार, विखराब के प्रति पुरुष से अधिक बढ़ जाती है, क्योंकि उसमें सम्बन्धों की समझ गहरी है। मध्यवर्ग की महिलाओं पर दो प्रकार की जिम्मेदारी होती है। पहली माँ–पत्नी होने के नाते घर–परिवार की और दूसरी अपने कामकाज और भविष्य की, जहाँ पर उसकी पहचान एक अफसर, डाक्टर या क्लर्क की होती है। इस समय अनेक तरह का दबाव मध्यवर्ग को तनाव की स्थिति में ला रहा है। कहीं पर उसकी दृष्टि अपनी व्यक्तिगत सुख–सुविधाओं से वंचित जीवन की तरफ भी ठहरती हैं।

भले ही आज कोशिश धीरे–धीरे हो रही है, परन्तु भारत को एक बड़े बाजार में तब्दील करने और विचारहीन उपभाक्ताओं, के रूप में भारतीयों को परिवर्तित करने का षड्यन्त्र अधिक देर चल नहीं सकता है क्योंकि इसको संभालने का काम पुरुष–महिला मिलकर कर रहे है। महिलाएं अपने परिवार के सदस्यों में बदलाव ला सकती है कि वह बाजार के अधीन न बने, मगर जब वे ही उसे प्रभावित हो, अपने आन्तरिक सौन्दर्य पर विश्वास रखने की जगह बनावटी साज–सज्जा और दिखावे पर जोर देने लगेगी तो मर्यादा, मूल्य, परम्परा, रीति–रिवाज़ों का क्या होगा, जो गाँधी की सोच सदा जीवन उच्च विचार पर आधारित होने चाहिए।

महिलाएं कर सकती है सार्थक राजनीति की शुरूआत

राजनीतिक पार्टियों में औरत की भूमिका महत्पूर्ण है। प्रधानमन्त्री तथा कैबिनेट स्तर पर भी उसकी स्थिति मजबूत रही है। श्री मति इन्दिरा गांधी के बाद मोहसिना किदबई, मारग्रेट अलवा, नजमा, हेमतुल्लाह इत्यादि कई महत्त्वपूर्ण नाम हैं। इन सभी महिला राजनेताओं के विचार और फैसले उनकी पार्टी के अधीन रहते है। सब कुछ जानने और समझने के बाबजूद उनकी एक कूटनीति होती है जिसका पालन करना उसका कर्त्तव्य होता है, जैसे कि शाहवानों और रूपकंवर के सिलसिले में कोई सियासी महिला आगे नहीं आई। हमारे सविधान में औरत को वोट डालने तथा अपना सियासी नेता चुनने का अधिकार दिया है। महिलाओं के पास ईश्वर के बाद वह शक्ति है, जो मर्द के पास नहीं है औरत गोद की गर्मी से उसे जीवन देती है। वह उस शिशु का लालन–पालन यदि सुचारू रूप से करती है, तो वह एक बेहतर नागरिक का योगदान देश की आबादी में करती हैं। औरत के हाथों में परिवार की बागडोर रहती है और इस तरह खुले मानवीय विचारों की आम महिलाएं यदि एकता के सूत्र में मोहल्ले–मोहल्ले, कस्बे–कस्बे, शहर–शहर गांव एकत्रित हो जाएं, तो हमारे राजनेता हमारा शोषण करना बंद कर देंगे और औरतें उन्हें मार्ग दिखा सकती है। आखिर देश की आबादी का आधा हिस्सा औरते ही तो हैं।

सहज गुणों का सरंक्षण

भारत में शुरू से ही महिलाओं के प्रति एक अलग मानसिकता बनी है। यह मानसिकता कमजोर होने के बजाय लगातार मजबूत हुई। खासकर एक अकेली औरत और उसमें भी यदि वह कामकाजी हो तो वह औरत हमेशा चर्चा के केन्द्र में रहती हैं।चर्चा का मुख्य केन्द्र यौन सबंधं होता है। पाक–साफ होने के बावजूद स्त्री होने के नाते उसे यौन शोषण के चक्रव्यूह में फंसने के लिए मजबूर होना पड़ता है। चालीस–पैंतालीस वर्ष के बाद इनके अन्दर एक विशेष प्रकार का आत्मविश्वास विकसित हो जाता है तथा वे अपने आपको हर तहर की परिस्थितियों से मुकाबला करने को तैयार कर लेती है, इसलिए रात की ड्यूटी में चालीस से कम उम्र की महिलाओं को नहीं लगना चाहिए, क्योंकि उनके अन्दर हिम्मत और आत्मविश्वास होने के बावजूद उच्च महत्त्वाकांक्षा होती है तथा वे जीवन की सभी सुख–सुविधाएं जल्दी ही पाना चाहती है। इसलिए वे हर जगह कमजोर पड़ जाती है, जिसका पुरुष फायदा उठाने से पीछे नहीं हटता। महत्त्वाकांक्षी महिलाएं कम समय में अधिक से अधिक प्राप्त कने के लिए अपने–आपको तरह–तरह से तैयार करती है। इन बात का अदांजा क्रम उम्र की कामकाजी महिलाओं के बनाव श्रृगांर को देखकर लगाया जा सकता है।

वास्तव में स्त्री और पुरुष के बीच सरल और सहज सबंधं की जरूरत है, ताकि लोग एक दूसरे की भावना को समझ सकें। महिलाएं सबसे अधिक पुरुष के सम्पर्क में आती है, इसलिए कार्य–स्थलों पर इस बात की कोशिश होनी चाहिए कि वे एक–दूसरे के साथ सहज और सामान्य व्यवहार करें। कामकाजी महिलाओं के साथ असमानता का व्यवहार और यौन शोषण का एक बड़ा कारण, समाज की वह मानसिकता है जिसे वह पैसा और ताकत प्राप्त करने बाद विकसित कर लेता है। अगर संबंधों में सहजता और सरलता आएगी तो कामकाजी महिलाओं के साथ यौन शोषण जैसे स्थितियां उत्पन्न ही नहीं होगी। अतः आज हमें जरूरत है कि हम एक ऐसा नैतिक मूल्य विकसित करें, जो स्त्री और पुरुष के संबंध को गरिमामय रूप दें सकें।

सकारात्मकता

यह युग आविष्कारों का युग है। मानवी शरीर के भेद खोलने और नई–नई बीमारियों के संग अनेक तरह के उपचार और दवाओं की खोज का समय है। इन्सान का जीवन पहले से कहीं अधिक सुखी और सुविधापूर्ण बनता जा रहा है, जिससे बाजार–घर दोनों स्थान आकषर्ण का कैन्द्र बन चुके है। यह विकासशील देशों में भी बढ़ रही है। जैसे–जैसे महिलाएं जीवन के हर क्षेत्र में मर्दो के समक्ष पहुंच रहीं, वैसे–वैसे उनकी मन स्थिति भी बदल रही है। वे भी उन्नति, राजनीति, प्रतियोगिता, भ्रष्टाचार की दौड़ में बराबर की हिस्सेदार बन रही हैं। इस तेज चाल का सतांप मध्यवर्ग को सहना पड़ता है, विशेषकर मध्यवर्ग की महिलाओं को, जो काफी हद तक संवेदनाओं की निर्भरता, रिश्तों की जकड़न से ऊबर नहीं पाई है क्योंकि हमारा समाज अभी पुराने जकड़न से ऊबर नहीं पाई है, क्योंकि हमारा समाज अभी पुराने रीति–रिवाज़ो और किसी हद तक जड़–मान्यताओं के ताने–बाने में जकड़ा है। मध्यवर्ग किसी भी देश में जीवन मूल्य के मेरूदंड की तरह देखा जाता है। यह जीवन मूल्य मध्यवर्ग को सचेतन बनाने के समय समाज को निरंतर दिशा देने की कोशिश में लगा रहता है।

बदलते समय में समाज और उसके मूल्यों के साथ–साथ, वैचारिक बदलाव का स्वागत करना चाहिए, क्योंकि परिवर्तन चक्र का ही हिस्सा है, परन्तु बदलाव की दिशा सकारात्मक होनी चाहिए। वह समाज को ऐसी दिशा दे कि जहां से वापसी का नहीं सोचना पड़े। विकसित देशों की ऊपरी चकाचौधं के साथ–साथ उससे आहत हो चुके उनके मन के मर्म भी महसूस करें तो हम दिशाभ्रमित नहीं होंगें।

समाज और स्वतन्त्रता

नारी–मुक्ति की सफलता, विफलता में तब बदलती है जब उस उदार समाज की नारी अवैध बच्चों को जन्म देती है, मर्द समाज उस बच्चे का उतरदायित्व अपने कंधों पर नहीं लेता है, इसलिए ऐसे बच्चों के लिए उचित संस्थाओं की व्यवस्था है, मगर उस नारी को वह स्वतंत्रता, उस समाज ने नहीं प्रदान की है कि वह उस अवैध ा बच्चों के साथ जी सके और आवश्यकता के हर जरूरी फार्म पर पिता के नाम का स्थान खाली न हो बल्कि वास्तव में छपे ही नही, तब हुई सही सेक्स क्रान्ति, मगर ऐसा वहां भी नहीं है। नारी मुक्ति का उदेश्य क्या केवल मर्द का मुकाबला करना है या कदम से कदम मिलाकर चलने का अर्थ मर्दाना व्यवहार और आचार की नकल या फिर अपने स्वयं के दायरे को बढ़ाना और अपनी बेडिया अपनी आवश्यकता को देखकर तोड़ना? पूर्व में औरत देवी है और पश्चिम मे एक पुर्जा। दोनों जगह बेजान, एक जगह पत्थर, दूसरी जगह लोहा। हर जगह उसे गढ़ने वाला मर्द समाज अपने लाभ को दृष्टि में रखकर औरत को स्वतन्त्रता देता है। तकनीकि और सभ्यता के शौर्य मुकुट बने देशों में औरत केवल मनोरंजन का साधन है।

भारत में मेघालय में समाज औरत प्रधान है। सारी व्यवस्था औरत के हाथ में है। मर्द घर के बच्चे पालता है, परिवार की सबसे छोटी लड़की को पैतृक धन–संपति का अधिकारी बनाया जाता है। इन सब के बाबजूद भी वहां की स्त्री भावनात्मक समस्या के स्तर पर हर धक्के पर टूटती क्यों है और वह एक मर्द की तरह न होकर एक अबला निरीह नारी की तरह होती है जिसके आचंल में दूध और आंखों में पानी रहता हैं।

आज आजादी के पचास वर्ष गुजरने के बावजूद भी यही सोच माता–पिता को किसी न किसी रूप में घेरे रखती है। आज जहां आर्थिक स्थिति बेहतर हुई है वहां शिक्षा की कमी है, जिससे औरत को देखने का नज़रिया बदला नहीं है। मर्दसालार समाज में औरते अनजाने में बहुत से गलत फैसले लेने पर मजबूर कर दी जाती है। उनके आचरण के पीछे मर्द का दबाव, स्थिति का तनाव, परिस्थितियों की मजबूरी, माँ–बाप की लाचारी आदि कोई देखने नहीं बैठता है। सीधे आरोप महिलाओं को झेलने पड़ते हैं, परन्तु जब बात घर में स्थिति तथा अधिकार की आती है तब औरते पाती है कि उनके पास किसी भी बुनियादी फैसले का अधिकार नहीं है। जो स्वतन्त्रता उन्हें है वह केवल धन कमाने और परिवारजनों की सुख–सुविधा के साधन जुटाने की हैं।

आज औरतों का उन कमजोरियों पर नजरें रखना जरूरी हो गया है जो उनके, पिता, भाई, पति एवं पुत्र में है, ताकि वह नए शिशुओं का लालन–पालन इस तरह से करे कि वह अपने समय में पल रही लड़की की स्थिति को समझे, वहां औरत को लेकर सोच का दायरा तगं न हो, बल्कि उसे भी इनसान की तरह पूरी गरिमा एवं नागरिक अधिकार के साथ जीने दिया जाए। ईश्वर ने औरत और मर्द को लेकर शक्लें अलग–अलग जरूर दी है मगर उनको किसी भी स्तर पर कमी देकर छोटा–बड़ा नहीं बनाया है और वे लोग जो कुंठित है, उन्हें मालूम होना चाहिए कि मन–मस्तिष्क, चेतना एवं शक्ति में औरत कमतर नहीं हैं।

भारतीय नारी

आज सबसे अधिक बुद्धिजीवी महिलाएं भारतवर्ष में हैं। कर्मठ घर के दायरे में और निडर अपने कलम चलाने में उनकी मौखिक अभिव्यक्ति भी समाज और परिवार का नियन्त्रण करने में समय–समय पर बहुत कामयाब साबित हुई है, उनके फैसले और बलिदान देखकर ही उन्हें नैतिकता का संरक्षक कहा गया। ये औरते हर वर्ग, हर परिवार में किसी न किसी रूप में मौजूद रहती है। इनकी नजरें भविष्य पर टिकी होती है जो दूर तक की

चीजें देख लेती है। घटने वाली घटनाओं का संकेत इन्हें मिल जाता है। ये वे औरते हैं जिन्होंने अपने दमखम पर इस बदहवास दुनिया को अपने हाथों या कंधे पर उठाए रखा। हर क्षेत्र में चाहे व घर हो या बाहर अपनी गम्भीरता का परिचय दिया। गिरते मानवीय मूल्यों के वक्त समाज को सही दिशा दिखाने का प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाया।

आज के दौर की सबसे गम्भीर आलोचक नारी है। जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह कला–साहित्य हो, उद्योग–व्यापार हो, कम्प्यूटर शिक्षा जगत हो, पत्रकारिता लेखन हो, हर जगह वह अपनी मौजूदगी जीवन–मूल्य, कार्यक्षमता, निष्ठा द्वारा दर्ज करा रही हैं। उसकी नकल करती तीसरे दर्जे की औरतें वही हावभाव अपना, शब्दों को उधार मांग अपने को उस पंक्ति में जबरदस्ती दाखिल करा रही है, मगर यह तालमेल कुछ दिनों बाद दूध ा का दूध, पानी का पानी करके सच्चाई को सामने लाकर खड़ा कर देता हैं।

बदलती नारी

आज समय की चेतना से सम्पन्न नारी का सोच का कार्यक्षेत्र, उसकी क्षमता और उसकी दृष्टि सभी संदर्भों में बदल रही हैं। आज नारी का चिन्तन नए जमाने के साथ–साथ चल रहा है। भारतीय समाज की आज से 70 साल पूर्व की नारी, वह नारी नहीं है जो स्वतन्त्रता से पूर्व अनेक बन्धनों, रूढ़ियों, जड़ मान्यताओं, शिक्षा तथा अक्षमता से बंधी हुई थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् नारी में नई चेतना आई और हमारे नेताओ समाज सुधारकों तथा प्रबुद्ध लोगों ने नारी को उसकी योग्यताओं से, सार्मथ्यों से परिचित करवाया और उसे पुरूष के साथ कन्ध ो से कन्धा मिलाकर चलने की राह दिखाई। शिक्षा के क्षेत्र में आई क्रान्ति ने उसे सभी दिशायों में आगे बढ़ने का अवसर दिया। नारी एक जो समाज की बदलती अवस्था के साथ आगे बढ़ी और दूसरे शिक्षा के नए–क्षेत्रो की जानकारियों ने उसे एक दब्बू, अज्ञानी, पिछड़ी, दकयानूस तथा साधनहीन नारी से ऊपर उठाकर एक सर्मथ भारतीय नारी के रूप में एक नई नारी बदलती नारी के रूप में स्थापित किया।

आज भारतीय महिलाओं का रूतवा उनकी प्रवृति और सोच एक स्वतन्त्र नारी व्यक्तित्व का निर्माण करने में सक्षम है। आज की नारी भूगर्व से लेकर अंतरिक्ष के मंडलों में अपना परचम लहरा चुकी हैं। आज उसने इंजीनियर, डॉक्टर, वैज्ञानिक के साथ–साथ साहित्यकार, खिलाड़ी, अन्वेषक आदि बनकर स्वयं को गोरवान्वित किया है तथा देश को भी अपनी उपलब्धियों से विश्व में समानजनक स्थान दिलाया है। बदलते युग की नारी आज भारत का नाम ऊँचा कर रहीं है। वह अब पुरुष की बराबरी में ही नहीं, अपितु हर उपलब्धि के क्षेत्र में, हर प्रतिस्पर्धा के क्षेत्र में पुरुषों से आगे हो रही है।

इस प्रकार नारी के सम्बन्ध में सभी सन्दर्भों पर यदि विचार करे तो नारियों आज अपना स्वतन्त्र आसित्व स्थापित कर लिया है। वह कानून, शिक्षा, व्यवसाय एवं आधुनिक टैकनोलॉज़ी में दक्ष होकर अपना स्थान बना रही है। नासिरा शर्मा ने इस वर्ग की अनेक समस्याओं पर विचार करते हुए नारियों को एक प्रकार से सावधान भी किया है और सलाह भी दी है कि पहले तो औरत को अपने कामों में स्वयं दक्ष होना चाहिए और यदि नहीं तो पुरुषों के शोषणपूर्ण रविये से मुक्त होकर समर्थ नारियों से ही विमर्श करना चाहिए, उनसे सलाह लेनी चाहिए। औरत के लिए औरत, का अर्थ ही लेखिका नासिरा शर्मा ने यह निश्चित किया है कि एक 'औरत ही औरत' के काम आती या आ सकती है और किसी मुश्किल मे आई हुई औरत को अपने वर्ग की प्रबुद्ध/दक्ष महिलाओं का सहयोग प्राप्त करना चाहिए।

मो. 8988204745
ईमेल : उमनतपजंकमअप/हउंपसण्बवउ

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 210-213
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

एस. आर. हरनोट की कहानी 'दारोश' में नारी विमर्श

–रीना देवी
सहायक आचार्य, हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय, जयनगर (अर्की), जिला सोलन हिमाचल–प्रदेश 173221

नारी शब्द 'नृ' अथवा 'नर' से बना है विशेषतः वह स्त्री,जिसमें लज्जा,सेवा श्रृद्धा आदि गुणें की प्रधानता हो और विमर्श से अभिप्राय नारी के बारे में सोच विचार, समाज में उसकी क्या स्थिति है,कैसी हो, उसके बारे में सलाह मशवरा करना ही नारी विमर्श है।व्यत्पति कोश के अनुसार, "स्त्री–सूत्री जन्मदात्री अर्थात् वह परिवार की सूत्रधार होने से स्त्री कहलाती है और जन्म देने वाली होने से जन्मदात्री अथवा स्त्री कही जाती है"।1 ईश्वर ने जब सृष्टि की रचना करनी चाही,तो उसे ब्रहा और शक्ति के रूप में प्रकट होना पड़ा,क्योकि शक्ति के द्वारा ही सृष्टि के निर्माण का कार्य संभव था तथा उसकी यही शक्ति नारी का रूप है। पुरूष प्रधान समाज में नारी अनेक समस्याओं से जूझती है तथा सवेंदनाओं के साथ जीती है।

इतिहास के विभिन्न काल खण्डों में नारी के अनेक रूप सामने आते है किसी काल खण्डों में उसके वैभव एंव गौरव की गाथाएं है,तो कहीं उसकी अबला एंव पराधीन दासी के रूप को दर्शाया गया है।वैदिक युग सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से स्त्रियो के लिए स्वर्ण युग था।यह ऐसा समय था जब स्त्रियों की स्थिति पुरूषो के समतुल्य नहीं बल्कि उनसे भी उपर थी।वैदिक युग की यह युक्ति ''यत्र नार्यस्तु पूज्यंते,रमंते तत्र देवता'' ।अर्थात जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता निवास करते है ,सत्य पर आधारित थी।इसके अतिरिक्त वैदिक युग की नारीयां पढ़ाई के साथ–साथ शस्त्र चलाने की विद्या भी ग्रहण करती थी क्योंकि वह वीर पुरूषों के साथ युद्ध क्षेत्र में जाने की हिम्मत रखती थी।नारी की वीरता के विषय में वल्लभदास तिवारी ने लिखा है,"इस युग में स्त्रियों को युद्ध विद्या की भी शिक्षा दी जाती थी और अनेक महिलाएं समर भूमि में रथ हांकती तथा सहास और पराक्रम के कई कार्य करती थी।"2 इससे स्पष्ट होता है कि इस युग में नारी को शिक्षा के साथ–साथ अनेक स्वतंत्रताएं थी। मध्यकाल आते–आते भारत पर मुसलमानो के आक्रमणो और मुगलों के राज्य के बाद भारत में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आई , लड़कियों की शिक्षा एकदम समाप्त हो गई और धीरे–धीरे पर्दाप्रथा ने अपने पांव पसारे। मध्यकालीन भारतीय समाज में नारी की स्थिति पर विचार करते हुए सुशीला मितल ने लिखा है,"वेदकालीन मैत्रेयी और गार्गी का विदुषीपन,सीता सावित्री का सतीत्व और 'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमते तत्र देवता' की उक्ति सार्थक करने वाली भारतीय नारी शैव,शाक्ति और सिद्धों नाथों के संस्कारों के भंवर में फंसकर गुड़ियो की बारात बन रह गई।"3 अतः नारीयों के समस्त अधिकार छीन लिए गए, उनकी स्वतन्त्रता नाम मात्र की ही रह गई।परिणामतः समाज भी पतन्मोमुख हो गया।

साहित्य के क्षेत्र में नारी की स्थिति के विषय में विभिन्न विद्वानो के विभिन्न मतभेद है,जो स्थिति नारी की मध

यकाल में हुई थी,उसके विरोध में 19वी सदी में कई समाज सुधारको ने आवाज उठाई। राजाराममोहन राय, ईश्वरचंद विद्यासागर,ज्योतबा फूले, दयानंद सरस्वती तथा अन्य समाज सुधारको ने नारी की स्थिति में सुधार लाने के भरसक प्रयास किए। समय परिवर्तन के साथ–साथ नारी की स्थिति में भी परिवर्तन हुआ। ततपश्चात् 20वी शताब्दी तक आते–आते नारीयों ने स्वंय कलम उठाई तथा लेखन कार्य शुरू किया ।नारी की स्थिति को सुधारने के लिए पहला कदम नारी को शिक्षित करना था।परिणामस्वरूप नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गई और समाज में अपनी स्थिति को सुधारने का निरन्तर प्रयास किया तभी से 20वी शताब्दी को 'महिला जागरण युग' कहा गया है।

नारी स्थिति की यही दशा हिमाचली लेखक एस0 आर0 हरनोट की कहानियों में देखने को मिलती है। लेखक ने अपने साहित्य में नारी स्थिति को मध्यनजर रखते हुए नारी विमर्श पर आवाज उठाई। लेखक स्वंय पुरूष होते हुए भी नारी के विषय में साहित्य लिखा । इनकी प्रत्येक कहानियों में नारी पात्र शोषित तथा प्रताड़ित होती रही है। जैसे मानसिक उत्पीडन, शारीरिक उत्पीडन,सामाजिक उत्पीडन, इसके साथ–साथ कुण्ठा,अन्तर्द्वन्द्व अतृप्त यौन समस्याओं से जूझती है। अतः नारी विषय पर विचार विमर्श करना आवश्यक है।

समाज में प्रचलित रीति–रिवाज, परम्पराएं ,आस्था इन सब के साथ–साथ ही मानव जाति का जीवन भी जुड़ा है। मानव को समाज में इन सब तौर तरीको के साथ ही चलना पड़ता है। समाज में नारी के सपने यथा ही मर जाते है। पारिवारिक बंदिशे अनुशासन समाज के रीति–रिवाज़ परम्पराएं इज्जत परतीत आदि सभी प्रकार की समस्याएं नारी के लिए अभिशाप बन जाती है। ऐसी ही बंदिशे हिमाचली कथाकार एस0 आर0 हरनोट कृत "दारोश" कहानी में देखने को मिलती है। " दारोश" हरनोट की बहुचर्चित एवं बहुपठित कहानी है।इसका कथ्य जितना मौलिक और जिज्ञासामूलक है,उतनी ही प्रभावशाली इसकी प्रस्तुति है। दारोश हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र किन्नौर के एक अंचल में बोला जाने वाला शब्द जिसका अर्थ है'बलपूर्वक' या 'जबरदस्ती। इसी बलपूर्वक कृत्य को इस अंचल में दारोश कहा जाता है, दारोश डबलब यानि जबरदस्ती विवाह। इन प्रथाओ–परम्पराओं को किन्नौरा समाज भी खुले मन से स्वीकार करता रहा है। कथाकार हरनोट ने हिमाचल और उतराखण्ड़ के जौनसार बाबर में प्रचलित इस सामाजिक समस्या को अत्यंत संवेदना से इस कहानी में उकेरा है।'दारोश' परम्परा तथा रीति–रिवाजों के घेरे में फंसी ऐसी कहानी है जिसमें कुछ विक्षिप्त मानसिकता वाले युवाओं द्वारा युवतियों को बलपूर्वक अपहरण कर उनसे विवाह के कारण कुप्रथा में परिवर्तित हो जाती है जहां नारी की भावनाओं को रौंदकर उसकी अस्मिता से खिलवाड़ किया जाता है। एक ऐसा रिवाज जिसमें लड़कियों और महिलाओं को अपमानित किया जाए, समाज में कंलक है, नारी पात्र व कहानी की नायिका 'कानम' कहानी के आरम्भ से अंत तक रीति–रिवाजों के घेरे में फंसकर अपने सपनो को जिन्दा दबाए रखती हुई परम्परा को निभा रही है। कानम अपनी सहेली के साथ दूर शहर में पढ़ाई करने के लिए जाती है। उसकी सहेली को एक दिन तहसील के दो युवक जबरन उठाकर ले जाते है तथा उसका बलात्कार करते है। ऐसी घटना एक बार स्वंय उसकी बहन के साथ घटित हुई थी।तब से कानम को भी घर से बाहर निकलना भय सताता है। वस्तुतः इस कहानी की वास्तविकता यही है कि कहानी में लड़की को जबरन उठाकर ले जाना एक–रीत है, परम्परा है। कानम इस रीत को नहीं समझती है वह इस परम्परा को खत्म करने का बिड़ा उठाती है और अदालत में केस दायर करती है। यह पहला मौका था जब इस प्रथा के विरूद्ध किसी प्रकार की एक लड़की द्वारा चुनौती

दी गई थी। कानम केस दायर करने के बाद यही सोचती है कि बलात्कारियों को सजा अवश्य मिलेगी परन्तु बलात्कारी मात्र तीन हजार रूपये देने से जेल से निकल जाते है जिस पर कानम अपनी माता से कहती है, "बलात्कार की सजा महज तीन हजार रूपये........? ऐसे कुकर्मी को तो चौराहे पर लटका कर शूट कर देना चाहिए।"4

समाज में जहां एक तरफ नारी शिक्षित होकर सभ्य बनना चाहती है तो वहीं दूसरी तरफ समाज के पारम्परिक रीति रिवाज उसकी बेड़ियो को जकड़ देती है। लेखक ने व्यक्त किया है कि सत्य तो यह है कि कहीं न कहीं समाज में आज भी पौराणिक परम्पराएं जुड़ी हुई हैं और इस परम्परा की कसोटी पर केवल नारी को ही चढाया जाता है। कहानी में कानम इस परम्परा को तोड़ने का हर संभव प्रयास करती रहती है। परन्तु अम्मा कानम को समझाती रहती है कि किसी लड़की को जबरन उठाना यहां की रीत व परम्परा है। जबरन विवाह की यह प्रथा सदियों से चली आ रही है। जिसे तोडना आसान नहीं है। इस पर कानम अम्मा से कहती है," मैं आपके दर्द को समझती हूं अम्मा। पर जहां परंपरा के नाम पर यह सबकुछ हो रहा हो,वहां किसी को पहल तो करनी ही होगी.........मेरे विचार से, दिस इज ए ग्रेट बिगनिंग।"5 अतः कानम परम्परा के इस बन्धन को तोड़ना चाहती है।परन्तु यह प्राचीन परम्परा होने के कारण आज भी वैसी की वैसी है। ऐसी परम्परा जिसे कोई कानून भी नहीं तोड़ सकता है। बल्कि इस परम्परा का अपना एक अलग ही कानून है। कहानी में कानम तथा उसकी अम्मा इस परम्परा को तोड़ने की भरपूर कोशिश करती है।कानम ऐसा करने के लिए सभी से लड़ती तथा झगड़ती रहती है जिस पर अम्मा उसे समझाती है,"बेटे ! समाज, अदालत या उसके फैसले से बदलने वाला नहीं है। उसके रीति–रिवाजों की सीमाएं कहीं ऊंची हैं। भले ही उनमें दोष ज्यादा हैं। इन्हें दूर करने के लिए लोगों के बीच जाकर उनके विश्वास को जीतना होता है ताकि वे इनके अच्छे–बुरे नतीजों को समझ पाएं। मुझे विश्वास है हम ऐसा कर पाएंगे।"6 अतः हमारे समाज की यहीं विड़म्बना है कि कई तरह की रीतियां या नीतियां जो समाज में व्याप्त है उसमें दोषी केवल नारी को ही ठहराया जाता है तथा समाज की इन कुप्रथाओं को समाप्त करने के लिए हमें विचार विमर्श अवश्य करना चाहिए।

'दारोश' कहानी एक साथ कई प्रश्नों को खड़ा कर उनका युक्तियुक्त समाधान भी तलाशती है। यह कहानी अपनी प्रतिष्ठा को बचाए रखने के संघर्ष में नारी की समाज–सापेक्ष पहलकदमियों का दस्तावेज़ है।कहानी में नारी शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाने वाली सहासी कानम के माध्यम् से लेखक ने दिखाया है कि आज वह उस परम्परा को खत्म करना चाह रही है, जो जनजातीय क्षेत्र में सदियों से कायम रही है। शोषित तथा प्रताड़ित हुई लड़की अब घर से बाहर नही निकलती है तथा कानम लड़की के माता–पिता के साथ मिलकर इस केस को अदालत तक पहुंचाती है। जिस पर लड़की की अम्मा कानम से कहती है," बेटी! तुम पहली लड़की हो, जिसने ऐसा सोचा है या कहा है। तुम नहीं जानती उसके बाद हम पर क्या कुछ गुजरी है .? भाईचारे से हमारा परिवार बेदखल कर दिया गया। कई जगह रिश्ते की बात की तो सभी ने मुंह छुपा लिया। अकेले रहकर समाज से कैसे लड़ा जा सकता है। हमारी ये परंपराएं भीतर तक घुसी हैं। हमने तो बेटी की जिंदगी ही तबाह कर दी। देख कैसी हो गई है इसकी शक्ल। जैसे बोलना भी भूल गई है। न कहीं आती है न जाती है। चूल्हे के पास सिर घुटनों में ड़ालकर रोया करती है।"7 कानम लड़की तथा माता–पिता को सहारा देते हुए कहती है," मैं इसे अपने साथ ले जाती हूं। आप इसकी फिक्र मत करें । यह ठीक हो जाएगी। पहले जैसी।"8 यहां लेखक ने व्यक्त

किया है कि पुरूष प्रधान समाज में प्रचलित कुछ ऐसी परंपरा जिसमें केवल नारी ही प्रताड़ित होती रहती है।अतः नारी को इस परम्परा की जंजीरों को तोड़कर खुद को मुक्त करना होगा। लेखक ने व्यक्त किया है कि कहानी में नारी पात्र कानम जैसी शिक्षित् युवती ही इस बेड़ी को तोड़ सकती है। कानम के कुछ प्रयासो से कहानी में बदलाव आते है तथा वह अन्य लड़कियों के लिए प्रेरणा बन जाती है। अतः दारोश कहानी इसी मानसिकता को उजागर करती हुई बिन्दुओं पर विचार करती है—निश्चित् तौर पर कभी जब परम्पराओं का आगाज़ हुआ होगा तो उनकी तह में कल्याण की भावना प्रमुख रही होगी।

वास्तव में 'दारोश' सिर्फ एक कहानी मात्र न होकर दूषित—परम्पराओं के नाम पर स्त्री—समाज की शोषण से मुक्ति,उसके वजूद स्थापना—संघर्ष और इस संघर्ष में निरंतर सशक्त होने का दस्तावेज है। निश्चित् ही इस दस्तावेज की इबारत कानम और उस लड़की के परिवार द्वारा लिखी गई है,जो अन्याय के खिलाफ हाईकोर्ट की दहलीज तक पहुंचता तक है। अतः यह कहानी नये ढ़ग से नारी विमर्श को केन्द्र में रखती है तथा नारी के विषय में सोच—विचार करने पर बाधित् करती है।

निष्कर्षः—

एस0आर0 हरनोट एक बहुचर्चित कहानीकार के रूप में तीव्र गति से उभरे है। इनका नाम मौजुदा दौर में उन कहानीकारों में से एक है जिनकी कहानियों ने साहित्य जगत् में एक अलग पहचान बनाई है। संवेदनाओं का अथाह सागर हमेशा उनकी कहानियों में विद्यमान रहता है। लेखक ने अपनी कहानियों में ग्रामीण परिवेशो का यथा वर्णन किया है। समाज में किस प्रकार से नारी शोषित तथा प्रताड़ित होती है। किस प्रकार से नारी पर अत्याचार हुए है का वर्णन बखूबी किया है।इन्होनें अपनी कहानी में स्त्री पुरूष में आए बदलाव,रीति—रिवाज, परम्पराएं,बलात्कार जैसी संगीन समस्याओं से जूझती नारी को दिखाया गया है। अतः कहा जा सकता है कि सुप्रसिद्ध कहानीकार हरनोट ने अपनी कहानियों के माध्यम् से सामाजिक जीवन में आते बदलाव बदलते जीवन की बढती हुई विकृतियों को उभारकर सामने लाने का सफल प्रयास किया है। वस्तुतः 'दारोश' जैसी कहानी पाठक को सोचने—समझने तथा विचार विमर्श करने पर मजबूर कर देती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः—

1ण कृ0 पा0 कुलकर्णी, व्युत्पति कोश, पृ0 804 ।

2ण बल्लभदास तिवारी, हिन्दी काव्य में नारी, पृ0 65 ।

3ण सुशीला मितल, आधुनिक हिन्दी कहानी में नारी की भूमिकाएं, पृ0 12 ।

4ण एस0 आर0 हरनोट, दारोश, पृ0 107 ।

5ण एस0 आर0 हरनोट, दारोश, पृ0 107—108 ।

6ण एस0 आर0 हरनोट, दारोश, पृ0 109 ।

7ण एस0 आर0 हरनोट, दारोश, पृ0 117 ।

8ण एस0 आर0 हरनोट, दारोश, पृ0 117 ।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 214-217
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य और दलित विमर्श

–नवनीत
सहायक प्राध्यापक, राजकीय महाविद्यालय, रामपुर, जिला शिमला, हिमाचल प्रदेश

दलित साहित्य वर्तमान दौर में ऐसा विमर्श बन चुका है जिसका अध्ययन किए बिना सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य को समझना गलत होगा। आज दलित विमर्श हिन्दी का ही नहीं, हिन्दी प्रदेश की सीमाओं से बाहर निकलकर बड़ा स्वरूप ले चुका है, जिसका मूल उद्देश्य है दलित जीवन की बुनियादी समस्याओं को जनता के सामने लाना। आज मेरे जैसे लोगों के मन में यह विचार बहुत गहरे तक भरोसे के साथ पैदा हुआ कि जैसे–जैसे दलितों–शोषितों का उत्थान होगा वैसे–वैसे हिन्दी भाषा और संवेदना का अद्भुत शक्ति के साथ विकास होगा। 'दलित साहित्य' के लेखन में किस–किस को शामिल किया जाए यह अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया है। दलित साहित्यकारों का मानना है कि दलित की पीड़ाओं को वही समझ सकता है जिसने इसको भोगा है, यानि कि अनुभूति के आधार पर जबकि दूसरा खेमा दलितों से इतर लिखे गए साहित्य को, जो दलित जीवन पर उसे भी उसमें शामिल करने की बात कर रहा है। हिन्दी साहित्य के मुख्यधारा में दलित विमर्श का मुद्दा अस्सी के दशक में उभरा जो नब्बे तक आते–आते काफी चर्चित हो चुका था। दलित साहित्य में दलित साहित्यकार अपने जीवन के कटु अनुभवों को व्यक्त करते हैं, जिसका एक मात्र उद्देश्य यही है कि पूरी दुनिया यह जाने कि उनके साथ क्या दुर्व्यवहार हुआ है।

दलित साहित्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए दलित चिन्तक कंवल भारती के अनुसार, ''दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिनमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है, अपने जीवन–संघर्ष में जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनका उसी की अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला का नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।'' अर्थात् दलित साहित्य मनुष्य की जिजीविषा का साहित्य रहा है।

हिन्दी साहित्य में दलित जीवन की समस्याओं को साहित्य में आरम्भ से उठाया जाता रहा है। आज़ादी से पहले प्रेमचन्द, निराला, यशपाल आदि कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में हाशिए के समाज के पक्ष में मज़बूती से लिखा। आज़ादी के बाद भारतीय साहित्य की तस्वीर काफी बदली अमरकांत, राजेन्द्र यादव, नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, प्रेम कपाड़िया, डॉ. तेज सिंह, बाबूलाल खंडा आदि चर्चित रचनाकार हैं। महिला कथाकारों में उषा चन्द्र, रमणिका गुप्ता, मैत्रेयी पुष्पा, सुभद्रा कुमारी जैसे रचनाकारों ने इसमें शामिल होकर मज़बूत लेखन किया। दलित साहित्य को तीन स्तरों पर समझा जा सकता है– पहला भोगे हुए यथार्थ के आधार पर, दूसरा उनका लिखा गया जो साहित्य नहीं है, तीसरा स्तर विचारधारा का है। क्या प्रगतिशील होकर दलित साहित्य लिखा जा सकता है? हालाँकि यह सवाल बहुत उलझा हुआ है और बुनियादी भी है। विख्यात दलित साहित्यकार

माता प्रसाद का मानना है कि, ''दलित साहित्य वह साहित्य है जिसमें वर्ण समाज में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीति दृष्टि से दलित, शोषित, उत्पीड़ित, अपमानित, उपेक्षित, तिरस्कृत, वंचित, निराश्रित, पराश्रित, बाधित, अस्पृश्य और असहाय है पर साहित्य की रचनाएं हैं वही दलित साहित्य की श्रेणी में आता है। इसमें बंधन में जकड़ी स्त्रियाँ, बंधुआ मज़दूर, दास, घुमन्तू जातियाँ, अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ आती हैं। दलित साहित्य वेदना, चीख और छटपटाहट का साहित्य है।'' अतः दलित साहित्य समस्त जातियों के समुदाय का साहित्य है।

हिन्दी में प्रेमचन्द पहले ऐसे साहित्यकार हैं जिनकी रचनाओं में दलित जीवन को प्रमुखता से स्थान मिला है। छुआछूत, जात–पात, आडंबर, कर्म कांड आदि का वह खूब विरोध करते रहे। उनकी कहानियाँ सद्‌गति, कफ़न, ठाकुर का कुआँ आदि में दलित जीवन की त्रासदी को बहुत गहराई से अभिव्यक्त किया गा है। प्रेमचन्द के बाद सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का उपन्यास चतुरी चमार, बिल्लेसुर बकरिहा, कुल्लीभार आदि रचनाएं दलित चेतना से परिपूर्ण हैं। उनकी कविता 'वह तोड़ती पत्थर' हिन्दी कविता के इतिहास का मील का पत्थर है। दलित साहित्य का विस्तार हिन्दी में आने के बाद ही हुआ। हिन्दी के साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं में आत्मकथाएं बड़ी मात्रा में लिखी जा रही हैं। आत्मकथा पाठकों को अपने आप से जोड़ा ही बल्कि उन्हें सोचने पर भी विवश किया। देश के बाहर के पाठकों ने यह महसूस किया कि विश्वगुरु कहे जाने वाले देश में कितनी अमानवीयता है। दलितों ने सिर्फ लेखने के माध्यम से ही पाठकों का विस्तृत संसार विकसित कर लिया। दलितों द्वारा लिखा जा रहा साहित्य सिर्फ अभिव्यक्ति के लिए नहीं है बल्कि एक सम्पूर्ण आंदोलन की तरह है। दलित साहित्यकार चाहता है कि समाज में धर्म, सत्ता, दर्शन तथा जन्म के आधार पर किसी व्यक्ति की श्रेष्ठता घोषित न की जाए। सम्पूर्ण रूप में देखें तो यह जाति से मुक्ति का साहित्य है। ''जाति एक ऐसा राक्षस है जो आपका रास्ता काटेगा। जब तक आप इस राक्षस को नहीं मारते तब तक आप न तो कोई राजनीतिक सुध ाार कर सकते हैं और न ही आर्थिक सुधार कर सकते हैं।'' अर्थात् लेखक जाति रूपी राक्षस की कड़ी आलोचना करता है और इसे देश की बाधा में सबसे कड़ी समस्या मानता है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कहानी की यात्रा सबसे अधिक रोमांचक और परिवर्तनशील रही है। समय और समाज की बदलती सोच ने सबसे पहले कहानी को ही बदला। ग्रामीण जीवन की मार्मिक कथा को साहित्य में प्रस्तुति देने के कारण ही प्रेमचन्द को कथा सम्राट कहा गया। प्रसाद ने ऐतिहासिक और पौराणिक पात्रों को आधार बनाकर तत्कालीन सामाजिक समस्या को जीवन्त किया। हिन्दी कहानी में दलित जीवन उपेक्षित रहा। दलित कहानी समाज में फैली विसंगतियों और अराजकता को खत्म करने का मार्ग भी खोजती है। अम्बेडकर दलित साहित्य के आधार हैं उनकी विचारधारा ही दलित कहानियों का प्राण तत्त्व है। उनका साहित्य और सम्पूर्ण लेखन दलित जीवन को सम्मान और अधिकार दिलाने के लिए लिखा गया है। वह जाति व्यवस्था को समूल नष्ट करना चाहते थे तथा उसके नाम पर फैलाये जा रहे साम्प्रदायिक परिवेश के भी खिलाफ़ थे। उनका मानना था, ''जाति ने हालाँकि एक काम किया है, इसने हिन्दू समाज को पूरी तरह से असंगठित और अनैतिक अवस्था में ला दिया है। यह तो जातियों का समूह मात्र है प्रत्येक जाति अपने अस्तित्व के प्रति सचेत है। इनका अस्तित्व जाति–व्यवस्था को जारी रखने का कुल परिणाम है। जातियाँ एक संघ भी नहीं बनाती कोई जाति दूसरी जातियों से जुड़ने की भावना नहीं रखती, सिर्फ हिन्दू–मुस्लिम दंगे के समय ये आपस में जुड़ती हैं।''

दलित कहानियाँ दलित जीवन में ज़बरन भर दिये गए अपमान और तिरस्कार के विरोध में अपनी आवाज़ बुलन्द करती हैं साथ ही दलित समाज की अपनी विसंगतियों की भी अभिव्यक्ति करती हैं। दलित साहित्यकारों ने अपने समाज में फैली आडम्बर और सामंतवादी मानसिकता को भी खत्म करने का आह्वान किया है। ''दलित समाज को अपनी मुक्ति के लिए सर्वणों से ही नहीं अपितु स्वयं से भी संघर्ष करना पड़ेगा। यह बहुत पीड़ादायक और मुक्ति की राह में बड़ी रुकावट है।'' अर्थात् दलित साहित्यकारों ने समाज और साहित्य में अपना सम्मानित स्थान बनाया है। सभी ने शिक्षा के बल पर यह स्थान प्राप्त किया है। शिक्षा दलित समाज की बुनियाद को मज़बूत करती है। दलित साहित्यकारों ने यह प्रेरणा भी बाबा साहब से ली है। शिक्षा द्वारा ही दलितों और स्त्रियों में अपना अधिकार और अस्मिता को समझने की चेतना आयी। अम्बेडकर कहते थे– शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो एवं अप्पोदीपो भव अर्थात् अपना दीपक स्वयं बनो। बाबा साहब के इन्हीं शब्दों ने सदियों से शोषित दलितों के अन्दर सोयी हुई उदासीनता को तोड़कर उन्हें संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। उनका मानना था कि, ''प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित किया जाना चाहिए। हर एक व्यक्ति में अपनी रक्षा की क्षमता होनी चाहिए। अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए, प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह बहुत जरूरी भी है।'' अर्थात् दलित समाज जान चुका है कि शिक्षा उसका बुनियादी आधार है। अभी तक वह मानकर चल रहा था कि शिक्षा उनके लिए है ही नहीं। जब उसे अपने प्रति होने वाली असमानता का बोध हुआ, जब उसने विरोध करना शुरू किया।

जय प्रकाश कदर्म दलित साहित्य के बड़े लेखक हैं। इनकी कहानियाँ दलित जीवन के समाजशास्त्र को बेहतर ढंग से समझने का प्रयास करती हैं। कदर्म की बहुचर्चित कहानी 'नो बार' शिक्षित, नौकरी–पेशा दलित युवक की कहानी है जो अपनी शादी के लिए अख़बार में विज्ञापन देता है, जिसमें से एक रिश्ता उसे पसन्द आता है। विज्ञापन में स्पष्ट है कि जाति का कोई बंधन नहीं है। युवक अपनी शादी हेतु संबधित पते पर पत्र लिखता है, जहाँ उसे बुलाया भी जाता है, जहाँ वह अपनी कुशल व्यवहार और शिक्षित व्यवहार से लोगों का मन जीतने में सफल भी होता है लेकिन जैसे ही पता चलता है कि वह दलित है, लड़की का पिता भड़क जाता है। हालाँकि बेटी उसका पक्ष लेते हुए कहती है, 'क्यों पापा, जब जाति–पांति को मानते ही नहीं तो' उसका पिता जवाब देता है, 'नो बार का यह मतलब तो नहीं कि किसी चमार–चूहड़े के साथ।' अतः यह कहानी उच्च वर्ग के अंदर बैठे कुत्सित भाव की अभिव्यक्ति करता है हम ऊपर से तो प्रगतिशील होने का नाटक करते हैं लेकिन अंदर से जाहिल और जातिवादी होते हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी साहित्यिक परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन से जोड़ते हुए कहते है, ''जिस जाति की सामाजिक अवस्था जैसी होती है, उसका साहित्य भी वैसा ही होता है। जातियों की क्षमता और सजीवता यदि कहीं प्रत्यक्ष देखने को मिल सकती है, उसके साहित्य रूपी आईने में ही मिल सकती है। इस आईने के सामने जाते ही हमें तत्काल मालूम हो जाता है कि अमूक जाति के जीवन शक्ति इस समय कितनी या कैसी है और भूतकाल में कितनी और कैसी थी।''

ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं, ''दलित साहित्य में दलित जीवन का यथार्थवादी चित्रण यथार्थ की मात्र नकल नहीं है, बल्कि साधारण परिस्थितियों में साधारण चरित्रों का वास्तविक पुनर्सर्जन है। इस कार्य में दर्शन और कलात्मक पांडित्यपूर्ण प्रदर्शन की आवश्यकता कतई नहीं है। पाठक की चेतना और अनुभूति को प्रभावित करने वाली गहन संवेदना से ही यह संभव है।'' अर्थात् भारतीय दलित साहित्य में इन्हीं संवेदनाओं और अनुभूति

को प्रभावित करने वाली गहन संवेदना से ही संभव है।

दलित कवि लिखता है–

''हाथों में है धैर्य
मन में है विश्वास
फिर भी सही दुत्कार
नहीं बोये कांटे बांटे
सिर्फ सगुन प्यार के
फिर भी रहे अछूत।''

अर्थात् अपने ही देश में अनजानेपन का दंश झेलता दलित एक लम्बे समय से ही अपनी अस्मिता की तलाश में भटक रहा है। कई पड़ाव इस दौरान पार किये हैं परन्तु मंजिल अभी कोसों दूर है। परन्तु वह विश्वास से पूर्ण है कि वह अपने अस्तित्व की रक्षा कई संघर्षों के बावजूद भी करेगा और उसे मंजिल मिलेगी इसके प्रति आशान्वित है।

कृष्णदत्त पालीवाली हिन्दी समाज के माध्यम से दलित विमर्श को स्पष्ट करते हैं। उनके अनुसार, ''हिन्दी समाज में साहित्य आज निचले पायदान पर है और वैचारिकता दरिद्रता के कारण लगभग प्रभावहीन, ठंडा और उपेक्षित। आज से दो तीन दशकों से पूर्व साहित्य की केन्द्रीय स्थिति थी। इतना ही नहीं साहित्यकारों की तूती बोलती थी, चाहे प्रेमचन्द हो या अज्ञेय या मोहन राकेश। लेकिन आज समाज का सर्वाधिक उपेक्षित रिरियाता जीव है–साहित्यकार। इसका कारण है कि साहित्यकार ने आइडियालाजी की हथकड़ी पहनकर अपना गुट बनाया।'' अर्थात् पालीवाल समाज में साहित्यकार के द्वारा रचित साहित्य की उपेक्षा करते हैं और एक संतुलित एवं समन्वय रखने वाले साहित्य की मांग करते हैं।

अतः समग्रता से देखें तो हिन्दी में दलित साहित्य का आना उसके लिए सुखद ही रहा क्योंकि यह सच है कि हिन्दी साहित्य से जुड़ते ही दलित साहित्य व्यापक स्तर पर चर्चित हुआ जिसकी पहुँच बड़ी है। दलित साहित्यकार भाषा में चमत्कार दिखाने के लिए नहीं लिखता न ही किसी को खुश करने के लिए बल्कि वह लिखता है अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए। पाठक इसलिए उससे जुड़ भी जाता है क्योंकि उसे दलित साहित्य की संवेदना झूठी नहीं लगती है। आज दलित विमर्श विश्व स्तर का मुद्दा है तो उसमें सिर्फ दलितों की मेहनत और दृष्टि है।

कंवल भारती : दलित साहित्य की भूमिका, पृ. 67
कथा–क्रम, दलित विशेषांक, नवम्बर 2000, पृ. 115
डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, अनुवादक–आचार्य जुगलकिशोर बौद्ध, 'जातिभेद का बीजनाश', पृ. 31
वही, पृ. 35
दिलीप काठेरिया : दरारें, दलित अस्मिता, जनवरी–मार्च 2015, पृ. 59
डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, अनुवादक–आचार्य जुगलकिशोर बौद्ध, 'जातिभेद का बीजनाश', पृ. 35
मैनेजर पांडे : साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृ. 58
ओमप्रकाश वाल्मीकि : दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ. 59
ओमप्रकाश वाल्मीकि : बस बहुत हो चुका, पृ. 53

कृष्णदत्त पालीवाल : दलित साहित्य विमर्श, पृ. 68
मोबाईल नं. +91–94184 86095

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 218-221
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जूठन : जीवन का दग्ध अनुभव एवं व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध का सृजन

–निर्मला कुमारी
शोध छात्रा, दयानंद गर्ल्स पीजी कॉलेज कानपुर उ० प्र०

दलित साहित्य के प्रतिनिधि रचनाकारों में ओम प्रकाश वाल्मीकि का प्रतिष्ठित स्थान है। समता के पैरोकार ओम प्रकाश बाल्मीकि का जन्म स्थान बरला मुजफ्फरनगर उत्तर प्रदेश के एक अछूत वाल्मीकि परिवार में हुआ था उन्होंने अपनी शिक्षा अपने गांव और देहरादून से प्राप्त की। उनका बचपन सामाजिक एवं आर्थिक कठिनाइयों में गुजरा उन्हें बचपन से ही आर्थिक, सामाजिक मानसिक यातने झेलनी पड़ी । यह यातनाएं उनकी रचनाओं में स्पष्ट दिखाई देती हैं। वाल्मीकि जी कुछ समय तक महाराष्ट्र में रहे वहां उनका संपर्क दलित लेखकों से हुआ उन्हीं की प्रेरणा से डॉ० भीमराव अंबेडकर की रचनाओं का अध्ययन किया। जिससे अंबेडकर दर्शन की झलक उनके रचना साहित्य में दृष्टिगत होती है। वाल्मीकि जी देहरादून में स्थित ऑर्डिनेंस फैक्ट्री में अधिकारी रूप में कार्य करते हुए सेवानिवृत्त हो गये।

साहित्य के क्षेत्र में वाल्मीकि जी ने 80 के दशक में लिखना आरंभ किया लेकिन प्रसिद्धि 1997 में प्रकाशित आत्मकथा श्जूठनश से मिली। श्जूठनश सिर्फ ओमप्रकाश वाल्मीकि के जीवन की वीमत्स घटनाओं का चित्रण नहीं बल्कि समस्त वंचित वर्ग की वीमत्स घटनाओं का चित्रण है। आत्मकथाकार किस प्रकार सवर्ण समाज से संघर्ष करते हुए एक क्रांतिकारी दलित साहित्यकार बना ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी आत्मकथा जूठन में जीवन के वीभत्स बीहड़ का चित्रण करके संपूर्ण हाशिए के समाज का यथार्थ चित्रण किया। आत्मकथा का चित्रण करते समय लेखक ने बिना सकुचाहट के समाज का कड़वा सत्य प्रकट किया। लेखक जीवन और रचना से किसी प्रकार का समझौता किए बिना दलित लेखन व उपेक्षित दलित समाज के प्रति प्रतिबद्धता के साथ खड़ा है । दलित आत्मकथा में विशिष्ट स्थान रखने वाली आत्मकथा श्जूठनश के संघर्ष के संबंध में देवेंद्र चौबे ने लिखा है। ष्जूठन का पूरा संघर्ष भारतीय समाज व्यवस्था, संस्कृति और इतिहास में पवित्र या उत्कृष्ट समझे जाने वाले मुख्यता तीन प्रतीकों से है । शिक्षण संस्थान, गुरु (शिक्षक) और प्रेम। वह प्रेम जिसे भारतीय समाज में सर्वाधिक मार्मिक और पवित्र भाव माना जाता है। चाहे उसकी परिणति विवाह में हो या ना हो परंतु उसकी नैतिक मर्यादा कभी भंग नहीं होती है। प्राचीन ऐतिहासिक और पौराणिक ग्रंथों में भी भारतीय समाज ने उसे एक गरिमामय स्थान प्रदान किया तथा इसे ईश्वर प्राप्ति का माध्यम भी माना है। आत्मकथाकार श्जूठनश में इन तीनों की पवित्रता और उत्कृष्टता पर प्रश्न चिन्ह खड़ा करते हुए प्रहार करते हैं। और यह मानकर चलते हैं कि दलित समाज को अपने व्यक्तिगत निर्माण और सामाजिक विकास की प्रक्रिया में इन तीनों की नकारात्मक भूमिकाओं का सामना करना

पड़ता है ।ष श्प्रस्तुत आत्मकथा में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित संघर्ष के अतिरिक्त दलित जीवन में विडम्बनाओं और दलित समाज एवं संस्कृति का यथार्थ चित्रण किया। वाल्मीकि जी ने स्वयं के अंतरद्वन्द्व (स्वीकृत और अस्वीकृत) का चित्रण बड़े मनोयोग से किया ।

आत्मकथा में वाल्मीकि जी ने शैक्षिक विकास को जाति के उत्थान का आधार बताया है। उनके पिता खूब पढ़ने की बात करते हैं ष्क्योंकि पढ़ लिख कर जाति सुधारनी है ।ष्2 (जूठन पृष्ठ 40) क्या शैक्षिक उन्नति से जाति उत्थान हो सकता है यह सोचने का विषय है ष्आजकलष् के दिसंबर 2000 के लेख दलित साहित्य की वैचारिक संरचना में देवेंद्र चौबे लिखते हैं कि ष्जाति क्या सिर्फ पढ़ने–लिखने से सुधर जाएगी । पढ़ लिखकर नौकरी प्राप्त करके धन और पद तो जरूर प्राप्त कर लेगा परंतु समाज में मान और प्रतिष्ठा कहां से मिलेगीष् यह सवाल आज भी है। जाति व्यवस्था एक ऐसा भयानक कुष्ठ रोग है जो व्यक्ति का मरने के बाद भी पीछा नहीं छोड़ता है। श्मशान घाट पर भी मुर्दे की जाति लिखी जाती है । समाज चाहे कितनी तरक्की व विकास कर ले कितना भी प्रगतिशील विचार रख ले लेकिन विवाह आदि के संबंध में उनके साथ समानता का व्यवहार करना मुश्किल है। श्वहीश पत्रिका का एक अंश –ष्जूठन के कुलकर्णी जैसे लोग कितने ही प्रगतिशील क्यों ना हो जाये, जब भी प्रेम अथवा विवाह का प्रसंग आएगा,श्जातिश नामक ताकतवर दीवार इनके बीच आकर खड़ी हो जाएगी। ष्3जाति उसे अपनी घ्खोली से बाहर नहीं निकलने देती ।

दलित समाज की पीड़ा और सड़ाध को व्यक्त करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि जूठन की भूमिका में लिखते हैं ष्दलित जीवन की पीड़ाएं असहनीय और अनुभव दुग्ध है। ऐसे अनुभव जो साहित्यिक अभिव्यक्तियों में स्थान नहीं पा सके। एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था में हमने सांसे ली हैं जो बेहद क्रूर और असहनीय हैं दलितों के प्रति संवेदनशील थी। अपनी व्यथा कथा को शब्द बद्ध करने का विचार काफी समय से मन में था लेकिन प्रयास करने के बाद भी सफलता नहीं मिल पा रही थी। इन अनुभवों को लिखने में कई प्रकार के खतरे थे एक लंबी जिद्दोजहद के बाद मैंने सिलसिलेवार लिखना शुरू किया। तमाम कष्टों, यातनाओं, प्रताड़नाओं को एक बार फिर जीना पड़ा, उस दौरान मैंने गहरी मानसिक यंत्रणाएं भोगी। स्वयं को परत दर परत उघाडते हुये कई बार लगा कि कितना दुखदाई है यह सब कुछ लोगों को यह अविश्वसनीय और अतिरंजना पूर्ण लगता है ।ष्4

विद्यालय एक ऐसा पवित्र मंदिर (बगीचा) होता है जहां खूबसूरत खुशबूदार फूल खिलते हैं जो अपने गुणों की महक से संपूर्ण चमन को महका देते हैं अर्थात जहां देश के भविष्य का निर्माण होता है । दुर्भाग्य हमारे देश का (विद्या का मंदिर) जहां जातीय विसंगति एवं विद्रूपता कुंडली मार कर बैठी है जहां पहले शारीरिक प्रताड़ना के साथ मानसिक पीडा दी जाती थी और आज मानसिक प्रताड़ना के साथ प्रयोगात्मक परीक्षाओं में कम अंक देकर उनका भविष्य बिगाड़ दिया जाता है आत्मकथा जूठन में वाल्मीकि जी ने दलित विद्यार्थियों की पीड़ा का वर्णन बड़ी वेवाकी के साथ किया है । चूहड़ा समझ कर वाल्मीकि जी से हेड मास्टर दिन भर ही स्कूल में झाड़ू लगवाते थे । वाल्मीकि जी लिखते हैं ष्दूसरे दिन स्कूल पहुंच जाते ही हेड मास्टर नें झाड़ू के काम पर लगा दिया पूरे दिन झाड़ू देता रहा, मन में तसल्ली थी कि कल से कक्षा में बैठ जाऊंगा तीसरे दिन कक्षा में जाकर चुपचाप बैठ गया थोड़ी देर के बाद उनकी दहाड़ सुनाई पड़ी अबे ओ चूहड़े के, मादरचोद कहां घुस गया अपनी मां.. ...... उसकी दहाड़ सुनकर में थरथर कांपने लगा था त्यागी (सवर्ण) लड़के ने चिल्लाकर कहा माससाव बो वैट्ठा

कोणे में । हेड मास्टर ने लपक कर मेरी गर्दन दबोच ली थी जैसे कोई भेड़िया बकरी के बच्चे को दबोच कर उठा लेता है कक्षा से बाहर खींच कर उन्होंने मुझे बरामदे में ला पटका चीखकर बोले जा लगा पूरे मैदान में झाड़ू नहीं तो मिर्ची डालकर स्कूल से काढ़ दूंगा ।ष्5

चूहडे चमारों के परिवार मुखमरी के कारण कम मजदूरी पर एवं बेगार के कार्य मजबूर होकर करते थे ऐसे में उनके बच्चों का पढ़ना लिखना तो कठिन था ऊपर से छुआछूत के कारण स्कूल के दरवाजे बंद थे या खुले भी थे तो उनके भीतर घुटन भरी जिंदगी में पढ़ाई करना मुश्किल था । कभी हैंड पंप छूने पर सजा दी तो कभी आगे बैठने पर तरह–तरह के व्यंग किए जाते कभी अध्यापक द्वारा तो कभी छात्रों द्वारा साफ कपड़े पहनकर जाओ तो कहते ष्अबे चूहडे का नए कपड़े पहन कर आया मैंले पुराने पहनकर जाओ तो कहते अबे चूहड़े के दूर हट बदबू आ रही हैष्6 ऐसी है सामाजिक व्यवस्था जिसमें दलितों का जीना भी मुश्किल हो जाता है इतना प्रताड़ित किया जाता है छात्र पढ़ाई छोड़ कर मजबूर होकर अपना पुश्तैनी काम करने लगे ।

आत्मकथा जूठन शैक्षिक व्यवस्था सामाजिक एवं पारंपरिक व्यवस्था के प्रति विरोध (प्रतिरोध) का दस्तावेज है । इस आत्मकथा में अन्याय के खिलाफ आवाज बुलंद करते हुए सामाजिक सांस्कृतिक बंधनों को तोड़ने का प्रयास किया गया है । जूठन में वाल्मीकि जी लिखते हैं कि ष्एक बार मेरे पिता जी अचानक स्कूल से गुजरे मुझे स्कूल के मैदान में झाड़ू लगाता देख कर वे ठिठक गए पिता जी ने मेरे हाथ से झाड़ू पकड़ कर फेंक दी । उनकी आंखों में गर्मी उतर आई थी हमेशा दूसरों के सामने कमान बने रहने वाले पिता जी की लंबी मूछें गुस्से से फड़फड़ाने लगी थी चीखने लगे, कौन सा मास्टर है वो द्रोणाचार्य की औलाद जो मेरे लड़के से झाड़ू लगवावे हैंष्7 आदमी चाहे कितना भी कमजोर हो जब उसका स्वाभिमान व जमीर जाग जाता है तब वह अन्याय का डटकर मुकाबला करता है ।

जूठन शीर्षक के माध्यम से वाल्मीकि जी ने पाठकों के सामने भूख की समस्या को उठाया है । भूख आदमी से क्या क्या करा सकती है और स्वाभिमान को (जिंदा बचाने के लिए) आदमी भूख की बलि चढ़ा देता है इसका प्रमाण जूठन है । वाल्मीकि जी ज़िक्र करते हैं कि शादी विवाह में सब लोगों के खाने के बाद जूठन इकट्ठा करने की परंपरा मेरे परिवार में थी जिसे सुखा कर कई दिनों तक खाने का जुगाड़ कर लिया जाता था एक दिन की बात है कि चौधरी सुखदेव सिंह की बेटी का विवाह था जिसमें लेखक की मां जूठन इकट्टी करने के बाद बच्चों के लिए एक पत्तल भोजन मांगती है कहती है ष्चौधरी जी ईव तो सब खाना खा के चले गए म्हारे जातकों कूं भी एक पत्तल धर के कुछ दे दो वो वी तो इस दिन का इंतजार कर रे ते ।ष्8 सुखदेव सिंह ने जूठी पत्तलों से भरे टोकरे की ओर इशारा करते हुए कहा ष्टोकरा भर के जो जूठन ले जा रही है ऊपर से जातकों के लिए खाणा मांग री है अपनी औकात में रह चूहड़ी उठा टोकरा दरवाजे से चलती बन ष्9 सुखदेव सिंह के अपमान से परिपूर्ण शब्दों को सुनकर लेखक की मां शेरनी की तरह दहाड़कर टोकरे को फेकती हुई बोली ष्इसे उठा के धर ले कल नाश्ते में बारातियों को खिला देनाष्10 यहीं से लेखक के परिवार में जूठन उठाने की पुश्तैनी प्रथा सदैव के लिए बंद हो गई ।

इस प्रकार वाल्मीकि जी ने दलित समाज में प्रचलित कुप्रथाओं का डटकर विरोध किया । दलित समाज में व्याप्त अंधविश्वास भूत प्रेत ओझा के तंत्र मंत्र एवं देवताओं पर सूअर व बकरों की बलि व शराब का चढ़ावा इत्यादि अनेक कुप्रथाओं का प्रतिकार किया । दलितों का नवविवाहित जोड़ा बाजे गाजे के साथ सवर्णों के घर जाकर

श्सलामश् करते बदले में उन्हें कपड़े अनाज व पैसें दिए जाते थे । लेखक ने अपनी बहन की शादी में इस प्रथा का विरोध किया और अपने बहन बहनोई को श्सलामश् करने के लिए नहीं जाने दिया ।

इस प्रकार जूठन दलितों के यन्त्रणा पूर्ण जीवन का यथार्थ चित्रण है । जूठन के संबंध में ज्ञान प्रकाश विवेक लिखते हैं ष्आत्मकथा में अशिक्षा का घटाटोप, अंधविश्वासों के कुहासे, कमतरी के एहसास की यंत्रणा है और दरिद्रता एक रोग की तरह हैष्11

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– समय से मुठभेड़ करती दलित आत्मकथाएं – डॉ० वीरेंद्र सिंह यादव पृष्ठ संख्या 100–101

2– श्जूठनश् ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ संख्या 40

3– श्जूठन की भूमिकाश् ओमप्रकाश वाल्मीकि

4– दलित साहित्य का समाजशास्त्र, हरि नारायण ठाकुर पृष्ठ संख्या 450

5– दलित आत्मकथा का समाजशास्त्र, पृष्ठ संख्या 452

6– समय से मुठभेड़ करती दलित आत्मकथाएं– डॉ० वीरेंद्र सिंह प्लस संख्या 104

7– जूठन– ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधा कृष्ण पेपरवैक्स प्रकाशन दिल्ली भाग 1 पृष्ठ संख्या 21

8– जूठन– ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधा कृष्ण पेपरवैक्स प्रकाशन दिल्ली भाग 1 पृष्ठ संख्या 21

9– जूठन– ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधा कृष्ण पेपरवैक्स प्रकाशन दिल्ली भाग 1 पृष्ठ संख्या 21

11– समय से मुठभेड़ करती दलित आत्मकथाएं – डॉ० वीरेंद्र सिंह पृष्ठ संख्या 108

झादपतउंसं2014 ⁄ हउंपस.बवउ

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 222-226

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जयप्रकाश कर्दम के 'छप्पर' उपन्यास में चित्रित मजदूर विमर्श

-प्राध्यापक उत्तम ओंकार येवले

अध्यक्ष, हिंदी विभाग, कला, विज्ञान व वाणिज्य महाविद्यालय, कोल्हार, तहसील. राहाता, जिला अ.नगर

जयप्रकाश कर्दम जी की प्रसिद्ध रचना श्छप्परश उपन्यास में मजदूर विमर्श की चर्चा बड़े जोर शोर से की है।मजदूर दिन दलित वर्ग के जीवन का संघर्ष इस उपन्यास की मुख्य उपलब्धि है। किसी भी गांव में आमतौर पर 2 वर्ग के लोग रहते हैं। एक और सुखी संपन्न लो जिसे हम सवर्ण के नाम से जानते हैं। इसमें ब्राह्मण,पुरोहित,ठाकुर,जमींदार, रईस तथा लाला,साहूकार आदि शामिल है। वहीं दूसरी ओर दीन–हीन,दरिद्र,मजदूर लोग जिसे हम अवर्ण कहते हैं।रईस धनी वर्ग गांव या शहर के मध्य में रहते हैं।वहीं मजदूर झुग्गी झोपड़ियों में गांव या शहर के बाहर मलिन बस्ती में बसते हैं। इन मजदूरों के पास रहने के लिए मिट्टी या घास फूस के छप्पर है।इस उपन्यास के नायक के पिता का भी एक छोटा सा छप्पर है।इसमें वह अपनी पत्नी के साथ जैसा–वैसा जीवन–यापन करता है।इस छप्पर पर भी गांव के रईस सूदखोर,वेज खोर, महा जनों की नजर है।सुक्खा ने अपनी जवानी में मजदूर से छोटा किसान बनने के लिए एड़ी चोटी का पसीना बहाया कठिन परिश्रम कर अपनी गरीबी हटाने के प्रयास किए फिर भी ढाक के तीन पात।जैसे अमीरों की संपत्ति,धन,पैसे, जमीन बढ़ते ही चली जाती है वैसे ही गरीबों की गरीबी भी बढ़ते ही जाती है। जीवन–यापन करने के लिए गांव के नामी महाजनों से खेती,मकान, बर्तन (गहने) गिरवी रखकर कर्जा लिया।हर साल आर्थिक हालत सुधरने के बजाय गिरते ही चली जाती है। कर्जा समय पर ना लौटाने के कारण सूद और मूल राशि इतनी बढ़ जाती है कि जो चीजें गिरवी रखी है वह कुछ ही रुपयों में लाला, ,साहूकार,महा जनों को भेंट चढ़ाने पड़ती है। लाखों के खेत,मकान,गहने कर्ज के चंद रुपयों में भूल जाना पड़ता है।इसके बाद जो संघर्ष हुआ उससे मुंह चुराकर गांव छोड़ना पड़ा।पापी पेट के लिए जहां रोजगार उपलब्ध हुआ वहां जाना पड़ा। नए गांव में नया संघर्ष। मजदूर पूरी तरह मालिकों के,सेठो के,महाजनों के, भट्टे मालिकों के हाथ भी कठपुतली बन गए हैं। फिर यहां जो घटित हुआ उससे दुनिया शर्मसार हो गई।जवान बहू बेटियों यौन शोषण के किससे खुलकर सामने आए। इन किस्सों ने कई मजदूरों के घरों में आग लगा दी। परिवार का एक–एक आदमी बिखर गया। इस बिखराव का प्रामाणिक चित्रण छप्पर उपन्यास में हुआ है। मातापुर पश्चिमी उत्तर प्रदेश में बसा एक छोटा–सा गांव है।इस गांव में दो मोहल्ले हैं– जहां एक और धनी लोग बसते तो दूसरी और गरीब, निर्धन मजदूर बसते हैं।इस मलिन बस्ती में छोटे किसान और मजदूर दिन–रात अपनी गरीबी हटाने का प्रयास करते हुए दिखाई देते हैं।मजदूरी के मूल्य बढ़ाने को लेकर जितने भी प्रयास किए गए हैं उन सब को ठिकाने लगाने का काम यहां के रईस,धनी,महाजन,जमींदारों ने बड़ी बेरहमी किया है। मजदूर संगठन और उनके नेताओं को चुन चुन कर निकालते हैं।उन्हें काम पर नहीं बुलाते। इससे उनकी आर्थिक हालत और भी नाजुक हो जाती है। वह रोटी के टुकड़ों के लिए तरसते हैं।आखिर में पेट की आग के

कारण जमींदारों,सेठों के पैरों पर गिरकर क्षमा याचना नाक रगड़ कर करते हैं।

सुक्खा की पत्नी रमिया और समय ही मुरझा गई है। सुक्खा के घर में बांस की चारपाई है।पानी के लिए मिट्टी का घड़ा है।जी जान से मेहनत करने पर भी उसके घर में दारिद्र्य ही राज करता है।सुक्खा बचपन से दमे का मरीज है।उसकी हालत देखकर रमिया कहती हैरू ष्सारे दुख हमारे किस्मत में क्यों लिखे हें?ष्इस प्रकार अपनी गरीबी से रमिया तंग आ चुकी है। अपनी आर्थिक आय बढ़ाने के लिए वह चंदन को नौकरी करने के लिए उकसाती है। वह अपने पति से कहती है—ष्क्यों नहीं उसे तुम लिखवा भेजते कि वह कहीं कोई हिल्ला रोजगार ढूंढ ले दो पैसे कम आएगा तो तुम्हारी दवा—दारू भी आएगी और सिर से कर्ज भी उतरेगा।ष्कर्ज लौटाने का जो वायदा है उससे दोनों पति—पत्नी परेशान हैं। मातापुर में ठाकुर,जमीदारों की हिंसा और आतंक का मनमाना राज है। सेठ साहूकारों की सुद की निर्मम मार सहते,रोते—तड़पते संघर्ष की ओर बढ़ते हैं। इस गांव में छुआ—छूत का जहर पसरा हुआ है।उपर्युक्त परिस्थिति केवल देहातों की नहीं तो महानगरों के मुहल्लों की भी है। यहां के मजदूर आर्थिक अभाव में उत्पीड़न का जीवन जीते हैं। आदमी को यहां पेट की क्षुदा से लड़ना पड़ता है।तन ढकने की मशक्कत करनी पड़ती है और झुग्गी— झोपड़ियों में रहने के लिए विवश होना पड़ता है। शहर और गांव के मजदूरों में कोई खास फर्क नहीं हैं। यह लोग २ जून की रोटी के लिए मोहताज है। पहनने के लिए महिलाओं को एक ही साड़ी है। इसी वजह से वे महीनों तक नहा नहीं सकती। इन मजदूरों की मेहनत के संदर्भ में उपन्यासकार कहते हैं—ष्रही काम की बात सो दिन रात कमरतोड़ मेहनत करके भी आदमी को दो जून की रोटी मयस्सर नहीं हो पाती ठीक से बीस तीस रुपए का काम करा कर मालिक छह—सात रुपए दे देता है दिहाडी के।भूखा पेट क्या करें जो मिल जाए उसी में संतोष करना पड़ता है। इस तरह यहां मजदूरों का शोषण किस प्रकार होता है इसे स्पष्ट किया है।यहां मजदूरों की इतनी मजबूरी है की ना चाह कर भी जमींदार या साहूकारों की मनमानी सहनी ही पड़ती है। इसके सिवा उनके पास अन्य कोई चारा भी नहीं है।उपन्यासकार लिखते हैं—ष्केवल मेहनत मजदूरी के बल पर जिंदा रहने वाले इन लोगों की विवशता है की सब कुछ सुन कर और बर्दाश्त करके भी उन्हें वहीं पर काम करना पड़ता है। इस तरह यह मजदूर पूरी तरह परेशान है वह समझ नहीं पाते कहां जाए? क्या करें?

इन श्रमिकों के जीवन में मनोरंजन के लिए भजन,राग—रागिनी या और अपने लोकगीत हैं। इनके जीवन का एक ही लक्ष्य है रोजी—रोटी का जुगाड़ जमाना।इनमें कुछ अच्छाइयां भी है जैसे मधुर भाषण,परस्पर सहयोग,कठिन,परिश्रमी,एक दूसरे प्रति सहानुभूति और मान सम्मान की भावना। साथ ही कुछ बुराइयां भी है—जैसे दारू बाजी,गाली—गलौच,जुआ खेलना,नशा करना, व्यसनाधीनता,बदले की भावना की इन बस्तियों में शाम—सुबह,मार—पिटाई,गाली—गलौच,चीख—पुकार और शोर—शराबा सुनाई देता है।हरिया को भी शराब लत लगी हुई है। वह दिन—रात शराब में ही डूबा रहता है। शराबी होकर भी उसने चंदन के प्रति जो दरियादिली दिखाई वह काबिले तारीफ है। हरिया की उदारता ने ही हरिजन बस्ती में रौनक लौट आई है। चंदन जैसे प्रतिभावान छात्र के साथ रह कर वह पशु से इंसान में परिवर्तित हो जाता है।

खाना खाते समय लगान वसूलने की खबर ने तो सुक्खे को बेहोश कर दिया थाक्योंकि उसने घर की जो भी चीजें थी उसे गिरवी रखकर गांव के साहूकारों से कर्जा लिया था।मुंह छुपाने के लिए केवल दो बीघा जमीन बाकी थी। यह जमीन भी हमेशा गिरवी ही रहती थी।अब उसके जाने का डर था। घर की हालत

दिन–ब–दिन गिरती ही चली जाती है।सुक्खा अपनी इस परिस्थिति को देखकर कहता है–ष्जब दिन बुरे आते हैं तो बने बनाए काम भी बिगड़ जाते हैं।ष्आपत्ती के समय मैं जब विपत्तियां आती है तो कतार लग जाती है। रुकने का नाम नहीं लेती है । आप चाहे जो कर लो गलघोटू की बीमारी में सुक्खे की भैंस मर गई। इस दांपत्य के जीवन में इतनी गरीबी है की उनके पास तन ढकने के लिए ठीक से कपड़े भी नहीं है। खाने–पीने की चीजें तो दूर की बात है। अपनी इस आर्थिक परिस्थिति से तंग आकर सुक्खा अपनी पत्नी से कहता है–ष्हमने कौन से पाप किए हैं रमिया जो हमको यह दिन देखने पड़ रहे हैं।ष्सुक्खा की गरीबी हटाओ की सोच पूरी तरह हार गई है। उसकी सोच सोच ही रह गई है। प्रेमचंद गोदान उपन्यास में लिखते हैं–ष्आखिर प्रतिभा गरीबी में ही पलती है।ष्यह बात यहां सौ प्रतिशत सही ठहरती है। सुक्खा चमार का बेटा अपनी प्रतिभा,लगन और मेहनत के भरोसे शहर में पढ़ने जाता है। यह बात मातापुर के रही जमादार महाजनों के गले नहीं उतरती है। वह सुक्खे की पूरी तरह घेराबंदी कर उसे नीचा दिखाते हुए अपने यहां काम पर नहीं बुलाते। सुक्खा ने भी अपना स्वाभिमान बनाए रखा मातापुर छोड़ दिया लेकिन स्वाभिमान नहीं बेचा। गांव के रईस धनी वर्ग ने सुक्खा को नीचा दिखाने का कोई मौका नहीं छोड़ा और उपेक्षा होती रही। हमेशा यहां के मजदूरों का शोषण अन्याय अत्याचार और उपेक्षा होती रही। यहां इन गरीब श्रमिकों के पास केवल दोही रास्ते हैं–या तो गांव छोड़कर चला जाए या फिर यहां के रईस वर्ग के पैरों पर नाक रगड़ कर रोजगार मांगा जाए।यहां इन मजदूरों के साथ पशु वत व्यवहार किया जाता है। पीढ़ि दर पीढ़ि कर्जा ने उनकी कमर तोड़ दी है। कर्जा चुकाने के लिए बंधुआ मजदूर बनकर जीने के लिए विवश हो जाते हैं। यहां जुल्म और शोषण विरुद्ध संघर्ष करना इतना आसान नहीं है।

मातापुर के कुछ लिखे–पढ़े और धर्म के ठेकेदारों ने अपनी पेट भरने की धार्मिक व्यवस्था बना ली है। हमारे धर्म ग्रंथों में शोषण छुआछूत की जड़े फैली है।इन जड़ों को उखाड़ फेंकने की जरूरत है। इसके लिए एक सुशिक्षित मजबूत नेता की आवश्यकता थी जो चंदन ने पूरी कर दी।हरिया मजदूर की बेटी कमला कुंवारी माता बन गई है।वह भट्टे की मालिक की यौन तृष्णा की शिकार बनी हुई है। भट्टे के मालिक और उसके मित्र के करनी का फल खिलाड़ी नामक संतान है।कमला उसे प्यार से खिल्लर कहकर पुकारती है। खिल्लर के पिता का नाम बताना किसी संशोधन का विषय हो सकता है। क्योंकि भट्टे के मालिक के साथ उसके अनेक मित्रों ने मिलकर बलात्कार किया था। कमला की पूरी जिंदगी बर्बाद कर दी थी इन भेड़ियों ने। उसे घर वालों,गांव वालों और समाज में कहीं भी मुंह दिखाने लायक नहीं छोड़ा था मानवता के इन दुश्मनों ने।कमला के साथ जो अन्याय किया वह न जाने कितने मजदूरों की मां बहनों के साथ हुआ होगा। इन दरिंदों के खिलाफ आवाज उठाने वालों को वह कहीं का नहीं रखते। कमला अपनी इस बीती हुई वास्तविकता को हमेशा छुपा कर रखती है।एक दिन चंदन ने कमला की स्थिति खिल्लर के प्रवेश लेते समय टटोल ली थी। कमला चंदन से कहती है–ष्तनिक मुंह खोला बापू ने तो ऐसा मारा कमीनों ने की अधमरा कर दिया उनको। सारी देह नीली पड़ गई और सिर फट गया।ष्अतः यहां यह स्पष्ट हो जाता है कि रईस,धनीवर्ग,व्यापारी,सूदखोर,बड़े जमींदार, भट्टे के मालिक और थानेदार इन सब की मिलीभगत ही कुंवारी माता जैसे बलात्कारी कांड को जन्म देती है।संत नगर में सूदखोर,जमींदार, भट्टे के मालिक एक तरफ सज्जन बनकर नारियों को देवी ईश्वर, आदिशक्ति, पूजनीय, वंदनीय रूप में मानते हैं, तो दूसरी तरफ अपनी यौन तृष्णा तृप्ति का साधन समझते हैं। इनकी यह दोगली नीति के कारण ही वहां की जवान–जमान, बहू–बेटियों पर दिन–दहाड़े बलात्कार होते हैं। मां–बहनों की इज्जत लूटी जाती है और आवाज उठाने वालों

को पैसों के भरोसे ठिकाने पर लगा देते हैं। जिन पर बलात्कार,अन्याय,यौन शोषण हुआ है वे बेचारे मुंह छुपा कर कहीं और चले जाते हैं। लगान न देने के कारण सुक्खा खेत से बेदखल हो गया।लाला ने मकान पर कब्जा कर लिया। ठाकुर,जमींदारों ने खेतों में काम देने पर प्रतिबंध लगा दिया। मजबूर होकर सुक्खा गांव छोड़कर चला गया लेकिन वह काने पंडित के सामने हाथ जोड़कर ना गिड़गिड़ा आया ना साहूकार उनके पैरों पर नाक और मस्तक रखा। वह कहता है– ष्जीवन भर सब तरह के जुल्मों और ज्यादतियां सही है मैंने।पीढियों से नारकीय जीवन जीना पड़ा हमको।इससे ज्यादा बुरा और क्या हो सकता है हमारे जीवन में?ष इस प्रकार सुक्खे की संघर्ष करने की हिम्मत की दाद देनी पड़ती है। अपने बाप की तरह चंदन भी है। वह आर्थिक अभाव के कारण 3 किलोमीटर की दूरी पैदल तय करके स्कूल जाता था। रजनी ने कई बार उसे अपनी कार में बैठने की विनती की मगर वह नहीं बैठा। उसके फटे–पुराने मैले वस्त्रों को देखकर रजनी को बुरा लगता है। वह मुझसे नए वस्त्र लाकर देती है लेकिन चंदन उसे स्वीकार ता नहीं।अतः हां वह रजनी से कहता है–ष्न तो मैं पहली बार फटा कुर्ता पहन रहा हूं और ना ही पहली बार मेरा उपहास हो रहा है मैं इस उपहास से शर्मिंदा नहीं हूं।ष्अपने बाप की तरह ही चंदन भी अपने स्वाभिमान को ठेस नहीं लगने देता।दुखी हरिया एक दिन अपनी राम कहानी चंदन से कहता है।हरिया का छोटा सा संसार था। रामप्यारी उनकी पत्नी थी विवाह के उपरांत उन्हें एक बेटी हुई। जिसका नाम कमला था।पापी पेट की आग और आर्थिक कमजोरी ने उसे भट्टे पर काम करने के लिए मजबूर कर दिया था। उस समय रामप्यारी पेट से थी। मिट्टी की लोथ उठाते समय उसका पैर फिसल गया। लोथ सीधी उनके पेट पर आ गिरी। दवा दारू बहुत की मगर सब बेकार गया। हरिया की आंखें अपनी कहानी बताते समय न जाने कितनी बार नम हुई।1 वर्ष की कमला को मां और बाप दोनों का प्यार हरिया ने दिया था। कमला अपनी मां की तरह ही सुंदर थी। बड़ी होने पर भट्टे के मालिक और उसके मित्रों ने मौके का फायदा उठाकर बलात्कार किया। मैं इस दरिंदगी को नहीं भूल पाया। बदले की भावना मेरे अंदर जाग उठी।एक दिन मौका देख कर भट्टे के मालिक का खून मैंने कर दिया। पुलिस आई और मुझे पकड़ कर ले गई। कुछ ही दिनों में सबूत के अभाव में मुझे छोड़ दिया गया। तब से आज तक शराब का सहारा लेकर मैं जी रहा हूं।चंदन बाप बेटी का मिलाप करवा देता है। यहां मजदूर के जीवन का बड़ा ही हृदय द्रावक वर्णन किया है। इस उपन्यास में अशिक्षा के कारण ही मजदूर दारिर्द्य और दुर्दशा का शिकार बना हुआ है। आर्थिक अभाव और उत्पीड़न इनके जीवन का यथार्थ है। हरपाल सिंह की इकलौती संतान रजनी इस वर्ण व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाती है। वह कहती है–ष कौन कहता है व्यवस्था को बदला नहीं जा सकता। आखिर आदमी की ही तो बनाई हुई है सारी व्यवस्थाएं, और सारी व्यवस्थाएं आदमी के लिए ही हैं। तब यदि किसी व्यवस्था में दोष हो और वह उत्थान की बजाए पतन का कारण बनती हो तो उसे अवश्य बदला जा सकता है,और बदला जाना चाहिए।इस प्रकार रजनी ने अपने पिता की मनमानी व्यवस्था का विरोध कर उसे समाप्त करने का निश्चय किया। चंदन से विवाह का रिश्ता जोड़ कर अवर्ण–सवर्णों के संघर्ष को विराम दे दिया।कुल मिलाकर इस उपन्यास में मजदूरों के जीवन का संघर्ष उनके जीवन का यथार्थ चित्रण है। इस उपन्यास में बड़े इमानदारी से किया है इसे पढ़कर किसी भी पाठक का हृदय पसीजता है।उपन्यास के अंत में बुराइयों पर अच्छाई की विजय दिखाई है। मजदूर के जीवन में जितनी विपत्तियां आती है उसे सहकर वह आगे बढ़ता है।

निष्कर्ष– जयप्रकाश कर्दमजी ने छप्पर उपन्यास में मजदूर विमर्श की बात को बड़े जोरशोर से उठाई है। मजदूर

ग्रामीण हो या शहरी, खेतों में काम करने वाले से लेकर मिलों में काम करने वालों तक,सब की दुखती रग एक ही है आर्थिक विषमता। पापी पेट की आग बुझाने के लिए वह शहर दर शहर,खेत–खलिहान,जहां रोजगार मिले वहां अपना सब कुछ छोड़ कर चले जाता है। वहां उनके साथ जो घटित होता है उसका जीता जागता वर्णन इस उपन्यास में चित्रित है। भट्टे पर काम करने वाला मजदूर हरिया और उसकी पत्नी रामप्यारी इमानदारी से काम करती है। इस ईमानदारी के ही कारण उसकी एकमात्र बेटी कमला के साथ जो हुआ उसका वास्तविक चित्र इस उपन्यास में चित्रित है। मजदूरों के बहू बेटियों पर भट्टे के मालिक की नजर और उनके यौन शोषण का खेल में हरिया का पूरा परिवार बर्बाद हो जाता है। इससे निराश होकर हरिया बदले की भावना से वह ओत प्रोत है।मौका देखकर वह भट्टे के मालिक की हत्या कर देता है। सबूत के अभाव में वह छूट जाता है। मातापुर के रईस,जमींदार,ठाकुर,सूदखोर और व्यापारी धनी वर्ग मजदूरों का शोषण करते हैं। छुआ–छूत और असमानता,अन्याय और धर्मांधता के कारण वह मजदूरों पर अपना प्रभाव जमाए रखते हैं। मजदूर संगठनों का कोई भी संघर्ष हुए सफल नहीं होने देते।सब मिलकर पंचायत में ऐसा निर्णय लेते हैं कि मजदूर और रोते,गिड़गिड़ाते,हाथ जोड़कर इन रईसोंके पैरों पर प्रार्थना करते हैं,उनके पैर पड़ते हैं नाक रगड़ कर और रोजगार उपलब्ध कराने की मांग करते हैं। चंदन और रजनी इसका विरोध कर समता के आधार पर इन्हें न्याय दिलाने की कोशिश करते हैं।इस उपन्यास में अवर्ण सवर्णों के संघर्षों को चित्रित किया है। मजदूरों की दयनीय अवस्था मालिकों द्वारा उनका अपमान भट्टे के मालिक के द्वारा उनके बहू बेटियों का यौन शोषण आर्थिक अभाव समानता की भावना का अभाव और शिक्षा आदि के कारण बेचारा मजदूर पीड़ित है ऐसी परिस्थिति में भी वह संघर्ष कर आगे बढ़ता है।उपन्यास के अंत में बुराई का नाश और अच्छाई का विजय दिखाया है।

संदर्भ सूचीरू

1) लेखक का नामरू जयप्रकाश कर्दम
ग्रंथ का नामरू छप्पर प्रकाशनरू राहुल प्रकाशन दिल्ली
पृष्ठ संख्यारू८,६,११,११,२७,४६,६०,६८,७३,८२,

२) लेखक का नामरू प्रेमचंद
ग्रंथ का नामरू गोदान प्रकाशनरू राजकमल प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ संख्यारू171

8421589661, ईमेल आईडी लमूंसमनजजंउ71 ⁄ हउंपस.बवउ

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 227-229
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हरियाणा के गुरूकुल का हिंदी को योगदान

–प्रदीप
इतिहास प्रवक्ता, आर्य हिन्दी संस्कृत महाविद्यालय (चरखी दादरी)

भाषा का मानव जीवन में महत्वपूर्ण योगदान है। जब प्राचीनकाल में कोई भाषा नहीं होती भी तो आदिमानव अपनी सांकेतिक भाषा या ईशारों में बात करता था। भाषा का मतलब हम अपने विचार आदान–प्रदान करने के लिए करते है। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार''

देश–विशेष के लोगों की मौखिक और लिखित माध्यम की संप्रेक्षण प्रणाली भाषा कहलाती है। एक दूसरी परिभाषा है– ''मानव जाति द्वारा अपने विचारों, कल्पनाओं और मनोभावों को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त ध्वनि एवं लेखन की प्रणाली को भाषा कहते है''

हिन्दी भाषा का इतिहास लगभग एक हजार वर्ष पूराना माना गया है। संस्कृत भारत की सबसे प्राचीन भाषा है, जिसे आर्य भाषा या देशभाषा भी कहा जाता है। हिंदी संस्कृत की उत्तराधिकारिणी मानी जाती है। हिन्दी भाषा का इतिहास लगभग एक हजार वर्ष पूराना माना गया है। सामान्यतः प्राकृत की अन्रिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव स्पीकार किया जाता है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने अवध्टट को 'पुरानी हिन्दी' नाम दिया है। पुरानी अपभ्रंश और बोलचाल की देशी भाषा का प्रयोग निरन्तर बढ़ता गया । इस भाषा को विद्यापति ने 'देसी भाषा' कहा गया जो बाद क्योंकि सारे भक्ति कवियों ने अपनी वाणी जो जन–जन तक पहुंचाने के लिए हिन्दी का सहारा लिया। भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में हिन्दी और हिन्दी पत्रकारिता की महत्वपूर्ण भूमिका रही। महात्मा गांधी सहित अनेक राष्ट्रीय नेता हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में देखने लगे थे। भारत के स्वतन्त्र होने पर हिन्दी की भारत की राजभाषा घोषित किया गया।

अंग्रेजों के काल में हिन्दी भाषा को अनदेखा कर दिया और भारत में 1835 के मैकाले पत्र के अनुसार स्थानीय भाषाओं के बारे में लिखा लेकिन हिन्दी के अलावा अंग्रेजी भाषा को ज्यादा महत्व दिया गया। भारत में अंग्रेजों के द्वारा जो शिक्षा प्रणाली अपनाई थी। उसमें अंग्रेजी भाषा को केन्द्र में रखा गया। लेकिन 19वीं सदी में भारत में कई प्रकार के सामाजिक–धार्मिक आन्दोलन चलाए गए। जैसे ब्रहम समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, तथा रामकृष्ण मिशन। इन्होंने भारतीय भाषाओं को बढ़ावा दिया। लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में सबसे ज्यादा योगदान आर्य समाज का रहा है।

आर्य समाज ने भारत में दो तरह की शिक्षा व्यवस्था शुरू की जहाँ एक तरफ अंग्रेजी तथा आधुनिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए क्ण ाण्ट शिक्षा पद्धति को अपनाया और भारतीय संस्कृति, इतिहास की भाषा, रीतिरिवाज, संस्कारों तथा नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए गुरूकुल व्यवस्था की अपनाया।

गुरूकुल

स्वामी दयानंद ने भारतीय संस्कृति के लिए गुरूकुल व्यवस्था की शुरूआत की। स्वामी श्रद्धानंद ने 1902 में कांगड़ी गुरूकुल की स्थापना की। इसके बाद सारे भारत में बहुत गुरूकुल खोले गये जैव कन्या गुरूकुल खानपर, कन्या गुरूकुल खरल, गुरूकुल झज्जर, गुरूकुल लुधियाना इत्यादि। गुरूकुलों में विशेष प्रकार का वातावरण तैयार किया जाता था जिसमें भारतीय संस्कृति तथा भाषा की जानकारी दी जाती थी।

गुरूकुल तथा हिन्दी भाषा

गुरूकुल शिक्षा पद्धति की भाषा संस्कृत तथा हिन्दी थी। बच्चों को संस्कृत तथा हिन्दी भाषा में श्लोकों का उच्चारण करवाया जाता था। गुरूकुलों में ग्रामीण तथा पिछड़े क्षेत्रों के आसानी से समझ सकते थे। क्योंकि गांवों में साधारण भाषा बोलने में पाठ्यक्रम संस्कृत के आधार पर था। जो हिन्दी भाषा की जननी थी। संस्कृत भाषा बोलने में मुश्किल थी लेकिन हिन्दी को आसानी से बोला जाता था। हिन्दी का उच्चारण और अधिक शब्दों को याद न करना। इसलिए हिन्दी में दोहे तथा श्लोको का प्रयोग किया गया था। सत्यार्थ प्रकाश तथा गीता जैसे पुस्तको को हिन्दी में प्रकाशित किया तथा विद्यार्थी को समझने में आसानी होती थी। गुरूकुलों के पाठ्यक्रम में सबसे पहले हिन्दी साहित्य को शामिल किया गया जिसके कारण विद्यार्थियों की अपनी रूचि बनी तथा उन्होंने हिन्दी भाषा को अच्छी तरह से सीखा और को भी सिखाया। गुरूकुलों में संस्कृत व्याकरण को पढ़ाया जाता था। और हिन्दी तथा संस्कृत की लिपि देवनागरी होने के कारण व्याकरण सीखना आसान था। जो एक प्रकार के से हिन्दी भाषा को बढ़ावा देने का काम किया। जो एक प्रकार से हिन्दी भाषा को बढ़ावा देने का काम किया। गुरूकुल का पाठ्यक्रम ना केवल हिन्दी भाषा को बढ़ावा दिया बल्कि दूसरे विषय जैसे इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र तथा अन्य सभी का माध्यम हिन्दी था।

जिस समय देश के अन्दर मातृभाषा हिन्दी का अभाव था उस समय देश में आर्य समाज के माध्यम से हिन्दी संस्कृत भाषा की शिक्षा का भी एक आन्दोलन चल रहा था। उतरी भारत में यह आन्दोलन जोरो पर था। उसी समय एक नवम्बर 1949 को आचार्य भगवानदेव ने आर्य हिन्दी संस्कृत महाविद्यालय की नीवं रखी। इसके संचालन का भार पं० शिवकरण जी को सौंपा गया। इस संस्था ने हजारों हिन्दी संस्कृत के अध्यापक तैयार किए है। इस संस्था ने समय–समय पर जे०बी०टी०, ओ०टी० हिन्दी व संस्कृत के अध्यापक तैयार किए। इस समय इस संस्था के अन्दर प्राज्ञ विशारद शास्त्री व प्रभाकर के 206 छात्र एवं छात्राएं शिक्षा प्राप्त कर रहे है। इसमें पढ़ाई के अन्दर संस्कृत व हिन्दी की परीक्षाओं में विश्वविद्यालय में 50 से 60 प्रतिशत परिणाम निकाले है जो सारे हरियाणा में सब संस्थाओं से ऊपर रहे है। इसके अलावा आर्य गुरूकुल कालवा जीन्द, आर्य कन्या महाविद्यालय नरवाना, गुरूकुल भैंसवाल तथा अन्य गुरूकुलों ने भी हिन्दी भाषा पर जोर दिया तथा इसके विकास के लिए अपने पाठ्यक्रम से शामिल किया।

गुरूकुलों का पाठ्यक्रम में भारतीय संस्कृति, धर्म तथा प्राचीन सभ्यता व विरासत को शामिल किया। इसने पाठ्यक्रम में सामाजिक, धार्मिक तथा आध्यामिक ज्ञान को शामिल किया गया। पाठ्यक्रम में संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के शामिल होने से विद्यार्थियों में एक नए ज्ञान की उत्पत्ति हुई तथा उन्होंने हिन्दी भाषा को अपने परिवार तथा गांव में बोलना शुरू किया जिसके कारण उनके सम्पर्क में आने वाले लोगों ने इस भाषा को सीखा।

गुरूकुल तथा महिला शिक्षा एवं हिन्दी भाषा

ग्रामीण क्षेत्र में लड़कियों को पढ़ाया नहीं जाता था। क्योंकि स्कूल बहुत दूर होते थे और उस समय समाज के लोग रूढ़िवादी होते थे। जो लड़को व लड़कियों को साथ नहीं पढ़ाना चाहते थे। इसके कारण लड़कियों की शिक्षा कम थी। इस समस्या का हल आर्य समाज की गुरूकुल व्यवस्था ने किया और लोगों को लड़कियों को पढ़ाने के लिए एक शानदार वातावरण इन गुरूकुलों में दिया गया। जब इन गुरूकुलों में अलग–अलग गाँव की लड़किया अलग–अलग भाषा बोलती थी। तो उनको सिर्फ हिन्दी एक जोड़ने वाली भाषा थी। जिसके कारण इन महिलाओं ने हिन्दी को सीखा फिर अपने परिवार को सीखाया तथा शादी के बाद जहां पर ये गई वहाँ पर लोगों को सिखाया जिसके कारण हिन्दी भाषा का विस्तार हुआ। इन लड़कियों ने खुद सरकारी या निजि अध्यापक की नौकरियां को चुनना तथा हजारों विद्यार्थियों को हिन्दी भाषा सीखा कर तैयार किया।

गुरूकुल शिक्षा के बाद कई महिलाएं भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल हुए तथा स्वदेशी आन्दोलन व अन्य आन्दोलनों में भाग लेकर भारत को आजादी दिलाने में योगदान दिया । इन्होने ना केवल शिक्षा प्राप्त की बल्कि अपने कविता तथा अन्य काव्यों के द्वारा महिलाओं को जागरूक किया तथा समाज के प्रति एक क्षेत्र में अपना योगदान दिया।

निष्कर्ष

हरियाणा में हिन्दी भाषा को बढ़ावा देने के लिए हरियाणा साहित्य अकादमी की पत्रिका हरीगंधा व कुरूक्षेत्र का योगदान रहा। इसके अलावा बालमुकन्द, श्रीधर, मोहन चोपड़ा, रमेशचन्द्र जैन मधुकांत व अन्य लेखकों ने भी योगदान दिया।

खानपर गुरूकुल व कन्या गुरूकल खरल (नरवाना) से हजारो छात्रों ने शिक्षा ग्रहण करके फिर अध्यापक बनकर हिन्दी भाषा को बढ़ावा दिया। आचार्य दर्शना कुमारी, कमलेश, ऊषा रानी, कविता रानी व अन्य बहुत सारी अध्यापिकाएं आगे भी शिक्षा व हिन्दी भाषा को बढ़ावा दे रही है। हरियाणा गुरूकुल ने हिन्दी भाषा को उस मुकाम पर पहुंचा दिया जिस पर आज हम एक राष्ट्रभाषा के रूप में देखते है। हरियाणा के गुरूकलों ने हिन्दी भाषा को एक नई ऊर्जा प्रदान की। इसमें पढ़कर विद्यार्थियों ने हिन्दी सीखी और हजारों लोगों को सिखाया।

सन्दर्भ सूची

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी मनोहर प्रेस नई दिल्ली, 1992

डॉ० नगेन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', नई दिल्ली, 2010, पेज 36

स्वामी दयानन्द, 'सत्यार्थ प्रकाश', नई दिल्ली, 1994, पेज 76–77

आर्य डारेक्टर अर्थ संवत 1998, की आर्य प्रतियोगिता का विवरण दिल्ली, 1941, पेज 86

कांगडी गुरूकुल के विचार लक्ष्य तथा आवश्यकता, प्रकाशित आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, 1901, पेज 5

शास्त्री, प्रताप सिंह : हरियाणा में आर्य समाज का इतिहास, स्वाध्याय केन्द्र नई दिल्ली, 2005

कृण्वंतो विश्वमार्यम, डोरेक्स आफसेट प्रिन्टर्स हिसार 2006

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 230-232
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श

–पूनम कुमारी
सहायक प्रोफेसर (हिन्दी), राजकीय महाविद्यालय, रिठौज, गुरूग्राम।

सारांश :–
हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श आन्दोलन नारी को नए पंख और परवाज़ देने का माध्यम बना है। नारी–जीवन को लेकर उठे अनेक प्रश्नों ने उसके भीतर एक नवीन चेतना को जागृत किया है, परिणामतः वह उचित–अनुचित का तटस्थ निर्णय लेने में सक्षम बनी है। स्त्री को इसी सुदृढ़ता ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा उसकी निर्मित छवि 'नरक का द्वार', 'दुर्बलता का नाम','ताड़ना की अधिकारी' 'अबला' आदि की सरहदों को तोड़कर, स्वयं के अस्तित्व को संकीर्ण दायरे से बाहर निकालने का कार्य करती है। सदियों से पुरूषों की कलम सृजित नारी छवि को नकारते हुए, अब स्वयं स्त्री ने कलम को अपने हाथ में थाम लिया था और पूरे जोश के साथ स्त्री–मानस की परतों को खोलते हुए जड़ीभूत परम्पराओं का विरोध करके समाज और राष्ट्र को अपना लोहा मनवा रही है।
शब्दार्थः– विमर्श–जीवन्त बहस, जागृत–जगाना, स्वर्णिम–सुनहरा, कामिनी–कामवती, पितृसत्ता–पिता की सत्ता

भूमिकाः–
हिन्दी भाषा का फलक जितना विस्तृत है, हिन्दी साहित्य का क्षेत्र भी उतना ही विराट है। अनेकानेक वाद, धाराएं एवं विमर्शों की प्रवाहमान सरिताओं को हिन्दी साहित्य ने अपने भीतर समावेशित कर रखा है। इन्ही में से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विमर्श है–स्त्री–विमर्श। स्त्री विमर्श को भली प्रकार से समझने के लिए यह अति आवश्यक है कि हम पहले स्त्री–विमर्श का अर्थ समझ ले। विमर्श का सामान्य अर्थ है–जीवन्त बहस अर्थात् किसी घटना या स्थिति पर प्रत्येक कोण से चिन्तन–मनन एवं पुनरीक्षण करते हुए मानवीय संदर्भों में देखने का प्रयास करना। अंतः स्त्री को केन्द्र में सरकार सदियों से प्रताड़ित दर्द की दास्तान को बयान करते हुए, नारी को मानवीय नजरिये से देखने का प्रयास ही स्त्री–विमर्श है–''स्त्री के अनुभूति–मण्डल के आलोक में घटनाओं का विश्लेषण, पुरुष में स्त्री का नजरिया विकसित कर उसे अर्धनारीश्वर की गरिमा देना।''1
भारतीय इतिहास के स्वर्णिम इतिहास पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो स्त्री के भाग्यविधाता के रूप में सर्वत्त पुरुष का भी पाते है। वेद–शास्त्रों से लेकर आधुनिक काल तक स्त्री को रमणीय, कमनीय, वात्सल्य व प्रेम की प्रतिमा आदि शोभनीय अंलकार देने वाला स्वयं पुरूष ही है, वही दूसरी ओर उसे पद–2 पर छला गया है।''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः''2
जैसी महाउक्तियों स्त्री के लिए महज उपहास की सिद्ध हुई। नर से अलग नारी कोई अस्तित्व नही था। वह प्रत्येक स्थान पर दोयम और पुरुष की अनुगामिनी मात्र है। पाश्चात्य साहित्य जगत् की प्रसिद्ध लेखिका सीमोन द बोउआर ने पुरूषों के द्वारा लिखे साहित्य को 'भावनाओं का लाला प्रकाश' माना है। वे लिखते है,''स्त्री की

स्थिति अधीनता की है। स्त्री सदियों से ठगी गई है और यदि उसने कुछ स्वतन्त्रता हासिल की है तो बस उतनी में जितनी पुरूष ने अपनी सुविधा के लिए उसे देनी चाही। यह त्रासदी उस आधे भाग की है, जिसे आधी आबादी कहा जाता है।''3

हिन्दी साहित्य के आदि काल में स्त्री की स्थिति अत्यन्त प्रतिकूल एवं दयनीय है। अनेक रूढ़ एवं शोषणात्मक परम्पराओं से घिरी नारी है और उपेक्षित है। आदि काल के साथ–साथ भक्ति काल में संतों और योगियों का दृष्टिकोण नारी के प्रति संकीर्ण ही रहा है। उसे 'माया', 'ठगिनी', 'सापिनी' आदि कहकर उसकी अधिकतर भर्त्सना की गई है–

''नारी की झांई परत, अंधा होत भुजंग,
कबीर तिनकी कौन गति, नित नारी के संग।''4

सूफी कवियों ने 'नारी एक नूर है' कहकर उसके सौन्दर्यपरक रुप को उजागर किया हे किन्तु रीतिकाल के आते–2 स्त्री की स्थिति और भी अधिक कारुणिक हो गई थी। विलासी आश्रयदाताओं को खुश करने और पारितोषिक भूख के लिए इन कवियों ने नारी का सर्वत्र कामुक व अश्लील रुप की प्रस्तुत किया है। वस्तुतः आधुनिक काल में अनेक समाज सुधारकों स्त्री से जुडी अमानवीय रूढ़ परम्पराओं का विरोध करके, उनकी स्थिति में सुधार के लिए आवाज बुलन्द की है। द्विवेदी युगीन एवं छायावादी कवियों ने स्त्री के उपेक्षित, परित्यक रुप के प्रति सहानुभूति ही नहीं दिखाई बल्कि उसे देवी, माँ, सहचर एवं मित्र के रुप में दिखाकर, उसकी आदर्शात्मक छवि को गढ़ने का कार्य किया है। 'साकेत' 'यशोदरा','कामायनी' इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है। डॉ0 भारद्वाज इस संदर्भ में लिखते है–''छायावाद युग में नारी–उत्थान विशेष उल्लेखनीय है।''5

किन्तु स्त्री–विमर्श की प्रारम्भिक अनुगुंज हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा की रचना 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में देखने को मिलती है, जो स्त्री विमर्श की भावभूमि तैयार करने में उल्लेखनीय है।

हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श का स्वर 1960 के आस–पास जोर पकड़ने लगता है और आठवें दशक के आते–आते एक आन्दोलन का रुप धारण कर लेता है। वस्तुतः इस स्त्री–आन्दोलन को पाश्चात्य की गुंज बताया गया किन्तु यह सर्वथा गलत है। दुनिया के हर कोने में रहने वाली स्त्री का संघर्ष अपनी उन रूढ़ परम्पराओं एवं श्रृंखलाओं से था, जिन्होंने अलग–अलग ढंग से स्त्री का पद–पद पर बाँधकर उसकी स्वतन्त्रता का हनन किया है। इस समय स्त्री ने पुरूष द्वारा सृजित अंध संसार से बाहर निकलने के लिए अपने मन–मस्तिष्क को कुरदेना शुरू कर दिया था और स्वयं को मानवी–श्रृंखला में शामिल करने के लिए आगे चुकी थी! अतः स्त्री–विमर्श एक आन्दोलन के रुप में जोर–शोर से पूरे भारतवर्ष में हिलोरें लेता दिखाई दे रहा था। डॉ0 संदीप रणभिरकर कें अनुसार,''स्त्री–विमर्श स्त्री के स्वयं की स्थिति के बारे में सोचने और निर्णय करने का विमर्श है। सदियो से होते आए शोषण और दमन के प्रति स्त्री–चेतन ने ही स्त्री–विमर्श को जन्म दिया है।''6

कृष्णा सोबती, उषा प्रियम्वदा व मन्नू भण्डारी जैसी स्त्री–लेखिकाओं ने अपने अन्तर्द्वन्दों को उद्घाटित करके स्त्री–विमर्श को यथार्थ व जीवन्त धरातल प्रदान किया है। इन्हें के प्रभाव स्वरुप आठ के दशक तक, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, कृष्णा अग्निहोत्री, मंजुला भगत, नासिरा शर्मा, चित्रा मुद्गल आदि' महिला लेखिकाओं की एक अनवरत परम्परा दिखाई देती है, जिनके द्वारा स्त्री जीवन से जुडे विविध पहलुओं को इन्होंने निज अनुभूतियों के साथ गम्भीरता के साथ प्रस्तुत किया है–

''मां–बाप ने पैदा किया था गूंगा
परिवेश ने लंगडा बना दिया
चलती रही परिपाटी पर
बैसाखियां चरमराती है
अधिक बोझ से अकुलाकर
विस्कारित मन हुंकारता है
बैसाखियों को तोड़ दूँ।''7

इस प्रकार हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श आन्दोलन नारी को नए पंख ओर परवाज़ देने का माध्यम बना है। नारी जीवन को लेकर उठे अनेक प्रश्नों ने उसमें एक नवीन चेतना को जागृत किया। निर्णय लेने की क्षमता एवं सुदृढ़ता ने पितृसत्ता द्वारा निर्मित छवियाँ 'नरक का द्वार' 'ताड़ना की अधिकारी' आदि परिसीमाओं को स्त्री अब लांघ कर अपना लोहा मनवा रही है। स्त्री–विमर्श जहाँ नारी की जीवन्त अनुभूतियों का दर्पण है, वहीं लैंगिग समानता एवं अधिकारों की समानता की माँग के कारण इस विमर्श को कई अपवादों, आलोचनाओं ओर विरोधों का भी सामना करना पड़ा। पाश्चात्य की गुंज, पारिवारिक–विच्छेद और भारतीय स्त्री की परम्परागत छवि का ह्रास आदि अपवाद स्त्री–विमर्श को लेकर दिखाई देते है। स्त्री की मुक्ति पितृसता के द्वारा पचा पाना असंभव–सा प्रतीत होता है। जिस पर डॉ0 ज्योति किरण ने बडे ही बेबाक ढंग से इस यथार्थ को शीशे में उतारते हुए लिखा है–''इस समाज में स्त्रियां अपनी समझ और काबिलियत जाहिर करती है तब वह कुलच्छनी मानी जाती है। जब वह खुद विवेक से काम करती है तब वह मर्यादाहीन समझी जाती है। अपनी इच्छाओं, अरमानों के लिए वह आत्मविश्वास के साथ लड़ती है, और गैर समझौतावादी बन जाती है, तब वह परिवार और समाज के लिए चुनौती बन जाती है।''8

निष्कर्षः–

निष्कर्ष रुप से कहा जा सकता है कि स्त्री विमर्श नारी जीवन को एक स्त्री के नजरिए से देखते हुए, उसे मानवीय श्रृंखला में शामिल करने का धरातल तैयार करता है। यह स्त्री द्वारा स्त्री के लिए शोषण का विरोध और मुक्ति का फलक है।

संदर्भ–सूचीः–

1. अनामिका, स्त्री का अनुभूति मण्डल, पृ0 13
2. कल्लूल भट्ट, मनुस्मृति, पृ0 562 लोक
3. आजकलः मार्च 2013, पृ0 24
4. डॉ0 राम गोपाल सिंह जादौन, कबीर के काव्यादर्श, पृ0 76
5. डॉ0 अविनाश भारद्वाज, छायावाद युगीन काव्य, पृ0 38
6. पंचशील शोध–समीक्षा, पृ0 87
7. आजकलः मार्च 2013, पृ0 20
8. पंचशील शोध–समीक्षा, पृ0 87

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 233-236
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दलित जीवन की त्रासदी
(ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' के संदर्भ में)

–पूर्णिमा कतरौलिया
शोधार्थी (हिन्दी विभाग), एम.एल.बी. कॉलेज भोपाल (म.प्र.)

भारतीय साहित्य के क्षेत्र में दलित साहित्य एक महत्वपूर्ण धाराओं में से एक है। आज दलित साहित्य को जो आधार मिला है वह सदियों के लंबे संघर्ष का ही परिणाम है। दलित साहित्य को वेदना का साहित्य कहा जाता है। जब यही वेदना और संघर्ष शब्दबद्ध हो जाते हैं, साहित्य का रूप धारण कर लेते हैं। इसी प्रकार दलित साहित्य में दलित आत्मकथा बेहद महत्वपूर्ण और चर्चित विधाओं में से एक है। आत्मकथाकार अपने जीवन के सत्य और यथार्थ को ईमानदारी के साथ जीवन के सभी पक्षों को प्रस्तुत करती है।

आत्मकथा का अध्ययन करते हुए डॉ. विश्वबंधु ने लिखा है, आत्मकथा कल्पना लोक की भावुकतापूर्ण कहानी न होकर जीवन की सत्यरित कथा है, जो लेखक के जीवनानुभावों का वास्तविक दस्तावेज बनती है। इससे स्पष्ट होता है कि, आत्मकथा में कल्पना का कोई स्थान नहीं है। आत्मकथा में लेखक खुद अपने जीवन की अनुभूति को कलम से अभिव्यक्त करता है।1

इसी प्रकार ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा ''जूठन'' दलित आत्मकथाओं में अपना महत्वपूर्ण स्थान है। ओम प्रकाश वाल्मीकि की जूठन सन् 1997 में प्रकाशित हुई। ''जूठन'' दलित साहित्य के क्षेत्र में बेहद महत्वपूर्ण कदम साबित हुई जिसने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में हलचल पैदा कर दी। ''जूठन'' आत्मकथा ने भारतीय, वर्णव्यवस्था, ब्राह्मण वाद एवं हिन्दूवाद पर सीधा प्रहार किया। ओम प्रकाश वाल्मीकि अपनी आत्मकथा ''जूठन'' की भूमिका में लिखते हैं कि ''इन अनुभवों को लिखने में कई प्रकार के खतरे थे। एक लम्बी जदद्रोजहद्र के बाद मैंने सिलसिलेवार लिखना शुरू किया तमाम कष्टों, यातनाओं, उपेक्षाओं, प्रताड़नाओं को फिर जीना पड़ा। उस दौरान गहरी मानसिक यंत्रणाएँ मैंने भोगीं। स्वयं को परत–दर–परत उधेड़ते हुये कई बार लगा – कितना दुखदायी है ये सब!''2 ओम प्रकाश की आत्मकथा ''जूठन'' के समाज की मूलभूत समस्याओं जैसे–जातिगत भेदभाव, आरीक्षा, अज्ञानता सामाजिक परिवेश अपमान, अन्याय, अंधविश्वास, झाड–फूॅक, टोना–टोटका, बेगार आर्थिक समस्याओं एवं मानसिक कष्टों एवं यातनाओं को साहित्य के माध्यम से समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया। शिवबाबू मिश्र ने ''जूठन'' को 'इन्सानियत की पक्षधारता दस्तावेज कहा है''3।

इसी प्रकार लेखक ज्ञान प्रकाश विवेक के अनुसार – ''ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' में ऐसे विचलित कर देने वाले अनुभव है जो हमारे सभ्य और सुसंस्कृत समाज के छद्म और जड़ हो चुके संस्कारों से उत्पन्न हुए हैं। बेहद धार्मिक और उद्वेलित करती स्मृतियाँ हैं जिन्हें अतीत के पुराने जंग तक खाए संदूक से

लेखक ने जस का तस निकालने का प्रयास किया है। आत्मकथा में अशिक्षा का घटाटोप, अंधविश्वासों के कुहासे, कमतरी के अहसास की मानसिकता यंत्रणा है। दरिद्रता एक रोग की तरह पसरी है।''4

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह अपना संपूर्ण जीवन समाज के मध्य जीता है परंतु दलित, समाज का हिस्सा होकर भी समाज से अलग–थलक रखा जाता है। ओम प्रकाश वाल्मीकि ने दलितों की इस समस्या पर भी प्रकाश डाला है उन्होंने ने अपने सामाजिक परिवेश का वर्णन करते हुए लिखा है कि ''चारों तरफ गंदगी भरी होती थी। ऐसी दुर्गंध कि मिनिट भर में साँस घुट जाए। तंग गलियों में घूमते सूअर, लंग–धंड़ग बच्चे, कुत्ते, रोजमर्रा के झगड़े– बस, यह था वह वातावरण जिसमें बचपन बीता। इस माहौल में यदि वर्ण–व्यवस्था को आदर्श व्यवस्था कहते वाले वो दो चार दिन रहजा पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाएगी''5 इसी परिवेश में वाल्मीकि का जीवन बीता। रहजे के सवर्ण समाज दलितों को इसी वातावरण में रहने के लिए बाध्य करता था। दलितों को उनके नाथ से नहीं बल्कि जाति से जैसे चमार, भंगी, मेहतर, चूहड़ा जैसे शब्दों से पुकारा जाता था। जूठन में वर्णित कई ऐसे घटनाक्रम में जो समाज के कटु यथार्थ को दर्शाते हैं।

इसी प्रकार ओम प्रकाश वाल्मीकि अपने परिवार की आर्थिक एवं मानसिक स्थिति के बारे में लिखा है कि ''घर में सभी कोई न कोई काम करते थे फिर भी दो जून की रोटी ठीक ढ़ंग से नहीं चल पाती थी। तंगाओं के घर साफ–सफाई से लेकर खेती–बाड़ी, मेहनत–मजदूरी सभी काम होते थे। ऊपर से रात–बेरात बेगार करनी पड़ती थी। बेगार के बदले कोई पैसा या अनाज नहीं मिलता था।''6 दलितों को आर्थिक रूप से सदैव कमजोर रखकर जिससे उनकी पीड़ी दर पीड़ी सदैव ही सवर्णों के सेवक व मेला उठाने के लिए रखा जाता था। दलितों को न ही जमीन, जायजाद इकट्ठा करने का अधिकार नहीं था।

इतनी मेहनत मजदूरी करने के बाद भी दलितों को दी जाने वाली रोटी में भूसी मिला दी जाती थी। शादी ब्याह के मौकों पर बरातियों के बच्चे हुए खाने को पत्तलों सहित दलित को दे दिया जाता था। पूरी के बचे हुए टुकड़े, थोड़ी बहुत सब्जी, बची हुई मिठाई के टुकड़े दलितों को दे दिये जाते थे। वह जूठन भी दलित परिवारों में चटखारे लेकर खाई जाती थी। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं कि ''दिन–रात–मर–खपकर भी हमारे पसीने की कीमत मात्र जूठन, फिर भी किसी को कोई शिकायत नहीं। कोई शर्मिन्दगी नहीं, कोई पश्चाताप नहीं।''7 इन्हीं आर्थिक विषमताओं के कारण ही दलितों का जीवन और भी ज्यादा कष्टदायी और संघर्षोपूर्ण हो जाता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भारतीय समाज में दलितों की शिक्षा व्यवस्था पर भी तीखा कटाक्ष किया है। मनुष्य को प्रगतिशील बनाने में शिक्षा का बहुत बड़ा योगदान होता है, परन्तु दलित समाज के लिए शिक्षा पाना आसमान से तारे–तोड़ लेने जैसा था। भारत के स्वतंत्र होने के बाद भी दलित की शिक्षा की राह आसान न थी। जूठन आत्मकथा ने शिक्षातंत्र की पोल खोल दी है। वाल्मीकि ने शिक्षा से जूड़े सभी अनुभवों को अपनी आत्मकथा में चित्ररित किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं कि गुरू को भगवान रूप माना जाता है परन्तु जब दलित शिष्य हो तो गुरू शैतान का रूप धारण कर लेता है वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि ''अध्यापकों को आदर्श रूप जो मैंने देखा है वह अभी तक मेरी स्मृति से मिटा नहीं है। जब भी कोई आदर्श गुरू की बात करता है तो मुझे वे तमाम शिक्षक याद आ जाते हैं जो माँ–बहन को गालियाँ देते थे।''8 जूठन ओमप्रकाश वाल्मीकि कि असमानता, जातिभेद, वर्णव्यवस्था के खिलाफ एक आंदोलन एवं क्रांति है जो समाज को निंद से जगाने का कार्य करती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की जूठन समाज में फैले अंधविश्वास एवं कुप्रथाओं का भी जिक्र है। अंधविश्वास को मानना

शिक्षा की कमी होने का नतीजा है। दलितों में शिक्षा की कमी ने ही भूत–प्रेत, जानवरों की बलि, देवी–देवताओं को पूजन, बीमारियों के इलाज के लिए झाड़फूक आदि पर विश्वास करना व दलित परिवारों में पिछड़ापन का कारण बना। ओमप्रकाश वाल्मीकि 'जूठन' में लिखते हैं कि ''भूत–प्रेत की छायाओं के प्रति पूरी बस्ती में अजीब सा माहौल था। जरा भी किसी की तबीयत खराब होती तो डॉक्टर के बजाय किसी भगत को बुलाया जाता था। भगत के शरीर में देवी–देवता प्रकट हो जाने पर बीमार हो दिखाया जाता था। अक्सर किसी भूत के प्रभाव का जिक्र करके भगत भूत पकड़ने की क्रियाएँ करता था जिसके बदले में देवी–देवताओं पर सूअर, मुर्गे, बकरे और शराब चढ़ाई जाती थी।''9 ये अंधविश्वास, भूत–प्रेत, जानवरों की बलि आज इस इक्कीसवीं सदी में भी गांव–देहातों में प्रचलित है जहाँ लोग आरक्षित व अज्ञानी हैं वहाँ ये प्रथाएँ आज भी हैं। जूठन में ये सभी कर्मकांडों का जिक्र है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी आत्मकथा में चूहड़ा जाति में प्रचलित कुप्रथाओं को भी वर्णित किया, जिसमें सबसे प्रचलित प्रथा है ''सलाम'' प्रथा। इस प्रथा नवविवाहितों को घर–घर जाकर 'सलाम' करना होता था और पैर छूने पड़ते थे, जिसके बदले वे कपड़े व बर्तन दिया करते थे। इस प्रथा के कारण दूल्हा–दुल्हन में हीनभावना से ग्रसित होने लगते थे ओमप्रकाश वाल्मीकि 'जूठन' में लिखा है कि ''सदियों से चली आ रही इस प्रथा में जातीय अहम् की पराकाण्ठा है। समाज में जो खाई है, उसे यह प्रथा और गहरा बनाती है। एक साजिश है हीनता के भँवर में फंसा देने की। कितनी बार दूल्हों को ही नहीं दुल्हनों को भी बेइंतहा अपना सहना पड़ता है। गरीब परिवार की अनपढ़ लड़की अजनबियों के बीच जाकर वैसे ही गूँगी बनी रहती है, ऊपर से उसे दरवाजे–दरवाजे लेकर घूमने पर रही–सही कसर भी पूरी हो जाती है।''10

यह प्रथा या परंपरा है जो निचली जाति होने का बोध तो करती हे परन्तु इंसान को बेहद पीड़ा व मानसिक कष्ट देती है, इंसान को भीतर–ही–भीतर तोड़ने का कार्य करती है। यह प्रथा मनुवादी संस्कृति और समाज में फैले ब्राह्मणवादी प्रवृत्तियों का पर्दाफाश करती है। निष्कर्षतः ओमप्रकाश वाल्मीकि की जूठन समाज में फैले कृतिम सौन्दर्य और सदियों से पददलित समाज के संघर्षरत जीवन पर पाठकों को सोचने पर मजबूर करती है। ''जूठन दलित चेतना के निर्माण की प्रक्रिया को कुछ इस दंग से समझाती है कि दलित समस्याओं पर संवेदनशील पाठकों के लिए यह कम्यूनिष्ट मेनिफेस्टो और ''माँ'' के समान महत्वपूर्ण हो गयी।''11 'जूठन' नैसर्गिक मानवाधिकारों तथा सामाजिक सरोकरों की खुली वकालत है, यह आत्मकथा ओमप्रकाश वाल्मीकि की यातना–अपमान–उपेक्षा की कथा हे, जिसमें व्यक्ति ओमप्रकाश वाल्मीकि के माध्यम से पूरे दलित समाज की व्यथा को उजागर किया है।''12 इस प्रकार जूठन हजारों वर्षों के अंधेरे में बंद दलित समाज की पीड़ा, वेदना, शिक्षा एवं मौलिक अधिकारों से वंचित, दुत्कार, तिलस्कार और दलित के भीतर दबे तूफान एवं इच्छा, आकांक्षाओं का यथार्थ चित्रण करने वाली आत्मकथा है।

''संदर्भ ग्रंथ सूची ''

1. हिन्दी का आत्मकथा साहित्य डॉ. विश्वबंधु शास्त्री पृ.–8
2. जूठन (आत्मकथा) ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. भूमिका से
3. जूठन एक विमर्श, शिवबाबू मिश्र, भूमिका से

4. वही, पृ. सं. 88
5. जूठन (आत्मकथा) ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. 11
6. वही, पृ. 12
7. वही, पृ. 20
8. वही, पृ. 14
9. वही, पृ. 37
10. वही, पृ. 45
11. जनसत्ता, 24 नवंबर 2013 के समता के पैरोकार, गंगा सहाय मीणा पृ. 7
12. जनसत्ता 24 नवंबर 2013, दलित चित्त का चितेरा, कृष्णदत्त पालीवाल पृ. 74

poornima.katroliya@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 237-239
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी सिनेमा में किन्नर जीवन

–डॉ. रचना पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक (शिक्षा विभाग), स्वामी श्री स्वरुपानंद सरस्वती महाविद्यालय, हुडको, भिलाई (छ.ग.)
–प्रो. श्रवण पाण्डेय
प्रबंधन विभाग, भिलाई इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, दुर्ग (छ.ग.)

सामाजिक व्यवस्था के अनुसार तीसरी दुनिया का होना बेमतलब है। मनुश्य की अवधारण है कि लिंग दो प्रकार के है स्त्री और पुरुश जब कोई षिषु मां को कोख से बाहर आता है तो सबके मन में चिंता होती है कि वो पुरुश है या स्त्री। यदि हम ना स्त्री और ना पुरुश के रुप में हो तो हमारी मानसिक दषा कैसी होगी। यही किन्नर की सच्चाई है। जो सदियों से चली आ रही है। किन्नर को तृतीय लिंग के व्यक्ति या ह्रासेजेंडर के रुप में बताया गया है। यह मनुश्य वर्ग के सामने एक प्रष्न चिन्ह है जो समाज में संघर्श कर रहे है।

किन्नर षब्द आते ही हमें अटपटा सा लगता है इसका मुख्य कारण यही है कि समाज में उसका स्थान अभी तक निष्चित नहीं है जबकि वह भी हमारे समाज के अंष है जैसे हम सभी।

खुष रहने की दुआ के देने वालों की जिंदगी कैसी है इसके जानने के लिए हमारे पास समय नहीं है। षर्मिंदगी के कारण परिवार से निकाले गए लोगों को अपनी पहचान नहीं मिलना ही उनकी मुख्य समस्या है। हम हमारे आपके जैसे ऊपर वाले की बनाई इस रचना को ना तो पुरुशों का हक मिला और ना ही स्त्रियों जैसी सुविधाएं इन दिनों समाज का ध्यान इस तरफ आकृश्ट हुआ है लेकिन उनके लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है हिन्दी सिनेमा ने उन्हें पात्र के रुप में स्थान देना तो षुरु किया है लेकिन किन्नरों की संघर्श और पीड़ा की चर्चा नहीं की जाती है।

मानव जीवन में सिनेमा संगीत साहित्य कला का विषेश महत्व है क्योंकि इनसे हमारा मनोरंजन होता है और मानसिक जरुरतों की पूर्ति भी। सिनेमा भी वैचारिक संघर्श की अभिव्यक्ति का एक माध्यम है। सिनेमा जीवन का एक अंग है हम उसके किरदार को उसी रुप में देखते है जिस रुप में वह हमें दिखाता है। और हर पात्र को हम जीवन से जोडकर देखने लग जाते है। जो फिल्मों में दिखाया जाता है उसे ही हम सच स्वीकार कर लेते है।

सिनेमा वस्तुतः समाज पर ही आश्रित रहता है। परंतु समाज में आज भी अनेक ऐसे पहलू है जो सिनेमा में उभरकर सामने नहीं आ सके है।

इस नई विचारधारा को उजागर करके आज फिल्म जगत लोकप्रिय हो रहा है। नारियों के जीवन के सभी पहलूओं पर फिल्म निर्माताओं ने फिल्में बनाई। फिल्म जगत में सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों पर ही अधिकार चित्रण होता है। सामाजिक परिप्रेक्ष्यों के अलावा अलग विशय पर हिन्दी सिनेमा में बहुत कम ही चित्रण है। कुछ

ही फिल्में है जिनमें समाज के उपेक्षित वर्ग किन्नर व समलैंगिक के चित्रण मिलते है। 15 अप्रैल 2014 को सुप्रीम कोर्ट ने किन्नर वर्ग को थर्ड जेंडर के रुप में मान्यता दी है।

फिल्म समाज का आइना होता है। फिल्मों में समाज के हास–परिहास वाले कामेडी पात्र के रुप में उन्हें स्थान मिला है। सामाजिक ताने बाने का असर फिल्मों पर भी होता है। समाज इनकी हंसी उडाता है तो फिल्मों में भी यह वर्ग हास्यात्मक होता है।

सिनेमा के विशय परिवर्तित हो रहे है जिसका मुख्य कारण समाज की सोच में बदलाव है। आज की फिल्में नायक प्रधान के साथ किन्नरों पर केन्द्रित हो रही है।

सिनेमा के आरंभिक दौर में हम देखते है कि फिल्म कुंवारा बाप में किन्नरों के साथ मासूम बच्चे के जन्म पर बधाई मांगेते हुए एक गाना फिल्माया है। इसी प्रकार फिल्म अमर अकबर एंथोनी में अययो बली प्यार का दुष्मन हाय–हाय गाने पर त्रिशि कपूर को किन्नरों के साथ थिरकते हुए देखा गया है।

किन्नरों की बात आई तो उसे निम्न समझा गया। किन्तु समय की परिवर्तनषीलता के दौरान वर्तमान समय में किन्नर जीवन पर अनेक साहित्यिक रचनाएं लिखी जा रही है। हिन्दी के अलावा अन्य भाशाओं की फिल्मों में भी किन्नर के जीवन संघर्श का चित्रण हो रहा है। ईक्कसीवीं सदी में मीडिया इस समस्या पर ज्यादा ध्यान देने लगा है। पहले फिल्म जगत में इसे गलत रुप में चित्रित किया गया, इनकी हंसी उडाई जाती थी हमेषा उपहास का पात्र बनाया जाता था। हमेषा उनको छोटे किरदार की भूमिका दी जाती थी जैसे – बच्चे के जन्म की खुषी में नाचकर, षादी के उत्सव में नाचकर, ट्रेन में पैसे लेने का किरदार देकर आदि। इन्हीं सब कारणों से किन्नरों के प्रति हमारे मन में एक नकारात्मक भावना उत्पन्न होने लगी और हम उन्हें नापसंद करने लगे। विष्व फिल्म जगत में किन्नरों पर काफी फिल्में बनी। किन्तु भारतीय फिल्म जगत में इसे उतना महत्व नहीं दिया गया। समय के साथ–साथ फिल्म निर्माताओं के विचारों में परिवर्तन होने लगा और उन्होंने किन्नरों को एक सकारात्मक रुप देना षुरु किया। इनके जीवन को चित्रित करते हुए सामाजिक समस्याओं का भी चित्रण होने लगा। सामाजिक कुरीतियां दहेज प्रथा, बाल विवाह, जमीदारी प्रथा को भी फिल्मों के माध्यम से लोगों को बताया जाने लगा। 1991 में महेष भट्ट द्वारा निर्देषित फिल्म 'सड़क' दर्षकों के सामने आई। अभिनेता के रुप में 'सदाषिव अमरापरकार' ने खलनायक के रुप में किन्नर की भूमिका अदा की। 1996 में फिल्म 'दायरा' बनी। जिसमें निर्मल पाण्डेय ने किन्नर की भूमिका अदा की। 1997 में 'दरमियां' फिल्म में किन्नर के प्रति सहानुभूति दिखाया गया। 1997 में महेष भट्ट की फिल्म 'तमन्ना' में किन्नर के प्रति जो लोगों में धारणाएं थी उसको दिखाने का प्रयास किया गया। यह फिल्म मुंबई के एक हिजड़े समुदाय की वास्तविक कहानी पर आधारित है इसमें किन्नरों की समस्याओं का खुला चित्रण है। टिकू अनाथ लडकी तमन्ना को पालता है और कितना कठिन संघर्श होता है जब परिस्थियां उसे बार बार जताती है कि वो किन्नर है। इस पीडा को फिल्म के द्वारा मार्मिक रुप से दर्षाया गया है और समाज को यह संदेष देता है किन्नर भी इंसान होते है। उन्हें भी वही सम्मान देना चाहिए जो बाकी लोगों को मिलता है। 1999 में 'संघर्श' नामक फिल्म बनी जिसमें लज्जा षंकर नाम किन्नर की भूमिका आषुतोशराना ने अदा की। 2001 में स्टाइल, 2004 में मस्ती 2007 में पार्टनर जैसे फिल्मे बनी। 2005 में 'षबनम मौसी' फिल्म जो योगेष भारद्वाज द्वारा चित्रित है जिसमें किन्नर जीवन की यर्थाथता को दर्षाया गया है। षबनम मौसी मध्यप्रदेष के सुहागपुर विधानमंडल से जीतकर प्रथम किन्नर विधायक बनती है। किन्नर के प्रति लोगों की मानसिकता और राजनैतिक दषा

का खुला व्यंग्य है। 2008 में ष्याम बेनेगल की फिल्म 'वेलकम टु सज्जनपुर' किन्नर समस्या को उजागर करने वाली फिल्म है। इस फिल्म में किन्नरों की समस्याओं का सामने लाया गया। जिससे लोगों के मन में जो गलत धारणाएं है उन्हें दूर करने का प्रयास किया गया है। षबनम मौसी जब राजनीति के क्षेत्र में आती है तो उनसे एक ही प्रष्न पूछा जाता है कि 'तुझे किस जाति का सपोर्ट मिलेगा? कौन है तेरे साथ'। इसमें चुनावी समस्याओं के बीच के संघर्श को दर्षाया गया है। किन्नर के जीवन पर आधारित फिल्म 'खेजडी' निर्देषक अर्चना द्वारा बनाई गई। इसमें किन्नर जब पैदा होता है उसको बचाने के लिए उसके पिता को कितना संघर्श करना पड़ता है यह दिखाया गया है। इस फिल्म का जो किरदार है उसका नाम खेजड़ी रहता है। उसका पूरा जीवन एक कमरे में बीतता है उसके पिता को यह डर होता है कि यह बाहर निकलेगा तो किन्नर समाज वाले उसको अपने साथ ले जाएंगे। क्योंकि किन्नर सामान्य समाज में रहकर अपना जीवन नहीं बिता सकते । किन्नर 'प्राची सूर्यवंषी' महाराश्ट्र में रहने वाली है। जिस समाज में वो रहते है वहां उनके गुरु होते है जो उनकी समस्याओं के समाधान के बारे में ध्यान रखते है इनका कहना है कि समाज के लोगों का नजरियां उनके प्रति एकदम अलग होता है इसलिए उन्हें अपने परिवार को छोडकर किन्नरों के समाज में आकार रहना पड़ता है। समाज पहले से ही दुतकारते ही रहे है। किन्तु 2015 में भारत सरकार द्वारा उन्हें थर्ड जेंडर घोशित किया भारतीय संविधान के तहत इन्हें भारतीय नागरिकता मिली जैसे पैन कार्ड, आधार कार्ड, राषन कार्ड, सब बना इससे उन्हें समाज में एक स्थान मिला।

हिन्दी फिल्मों में किन्नर वर्गो पर फिल्में तो बनी है पर इनके संघर्श और पीडा का पूरा चित्रण नहीं दर्षाया गया। इनकी षिक्षा, व्यवसाय, सामाजिक स्थान पर आधारित फिल्मों का निर्माण अभी बाकी है।

रियल लाईफ से रील लाईफ तक पहुँचे किन्नर आज हिन्दी सिनेमा में किसी ना किसी प्रकार से किरदारों में अपनी उपस्थिती दर्ज करवाते ही है। हमें अपनी स्वस्थ सोच का परिचय देते हुए सोचना चाहिए कि किन्नर भी एक सामाजिक प्राणी है समाज की उपेक्षा उसकी मानसिकता गहरा प्रभाव डालती है इस पर सभी दृश्टि से मंथन एवं विमर्ष किया जाना चाहिए।

समकालिन हिन्दी सिनेमा ने इनकी वास्तविक स्थिति को लोक के समक्ष प्रस्तुत किया जिससे आम आदमी यह समझ सके कि किन्नर भी हमारी तरह आम इंसान होते है। उनके प्रति भेद करना अन्याय है। उक्त फिल्में अपनी संपूर्ण ताकत के साथ किन्नरों के उत्थान की वकालत करती है और उनके मन को समाज के सामने खोलकर समाज को मुख्यधारा से जोडने का प्रयास करती है।

भविश्य में हिन्दी सिनेमा से अपेक्षा रहेगी कि रुपहले पर्दे के माध्यम से उनका एक स्थान समाज में सुनिष्चित किया जाए।

संदर्भ सूची :–

डॉ. पुनीत बिसारिया, किन्नर विमर्ष : समाज के परिव्यक्त वर्ग की व्यथा कथा ।
संगीता गांधी : हिन्दी फिल्मों में किन्नर व समलैगिंक समाज की उपस्थिती का विष्लेशण ।
महेन्द्र भीश्म : किन्नर कथा ।
अर्चना षर्मा और आषीश षर्मा : किन्नर जीवन पर आधारित फिल्म 'खेजड़ी' स्टार कास्ट इंटरव्यूव ।
डॉ. मोनिका देवी : अस्तित्व की तलाष में सिमरन ।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 240-243
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मधु कांकरिया के कथा साहित्य में 'स्त्री विमर्श'

–**सुषमा**, शोधार्थी
–**डॉ0 रेणू चाँदला**, शोध निर्देशिका
हिन्दी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

शोध आलेख सार

आदिकाल में भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्री का स्थान औद दर्जा ऊँचा रहा है। वैदिक काल में स्त्री को पुरुषों से उच्च दर्जे का स्थान प्राप्त था। कला, संस्कृति और विद्या जैसे हर क्षेत्र में उसे पुरुष के समान अधिकार थे। परंतु उत्तरवैदिक काल में स्त्री की इस स्थिति में गिरावट होने लगी स्त्री शिक्षा की सुविधाएँ कम होती चली गयी। उसकी सार्वजनिक जीवन में भाग लेने की सुविधाएँ भी दिन प्रतिदिन घटती ही गयी। महिला कहानीकारों ने इन्हीं बदलाओं को अपनी कहानियों के जरिये परखने का प्रयास किया है। स्त्री सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता पाने के लिए संघर्ष करती है लेकिन कड़ा संघर्ष करने के बावजूद भी उसे सफलता नही मिलती। इतना ही नहीं अपने संघर्ष का फल पराजिता में पाकर कई स्त्रियाँ घुटने टेक देती है। जिंदगी से हारने वाली स्त्री कभी भी अपनी अस्मिता को प्राप्त नही कर सकती।

आज के आधुनिक समाज में स्त्री में उत्पन्न हुई जागृति तथा सशक्तिकरण से अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती तथा समाज और पुरुषों की यातनाएँ झेलती हुई, स्त्री के साथ–साथ पुरुष के समकक्ष अपनी बराबरी माँगती, अपने ऊपर हुए अन्याय का बदला लेती तथा पुरुष एकाधिकारों में अपनी दखल दर्ज कराती हुई स्त्री नजर आती हैं।

स्त्री विमर्श अवधारणा एवं स्वरूप

हिन्दी में स्त्री विमर्श पर बहुत कुछ लिखा और कहा जा चुका है। स्त्री विमर्श, स्त्री मुक्ति, नारीवाद ये सभी शब्द एक दूसरे से समानता रखते है। स्त्री विमर्श इस बदलते समाज में ही नही बल्कि साहित्य में भी सर्वत्र दिखाई पड़ता है।

स्त्री विमर्श, नारी समस्याएं, नारी मुक्ति, नारी सुरक्षा, उसका सामाजिक शोषण, नारी अस्मिता इन जैसी और कई चीजों को समेटने की कोशिश करता है। मृणाल पांडे के अनुसार –

"नारीवाद पुरुषों का नही उनकी मानवीयता घटाने वाले उस मुखौटे का प्रतिकार करता है जो मर्दानगी के नाम पर गढ़ा गया है, और जिसके पीछे झूठी अहमान्यता और उत्पीड़क प्रवृति के अलावा कुछ नही हैं।"1

अर्थात् आज स्त्री विमर्श एक तरह से अपने अधिकारों अपने हक के प्रति पैरवी करता है। देखा जाए तो स्त्री विमर्श की वजह से स्त्री की हालत में सुधार भी आया है।

मधु कांकरिया स्त्री विमर्श के बारे में कहती है– "स्त्री विमर्श का पहला और सीधा मतलब है कि अपने भीतर आत्मविश्वास पैदा करना, अपने भीतर के अंधविश्वास से मुक्ति पाना, अपने भीतर के कुसंस्कारों से मुक्ति पाना। स्त्री विमर्श का मतलब पुरुषों की नकल नहीं। न ही पुरुषों की स्वछंदता को अपनाना। मेरा दृढ़ विश्वास है कि पुरुष अस्मिता पुरुषों को कुचलकर स्त्री विमर्श आगे नही बढ़ सकता। मैं ये मानती ही नहीं हूँ। जिस प्रकार जैसे कई लोग कहते है कि हमे पुरुष की जरूरत ही क्या है? मैं ये नही मानती।

मैं ये मानती हूँ की पुरुषों को उनकी सामंतवादी मानसिकता से मुक्ति पानी होगी। मदवादी मानसिकता से मुक्ति पानी होगी।"2

अर्थात् उनके कहने का भाव यह है कि 'स्त्री विमर्श' का मूल स्वर प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह स्त्री की मुक्ति की कामना एवं अस्तित्व का स्वर है।

आज स्त्री विमर्श की जो अवधारणाएँ है, वे स्त्री को स्वतंत्र रूप से स्थापित करना चाहती है। स्त्री लेखिकाओं ने भी स्त्री विमर्श को अपने साहित्य में अपने–अपने ढ़ग से प्रस्तुत किया। मधु जी के भी कुछ कहानी तथा उपन्यास नारी विमर्श के दायरे में आते है। नारी की अस्मिता, स्वाभिमान, स्वतंत्रता की छटपटाहट, प्रतिशोध ा की भावना दिखाई देती है। 'बीतते हुए', 'दाखिला', 'कुल्ला', 'चूहे को चूआ ही रहने दो', 'आसमान कितनी दूर', लेडी बॉस, 'पोलिथिन में पृथ्वी' आदि नारी विमर्श के अन्तर्गत आने वाली कहानियाँ है।

'बीतते हुए' में बीते हुए समय में उचित निर्णय न लेने के कारण जिन्दगी में कुछ हासिल न हो पाने वाली युवती की व्यथा कथा का वर्णन हुआ है। 'दाखिला' कहानी एक पति विहीन नारी अपने बेटे को स्कूल में भर्ती कराने के लिए जो कष्ट झेलती है, उसकी विवशता का जिक्र करती है। कुल्ला एक ऐसी नारी की कहानी है जो अपने पति द्वारा किए गए बुरे व्यवहार को न सहकर इसका प्रतिशोध करती हुई कहती है–

"जैसे जिन्दगी का जवाब जिन्दगी है,
वैसे ही कुल्ले का जवाब कुल्ला है।"3

उपर्युक्त संदर्भ के आधार पर हम कह सकते कि इसमें अस्मिता पर लगे कलंग को न सहने वाली नारी का चित्रण है।

'चूहे को चूहा ही रहने दो' कहानी का मुख्य विषय स्त्री की सत्ता न मानने वाला पुरुष और उससे प्रतिशोध ा करती स्त्री का चित्रण हुआ है। 'आसमान कितनी दूर' में साधारण किशोरी का सामान्य सपना जो उम्र के पड़ाव तक पूण्र नही होता है। इस कहानी की नायिका मंदा की अवस्था कुछ इस प्रकार है– "आज नही, कई बार हुआ था ऐसा कि सुदूर शुरूआती यौवन का वह सपना पास आ जाकर सरक जाता था दूर।"4

'लेडीबॉस' में एक प्रतिभा संपन्न नारी की प्रतिभा का शोषण करके किस प्रकार उसे ठुकराया जाता है, इसका चित्रण है। इस प्रकार हम कह सकते है कि उनकी ये कहानियाँ नारी विमर्श के दायरे में खरी उतरी है।

मधु कांकरिया ने अपने औपन्यासिक लेखन में स्त्री जीवन के जिन पक्षों को रखा है, उनमें समाज तथा परिवार में नारी की विविध दशाओं का वर्णन हैं और दशाओं से उभरते स्त्री पात्र उनके उपन्यासों में नजर आते है। 'सलाम आखिरी' उपन्यास में वेश्याओं के जीवन के बारे में लिखा है। उपन्यास में जो पात्र हैं उनके वेश्या बनने के कई कारण सामने आते है, जो एक सामान्य स्त्री को किस प्रकार वेश्या बनने के लिए मजबूर करते है।

इस उपन्यास की पात्र मीना के शब्दों में "जिन्दगी का पहला ऐसा बड़ा दु:ख था जिसे मैंने मन से कबूल लिया था और उसके बाद मैं खुद अपनी मालकिन बन गई। अपने माँ–बाबा को ध्यान कर उने मन ही मन माफी माँगकर मैंने अपनी नई बनी चकले की मालकिन द्वारा दी गई नई साड़ी पहन ली और वेश्यावृति कबूल कर ली।"5

उपर्युक्त संदर्भ के आधार पर कहा जा सकता है कि कौन ऐसी थी जिनसे वेश्या जीवन चाहा होगा? सच तो यह है कि पुराने जमाने से लेकर आज तक नारी का शोषण भिन्न–भिन्न तरीकों से हो रहा है। 'सेज पर संस्कृत' में नारी संवेदना के अनेक रूपों को लेखिका ने दर्शाया है। इस उपन्यास के नारी पात्र–पूर्णिमा देवी, संघमित्रा तथा छुटकी को भी दीक्षा के मार्ग की ओर खींचती है। वह अपनी बेटियों की संवेदना पर विचार नही करती परन्तु अपनी इच्छा को बेटियों पर थोपने का प्रयत्न करती है। संघमिश्रा की संवेदना इनसे भिन्न थी। वह स्वतंत्र रूप से सोच–विचार करने वाली थी। माँ का दीक्षा संबंधित विचार उसे पसंद नही था। वह कहती है– "तुम्हे लगता है कि तुम अपने बूते हमारे लिए पति का जुगाड़ नही कर पाओगी तो इन्हें धर्मरूपी पति के हवाले कर दो। पर हमें न पति चाहिए न घर। हमें बस थोड़ा सा भरोसा दो जिससे हमारे पंखों को मजबूती मिल जाए।"6

माँ की दीक्षा लेने से ज्यादा अपनी बहन छुटकी की दीक्षा वह सह नही सकती थी क्योंकि बचपने को छीनने लायक कार्य उसे स्वीकार नही था। इस घोर अन्यास के खिलाफ लड़ती है लेकिन पराजित हो जाती है। दोनों को दीक्षा के लेने के बाद अकेली पड़ी संघमित्रा नारियों की सेवा में लग जाती है।

अनेक वर्षों बाद रोगशय्या में पड़ी बहन को देखकर वह पूरी तरह से टूट जाती है कि –

"सोलह वर्षो बाद मिलना हुआ भी तो कहाँ, ऐसे
बजबजाते नरक में .... ऐसी धुन खाए नीले खोखल में?
क्या यही असम्भव का सम्भव?"

अर्थात् जब अभयमुनि के द्वारा छुटकी का बलात्कार किया गया तो वह गर्भवती हो गई और उसे धर्म से निकाल दिया गया, उसकी ऐसी अवस्था में संघमित्रा उसकी सहायता करती है तथा कारण जानकर प्रतिशोध लेने को तैयार हो जाती है। वह अपने सात्विक भाव छोड़कर अभयमुनि की हत्या करती है तथा पूरे समाज के सामने इस कृत्य का खुलासा कराने के लिए अपने को पुलिस के हवाले कर देती है क्योंकि वह इसके माध्यम से सामाजिक सुधार लाना चाहती है।

निष्कर्ष :

मधु कांकरिया जी के नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने पर हम यह निष्कर्ष लगा सकते है कि उन्होंने नारी को घुटन, उपेक्षा, अवहेलना को सही वाणी प्रदान की है। हमारे समाज में सदियों से स्त्री का दमन होता रहा है। इस दमन और शोषण के खिलाफ जो स्त्री चेतना जागृत हुई, उसी ने स्त्री विमर्श को जन्म दिया। स्त्री की अपनी आत्मचेतना जागृत होते ही वह आत्मसम्मान, आत्मगौरव, समानता जैसे अपने हक पाने के लिए संघर्ष करती है। कई बार देखा जाता है कि स्त्री सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता पाने के लिए संघर्ष करते हुए भी उसे सफलता नही मिलती जिसके फलस्वरूप वे या तो जीवन से पलायन करना चाहती है या फिर

आत्महत्या कर लेती है। लेकिन असफलता की वजह से आत्महत्या करना कोई समाधान नही है बल्कि अपने आप को सशक्त एवं संघर्षशील बनाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. मृणाल पांडे, परिधि पर स्त्री, पृ0 9
2. मधु कांकरिया का साक्षात्कार, पृ0 9
3. कुल्ला और अंत में ईशु कहानी संग्रह, पृ0 100
4. 'आसमान कितनी दूर' (बीतते हुए कहानी संग्रह), पृ0 139
5. सलाम आखिरी, पृ0 36
6. सेज पर संस्कृत, पृ0 57
7. वही, पृ0 208

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 244-246
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य बेरोजगारी विमर्श

–रेशमा शकिल शेख
अध्यापिका, एम. सी इ. सोसाइटिजं ज्युनिअर कॉलेज ऑफ ऐज्युकेशन
डि.एल इ डी इगलिश मिडियम आझम कॅम्पस, पुणे

समकालीन हिंदी साहित्य अपने स्वरूप में अत्यंत व्यापक, गहन, गंभीर एवं चुनौतीपूर्ण है। भूमण्डलीकरण का 'वैश्विक ग्राम' में अन्तरण परत–दर–परत उसके स्वरूप को और अधिक वैविध्यपूर्ण बना रहा है। सूचना प्रौधोगिकी के इस दौर में जीवन का कोई भी भाग वैश्विक प्रभाव से अछूता नहीं रहा। इसलिए नवीन चिंतन के साथ–साथ वादो, विमर्शो और आन्दोलनों का एक प्रवाह निरन्तर गतिमान है। इस दौर ने नवीनता के साथ वैज्ञानिकता और सारग्रहयता से साहित्य और विचारों के क्षेत्रा को व्यापकता प्रदान की है। प्रस्तुत पुस्तक में डॉ. संजय चैहान नें समकालीन हिन्दी साहित्य की पड़ताल करतें हुए इसी बदले हुए रूप से रू–ब–रू का सफल प्रयास किया है। यह पुस्तक एक और जहां आलोचना के, विमर्शो के, वादों के, जीवन–दृष्टियों के सैद्धांतिक पक्ष को स्थापित करने में सक्षम है वही इन सिद्धांतों को साहित्य की विभिन्न विधाओं के निकष पर कस कर वस्तुनिष्ठ विश्लेषण का आधार भी प्रस्तुत करती है। एक तरफ कविता, कहानी, उपन्यास, और नाटक आदि का नवीन आलोचकीय पद्धति के आधार पर विवेचन–विश्लेषण हुआ है।

उच्च शिक्षा और रोजगारोन्मुखता के बीच बढ़ती खाई की वजह से हमारी शिक्षा व्यवस्था केवल 'ग्रेजुएट' पैदा कर पा रही है। उसमें इतनी ताकत नहीं है कि सबके लिए रोजगार सुनिश्चित कर सके। उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले युवा भी अपने भविष्य को लेकर असुरक्षित महसूस कर रहे हैं। दरअसल, बढ़ती जनसंख्या और तद्नुसार आवश्यक रोजगार सृजन नहीं हो पाने से देश में बेरोजगारी का ग्राफ दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है।

प्रस्तावना

बेरोजगारी की समस्या को माननीय प्रधानमंत्री जी ने रोजगार विषयक आंकड़ों की अनुपलब्धता की समस्या के रूप में चित्रित किया। स्वराज्य पत्रिका को एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा– यह रोजगार न होने से अधिक रोजगार के आंकड़े न होने की समस्या है। विपक्ष स्वाभाविक रूप से इसका लाभ उठाकर अपनी इच्छानुसार बेरोजगारी की समस्या को बढ़ा–चढ़ाकर प्रस्तुत कर हमें दोष दे रहा है। बेरोजगारी मिटाने में मोदी सरकार की विफलता 2019 के चुनावों में भाजपा की संभावनाओं पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकती है। आगरा में सन् 2013 में एक चुनावी सभा को संबोधित करते हुए मोदी जी ने देश की जनता से एक करोड़ नए रोजगार उत्पन्न करने का वादा किया था। जो आंकड़े उपलब्ध हैं वे मोदी जी के साथ नहीं हैं। इनसे सरकार की गहन विफलता और अक्षमता ही प्रमाणित होती है। इसलिए इन आंकड़ों को अपर्याप्त बताना प्रधानमंत्री जी की राजनीतिक मजबूरी है।

साधारण बोलचाल में बेरोजगारी का अर्थ होता है कि वे सभी व्यक्ति जो उत्पादक कार्यो में लगे हुये नहीं होते । भारत में बेरोजगारी एक गम्भीर समस्या है । ... बेरोजगारी के अनेक कारण हैं जैसे जनसंख्या वृद्धि, पूंजी की कमी, विकास की धीमी गति, अनुपयुक्त तकनीकों का प्रयोग, अनुपयुक्त शिक्षा प्रणाली आदि । यह कथन बिल्कुल सत्य है कि बेरोजगारी दर में वृद्धि से देश में गरीबी की दर में वृद्धि हुई है। देश के आर्थिक विकास को बाधित करने के लिए बेरोजगारी मुख्यतः जिम्मेदार है।

क्या करें आज का युवा?
उसकी कुछ समझ में नहीं आता
सडकों पर दर दर की ठोकरें खाकर
अकेले में रोता ओर चिल्लाता

परिभाषा

ध सहित = स+हित = सहभाव, अर्थात हित का साथ होना ही साहित्य है। साहित्य शब्द अंग्रेजी के स्पजमतंजनतम का पर्यायी है। जिसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द स्मजजमत से हुई है। भाषा के माध्यम से अपने अंतरंग की अनुभूति, अभिव्यक्ति करानेवाली ललित कला 'काव्य' अथवा 'साहित्य' कहलाती है।

ध साहित्य जिवन की आलोचना हैं। दृ प्रेमचंद

विषय विवेचन :

भारत में शिक्षा प्रणाली कौशल विकास की बजाय सैद्धांतिक पहलुओं पर केंद्रित है। कुशल श्रमशक्ति उत्पन्न करने के लिए प्रणाली को सुधारना होगा।

ध प्रच्छन्न बेरोजगारी

जब जरूरी संख्या से ज्यादा लोगों को एक जगह पर नौकरी दी जाती है तो इसे प्रच्छन्न बेरोजगारी कहा जाता है। इन लोगों को हटाने से उत्पादकता प्रभावित नहीं होती है।

ध मौसमी बेरोजगारी

जैसा कि शब्द से ही स्पष्ट है यह उस तरह की बेरोजगारी का प्रकार है जिसमें वर्ष के कुछ समय में ही काम मिलता है। मुख्य रूप से मौसमी बेरोजगारी से प्रभावित उद्योगों में कृषि उद्योग, रिसॉर्ट्स और बर्फ कारखानें आदि शामिल हैं।

ध खुली बेरोजगारी

खुली बेरोजगारी से तात्पर्य है कि जब एक बड़ी संख्या में मजदूर नौकरी पाने में असमर्थ होते हैं जो उन्हें नियमित आय प्रदान कर सके। यह समस्या तब होती है क्योंकि श्रम बल अर्थव्यवस्था की विकास दर की तुलना में बहुत अधिक दर से बढ़ जाती है।

ध तकनीकी बेरोजगारी

तकनीकी उपकरणों के इस्तेमाल से मानवी श्रम की आवश्यकता कम होने से भी बेरोजगारी बढ़ी है।

ध बेरोजगारी के परिणाम

गरीबी में वृद्धि
अपराध दर में वृद्धि

श्रम का शोषण

मानसिक स्वास्थ्य

बेरोजगारी उस समय विद्यमान कही जाती है, जब प्रचलित मजदूरी की दर पर काम करने के लिए इच्छुक लोग रोजगार नहीं पाते है। या इसे इस तरह से भी समझा जा सकता है कि एक शारीरिक एवं मानसिक रूप से सक्षम व्यक्ति जो काम करने का इच्छुक है लेकिन

उसे काम नहीं मिल पाता है।

भारत में बेरोजगारी की मार

युवाओं में निशा जैसा अंधकार

सरकारें नहीं दे पा रही रोजगार

कैसे होगा युवाओं का उद्धार

– रोहताश कटारिया

निष्कर्ष

देश में बेरोजगारी की समस्या लंबे समय से बनी हुई है। हालाँकि सरकार ने रोजगार सृजन के लिए कई कार्यक्रम शुरू किए हैं पर अभी तक वांछनीय प्रगति हासिल नहीं हो पाई है। नीति निर्माताओं और नागरिकों को अधिक नौकरियों के निर्माण के साथ ही रोजगार के लिए सही कौशल प्राप्त करने के लिए सामूहिक प्रयास करने चाहिए। हालांकि सरकार देश में बेरोजगारी की समस्या को नियंत्रित करने के लिए कई उपाय कर रही है पर इस समस्या को सही मायनों में रोकने के लिए अभी भी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची :

ीजजचरूध्ध्ूणपापचमकपंण्बवउ

ीजजचरूध्ध्ूणपापमकनबंजवतण्वतह

म्दहसपेी जव भ्पदकप कपबजपवदंतल

ीजजचरूध्ध्चपइण्हवअण्पद

ीजजचरूध्ध्ीपदकपरूदमू18ण्बवउ

ीजजचरूध्ध्ीपदकपणींदपण्बवउ

म्.उंपसण्पक.तमींउउंणेंपी / हउंपसण्बवउ

8208875679

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 247-251
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' के काव्य में कृषक–जीवन

–डॉ० सुधा बुंदेला
आत्मजा श्री मुंशीराम बुंदेला, हाउस न० 550, सेक्टर–23, हुडडा, भिवानी, हरियाणा।

शोध का सारांश :–

भारत एक कृषि प्रधान देश है। हमारे देश के अधिकतर किसानों के पास थोड़ी–सी कृषि भूमि है। इस कृषि के ऊपर ही इन किसानों के परिवारों की भरण–पोषण की प्रक्रिया आधारित है। इस कृषि–योग्य भूमि की सिंचाई भी मानसून पर आधारित है। यदि मानसून की वर्षा समय पर हो जाती है, तो किसान के परिवार का भरण–पोषण ठीक हो जाता है। यदि मानसून की वर्षा समय पर नहीं होती, तो परिवार के सामने भूखमरी की समस्या उठ खड़ी होती है। जब किसान की फसल पक कर तैयार होती है, तो ओलावृष्टि का डर उसे सताता रहता है। आवारा पशुओं की टोली भी उसकी फसल को खराब करती रहती है, जिसके कारण वह इन पशुओं को भगाने में जुटा रहता है। यदि सभी स्थितियाँ अनुकूल रहें और फसल अच्छी हो जाये, तो साहूकार आ ध्मकता है और उसकी फसल को औने–पौने भाव पर खरीदता है। वह किसान को सूद पर पैसा देता है, तथा किसान की सारी फसल को सूद की एवज में उठा ले जाता है। कुल मिलाकर किसान की दशा शोचनीय बनी रहती है। इतना सब होने पर भी वह किसी से शिकायत नहीं करता तथा देश की जनता की उदर–पूर्ति करता रहता है। वस्तुतः भारतीय किसान सीमित संसाधनों का प्रयोग करके तथा त्यागपूर्वक जीवन व्यतीत करके अपने कर्त्तव्य–निर्वहन में लगा रहता है।

बीज शब्दः–किसान, साहूकार, व्यवस्था, अटूट परिश्रम, सीमित संसाधन।

शोध का विषयः–

हिन्दी काव्य में किसानों को केन्द्र में रखकर अनेक कवियों ने अपनी काव्य–रचना की है। इनमें से अध्कितर किसान मध्यवर्ग के रूप में चित्रित हैं। इन कवियों को किसानों के जीवन की 'स्वानुभूति' नहीं हैं। अपितु वे समय की मांग को पूरा करने के लिए या अपनी बौद्धिक क्षमताओं का प्रदर्शन करने के लिए किसानों के जीवन का चित्रण करते हैं। दूसरी ओर डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' स्वयं किसान परिवार से सम्बंधित हैं। उन्होंने किसानों के दुःख–दर्द को न केवल नजदीक से देखा है, अपितु उस आर्थिक विपन्नता तथा मौसम की मार को स्वयं भी झेला है। अतः इनके काव्य में किसानों के वास्तविक दर्द का भावोन्मेष मिलता है।

डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' किसानों के वास्तविक स्वरूप का चित्रण करने में सिद्धहस्त हैं। इनके लिए किसान का अर्थ वह किसान है, जो खुद की जमीन पर या बटाई की भूमि पर स्वयं खेती–किसानी का कार्य करता है। जो किसान स्वयं के खेत में काम करता है, वास्तव में उसे ही किसान कहा गया है। खेती का कार्य करते समय

एक किसान को किन–किन परेशानियों का सामना करना है, उन सभी कठिनाईयों का यथार्थ चित्रण डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' के साहित्य में मिलता है।

'कवित्त मंजुषा' नामक काव्य संग्रह में वे कहते हैं कि किसानों के दर्द को मात्र किसान ही समझ सकता है। उनके दुःख–दर्द की अन्य कोई कल्पना भी नहीं कर सकता है। चाहे ज्येष्ठ का महिना हो या पूस की ठंडी रातें हो, वह इन सभी मौसमों की मार सहता है।

किसानों के हाल को तो, जानते किसान बस,
और नहीं जानते हैं, इनके हालात को।
पानी का अभाव जब, सुखा देता फसलों को,
संग में वो सूखता हैं, ताके बरसात को।
जेठ का महिना हो या, ठंडी रातें पूस की हों,
दोनों ही जलाते इसे, फूँकते हैं गात को।
'आनन्द' किसान की भी, सुन लो पुकार तुम,
बाद में तू सुन लेना, और किसी बात को।1

किसान धरती का सीना चीरकर फसलें पैदा करता है। वह खुद भूखा रहता है, किन्तु संसार का भरण–पोषण करता रहता है। किन्तु उसका जीवन हमेशा अभावों से ग्रस्त रहता है। इसी बात को कहते हुए डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' लिखते हैं:–

खुद चाहे भूखा रहे, दूसरों का पेट भरे,
दुनिया का पेट सदा, भरता किसान ही।
धरती का सीना चीर, फसल उगाता है ये,
धरा का सिंगार यूँ भी, करता किसान ही।
ओले जब गिरते हैं, पकी हुई फसलों पे,
बस इसी बात से तो, डरता किसान ही।
'आनन्द' किसान के न, सुधरे हालात कभी,
अभावों की मार से भी, मरता किसान ही।2

एक किसान जब खेत में अपना कार्य करता है अथवा खेत की रखवाली करता है, तो उसे न जाने कितनी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। उपन्यास सम्राट मुन्शी प्रेमचन्द ने 'पूस की रात' नामक कहानी में किसानों के वास्तविक जीवन के स्वरूप का जो चित्रण किया है। वैसा ही मार्मिक एवं दयनीय चित्रण डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' के द्वारा भी किया गया है। एक किसान सारी रात आवारा पशुओं के पीछे दौड़कर उन्हें खेत से भगाता है तथा अपने खेत की रखवाली करता है। उसकी पूरी रात पशुओं के पीछे–पीछे भागते हुए बीत जाती है। अतः उसकी नींद भी पूरी नहीं हो पाती है। अपने–आप को कड़ाके की ठंड से बचाने के लिए वह आग जलाता रहता है और इसी जलती हुई आग में अपने शरीर को तापता रहता है। परन्तु उसका शरीर सर्द रातों में इस प्रकार ठिठुरता रहता है कि शरीर तापने के फेर में स्वयं किसान का शरीर ही आग में झुलस जाता है। उपर्युक्त भावों को व्यक्त करते हुए एक कवित्त में डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' कहते हैं कि:–

पशुओं की डार पीछे, भागता है सारी रात,
रात यूँ ही बीत गई, भागने–भगाने में।
आँख फिर खुल गई, खेत में आहट सुनी,
नींद पूरी हुई नहीं, जागने–जगाने में।
आग उसे जला रही, आग वो जलाता रहा,
झुलसा बदन सारा, जलने–जलाने में।
'आनन्द' किसान की भी, वेदना तू लिख देना,
खोये मत रहो यूँ ही, लिखने–लिखाने में।3

किसान हमेशा आर्थिक तंगी से जूझते ही रहते हैं। किसान खेत में बीज के लिए साहूकार से कर्जा लेता रहता है, और सोचता है कि जब उसकी फसल पक कर तैयार हो जायेगी, तब वह सूद समेत साहूकार को कर्जा चुका देगा। परन्तु जब उसकी खड़ी फसल पर ओलावृष्टि होती है, तो उसका कलेजा मुँह को आ जाता है। फसल बर्बाद होने के कारण वह समय पर कर्जा भी नहीं लौटा पाता है और 'सूद का सूद' देने के लिए विवश हो जाता है और कर्ज की मजबूत जंजीर उसे सारी उम्र बांधे रखती है। इसी व्यथा को व्यक्त करते हुए डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' अपनी पुस्तक 'विचित्र वक्त' में कहते हैं कि:–

तू कृषक वेदना पढ़ न पाया, लिख न पाया उसकी पीर,
सारी उम्र जिसे बाँधे रखती, कर्जे की मजबूत जंजीर।
जेठ का दारूण आतप हो, चाहे पूस की ठंडी राते हों,
आराम नहीं है एक पल का भी, ऐसी है कृषक तकदीर।
हर्षित होता कृषक का मन, लहराती फसलों को देखकर,
पकी फसल में पड़ते ओले, दिया कलेजा उसका चीर।
अनाज बेचने हेतु कृषक जब, साहूकार के पास गया,
कर्ज काटकर पैसे मिलते, ऐसा है शोषण गम्भीर।
'आनन्द' एक वर्ष की खातिर, कृषक बनकर देख जरा,
कृषक वेदना जान ले पहले, खींचो तब उस तस्वीर।4

किसानों का जीवन समस्याओं से ग्रस्त रहता है। अगर वर्षा आवश्यकता से अधिक हो तब भी फसलें खराब हो जाती हैं और यदि आवश्यकता से कम हो, तो अकाल का सामना करना पड़ता है। कभी फसल में बिमारी का लग जाना, तो कभी स्प्रे के कारण मौत हो जाना, तो कभी कर्ज के कारण आत्महत्या करना आदि। 'कवित्त कुण्डल' में इन्हीं भावों का वर्णन करते हुए डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' ने कहा है:–

कड़ाके की ठंड बढ़ी, काँप रहा हाड़–माँस,
मरता किसान सदा, मौसम की मार से।
बढ़े हैं आवारा पशु, खेत तेरे चर गए,
फसल बचायें कैसे, पशुओं की डार से।
टूटी–फूटी झोंपड़ी से, झाँक रहा आसमान,

घर को बचाये कैसे, बारिस बौछार से।
लटके मिले हैं कई, किसानों के शव यहाँ,
डूब गई नाव देखो, जिंदगी के भार से।5

देश की आर्थिक स्थिति का नियन्ता तथा नियामक एकमात्र किसान ही है क्योंकि अन्य सभी प्रकार की आर्थिक गतिविधियों के लिए 'कच्चा माल' खेती–किसानी से ही प्राप्त होता है। डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' कहते हैं कि कोई देश तभी आगे बढ़ सकता है, जब उस देश के किसान आगे बढ़ें। वे कहते हैं कि किसान ही देश का असली भाग्य विधाता है–

किसानों के जीवन से, सदा सरोकार रखो,
जीवन चलाता है ये, देश का विधाता है।
लड़ता है पल–पल, मौसमों की मार से ये,
लड़ता है, भिड़ता है, अन्न उपजाता है।
देश तभी आगे बढ़े, बढ़ेगा किसान जब,
किसानों का साथ सदा, देश को बढ़ाता है।
दुनिया की गाड़ी सदा, चलती किसान से ही,
बन के चालक यही, दुनिया चलाता है।6

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' के काव्य में किसानों के दुःख–दर्द तथा व्यथा का वास्तविक चित्रण मिलता है। किसान का जीवन विपन्नता तथा गरीबी की मार झेलता रहता है। उसकी आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर होती है कि फसल उगाने के लिए 'बीज' भी साहूकार के प्रदान किये गये कर्जे पर खरीद पाता है। वर्तमान समय की बाजारवादी व्यवस्था 'किसानों की त्रासदी' कही जा सकती है। भारत का किसान अनेक प्रकार के शोषणों का शिकार है।

किसानों की इस दशा से विचलित होकर निराला ने 'बादल–राग' नामक कविता में बादल को सम्बोधित करते हुए कहा है कि हे क्रान्ति के उन्नायक बादल! ये किसान तुझे अधीर होकर बुला रहे हैं। किसानों की स्थिति का चित्रण करते हुए उन्होंने कहा है:–

जीर्ण–बाहु है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर।

डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' के काव्य में भी निराला के साहित्य के समान ही किसानी–जीवन का वास्तविक चित्रण मिलता है। वे किसानों के जीवन से सरोकार रखते हैं तथा उन्हें इस आर्थिक विपन्नता की स्थिति से बाहर निकालने की बात करते हैं। किसानों के जीवन में संघर्षों का अन्त नहीं है। वह साहूकार का शोषण सहता है, अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि की मार झेलता है, प्रतिकूल मौसम को अपने नंगे बदन पर सहन करता है। इतना कुछ होने पर भी उनकी जिजीविषा समाप्त नहीं होती तथा वह जीवन की समस्याओं के आगे नतमस्तक नहीं होता, परन्तु फिर भी कुछ किसान जीवन की इन परिस्थितियों के आगे झुक जाते हैं तथा 'आत्म–हत्या' जैसा कृत्य भी कर बैठते हैं।

हिन्दी साहित्य का अधिकतर कालखण्ड व्यक्तिवादी रहा है। व्यक्तिवाद की इस विचारधारा ने किसानों

को हाशिये पर ही रखा। अधिकतर लेखकों के लिए 'किसान' कोई विषय ही नहीं है अपितु वे अपनी कपोल कल्पनाओं के कल्पनादर्श में डूबे रहते हैं और इसी में अपने साहित्य का उत्कर्ष ढूँढते हैं, परन्तु डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द' का साहित्य व्यक्तिवादी चेतना से सम्बंधित न होकर जनवादी चेतना के मूक स्वरों को भी मुखर होकर वाणी प्रदान करता है, जिसके कारण इनका साहित्य जीवन तथा जगत का सच्चा प्रतिबिम्ब बन जाता है। अभाव की चक्की में पिसती मानवता, शोषण की परिपाटियाँ सहते मजदूर, वंचित तथा शोषित वर्ग का जीवन संघर्ष, किसानों के जीवन का यथार्थ चित्रण आदि इनके काव्यों में मुख्य रूप से वर्णित हैं।

संदर्भ ग्रन्थ–सूची :–

1. कवित्त मंजूषा, डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द', समदर्शी प्रकाशन, मेरठ, उत्तर प्रदेश, 2020, पृ०–82
2. वही, पृ०–82
3. वही, पृ०–83
4. विचित्र वक्त, डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द', समदर्शी प्रकाशन, मेरठ, उत्तर प्रदेश, 2019, पृ०–73
5. कवित्त कुण्डल, डॉ० मानसिंह दहिया 'आनन्द', समदर्शी प्रकाशन, मेरठ, उत्तर प्रदेश, 2019, पृ०–27
6. वही, पृ०–83

मो० न०–9812277044

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 252-257
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिंदी बाल साहित्य का विकास और विभिन्न संस्थाओं का योगदान

–सिरसिल्ला चंदना

"हर एक बालक यह संदेश लेकर संसार में आता है
कि ईश्वर अभी मनुष्यों से निराश नहीं हुआ है।" – रवीन्द्रनाथ टैगोर

दुनिया भर में मशहूर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर का मानना है कि बच्चे मन के सच्चे होते हैं और किशोर उस सच्चाई को मज़बूती से पकड़ने लगते हैद्य इसी तरह होता है उनके व्यक्तित्व का निर्माणद्य उनकी कहानियों के माध्यम से जब बच्चों और किशोरों के मन की बातें बताते हैं, तो हर कोई एक हुलक, एक उमंग से भर जाता हैद्य विश्व विख्यात कहानी काबुलीवाला से लेकर छुट्टी और पोस्टमॉस्टर जैसी कहानियाँ बच्चों के लिए नायाब तोफ़ा है।

आज हिंदी साहित्य के पास समृध्द बाल साहित्य उपलब्ध है। पर इस विषय में चर्चा करने से पहले हमें बालक और उसकी प्रवृति को भी जानना जरुरी है। आखिर बालक क्या है?– बालक कोमल भावनाओं से उक्त होता है जो धर्म, देश, जाति की सीमाओं से परे है। साथ ही बालकों के विचार, बुध्दि, चिंतन धारा,भावना आदि वयस्कों से मेल नहीं खाती है। यही कारण है कि साहित्य जगत् में बालकों के लिए लिखा गया साहित्य दृ बाल साहित्य के रूप में एक संपूर्ण मौलिक आस्तित्त्व को लेकर चलता है। बाल साहित्य में बच्चों की भावनाओं रुचियों कल्पनाशीलता आदि को दृष्टिगत रखना होता है। ऐसे साहित्य का स्वस्थ व सुरुचिपूर्ण होना नितांत आवश्यक है, क्योंकि इसका एक निश्चित उद्देश्य होता है। मात्र मनोरंजन ही नहीं वरन् उससे बच्चों का समुचित ज्ञानार्जन हो तथा उनमें संवेदनशीलता के भावों का जन्म होऽ कहने का आशय यह है कि एक अच्छे मानव एक अच्छे नागरिक बनने के लिए जिन गुणों की आवश्यकता होती है वे गुण बाल मनोभूमि में अंकुरित किए जाएँ।

बाल मन स्वच्छ, पवित्र, निश्छल और दोषमुक्त होता है प्उसमें न छल दृप्रपंच होता है, न कुरीतियाँ होती हैं और न पापजनित अवगुण होते हैंऽ अतः ऐसा साहित्य ही बाल साहित्य हो सकता है जो सरल, सुबोध, मनोरंजक हो, बालक की जिज्ञासा को शांत करे और जिसे पढ़कर बच्चे खुलें और खिलेंऽ

बाल साहित्य का इतिहास

बाल साहित्य आधुनिक युग की देन है। वस्तुतः बाल साहित्य आधुनिक युग की ही संकल्पना है। विश्व के अन्य देशों में भी बाल साहित्य का विकास आधुनिक युग में ही हुआ किन्तु यह आधुनिकता कालगत नहीं अपितु दृष्टिकोणगत भाव है। हिंदी के प्रसिध्द बाल साहित्कार प्रकाश मनु की पुस्तक "हिंदी बाल साहित्य का इतिहास" में बाल साहित्य की विकास यात्रा को तीन चरणों में बाँटा है–

1. प्रारंभिक युग (1901 से 1947 तक)
2. गौरव युग (1947 से 1980 तक)
3. विकास युग (1981 से अब तक)

प्रारंभिक युग को चाहें तो हिंदी बाल साहित्य का 'आदि युग' कह सकते हैं। यह 1901 से 1947 तक है यानी स्वतंत्रता–पूर्व काल। यह वह समय था जब गुलामी के बंधनों को काटने के लिए बालकों के व्योक्तित्त्व निर्माण
हेतु बालोपयोगी रचनाएँ लिखी गई। इस युग के साहित्य के विशाल बगीचे के लिए उर्वर धरती का निर्माण संस्कृ त के पंचतंत्र और हितोपदेश जैसे ग्रंथों ने किया। इस प्रकार संस्कृत से बाल साहित्य रचना की जो परंपरा चली आ रही थी, वह आगे चलकर हिंदी साहित्य में गृहीत हुई– डॉ हरिकृष्ण देवसरे। पंचतंत्र और हितोपदेश की कहानी में पशु–पक्षियों का मानवीकरण किया गया है। पंचतंत्र के लेखक प. विष्णु शर्मा ने कथा के माध्यम से शिक्षा देकर मूर्ख राजकुमारों को राजनीति का पंडित बना दिया। शिक्षा के क्षेत्र में इस क्रांति का सूत्रपात लगभग दो हज़ार वर्ष पहले भारतवर्ष में हुआ था। रामायण, महाभारत आदि में भी अनेक लोक कथाएँ तथा उपदेशात्मक कथाएँ हैं, जिसे बाल साहित्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। सिंहासन–बत्तीसी और बेताल पच्चीसी को भी मनोरंजन बाल साहित्य माना गया है।

डॉ. हरिकृष्ण देवसरे ने हिंदी बाल साहित्य का आगमन काल 'भारतेंदु युग' को माना है। सन् 1874 में एक ऐतिहासिक घटना के रूप में 'बालबोधिनी पत्रिका' का प्राकशन हुआ जो बाल वर्ग के लिए पृथक साहित्य था। इंशा अल्ला खां, सदासुखलाल, लल्लू लाल, सदल मिश्र जैसे लेखकों ने बाल साहित्य में नैतिक शिक्षा का पुट डाला परन्तु उनमें बाल साहित्य के मुख्य व मूलभूत तथ्यों का अभाव था। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने बाल साहित्य में मनोरंजन का पुट डालते हुए कई पुस्तकों की रचना की, 'राजा भोज का सपना' इन्ही में से प्रमुख है।

'नंदन' बाल पत्रिका के पूर्व संपादक जयशंकर भारती, जटमल जिन्होंने 'गोरा बादल' की कथा लिखी, उसको बाल साहित्य की आदि पुस्तक माना है। 1874 में प्रकाशित भारतेंदु हरिश्चंद्र की 'बाला बोधिनी' पत्रिका यद्यापि अधिक समय तक नहीं चली तथापि उसने हिंदी में बाल साहित्य रचना को जन्म दिया। भारतेंदु हरिशचंद्र द्वारा 1882 में प्रकाशित 'बाल दर्पण' को भी कई साहित्यकारों ने पहली बाल पत्रिका का स्थान दिया है। अतरू भारतेंदु युग में इस तरह के साहित्य की सृजना हुई जिसमें बाल मानोमस्तिष्क में देश प्रेम की भावना का विकास हुआ। भारतेन्दु जी ने सत्य हरिश्चंद्र नाटक की रचना की और बालकों में सत्यनिष्ठा की नैतिकता को जगाने का प्रयत्न किया। इसी युग में रची गई 'अंधेर नगरी' व्यग्य आज भी एवम् अतीत में प्रासंगिक है। बद्री नारायण मिश्र, पं. बालकृष्ण भट्ट, काशीनाथ खत्री आदि की रचनाएँ उल्लेखनीय है।

द्विवेदी युग में बाल साहित्य तीव्रगामी रही। इस दौर में 'बाल सखा' मासिक का प्रकाशन हुआ और बाल साहित्य में विशेष भूमिका निभाई। पं. बद्रीनाथ भट्ट इसके पहले संपादक थे। इस युग ने बाल साहित्य के कई नए प्रवृत्तियों को जन्म दिया– मनोरंजन, ज्ञानवर्धन, भारतीय संस्कृति के अनुरूप, धार्मिक–पौराणिक कथाओं द्वारा बालकों का चरित्र निर्माण, साथ ही बाल लेखन के भंडार की वृद्धि करना।

बालमुकुन्द गुप्ता, अयोध्यासिंह 'हरिऔध', मैथलीशरण गुप्त, रामजीलाल शर्मा, मन्नन द्विवेदी, गजपुरी

सुखदेव चौबे, रामचंद्र रघुनाथ, रामनरेश त्रिपाठी, सुदर्शन कुमार वर्मा, कामताप्रसाद गुरु, शंभुदयाल सक्सेना आदि इस युग के प्रमुख बाल साहित्यकार रहें। कहानियों के क्षेत्र में उपदेश प्रधान कहानियों का स्थान बाल मनोविज्ञान विषय ने ले लिया था। सुभद्राकुमारी चौहान और प्रेमचंद जैसे महान साहित्यकारों ने बाल मनोविज्ञान एवम् बालक की मानसिकता को आधार मानकर कहानियाँ लिखीं। प्रेमचंद की अनोखी पुस्तक 'जंगल की कहानियाँ', ईदगाह जैसी कहानियाँ एक तरफ है तो वाही दूसरी तरफ 'कुत्ते की कहानी' नाम से बड़ा ही सुंदर और कौतुकपूर्ण बाल उपन्यास लिखकर हिंदी में मौलिक उपन्यास की नींव डाली।

निराला जैसे दिग्गज साहित्यकार ने बालकों के लिए ध्रुव, प्रह्लाद, भीष्म और महाराणा प्रताप जैसे प्रेरक व्योक्तित्वों की जीवनियाँ लिखीं। यही नहीं निराला ने छोटें बच्चों के लिए 'सीख भरी कहानियाँ' भी लिखीं। इस दौर में रामकुमार वर्मा समेत कई बड़े लेखकों ने बच्चों की ही भाषा और अंदाज़ में कई चुलबुले और समस्यापूर्ण नाटक लिखे।'शिशु', बाल सखा, वानर जैसी पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

सन् 1947 से 1980 तक का समय हिंदी बाल साहित्य का 'गौरव युग' है। इस युग को स्वातंत्र्योत्तर युग भी माना जाता है। सही मायने में यह बाल साहित्य का सृजनात्मक युग कह सकते है। इस युग में सर्वोतम प्रतिभाएँ बाल साहित्य के क्षेत्र में सक्रीय थी और ऐसी अनेक बहुचर्चित और अद्वितीय बाल कविताएँ, कहानियाँ, नाटक और उपन्यास लिखे गए। दामोदर अग्रवाल, शेरजंग गर्ग, सर्वेश्वर, श्रीप्रसाद, कन्हैयालाल मत्त, योगेन्द्रकुमार लल्ला, और बालस्वरूप राही आदि कवियों ने बाल कविता के झंडे आसमान में फहराये।

वही दूसरी और अमृतलाल नागर, मनोहर श्याम जोशी, लक्ष्मीनारायण लाल, कृश्नचंदर शैलेश, मटियानी भूपनारायण दीक्षित, मोहन राकेश, मन्नू भंडारी, विष्णु प्रभाकर, जाकिर हुसैन आदि लेखकों ने बाल कहानी के क्षेत्र में अपना योगदान दिया। इसके साथ–साथ बाल नाटकों के क्षेत्र में आनंदप्रकाश जैन, केशवचंद वर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, मस्तराम कपूर, श्रीकृष्ण, मनोहर वर्मा, केशव दुबे, कुदसिया जैदी, मंगल सक्सेना, रेखा जैन आदि के खासा काम किया।

1981 से अब तक का समय हिंदी बाल साहित्य का 'विकास युग' है इसलिए इस समय में हिंदी में सर्वाधिक बाल कविता, कहानियाँ, नाटक, उपन्यास, जीवनियाँ तथा ज्ञान–विज्ञान से जुड़ी दिलचस्प पुस्तके और छोटी बड़ी रचनाएँ लिखी गईं। डॉ. सुरेंद्र विक्रम के शब्दों में दृ

"आज के बाल साहित्य को सजाने संवारने में जहाँ पुरानी पीढ़ी के बाल साहित्यकारों का विशेष स्थान हैं, वही नई पीढ़ी के बाल साहित्यकारों ने नई प्रतीकों एवं विषयों तथा मौलिक उद्भावनाओं से बाल साहित्य की नई ज़मीन खोजी है।"

समकालीन बाल साहित्यकारों ने अपने लेखन के माध्यम से बाल साहित्य के जिन ऊँचाइयों तक पहुँचाया है, वह अद्भुत है। इस कालावधि के पुराने बाल साहित्यकारों में निरंकार देव सेवक, रामेश्वरदयाल पुणे, दारिका प्रसाद महेश्वरी, शकुंतला सिरोठिया, रामस्वरूप दुबे, चंद्रपाल सिंह, यादव मायक, प्रेमनारायण गौड़, डॉ. श्री प्रसाद, डॉ. राष्ट्रबंधु मनोहर वर्मा, शंकर सुल्तानपुरी, बाबूलाल शर्मा 'प्रेम', गोपालदास नागर, विनोद रस्तोगी, शकुंतला वर्मा, विनोदचंद्र पांडेय 'विनोद', जयप्रकाश भारती, हरिकृष्ण देवसरे, रामवचन सिंह, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, प्रयाग शुक्ल, चक्रधर नलिन, पशुराम शुक्ल आदि प्रमुख है, जिन्होंने पुरानी परंपरा से निकलकर बाल साहित्य को नए आयाम दिए।

वस्तुतः समकालीन बाल साहित्य मुख्यतः दो रूपों में हमारे सामने आ रहे हैं। पहला प्राचीन कथाओं, परिकथाओं, लोककथाओं तथा ऐतिहासिक कथाओं के रूप में व कविता के क्षेत्र में पारंपरिक विषयों को लेकर, दूसरा– बच्चों के आस–पास के परिवेश, समस्याओं, मनोभावों एवं सोच को लेकर लिखी जानेवाली कविताओं तथा कहानियों के रूप में। यही स्थिती बाल साहित्य की अन्य विधाओं दृ नाटक, उपन्यास तथा बाल एकांकियों में भी दिखाई देती है।

विधागत की दृष्टि से स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व से लेकर आज तक काव्य बाल साहित्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा रही है जिसे बाल कविता या बालगीत के नाम से संबोधित किया जाता है। प्रकाश मनु के अनुसार सन् 1917 में प्रकाशित, श्रीधर पाठक के बालकाव्य संकलन 'मनोविनोद' से बालकविता के युग का प्रारंभ माना है। इस युग के रचनाकारों में बालमुंकुद गुप्त 'खिलौना', कामता प्रसाद गुरू 'पद्यापुष्पावाली', सुदर्शनाचर्य 'चुन्नु–मुन्नु', 'बचपन एक समन्दर'(प्रतिनिधि 666कविताएँ) नामक बालपयोगी काव्य संकलन की रचना की।

सुभाद्रकुमारी चौहान की बाल कविताओं में जहाँ राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति है वही बालमनोविज्ञान पर भी उनकी गहरी पकड़ है 'यह कदंब का पेड़', बचपन, झांसी की रानी विशेष चर्चित रही है।

मैं बचपन को बुला रही थी, बोल उठी बिटिया मेरी,
नंदन–वन सी फूल उठी वह छोटी सी कुटिया मेरी ।
'माँ ओ कहकर बुला रही थी, मिट्टी खाकर आई थी,
कुछ मुँह में, कुछ लिए हाथ में कुछ खिलाने लाई थी।
मैंने पूछा दृयह क्या लाई? बोल उठी वह दृ'माँ काओ'।
फूल–फूल में उठी खुशी से, मैंने कहा– तुम्हीं खाओ।

इस समय की कई बाल साहित्य की कवयित्रियों जैसे सकुंतला सिरोठिया, मंजुला वीरदेव , कमला चौधरी, तारा पांडेय, सुमित्राकुमारी सिन्हा, विद्यावती कोकिला, ज्ञानवती सक्सेना , महाश्वेता देवी, मनोरमा जफा आदि का योगदान रहा ।

हिंदी बाल कहानी ने भी एक लम्बी यात्रा तय की है। इसका वर्त्तमान स्वरूप मिश्रित उद्देशों वाली बाल कहानियों से है। इस विधा से लेखकों में सरोजनी कुलश्रेष्ठ, चक्रधर 'नलिन' अश्वघोष, शकुंतला कालरा , उषा यादव, विनय कुमार मालवीय, शेषपाल सिंह, चित्रा गर्ग, भगवती प्रसाद द्विवेदी, साबिर हुसैन , कृष्ण शर्मा, मधु मालती जैन, ओमप्रकाश कश्यप, अमृता शुक्ला, शमशेर अहमद खान, मनोहर वर्मा, सुधीर सक्सेना आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

बाल साहित्य की अन्य विधाओं की भांति ही बाल उपन्यास का जन्म भी बीसवीं शताब्दी के आरंभ में ही हुआ । मौलिक बाल उपन्यास लेखकों में डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, हिमांशु श्रीवास्तव, सत्यप्रकाश अग्रवाल, विश्व मित्र शर्मा, मनहर चौहान, उमाशंकर आदि चर्चित रहे है। खरगोश का सपना, डाकू का बेटा, एक डर पांच निडर, सुनहरा हिरन, जादू की टहनी, सम्राट अशोक, जय जवानी, बदला आदि चर्चित उपन्यास है। बाल नाटकों में 'चाचा जी का अतिथि सत्कार', 'एक संसद यह भी', 'भुलक्कड़', 'लाख रोगों की एक दावा', तीन मूर्ख, स्वर्ग की अदालत, अक्षर ज्ञान आदि महत्वपूर्ण नाटक रहे हैं। इनके साथ ही कई अन्य विधाएँ जैसे बाल एकांकी, बाल लघुकथा, बाल जीवनी और बाल पत्र–पत्रिकाओं से भी कई प्रचलित पुस्तके प्राकशित हुए हैं।

बाल साहित्य में संस्थाओं का योगदान रू– भारत को कल्याणकारी राज्य बनाने के उद्देश्य से सरकार की ओर से शैक्षिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में उन्नति के लिए प्रयास किए गए। बाल – साहित्य के संवर्ध्दन के लिए सरकार ने अनेक योजनाएँ शुरू की । बाल – साहित्य पर हर वर्ष पुरस्कार दिए जाने लगे । शिक्षा के क्षेत्र में स्कूलों और पुस्तकालयों का विस्तार हुआ और उनके लिए सरकार ने बाल – साहित्य की पुस्तकों को ख़रीदने की योजनाएँ भी बनाई।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और परीक्षण परिषद रू – यद्यपि इस परिषद का मुख्य कार्य शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान आदि करना है किंतु बाल – साहित्य के स्तर को सुधारने के लिए तथा बच्चों की आवश्यकताओं के अनुरूप साहित्य के लेखन तथा प्रकाशन को प्रोत्साहित करने के लिए परिषद के पाठ्यचर्या विभाग ने साहित्य के मूल्यांकन के कार्यक्रम भी तैयार की है ।

प्रकाशन विभाग (सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय) रू– भारत सरकार की प्रकाशन शाखा ने बाल – साहित्य के प्रकाशन का काम भी अपने हाथ में लिया। प्रकाशन विभाग से ' बाल भारती ' नामक बाल पत्रिका 1947 से ही निकल रही थी जो काफ़ी लोकप्रिय हो चुकी थी। बच्चों के लिए लगभग पचास पुस्तकें प्रकाशित हुई जिनमें बच्चों के लिए लोक कथाएँ, नीति कथाएँ , पहेलियाँ, पशु – पक्षियों की कहानियाँ आदि विविध सामग्री प्रस्तुत की गई थी।

इसके अतिरिक्त कुछ संस्थाओं को आर्थिक सहायता देकर भी बाल – साहित्य के निर्माण में परोक्ष योगदान दिया है । इन संस्थाओं में चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट और शिक्षा भारती उल्लेखनीय है ।

चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट नई दिल्ली रू – बाल – साहित्य के संरक्षण और पोषण के लिए साहित्य अकादमी जैसी एक संस्था की आवश्यकता थी । अंतराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त व्यंग्य चित्रकार श्री शंकर पिल्लै ने सरकार से तथा कुछ अन्य सूत्रों से लगभग 55 लाख रूप का ऋण लेकर इस संस्था को खड़ा किया। इस ट्रस्ट का मुख्य उद्देश है बच्चों के लिए बेहतर ढंग से लिखी बेहतर चित्रों व सुंदर डिज़ाइन वाली किताबों का प्रकाशन करना । अब तक सी. बी. टी. ने लगभग 1000 से भी अधिक पुस्तकें छाप चुका है। भिखारी राजा जन्मदिन के उपहार, मित्र की परख, गौरेया और अन्य कहानियाँ , कुछ भारतीय, पक्षी रोज़ा फिर उड़ चली तितली कीचू केंचुआ, चोटी गठबंधन, लम्बी नाक, भोलाराम का जीव, लोक चित्रकला, नटखट कृष्णा, दूध का गिलास, अपना दाना, हाथी को पों आदि पुस्तकें बहुचर्चित है।

शिक्षा भारती, दिल्ली रू – राज्यपाल एडं सास की इस सहायक संस्था ने शिक्षा मंत्रालय की सहायता से छोटे बालकों के लिए ज्ञान–विज्ञान की बहुत सुंदर पुस्तकें प्रकाशित की है। 'क्यों और कैसे' पुस्तक माला की थे 17 सचित्र पुस्तकें अंग्रेज़ी की पुस्तकों के आधार पर तैयार की गई है। उस संस्था ने और भी बहुत सा साहित्य प्रकाशित किया है जो पुस्तक – सज्जा और चित्रों आदि की सृष्टि से सी. बी. टी. के साहित्य की तरह उत्तम कोटि का है।

घल ही में यहाँ से 10 खंडों में एक सचित्र विज्ञान कोश भी छुपा है।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास और बालदृसाहित्य रू– बच्चों के लिए राष्ट्रीय पुस्तक न्यास में 'राष्ट्रीय बाल साहित्य केंद्र' के नाम से एक विशेष अनुभाग कार्यरत है। यह अनुभाग विभिन्न भारतीय भाषाओं में बाल – साहित्य के समन्वय, आयोजन और सहायता का कार्य करता है। बाल साहित्य के पुस्तकालय– सह–प्रलेखन केंद्र को स्थापित करने

के अतिरिक्त या अनुभाग कार्यशालाओं, संगोष्ठियों और प्रदर्शिनियों का आयोजन करने और स्कूल स्तर पर पठन–वृत्ति को बढ़ावा देने के लिए पाठक–मंचों को स्थापना को प्रोत्साहित करने में सक्रिय है । यह अनुभाग बाल–साहित्य सम्बन्धी सर्वेक्षण एवं अनुसंधान कार्य करता है।

नेहरू बाल पुस्तकालय रू– इस पुस्तकमाला का उद्देश्य रोचक एवं सूचनाप्रद साहित्य के एक समृद्ध भण्डार का विकास करना है जिसे बच्चे स्वेच्छा से पढ़ सकें। देशभर के बच्चों को उनकी मातृभाषा में विभिन्न विषयों पर समान पठन–सामग्री उपलब्ध कराके यह पुस्तकमाला राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देती है। इस पुस्तकमाला की पुस्तकें चार आयु – वर्गों अर्थात स्कूल जाने की उम्र से छोटे बच्चों 6 से 8 वर्ष, 9 से 11 वर्ष और 12 से 14 वर्ष के बच्चों की ज़रूरतों पूरी करती हैं। इन पुस्तकों की साज–सज्जा के लिए चित्र आदि बनाने का कार्य विशेष रूप से करवाया जाता है और सभी पुस्तकों में रंगीन तथा/ अथवा श्वेत श्याम चित्र, रेखा चित्र एवम् छाया चित्र होते हैं।

स्कूल जाने की उम्र से छोटे बच्चों की पुस्तकों में यदि कुछ शब्द दिए जाते है तो वे बहुरंगी तस्वीरों के सहायक मात्र होते है जो अपनी कहानी आप कहते हैं। नेहरू बाल पुस्तकालय द्वारा प्रसिद्ध कहानीकार मुंशी प्रेमचंद से लेकर डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, महाश्वेता देवी, मनोरमा जफा तथा युवा कथाकार तक शामिल हैं। इस संस्थान द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की विधाएँ बालगीत एवं बाल कविता, बाल कथा/ कहानियाँ,जीवन चरित (महान व्यक्तित्वों), उपन्यास, वैज्ञानिक रचनाएँ आदि के साथ–साथ अनुवाद साहित्य का भी महत्वपूर्ण योगदान है।महके साडी गली गली, अनुपम कहानियाँ दो बाल नाटक, कुर्बान, जादू का मंतर, प्रेमचंद, लू लू की सनक, तिली–तितली, अक्खन की आँख, बन बन गैंडे की कहानी, बालकुमारी, रामू और रोबोट, हमारी नदियों की कहानी, नेपाली मेंढक के साहसिक कारनामे, पानी, अद्भुत सहास, पर्यावरण की पुजारिन आदि चर्चित हैं।

आधुनिक युग विज्ञान का युग है। निरंतर नई नई खोजे बाल मन को प्रभावित करती रहती है। वह कल्पना लोक में विचरण करता रहता है। आज के बाल साहित्य की प्रकृति यथार्थ के धरातल से जुड़ी हुई है। सच तो यह है कि आज का बालक यांत्रिक माहौल के अधिक करीब है, अतरू बाल साहित्यकारों को भी वास्तविक जीवन और जगत के संदर्भ में निरंतर अपना सृजन कार्य करते जाना है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. हिंदी बाल साहित्य का इतिहास दृ प्रकाश मनु
2. हिंदी बाल साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन दृमस्तराम कपूर
3. बाल साहित्य कविता का इतिहास – प्रकाश मनु
4. बाल साहित्य इक्कीसवीं सदी में दृ श्री जयप्रकाश भारती
5. राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की हिंदी पुस्तक सूची।

मो.नं. 9966004707, sirisillachandana@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 258-261
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रभा खेतान और कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री विमर्श

–नम्रता
शोधार्थी, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)
–डॉ. प्रभात रंजन, शोध निर्देशक
सहायक प्राध्यापक, संत गुरूघासीदास शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुरूद, जिला–धमतरी (छ.ग.)

संसार में स्त्री की रचना ईश्वर की रचना मानी जाती है। स्त्री ममता का सागर है, जिसमें दया, प्रेम, करूणा, समर्पण, त्याग, वात्सल्य इत्यादि का समावेश होता है। प्राचीन युग से वर्तमान युग तक स्त्रियों की स्थिति में अनेक परिवर्तन हुए है। सामाजिक गतिशीलता जिस तरह मानव जीवन का अंग है, वह शाश्वत है। उसी तरह स्त्रियों की दशा एवं दिशा मे परिवर्तन भी शाश्वत है । स्त्रियों की इसी परिवर्तन और स्थिति को स्त्री विमर्श के अंतर्गत कथाकारों ने चित्रित किया हैं। वैश्विक धरातल पर स्त्रियां अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है। सदियों से जो अपमान, पीड़ा अन्याय, शोषण को भोगा है। आज वह इन सभी पीडाओं से मुक्ति चाहती है। पुरूष समाज ने अपने अहंकार में स्त्रियों की जो दर्दशा की है आज की नारी पुरूषों के उस गढ को तोडने के लिए सजग है। स्त्री की स्थिति को स्पष्ट करते हुए लता शर्मा जी लिखती है– "स्त्री विमर्श स्त्री को स्वयं को देखने, जांचने, परखने का पर्याय है। आज तक हम अपने बारे में अपनी आशाओं, आकांक्षाओं के बारे में जो कुछ भी जानते है किसी संत, महात्मा, विचारक, मनीषी का लिखा पड़ा है। हम स्वयं को अपनी ही द्रुष्टि से तौलने, परखने यह नवीन आयाम है।"1

प्रभा खेतान और कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यासों में स्त्रियों की दशाओं का वर्णन किया है। प्राचीन समय से लेकर वर्तमान तक स्त्रियों ने जो पीडा भोगा है। वहीं पीडा एक महिला कथाकार के रूप में प्रभा खेतान और कृष्णा सोबती जी के रचनाओं में उभरा है। दोनों कथाकारों ने प्राचीन काल से स्त्रियों की पीडा शोषण को लेकर वर्तमान परिवेश मे स्त्री की व्यथा, मानसिकता, अस्मिता को सजगता से उजागर किया है। प्रभा जी ने अपने उपन्यास आओं पेपे घर चले में पाश्चात्य देशों की स्त्री की पीडा, शोषण, घुटन का मार्मिक चित्रण किया है। पाश्चात्य देशों की स्त्रियों के लिए सामान्य धारणा रहती है कि वहां वह पूरी तरह से स्वतंत्र है। उन्हें हर अधिकार प्राप्त है, लेकिन यह सिर्फ कहने की बातें है। पभा जी ने पाश्चात्य परिवेश मे स्त्रियों की पीडा का त्रासद चित्रण किया है। समाज के सामने स्वतंत्र, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर रहने वाली स्त्रियां भी शोषण का शिकार होती है। उपन्यास की स्त्री चरित्र मरील स्त्रियों की उस पीडा को स्वर प्रदान करते हुए कहती है– " जिंदगी जब तुम्हें ठगेगी और बार–बार ठगेगी तब तुम क्या करोगी?... अभी बहुत छोटी हो औरत के सीने में दर्द का कौन सा लावा खौलता रहता है, यह आज तुम क्या जानो ।"2 स्त्री की यह पीडा सदियों की घुटन का परिणाम है, इसलिए वह आज की नारी को इस पीडा से मुक्त होने के लिए सचेत करती है।

छिन्नमस्ता उपन्यास तो स्त्री की त्रासद स्थिति का दस्तावेज है। प्रभा जी ने इस उपन्यास में प्रिया के माध्यम से मारवाड़ी समाज के स्त्रियों की दुर्दशा का भयावह चित्रण किया है। साथ ही अन्याय शोषण के खिलाफ काली स्वरूप में स्त्री का वर्णन किया है। प्रिया बालमन से उपेक्षा पीड़ा को सहते–सहते इतनी कठोर हो गयी है कि वह हर अन्याय के खिलाफ संघर्ष करने को तत्पर है। प्रिया जिस समाज में रहती है वह पुरूष प्रधान समाज है जहां पुरूषों का ही वर्चस्व है। कोई भी पुरूष अपनी सत्ता की बागडोर किसी स्त्री के हाथों स्वीकार नहीं कर पाता है। प्रिया आर्थिक रूप से स्वतंत्र होकर आत्मनिर्भर स्त्री बनती है। स्वयं का व्यापार स्थापित करती है। स्वयं का एक स्थान बनाती है। प्रिया हर स्त्री के लिए एक उदाहरण बनती है कि अगर स्त्री ठान ले तो सब कुछ हासिल कर सकती है। हर अन्याय, शोषण के खिलाफ संघर्ष कर स्वयं के अस्तित्व की रक्षा कर सकती है। उपन्यास में जुडी भी प्रिया भी यहीं कहती है– "प्रिया तुम अपनी डायरी लिखती रहों औरत आज भी मुक है। उसके आंसु को दुनियां देखती है। उसके हिस्टिरिया के दौरे उसके चिखने–चिल्लाने पर लोग कानों पर हाथ रख लेते है... उसकी शिकायत भरी निगाहों को देखकर भी पुरूष अनदेखा कर जाता है। मगर शब्दों का अपना इतिहास होता है... और यदि यह छप जाये तब क्याकृउनकी यों उपेक्षा करना संभव होगा?... जब लिखोगी तब अपनी जैसी हजारों लाखों के साथ संवाद स्थापित कर पाओगी ? तुम्हे क्या पता कि तुम्हारे शब्दों को पढकर कौन–कौन अपने घावों को सहलायेगा? किस औरत की गूंगी जुबान अचानक बोल उठेगी... हां, यह सच है बिल्कुल सच है मेरे साथ भी ऐसा ही घटा है।"3

अग्निसंभवा उपन्यास की आइवी भी नारी की उस पीड़ा को सहती है। पैदा होते ही उसकी बेटी की हत्या कर दी जाती है। आइवी की ममता तडप उठती है ससुराल से भागकर हांगकांग आकर आत्मनिर्भरता का जीवन–यापन करती है। लेकिन कहते है न कि खुशियों के पंख होते है जो क्षण मे ही उड जाते है। आइवी की खुशियां भी दुख में बदल जाती है जब चीन की राजनीति भ्रष्टाचार, शोषण की भेट आइवी की ममता चढ जाती है। उसके बेटे की हत्या राजनीतिक दंगे में हो जाती है। आइवी का घायल मन चीख उठता है–" प्राफा, मेरा मन कहता है मै ऐसी ही किसी दूसरी छत पर खडी होकर चिल्लाऊं। कसाईयों तुम लोगों ने मेरे बेटे को मार दिया..... मै चिखूं इतनी जोर से ताकि दुनियां मेरी पीडा समझे मै अपने दुःख के समुद्र की लहरों पर सवार होकर वहां पहुंचना चाहती हूं, जहां मेरे दर्द को कोई समझ सके। सब लोग भुल जाते है कोई तो मेरे बच्चे को याद नहीं करता। "4

अपने–अपने चेहरे की रमा दूसरी स्त्री होने की पीड़ा को सहती है। समाज में हर जगह उसे दूसरी औरत कहकर उसकी उपेक्षा करते है– "समाज औरत को केवल संबंधों के माध्यम से जीवित देखने का आदि है।"5 पीली आंध ी उपन्यास में स्त्री का शोषण स्त्री के द्वारा ही दर्शाया गया है जो पुरूषों के जाल में फंसकर स्वयं के अस्तित्व को समाप्त करने की ओर अग्रसर है। साथ ही स्त्रियां प्रेम के लिए अपने सारे पारिवारिक रिश्तों की तिलांजली देने से पीछे नही हटती। यह स्त्री के अस्तित्व और अस्मिता की ओर सजग चेतना का प्रमाण है। स्त्री पक्ष उपन्यास में स्त्री शोषण, उत्पीड़न को दर्शाया गया है। जहां वृंदा को बचपन से ही पारिवारिक मर्यादा की बेड़ियों में जकड़ा जाता है। साथ ही इस उपन्यास में स्त्री अपनी पीड़ाओं से मुक्त होकर आत्मनिर्भरता का जीवन जीती है।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में भी नारी शोषण, पीड़ा का संवेदानात्मक चित्रण मिलता है। जहां नारी की स्वतंत्र

सजग चेतना, बोल्डनेस, बेबाक, जिंदादिल अंदाज की अभिव्यक्ति मिलती है। डार से बिछुडी पाशो का जीवन गहरी पीड़ा और क्षोभ से भरा है। ननिहाल में मामा–मामियो की उपेक्षा, अधेड़ उम्र के व्यक्ति से विवाह, विधवा व अन्य पुरूषों द्वारा भोगा जाना स्त्री शोषण का चरम बिंदु है। पाशो हर शोषण को भाग्यफल मानकर जीवन निर्वाह करती है। उसे हमेशा नानी की एक बात याद आती है– ”संभलकर री, एक बार का थिरका पांव जिंदगानी धुल में मिला देगा।”6

स्त्रियों के लिए हर समाज में यहीं सोच रहती है। कृष्णा सोबती का उपन्यास मित्रों मरजानी साहित्य जगत में अद्वितीय रचना है। कृष्णा जी ने साहित्य जगत में ऐसी स्त्री को जन्म दिया जो साहसी है हर विपरीत परिस्थिति को स्वयं के अनुकूल करने में सक्षम है। मित्रो की इस विशेषता की वर्णन करते हुए राजेन्द्र यादव लिखते है– ”मित्रो हिंदी की अकेली कथा नारी है। जो सदियों से लादे गये संस्कारों, संबंधो, सुंदर–सुंदर उपमाओं को ललकारती, मुंह चिढाती और उन्हें झुठलाती हुयी अपनी मूलभूत जरूरत और जबान के साथ हमारे सामने खड़ी है। छिन्नमस्ता काली की तरह मानों हम उसके तेज को बर्दाश्त नहीं कर पाते ।”7

कृष्णा जी की मित्रो समाज द्वारा बनायी गयी सभी सामाजिक बंधनों, परम्परओं को ध्वस्त करती है। हर अन्याय के खिलाफ आवाज उठाती है। स्वतंत्र जीवन जीना हर स्त्री का अधिकार मानती है। मित्रों अपने अधिकारों के प्रति सजग है। मित्रों समाज के सामने अपनी देह तन की प्यास को भी उजागर करती है। मित्रो अपनी जिस देह तन की प्यास को कहती है वह सिर्फ उसी एक की नहीं है। वह संपूर्ण मानव जाति की प्यास है। फर्क सिर्फ इतना ही है यह बात परदे के पीछे ढकी रहती है। लेकिन मित्रो अपने पति द्वारा अतृप्त होती है तो वह पति को ही हाशिये पर लाकर खडा कर देती है– ”देवर तुम्हारा मेरा रोग नही पहचानाता।... बहुत हुआ हफ्ते पखवारे । ”8 मित्रो का यह बेबाक अंदाज संपूर्ण स्त्री की शोषण परंपराओं की जंजीरों को तोड़ती है। वह अपनी जिठानी को भी यह समझाती है कि वह स्वयं के लिए जीना सीखे। कृष्णा जी ने मित्रों के रूप मे ऐसी स्त्री स्वरूप गढ़ा है जो अपने यौन सुख के प्रति भी सचेत है–”मित्रो रानी! चिंता फिकर तेरे बैरियों की जिस घडने वाले ने तुझे घड दुनियां का सुख लुटने भेजा है, वहीं जहां वाली तेरी फिकर भी करेगा। ”9

कृष्णा जी के उपन्यास सूरजमुखी अंधेरे के मे रत्ती समाज के दकियानूसी कुरीति का शिकार हो जाती है। जिसकी वजह से उसका बचपन गहरी पीडा से भर जाता है। बलात्कार की पीडा रत्ती की तन–मन को तोड़ देती है– ”रत्ती बचपन के पारदर्शी कांच के टूट जाने से घायल वह व्यक्ति है जो संबंधों की परिपक्व जमीन पर सुरक्षा के तंबू नहीं गाड पाता।.... रत्ती जैसी औरत अपने सगेपन में सिर्फ जान पहचान के दावे कर सकती है। सेक्स के कुदरती बहाव से उदित सगे संबंध स्थापित नही कर सकती । ”10

रत्ती की पीडा हर स्त्री जाति की पीडा है। दिलो–दानिश उपन्यास में प्रभा खेतान के रमा की तरह कृष्णा जी की मेहरबानो भी दूसरी औरत होने की उपेक्षा को झेलती है। पति से बिना किसी इच्छा स्वार्थ के सिर्फ प्रेम की चाहत में जीवन व्यतीत करने वाली स्त्री की पीडा को समाज कभी नहीं समझ पाता। समाज सिर्फ अपने बनाये नियमो की तराजू पर स्त्रिी को तौलता है। जहां पर उसक आत्म–सम्मान, स्वाभिमान को तार–तार किया जाता है। रमा, मेहरबानो, तिलोत्तमा का जीवन समाज की इसी चक्की में पीस जाता है। स्त्री को सम्मान तभी मिलता है जब उसकी मांग सिंदूर से भरी हो नही तो हर स्त्री जाति रमा, तिलोत्तमा और मेहरबानो है। जिंदगीनामा उपन्यास की स्त्री अशिक्षित, अज्ञानता के दोषों से घिरी है। अंधविश्वास, परंपरावादी सोंच, शोषण ही उसका

जीवन है।

प्रभा खेतान और कृष्णा जी के उपन्यासों में नारी की दशा का मर्मान्तक चित्रण मिलता है। आज के वर्तमान युग में शिक्षा के आगमन से नारी अपने अधिकारों अस्तित्व के पति सजग है। हर अत्याचार के खिलाफ चट्टान की भांति सामना करने को तत्पर है। दोनों कथाकारों ने नारी के इस स्वरूप का भी वर्णन किया है। कृष्णा जी की स्त्री की विशेषता को दर्शाते हुए कन्हैया लाल जी कहते है–" आपकी नारी भारत की सामान्यतया तथा चित्रित नारी से बिल्कुल भिन्न है मतलब की बंगाल की आत्म पीड़ित आसु विगलित, प्रताड़ित पति या समाज की मार सह कर भी अंदर ही अंदर घुटने वाली नारी से बिल्कुल भिन्न उन्मुक्त विचारों वाली लिबरेटेड नारी है।"11

इस तरह प्रभा खेता और कृष्णा सोबती के नारी शोषण, पीड़ा से मुक्त होकर आत्मनिर्भरता का जीवन जी रहीं है। और संपूर्ण स्त्री जाति के लिए प्रेरणा है कि हर अन्याय का विरोध करे और स्वयं के लिए अपनी जमीन तलाश करें ।

संदर्भ ग्रंथ

1ए औरत अपने लिए : लता शर्मा, पृष्ठ–149

2ए आओ पेपे घर चले : प्रभा खेतान, पृष्ठ–24

3ए छिन्नमस्ता : प्रभा खेतान, पृष्ठ– 23

4ए अग्नि संभवा : प्रभा खेतान, पृष्ठ–61

5ए अपने– अपने चेहरे : प्रभा खेतान, पृष्ठ–195

6ए डार से बिछुड़ी : कृष्णा सोबती, पृष्ठ–91

7ए औरो के बहाने : राजेन्द्र यादव, पृष्ठ–42

8ए मित्रो मरजानी : कृष्णा सोबती, पृष्ठ–20

9ए वही : पृष्ठ–20

10ए हम –हशमत : कृष्णा सोबती, पृष्ठ–201

11ए कन्हैया लाल नंदन, सारिका 1 जनवरी 1979 ,पृष्ठ–9

मो.नं. 8103244824

म.उंपसरू दंउतंजंचंजतमहहअ/हउंपसण्बवउ

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 262-266
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

श्री अरविंद के विचारों का भारतीय राजनीतिक चिंतकों पर प्रभाव

–डॉ० सतीश कुमार वर्मा
सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, सरिया कॉलेज, सरिया।
–सुनील दास
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग।

सारांश :–

यह शोध आलेख महर्षि अरविंद के जीवन और राष्ट्रवादी विचारों पर पर्याप्त चर्चा हो चुकी है और इस चर्चा से यह प्रमाणित होता है कि वे जितने बड़े स्वतंत्रता सेनानी थे, उससे भी ज्यादा बड़े दार्शनिक थे। उल्लेखनीय यह है कि उनका दर्शन शुष्क तत्ववादी नहीं था बल्कि भारतीय जीवन, संस्कृति और सभ्यता की जड़ों से जुड़ा हुआ था। इसीलिए सक्रिय आंदोलन से अलग हो जाने के बाद भी वे राष्ट्र के रूप में भारत के निर्माण की चिंता से जुड़े हुए थे और राष्ट्रीय आंदोलन से वैचारिक स्तर पर कभी अलग नहीं हुए। उनके विचारों से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े आंदोलनकारी हमेशा प्रेरणा पाते रहे और विशेष रूप से क्रांतिकारी आंदोलन से जुड़े लोगों पर उनका प्रभाव ज्यादा रहा और आज भी जब वैश्वीकरण के नए दौर ने दुनिया के राष्ट्रों की इयत्ता को प्रश्नवाची बना दिया है, अरविंद के विचार और दर्शन भारत की संप्रभुता और राष्ट्र के रूप में इसके वैशिष्ट्य को बचाने की चिंता करने वालों को प्रेरित करते हैं। हमें इसी विषय में चर्चा करनी है कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं पर किस प्रकार अरविंद के विचारों के प्रभाव पड़े।

मुख्य शब्द : ज्ञान–मीमांसा, दर्शन, गीता, निवृति, आनंद, शरैशनल, रिडक्सनिज्म, पुनर्जागरण, राष्ट्रवाद, सत्याग्रह, समुन्नत, विज्ञानवाद, मूल्यबोधक, प्रकृति, प्राणशक्ति, अस्तित्व, आरोह–अवरोह, चेतना अति–मानस।

परिचय :

महर्षि अरविंद के जीवन और राष्ट्रवादी विचारों पर पर्याप्त चर्चा हो चुकी है और इस चर्चा से यह प्रमाणित होता है कि वे जितने बड़े स्वतंत्रता सेनानी थे, उससे भी ज्यादा बड़े दार्शनिक थे। उल्लेखनीय यह है कि उनका दर्शन शुष्क तत्ववादी नहीं था बल्कि भारतीय जीवन, संस्कृति और सभ्यता की जड़ों से जुड़ा हुआ था। इसीलिए सक्रिय आंदोलन से अलग हो जाने के बाद भी वे राष्ट्र के रूप में भारत के निर्माण की चिंता से जुड़े हुए थे और राष्ट्रीय आंदोलन से वैचारिक स्तर पर कभी अलग नहीं हुए। उनके विचारों से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े आंदोलनकारी हमेशा प्रेरणा पाते रहे और विशेष रूप से क्रांतिकारी आंदोलन से जुड़े लोगों पर उनका प्रभाव ज्यादा रहा और आज भी जब वैश्वीकरण के नए दौर ने दुनिया के राष्ट्रों की इयत्ता को प्रश्नवाची बना दिया है, अरविंद के विचार और दर्शन भारत की संप्रभुता और राष्ट्र के रूप में इसके वैशिष्ट्य को बचाने

की चिंता करने वालों को प्रेरित करते हैं। हमें इसी विषय में चर्चा करनी है कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं पर किस प्रकार अरविंद के विचारों के प्रभाव पड़े।

यह उल्लेख करना जरूरी है कि स्वयं महर्षि अरविंद को स्वामी विवेकानंद के विचारों ने प्रभावित किया था। अरविंद ने स्वयं कहा है कि जब वे जेल में थे तब स्वामी जी की आत्मा से कई बार उनका साक्षात्कार हुआ। वे स्वीकार करते हैं–

"यह सत्य है कि कारागार में एकांत में ध्यान–साधना के समय एक पखवाड़े तक लगातार विवेकानंद की आवाज सुनता रहा, जो मुझसे बात कर रहे थे। मैंने उनकी उपस्थिति भी अनुभव की। वह स्वर आध्यात्मिक अनुभूति के केवल एक विशेष और सीमित किन्तु बहुत महत्वपूर्ण क्षेत्र के बारे में ही बताता था।"1

श्री अरविंद पर स्वामी जी के विचारों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था क्योंकि राष्ट्र के रूप में भारत को देखने की दृष्टि दोनों की समान थी और दोनों के मानववादी विचार भी समान थे। स्वामी विवेकानंद के प्रभाव से श्री अरविंद के राष्ट्रवादी विचार और अधिक पुष्ट हुए और राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े अनेक नेताओं पर उनके विचारों के प्रभाव पड़े। पीछे इस बात का उल्लेख किया गया है कि श्री अरविंद का राष्ट्रीय आंदोलन की ओर रुझान उनके विदेश से पढ़ाई करके वापस आने के बाद हुआ। जब बंगाल के विभाजन के विरोध में वहां आंदोलन शुरू हुए, उन्हीं दिनों महर्षि अरविंद का राष्ट्रीय आंदोलन में प्रवेश हुआ। वही दौर था जब उनके राजनीतिक विचार सामने आए, खास तौर से उनकी राजनीतिक सैद्धान्तिकी और विचार। इस अध्याय में उन आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतकों के विचारों की विवेचना की जायेगी जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय अथवा वैचारिक रूप से अपनी भागीदारी सुनिश्चित की थी। इस विवेचना में यह देखने की कोशिश होगी कि उन पर श्री अरविंद के विचारों पर कितना प्रभाव था और वह प्रभाव किस प्रकार का था। इस प्रसंग में आगे विचार करने के पूर्व थोड़ी चर्चा श्री अरविंद के राजनीतिक विचारों पर कर लेनी आवश्यक है। ये इस प्रकार हैं–
अरविन्द के निष्क्रिय प्रतिरोध संबंधी विचार – अरविन्द और तिलक नीतिगत रूप से उग्रवादी विचारक माने जाते थे। जिसे अति सक्रियतावाद भी कहा जाता है। वे उदारवादियों की प्रार्थना एवं याचिका की नीति पसन्द नहीं करते थे। वे पूर्ण स्वाधीनता के समर्थक थे और इनके लिए निर्दिष्ट प्रतिरोध पद्धतियों या साधन का समर्थन करते थे। महर्षि अरविन्दों का निष्क्रिय प्रतिरोध शान्तिपूर्ण उपायों से विदेशी यात्रा को चुनौती देने का साधन था। परन्तु वे गांधीजी की भांति पूर्णतः अहिंसा में आस्था नहीं रखते थे अरविन्दों के अनुसार आवश्यकता पड़ने पर जब सरकार निर्दयी हो जाए तो हिंसा का प्रयोग किया जा सकता है।

स्वाधीनता के लक्ष्य तक पहुंचने के लिए उन्होंने संगठित निष्क्रिय प्रतिरोध के साधन को सर्वोत्तम बताया। निष्क्रिय प्रतिरोध के सिद्धांत का विश्लेषण करते हुए अरविन्द ने इसमें निम्नलिखित बातें सम्मिलित की–

(प) ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थापित संस्थानों का बहिष्कार अधिक से अधिक भारतीय संस्थाओं की स्थापना पर बल।

(पप) जनता द्वारा सरकार के साथ असहयोग करना।

(पपप) उन लोगों का सामाजिक बहिष्कार करना जो सरकार का सहयोग करते हैं।

(पअ) सरकारी न्यायालयों का बहिष्कार व स्थानीय ग्रामीण न्यायालयों पर बल।

(अ) राष्ट्रीय शिक्षा का प्रसार और (अंग्रेजी) सरकारी शिक्षण संस्थानों का बहिष्कार। ताकि स्वदेशी

व्यवस्था को बढ़ाया जा सके।

(अप) स्वदेशी पर बल और विदेशी माल का बहिष्कार ताकि गाट की उनति की जा सके।

स्वतन्त्रता सबधी विचार – महर्षि अरविन्द व्यक्ति की स्वतंत्रता और उनके अधिकारों को अत्यधिक महत्व देते थे। उन्होंने राष्ट्रीय विकास के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता को अति आवश्यक बताया है उनके अनुसार स्वतंत्रता तीन प्रकार की होती है– 1. राष्ट्रीय स्वतंत्रता, 2. आन्तरिक स्वतन्त्रता, 3. व्यक्तिगत स्वतंत्रता। राष्ट्रीय स्वतंत्रता विदेशी नियंत्रण से मुक्ति है। आंतरिक स्वतंत्रता से अभिप्राय किसी वर्ग या वर्गों के सामूहिक नियंत्रण से मुक्त होकर स्वशासन प्राप्त करना है। उनका मानना था कि शासन चाहे राजतंत्रात्मक हो अथवा लोकतंत्रात्मक अभिजाततंत्रीय हो या नौकरशाही का हो व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा होनी आवश्यक है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता से राष्ट्र की चहुंमुखी प्रगति आसान हो जाती है। इसके लिए स्वशासन आवश्यक है व्यक्तिगत स्वतंत्रता से राष्ट्रीय चेतना जागृत होती है अतएव विदेशी शासन के अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वतंत्रता की प्राप्ति नहीं हो सकती।

सभा करने का अधिकार – महर्षि अरविन्द ने स्वतंत्र प्रेस तथा अभिव्यक्ति के अधिकार के पश्चात स्वतंत्र सार्वजनिक सभा करने का अधिकार पर जोर दिया है। एक सबल राष्ट्र के लिए स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अधिकार के साथ ही साथ स्वतंत्रतापूर्वक नागरिकों को सभा करने का अधिकार भी होना चाहिए। इसके न होने पर स्वतंत्र अभिव्यक्ति का अधिकार कुंद हो जाएगा सभा के माध्यम से लोगों में विचारों की सामूहिकता की शक्ति पैदा होती है। सभा करने के अधिकार नागरिको के सर्वांगीण विकास के लिए अति आवश्यक है बिना सामूहिकता के अधि ाकार।

संगठन बनाने का अधिकार – एक स्वतंत्र राष्ट्र के नागरिकों के लिए एक अन्य आवश्यक अधिकार दिए जाने के लिए महर्षि अरविन्द ने जोर दिया है वह है संगठन बनाने का अधिकार, स्वतंत्र अभिव्यक्ति, स्वतंत्र प्रेस तथा स्वतंत्र रूप से सार्वजनिक सभा करने का अधिकार के साथ संगठन निर्मित करने के अधिकार। व्यक्ति स्वयं विकास नहीं करता उसे अपने समूह के अन्तर्गत विकास करना होता है। समूह भी किसी संगठन के माध्यम से शान्ति एवं सुरक्षा के वातावरण में शारीरिक नैतिक एवं बौद्धिक विकास प्राप्त करता है। सरकार द्वारा उनके सर्वांगीण विकास के लिए पूर्ण अवसर उपलब्ध किए जाने चाहिए।

राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचार – श्री अरविन्द राष्ट्रवाद के प्रबल समर्थक थे। वे राष्ट्र तथा राज्य को पृथक–पृथक रखने में विश्वास करते थे। वे राष्ट्र के सांस्कृतिक बौद्धिक और सामाजिक विकास में शासकीय हस्तक्षेप को उचित नहीं मानते थे। उनकी दृष्टि में राष्ट्रवाद एक सात्विक धर्म है। राष्ट्र एक मनौवैज्ञानिक इकाई है। उनके राष्ट्रवादी विचारों पर हीगल, फिक्टे तथा बर्क जैसे पाश्चात्य विचारकों का भी प्रभाव पड़ा है। इसी को ध्यान रखते हुए वी० पी० वर्मा ने अरविंदों के राष्ट्रवादी व्यक्तित्व के सम्बन्ध में लिखा है कि 'राष्ट्रवादी नेता के रूप में भी अरविन्द ने भारतीय तथा पाश्चात्य विचारों को समन्वित करने का प्रयत्न किया।' अरविंदों का मानना था कि राष्ट्रवाद के कारण ही राष्ट्र में भक्ति का संचार होता है। महर्षि अरविंद के राष्ट्रवादी विचारों के संबंध में निम्न चिंतन प्रस्तुत किया–

राष्ट्रवादी विचारों का मानवतावादी स्वरूप – अरविन्दों ने एक तरफ तो अपने राष्ट्रवाद को आध्यात्मिक आधार पर खड़ा किया और उसे भारत की प्राचीन संस्कृति के स्त्रोतों से पुष्ट किया तो दूसरी तरफ उन्होंने इसे मानवतावादी रूप संबंधी अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि राष्ट्रवाद राष्ट्र में निहित देवी एकता का

साक्षात्कार करने को उत्कृष्ट अभिलाषा है। इस एकता के अंतर्गत राष्ट्र के सभी अवयव प्रत्येक व्यक्ति के बुनियादी तौर पर असमान प्रतीत होते हो। भारत राष्ट्रवाद जो भी आदर्श विश्व के समक्ष रखने जा रहा है उसके अंतर्गत व्यक्ति तथा व्यक्ति के बीच जाति तथा जाति के बीच और वर्ग तथा वर्ग और राष्ट्र में साक्षात्कार विराट पुरुष के संयुक्त अंग होंगे। इसलिए हम स्वेच्छाचारी शासन के इसलिए विरुद्ध है कि यह राजनीति के क्षेत्र में तात्विक समानता का निषेध करती है। हम जाति प्रथा की आधुनिक विकृति को बुरा मानते हैं क्योंकि उससे समाज में तात्विक समानता के उसी सिद्धान्त का निषेध होता है जिसे राजनैतिक क्षेत्र में राष्ट्र की लोकतांत्रिक एकता के आधार पर पुनः स्थापित किया जाना चाहिए। साथ ही साथ हम यह भी चाहते हैं कि सामाजिक क्षेत्रों में भी पुनः संगठन का वहीं सिद्धांत अपनाया जाए। जैसा कि हमारे विरोधियों की कल्पना है कि हम इस सिद्धांत को केवल राजनीति तक ही सीमित रखना चाहे तो हमारे सारे प्रयत्न विफल होंगे, क्योंकि जिस सिद्धांत का एक बार राजनीति के क्षेत्र में साक्षात्कार कर लिया जाता है वह सामाजिक क्षेत्र में भी क्रियान्वित हुए बिना नहीं रह सकता। अरविंदों के मतानुसार राष्ट्रवाद की अवधारणा को बढ़ावा देती है।

भारतीय तथा पाश्चात्य राष्ट्रवादी विचारों का समन्वय — महर्षि अरविन्दों ने अपने राष्ट्रवाद में भारतीय तथा पाश्चात्य विचारों का समन्वय करने का प्रयत्न किया। उनके राष्ट्रवादी विचारों पर अनेक पाश्चात्य विचारकों का प्रभाव पड़ा है। हीगल के प्रभाव में महर्षि अरविन्दों ने राष्ट्र की आत्मा का आदर्श प्रस्तुत करते हुए स्पंदनशीलता एवं मानवीय आत्मा से उसका प्रत्यक्ष तादात्म्य स्थापित किया। रेगान के समान महर्षि अरविंदों भी राष्ट्र को एक मनोवैज्ञानिक इकाई मानते है। फिल्टे तथा अरविंदों दोनों ही राष्ट्र की अमरता का सन्देश देते हैं। बर्क के प्रभाव में भी श्री अरविन्द ने न्याय के प्रति असक्ति, स्वशासन तथा समाज के धार्मिक आधार को स्वीकार किया है।

राष्ट्रवाद का धामिक एवं आध्यात्मिक स्वरूप — अरविदों के समकालीन उदारवादी नेताओं का राष्ट्रवाद अरविंदों द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रवाद से बहुत निम्न स्तर का था। उदारवादी नेताओं को भारत से प्रेम था और भारत के हित के लिए वे कष्ट भी सह रहे थे। किन्तु उनकी इच्छा यूरोपीय शिक्षा, यूरोपीय संगठन और सामग्री को लेकर भारत को एक छोटा सा इंग्लैंड बना देने की थी। इसके विपरीत अरविंदों के राष्ट्रवाद ने धार्मिक एवं आध्यात्मिक स्वरूप को स्पष्ट को स्पष्ट करते हुए कहा था कि राष्ट्रीयता क्या है। राष्ट्रीयता एक राजनैतिक कार्यक्रम नहीं है राष्ट्रीयता एक धर्म है जो ईश्वर प्रदत्त है राष्ट्रीयता एक सिद्धान्त है जिसके अनुसार हमें जीना है।

मानव कल्याण एवं विश्व एकता संबंधी विचार — प्रथम महायुद्ध के उत्पन्न संकटों और परिस्थितियों में विश्व के दार्शनिकों का ध्यान एक ऐसे विश्व संघ की धारणा की ओर आकृष्ट हुआ जो संपूर्ण मानव जाति को एकाकार कर ले। महर्षि अरविंदों ने भी अपनी पुस्तकों में मानव एकता के आदर्श में इस प्रकार के विचार प्रकट किए हैं।

मानव एकता का आदर्श प्रकृति की योजना का अंग है — अरविन्दों ने मानवीय एकता को प्रकृति की योजना का अंग बताया और कहा कि यह स्वप्न भविष्य में एक दिन अवश्य पूरा होगा। उन्होंने इसे प्रकृति की योजना का अंग इसलिए बताया क्योंकि उनकी मान्यता थी कि हम सब एक दूसरे के घटक हैं और एक यांत्रिक तथा बाह्य आवश्यकता हमें एक दूसरे के प्रति इतना आकर्षित करती है कि हम स्वयं को क्रमशः परिवार कबीले और ग्राम जैसे उत्तरोत्तर समूहों से संगठित करने को बाध्य हो जाते है। इतिहास बताता है कि मनुष्य की प्रवृत्ति सदैव उत्तरोत्तर बड़ी इकाईयों का निर्माण करने की रही है। गाँव अपने आप को ही राज्यों में और राज्य अपने को साम्राज्य में संगठित करते रहे हैं।

विश्व संघ की अवधारणा का प्रतिपादन – अरविन्दों ने कहा कि मानव एकता के महान आदर्श को हम विश्व राज्य के निर्माण के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं अथवा राष्ट्र राज्यों को एक प्रकार के संघ में संगठित करके हम इस आदर्श का साकार बना सकते है। उन्होंने इस संबंध में एक कल्पना यह भी की है कि भविष्य में एक ऐसा समय आएगा जब हम एक संयुक्त राज्य यूरोप, एक संयुक्त एशिया और एक संयुक्त राज्य अफ्रीका के दर्शन करेंगे और अन्ततः इन सब राज्यों को संयुक्त करके एक संघ बना लेंगे। इस प्रकार महर्षि अरविंदों ने एक विश्व संघ की धारणा प्रकट की तथा कहा कि यह संघ पूर्व रूप से एक जैसा नहीं हो सकता। यह स्वयं आत्मनिर्णय के सिद्धांत पर आधारित विविधताओं पर आधारित होगा जिसमें सामंजस्यपूर्ण जीवन के नियम को सर्वोच्चता मिलेगी ताकि मानव जाति के आदर्श एकता के स्वप्न को पूरा कर सके।

समाजवादी व्यवस्था संबंधी विचार – अरविंदों समाजवाद को व्यक्तिवाद राष्ट्रवाद तथा विश्वबन्धुत्व का प्रतीक मानते हैं। शोषित श्रमिकों को नवजीवन प्रदान करने में समाजवाद का जो महत्व रहा है। उसे श्री अरविंदों ने सराहा है। किंतु वे समाजवादी विचारधारा में सन्निहित राज्यशक्ति के केन्द्रीकरण के पक्ष में नहीं हैं। वे समाजवाद के सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष का समर्थन करते हुए भी उसके सर्वाधिकारवादी पक्ष के समर्थक नहीं रहे। उनका मत है कि समाज के राजनीतिक एवं सामाजिक पक्ष को मिश्रित नहीं किया जाना चाहिए। सर्वाधिकारवादी, सामाजिक एवं राजनीतिक क्रियाकलापों में राजकीय हस्तक्षेप का मार्ग प्रशस्त करता है जिसे श्री अरविंदों उचित नहीं मानते वे समाज्यवाद के साम्राज्यवाद में परिवर्तित होने की सम्भावना के प्रति भी समान रूप में चिंतित हैं। श्री अरविंद ने समाजवाद के आध्यात्मिक बंधुत्व का संदेश देकर व्यक्तिवाद एवं साम्यवाद में समन्वय का स्वप्न देखा है।

संदर्भ संकेत :

1. ब्वउचसमजम ॅवतो वf ैतप ।तइपदकवए 36ए च्वदकपबीमततल रू ैतप ।तइपदकव ।ीतंउ ज्तनेजए 2006ण
2. बिपनचन्द्र. (1998). भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद. दिल्ली : अनामिका पब्लिकेशन एन्ड डिस्ट्री.
3. दीक्षित, ताराचंद. (2013). डॉ० राममनोहर लोहिसा का समाजवादी दर्शन. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.
4. उपाध्याय, दीनदयाल. (2016). संपूर्ण वांग्मय. खंड 12, दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.
9. देसाई, ए० आर०. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 267-270

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

किन्नर जीवन : एक त्रासदी

-सुमन कुमारी

शोधार्थी, एम0 ए0, हिन्दी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, बिहार।

समाज और साहित्य का एक दूसरे से गहरा संबंध रहा है। समाज में घटने वाली घटनाओं की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है, इस वजह से साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। समाज में मौजूद हर मुददा साहित्यकार की संवेदना, चिंता और चितंन का विषय होता है, जिसको अभिव्यक्त करवह समाज में स्वयं की भूमिका का निर्वाह करता है। साहित्यकार समाज से संवाद स्थापित करने का कार्य और समाज की चिन्ताओं को साहित्य के पटल पर उभारने का कार्य करता है। साहित्यकार हर विषय को अपनी लेखनी का केन्द्र बनाता है उसी में एक विषय है किन्नर का जो समाज के बीच रहते हुए भी समाज से अलग है, समाज से तिरस्कृत है।

भारतीय समाज में किन्नर समुदाय को स्वीकार नहीं किया जाता है। जन्म के साथ ही मानव जैविक लैंगिंक पहचान लेकर पैदा होते है। यह जैविक पहचान मानव के जननांग द्वारा उसे नर या मादा प्रजाति से जोड़ती है तथा किन्नर या थर्ड जेंडर का पहचान भी जननांग से ही होता है। विश्व के हर समाज में उभयालिंगी समुदाय को एक वर्ग में रखा गया है, जिसे किन्नर, हिजड़ा, थर्ड जेंडर, तृतीय लिंगी, यूनक, खोजवा, मौगा, छक्का, खुसरा, जनखा, अनरावनी, शिखण्डी, ख्वाजासरा आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। उभयलिंगी को आज हिन्दी में सामान्यतः किन्नर कहकर पुकारते है। मुख्य रूप से किन्नर समुदाय हिमालय में पाई जाने वाली किन्नौर जनजाति के लोंगों का समुदाय है। किन्नौर जनजाति के लोंगों को इन उभयलिंगी व्यक्तियों का किन्नर नाम से सम्बोधन पसन्द नहीं है। प्रत्येक मनुष्य को जीवन–यापन के लिए महत्वपुर्ण अधिकार प्राप्त है, परन्तु किन्नर समुदाय आज भीसारे अधिकारों से वंचित है।

किन्नर मुख्य रूप से पांच प्रकार के होते हैं– बुचरा, नीलिमा, मनसा, हंसा और छिबरा। वास्तविक हिजड़े बुचरा कोटि के होते है जो जन्मजात होते है। जन्म होने पर लैंगिक दृष्टि से न ये पुरूष होते हैं और न स्त्री होते हैं। नीलिंमा कोटि के किसी कारणवश स्वयं को हिजड़ा बनने के लिए समर्पित कर देते हैं। मनसा कोटि वाले अपने आपको मानसिक तैर पर विपरीत लिंग अथवा अक्सर स्त्रीलिंग के अधिक नजदीक महसूस करते है।हंसा शारीरिक कमी या नपुंसकता आदि यौन न्युनताओं के कारण बने होते है। छिबरा कोटि के किन्नर जबरन बनाए गए होते हैं। किसी परिवार के सामान्य छोटे बच्चों को उठाकर उनका जबरदस्ती लिंग कटवाकर उन्हें किन्नर बनया जाता है। इस प्रकार के हिजड़े का डॉक्टरी इलाज से अपने लिंग में वापस लाया जा सकता है। अबुआ नकली हिजड़े होते है, जो सामान्य रूप से पुरूष होते हैं लेकिन धन के लालच में हिजड़ा बन जाते है।

किन्नर जैसा पहनावा करके लोगों से पैसा वसूलते हैं। ये किन्नर नहीं होते।

किन्नर समुदाय के विषय में भारत समेत एशिया व अन्य देशों में सहायक के पद पर 'किन्नर या हिजड़ा' के रूप में नियुक्ति होती थी। रोमन साम्राज्य के विभिन्न कालों में किन्नरों को उच्च पदों पर भी नियुक्त किए जाने के प्रमाण मिलते हैं। प्राचीन चीन और दक्षिण–पूर्व एशिया के अलावे मध्य एशिया में किन्नर समुदाय बहुतायत में मौजूद थे और उन्हें शासन के कई महत्वपूर्ण कार्यों में भागीदारी भी प्राप्त होती थी, प्राचीन काल में इन्हें समाज के एक अंग के रूप में देखा जाता था।

भारत में सत्पथ ब्राह्मणों, जैन व बौद्ध धर्म ग्रन्थों से लेकर लोक कथाओं में भी किन्नर समुदाय का जिक्र किया गया है। वात्स्यायन कृत 'कामसूत्र' में किन्नर समुदाय को 'तृतीय–प्रकृति' नाम दिया गया है। तुलसीदास कृत 'रामायण' में भी किन्नरों का जिक्र मिलता है। राम के वन गमन के लिए विदा करने तथा उनकी वापसी पर किन्नर समुदाय का जिक्र मिलता है। किन्नरों का जिक्र महाभारत की कथा में भी मिलता है। महाभारत में पहली कथा शिखण्डी का प्राप्त होता है जो कि एक किन्नर था तथा वह भीष्म पितामह की मौत का कारण बनता है और दूसरी कथा में अर्जुन के 'बृहन्नला' बनने का प्राप्त होता है, अज्ञातवास के दौरान एक वर्ष तक अर्जुन 'किन्नर वेश' में राजा विराट के महल में नर्तकी बनकर रहे और राजकुमारी उतरा को नृत्यकला की शिक्षा भी दी। तीसरी कथा भी महाभारत की है– अर्जुन और उलूपी के पुत्र 'अरावन' जिसने कौरव–पाण्डव युद्ध मे पाण्डवों की जीत के लिए माँ काली को अपनी बलि देता है। लेकिन उसके शर्त के मुताबिक केवल एक दिन की वैवाहिक जीवन जीने वाले अरावन की बलि के बाद किन्नर समुदाय उसे देवता के रूप में पूजना शुरू कर देते हैं। यह महज चंद उदाहरण वास्तव में प्राचीन काल से किन्नर समाज की मौजूदगी को प्रमाणित करते हैं।

प्रस्तुत कथाओं से लेकर सामाजिक–व्यवस्था, धार्मिक–व्यवस्था, आर्थिक–कारक, राजनीतिक परिदृश्य और सामान्य व्यक्ति की मानसिकता का आंकलन करने पर पाते हैं कि किन्नर समाज हमेशा से हाशिए पर रखा गया और साथ अमानुषिक व्यवहार से त्रस्त रहा है। प्राचीन समय से इनकी मैजूदगी के प्रमाण के बावजूद कहीं भी किन्नर समुदाय के नाम की कोई बस्ति या कब्रिस्तान नहीं मिलते, मुर्ति या मंदिर नहीं मिलता। प्राचीनकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल में कहीं–न–कहीं किन्नरों का इस्तेमाल होता आ रहा है, उसके हित में आज भी किसी प्रकार का कोई कदम नहीं उठाया जा रहा है।

साहित्य और संस्कृति के संदर्भ में भी देखें तो पाते हैं कि किन्नर विषय पर कुछ ही उदाहरण मौजूद है, जो दोहराए जातें हैं। किन्नर विमर्श पर हिन्दी साहित्य में कुल जमा डेढ़ दर्जन उपन्यास, दो दर्जन कहानियां कुछ कविताएं और दो–तीन नाटक ही मिलते हैं वह भी आधुनिक युग में। उसके पहलेदो–तीन कहानियां ही प्राप्त हैं, साहित्य में अभी भी 'किन्नर विमर्श' को विमर्श नहीं बल्कि 'बहस' के रूप में देखा जाता रहा है। धर्म, अर्थ, परिवार, समाज, रोजगार, शिक्षा, चिकित्सा, यात्रा, कला, भाषा, संस्कृति और संविधान तक में इन्हें बहिष्कृत और तिरस्कृत किया गया है। फिर भी इनके भीतर इतनी जीवटता है कि स्वयं को लेकर इतने भयानक षडयंत्रों के बाद भी इन्होंने अपने अस्तित्व को समाप्त नहीं होने दिया और आज सवाल के रूप में हमारे 'सभ्य' समाज को नंगा कर रहे हैं।

साहित्य की विविध विधाओं, कहानियों, उपन्यासों एवं नाटकों आदि में उभयलिंगी का चित्रण हुआ है। हिन्दी साहित्य में नजर डालने पर मालूम होता है कि 'पाण्डेय बेचन शर्मा' उग्र की कुछ कहानियों में किन्नर का

जिक्र आया है। साहित्य में थर्ड–जेंडर के संबंध में यत्र–तत्र लिखा जाता रहा है, लेकिन उनके जीवन के यथार्थ को उजागर करने का कार्य मुख्य रूप से आज किन्नर–विमर्श के माध्यम से किया जा रहा है।

नीरजा माधव कृत 'यमदीप' उपन्यास हिजाड़ों पर रचित प्रथम स्वतंत्र औपन्यासिक कृति है, जिसका प्रकाशन सन् 2002 में हुआ है।निरजा के उपन्यास का एक कथन देखा जा सकता है– "तन को भगवान ने आध ाा टुकड़ा बनाया कि किसी लायक नहीं रहे और पेट? पेट तो नहीं बंद करके भेजा। वह तो खुला ही है रोज भरो खाली करो।" 1

अनुसूया त्यागी कृत उपन्यास 'मैं भी औरत हूँ' हिजड़ो पर आधारित है जिसमें लेखिका ने उन लड़कियों की कथा को व्यक्त किया है जो जन्म से किन्नर है उनके माँ–बाप उनसे इस बात को छिपाते है। लड़कियों को पता चलने पर उनके माता–पिता उनका चिकित्सक द्वारर आपरेशन कराकर उन्हें टुटने तथा हताश होने से बचा लेते हैं।

महेन्द्र भीष्म कृत 'किन्नर कथा' उपन्यास 2011 में प्रकाशित हुआ, जिसमें लेखक ने किन्नरों की अधूरी देह होने की पीड़ा, सामाजिक उपेक्षा, पारस्परिक संघर्ष तथा उनमें व्याप्त अवसाद आदि को दर्शाने का सफल प्रयास किया है।

प्रदीप सौरभ कृत 'तीसरी ताली' उपन्यास सन् 2011 में प्रकाशित उभयलिंगी के जीवन के विविध विषमताओं को खोलकर चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में किन्नर समुदाय के घुटन भरे जीवन की सच्ची अभिव्यक्ति दृष्टिगत होती है।

निर्मला भुराड़िया कृत 'गुलाम मंडी' (2014) में किन्नर समुदाय के जीवन में व्याप्त तिरस्कार व अपमान के अलावा और भी कई विषयों को उजागर किया है।

सुप्रसिद्ध लेखिका चित्र मुद्गल कृत 'पोस्ट बॉक्स न0 203 नाला सोपारा' पत्रात्मक शैली में लिखित बहुचर्चित तथा सम्मान प्राप्त उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में किन्नर समुदाय की वेदना, पीड़ा व समाज में उनके प्रति उपेक्षित रवैया एवं राजनीति में उनके उपयोग किए जाने की कथा तथा समाज द्वारा तिरस्कार को दर्शाया गया है। यह उपन्यास किन्नर–समुदाय के प्रति रूढ़ मानसिकता के प्रतिरोध को अभिव्यक्त करता है। इस उपन्यास में लेखिका संवेदना के धरातल पर उतरकर माता–पिता एवं संतान के रिश्तों की आत्मीय ऊष्मा की तालाश करती नजर आती है।

महेन्द्र भीष्म कृत 'मैं पायल...' (2016) आत्मकथात्मक उपन्यास है, जिसमें पायल और किन्नर समुदाय की व्यथा, यातना और संघर्ष अभिव्यक्ति पाता है।

भगवंत अनमोल कृत 'जिन्दगी 50–50' उपन्यास किन्नर समुदाय पर आधारित प्रसिद्ध उपन्यास है। सुभाष अखिल कृत 'दरमियाना' एवं गिरिजा भारती कृत 'अस्तित्व' दोनो उपन्यास किन्नरों पर आधारित है। किन्नरों के मुड़े–तुड़े जीवन के पन्नों को बड़ी सरलता से सहज भाषा में रचनाकारों ने प्रस्तुत किया है। परम्परागत जकड़बंदियों से ग्रस्त भारतीय परिवार में किस तरह उन्हें समाज से बहिष्कृत करते हुए जबरन हाशिए पर फेंक दिया जाता है उनकी इस मनोव्यथा को संवेदनशीलता से देखा जा सकता है। महेन्द्र भीष्म ने विचार दिया है–"आखिर ईश्वर ने इनके साथ अन्याय क्यों किया? क्यों हम उन्हें अपने से दूर सामाजिक दायरे से बाहर हाशिए पर रखते चले आ रहे हैं? उनके प्रति हमारी सोच में अश्लीलता का चश्मा क्यों चढ़ा रहता है? किसी

किन्नर के साथ बेहिचक घूमने–टहलने या उसे अपने ड्राइंगरूम में बैठाकर उसके साथ जलपान करने में हम क्यों हिचकते हैं? इस पर विचार करना होगा, उन्हें समाज की मुख्यधारा से जोड़ना होगा, उनका पूरा सम्मान करना होगा। उनके अनुसार उनके अनुरूप उन्हें रोजगार प्रदान कराने होंगे। वे भी हमारी तरह अपनी माँ की कोख से जन्में अपने पिता की संतान हैं, वे ज्यादा नहीं मांग रहे,' हमें हिजड़ा नहीं , इंसान समझा जाए। बस इतनी सी मांग है।"2

किन्नरो के जीवन जीने के कुछ सिद्धन्त नियम व कानून होते हैं। इनमें आपस में भी कई श्रेणियाँ होती हैं। देह व्यापार में संलग्न किन्नर शादी–ब्याह जैसे अवसरों पर नाच–गाकर पैसा कमाने वाले किन्नरों को अपने से नीचा समझते हैं तो वहीं नाचने–गाने वाले किन्नर सिग्नलों पर भीख माँगने वालों को अपने से नीचे समझते हैं। किन्नर बात–बात पर ताली बजाते हैं। इनकी ताली जितनी बेसुरी होती है उतनी ही मर्म और दर्द से भरी होती है। महेन्द्र भीष्म का कथन है– "किन्नर समाज में सात घर होते हैं जिसका मुखिया नायक होता है, जो गुरू नियुक्त करता है। गुरू का महत्वपूर्ण स्थान होता है किन्नर चाहे वह हिन्दु के घर पैदा हुआ हो मुस्लिम या अन्य किसी धर्म में किन्नर समाज में सम्मिलित हो, वे सभी एक पंथ के गामी बन जाते हैं जो स्व–अर्जित आय का निर्धारित हिस्सा अपने गृरू के चरणों में ईमानदारी के साथ रखते हैं। विवाद की स्थिति में गृरू द्वारा दिए गए आदेश का पालन सभी का परम कर्तव्य होता है।"3

निष्कर्षतः यह कहा जाता है कि तमाम आधुनिकताओं एवं आंदोलनों के बावजूद वस्तुस्थिति यह है कि किन्नर आज भी तिरस्कृत, अप्रिय, अवांछित एवं वर्जित महसूस करते हैं, उन्हें यह अहसास निरंतर दिलाया जाता है कि वह इस समाज में सम्मानित नहीं है। उनके सामाजिक बहिष्करण की झलक का संज्ञान उनका आत्मक्रूरता, हीन–भवना से आत्मग्रसित, आत्मदंडित, विवशतापूर्वक संबंध आदि से भरे जीवन से लगाया जा सकता है। हिन्दी साहित्य और समाज की मानसिकता में आज भी किन्नरों की समस्या पूर्वाग्रह पूर्ण अवस्था में है। हमारी समाज इन्हें स्वीकार करने में आज भी हिचक रहा है, फिर भी समाज इन्हें इनके बारे में भी थोड़ा विचार कर रहा है तथा जल्द ही किन्नर भी समाज में सामान्य लोगों की भांति अपने मानवाधिकारों के साथ अपना जीवन–यापन करने में सफल रहेंगे।

1 यमदीप, नीरज माधव पृ–54
2. किन्नर कथा , महेन्द्र भीष्म, उपन्यास के प्राक्कथन से, पृ–05(सामयिक पेपरवैक्स)
3. किन्नर कथा, महेन्द्र भीष्म, पृ–106

सुमन कुमारी
टेलीफोन/मोबाईल न0–9572011701/8210065076
ई–मेल– `नउंदींतउांनउंतप635/हउंपसण्बवउ
पिन कोड के साथ पता (हिन्दी+इंग्लिश):– मो0– गोपालगंज (टाइगर फिल्ड के समीप), पोस्ट ऑफिस+थाना–सासाराम, जिला–रोहतास (बिहार)–821115
डवी.ळवचंसहंदर ;छमंत ज्पहमत थ्पमसकद्धए च्व्ेज्व्ििपबम.ैंेंतंउए क्पेजतपबज. त्वीजें ;ठपींतद्ध.821115

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 271-276
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रवासी साहित्यकार तेजेन्द्र शर्मा जी की कहानियों में भारतीय समाज का वर्णन

–उधम सिंह

शोधार्थी पी0एच0डी0 (हिन्दी) जे.एस. विश्वविद्यालय शिकोहाबाद उतर प्रदेश।

21 अक्टुबर 1952 को पंजाब के जगरॉव शहर में जन्में तेजेन्द्र शर्मा जी 11 दिसम्ब्र 1998 को एअर ईण्डिया की नौकरी छोड़कर लंदन में जा बसें। वे सर्वप्रथम समाचार वाचक तदुपरान्त बिट्रिश रेल में चालक की नौकरी पर लगें जो लेखन कार्य भारत से आरंभ किया था उसनें विस्तार लंदन में पाया। तेजेन्द्र शर्मा जी ने अपनी कहानियों में समाज के अनेक रूपों का वर्णन किया है। जैसे लड़के–लड़कियों के बीच असमानता, स्वार्थ, लालच, रिश्तों में खोखलापन, ढहती मानयताओं, बनते बिगड़ते मुल्यों, मजबूरी, अकेलेपन देश से बिछड़ने का दुःख तथा संघर्षमय जीवन आदि उनकी कहनियों के विषय रहें हैं। उनके नारी पात्र आन्दोलन करते नजर नही आते बल्कि संघर्ष करतें है तथा अपनी समस्या का समाधान भी निकाल लेते है।

'देह की कीमत' कहानी में विवाह के तय होते समय लड़की की राय ना लेना इस बात का प्रमाण है कि आज भी भारत में लड़कियों को लड़के के समान नहीं समझा जाता है। ''परन्तु शादी विवाह के मामले में बेटियों को नही बोलना चाहिए... इसलिए परमजीत बोलना चाहकर भी कुछ नही बोल पाई''1 । कहानी मे हरदीप को ऐसे भारतीय युवा के रूप में दर्शाया गया है। जो अवैध तरीके से जापान रोजगार की तलाश में जाता है और वहां उसकी दुर्घटना में मृत्यु हों जाती है। उसकी मॉ उच्च हैसियत वाली, अंधविश्वासी, लालची, संवेदनहीन नारी है जों अपनी पढ़ी–लिखी साहसी, समझदार पुत्रबधु के साथ निर्दयी व्यवहार करती है। और बेटे की मृत्यु पर भी शोक न मानकर उसके मृत शरीर के बदले मिलने वाले तीन लाख रूपयों को लेना चाहती है। हरदीप की पत्नी परमजीत कौर जो हरदीप को अवैध रूप से जापान जाने के लिए मना करती है। अब पति की मृत्यु के बाद शोक में डूबी ऑखो से कलश को देख रही है। उसने तीन लाख रूपये का ड्राफट उठाया उसे समझ नही आ रहा था कि उसके पति की देह की कीमत है या उसके साथ बिताए पॉच महीने की कीमत।

'अपराध बोध का प्रेत ' कहानी में उन्होने कैंसर ग्रस्त सुरभि के मुस्करातें चेहरे का जीवंत चित्रण किया है। किन्तु अपने पथ से भटके नरेन के मन में उठते कुत्सित विचारो के अपराधबोध एवं उससे बंधे नरेन का चित्रण कहानी का उद्देश्य स्पष्ट कर देता है कि किस प्रकार पथिक अपनी मंजिल को बिना पहचाने अपने मार्ग का निर्णय नही कर पाता।

'तरकीब ' कहानी के माध्यम से मुस्लिम वर्ग के आदमी के विवाहित जीवन का वर्णन है जो अपनी पत्नी को छोड़ने के लिए तरकीब ढूढं रहा है।

'ढिबरीटाइट ' नामक कहानी में एक ऐसे समाज का वर्णन किया है जहां आज का युवा गुारमीत अधिक पाने की लालसा में विदेशी समान के प्रति आकर्षित होता है और अपना सब कुछ खो देता है। गुरमीत को विदेश में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है और उसकी गर्भवती पत्नी बेटे को जन्म देते समय व बेटी भूख के कारण मर जाती है।

क्हानी में गुरमीत अचानक हंसने लगता है उसके सभी घर के सदस्य चौक पड़ते है क्योकि गुरमीत तो लगभग दो वर्ष से दुःख के गहरे समुद्र में डुबा हुआ था तभी वह अचानक प्रसन्नता के साथ हॅसने व नाचने लगता है। '' करदी सालों की ढिबरीटाइट... खा गया सालों को... उनकी तो मॉ...'' 2 । घर के सभी लोग टेलीविजन के सामने बैठे थे समाचार वाचक ने समाचार पढ़ा '' आज ईराकी फौज ने अचानक कुवैत पर हमला करके उसे अपने कब्जे में ले लिया है... 3। ईराक द्वारा कुवैत पर कब्जा जैसे गुरमीत के जीवन की सबसे सुखद घटना बन गई थी। उसके दुःखी और बैचेन मन को लगने लगा था जैसे उसने स्वंय ही कुवैत पर कब्जा कर लिया हो फिर अचानक गुरमीत जितनी जोर से हॅसा था उतनी ही जोर से रोने लगा।

दारजी ने अपने बेटें गुरमीत को सॅभाला। गुरमीत की मॉ का एक वर्ष पहले ही स्र्वगवास हो गया था। दारजी समझ नही पा रहे थे कि वह दुःखी हो या प्रसन्न। एक तरफ उनका बेटा गुरमीत रो रहा था दूसरी तरफ प्रसन्नता इस बात की थी बेटा दो वर्ष बाद बोला तो। गुरमीत कुछ बोलता तभी तो उसका र्दद दिखाई देता। गुरमीत के पिताजी सोचते है '' दर्द भी तो गुरमीत ने स्वयं ही मोल लिया था। अच्छा खासा घर था खेतीवाड़ी थी, यह सब छोड़कर गया ही क्यो वह ? ''4 । अधिक पाने की चाह में जो कुछ था वह भी तो लुट गया। मनुष्य संतुष्ट क्यो नही रह पाता ? क्यों अधिक से अधिक पा लेना चहाता है। गुरमीत कें भी कई मित्र जो विदेश हो आये थे। उनकी कहानियां , कारों की दास्ता , सोने की दुकाने , सब गुरमीत को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। कुछ समय पहले कुलवंत कौर से उसकी शादी हुई थी। अब गुरमीत अपनी गर्भवती पत्नी तथा परिवार वालो को छोड़कर कुवैत चला गया गुरमीत तो तरसेमलाल को दिखाना चाहता था कि वह भी विदेश जा सकता है आठवी पास तरसेमलाल ने दुबई में नौकरी का जुगाड़ बैठा लिया था। उसका घर विदेशी चीजों से भरा हुआ था। गुरमीत ने इन सब चीजों को देखकर विदेश जाने का निर्णय लिया था। दारजी तथा उसके बड़े भाई के समझाने का उसपर कोई असर नहीं था। फिर ट्रेव्हल एजेन्ट ने पहुचा दिया उसे कुवैत। गुरूमीत को वह जाने से पहले मेरे पास बंबई आया था। मै स्वयं उसे कुवैत छोड़ने गया और वहां अपने दोस्त दिनेश बतरा से मिलवा दिया था। गरमीत ने अपने सरल स्वभाव और व्यवहार के कारण वहां अपने आपको सुव्यवस्थित कर लिया था। परन्तु लाख चाहने पर भी गुरमीत अपनी पुत्री के जन्म पर अपने गॉव जगरॉव नहीं जा पाया। विदेश में छुट्टी अपनी मर्जी से नही मिलती है। विदेश में कोई डाकियां नहीं होता स्वयं पोस्ट बॉक्स से अपनी चिटिठ्यॉ निकालनी होती है। जब मै कुवैत फिर से गया तो मैने देखा '' गुरमीत की ऑखों में एक दर्द की टीस सी उभरी। कुलवंत की याद और बिन देखी गुड्डी की प्यारी सी शक्ल जहन में उभरी। आपने तो गुड्डी को देखा है न जी ? किस पर गई है फोटो से तो कुछ पता नही चलता ''। गुरमीत मेरी ऑखो में कुलवत और गुड्डी की छवि देखने की चेष्टा कर रहा था। फिर मुझे कुछ दिनों बाद पता चला कुलवंत और गुड्डी भी कुवैत पहुच चुके है। एक दिन दिनेश ने फोन पर बताया की तुम कुवैत आ जाओ। मैं जब कुवैत पहुंचा तो दिनेश के घर गुरमीत बिल्कुल पत्थर की मूरत की तरह बैठा था। फिर मैं दिनेश और गुरमीत के साथ उस रास्ते पर गया जहां सब कुछ घटित हुआ

था। गुरमीत की ऑखों में पहले आतंक , खलीपन और सुनापन उस दिन की घटना सुनाते दिख रहे थे कुलवंत मॉ बनने वाली थी। उसने गुरमीत से कहा भी '' सुनो जी आज काम पे ना जाओं। लगता है आत हस्पताल जना पड़ेगा ''6 । तो मैने भी उससे कह दिया '' ओ भगवाने डरने की क्या गल है ? ये फोन रख्या है न, बस कर देना। मै गोली बांग भजया आऊॅ । डरीदा नहीं होदा ''7 । कुलवंत को प्रसव वेदना शुरू हुई तो उसने गुरमीत के पास फोन किया। गुरमीत ने जल्दी से खुशी में गाड़ी के एक्सीलेटर पर पैर का दबाव बढ़ा दिया। तभी रास्ते में पुलिस ने तेज गाड़ी चलाने के जुर्म में उसे पकड लिया। उसने अपनी टुटी फुटी अंग्रेजी व अरबी में पुलिस को समझाया , मिन्नतें मांगी , गिडगिडाया की उसकी पत्नी की डिलीवरी होने वाली है परन्तु पुलिस नें उसे चार दिन तक बंद रखां। गॉव की लड़की कुलवंत परदेश में अकेली गुरमीत की प्रतिक्षा कर रही थी। उसनें अंत मे दिनेश के घर भी फोन किया परन्तु किसी नें फोन नहीं उठाया। गुड्डी के जन्म पर तो मॉ के घर उसे कुछ सोचना नहीं पड़ा था। दर्द बढता रहा था तो वह अपने कपड़े उतारकर पलग पर लेट गई। गुड्डी मॉ की हालत देखकर रोने लगी कुलवंत दर्द से चीख रही थी । जब तक लड़के ने जन्म लिया वह सदा के लिए बेहोश हो गई। गुड्डी ने जैसे मुन्ना को हाथ लगाया तो उसे चिपचिपाहट महसूस हुई। गुड्डी घबरा गई। दरवाजा खेलना चाहा परन्तु नहीं खोल पाई। गुड्डी ने भूख के कारण फ्रिज खोलने का प्रयास किया परन्तु वह फ्रिज भी नहीं खोल पाई। गुड्डी ने अपनी मॉ को जगाने की कोशिश की कर परन्तु मुन्ना व कुलवंत तो सदा के लिए गहरी नींद में सो चुकें थे। गुड्डी ने फिर से खाना ढूडा और ना मिलने पर रोने लगी। जब चौथे दिन गुरमीत रिहाई के बाद घर पंहुचा तो उसने देखा कुलवन्त व बच्चे की नंगी लाशे पड़ी है। गुड्डी भी फ्रिज के पास पड़ी थी। गुरमीत दहाडा '' मै तुमहे जिन्दा नहीं छोडूॅगा। एक–एक को मार डालूगा... सबको चुन–चुन कर मार डालूगा व चिलाये जा रहा था ''8 । मैने और दिनेश ने गुरमीत को समझाया अब गुरमीत वापस अपने देश दारजी के पास आ गया। गुरमीत सब कुछ सह जाने व कुछ न कर पाने की असमर्थता के कारण गुरमीत भी भीतर ही भीतर चुप्पी ओढ़े घुटता रहा। व चुप्पी आज ईराक का कुवैत पर कब्जा करने के समाचार को सुनकर टुटी। वह खुशी से चिल्ला उठा '' कर दी सालों की ढिबरीटाइट ''9 ।

''एक ही रंग '' नामक कहानीं में आज के समाज में व्यापत रिश्वतखोरी , करपशन को सुदर्शन नाई के माध्यम से उजागर किया है। तथा बाबू राम के माध्यम से यह भी दिखाया गया है कि किस प्रकार लोगो को अच्छा काम प्यारा है। लोगो का व्यवहार बुरे वक्त में कैसे बदल जाता है।

कहानीं में जय हिन्द स्कूल जो अधा मुगल क्षेत्र में स्थित था उसकी दिवार उठाने की चर्चा सुबह–श्याम चारों तरफ थी। अच्छे स्कूल को जेल क्यों बना रहीं है सरकार। कुछ लोग कह रहे थे यह सब रिश्वत खोरी , खाने–पीने के सरकारी विभाग कार्पोशन के धंधे है। बच्चे व मास्टर भी इस दिवार से खुश नहीं थें। क्योकि बच्चों का स्कूल से भागना बन्द हो जायेगा। वहीं दूसरी तरफ कुछ लोग दिवार की तारीफ भी कर रहे थे कि अब तो बच्चे स्कूल से नहीं भागेगे। लोग तरह–तरह की दीवार के बारे में बाते कर रहें थे । परन्तु सुदर्शन नाई दीवार में अपना भविष्य देखकर मन ही मन कार्पोरेशन और प्रिंसिपल को दुआ दे रहा था । पुजी के नाम पर कुछ खास सामान नहीं था। उसके पास ''एक पुरानी सी कुर्सी–दुनियॅा की एक मात्र कुर्सी जिसे छोड़ने पर सभी चैन की सांस लेते थे। एक पुराना सा शीशा जो जगह–जगह से धुॅधला पड़ चुका था और एक पुरानी सी सन्दुक जिसमें उससे भी पुराने औजार रखें रहतें ''10। सुदर्शन नाई अपने इस पुराने सामान के सहारे सें अपनी

गृहस्थी की गाडी को चला रहे थे। जब दिवार बनने लगी तो रिश्वतखोरी के पैसों (मॉल) में से सभी को ऊपर से नीचे तक हिस्सा बट रहा था। सुदर्शन नाई ने भी अपने फायदे के लिए दिवार मे रिश्वत देकर मोड़ लगवा दिया ताकि वहां एक बिना किवाड की छोटी सी दुकान निकल सके। दिवार बनने के बाद सुदर्शन नाई ने सीमेंट की दो चादरें डलवाकर गेट चढवा दिया। वह अब एक दुकान का मालिक बन गया अब सुदर्शन पर पूरे दिन एक बात की चर्चा रहती ''दिवार कैसे कटवाई , सीमेन्ट की शीट कहा से लाया , कौन से कवाडीये से दरवाजा लिया ''11 । अब सुदर्शन सोचने लगा की अब तो उसके गरीबी के दिन कट गये है वह अब दुकान वाला हो गया। व लाला मुकंदलाल से बोला '' ऐसी मौके की दुकान तो पगड़ी पर भी नहीं मिलती...लालाजी जरा दिवारें तो देखिये...खास ओवरसियर से कह के सीमेन्ट भरवाया है ''12   वहीं पलभर बाद लाला के सामने घिघयाने लगा लाला जी आप लोगो का आशीर्वाद बनाये रहें तो हम जैसे गरीबो के दिन भी कट जायेगें । हमारे तो भगवान आप ही हो। तभी लाला के बाद चन्द्रभान आ गये उनसें भी सुदर्शन उसी प्रकार की बाते दोहराता रहा। तभी समय बदला और उसकी दुकान के बगल में बाबूराम नाई ने खोखा खोल दिया। अब धीरे–धीरे ग्राहक बाबूराम के पास जाने लगे। बाबूराम का खोखा सैलून की तरह दिखता तथा बाबूराम सफाई से भी काम करता था। एक दिन चन्द्रभान ने सुदर्शन नाई से कहा '' बहुत दिन गुजार लिये सादगी में अब सजावट और बनावट का जमाना है। बाबूराम की दुकान कभी देखी है कितनी साफ–सुथरी है '' 13 । अब सुदर्शन ने भी अपनें कपडें व दुकान का सामान बदल दिया। परन्तु फिर भी ग्राहक उसके पास नहीं आयें तो वह बाबूराम को मारने की सोचनें लगा। फिर उसने स्कूल के मास्टरों से भी झगड़ा कर दिया। प्रिंसिपल ने उसकी थानेदार से शिकायत कर दी थानेदार बोला '' हरामजादे तेरी शिकायत आई तो बंद कर दूगां।... एक गैर कानूनी खोखा बना रखा है '' 14 । सेठ लक्ष्मीदास... के पास गया परन्तु अब लाला की मद्द किसने नहीं की। एक दिन नगर निगम वाले आकर सुदर्शन की दुकान तोड़ गए। फिर से रोटी का जुगाड़ करने सुदर्शन नाई पेड़ के नीचे बैठ गया। अब उसे लगा की दिवार का रंग , सूरज का रंग व उसके ऑसूओं का रंग एक ही है।

' भॅवर ' नामक कहानी भारतीय समाज के भरत नामक एक ऐसे युवक का वर्णन किया है जो अपनी पत्नी स्मिता के होने के बाद रमा से संबध बनाने के बाद सही गलत के भॅवर में फॅसा हुआ है। वहीं दूसरी तरफ रमा ऐसी नारी का प्रतिनिधित्व कर रही है जो संतान प्राप्ति के लिए दूसरे पुरूष से संबध बनाती है। कहानी में भरत का सिर दर्द बढ़ता जा रहा था क्योकि उसके पास रमा का फोन आया की वह मॉ बनने वाली है। तभी से भरत सोच में डूबा हुआ था तभी उसकी पत्नी स्मिता भरत के लिए कॉफी बनाकर लाई उसके घर मे दो बच्चे मिंकू और चिंकू भी थे। जिनकी नीली ऑखे तथा शक्ल भरत से हूबहू मिलती है। तभी स्मिता स्वयं रमा के बारे में पूछ लेती हैं '' अब की बार लंदन में रमा और इन्दर से मिले '' 15 । इन्दर ने अपनी पत्नी को बताया की रमा तो मॉ बनने वाली है। स्मिता भरत से कहती है '' पर रमा तो कुछ और ही बता रही थी अपने पति के बारे में '' 16 । स्मिता और भरत का प्रेम विवाह हुआ था वे दोनो एक ही कॉलेज में पढ़ते थे। अब भरत अपनी पत्नी इतनी बड़ी बात कैसे छुपायें। भरत सोचनें लगा '' इतने बड़े विमान में वह रमा की ओर ही क्यों आकर्षित हुआ ''18 । क्या रमा बहुत सुन्दर थी। क्या रमा का पति इन्दर फलाइट में उसके साथ होता तो क्या उसकी बातचीत रमा से शुरू हो पाती। जो हुआ सही हुआ। सही क्या है गलत क्या है ? यह सब बाते भरत को बेईमानी लग रही थी। फिर एक सवाल ने भरत को हिला डाला '' क्या वह पछता रहा है ? क्या वह स्वयं को अपराधी महसूस

कर रहा है '' 19। रमा ने भरत को फलाइट में ही अपने घर का नबर दे दिया था और घर आने को कहा था '' हम तो लंदन में भी पंजाब में रहते है साउथ हॉल में ''20। रमा ने फलाइट पर भी उससे कहा था '' तुम्हारे मिलने की खुशी में एक गिलाश ले रही हूँ। ... आमतौर पर किसी खुशी के मौके पर एक आधा गिलास ले लेती हूँ ''21। रमा के व्यक्तिव का खुलापन भरत को अच्छा लगा था परन्तु रमा की ऑखों में विचित्र सी भावना थी। एक दिन पहुच गया रमा के घर। इन्दर घर पर ही था इन्दर ने गिलास में बियर डाल ली परन्तु भरत ने कहा वह शराब नहीं पीता '' अरे , अब तुम एयर लाइन वाले ही पीना छोड़ दोगे , तो दुनिया का क्या बनेगा '' 22। तीनो बाते कर रहे थे घर में और कोई नहीं था। भरत ने कहा तुम दोनों नें विदेश में भी फैमली प्लैनिंग पर रोक क्यों लगा रखी है। वातावरण आशा के विपरित बोझिल हो गया हो शीघ्र ही सहज। रमा की ऑखों में नमी थी। वे दोनो भरत को छोडने उसके होटल तक गए। रमा ने स्मिता के लिए साड़ी और बच्चों के लिए खिलौने भरत को दिये काफी देर तक रमा की ऑखे भरत को याद आती रही '' उन ऑखों में क्या था ? भरत किसी निष्कर्ष पर नही पहुच पाया था '' 22 ।

परन्तु रमा की ऑखों मे ऐसा कुछ था जो भरत को बेचैन कर रहा था। दोस्ती कब घनिष्ठता में बदल गई पता ही नही चला। रमा भारत आई तो स्मिता व बच्चों के लिए अनेक सामान लेकर आई। स्मिता ने भरत से कहा '' इतना सामान कैसे रख लू में हम तो इतना कर भी नही सकते '' 23 । रमा ने यह बात सुन ली वह बोली '' स्मिता पराया ना समझों। तुम लोगों का साथ मुझे भाता है '' 24। रमा के एहसान भरत पर एक बोझ की तरह बढ़ते जा रहे थे। इस बार अब भरत से लंदन में जब रमा को फोन किया तो रमा स्वयं ही उसे होटल में मिलने के लिए कहने लगी। अब भरत मन ही मन खुश भी था और हैरान भी। प्रतीक्षा कि घड़िया बहुत कठिन होती है। भरत ने कापते हाथों से दरवाजा खोला सामने रमा एक दुल्हन की तरह सजी अकेली खड़ी थी रमा मुस्कराई और बोली अन्दर नही बुलाओगें। रमा को भरत ने अन्दर बैठाया। थोड़ी देर तक दोनो चुप बैठे रहे। रमा ने चुप्पी तोड़ी '' हैरान तो होगे की अचानक तुम्हारे होटल में अकेली क्यों चली आई ''25 । भरत के पूछने पर रमा ने बताया इन्दर ऑस्ट्रिया गया है। तुम तो यहां तीन दिन के लिए रूकने वाले हो। दोनो पास बैठ गये। दोनो की ऑखों में लाल डोरे तैरने लगे थे। रमा तड़प से पीछे हट गई। '' भरत में इसर विषय में तुमसे बात करना चाहती हूँ । मैने हमेशा ही तुम्हारी ऑखों में एक विशेष भावना , अपने बारे में महसूस की है ? यह भी जानती हुं इस समय तुम्हे रमा की नहीं उसके शरीर की जरूरत है ... ''26। मै भरत तुम्हारे परिवार को टूटने नही दूँगी। मगर इन्दर के साथ रहते हुए भी मै बहुत अकेली हूँ ''इन्दर मुझे जीवन में सब सुख दे सकते है मगर जीवन का सबसे महत्वपूर्ण सुख नही दे सकते ... वह मुझे संतान का सुख नही दे सकते ... वह मुझे मॉ नही बता सकते ...''27। भरत मुझे अपनी निशानी एक बच्चा दे दो। हमारे शरीर केवल बच्चे के लिए मिलेगें। '' यह सब यहां इस होटल में नही होगा ... यह होगा मेरे घर में। मै इसे पाप की तरह नहीं करना चाहती ''28। बोलो क्या तुम्हे मंजूर है। रमा भरत के हाथ को पकड़ कर अपनी कार की तरफ चल दी भरत सही गलत की भॅवर में फंसा हुआ था। अब वह एक ऐसे गहरें भॅवर में डूबा जा रहा था जिससे बाहर निकलना असम्भव था स्मिता ने भरत के कंधे पर हाथ रखा , भरत सोच से बाहर आया। मिंकू चिंकू भी सो चूके थे। फिर से भरत सोचने लगा की यदि रमा के बच्चे की ऑखे नीली हुई और उसका चेहरा भरत से मिला तो वही स्मिता का सामना कैसे करेगा। अब वह ऑखे बंद करके सोने का प्रयतन करने लगा।

तेजेन्द्र शर्मा जी रचनायें आज के समाज में व्यापत , प्रेम , सामाजिक संबध , खोखलेपन , स्वार्थ पर आधारित रिश्ते , ढहती मान्यताओं , मजबूरी , अकेलापन , देश से बिछड़ने का दुःख आदि का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है। भले ही लेखक का निवास विदेश है परन्तु अपनी संस्कृति और संस्कारों के साथ ही स्वदेश की यादे उन के मन में हमेशा बसी है। जो उन्हे लेखन के लिए उद्वेलित करती है। स्प्ष्ट है कि तेजेन्द्र शर्मा जी ब्रिटेन के सफल भारतीय प्रवासी हिन्दी साहित्यकार के रूप में महत्वपूर्ण हस्ताक्षर माने जाते है।

संदर्भ

1. देह की कीमत , तेजेन्द्र शर्मा , वाणी प्रकाशन , दिल्ली , द्वितीय संस्करण 2007 , पृष्ठ–9
2. ढिवरीटाईट , तेजेन्द्र शर्मा , वाणी प्रकाशन , दिल्ली , प्रथम संस्करण 1994 , पृष्ठ–9
3. वही, पृष्ठ –9
4. वही, पृष्ठ–10
5. वहीं, पृष्ठ–13
6. वहीं, पृष्ठ–16
7. वहीं, पृष्ठ–16
8. वहीं, पृष्ठ–19
9. वहीं, पृष्ठ–19
10. वहीं, पृष्ठ–21
11. वही, पृष्ठ–21
12. वही, पृष्ठ–22
13. वही, पृष्ठ–25
14. वही, पृष्ठ–26
15. वही, पृष्ठ–31
16. वही, पृष्ठ–32
17. वही, पृष्ठ–33
18. वही, पृष्ठ–34
19. वही, पृष्ठ–34
20. वही, पृष्ठ–34
21. वही, पृष्ठ–35
22. वही, पृष्ठ–36
23. वही, पृष्ठ–37
24. वही, पृष्ठ–37
25. वही, पृष्ठ–38
26. वही, पृष्ठ–39
27. वही, पृष्ठ–40
28. वहीं, पृष्ठ–40

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 277-281
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियो में स्त्री चेतना

–उज्ज्वल राठौर
पीएच.डी. (शोधार्थी), हिन्दी साहित्य सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बड़ी (राजस्थान)

सारांश :–

हमारे समाज में कहानी का प्रचलन प्राचीन काल से ही चला आ रहा है, पहले यह मौखिक रूप से था। कहानी की सामाजिकता के विशय में अमृतराय ने लिखा है– ''किस्सा कहने का सुनने की आदिम भूख से ही कहानी का जन्म हुआ है, और अपने इस जन्मजात गुण या स्वभाव की रक्षा करके ही वह जीवित रह सकती है। क्योंकि कहानी सामाजिक विधा है, जन्म से ही। एक आदमी कहानी कहता है, दूसरा आदमी सुनता है और यही कहानी की सामाजिकता का आधार है।''1 हमारा समाज स्त्री–पुरूश से मिलकर बना है, दोनो में से एक न हो तो समाज अधूरा है। मनुश्य एक सामाजिक प्राणी है और अपनी प्रत्येक आवष्यकताओं की पूर्ति वह समाज से ही पूरी करता हैं।

मैत्रेयी पुश्पा का स्थान समकालीन कहानिकारें में अग्रगण्य हैं। वह समाज में स्त्री–पुरूश संबधों में समानता की पक्षधर है। वह चाहती है कि स्त्री–पुरूश की अनुगामी न होकर बल्कि उसकी सहचारणी या सहयोगी बने। हमारा समाज पुरूश प्रदान समाज है, इसलिए पुरूश स्त्री के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार करता है। मैत्रेयी पुश्पा स्त्री को दोयम दर्जे के व्यवहार से मुक्त करवाना चाहती है। मैत्रेयी पुश्पा का मानना है कि स्त्री के साथ होने वाले भेदभावों से मुक्ति उसे अपनी भीतर की सोई हुई चेतना को जागृत कर एंव पुरूश की सोच बदलने से भी मुमकिन है। अगर पुरूश स्त्री को अपनी सहचर मान ले तो स्त्री के विकास के मार्ग अपने आप बनते चले जाऐगे। पुरूश की ऐसी सोच नव समाज का निर्माण करेगी जिसमें स्त्री–पुरूश, एक–दुजे के समकक्ष होगे। मैत्रेयी पुश्पा की कहानियॉं स्त्री चेतना को जागृत करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान निभाती है। प्रस्तुत षोध पत्र में उनके कथा साहित्य में स्त्री चेतना की पडताल की गई हैं।

मूल षब्दः मैत्रेयी, स्त्री चेतना, सामाजिकता, दोयम दर्जा, समकक्ष।

प्रस्तावना :–

'साहित्यकार' साहित्य लेखन के द्वारा समाज को यथार्थ बताता है। साहित्य अपने समाज का मार्गदर्षन करना है, इसलिए एक साहित्यकार का कर्तव्य होता है कि वह यथार्थ लिखे और मानवीय जीवन के प्रत्येक पहलू पर प्रकाष डाले। मनुस्मृति में लिखित पंक्तियां "यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता"2 समाज में स्त्री के पूज्नीय स्थान पर प्रकाष डालती है। हमारे भारतीय समाज में स्त्री को देवी स्थान प्राप्त था। उसे पुरूष के समकक्ष अधिकार प्राप्त थे। हमारे समाज में स्त्री शक्ति का रूप थी, आज वही स्त्री अबला बनकर रह गई है। हमारी

सामाजिक व्यवस्था में आए परिवर्तन के कारण स्त्री के जीवन में भी अनेक परिवर्तन आए हैं। पितृसतात्मक समाज ने स्त्री को दोजम दर्जे का जीवन जीने को विवश किया हैं। पितृसतात्मक समाज ने स्त्री को सुरक्षित रखने के नाम पर ऐसे समाज की व्यवस्था की, जो स्त्री को घर की चार दीवारी में बंद कर पिछडेपन की तरफ ले गई।

स्त्री मृक्ति के लिए अनेक आंदोलन चलाए गए। साहित्यकारों ने भी अपने साहित्य का केन्द्र बिन्दु स्त्री को बनाया, जिसमें पुरूष एवं स्त्री साहित्यकारों ने अपना पूर्ण योगदान दिया। मैत्रेयीा पुष्पा ने अपनी रचनाओं में स्त्री की प्रत्येक व्यथा का चित्रण किया हैं। उन्होने अपने साहित्य के माध्यम से स्त्री को सषक्त बनाने का प्रयास किया है मैत्रेयी पुष्पा स्त्री को पुरूष की सहगामिनी बनना चाहती है। वह स्त्री के भीतर चेतना जागृत कर उसे समाज में सम्मानजनक स्थान प्रदान करवाना चाहती है।

चेतना का अर्थः—

चेतना शब्द दो शब्दों के मेल से बना हैं चेत + ना (प्रत्यय)। जिसका अर्थ है बुद्धि, याद, चैतन्य, स्मृति, मनोवृति आदि। चेतना शब्द की उत्पति चितसंज्ञाने धातु में युच, अन, टाप प्रत्यमों के संयोग से हुई है। जिसका अर्थ है मन की वह शक्ति जिससे प्राणी के आन्तरिक विचारों, अनुभूतियों तथा बाह्य घटनाओं, तत्वों का अनुभव होता है। चेतना को अंग्रेजी भाषा में ब्वदेबपवनेदमे कहते हैं।

चेतना की परिभाषाः—

चेतना शब्द लिखने और कहने में तो सरल एंव सूक्ष्म है। परंतु इसको परिभाषित करना सरल कार्य नहीं है। फिर भी विद्वानों ने अपने दृष्टिकोण से इस शब्द को परिभाषित करने का प्रयास किया है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 13, श्लोक 34 में लिखा गया हैः—

”यथा प्रकाषयत्मकः कृत्सनं लोकमिमं रविः
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।“3

अर्थाथ जिस प्रकार सूर्य संपूर्ण ब्रह्यण्ड को प्रकाशित करता है उसी प्रकार शरीर के अंदर विद्यवान आत्मा पूरे शरीर को चेतना से आलोकित करती हैं।

डा0 रामप्रसाद त्रिपाठी के अनुसारः—

”चेतना जीवधारियो में रहने वाला वह तत्व है जो निर्जीव पदार्थो से भिन्न बनाता है“4

समग्रतः हम कह सकते है कि प्राणी मात्र के मस्तिष्क की क्रियाशीलता ही उसकी चेतना है। यह एक ऐसा तत्व हैं जो प्राणी को निर्जीव जड पदार्थो से भिन्न बनाता हैं। चेतना ही मनुष्य के भीतर सोचने—समझने की क्षमता को उत्पन करती है जिसे हम विचार शक्ति कह सकते हैं।

स्त्री चेतना से अभिप्रायः—

स्त्री चेतना से अभिप्राय है स्त्री के अंदर जागृत होने वाली ऐसी शक्ति जो स्त्री के अंदर सोई हुई चेतना को जगाने का प्रयास करती हैं। स्त्री को सोचने—समझने पर विवश करती हैं और उसे उसके अधिकारों एंव कर्तव्यों के प्रति जागरूक करवाती हैं। विचारणीय बात अवश्य हैं, स्त्री चेतना की आवष्यकता क्यों पडी? समाज में कभी पुरूष चेतना का प्रश्न तो खडा नहीं हुआ। इन सवालों के जवाब के लिए स्त्री चेतना को जानना अति आवश्यक हैं। स्त्री के भीतर एक ऐसी शक्ति जो उसे मॉ दुर्गा से मॉ काली तक बनाती हैं। स्त्री को रूढिवादी विचारों, परम्पराओं से मुक्ति दिलाने के लिए सबसे आवश्यक हैं उसकी मानसिक चेतना को जागृत करना। चेतना जागृत

होने पर ही वह अपने अस्तित्व को समझ पाऐगी और अपने साथ होने वाले अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाऐगी। आज स्त्री चेतना के कारण ही स्त्री ने समाज में अपना विषेष स्थान बनाया है। वह हर क्षेत्र में चिकित्सा, साहित्य, कला, कानूनी आदि सब में अपना योगदान दे रही है। आज स्त्री राष्ट्र के विकास में पुरूष के कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य कर रही है। राष्ट्र के विकास के लिए आवष्यक है स्त्री–पुरूष को समान अधिकार दिए जाए, उनके भीतर किसी भी तरह का भेदभाव न हो, स्त्री को अपने वर्चस्व को कायम रखने के लिए अपनी चेतना को जगाऐ रखना होगा। अगर रूढ़िवादी, परम्परावादी सोच से मुक्ति दिलानी है तो उसे स्वयं प्रयास करने होगे। चित्रा मुद्गल ने स्त्री मुक्ति के लिए स्त्री को ही प्रमुख मानते हुए लिखा हैं– "अपनी पारम्परिक छवि से स्त्री को उन आईनों से अगर कोई मुक्त करता है तो वह और स्वयं।"5

मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य में स्त्री चेतनाः–

बीसवी शताब्दी के अंतिम वर्षो में मैत्रेयी पुष्पा ने साहित्यजगत को नई दिषा प्रदान की। उन्होंने अपने साहित्य का केन्द्र बिन्दु स्त्री को रखा। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने साहित्य के माध्यम से मानसिक गुलामी से मुक्ति की इच्छा रखने वाली स्त्रियों का वर्णन किया हैं मैत्रेयी जी का जन्म ग्रामीण परिवेष में हुआ था और उसी परिवेश में हुआ था और उसी परिवश में जीवन बीता इसलिए उनकी लेखनी में भी ग्रामीण परिवेश की स्त्रियों की पीड़ा का वर्णन हैं। उन्होंने बी0 ए0 करते समय ही लिखना प्रारंभ कर दिया था। उनकी पहली कविता थी 'बाड़े की औरते' यह कविता उन्होंने अपने बांड़े में रहने वाली औरतों के ऊपर लिखी थी। जिसे पढ़कर बाड़े के लोग भड़क गए क्योंकि इसमें बाड़े में रहने वाली औरतों के जीवन का सच था। अपने बेवाकी से लिखने के पक्ष में मैत्रेयी जी लिखती है– "जो लिखूँगी, सच ही लिखूँगी, बेशक जिसे देखकर खुद ही सन्न रह जॉऊ। और सजा भी मिले। सजा इसलिए मिलेगी क्योंकि औरतों की ऐसी छवि बनेगी कि पुरूषों की इज्जत को खतरे......... परिवारें के खम्भे हिल उठेंगे।"6

मैत्रेयी पुष्पा जी ने अपने साहित्य के पात्रों को वास्तविक जीवन से लिया है। उनका साहित्य कल्पना पर आधारित न होकर यथार्थ पर आधारित हैं। अपने सच लिखने के इरादों को प्रकट करते हुए वह लिखती है– "मै लिखूंगी, सिकुर्रा की स्त्रियां न मीरा है न महादेवी, वे हैं चंदना और कलारिन गीत कथाओं की स्त्रियां.......... वे न अदृश्य के आलम्बन रच पाई न ईष्वर की अदृष्य सता का सहारा लिया मामूली औरतें मामूली इच्छाओं के लिए कत्ल हुई तो कभी परित्याग किया।"7 उन्होंने बिना किसी डर से समाज में स्त्री की वास्तविक जीवन का वर्णन किया है। उन्होंने स्त्रियों की चुनौतियों एंव समस्याओं का स्त्री पात्रों द्वारा चित्रण किया हैं। उनके साहित्य के स्त्री पात्र अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु समाज के बेबुनियाद नियमों को तोडने के लिए सदैव तत्पर रहती है। मैत्रेयी पुष्पा लिखती है– "जेवर गहना बासन और बेटी मुसीबत के समय काम आते है। अब तू मेरी खरीदी हुई।"8 भारतीय समाज पुरूष प्रदान समाज है। स्त्रियों को समाज में दोजम दर्जा प्राप्त है उसे बचपन से ही मर्यादा में रहने के गुण सिखाए जाते है। "भट्टी धोत, बाप भेया नही तो तू ऐसी मनु जीमार भई जा रही है कि मर्द डरे जनी के लच्छिन कब सीखेगी" हमारे समाज में बनी पितृसतात्मक व्यवस्था ने स्त्री को हमेषा अंधकारमय जीवन जीने को मजबूर किया है इसलिए उसे समाज में डर कर जीना जीने के गुण सिखाने की बात की जाती है। लेकिन आज की स्त्री ने अपने भीतर की चेतन शक्ति को जागृत कर, अपने अच्छे–बुरे का ज्ञान प्राप्त कर लिया हैं।

मैत्रेयी पुष्पा का मानना है कि स्त्री मुक्ति व स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंद आचरण या देह प्रदर्षन नहीं बल्कि संविधान द्वारा दिए गए अधिकारों को पुरूषों के समान उपयोग करने से हैं। मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं में भले ही ग्रामीण स्त्री को चित्रित किया गया है परन्तु वह अपना जीवन समाज में सम्मान एंव स्वतंत्र होकर जीना चाहती हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने लिखा हैं–"स्त्री–'पुरूष जन्मतः स्वतंत्र है, अतः दोनों को भी नैसर्गिकतः समान अधिकार उपभोगने की सुविधा होनी चाहिए।"9

मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी कहानी 'राय प्रवीण' में सावित्री के पिता के माध्यम से एक पुरूष की सोच अपनी ही बेटी के प्रति बताई गई है कि किस प्रकार वह बेटी को बोझ समझकर, उसका विवाह किसी भी व्यक्ति से करवाकर छुटकारा पाना चाहता है। वास्तविक्ता यह हैं बेटी को बोझ समझने के कारण ही समाज में दहेज प्रथा, बाल विवाह, बेमेल विवाह, विधवा, कन्या भूण हत्या आदि समस्या का जन्म हुआ हैं। "मैं तब तक लड़का खोज लूँगा इसके लिए। वहॉ बदचलनी करेगी तो अपने आप दागेगा। मेरा जीना हराम कर दिया। यह बेटी के रूप में नागिन चंडालिनी.......... कारगर उपाय–केवल व्याह। एक हाड मांस का मर्द मिल जाए बस। वे इस वजनी गठरी को उसके दरवाजे पटकाकर गंगा नहा जाएँगे।" 9मैत्रेयी पुष्पा ने 'बहेलिया' कहानी में स्वार्थ सिद्ध चाचा के द्वारा अपनी भतिजीयों का बेमेल विवाह का विभत्स चित्रण किया हैं। अपने लालच एंव दहेज के खर्चे से बचने के लिए वह अपनी भतिजीयों का जीवन नरक बना देता हैं।

मैत्रेयी पुष्पा ने 'बारवही रात' कहानी के माध्यम से समाज में फैल रही दहेज प्रथा को विरोध किया हैं। उन्होंने कहानी के माध्यम से प्रत्येक स्त्री को जागरूक करने का प्रयास किया है कि वह दहेज जैसी कुप्रथा का विरोध स्वयं आगे आकर करे। मैत्रेयी पुष्पा समाज में लड़कियों के प्रति होने वाले बलात्कार जैसे जगन्य अपराध का विरोध करने से भी पीछे नहीं रही हैं। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से एक पीड़ित स्त्री की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है कि किस प्रकार बलात्कार की षिकार स्त्री को समाज एंव परिवार के सदस्य घृणा एंव तिरस्कार की दृष्टि से देखते है और वह आत्मग्लानी एंव पापबोध के कारण अपनी जीवन लीला समाप्त करने को विवष हो जाती हैं। इस प्रकार समाज निर्दोष को गुन्हेगार बना देता है और दोषी खुलेआम समाज में घुमता रहता हैं। जब तक परिवार एवं समाज वाले बलात्कार का कारण एक स्त्री को मानते रहेगे तब तक इस घनौने अपराध से स्त्रियों को मुक्ति नहीं मिलेगी।

उपसंहारः–

मैत्रेयी पुष्पा ने समाज में स्त्रियों के साथ–होने वाले भेदभावों एवं अपराधों के प्रति खुलकर आवाज उठाई हैं। उन्होने अपनी कहानियों के माध्यम से पुरूष प्रधान समाज की व्यवस्था को सबके सम्मुख लाकर रख दिया हैं कि किस प्रकार पुरूष समाज मान मर्यादा की आड में स्त्री को दबाकर रखता आया हैं और आगे भी रखना चाहता हैं। स्त्री प्राचीनकाल से ही समाज द्वारा शोषित होती रही है, उसे कभी देवी बनाकर और कभी दासी बनाकर उसी के स्वरूप से दूर किया गया है। इन्ही परम्परागत सामाजिक परम्पराओं, बेड़ियों, अंधविष्वासो आदि से स्त्री को निजात दिलाना ही स्त्री चेतना हैं।

सदंर्भ सूची

1. अमृतराय, हिन्दी कहानी पहचान और परख, पृ0 76

2. मनुस्मृति, अध्याय 3, श्लोक 56
3. श्रीमद्भगवतगीता, अध्याय 13, श्लोक 34
4. डॉ, रामप्रसाद त्रिपाठी, हिन्दी विष्वकोष, पृ0 282
5. चित्रा मुद्गल, तहखानों में बंद अक्स, पृ0–10
6. मैत्रेयी पुष्पा, गुडिया भीतर गुडिया, पृ0 98
7. वहीं, पृ0 241
8. मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी, पृ0 98
9. मैत्रेयी पुष्पा, गुडिया भीतर गुडिया, पृ0 195
10. मैत्रेयी पुष्पा, प्रतिनिधि कहानिया, राय प्रवीण, पृ0 108

ईमेलः hpujjawalrathore2385@gmail.com

Mob. No. 9817166661

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 282-286
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

USE OF TECHNOLOGY IN TEACHING OF MATHEMATICS

-ANIL KAUSHIK
TGT MATHEMATICS, GMSSSS Sanghi, Rohtak (HARYANA)

ABSTRACTS :

Mathematics is supposed to be a very difficult subject which needs great intelligence and practice for it's learning. For teaching mathematics , is a great challenge for a teacher as well, as a maths teacher has not only to make the teaching- learning effective but also arouse the interest of the students to maintain long term memory.For making teaching and learning of subject like mathematics interesting and effective ,use of information and technology is must in today's era. Some effective methods of teaching mathematics like demonstration method, problem solving method, learning by doing method, heuristic methods are adopted. Mathematics is considered to be a complicated subject which includes formulas ,symbols ,techniques ,hypothesis, data analysis etc. To overcome such challenges of mathematics ,the use of technology is a necessity of today. Starting from a very simple instrument of geometry like scale, compass ,small machines like calculator, various charts and models,use of laptops and computers in teaching - learning, use of LED ,use of projector in the smart classes, online classes with the help of YouTube channel and even broadcast of Edusat television are all gifts of technology.

Few limitations are also faced like lack of money, human and material resources, net facility in villages ,trained faculty etc.

Still, the place of technology in our field of teaching cannot be replenished. In spite of all these limitations, value of mathematics in our school curriculum as well as in day to day life can not be forgotten. Educational implications of teaching mathematics with the help of technology can be seen in the success of the students whether it is academic or in daily life.

INTRODUCTION :-

Human nature is full of curiosity. For the simplicity of life he always involves in new innovations. Also ,it is very necessary that the students should be motivated before they are made to learn anything.

A strong interest should be aroused and whole hearted attention to the extent of concentration should be secured. So a teacher should try to maintain the aroused interest for learning a subject like mathematics in the mind of the child, by using various measures and ideas from today's era of information and technology.

Aims and objectives of teaching mathematics with the help of technology :-

The aims and objective of teaching every topic of mathematics should be made definite and clear to the students so that they come to realise in the very beginning that the material to be learnt will find wide applications. Also that their learning will be need - based and more meaningful.

Practical objectives of teaching mathematics

No one can do any work in daily life without using the process of Mathematics subject. Whoever does not understand the importance of mathematics, he will be easily deceived in the society and he will have to depend on others. From the working class, businessmen, industrialists, bankers to every section of the society, mathematics is used in some form or the other. One who earns, spends, uses mathematics and it cannot happen that a person lives without earning and spending. Addition, subtraction, multiplication, division, weighing, selling and buying etc. will have immense practical value in life. Thus knowledge and skills can be imparted effectively only by systematically teaching the subject of Mathematics in schools.

Businesses that meet the needs of human beings can be established and strengthened more effectively by the use of mathematics. Companies and agencies that depend on mathematics for their successful functioning represent the entire business and commercial system of the world. Ignorance of mathematics is a major obstacle in the way of progress in the society. Individual resources constitute national resources. A person ignorant of maths knowledge often ruins himself and causes loss by wasting his time, energy and money. From the family budget to the nation budget depend on the fundamentals of mathematics. Natural phenomena such as the rise and setting of the Sun and the Moon, the change of seasons, the speed of rotation of the planets, etc., require the laws of mathematics. Mathematics will continue to have a prominent place in the life of man. All the activities of life like organizing a wedding, getting a child into school, celebrating, buying or selling property etc. Mathematical thoughts are at the top of human thoughts. To achieve success in life, it is very important for us to have knowledge of time, price, rate, percentage, exchange, commission, discount, profit and loss, area, quantity etc. For this we have to understand maths fundamentally.

SOME INITIAL OBJECTIVES OF MATHEMATICS

1. To enable the student to understand numbers.
2. To enable students to understand numbers and apply them in practice.

3. To make the students proficient in the four basic operations of mathematics: addition, subtraction, multiplication and division.
4. To enable the students to make suitable guesses.
5. To enable students to read and interpret graphs and tables.
6. To enable the students to solve the mathematical problems they face in daily life.

DISCIPLINARY PURPOSE

Mathematics is based on facts and more reasoning power is used than memory, that is why mathematics disciplines the mind and develops reasoning power. The main purpose of mathematics is also that it teaches to use reasoning independently while keeping the mind of the students disciplined. The teaching-learning process of Mathematics subject moves the students from simplicity to complexity and from complexity to simplicity. To enable the students to understand this fact and how to make accurate and successful efforts to fulfill their purpose through their logical thinking.

Hypothesis

? Mathematics is a difficult subject and can be studied by only intelligent students.

? Mathematics teaching and learning is only for rich people with human and material resources.

? Mathematics study is gender-based specially in rural areas as more facilities are provided to the boys than girls.

? Net facility in villages is is lacking.

? Lack of trained faculty to teach a subject like mathematics.

? Non availability of ICT lab in every institution

HOW TO AROUSE INTEREST FOR LEARNING MATHEMATICS

? By explaining to the child the usefulness of learning mathematics in their daily life and for higher studies.

? By correlating the contents of mathematics with other school subjects

? By removing the fear from the mind of the child that it is not a difficult subject rather very easy and interesting.

? By stressing upon the idea of learning by doing

? By using different methods of teaching mathematics

? By solving some interesting puzzles in mathematics

? By relating the work and life history of great Mathematicians.

USE OF TECHNOLOGY

Technology provides dynamic opportunities for instruction in mathematics. Multimedia brings learning to life! We can bring videos, animations, interesting movies and other media into the learning process

to help our students develop skills and understandings. Starting with the use of a very simple machine like calculator for doing calculations in Mathematics approaching to the telecast of online classes with the help of Edusat programs are all gifts of technology.Such few examples are:

? Use of various geometrical instruments and material aids in the class by the students for teaching mathematics.

? Use of blackboard is a readily available device which enables the teacher to involve the students in activate also students may be asked to solve the problems on the blackboard.

? Use of right material aid while teaching, which may be a book or a scale or even a chart to teach any concept to the students

? Use of various small and easy models (TLM) are helpful not only in teaching mathematics but also to maintain their interest for longer period of time.

? Use of computers and laptops are a big evolution in the field of technology which are used for teaching and learning very successfully and effectively today.

? Students are taught by showing videos on researches in mathematics on a projector. Instead of explaining topic on the blackboard in the classroom, it is better to explain by video on a projector in our smart classes.

? Online classes conducted by teachers on YouTube channel and even with the use of smartphone during Corona Crisis are the gifts of technology only

1. Demonstration method:

Teaching the students by demonstrating various working models ,charts etc.

2. Laboratory method:

Teaching the students in mathematics lab by using various charts ,models, geometrical instruments, shapes etc.

3. Learning by doing method:

To achieve accuracy and correctness in solving problems.

4. Heuristic method: Method to understand various difficult concepts of mathematics in a very easy and interesting way.

Analysis and interpretation

It can be easily interpreted that use of technology has changed our life in today's scenario whether it is a matter of online class, program on Edusat television or a class on WhatsApp using smartphone. New researches on mathematics, latest journals ,lectures of famous mathematicians , magazines are all helpful in the innovation work in teaching mathematics. It can be easily interpreted that without technology nothing could be made possible in today's era of speed and development.

Conclusion:

With the program of instructions and applications of learnt material in the subject like mathematics ,the teaching becomes very interesting and knowledge giving for the students. It can be concluded without any doubt that technology is the Real Key for the success of teaching of subject like mathematics.

Mathematics has its own language of concept, formula, theories, principles & symbols which can be possible only with the help of technology. So , such a concept of teaching mathematics with the help of some particular methods and techniques surely overcomes the hypothetical assumptions that mathematics is only for a particular category of students.

Mathematics can be taught and learnt by any gender, any class or any category of person. It can be taught in a town or a village. Use of technology can make any person a trained technician. Such an idea will surely help everyone to overcome the barriers in teaching of mathematics.

Educational implications

? Explaining the vocational value of subject mathematics

? Explaining the utilitarian value of mathematics

? Explaining the correct way of learning mathematics

? Explaining the historical aspects of mathematics

? Changing the methods of teaching of mathematics

? Arousing and maintaining the interest of students in studying mathematics

? Help in developing long term memory in students

? Psychological conditioning of students for studying mathematics

? Teaching moral ,practical ,disciplinary, social, cultural ,aesthetic and international values of mathematics

Full Address - VPO:- GHILOR KHURD,SANGHI, ROHTAK Haryana - 124303

WhatsApp number :- 9253008024

Email ID:- anilkaushikmaths2@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 287-291
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अज्ञेय की कविता में पारिस्थितिक संवेदना असाध्य वीणा के संदर्भ में

–डॉ. जस्टी एम्मानुवल
सहायक आचार्या, अल्फोंसा कालेज पाला, कोट्टयम, जिला केरल।

परिस्थिति का सरोकार जीव समुदायों का उसके वातावरण के साथ पारस्परिक संबंध से हैं । जीव समुदायों में शीर्षस्थ मनुष्य अपने इर्द–गिर्द की परिस्थिति का हिस्सा बनकर जीता है। परिस्थिति उसे पालती है रूपायित करती है। मनुष्य के अस्तित्व के लिए प्राकृतिक पर्यावरण बहुत महत्वपूर्ण है। प्रकृति और मानव के आपसी सहयोग पर आधारित है। भावी पीढ़ियों के लिए पर्यावरण का पोषण और देखभाल आवश्यक है ।स्वस्थ मानव कुल के निर्माण के लिए स्वस्थ वातावरण चाहिए इसलिए पर्यावरण का स्वस्थ रखना हमारा कर्तव्य है। हर देश के लिए पर्यावरण सजगता अपनी संस्कृति का मूल तत्व है। यह हमारी अपनी संस्कृति का भी मूल तत्व है। प्रकृति प्राणधारा से स्पन्दित होती है, संपूर्ण जगत अर्थात जीव–जंतु, वनस्पति, नदी, पहाड़ सब में जीवन है। जीवन के पूजा भावना और संयम की प्रतिष्ठा भारत की महान संस्कृति का संदेश है ।लेकिन विकास की इस रफ्तार में हम यही आदर्श को भूल जाते हैं।पश्चिम की भोग वादी संस्कृति के प्रभाव तथा शहरीकरण और औद्योगीकरण के कारण मनुष्य और प्रकृति के बीच का सरोकार मित्रवत सामरस्य भावना टूट गई। और तथाकथित विकास की ओर अंधी दौड़ में उसकी यह संवेदना समाप्त हो गई कि प्रकृति एक जीवंत शक्ति है। वे प्रकृति को जड वस्तु ही नहीं मानव के भोग विलास और शोषण के लिए बनी बनाई चीज मानते हैं। इसी कारण से आजकल मनुष्य और प्रकृति के बीच के सरोकार की पवित्रता फीका पड़ रहा है ।

पाश्चात्य संस्कृति की और अंधी दौड़ में विलासिता की ओर आकृष्ट मनुष्य अपने क्षणिक सुख के लिए प्रकृति का बलात्कार करके उसे अपाहिज बनता है ।वैज्ञानिक विकास के इस युग में मानव ने बायोस्फीयर से टेक्नोस्फीयर में विस्थापित किया है। प्रकृति से जरा भी आत्मीयता न रखने वाले इस स्फीयर में खड़े होकर मनुष्य शुद्ध वायु और पेयजल के लिए तडप रहे हैं। तकनीकी की इस नई स्फीयर ने मानव – मानव और मानव – प्रकृति के बीच छिपे आत्मीयताऔर ईमानदार सरोकार को मिटा दिया है प्रकृति और मानव के बीच का रिश्ता मां और संतान जैसा है वह एक दूसरे से इतनी धूल मिल गई है कि एक दूसरे का अलग करना मुश्किल है मां अपने गर्भस्थ शिशु को अपने रक्त, मांस, हड्डियों मज्जाओं से शरीर का रूप देती है प्रकृति उसे संवारते हैं,उसे एक सुदृढ़ रूप देते हैं मां को चुसकर उसका खून पीना उचित नहीं उसको पालते हुए ही आगे बढ़ना है मशीनीकरण और प्रौद्योगिकी करण के प्रभाव से तमाम मानवीय संवेदना से वंचित मनुष्य के मन में इसी खतरनाक स्थिति का अवबोध जगाने में प्रतिबंद्ध समकालीन साहित्यकार अपने साहित्यिक कृतियों में पारिस्थितिक यथार्थ

को अंकित करते हैं ।हिंदी साहित्य में अज्ञेय समकालीनता के बुनियाद पर प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं ।अज्ञेय, मुक्तिबोध, निराला जैसे पुराने पीढ़ी के कवियों पर चर्चा किए बिना समकालीन कविता में गुज़रना मुश्किल है । अज्ञेय ने अपनी कविताओं में जिन जिन पारिस्थितिक समस्याओं को दर्शाया है ये समस्याएं आज ज्यादा प्रासंगिक है ।यह आजकल की एक ज्वलंत समस्या है।

भारतीय संस्कृति का महान विरासत पर ज़ोर रखने वाली कविता है अज्ञेय की श्असाध्य वीणाश ।श्आंगन के पार द्वारश्संकलन की यह लंबी कविता प्रकृति के प्रति अज्ञेय की आत्मीयता का ज्वलंत प्रमाण है। अज्ञेय की राय में प्रकृति केवल मनुष्य मात्र के लिए नहीं बल्कि सर्वचराचरों को मनुष्य के बराबर प्रकृति पर समान अधिकार है । पर्यावरण और प्रकृति के संतुलन के लिए जीव जंतुओं की सुरक्षा अत्यंत आवश्यक है।मनुष्य ने अपने वास्तु जगत के निर्माण के लिए प्राकृतिक चीजों का मदद ग्रहण किया है । मनुष्य को अपना सृजन कार्य श्रेष्ठतम बनने के लिए प्रकृति माता का आदर करना चाहिए। किसी भी कलाकृति के निर्माण की कोशिश में उसे पूर्णतम अभिव्यक्ति तक पहुंचाने में कलाकार का संपूर्ण समर्पण भी आवश्यक है। साथ ही जिस मिट्टी से ये चीज़ें ग्रहण की है उसी से गहरा सरोकार भी आवश्यक है। इन सांस्कृतिक आदर्शों के अभाव में तमाम प्रयत्न असफल हो जाते हैं।असाध्य वीणा को प्रियंवद के सामने रखकर राजा ने प्रियंवद को संबोधित करते हुए असाध्य वीणा की कथा कहती है यह वीणा उत्तराखंड के सघन वन में तपस्या करने वाले वज्रकीर्ति नामक एक साधक ने एक सुविशाल किरीटी तरू को मंत्रों द्वारा पावन करके वीणा बनाकर राजा को सौंप दिया । साधक का पूरा जीवन उस वीणा के निर्माण में लगा दिया ।वीणा का निर्माण पूर्ण करने पर साधक का जीवन लीला भी समाप्त हो गई। लेकिन वीणा बजाने में राजा के यहां समस्त कलाकार असफल रहे। इसलिए वह असाध्य वीणा हो गई। एक कहानी में रूपाइत प्रस्तुत कविता का आरंभ राजा द्वारा केशकंपली प्रियंवद के स्वागत से होता है।

वज्रकीर्ति एक ऐसा कलाकार है जिन्हें प्रकृति और विरासत से गहरा सरोकार है। वीणा के निर्माण के लिए एक किरीटी तरू का इस्तेमाल किया था वह तरू एक ऐसा महावृक्ष था जिसकी जड़ें पाताल लोक तक जा पहुंची थी जो अनेक प्राकृतिक चराचरों का आसरा था। जिसके कानों में पर्वत की चोटियां अपने रहस्य सुनाती थी जिसके कंधों अर्थात डालो पर मेघ अठखेलियां करते थे और उसकी हाथी की सूंड जैसी डालियां हिमपात और वर्षा से जंगल के पशु झुंडों व लघु –वृक्ष समूह की रक्षा करती रहती थी । उस विशालकाय वक्ष की कोटरों में भालू रहा करते थे। जबकि उसकी छाल से अपने स्कंध खुजलाते रहते थे। उसकी सुगंधित जड़ से वासुकी नाग अपना फण टीका कर सोता था। सैकडों वसंतों वह पतझडों ने उसके सौंदर्य को संवार रहे थे वर्षा ऋतुओं ने जुगनूओं के माध्यम से वृक्ष की आरती उतारी थी । इर्द गिर्द के तमाम चराचर प्रकृति को इस कीरीटि तरू से गहरा सरोकार था ।यह तरू भी प्रकृति के तमाम स्पंदनों को अपने में समेटते थे ।ऐसी तरु को काटना एक साधारण व्यक्ति को असंभव था । भारतीय विरासत के अनुसार महान कर्मों को पूर्ण करने के लिए सच्ची साधना की सच्चे त्याग की जरूरत है वज्रकीर्ति नामक साधक प्रकृति से उतना सरोकार रखने वाले आदमी थे जो अपनी जिंदगी भर की तपस्या से, हठयोग से, अपने समर्पण भाव से बीणा बनने का वह पवित्र काम पूरा कर

सका और वीणा योग्य व्यक्ति को सौंप कर सका । साधक का पूरा जीवन उस बीणा के निर्माण में लगा दिया।लेकिन वीणा का निर्माण पूर्ण करने परउसे प्रयोग में लाने के पहले उन्हें अपनी जीवन लीला समाप्त करनी पड़ी। श्राजा रुके सास लंबी लेकर फिर बोलेरू

मेरे हार गये सबजाने–माने कलावंत,
सबकी विद्या हो गयी अकारथ दर्प चूर,
कोई ज्ञानी गुणी आज तक इसे न साध सका।
अब यह असाध्य वीणा ही ख्यात हो गईश्श

(असाध्य वीणा– अज्ञेय)

वज्रकीर्ति नामक साधक द्वारा बनाई गई वीणा साधने के लिए उससे स्वर संधान करने के लिए उसके बराबर पवित्र आदमी आवश्यकता होनी पड़ी। राज्य के तमाम कलाकार उसे बजने की चेष्टा की लेकिन उसे साधने के लिए वज्रकीर्ति के बराबर पवित्र केशकंबली, गुफागेही ,प्रकृतस्थ प्रियंवद की जरूरत होनी पड़ी। प्रियंवद ने उस किरीटि तरू को,उसे पला हुआ मिट्टी को ,इस तरू को आसरा बनने वाले तमाम चराचरों को मद्देनजर रखते हुए अपने में समाहित किया।

ष्केशकंपली गुफा –गेह ने खोला कंबल।
धरती पर चुपचाप विछाया ।
वीणा उस पर रख,पलक पलक मूंद कर प्राण खींच,
करके प्रणाम,
अस्पर्श छुअन से छुए तारष

(असाध्य वीणा– अज्ञेय)

वृक्ष को तात नाम से संबोधन करके उस वृक्ष से गाने की विनती की।

ष्ओ पूरे झारखंड के अग्रज,
तात, सखा गुरू,आश्रय,
त्राता महच्छाय,
ओ व्याकुल मुखरित वन ध्वनियों के
वृन्द गान के मूर्त रूप
मैं तुझे सुनूं
देखूं द्याऊंष

(असाध्य वीणा– अज्ञेय)

तुम झारखंड के समस्त बच्चों के अंग्रज हो तो समस्त वृक्षों के पिता मित्र ,गुरू समस्त रक्षक वह आश्रयस्थली रहे हैं

तू वन की पक्षियों के गान के मूर्त रूप हो मैं तुम्हें सुनना चाहता हंवे तुम्हारे ध्यान मे निमग्न हो रहा हुं।

मिट्टी और वृक्ष के प्रति पूजा भावना भारतीय संस्कृति का महान आदर्श है अज्ञेय यहां प्रियंवद के माध्यम से अपने पर्यावरण के प्रति आर्ष भारत संस्कृति के आदर्श का याद दिलाता है। प्रियंवद यहां सरलता ,अपरिग्रह, त्याग और

विनम्रता की भावना से प्रेरणा ग्रहण कर मन शुद्ध करके प्रकृति के संस्कार को अपनाते हुए अहं का स्वाहा करता है–

पर मुझको मैं भूल गया हूं।
सुनता हूं मैं–
पर मैं मुझसे पर शब्दों में लियामान
मैं नहीं नहीं मैं कहीं नहीं!
ओ ये तरू!ओ वन
ओ स्वर संभार।
नाद मय संसृति।
ओ रस– प्लावन
मुझे क्षमा कर–भूल अकिंचनता को मेरी
मुझे ओट ले–ढंक ले–छा ले–
ओ शरण्यष

(असाध्य वीणा–अज्ञेय)

कविता के अंत में प्रियंवद का कलाकार स्वयं शून्य होकर सामाजिक बोध को ग्रहण कर लेता है प्रकृति के समस्त कणों को अपने में समाहित कर वीणा बजने लगता है ।

ष्सहसा वीणा झनझना उठी–
संगीतकार की आंखों में खण्डी पिघली ज्वाला –सी
झलक गई–
रोमांच एक बिजली –सा सब के तन दौड़ गया
अवतरित हुआ संगीत
स्वयंभू
जिसमें सोता है अखंड
ब्रह्मा का मौन
अशेष प्रभात
डूब ग्रे सब एक साथष।

(असाध्य वीणा– अज्ञेय)

वहां खड़े लोगों में से प्रत्येक ने अलग–अलग नाथ सुना सबका दिल आपने अहं भाव और विलासिता का शौक छोड़कर हल्का हो गया।

ष्रानी ने अलग सुनारू
छंटनी बदली में एक कौंध कह गई–
तुम्हारे ये मणिमाणक कंण्ठहार पटवस्त्र ,
मेखला किंकिणी –

सब अंधकार के कण है ये! आलोक एक है
प्यार अनन्य!उसी की
विद्धुल्लता घेरती रहती है रस–भार में को
थिरक उसी की छाती पर उस में छिपकर सो जाती है
आश्वस्त,सहज विश्वास भरी ।
रांची
उस एक प्यार साधेगी। (असाध्य वीणा– अज्ञेय)

रानी ने वीणा की झनझनाहट से एक ऐसा संदेश सुना है कि तुम्हारे यह मणि माणिक्य,ग्रीवकार रेशमी वस्त्र कर्दानी,पाजेब आदी वस्त्रवरण अज्ञान के कण मात्र है।अनन्य ईश्वर ही ज्ञानात्मक आलोक का स्वरूप है। इसके अलावा सब कुछ तामसिक है रानी के साथ समस्त दरबारियां विलासिता के तामसिकस्वरूप को त्याग कर ज्ञानात्मक आलोक का स्वरूप अर्जित किया।

हम प्रकृति से मित्रवत व्यवहार करता तो प्रकृति माता को अपनी मां मानता तो वह अपने साथ है ।अपनी तमाम इच्छा पूरी करने वाली है। पारिस्थितिक प्रदूषण के इस युग में भी अज्ञेय प्रकृति का आदर करने का संदेश देते हैं प्रदूषण से धमघोड करती हुई असाध्य वीणा रूपी इस पर्यावरण को साफ करने के लिए या बचाने के लिए प्रियंवद जैसे पवित्र साधकों की जरूरत है यही असाध्य वीणा की प्रासंगिकता है।

संदर्भ ग्रंथ :–

असाध्य वीणा – अज्ञेय
सांस्कृतिक विरासत – एम.जी विश्वविद्यालय
हिंदी अभ्यास पुस्तिका एच जी प्रकाशनई दिल्ली।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 292-298
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों में अल्पसंख्यक विमर्श एवं सांप्रदायिक समस्याएं

–रूपधर गोमांगों
सहायक प्राध्यापक, राजेन्द्र विश्वविद्यालय, बलांगीर–767002, ओड़िशा।

भारत बहु धार्मिक, बहु सम्प्रदायों एवं बहु संस्कृतियों का देश है। यही इसकी विशिष्टता और पहचान है। यहां सामाजिक सामंजस्य का अनोखा रूप दिखाई देता है लेकिन कुछ पूंजीपतियों और सत्तालोलुप लोगों ने मिलकर इसे लगातार तोड़ने की कोशिश की है । यही कारण है अंग्रेजों के समय से लेकर आजादी के बाद तक यानी वर्तमान समय तक साम्घ्रदायिकता कट्टरता व नफरतवाद ने समाज को तोड़कर रख दिया है ।

आज साम्घ्रदायिकता हमारे समाज की प्रमुख एवं ज्वलन्घ्त समस्घ्या का रूप धारण कर चुकी है इसका यथार्थ रूप अब्घ्दुल बिस्मिल्घ्लाह के उपन्घ्यासों में प्रमुखता से दिखाया गया है । जहाँ एक साम्घ्रदाय के लोग खुद को श्रेष्घ्ठ व दूसरे को नीचा दिखाने की लगातार कोशिश कर रहे हैं । तरह–तरह के हथकंडे अपनाकर साम्घ्रदायिक ताकतों का सहारा लेकर पूंजीपतियों ने अपना व्घ्यक्तिगत लाभ व यश कमाया है । लेकिन अन्घ्दर ही अन्घ्दर वे समाज को खोखला बना दिए हैं । वास्घ्तव में साम्घ्रदायिकता हमारे देश समाज के लिए खतरा बन गई है । भारत ही नहीं बल्कि आज यह वैश्विक समस्घ्या के रूप में घर कर गयी है । साम्घ्रदायिकता का अवलोकन करने पर यह तथ्घ्य सामने आता है कि इसका जन्घ्म ब्रिघ्टीश औपनिवेशिक काल से प्रारम्घ्भ हुआ । जब अंग्रेजों को भारत में अपने सामान्घ्य को मजबूती प्रदान करने में रूकावट आने लगी तो उन्घ्होंने हिंदू व मुस्लिम दो प्रमुख धर्मो के बीच नफरत फैलाने का कार्य प्रारम्घ्भ किये और इसमें वे कामथाव भी रहे । ''हमने खुद अपनी आंख से देखा है । दूसरा कोई कहता तो फिर भी एक बार विश्वास करते । ऊ जो तोते हैं न, अरे नही भगतराम पासी उसकी बिटिया के संग सेत नार में ससुर रासलीला कर रहे हैं आजकल । कहना कि अब भी टेम है, बाज आ जाय अपनी हरकत से नहीं तो, भई हिंदू–मुसलमान का मामला बन जाएगा तो हम फिर नही जानते।'' उपरोक्घ्त कथनों से स्घ्पष्घ्ट है कि जातीय एवं धार्मिक रूढिवादी लोग कैसे साधारण से साधारण बात में भी साम्घ्रदायिकता का रंग चढ़ा देते है । जीवन जगत के तमाम ऐसे क्षेत्रों से कथाकार बिस्मिल्घ्लाह जी ने एक खोजी एवं झिज्ञासु वैज्ञानिक की भाँति समाज में विषमता बोने वाले लोगों का पर्दाफाश किया है ।

कथाकार ने राजनैतिक पार्टियों को भी केन्घ्द्र में लाया है, जिन्घ्होंने हमेशा से समाज को बांटने का कार्य किया है । उपन्घ्यास का पात्र बुद्धु उर्फ डॉ. रफीक अहमद सिद्धीकी समाज में क्रान्ति लाने का प्रयास करता है । वह पं.सृष्घ्टीनारायण पांडे, दयाशंकर पांडे का बार–बार विरोध करते हुए अपना पक्ष रखता है । लेकिन बुद्धु समाज को प्रगति के पथ पर जाते हुए देखना चाहता है । बुद्धु से इसी कारण गाँव का एक लड़का सामाजिक

क्रान्ति के साथ–साथ राजनीतिक क्रान्ति में भाग लेने की बात कहता है कि तोते की बिटिया से ब्याह करके तुमने सामाजिक क्रान्ति की है । मैं चाहता हूँ कि देश में आने वाली राजनीतिक क्रांति में भी तुम मदद करो । इस तरह मुखड़ा क्ध्या देखे अपनी कथावस्ध्तु की सुगठता को अप्रतीम बनाए हुए हैं ।

साम्ध्प्रदायिकता, नफरत और विद्वेष के संदर्भ में डॉ. राधाकृष्ध्णन का विचार प्रासंगिक लगता है दृ ''मनुष्ध्यों में आपसी झगड़ों का अंकुर उस पद्धति से पैदा होता हैं, जिसके अनुसार विभिन्ध्न समूहों के व्ध्यक्ति दूसरों के संबंध में अपनी धारणा बना लेतेहै । कर्तव्ध्य और न्ध्याय के अपने आदर्शों को दूसरों से श्रेष्ध्ठ समझते हैं।''

इसी तरह जहरबाद और समर शेष है उपन्ध्यास में मुस्लिम संस्ध्कृति साम्ध्प्रदायिकता व परस्ध्पर आपत्ती संघर्ष को देसा जा सकता है । जहरबाद में आपसी संघर्ष का स्ध्वरूप कम दिखाई देता है । यह लेखक का आत्ध्मकथात्ध्मक उपन्ध्यास है । अम्ध्मा, अब्ध्बा को उलाहना देती है दृ ''काम न धन्ध्धा बस दिन–रात बंसी के पीछे.......खाली मछली खाते पेट भरेगा न...लाज नहीं आती कि महरिया कमाये और मरद बैठकर खाये।''

वास्ध्तव में जहरबाद उपन्ध्यास में साम्ध्प्रदायिकता की समस्ध्या ज्ध्यादा महत्ध्व की नही है लेकिन उपन्ध्यास की महत्ता उससे कम नही हो जाती । मुस्लिम संस्ध्कृति का यथार्थ निरूपण इस उपन्ध्यास में हुआ है जो अभी भी गरीबी की रेखा के नीचे जीवन जी रहे है । कथाकार ने मुस्लिमों के आपसी टकराहट, द्वन्ध्द्व व विसंगतियों को सामने लाया है जहाँ के अधिसंख्ध्य लोग आर्थिक रूप से जूझ रहे है । इस उपन्ध्यास के माध्ध्यम से बिस्मिल्ध्लाह जी ने मैं तथा मैं के माता–पिता की दर्द भरी यातनाओं को प्रस्ध्तुत किया है ।

साम्ध्प्रदायिकता दो मनुष्ध्यों के बीच नहीं बल्कि दो समुदायों के बीच में फैलती है । इस तरह अखण्ध्ड भारत इन ताकतों के सामने खण्ध्ड–खण्ध्ड होता दिखाई देता है । साम्ध्प्रदायिक दंगों के दौरान हाशिए पर जीवन व्ध्यतीत कर रहा हर गरीब पीसता है । वो भी बिना किसी गुनाह के । समाज में सत्ता लोलुप लोग अपनी व्ध्यक्तिगत स्ध्वार्थ के लिए गरीब बुनकरों की जिंदगी को दांव पर लगा देते हैं । किसी के भीतर इन गरीबों के बारे में सोचने की चिंता नहीं है । कथाकार ने कमेटी नेता शरफुद्दी रहेमान एडीटर और दादा पंडित बनर्जी के सद् प्रयासों से स्थिति को काबू में करने वाले लोगों के रूप में दिखाया है । जिसे अगले दिन समाचार पत्रों में मोटे–मोटे अक्षरों में छापा जाता है । बार–बार बताया जा रहा है कि दंगो के दौरान स्थिति नियंत्रण में आ गयी है लेकिन यह कभी नही बताया जाता कि इन दंगो से गरीबों के परिवार समाज पर देश पर क्ध्या प्रभाव पड़ता है । न जाने कितने व्ध्यक्ति इन साम्ध्प्रदायिक दंगो के दौरान मारे गये या बेरोजगार हो गये, यह सब कुछ भी अंशों में नही दिखाया जाता है। –''नगर की स्थिति अब सामान्ध्य होती जा रही है और प्रशासन ने दंगों को पूरी तरह नियंत्रित कर लिया है....लेकिन अखबारों ने यह समाचार नहीं छापा कि कफ्र्यू के दौरान न वशीट मियां के घर पानी मिला और न मतीन के घर को आटा।'' साम्ध्प्रदायिक के विविध रूप अब्ध्दुल बिस्मिल्ध्लाह के उपन्ध्यासों में आये । वास्ध्तव में बिस्मिल्ध्लाह जी राही मासूम रजा की परम्ध्परा को आगे बढ़ाने वाले कथाकारों में इस दृष्टिकोण से सर्वाधिक महत्ध्वपूर्ण हस्ध्ताक्षर हैं ।

उपरोक्ध्त कथनों से यह स्ध्पष्ध्ट है कि धर्म का विकास मानवता के लिए हुआ था लेकिन आज उसका केवल निजी स्ध्वार्थ के चलते दुरूपयोग किया जा रहा है । आज धर्म पर कुछ लोगों का कब्ध्जा है और उन्ध्हीं के अनुसार उसे चलाया जा रहा है । झीनी–झीनी बीनी चदरिया उपन्ध्यास में इन सभी तथ्ध्यों को

कथाकार ने निर्भीकता पूर्वक सामने लाया है। –''शोर मचाती भीड़ । एक ऐसा शोर जिसका अध्यात्म से कोई सरोकार नहीं । ठीक उसी प्रकार का शोर उस वक्त भी होता है जब ताजियाँ का जुलूस निकलता है । धर्म दोनों ही अवसरों पर सड़क–छाप हो जाता है, वह सरेआम सिर के बल खड़ा हो जाता है । लेकिन फिर भी लोग कहते हैं यह सत्य है और सिर्फ यही सत्य है । इस सत्य के लिए लोग कट मरते हैं ।'' इस तरह कथाकार ने हिंदु या मुसलमान किसी की तरफ कोई तरफदारी न करके वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से दोनों धर्मो को देखा हैं । वास्तव में इस देश में अब नियोजित तरीको से दंगों को करवाया जाता है । उत्तर प्रदेश, बिहार, जैसे हिंदु–मुस्लिम बाहुल्य प्रदेशों में साम्प्रदायिकत दंगों का कड़वा सच समय–समय पर दिखाई देता रहता है । आधुनिक भारत के सबसे महत्वपूर्ण इतिहासकारों में से एक प्रो. विपिन चन्द्र इसे उपनिवेशवाद का दुष्परिणाम मानते हैं । इस संदर्भ में उनका यह कथन बहुत समीचित लगता है दृ''साम्प्रदायिकता मूलतरू उपनिवेशवाद के दुष्परिणामों में से एक है । यह भारतीय अर्थव्यवस्था के फलस्वरूप अवरूद्ध विकास का परिणाम है । इसके साथ ही साम्प्रदायिकता हाल के वर्षों के दौरान अर्थव्यवस्था और समाज को विकसित कर पाने में पूंजीवाद की अक्षमता और असफलता का भी प्रतिफल है । उपनिवेशवाद ने एक सामाजिक संरचना प्रदान की जिसने साम्प्रदायिकता को उत्पन्न किया और जिसके भीतर साम्प्रदायिकता विचारधारा पनप सकी ।''

इन कथनों से साम्प्रदायिकता के स्वरूप को समझने में सहायता मिलती है । आजादी के बाद के कथाकारों में अब्दुल बिस्मिल्लाह उन चुने हुए कथाकारों की श्रेणी में अपना स्थान बनाया है, जिन्होंने हिंदु–मुस्लिम के वास्तविक रूप को सामने लाता है । उनके उपन्यासों 'झीनी–झीनी बीनी चदरिया', 'जहरबाद', 'दंतकथा', 'मुखड़ा क्या देखे', 'रावी लिखती है' तथा 'समर शेष है' में मुस्लिम परिवारों का समूचा संसार दिखाई देता है । एक तरह से मुस्लिम संस्कृति के विविध पक्षों से यह उपन्यास हमारा साक्षात्कार कराते हैं । प्रसिद्ध उपन्यास 'रावी लिखता है' कि ये पंक्तियां एक परिदृश्य को समझने के लिए महत्वपूर्ण हैं दृ ''दीन मुहम्मद को दफ्न करने के लिए खूब गहरी कब्र खोदनी पड़ी क्योंकि उनका जिस्म बुरी तरह अकड़ गया था और वह सीधा नही हो सका। यानी अपनी कब्र में भी वे सिजदे में रहे।''

'जहरबाद' उपन्यास के अधिकांश चरित्र भूखमरी के शिकार हैं । आर्थिक अभावों में व्यक्ति कैसे जीवन यापन करता है और खासकर तब जब परिवार काफी बड़ा हो । ऐसे अनेकों समस्याओं को उपन्यास के माध्यम से दिखाया गया है कथानायक 'मैं' के पिता की जमींदारी चली जाती है । अम्मा के गहने बेचकर चमड़े का व्यवसासय शुरू करते हैं लेकिन वह ठीक से चल नहीं पाता है पूंजीके अभाव में अब्बा का सारा श्रम बेकार हो जाता है । घर की हालत अत्यन्त दयनीय हो जाती है । कथाकार ने इसका मार्मिक रूप प्रस्तुत किया है दृ''अम्मा थोड़े से भुट्टे कहीं से मांग लायी थी, जिन्हें उबाल–उबालकर कुछ दिनों तक काम चलाया गया।''

कुल मिलाकर जहरबाद उपन्यास धर्म, त्योहार, पर्व संस्कृति एवं निम्न–मध्यमवर्गीय मुस्लिमों के परिवेश को यथार्थ में दिखाया है । इस तरह बिस्मिल्लाह के कथा साहित्य में प्रतिबद्धता है जो उन्हें अपने समाज के कटु यथार्थ से विचलित नहीं होने देती है । – '' 'जहरबाद' तथा 'समर शेष है' ये दोनों उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखे गये हैं । इनमें दोनों में तटतग्यता दिखाई देता है, क्योंकि इनमें कथानायक

खुद ही वाचक है जो अपनी और अपने समाज की कहानी को बताता है । जहाँ जहरबाद में उसके बचपन के दिनों से लेकर शैराव तक के अनुभवों को अभिव्व्यक्ष्त किया गया है वही दूसरे में बाल्व्यकाल से लेकर युवावस्ध्था तक का यथार्थ प्रस्ध्तुत है ।

धार्मिक दंगे किस तरह करवाये जाते है इस संदर्भ में यशपाल का यह कथन विचारणीय है दृ ''साम्ध्रदायिकता समाज और राजनीति में जहर घोलने का काम करती है देश में जो भी दंगे फसाद हुए जातियों में विद्वेष का विष फैला, देश के दो टुकड़े हुए, ये सब इसी के परिणाम है । साम्ध्रदायिकता के कारण मनुष्व्य–मनुष्व्य न रहकर पशु बन जाता है।'' साम्ध्रदायिकता समाज के लिए विष की तरह है, लेकिन जिनके हाथों में सत्ता होती है वो भी लोग इसमें शामिल होती है, क्ष्योंकि उनके लिए मनुष्व्य का महत्ध्व उतना नही है जितना की सत्ता का होता है । 'झीनी–झीनी बीनी चदरिया' में यह यथार्थ सामने आता है, जहाँ चंद अराजक लोगों की वजह से सम्ध्पूर्ण समाज का पूरा कार्य व्यवसाय सब कुछ बंद हो जाता है और लोगों में भयानक दहशत का माहौल घर कर जाता है । मऊ से लेकर बनारस तक जैसे दंगो की कोई श्रृंखला चल पड़ी है ।

'जहरबाद' उपन्ध्यास में कथानायक 'मैं' परिवार और समाज के बीच पीसता रहता है । उसके लिए वही जहरबाद है । लेकिन जिंदगी केवल इतने से नहीं कटती अंधेरे में भी कभी–कभी रोशनी की लौ आती ही है तीज, त्ध्योहार, सतना–विवाह को भी दिखाया गया है । कथाकार ने ग्रामीण प्रेम प्रसंग को बहुत सूक्ष्ध्मता से दिखाकर ग्रामीण ताने–बाने टकराव व संघर्ष को दिखाया है । गावों में लुके–छिये प्रेमप्रसंग चलते हैं । कथानायक मैं को भी दिलचस्ध्पी बढ़ती है इन सब में । लोरी के प्रति मैं का विकर्षण और फुलझर के प्रति गहरा आकर्षण हैं । एक तरह स्ध्त्री के प्रति आकर्षण का भाव और समाज के प्रति निकर्षण का भाव कथानायक मैं में दिखाई पड़ता है ।

'दन्ध्तकथा' को कुछ आलोचकों ने उसे उपन्ध्यास की श्रेणी में नही माना हैं लेकिन साम्ध्रदायिकता के यथार्थ को व्यक्ष्त करने में उपन्ध्यास की महती भूमिका है । कथानायक एक मुर्गा है जो साम्ध्रदायिक ताकतों के खिलाफ शुरू से अन्ध्त तक खड़ा रहता है । वास्ध्तव में मुर्गा आम आदमी का प्रतीक है जो आर्थिक, सामाजिक व साम्ध्रदायिक ताकतों से लड़ता है । साम्ध्रदायिक ताकते कैसी होती है मुर्गा स्ध्वयं कहता कि दृ ''दरअसल चोंच बांधने की कला में इस मनुष्व्य जाति का कोई जवाब नहीं । जिस भी प्राणी से इसे अपने खिलाफ बोले जाने का खतरा महसूस होता है । यह उसकी चोंच को पहले ही बांध देता है।''

साम्ध्रदायिक दंगो का आर्थिक सामाजिक एवं सांस्ध्कृतिक रूप से कैसे नकारात्ध्मक, प्रभाव पड़ता है, इसकी तरफ कथाकार ने गहरा संकेत किया है । आज का मनुष्व्य अपने स्ध्वार्थी स्ध्वरूप के कारण कुछ भी करने को तैयार है यहां तक की वह अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी अपने स्ध्वार्थों को सिद्ध करना चाहता है । यह मनुष्व्य का स्ध्वभाव बन चुका है अब कि वह हर वस्ध्तु को लाभ के नजरिये से देखता है । जहाँ लाभ है वहीं से वह जुड़ता है । आजादी के बाद के राजनेताओं ने साम्ध्रदायिकता को एक हथियार की तरह प्रयोग में लाया है । आम जनता को कुछ लालच देकर उनका शोषण करते हैं और चुनाव के वक्ष्त ऐसे ही लोगों की वैशाखी से विविध वर्ग सम्ध्रदायों के बीच दंगे करवाये जाते हैं । इसका सबसे बड़ा कारण है कि आजादी के बाद शिक्षा व्यवस्ध्था पर जितना ध्ध्यान देना चाहिए था उतना दिया नहीं गया और अधिकांश जनता अतार्किक और घोर धार्मिक ही बनी रही । इसी तरह का संकेत राजकिशोर शर्मा ने किया है दृ ''एक तो यह कि सभी धर्म

तर्क वितर्क और बुद्धि विवेक का विधय न होकर अंधविश्घ्वास और अंधश्रद्धा का विषय बन गए हैं । जिसके फलस्घ्वरूप मामूली सी बात पर भी हमारी भावनाएं भड़क उठती हैं । दूसरा कारण यह है कि सभी धर्म सत्तापीठ के रूप में कार्य करते हैं और उनके बीच सत्ता का द्वन्घ्द्व चलता है । सत्ता की प्रतिस्घ्पर्धी जब दंगों के रूप में प्रकट होती है तो धर्म की असली विसंगति सामने आती है । धर्म आदमी को बेहतर बनाने की बजाए उसे राक्षस बनाने लगता है।''

आलोचक अभय कुमार दुबे ने साम्घ्प्रदायिकता के कारणों की तलाश करने की कोशिश की है यहाँ उनके विचार एकदम स्घ्पष्ट है दृ ''भारतीय संदर्भ में साम्घ्प्रदायिकता के चार मुख्घ्य रूप हैं हिंदू मुसलमान सिख और इसाई साम्घ्प्रदायिकता । चूँकि धर्मों का बुनियादी आधार अन्घ्यीकरण के बजाय परस्घ्पर सहिष्घ्णुता के मूल्घ्यों से सम्घ्पन्घ्न होता है इसलिए साम्घ्प्रदायिक राजनीति धार्मिकता के स्घ्वरूप और अभिव्घ्यक्तियों को बदलने का प्रयास करती है ताकि धर्म का बेजा इस्घ्तेमाल किया जा सके।'' इसी तरह 'मुखड़ा क्घ्या देखे' उपन्घ्यास में साम्घ्प्रदायिक समस्या को उठाया गया है । उपन्घ्यास में दलित जातियों को हिंदुत्घ्ववादी ताकते किस तरह से अपने लाभ के लिए हिन्घ्दु–हिन्घ्दु कहकर अपनी तरफ मिला लेते है इसका यथार्थ अंकन, किया गया है । उपन्घ्यास का पात्र पं. सृष्टीनारायण तथा पं. दयाशंकर पांडे को जब यह बात पता चली की एक मुसलमान अली चुडिहार का लड़का और एक दलित समाज की लड़की जो कि जाति से पासी थी का आपस में प्रेम हो गया है, तो इन अभिजाव्घ्यत्य वर्गीय लोगों को बहुत नागवार गुजरा, जबकि आज के संवैधानिक युग में कोई भी व्घ्यक्ति किसी भी जाति का धर्म की लड़की से प्रेम सम्घ्बन्घ्ध बनाने के लिए स्वतंत्र है । यहाँ परिस्थितियाँ एकदम विपरीत हैं । अतरू उन दोनों पण्डितों पर हिन्घ्दुत्घ्व का नशा सवार हो जाता है ।

जिसका परिणाम यह हुआ कि आज तक भारत की यह सबसे वहीं समस्घ्या के रूप में उपस्थित है । आजादी के बाद जब इसका व्घ्यापक रूप से नियंत्रण स्घ्थापित होना चाहिए था तो इसके सिर्फ इस पर कोई अंकुश न लग सका यही कारण है कि आज के समय भारत–पाकिस्घ्तान बंटवारे के समय हिन्घ्दु–मुस्लिम दो धर्मों के बची में विश्घ्व का सबसे बड़ा साम्घ्प्रदायिक दंगा हुआ, जिसमें लाखों स्घ्त्री पुरूष व निरीह बच्घ्चों को अपनी जाने गंवानी पड़ी ।

आज साम्घ्प्रदायिकता शिक्षा, इतिहास, धर्म, भाषा, सभी का इस्घ्तेमाल करती है । उसकी सत्ता की राजनीति का अपना एजेंडा है, जिसके बदौलत वे सभी लोग सत्ता में पहुंचते हैं । साम्घ्प्रदायिकता देश की एकता अखण्घ्डता के लिए सबसे बड़ी चुनौती बन गयी है । इसने देश के अस्तित्घ्व पर ही प्रश्घ्नचिन्घ्ह लगा दिया है । समस्घ्त मानवीय, सामाजिक, पारिवारिक मूल्घ्यों का विघटन शुरू हो गया है । साम्घ्प्रदायिकता बाहर से देखने पर जैसी दिखती है अन्घ्दर से उससे कही और ज्घ्यादा खतरनाक है । मनुष्घ्यदृमनुष्घ्य के बीच दूरिया बढ़ती चली जा रही है । हर व्घ्यक्तिघ दूसरे को संदेह की नजर से देखा जा रहा है । साम्घ्प्रदायिकता को लेखकों आलोचकों तथा दलित स्घ्त्री विमर्शकारों ने अलग–अलग नजरियें से देखा है । इस संदर्भ में श्री गीतेश शर्मा का मानना है कि दृ''साम्घ्प्रदायिकता राष्घ्ट्रीय एकता और अखण्घ्डता के लिए चुनौती नहीं है बल्कि यह मानवीय मूल्घ्यों एवं संवेदनशीलता के लिए भी एक चुनौती है । साम्घ्प्रदायिक आवेश में इंसान अपनी इंसानी पहचान खो बैठता है। दंगों के दौरान यह बात हमेशा सामने आती हैं ।''

श्री गोपीनाथ कालभोर का मानना है कि दृ''साम्घ्प्रदायिकता एक ऐसा भाव है जो एकाधिक पंथों

अथवा साम्प्रदायों के मन में अपने सम्प्रदायों के हितों, व्यक्तिगत स्वार्थों धार्मिक प्रतिष्ठाओं एवं राजनैतिक सत्ता संघर्षों को लेकर दंगे के रूप में बदल जाता है।'' साम्प्रदायिकता का स्वरूप भारत के किसी एक धर्म ने नही बल्कि कई धर्मों में देखने को मिलता है । यह एक तरह का पागलपन और नासमझ की भावना है, जिससे समाज कमजोर होता है । इस संदर्भ में श्रीगीतेश शर्मा का विचार भी कुछ इसी तरह से मिलता जुलता है– ''साम्प्रदायिकता अपने आप में कोई रोग नहीं यह उस रोग का लक्षण है जो घोर आर्थिक विसमता और सामाजिक अन्याय पर आधारित व्यवस्था से उत्पन्न होता है । जब आदर्शों एवं सिद्धान्तों को व्यवहार में लागू नहीं किया जाता तब वे खोखले हो जाते हैं । ऐसी स्थिति में उत्पन्न रिक्तता को जो विकृतियां भरती हैं, उनमें साम्प्रदायिकता प्रमुख हैं ।'' 'झीनी–झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास में कथाकार बिस्मिल्लाह जी ने जीवन का ऐसा कोई कोना नहीं छोड़ा है जहाँ उनकी दृष्टि न गयी हो वो हर नजरिये से इसे यथार्थ स्वरूप में अंकित करते है । भारत जैसे देश में जहाँ विविधता सम्पूर्ण विश्व में सर्वाधिक हो वहाँ साम्प्रदायिकता के मानकों का निर्धारण करना अत्यंत दुरूह कार्य हैं ।

इस तरह साम्प्रदायिकता के एक एक पक्ष को बिस्मिल्लाह जी ने बहुत सूक्ष्मता से अंकन किया है तथा सरकारों को कठघरे में खड़ा किया है कि कैसे संसाधनों का उच्चवर्गीय लोग दुरूपयोग करते हैं, जबकि निम्नवर्गीय गरीब बुनकर समाज का व्यक्ति का सारा कार्य व्यापार ठप पड़ जाते हैं । बशीर मतीन आदि पात्रों के माध्यम से बेतहाशा गरीबी, निराशा और बेरोजगारी को कथाकार ने स्पष्ट रूप से दिखाया है ।

'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास के केन्द्र में धर्म और सम्प्रदाय के अलावा जो तीसरा प्रभाव तत्व है वह है अफवाह । उपन्यास में अफवाहों का बाजार गर्म रहता है । उपन्यास का पात्र पं.सृष्टिनारायण पाण्डे की जब मृत्यु हो जाती है तो इसे राजनीतिक रंग का पैजामा पहना दिया जाता है । पूरे गांव व इलाके में शोर मच जाता है । थाने में रिपोर्ट दर्ज करायी जाती है । कथाकार ने यहाँ नेताओं के साथ प्रशासनीक तंत्र पर भी गहरा प्रहार किया है ।

इसी तरह अन्य साम्प्रदायिक दंगो का जिक्र उपन्यास में दिखाई देता है कथाकार ने व्यापक अर्थ में बनारस के बाहर यानी देश भर की साम्प्रदायिक और उसके स्वरूप को दिखाया है । जबलपुर में हुए दंगो का एक अंश 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास से प्रस्तुत है दृ''जबलपुर में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच लड़ाई हो गयी थी न, कल वहाँ हमारे देश के प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू जी आए थे । उनके भाषण को सुनने के बाद हिंदुओं और मुसलमानों ने दंगा बंद कर दिया.....हिंदुओं से बोले– मुसलमानों का क्या है वे तो बकरे–बकरियाँ हैं । तुम लोग जब चाहों उन्हें काटकर खा सकते हो । मगर यह न भूलों कि वे भी तुम्हारे घर के सदस्य है ।''

इन दंगो के मूल में एक मुस्लिम लड़के अनवर का एक हिंदू की लड़की उषा से प्रेम हो जाना रहा है । कुछ लोग इसी में लड़ने झगड़ने लगते है । इसी मौके का लाभ उठाकर साम्प्रदायिकता को फैलाने वाले धर्मान्ध लोगों ने इसे साम्प्रदायिकता का रंग दे दिया और प्यार नफरत में और नफरत दंगो के रूप में परिवर्तित हो गया ।

यह एक यथार्थ है कि अब्दुल बिस्मिल्लाह मुस्लिम परिवार थे । घर की माली हालत ठीक नही थी । इस कारण उन्हें तमाम तरह के अभावों का सामना करना पड़ा है जो उपन्यास में जगह जगह प्रकट भी हुआ

है । यही कारण है कि उन्ह्होंने खुद मुस्लिम जीवन को या कहें कि निम्ह्न मध्ध्यवर्गीय मुस्लिम समुदाय की व्याापक समस्ध्या को सामने लाया है।

इनके उपन्ध्यासों में मुस्लिम पात्रों की बहुलता है । हिंदु परिवेश और उनकी समस्ध्याओं का ज्ध्यादा चित्रण वे नहीं कर पाये हैं । यह एक कथाकार का दृष्टिकोण या सीमा भी हो सकती है । इसी कारण हिन्ध्दू पात्रों की संख्ध्या सीमित है, लेकिन भारतीय समाज का समीकरण इस तरह से निर्मित हुआ है कि कही–न–कही ये दोनों समाज आपस में टकराते भी हैं । कथाकार ने साम्ध्प्रदायिक दंगो की तह में जाने की कोशिश की है जहाँ पूंजीवाद सत्तावाद व स्ध्वार्थ लालुपता हावी है यही कारण है भारत में जब भी हिन्ध्दु–मुस्लिम दंगे हुए हैं उसमें बहुसंख्ध्यक अनपढ़ मजदूर व निरीह लोग ही सर्वाधिक मारे गये हैं । कभी भी बड़े वर्ग का व्यक्ति इन दंगो में प्रत्ध्यक्ष रूप से वह पर्दे के पीछे से ही मुख्य भूमिका निभाता रहा है ऐसे हजारॉ तथ्ध्यों को कथाकार ने पाठक वर्ग के बीच लाकर एक बौद्धिक चेतना का प्रकाश फैलाया है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. बिस्मिल्ध्लाह अब्ध्दुल, मुखडा क्ध्या देखे, पृ.सं. 141
2. राधाकृष्ध्णन, डॉ. सर्वपल्ध्ली, हमारी विघ्रासत (अनु. विघ्जय मल्ध्होत्रा) पृ.सं. 100
3. बिस्मिल्लाह अब्दुल, जहरबाद, पृष्ठ संख्या. 7
4. बिस्मिल्लाह अब्दुल, झीनी झीनी बीनी चदरिया, वही, पृ.सं. 194
5. बिपिन चन्द्र, आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता, दिल्ली, 1996, पृष्ठ 24
6. बिस्मिल्लाह अब्दुल, रावी लिखता है, पृष्ठ संख्या 52
7. त्रिपाठी चंद्रकला(लेख– अनदेखे अँधेरों की कथा) पृष्ठ संख्या 70
8. यशपाल, झूठा सच, पृष्ठ संख्या 471
9. बिस्मिल्लाह अब्दुल, दंतकथा, पृष्ठ संख्या 33
10. राजकिशोर (सं)– भारतीय मुसलमान, मिथक और अयथार्थ पृष्ठ संख्या 71
11. दुबे अभय कुमार (सं) दृ बीच बहस में सेकुलरबाद , पृष्ठ संख्या. 485
12. शर्मा गीतेश, सांप्रदायिकता एवं सांप्रदायिक दंगे, कलकत्ता, संस्करण 1985, पृष्ठ संख्या 53
13. कलभोर गोपीनाथ, धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता, जयपुर सं. 2000 , पृष्ठ संख्या 170
14. शर्मा गीतेश, सांप्रदायिकता एवं सांप्रदायिक दंगे, कलकत्ता 1985 पृष्ठ संख्या 18
15. बिस्मिल्लाह, अब्दुल मुखड़ा क्या देखे, राजकमल प्रकाशन, संस्करण, 2003, पृष्ठ सं.87

मो. 9437848618

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 299-301
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विभाजन की राजनीति चुने हुए हिन्दी उपन्यासों के विशेष संदर्भ में

-डॉ.एन आर सेतु लक्ष्मी
असिस्टेंट प्रोफेसर, सेंट.थॉमस कॉलेज कोशेंचेरी।

भारत एक बहुधर्मी देश है। यहाँ कई सालों से अनेक धर्मावलंबी साथ–साथ रह रहे हैं। इन धर्मावलम्बियों के मध्य घरेलू झगड़े स्वाभाविक थे। लेकिन कभी भी इन झगड़ों ने हिंसक रूप धारण नहीं किया था। लेकिन वक्त के साथ धर्म की जड़ें समाज में गहराई तक फैलने लगीं। यह इतनी गहरी फैलती गयी कि मनुष्य हर चीज़ को धर्म के आधार पर तौलने लगा। यहाँ तक कि मानवता भी धर्माधारित बन गई अर्थात यदि मानवता दिखनी है तो अपने धर्म के लोगों के साथ ही दिखनी है। जनता के बीच दरारें उत्पन्न होने लगीं। यह धार्मिक विभाजन एक सोची समझी चाल का नतीज़ा है। भारतियों को धर्म के आधार पर लड़वाना अंग्रेज़ों की चाल थी, बशर्ते इसके लिए उन्होंने हिन्दुस्तानी मुहरों का इस्तेमाल किया। अंग्रेज़ अपनी छवि नहीं बिगाड़ना चाहते थे इसलिए उन्होंने हिंदुस्तान में बढ़ते सांप्रदायिक के चलते मुल्क का बंटवारा कर दिया। अंग्रेज़ों ने विश्व को संबोधित करते हुए यह बताया कि उनके सही फैसले ने एक धार्मिक युद्ध को होने से बचा लिया।

विभाजन जिसके कारण लाखों लोग मारे गए, लाखों लोग बेघर हो गए महज़ दस साल के राजनीतिक दाव–पेंच का परिणाम था। "1937 के चुनावों में देश के किसी भी महत्त्वपूर्ण राजनीतिक दल, नेता या संगठन के पास विभाजन का विचार नहीं था। ....1937 की सर्दियों के चुनाव में मुस्लिम लीग का घोषणा पत्र लगभग वैसा ही था, जैसा काँग्रेस का। देश को अंग्रेजों से मुक्त करने का लक्ष्य था, हिंदू–मुस्लिम एकता का प्रयास था। जिन्ना ने काँग्रेस के साथ मिलकर चुनाव लड़ने का प्रस्ताव दिया था। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद से इस विषय पर उनकी बातें भी हुई। पर यह बात आगे नहीं बढ़ी। 1947 की सर्दियों तक देश के नेता विभाजन को ही एक मात्र विकल्प मानने लगे थे। दस वर्ष का यह वह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कालखंड था, जिसने इस देश की अखंडता को नष्ट करके इसका इतिहास पूरी तरह बादल दिया। वस्तुतः यह सब उस खेल की तरह था जो निहायत लापरवाही, हल्केपन और गंभीर ज़िम्मेदारी के साथ शुरू हुआ पर धीरे–धीरे इसमें नए खिलाड़ी शामिल होते गए,नियम बनते गए,टोलियाँ बनती गयीं,रेफरी आ गए और अंत में किसी भी तरह से जीतना इस खेल में खिलाड़ियों का एकमात्र और अंतिम लक्ष्य रह गया।"1 यहाँ यहाँ विभाजन का खेला गया और तत्कालीन नेता खिलाड़ी थे,अंग्रेज़ रेफरी बन गए और अपना उल्लू सीधा कर चले गए। यह जो अलगाव का बीज था इसे खत्म करने के प्रयासों से अधिक इन्हें बनाए रखने के प्रयास अधिक हुये। "हिन्दू से मुसलमान के अलगाव का सिलसिला आज़ादी के बरसों में भी चलता रहा। आज़ादी के बरसों में मुसलमान को हिन्दू के नज़दीक लाने के लिए उनके मन से अलगाव के बीज खत्म करने के लिए कुछ भी नहीं किया गया।"2 वर्तमान परिप्रेक्ष में भी धर्मनिरपेक्षता की आड़ में इसी अलगाव को पोषित किया जा रहा है। विभाजन की राजनीति का दौर आज भी सापेक्ष है। हिन्दी के उपन्यासकार

इस तथ्य से बखूबी अवगत थे। अतः उन्होने अपने उपन्यासों के माध्यम से इस राजनीतिक कुतंत्र को व्यक्त किया है।

'काले कोस' उपन्यास में मुस्लिम लीग के नेता तसनीम चारगांव आते हैं और दिल मुहम्मद की दारा में शरीक होते हैं। दारा में हिन्दू, मुस्लिम, सिख, सभी मौजूद रहते हैं। दारा में पाकिस्तान के बनाने का जब हिन्दू और सिख विरोध करते हैं तब तसनीम कहता है "हम अलग कौम हैं,हमारा दीन, हमारा रसूल, हमारा जीना मरना, सब आपसे अलग है तो फिर हम क्यों न आपसे अलग ही रहें।"3 यहाँ यह मुस्लिम लीग नेता लोगों के मध्य धार्मिक अलगाव को इंगित कर विभाजन का समर्थन करता है। जबकि जनता विभाजन चाहती ही नहीं वह तो अंग्रेजी हुकूमत से निजात पाना चाहती है। गाँव–गाँव घूमकर ये नेतागण धार्मिक अलगाव का बीजारोपण करतें हैं। इसकी परिणिति सांप्रदायिकता और विभाजन है।

'तावीज़' उपन्यास में अंग्रेज़ी हुकूमत की पोल खोलते हुये लेखिका लिखती हैं "गुलाम भारत के आका अंग्रेजों को तमाशा पसंद था। अवध की सल्तनत पर नवाब का राज्य कायम था। नवाब अपने राज्य की खैरख्वाही के लिए ऊँचे हिंदू ज़मींदारों, धार्मिक पूजारियों को और अधिक प्रतिशत वाली हिंदू रिआया को नज़र–अंदाज़ भी नहीं करना चाहता था। बढ़ती आग को नवाब बेचौनी से देखता रहा। अंग्रेजों ने गुलाम हुसैन को हवा दी पानी दिया और अयोध्या में खून की होली खेली जाने लगी।"4 अंग्रेज़ अपनी सत्ता नहीं खोना चाहते थे वरन उनकी कोशिश हिंदुस्तान को आंतरिक उल्झनों में उल्झाकर अपना पलड़ा साफ करना था। उन्होने हिंदुस्तानियों को उनके धार्मिक अलगाव के आधार पर बांटना शुरू कर दिया नतीजन सांप्रदायिकता विकसित हुई। यह अंग्रेजों के द्वारा हिंदुस्तान में राजनीति थी।

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में कमलेश्वर लिखतें हैं "हिंदुस्तान का आखिरी वाइसराय लार्ड माउंटबेटन दिल्ली में वायसरॉय हाउस के निजी शयनकक्ष में अपनी पत्नी एडविना माउंटबेटन से घुटी–घुटी आवाज़ में गुस्से से कह रहा था दृ तुम विभाजन के सताये, बरबाद हुए, मारे गए लोगों की हिमायत मत करो..... साम्राज्यों के इतिहास में यह मामूली घटनाएँ हैं...... और सुनो एडविना माउण्टबेटन। तुम अब एडविना एशले नहीं हो ..... तुम इंडिया के वायसराय और गवर्नर जनरल की ब्याहता बीबी हो। इसलिए ब्रिटिश साम्राज्य की परम्पराओं का पालन करो. ..... शरणार्थियों की तकलीफ और हमारे फैसले के तहत बनाए गए पाकिस्तान की सरहद पर जो नरसम्हार हो रहा है, उस पर आँसू बहाना कम करो...... ब्रिटिश साम्राज्य आँसुओं के हस्तक्षेप को मंजूर नहीं करता।"5 माउण्टबेटन यह स्वीकारता है कि विभाजन को लेकर जो खून खराबा हुआ वह ब्रिटिश साम्राज्य की कल्पना के बाहर था। वह यह व्यक्त करता है कि जिन्ना भी विभाजन नहीं चाहते थे। जिन्ना को शतरंज का मोहरा बनाया जाता है "वक्त गवाह है जिन्ना की नसों में बहता खालिस हिंदुस्तानी खून जाम गया था और उन्होने एकाएक महसूस किया था कि आपसी जिदों छोटे–छोटे अपमानों और प्रतिस्पर्धात्मक अहंकार से जन्मी ख़लिश कैसे एक चुनौती बन जाती है और वह कौम के सपने को तोड़कर जाती मुक़ाबले को छुपते हुए अपने तरफ़दारों को कैसे एक विकलांग और धर्मांध सपना सौंप देती है।"6 अंजान बनते हुए अंग्रेजी शासकों ने ऐसे खेल खेले जिनके कारण भारत आज भी त्रस्त है। हिंदुस्तान का विभाजन अंग्रेजों की विश्व के समक्ष अपनी प्रौढ़ता प्रदर्शन का एक जरिया था। वह हिंदुस्तान से जाने के लिए तो राज़ी थे लेकिन मुल्क का बटवारा किए बगैर जाना नहीं चाहते थे। अंग्रेजी हुकूमतों का मानना था कि वे यदि भारत को उसकी प्रस्तुत अवस्था में छोड़कर चले जाते हैं तो

भारतीय जनता को एक बहुत बड़े नरसंहार की गवाही देनी पड़ेगी। गाँधी जी जैसे कई नेताओं ने अंग्रेजों अंग्रेजों से अपील की वे भारत को उसके हाल पर छोड़ दें, वे भारत से चले जाए। लेकिन अंग्रेज़ों ने अपनी हठधर्मिता नहीं छोडी। हिंदू–मुस्लिम को आपस में लड़ाकर अंग्रेजी हुकूमत मौन बैठी तमाशा देखती रही। जिन्ना को भी अंग्रेजों ने अपने खेल का मुहरा बनाया। "इस्लाम जिन्ना की रणनीति थी, आस्था नहीं।"7 जिन्ना ने इस्लाम का पक्ष लिया क्योंकि वे सत्ता चाहते थे। सत्ता पाने की ललक उनके अंदर अंग्रेजी हुकूमत ने जगाई। जाने अनजाने जिन्ना भी इस राजनैतिक दाव–पेंच में फँस गए और कभी न निकल पाये।

'तमस' उपन्यास के अंतर्गत भीष्म साहनी जी ने हिंदू–मुस्लिम के बीच अलगाव की सृष्टि के स्पष्ट संकेत दिए है। हिंदुओं और मुसलमानों के बीच राजनीतिक स्वार्थ हेतु दंगे करवाए जाते हैं और शासक मूक दर्शक बना खड़ा रहता है। रिचड्र्स के दांव–पेंच से अवगत लीज़ा रिचड्र्स से कहती है "देश के नाम पर ये लोग तुम्हारे साथ लड़ते है और धर्म के नाम पर तुम इन्हे आपस में लड़ते हो।"8 उपन्यास में लेखक ने पांच दिनों की वारदात को दर्शाया है कि किसी प्रकार चौनों अमन के बीच दंगे जन्म लेते हैं। उपन्यास में लीज़ा यह यह सब जानती है कि जो कुछ भी दंगे, नरसंहार हुए हैं उसमें अंग्रेज़ों का बहुत बड़ा हाथ है बल्कि यों कहा जा सकता है कि यह अंग्रेजों की ही सोची समझी चाल है। प्रस्तुत उपन्यास के संबंध में डॉ.मीनाक्षी शर्मा जी लिखतीं हैं "तमस की आरंभिक घटना के चित्रण से स्पष्ट होता है कि सांप्रदायिक दंगे सहज, स्फूर्त ढंग से नहीं बढ़ते और न ही वे अचानक होते हैं। इसकी पृष्ठभूमि में प्रतिगामी शक्तियों की सोची समझी रणनीति होती है और उसमें वे अपने–अपने धार्मिक समूहों को हिंसा के लिए भडकातें हैं।"9 अंग्रेज़ों की रणनीति का शिकार हुई भारतीय जनता अपने ही भाई–बंधुओं को खदेड़ने में लग जाती है। अपनों के खून की नदियाँ बहा दी जाती है।

राजनीति एक ऐसी कार्यप्रणाली है जिसके ज़रिये समाज में फैसले लिए जाते हैं। इसके अंतर्गत जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधि जनता की जरूरतों को समझकर उनकी मांगों को उपलब्ध संसाधनों के आधार पर पूरा करते हैं। राजनीति में विचार प्रस्तुति के समय तर्क–वितर्क होते हैं तत्पश्चात इन तर्क–वितर्कों के आधार पर फैसले लिए जाते हैं। इसमें समाज से जुड़े मुद्दों को रखा जाता है और साथ ही समाज की उन्नति के लिए कार्य किए जाते हैं। मनुष्य ने जब से समुह में रहना आरंभ किया तब से राजनीति का भी विकास हुआ। हिन्दी उपन्यासों में लेखकों ने विभाजन के पीछे की राजनीतिक गतिविधियों को दर्शाया है। भारत विभाजन एक सोची–समझी चाल है। धार्मिक अलगाव के बीज जो अंग्रेजों ने डाले थे, विभाजन के पश्चात भी राजनीतिक दलों ने बरकरार रखे। अपने राजनीतिक लाभ के लिए वे इसे अब भी एक महत्वपूर्ण औज़ार के रूप में प्रयुक्त कर रहे हैं ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रियंवद, भारत विभाजन की अंतः कथा,पृ.32
2. सं डॉ. रणजीत, सांप्रदायिकता का ज़हर, पृ. 34
3. बलवंत सिंह,काले कोस,पृ.211
4.शीला रोहेकर,तावीज़,पृ. 27
5.कमलेश्वर,कितने पाकिस्तान,पृ.52
6.कमलेश्वर,कितने पाकिस्तान,पृ.56
7.प्रियंवद,भारत विभाजन की अंत कथा,पृ.130
8.भीष्म साहनी,तमस,पृ.45

9.डॉ. मीनाक्षी शर्मा,भीष्म साहनी के उपन्यास में नए मूल्यों की तलाश,पृ.170

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 302-306

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ग्लोबल गाँव का देवता में अभिव्यक्त आदिवासी जीवन

–कविता

शोधार्थी, पीएचडी. अनुवाद (अनुवाद अध्ययन विभाग)।

भारत के इतिहास में आदिवासियों का अपना इतिहास रहा है द्य उनकी संस्कृति, खान–पान, रहन–सहन, भाषा सब कुछ अलग है द्य आज आदिवासियों की स्थिति सोचनीय है द्य पेरु माचीग्रेंका हो, अफ्रीका के जूल, भारत के जारवा हो या पहाड़ियाँ द्य ये लूट, प्रवंचना, बेदखली, संहार और शोषण के शिकार बन रहे हैं द्य आदिवासी साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें आदिवासी और समाज दर्शन के अनुरूप अभिव्यक्त होता है द्य आदिवासी साहित्य के लिए विश्व में अलग–अलग नामों का प्रयोग हुआ है द्य बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में साहित्यिक क्षेत्र में अस्मितामूलक विमर्श का उदय हुआ द्य स्त्रियों, दलितों, एवं आदिवासियों ने एकजुटता से अपनी मांगें व मुद्दे उठाए जो स्थापित राजनीतिक दृष्टिकोणों के माध्यम से समझे और सुलझाए नहीं जा सकते थे द्य वंचितों के शोषण के खिलाफ उठ खड़ी हुई मुहिम में सामाजिक–राजनीतिक आंदोलनों के अतिरिक्त साहित्यिक आंदोलन ने भी अपनी उपस्थिति दर्ज करवायी है द्य आदिवासी लोक में साहित्य सहित विविध कला–माध्यमों का विकास तथाकथित मुख्यधारा से पहले हो चुका था, किन्तु वहाँ साहित्य सृजन की परंपरा लिखित रूप में न होकर मौखिक रूप में रही द्य भाषा ठेठ जनभाषा में होने और सत्ता प्रतिष्ठित की दूरी की वजह से भी यह साहित्य आदिवासी समाज की तरह उपेक्षा का शिकार हुआ द्य आदिवासी जीवन परंपरा और समाज में 'साहित्य' जैसी कोई रूढ़ि श्रेणीगत परंपरा नहीं है द्य आदिवासी समाज प्रकृति के बहुत निकट है द्य प्रकृति की गोद में ही उनका आश्रय है द्य "आदिवासी समाज में आज जो विद्रोह की भावना पैदा हो रही है उसका एक प्रमुख कारण है सरकार और पूँजीपतियों के गठजोड़ ने आदिवासियों की जमीन और जंगल उनसे छीन लिए हैं द्य जंगल ही उनकी जीविका का प्रमुख साधन है, इसलिए उसका छीना जाना उनकी अस्मिता के साथ खिलवाड़ है द्य 'अस्मिता' व्यक्ति की उनके सम्पूर्ण परिवेश में सक्रिय भागीदारी की जीवंत अभिव्यक्ति है द्य"1 भारतीय सभ्यता और संस्कृति के हरेक क्षेत्र में आदिवासी की छाप को स्पष्टतरू देखा जा सकता है द्य

21 वीं सदी के दौर में एक ओर आदिवासी अपनी अस्मिता और संस्कृति को बचाने के लिए संघर्षरत है तो दूसरी ओर अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश है द्य सरकार, पूंजीपति और मुख्यधारा का समाज तीनों ही आदिवासी समाज के प्रति भेदभावपूर्ण रवैया अपनाते हैं द्य आदिवासी जीवन को अपनी लेखनी का विषय बनाने वाले लेखकों में रणेन्द्र का नाम विशेष रूप से उभरकर सामने आता है द्य

रणेन्द्र का उपन्यास 'ग्लोबल गाँव का देवता' वस्तुतरू भारत के विशेष रूप से झारखंड के असुर आदिवासी समुदाय के अपने अस्तित्व, आत्मसम्मान और अस्मिता की रक्षा के लिए लंबे संघर्ष और लगातार मिटते

जाने की प्रक्रिया का संवेदनशील चित्रण है द्य सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक क्षेत्र में आज काफी चर्चा का विषय रहा है, भूमंडलीकरण द्य नवीन पद्धति से मानव–मानव में भेद करने का षड्यंत्र भूमंडलीकरण के कारण निर्मित किया गया है द्य विश्व ग्राम के नाम पर बहुत ऊपरी हिस्से के लोगों का कल्याण हो रहा है, किन्तु व्यापार से पैसा और पैसों से व्यापार तथा उसके मुनाफे से गरीब आदमी बहिष्कृत हो रहा है द्य व्यक्ति और समाज के जीवन के हर प्रसंग में देशी–विदेशी का फर्क मिट गया है द्य

रणेन्द्र आदिवासी समुदायों की सामाजिक–सांस्कृतिक विशेषताओं और अंतरूसंबंधों से रूबरू होते रहे हैं द्य इसके अतिरिक्त वैश्वीकरण एवं विकास के प्रभावों के दृष्टा और अन्वेषक भी रहे हैं द्य चिंतन–मनन् की प्रक्रिया और अपने उद्भावित अनुभव जगत से उन्होंने आदिवासी जीवन को लेकर एक साहित्यिक अभियान चलाया द्य सन् 2009 ई. में वे 'ग्लोबल गाँव का देवता' उपन्यास को लेकर साहित्य जगत में प्रवेश करते हैं तथा आदिवासी समुदाय 'असुर' के जीवन का संतप्त एवं संक्षिप्त आख्यान प्रस्तुत करते हैं द्य आदिवासी समाज के अंतर्गत आने वाली यह प्रचुर जातियाँ आज भी मुख्य धारा से कोसों दूर है द्य आधुनिक तथाकथित सभ्य समाज जिस सामाजिक साम्य की परिकल्पना करता है द्य आदिम साम्यवाद, मातृसत्तामक समाज, संस्कृति और मूल्य आज भी उनके यहाँ कायम है द्य वीर भारत तलवार अपनी पुस्तक 'झारखंड के आदिवासियों के बीच' में लिखते हैं कि "आदिवासी गरीब है द्य उनकी अर्थव्यवस्था पिछड़ी हुई है द्य उनकी उत्पादकता कम है, क्योंकि उनकी जमीन बहुत उपजाऊ नहीं है, उनके पास सिंचाई के साधन तथा उत्पादन के साधनों का अभाव है द्य"2 आदिवासी समाज अपने मौलिक अधिकार और आचार–विचार में किसी दूसरे की सहभागिता को मान्यता नहीं देते, चाहे वह उसके भले के लिए क्यों न हो, लेकिन यह वास्तविकता है कि जंगल की सम्पदा का संवर्धन उन्हीं की देन हैं द्य

'ग्लोबल गाँव का देवता' आदिवासियों के संबंध में गढ़े हुए भ्रमों एवं मिथकों को खंडित करता हुआ उनके समकालीन जीवन, समस्याओं एवं अनवरल जीवन संघर्ष का यथार्थ चित्रण करता है द्य मुख्य रूप से झारखण्ड की 'असुर' जनजाति पर केन्द्रित होते हुए भी इसमें झारखंड सहित अन्य राज्यों व वर्तमान की त्रासदियों को पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है द्य असुर शब्द कहने से ही हमारे मन में एक राक्षसी छवि बनती है द्य उपन्यास में असुरों के बारे में कहा भी गया है कि–"असुरों के बारे में मेरी धारणा थी की खूब लंबे–चौड़े, काले– कलूटे, भयानक, दांत–वांत निकले हुए, माथे पर सींग–वींग लगे हुए लोग होंगे, लेकिन लालचन को देखकर सब उलट–पुलट हो रहा था द्य बचपन की सारी कहानियाँ उल्टी घूम रही थी द्य"3 आदिवासी के जीवन पर आधारित यह उपन्यास झारखंड की ज़िंदगी पर है द्य झारखंड में असुर, अगारियाँ जाति, लोहा जलाकर औजार बनाकर बेचती हैं द्य द्य उन्होंने कारखाने खोले द्य मशीन के सामने आदिवासी हार गये द्य उनके औजारों का स्थान नहीं रहा द्य कारखाने में जो लोहा जलाया जा रहा है, उनके धुएँ से आदिवासी के स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ रहा था द्य बेरोजगारी बढ़ गयी द्य परंपरागत व्यवसाय नष्ट हो रहे थे द्य भूमि के स्वामी भिखारी बन गये द्य

असुरों को अपनी जमीन से विस्थापित किया गया और विस्थापन की यह त्रासदी का दंश वह आज भी झेल रहे है द्य फर्क इतना है कि पहले इंद्र पांडवों एवं सिंगबोगा ने इनका विनाश किया और भूमंडलीकरण के दौर में इनका स्थान वेदांग, शिडांलकों जैसे ग्लोबल गाँव के व्यापारियों (अंतर्राष्ट्रीय कम्पनियों) ने ले लिया है द्य जो पूरी तैयारी के साथ इन्हें अपनी जमीन से खदेड़ने को तत्पर हैं द्य इस कार्य में शासन और सत्ता का भी

पूरा सहयोग इन्हें प्राप्त है द्य उपन्यास में उपन्यासकार ने नव–जीवन कल्पनाएँ और नई लेखन शैली इसे नए आयाम तक पहुंचाती है द्य देवराज इंद्र से लेकर ग्लोबल गाँव के आधुनिक व्यापारियों तक फैली शोषण की प्रक्रिया को उपन्यासकार व्यक्त करने में सफल हुए है द्य असुरों की छिन्न–भिन्न संस्कृति की संघर्षमय गाथा को उपन्यास में कथ्य के रूप में अभिव्यक्त किया है द्य रणेन्द्र ने इसमें भूमंडलीकरण के कारण आदिवासी जनजाति के जीवन में होने वाले परिवर्तन को दर्शाया है द्य जमीन, जंगल और जल ही आदिवासी जनजाति की संपत्ति हैं द्य अपने आपको आधुनिक समझने वाले कथाकथित पढ़े–लिखे सुशिक्षित समाज की वक्र दृष्टि अब आदिवासियों के जल, जमीन और जंगल की तरफ पड़ी द्य परिणामस्वरूप उसकी भाषा, संस्कृति और परंपरागत धार्मिक आस्था खतरे में पड़ गई है द्य इसकी आहट उन्हें पहले से हो गई थी किन्तु सरकार की प्रलोभनकारी वृति, लालचपन और स्वार्थी समाज ने उन्हें कल्याणकारी सपने दिखाकर उनके जल, जमीन, जंगल भी छीन लिए हैं द्य इंसान कितना मजबूर हो गया है इस संदर्भ में माधव सोनटक्के कहते है कि ”आज की ग्लोबल गाँव की संकल्पना ने उसकी कमर तोड़ दी है द्य उनकी स्त्रियाँ अब न आजाद हैं और न ही सुरक्षित हैं द्य आधुनिकता के सपने ने उसे वेश्यालय तक पहुंचा दिया है द्य”4

इस उपन्यास में भूमंडलीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में प्रचारित किया है कि इससे राष्ट्र–राज्यों का पृथक अस्तित्व बेमानी हो गया है और दुनिया ‘एक ग्लोबल गाँव’ बन गई है द्य ग्लोबल गाँव का यह मिथक दरअसल भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में सामने आ रहे श्रम और पूंजी के अंतर्विरोध को छिपाने के लिए गढ़ा गया है, लेकिन वास्तविकता यह है कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को सफल बनाने की कोशिश असफल हुई द्य

आदिवासी समाज में अपने पूर्वजों को ही देवता के रूप में स्थापित किया जाता है द्य इस संदर्भ में कुमार कमलेश ने लिखा भी है कि–”युगों से इन वनवासी आदिवासियों ने अब तक अपनी जीवन–शैली, भाषा, रीति–रिवाजों और सांस्कृतिक परंपरा को कायम रखा है द्य उनके पूर्वज ही उनके आराध्य होते हैं, जिन्हें बोंगा कहते हैं द्य उनके बोंगा के लिए कोई मंदिर, मस्जिद की स्थापना नहीं होती है, वह वृक्षों व चट्टानों में स्थान पाते हैं द्य”5 रणेन्द्र इस रचना के माध्यम से प्रश्न उठाते है कि सरकार आदिवासियों को राष्ट्र की मुख्यधारा में लाने के लिए जो योजनाएं बना रही है क्या उसे अमल में भी लाया जा रहा है, किन्तु इससे मूल निवासी आदिवासियों की संस्कृति और मूल्य बचे रहेंगे ? रणेन्द्र यह जानते थे इसलिए पात्र ललिता के माध्यम से कहते है कि–”राज्य–राष्ट्र की हिंसा का कोई जवाब नहीं हो सकता द्य उसका मानना था कि राज्य की नींव में ही केवल हिंसा की ईंटों से चिनाई हुई है द्य यही एकमात्र संस्था है द्य जिसने हिंसा को भी संस्थानिक रूप दिया है द्य उसकी सेना, सशक्त बल, पुलिस सब सैद्धान्तिक तौर पर हिंसा के लिए प्रशिक्षित है द्य”6

वैदिक साहित्यिक से शुरू होकर रामायण, महाभारत और विभिन्न पुराणों में निर्मित असुरों की यह छवि उनके समुदाय और जीवन के मिथकीकरण का परिणाम है द्य प्राचीन काल से चली आ रही असुरों के प्रति इस संकुचित सोच को रणेन्द्र उजागर करते हैं द्य आदमी की लाचारी को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है द्य आम आदमी गरीबी और अशिक्षा के कारण अपने अधिकारों को जान नहीं पाता और किस तरह उसे चरवाहे द्वारा हाँक दी गई भेड़–बकरियों की तरह जीना पड़ता है द्य ‘ग्लोबल गाँव का देवता’ की विशेषता यह है कि वे मुख्यधारा की नज़र से ओझल झारखंड के कोयलबीघा प्रखण्ड को दृश्यमान बना कर प्राकृतिक सम्पदा से युक्त क्षेत्र के सशक्त मूल आदिवासियों की दुर्दशा के प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करते हैं द्य

आदिवासी समाज का संकट एवं उनके संघर्ष देश के व्यापक समाज के संकट और संघर्षों के प्रतिनिधि लगते हैं, क्योंकि आर्थिक उदारीकरण के पहले विकास की जो कीमत आदिवासी जनजातियों को देनी पड़ी, आज उसी कीमत की उपेक्षा आदिवासी सहित समाज के हाशिये पर समूह से की जा रही है द्य फलतरू विस्थापन एवं पुनर्वास की समस्या में कही अधिक गहराई है द्य इसी के अनुरूप 'ग्लोबल गाँव का देवता' सिर्फ आग और धातु की खोज करने वाली और धातु पिघलाकर उसे आकार देनी वाली कारीगर असुर जाति के 'जीवन का संतप्त सारांश है' क्योंकि उसे सभ्यता, संस्कृति, मिथक, मनुष्यता सबने मारा है द्य भारत की सरकार उदारवादी नीति की मार्फत भारत को विश्व–बाज़ार की असहाय अंग बनाने में जुटी है और डब्लू.टी.ओ. के प्रस्ताव को स्वीकार कृषि–क्षेत्र व प्राकृतिक संसाधनों को क्षत–विक्षत कर रही है द्य शहरी, धनिकों, देशों, उद्योगपतियों और कम्पनियों की घुसपैठ के कारण जल, जंगल और जानवर से जुड़े लोगों के अनवरत शोषण का सिलसिला शुरू है द्य"7 उपन्यास के अंत तक आते–आते रचनाकार असुर जनजाति की इस त्रासदी को व्यापक समाज की त्रासदी के रूप में प्रस्तुत करता है द्य उनके संघर्ष को व्यापक समाज के संघर्ष के रूप में पेश करता है द्य

आदिवासी समाज में स्त्रियों को बहुत ज्यादा मान–सम्मान दिया गया है द्य वे बहुत ही मेहनती होती है द्य उन्हें घर व बाहर दोनों जगह का काम करना पड़ता है द्य असुर समाज की औरत की स्थिति मुख्यधारा की तुलना में बेहतर दिखाई दिया है द्य 'ग्लोबल गाँव का देवता' उपन्यास में भी असुर महिलाओं को कमजोरी का नहीं समझदारी का प्रतीक माना जाता है द्य ये महिला को सयानी संबोधित करते हैं, याद रहे शब्द सियानी है न की जनानी द्य जनानी शब्द कही न कही केवल जनन, जन्म देने की प्रक्रिया से उन्हें संकुचित करता है द्य इस उपन्यास में ललिता असुर व बुधनी को सियानी के रूप में देखा गया है द्य आदिवासी लोक जीवन में पर्व–त्योहारों का बड़ा महत्व है द्य ये अपनी संस्कृति के अनुसार अपने को ढालकर पूरी निष्ठा और लगन से उसका पालन करते हैं द्य पर्व– त्योहारों को मानने का उद्देश्य देवताओं को प्रसन्न करना है और उनके प्रति अपनी आस्था की अभिव्यक्ति है द्य श्रीचन्द्र जैन आदिवासियों के पर्व–त्योहारों के संबंध में कहते हैं कि "आदिवासियों का हरेक दिन पर्व है द्य धार्मिक चेतना को जगाने वाले यह पर्व ही हैं द्य इससे समाज में एकता बढ़ती है, सामूहिक खुशी पनपती है और ऊँच–नीच का भेद मिट जाता है द्य"8

आदिवासियों में शिक्षा का अभाव होता है द्य आदिवासी समाज के सौ से ज्यादा घरों को उजाड़ कर स्कूल बनाया जाता है दुर्भाग्य यह है कि उन स्कूलों में एडमिशन ही नहीं दिया जाता द्य उपन्यास में यह स्थिति हम पाथरपाट स्कूल को देख सकते हैं द्य 'ग्लोबल गाँव का देवता' उपन्यास में कहा गया है कि "भौंरापाट स्कूल आदिम जाति परिवार की बच्चियों के लिए खोला गया था किन्तु उसमें पढ़ने वाली असुर–बिरिजिया बच्चियों की संख्या दस प्रतिशत से ज्यादा नहीं थी द्य"9 यहाँ स्कूल में सफाई, मेस के खाने और सफाई को लेकर काफी बहस हुई द्य उसके बाद थोड़ा बहुत असर पड़ा द्य आदिवासी समाज में शैक्षणिक योजनाओं की असफलता का बड़ा कारण उनको हेय मानना था द्य

असुर समाज बढ़ती गरीबी और भूख के कारण उस समुदाय की जवान लड़कियों में सम्पन्न जमींदारों, नौकरशाहों, खदान के मालिकों और प्रभावशाली कारिंदों की रखैलों के रूप में उनके हाथों का खिलौना बनने का उल्लेख भी इस उपन्यास में है द्य लोगों ने इस समुदाय की चिंता इस प्रकार अभिव्यक्त की है "लेकिन रुमझुम ने बताया कि यह शिकायत नहीं थी, बल्कि विलाप था द्य अंदर से बुरी तरह टूट चुके समाज का विलाप द्य भूख

और गरीबी ने अंदर से इतना खोखला कर दिया कि सामाजिक व्यवस्था भरभरा गयी है द्य"10 आदिवासी के अस्तित्व के लिए अपने अस्तित्व की समग्र ऊर्जा प्रदान करने वाले उपन्यासकार रणेन्द्र उनके हक और अधिकारों की लड़ाई लड़ रहे हैं , इस विश्वास के साथ की एक दिन आदिवासी, समाज के मुख्य प्रवाह में अपने अस्तित्व की मुहर जरूर लगाएगें द्य इस संभावना को अब अस्वीकारा नहीं जा सकता क्योंकि आदिवासी की अस्मिता सामुदायिक का रूप ले रही है द्य

निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि रणेन्द्र ने आदिवासियों के स्थानीय समस्याओं को अपनी इस कृति के माध्यम से पुनरू जीवित किया है द्य इसका एक पक्ष बाबाओं और पाखंड को भी दिखाया है, जिसका कितना भारी मूल्य उस आदिवासी समाज के लोगों को चुकाना पड़ रहा है द्य यह उपन्यास न केवल धीरे–धीरे मौत के आगोश में समाते आदिवासियों की व्यथा का चित्रण किया है बल्कि पूरे भारत में तिल–तिल कर मर रहे आदिवासियों को उभारने की एक कोशिश है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव का देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2008, पृ. 33

2. तलवार, वीर भारत, झारखंड के आदिवासियों के बीच, (एक एक्टिविस्ट के नोट्स), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 2008, पृ. 33

3. रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव का देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2008, पृ. 11

4. सोनटक्के, माधव, और संजय राठोड, भारतीय साहित्य और आदिवासी विमर्श, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ.75

5. कुमार, कमलेश, आदिवासी विमर्श रू अवधारणा और आंदोलन, पृ. 22

6. रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव का देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2008, पृ. 92

7. मुकेश, कुमार, सुधांशु शेखर, भूमंडलीकरण रू नीति और नियति, पृ. 93

8. सोनटक्के, माधव, और संजय राठोड, भारतीय साहित्य और आदिवासी विमर्श, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 79

9. रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव का देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2008, पृ. 20

10. रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव का देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2008, पृ. 39

मो. 7503561010

ई. मेल– ÿंअपबींनींद322 ⁄ हउंपस.बवउ

पता– मकान न. 170, बैंक वाली गली, पल्ला

दिल्ली, नई दिल्ली–110036

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 307-310
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जया जादवानी की कहानियों में नारी–विमर्श

–बलप्रदा श्रीवास्तव
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

आधुनिक युग के महिला कहानीकारों में जया जादवानी का नाम सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। जया की कहानियाँ सचमुच अपने शब्दों से न केवल देह बल्कि समूची चेतना के अस्तित्व को जगा देती है। शब्दों के कोमल आघातों से किस्सागोई में वे ऐसा निखार पैदा करती हैं जो कभी–कभी न कहा, न सुना सा प्रतीत होता है। जो पाठक जया जादवानी को अरसे से पढ़ते–सुनते आए हैं, वो जानते हैं कि जया के भीतर मानवीय भावनाओं व संवेदनाओं की गहराईयों को उजागर करने वाला एक ऐसा रसायन मौजूद है जिसके जादू से बच पाना असंभव है।

जया जादवानी के ष्मैं अपनी मिट्टी में खड़ी हूँ काँधे पे अपना हल लियेश (कहानी संग्रह) में कहानी श नीत्से का मरना तय हैश, की कहानी का कथानक एक ऐसे प्रेम–प्रसंग से बुना है जिसमें बेमेल प्रेमी जोड़ा है। अर्थात् नायक–नायिका से उम्र में बड़ा है, पहले से ही शादीशुदा है बच्चे बड़े हैं। घर–परिवार व व्यापार के कार्य में बहुत व्यस्त रहता है। उसके पास नायिका से मिलने का समय नहीं है। बहुत दिनों बाद अचानक नायिका के फोन करने पर वह आता है।

अब दोनों एक दूसरे के सामने बैठे हैं। वह बिना नजरें मिलाए प्रेमिका को अपने व्यस्त होने के कारण लगातार बता रहा है। ष मेरी तबियत खराब थी, चेकअप कराया तो पता चला, बी.पी. बढ़ा हुआ है। आमतौर पर ऐसा होता नहीं है। मैं बीमार होने से बहुत घबराता हूँ। फिर अचानक काम की व्यस्तताएँ भी बढ़ गईं। पत्नी अलग बीमार पड़ गई। पिछले महीने शादियों की वजह से भी बहुत व्यस्तता रही। जाना पड़ता है हर जगह। सर्वेंट भाग गया तो घर की सारी जिम्मेदारी मुझ पर आ पड़ी। तुम जानती होए आजकल के बच्चे कुछ करना नहीं चाहते। इसी बीच मेरे एक दोस्त की मृत्यु हो गई, कई दिनों तक मैं अपसेट रहा ..... कुछ मेरे स्वभाव के चलते और कुछ मेरा घर शहर के बीचोंबीच होने से हर शाम एक छोटी सी– भीड़ आ जुटती है घर में। उसमें व्यस्त हो जाता हूँ। बेटी आई थी बच्चों के साथए वह अलग। मकान बनवा रहा हूँ, कभी कुछ खत्म हो जाता है कभी कुछ .....ष प्रेमिका बिल्कुल शांत होकर बिना कुछ कहे यह सब कुछ सुन रही है। वह प्रेमी के होते हुए भी तन्हा अकेला जीवन जी रही है और हमेशा उसका इंतजार कर रही है। प्रेमी उसे अपनी बातों से सिर्फ खुश करने का प्रयास कर रहा है। प्रेमिका सब समझती है कि प्रेमी की बातें मात्र छलावा है फिर भी वह उसे प्रेम दिए जा रही है।

इसी कहानी संग्रह की एक अन्य कहानी है ष्जो सदियों से चुप हैष इस कहानी की नायिका कुछ लोगों

के साथ श्हजरत सैयद अली मीरा दातारश् दरगाह पर जाती है। यह दरगाह 1934 में बनाई गई है। यहाँ अनगिनत लोग आते हैं। बहुत से लोग अपनी शारीरिक व मानसिक तकलीफ से छुटकारा पाने के लिए आते हैं। इस दरगाह में जो भी सवाली आता है उस पर जो भी जादू–टोना या भूत–प्रेत का साया होता है। उसे ठीक किया जाता है। यहाँ स्त्री और पुरुषों को अलग–अलग बिठाया जाता है। महिलाओं की दर्दनाक स्थिति देखते हुए नायिका कहती है कि– ष्जब हम अंदर पहुंचे, एक तरफ औरतें बैठी हुई थी। दूसरी तरफ पुरुष। दुखी–हारी उदास औरतें..... वक्त या समाज या परिवार वालों की सताई औरतें। धोतियों और बेमेल दुपट्टों से अपना सिर ढँके। कुछ दोनों हाथ बांधे किसी अदृश्य की प्रार्थना में रत.....। कुछ सूनी आँखों से इधर–उधर निहारती.....। काले, लाल और हरी सलवार–कमीज में जवान लड़कियां.....। आधी बुझी.....आधी जलती.....।ष्2

पूरी दरगाह ऐसे लोगों से भरी है जो अपनी पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए यहाँ दुआएँ व मन्नत का धागा बांधने आए हैं। पर उन्हें ये किसी ने नहीं बताया कि उनकी अशांति का कारण उनका अंर्तद्वन्द है। नायिका कहती है कि– ष्जाने कितनी कामनाएँ, लालसाएँ, डर कुंठाएँ धागों की शक्ल में सामने रखे इन डंडों पर बंधी है। मनुष्य अपने भीतर के विराट संसार से खुद भयभीत है जहाँ उसकी अनेक शक्तियां युद्धरत हैं।ष्3 क्या हाल बना लिया है हमने अपनी इस दुनिया का जहाँ हम खुद अपनी मर्जी से नहीं जी पा रहे हैं लड़कियाँ अभी भी चीख रही हैं परंतु लड़कियों की चींखों के जवाब जिनके पास हैंए वे सदियों से चुप हैं ।

ष्अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता हैष् इस कहानी–संग्रह की कहानी ष् मैं मनुष्य हूँ ष् में लेखिका ने कन्या भ्रूण हत्या वाले मुद्दे को अत्यंत संवेदना के साथ उजागर किया है। किस तरह जन्म से पहले ही शिशु को पता चल जाता है कि वह एक अनचाही लड़की है। कहीं न कहीं सवाल उस स्त्री (मां) से भी है जो स्वयं स्त्री होकर भी पुरूष को जन्म देने में अपनी श्रेष्ठता समझती है। ष्नहीं–नहीं, यह नहीं हो सकता। तीसरी लड़की नहीं चाहिए मुझे! इसे निकालो मेरे जिस्म से .....।ष्4

इसी संग्रह की अन्य कहानी ष्अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता हैष् में कहानी के माध्यम से लेखिका ने ऐसी चेतना सम्पन्न स्त्री की छवि उजागर की है जो सामाजिक मान्यताओं के विपरीत बेटी के जन्म का स्वागत तहेदिल से करती है। बच्ची को जन्म देकर यह सजग स्त्री जिस असीम आनन्द का अनुभव करती हैए उस अनुभव को लेखिका ने शब्द देकर जीवंत बना दिया है। ष्असहनीय दर्द की लहरें..... पर वहाँ मृत्यु भय नहीं था। न कुछ और..... मेरे जहन में सिर्फ बच्चा था..... मेरा अपना बच्चा।ष्5 रोहिणी अग्रवाल कहती हैं कि ष्जया जादवानी–ष्अंदर के पानियोंष् में एक सपना पालती है और बेटी के जन्म के साथ आत्मविस्तार की अकूत संभावनाओं से भरकर उन सपनों को साकार करने का जज्बा भी।ष्6

जया जादवानी का कहानी संग्रह ष्मुझे ही होना है बार–बारष् की कहानी श्अपनी जगहश् अत्यंत नाटकीय ढंग से ऐसी स्त्री की मानसिक ऊब, घुटन और बेचौनी को दर्शाती है, जिसके पास भौतिक रूप से वे सारी सुख–सुविधाएँ हैं जो एक परिवार को सामाजिक रूप से सम्पन्न कहलाने के लिए आवश्यक है, परंतु स्त्री भीतर से खुश नहीं है। वह अपनी दमित इच्छाओं को अपने अंदर पुनः जगा कर स्वयं के नये स्वरूप को स्थापित करना चाहती है। स्त्री चेतना की दृष्टि से यह एक सशक्त कहानी है।

इस कहानी में नायिका एक दिन खुश होने का निर्णय लेती है और वह घर की उन सभी वस्तुओं को इकट्ठा कर लेती हैए जिनके आने से हमें लगता है कि खुशी आती है। जैसै टी.वी., फ्रिज, परदे एवं अन्य वस्तुएँ।

वह सभी वस्तुओं को उनकी खास जगह पर रखकर देखती है, पर उसे कोई खुशी नहीं मिलती। फिर वह विभिन्न वस्तुओं की जगह स्वयं को रखकर देखती है। वह टी.वी. की जगह स्वयं को रखती है और अपनी जगह टी.वी. को, जब टी.वी. नायिका को आंन करता है तो वह भी उसके अंदर विभिन्न रहस्यमयी दुनिया को देखकर आश्चर्यचकित रह जाता है। जब वह स्वयं को फ्रिज की जगह रखती है तो अनुभव करती है कि उसकी भावनाएँ बरसों से उसके अंदर बर्फ के नीचे दबी हुई हैं। वस्तुओं की जगह स्वयं को रखने में उसे विशेष खुशी नहीं मिलती। वह स्वयं से परिचित होना चाहती है इसलिए अपना कोण बदल बदलकर देखती है, वह स्वयं से हटकर दूर चली जाती है। ष मैनें अपना अपने से अलग होना देखा और देखा सारे दृश्य का सहसा परिवर्तित हो जाना. .... मेरे सामने सब कुछ वही था, पर कुछ भी वही नहीं था। मैंने एक नया रूप रेखा। नया रंगए नया दृश्य.... ।ष7 नायिका स्वयं को विभिन्न रूपों में देखकर उस खुशी को महसूस करती है, जिसे वह पाना चाहती है।
जया जादवानी के ष्उससे पूछोष कहानी संग्रह की कहानी ष्ये रात कितनी लम्बी हैश, एक स्त्री की भोग्या से योग्या बनने के सफर को तय करने की कहानी है। दुखों व तकलीफों की रात कितनी भी लंबी क्यों न हो परंतु स्त्री के अथक परिश्रम एवं संघर्ष से वह खुशियों की सुहानी सुबह में परिवर्तित हो ही जाती है। इषिता ने अपने जीवन में बहुत सहा एवं संघर्ष किया। वह अपने जीवन के बारे में सोचती है– ष्मेरे पास सिर्फ जख्म थे– मेरे नंगे शरीर पर, नंगी आत्मा पर, नए पुराने, ताजे, उधड़े, सिए, हर किस्म के जख्म.... किस्म–किस्म के जख्म।ष8 लेकिन जब उसने ठान लिया तो स्वयं को इस योग्य बना लिया कि अपना व अपनी बेटी को नर्क जैसा जीवन भोगने से बचा लिया। इस कहानी से यह शिक्षा और प्रेरणा मिलती है कि अगर स्त्री एक बार सोच ले तो स्वयं का एवं आने वाली पीढ़ी का भविष्य भी संवार सकती है।
इसी कहानी–संग्रह ष्उससे पूछोष की एक अन्य कहानी श्आखिरी बार से पहलेश एक स्त्री के अकेलेपन एवं तन्हाई की कहानी है। लेखिका ने इस कहानी में स्त्री की उन भावनाओं को उजागर किया है जिसमें स्त्री अपने जीवन के अंतिम समय तक सच्चे प्रेम का इंतजार कर सकती है। परंतु वह पुरुष से सच्चा मानसिक व भावात्मक समर्पण वाला प्रेम चाहती है। वह ऐसे साथी का इंतजार कर रही है जो उसके शरीर से नहीं बल्कि उसके सुंदर मन से प्रेम करें। परंतु वह नहीं आता। तब नायिका सोचती है कि– ष्हां मैं बार–बार आऊंगी वापस, बार–बार तुम्हें खोजने के लिए...... जब तक तुम अंतिम बार मिल ही नहीं जाते। हाँ अंतिम बार के पहले मैं तुम्हें देखना चाहती हूँ।ष9 परंतु जब स्त्री का यथार्थ से सामना होता है तो उसकी प्रतीक्षा का वृक्ष तेज हवा के थपेड़ों से झड़ जाता है। तब वह हताश, निराश हो असहाय पीड़ा से भर जाती है।

जया जादवानी की कहानियाँ विषय–वस्तु के धरातल पर नवीनता लिए हुए है और यही नवीनता ही उन्हें अन्य कथाकारों से अलग करती है। उनका यही यथार्थ बोध उनकी निडरता और लेखकीय कुशलता ही उन्हे लोकप्रियता के इस मुकाम तक पहुँचाती है।

संदर्भ–सूची

1. मैं अपनी मिट्टी में खड़ी हूँ कांधे पर अपना हल लिए, पृष्ठ–54
2. मैं अपनी मिट्टी में खड़ी हूँ कांधे पर अपना हल लिए, पृष्ठ 69
3. मैं अपनी मिट्टी में खड़ी हूँ कांधे पर अपना हल लिए, पृष्ठ 72

4. अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है, पृष्ठ–79
5. अन्दर के पानियों में कोई सपना काँपता है, पृष्ठ–125
6. स्त्री लेखनः स्वप्न और संकल्प, रोहिणी अग्रवाल, पृष्ठ–208
7. मुझे ही होना है बार–बार, पृष्ठ संख्या–74
8. उससे पूछो, पृष्ठ–195
9. उससे पूछो, पृष्ठ–206

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 311-313
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नासिरा शर्मा के उपन्यासों में 21वीं सदी के बदलते जीवन मूल्य

–**कु. बंसती सेनापति**, शोधार्थी,
–**डॉ. प्रभात रंजन**, शोध निर्देशक
संत गुरु घासीदास शा. स्नात्कोत्तर महाविद्यालय कुरुद, धमतरी, छत्तीसगढ़।

हर देश व समाज के द्वारा व्यक्ति के लिए जीवन को जीने के लिए कुछ मापदंड निर्धारित किए गए है, जिससे वह एक सफल नागरिक बन अपने देश समाज, परिवार, की उन्नति में सहयोग प्रदान कर सके। यही मापदंड परिवेश आधारित भिन्न– भिन्न होते है। जो व्यक्ति को जीवन जीने के लिए आवश्यक होते है। यदि व्यक्ति इन मूल्यों के बिना जीने की कल्पना करता है, तो वह देश समाज से बहिष्कृत कहलाता है। जीवन मूल्य ही हमें भाईचारे, सहयोग, दया, प्रेम, नैतिक, अनैतिक सहानूभूति त्याग आदर करना सिखाती है। आज के वैज्ञानिक एवं प्रतिस्पर्धा के दौर में जीवन–मूल्य अति आवश्यक है ताकि व्यक्ति दिग्भ्रमित न हों। इन बदलतें मूल्यों को हम लेखिका नासिरा शर्मा के उपन्यास कुईयाँजान बहिश्तें ज़हरा, शाल्मली, ठीकरे की मंगनी, अक्षरवट, जीरोरोड, पारिजात, कागज की नाव, में चित्रित पात्रों के माध्यम से देख सकते है। नासिरा शर्मा एक ऐसी उपन्यासकार है जो अपने समकालीन में घटित हो रहे आधुनिकता एवं पंरपरा के सकारात्मक मूल्यों को साथ लेकर चलने वाली लेखिका है। वे मूल्यों की पक्षकार है, रुढ़िवादिता की नहीं।

वर्तमान युवा पीढ़ी की जागरुकता एवं परिवर्तनशीलता को समय के साथ स्वीकार करती है, लेकिन दिग्भ्रमित आधुनिकता के नकारात्मक दृष्टिकोण का समर्थन नहीं करती है। नासिरा शर्मा पूरी तरह जमीन से जुड़ी कथाकार है। इसलिए वर्तमान समय में बदलतें जीवन मूल्यों को समाज के उत्थान में सहयोग प्रदान कर शांति एवं सौहार्द को बनाए रखें यथा– ''मूल्य बाहर से आरोपित कोई वस्तु नहीं है। ये जीवन के संदर्भ में विकसित पल्लवित परिवर्तित होते है।''1 जीवन के संदर्भ में हमारी जो दृष्टि होगी उसी के अनुरुप जीवन मूल्य हमारे हाथ लगते है।

आज हमारे जीवन में नित्य नए परिवर्तन हो रहे है इसलिए हमारे जीवन मूल्य में भी समय व परिस्थिति के अनुसार बदलाव आ रहे है।

प्रत्येक देश व समाज का अपना–अपना जीने का तरीका होता है। जो किसी राष्ट्र में हेय है, वहीं मूल्य दूसरे राष्ट्र में मान्य घोषित है। भारतीय जीवन मूल्य हमें दया, त्याग, सेवा, ईमानदारी, सिखाती है। वही आज शिक्षा के वैश्वीकरण के कारण नई पीढ़ी के विचारों, आदर्शो, प्रतिमानों, मूल्यों और जीवनशैली में व्यापक परिवर्तन दिखाई देता है। जैसा कि नासिरा शर्मा के उपन्यास पारिजात में उल्लेखित है– ''पारिजात आज की पीढ़ी के ऊँचे–ऊँचे स्वप्नों उनके त्वरित निर्णयों, माता–पिता के प्रेम, स्त्री की भारतीय और पाश्चात्य छवि और गुरु–शिष्य के संबंधों व एक समुदाय विशेष के लिए पाश्चात्य पूर्वाग्रह से चोटिल संवेदनाओं को एक नवीन आयाम देने वाली

महत्वपूर्ण रचना है।''2

आज की उन्नति एवं औद्योगिकरण के कारण समाज के सामने अनेक चुनौतियां आई है जिसके कारण प्रत्येक देश के युवा पीढ़ी के सामने नवीन आदर्श प्रतिमान तथा सामाजिक मूल्यों का जन्म होता है और समाज में भी परिवर्तन होता है। जिससे आज के मनुष्यों की सोच में भी परिवर्तन प्रत्यक्ष दिखाई देता है। नासिरा शर्मा के उपन्यास ठीकरे की मंगनी में केन्द्रिय पात्र महरुख के विचारों में बदलाव इस बात का प्रमाण है जब वह घर की चार दीवारी से निकल दिल्ली पढ़ने के लिए जाती है तथा जीवन में आये उतार–चढ़ाव से स्वयं को दृढ़ बना कर हर संघर्ष का सामना करने की शिक्षा उसे रफत भाई के द्वारा दी जाती है। जिसका कुछ अंश द्रष्टव्य है।– ''कुंए का मेंढक बनना कतई पसन्द न था किसी एक जगह से जुड़ा रहना उन्हें किसी लानत से कम नहीं लगता इस वजह से वह अपनी भावी पत्नी को उस कुंए से निकाल कर एक ऐसी दुनिया में ले जा रहे थे जहाँ जिंदगी आधुनिकता पर कायम है।''3 इस प्रकार महरुख के नये जमाने के साथ नये जीवन मूल्यों को स्वीकार करने को सलाह दी जा रही है जिसका उल्लेख इस प्रकार है– ''बहते पानी को अपना रास्ता बनाना ही पड़ता है। इन पत्थरों को हमें तोड़ना ही होगा इन्ही हाथों से। इन बाजुओं को कमजोर मत समझों महरुख चूड़िया छनकाती कलाईयां शायरो का ख्वाब हो सकती है, मगर हंसिया थामें कलाई की अपनी एक हकीकत होती है।''4

इसी प्रकार नासिरा शर्मा के उपन्यास 'अक्षयवट' में पात्र जहीर तथा उसके साथियों का चित्रण इलाहाबाद की धरती पर किया गया है, जिन्हे जिंदगी जीने हेतु विभिन्न संघर्षो का सामना करना पड़ता है जिसका कुछ अंश इस प्रकार है– ''इंसान की यह सबसे बड़ी खूबी है कि वह हर जख्म की हर पीड़ा को समय के गुजरने के साथ बिसरा देता है और जिजीविषा उसको फिर से जीने के लिए तैयार कर देती है'' ।5 नासिरा शर्मा के उपन्यास जीरोरोड में नायक सिद्धार्थ के दोस्त जो दुबई से इलाहाबाद कुंभ के मेले में डाक्यूमेंट्री तैयार करने आये थे यहाँ के जीवन मूल्यों से इतने प्रभावित होते है कि उनका दुबई में बसना उन्हे खलने लगता है जिसे इन वक्तव्य द्वारा समझा जा सकता है– ''आज यहाँ आकर हर पल महसूस करता हूँ कि कम से कम यहाँ वह दौड़ तो नहीं है जो हम रोज जीने के लिए लगाते है? भूख है, बेकारी, है बीमारी है, पिछड़ापन है मगर एक संतोष है सुरक्षा है जो हमारे पास सब कुछ होने के बाद नहीं है।''6 इसी प्रकार इनके उपन्यास 'जिन्दा मुहावरे' में निजाम बंटवारें के बाद हिन्दुस्तान से पाकिस्तान अकेले जाने का निर्णय लेता है लेकिन सफल आदमी बनने के बाद भी उसे अपने परिवार जिसे वह हिन्दुस्तान में छोड़ कर चला आया था याद आती है पाकिस्तान के जीवनमूल्य उसे भाते नहीं बल्कि रह–रहकर हिन्दुस्तान एवं परिवार का दर्द उसे सताता रहता है यथा– ''उसे पहली बार महसूस हुआ कि वह अपने शहर कहे जाने वाले कराची में कितना अकेला है? .... आज तक जिस दूरी को वह एक उड़ान में तय करने का दम रखता था उसी लकीर ने उसे आज गहरे काटकर रख दिया था 'परकटे परिन्दे की तरह वह बेचैन फड़फड़ाता रहा, मगर आशियाने की तरफ उड़ न सका'' ।7 इस प्रकार वर्तमान समय में मानव–मानव के बीच दूरियां बढ़ी है। मनुष्य आत्मकेंद्रित हो गया है। जिससे संस्कृति पर गहरा संकट आ गया है। वैज्ञानिक ज्ञान के साथ मूल्योन्मुखी शिक्षा की भी नितांत आवश्यकता है। ताकि मानवता की रक्षा की जा सके। लेखिका के उपन्यास में भी मूल्यों में टकराव को देखा जा सकता है शाल्मली और पति नरेश के बीच स्त्री–पुरुष संबंध को लेकर टकराव का कारण नरेश द्वारा अफसर पत्नी को न समझ पाना एवं शाल्मली का ही हमेशा समझौता करते रहना, शाल्मली के पिता द्वारा शाल्मली को समझाते हुए यथा– ''गृहस्थ आश्रम भी एक तपस्या

है बेटा जिसने इस कर्तव्य को सुख पूर्वक निभाया, समझो उसने तपस्या का फल पाया। यह जीवन का तप है मोह–माया के साथ कर्तव्य निभाना कठिन है, परन्तु वही मानव की परख है'' ।8 इस प्रकार पिता के द्वारा दिये गए मूल्यों का आदर करके ही शाल्मली पति नरेश के साथ समझौता करती है। आज सामाजिक संघर्ष, राजनितिक प्रक्रिया एवं रोजगार ने नई पीढ़ी के दृष्टिकोण में प्राचीन मूल्यों के प्रति बुनियादी फर्क ला दिया है। वर्तमान समय में उपस्थित परंपराओं मूल्यो, नियमों को व्यक्ति शीघ्रता से आत्मसात नहीं कर पा रहा है। जिससे उनकी मानसिक वृत्तियों में टकराहट की स्थिति आ गई है। इसे स्वयं लेखिका नासिरा शर्मा के शब्दों में समझा जा सकता है– ''वर्तमान परिवेश में मानवीय मूल्यों का ह्रास हो गया है और स्वार्थी वृत्ति बढ़ गई है परिवर्तित जीवन में प्राचीन मान्यताएं बदल गई है और इसी परिवर्तित समाज में स्त्री–पुरुष संबंध भी बदल गए है।''9 वर्तमान युग में व्यक्ति का जीवन प्रतिस्पर्धा के दौर से गुजर रहा है ऐसे में हमारे प्राचीन जीवन मूल्यों के कारण हमें नए वातावरण को आत्मसात करने में मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। क्योंकि जीवन–मूल्य कोई अपरिवर्तनशील अवधारणा नहीं है, बल्कि राष्ट्र, समाज, प्रदेश, व्यक्ति के विचारों के अनुसार नए मूल्यों को आत्मसात किया जाता है एवं नए मूल्यों का निर्माण होता है और नासिरा शर्मा के उपन्यास इसे आत्मसात करने में सहयोग प्रदान करते है तथा उनका उपन्यास हमें जीवन संघर्ष के चुनौती का सामना करने की प्रेरणा प्रदान करता है और सामंजस्य करते हुए जीवन जीने का आनंद प्रदान करता है। हर देश काल में समस्या के साथ समाधान होने की भी सीख देता है। क्योंकि समय के साथ–साथ समाज भी बदलता है हर अतीत आज से एवं आज भविष्य से जुड़ा हुआ होता है। बीते हुए समय से सीख लेकर आगे जिंदगी को सुखकर बनाया जा सकता है। हर युग की अपनी समस्या रही है एवं हर युग का अपना जीवन मूल्य उसी के अनुरुप समाधान भी होता है।

1. सेठी, हरीश. जीवन मूल्य विमर्श. नई दिल्लीः संजय प्रकाशन. प्रथम संस्करण, 2008 पृष्ठ 03.
2. नियाज, शगुप्ता (संपा.) अनुसंधान .(त्रैमासिक शोध–पत्रिका). जनवरी–मार्च, 2018 , पृष्ठ 31
3. शर्मा, नासिरा. ठीकरे की मंगनी. नई दिल्लीः किताबघर प्रकाशन, संस्करण 2018 पृष्ठ 29.
4. वही पृष्ठ 29.
5. शर्मा, नासिरा. अक्षरवट. नयी दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा संस्करण, 2016 पृष्ठ 32.
6. शर्मा, नासिरा. जीरोरोड. नयी दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ, चतुर्थ संस्करण, 2019 पृष्ठ 85.
7. शर्मा, नासिरा. जिन्दा मुहावरे. नयी दिल्लीः वाणी प्रकाशन संस्करण, 2018 पृष्ठ 35.
8. शर्मा, नासिरा. शाल्मली. नई दिल्लीः किताबघर प्रकाशन. संस्करण, 2018 पृष्ठ 35.
9. पूजा नासिरा शर्मा के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन. नयी दिल्लीः करन पेपर बैक्स : पृष्ठ 90.

9340873123 email- senapati4881@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 314-317

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

द्विवेदी युग एक विवेचन

–जयपाल सिंह

प्राचार्य, राजकीय मॉडल संस्कृति वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय सांघी रोहतक।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी हिंदी के महान युग प्रवर्तक, साहित्यकार एवं पत्रकार हैं जिन्होंने हिंदी साहित्य सृजन में अग्रणीय एवं अविस्मरणीय भूमिका अदा करते हुए सांस्कृतिक, साहित्यिक और सामाजिक चेतना को सार्थक दिशा प्रदान की। इनके इसी योगदान के कारण ही हिंदी साहित्य के दूसरे युग को "द्विवेदी युग" के नाम जाता है। इन्होंने हिंदी की प्रसिद्ध पत्रिका "सरस्वती" का 17 वर्षों तक संपादन किया और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में भी अग्रणीय एवं उल्लेखनीय योगदान दिया। इनका जन्म कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में 15 मई 1864 को गांव दौलतपुर, जिला रायबरेली में हुआ। इनके पिता का नाम पंडित राम सहाय दुबे था।

25 वर्ष की आयु में रेल विभाग अजमेर में तथा बाद में टेलीग्राफ का कार्य सीख कर इंडियन मिडल लैंडरेलवे में तार बाबू नियुक्त हुए परंतु स्वाभिमानी स्वभाव के चलते उच्च अधिकारियों से हमेशा आमना–सामना रहता। जिसके कारण सन् 1904 में झांसी रेल विभाग की ৳200 प्रतिमास की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और ৳20 मासिक पर सरस्वती पत्रिका का संपादन स्थाई रूप से करने लगे।

द्विवेदी जी पहले ऐसे लेखक थे जिन्होंने नियमों एवं सिद्धांतों का गहन अध्ययन करते हुए परंपराओं एवं रीति–रिवाजों को आलोचनात्मक दृष्टिकोण से भी देखा। इन्होंने अनेक रचनाएं की जिनमें कविता, कहानी, आलोचना, पुस्तक समीक्षा, जीवनी एवं अनुवाद आदि शामिल हैं। इन्होंने सभी विषयों जैसे – अर्थशास्त्र ,इतिहास और विज्ञान को भी साहित्य सर्जन के दायरे में स्थान दिया।

भारतेंदु युग के बाद का समय हिंदी साहित्य में द्विवेदी युग का समय माना जाता हैं । इसी युग को महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम से जाना जाता है। कुछ विद्वानों का कहना है कि पंडित माधव प्रसाद मिश्र हिंदी के महान साहित्यकार थे । वे स्वाभाविक रूप से बड़े ही जोशीले तथा भारतीय संस्कृति को सवारने वाले देश प्रेमी विद्वान थे इसलिए वास्तविक रूप से द्विवेदी युग का नाम माधव प्रसाद मिश्र युग होना चाहिए। परंतु इस विषय पर सभी विद्वान एकमत नहीं है इसलिए यह संभव नहीं हो सका।

हिंदी साहित्य में महावीर प्रसाद द्विवेदी को साहित्य के साथ–साथ विभिन्न भाषाओं का ज्ञाता भी कहा जाता है और वे साहित्य के अतिरिक्त अन्य विषयों में भी समान रुचि रखते थे। द्विवेदी जी हिंदी के ऐसे साहित्यकार माने जाते हैं जिन्होंने लगातार 17 वर्षों तक सरस्वती पत्रिका का संपादन करके हिंदी पत्रकारिता में एक महान विजयी पताका फहराई। द्विवेदी जी हिंदी के पहले ऐसे व्यवस्थित समालोचक थे जिन्होंने समालोचना की कई पुस्तकों को हस्तलिखित किया तथा ये हिंदी कविता के प्रमुख और आरंभिक कवि थे। इनके द्वारा किए गए प्रयास

के फलस्वरूप आधुनिक हिंदी कहानी को साहित्यिक विधा के रूप में मान्यता प्राप्त हो सकी । ये भाषा शास्त्री तो थे ही साथ ही अनुवादक, इतिहासकार , अर्थशास्त्री और विज्ञान के चिंतन में गहन रुचि रखते थे।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी एक युग निर्माता के रूप में उभर कर सामने आए। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में नवजागरण पैदा करने वाले साहित्यकार दिवेदी जी ही थे। आचार्य की उपाधि प्राप्त करने वाले हिंदी साहित्य के क्षेत्र में ये प्रथम व्यक्ति थे। इससे पहले आचार्यों की एक परंपरा संस्कृत भाषा में देखने / सुनने को मिलती थी। "नागरी प्रचारिणी सभा" द्वारा मई 1933 में इनकी 70 वीं वर्षगांठ पर बनारस में एक साहित्यिक आयोजन "द्विवेदी स्वागत समारोह" के रूप में किया। द्विवेदी जी के सम्मान में "द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ" का प्रकाशन करके इनको समर्पित भी किया गया। इस भव्य समारोह में इन्होंने जो अपना वक्तव्य दीया वही वक्तव्य "आत्म निवेदन" नाम से प्रकाशित हुआ। जिसमें द्विवेदी जी कहते हैं "मुझे आचार्य की पदवी मिली है। क्यों, कैसे, कब तथा किसने दी यह मुझे कुछ पता नहीं। मुझे इतना ही मालूम है कि मैं बहुधा इस सम्मान से विभूषित किया गया हूं। महान आचार्य शंकराचार्य , माधवाचार्य तथा सांख्य आचार्यों आदि के समान किसी आचार्य के चरणों की धूल की भी समानता मैं नहीं कर सकता। बनारस के संस्कृत कॉलेज या किसी विश्वविद्यालय में भी मैंने पांव तक नहीं रखा , फिर इस पदवी पर मेरा आधिपत्य कैसे हो गया?" जानकारी के लिए बता दें कि द्विवेदी जी ने 10 वीं श्रेणी तक ही पढ़ाई की थी और फिर वह रेलवे विभाग में काम करने लगे। इसी समय इन्होंने कुछ सिद्धांत सुनिश्चित किए जैसे समय का पाबंद होना , रिश्वत न लेना अर्थात ईमानदारी से कार्य करते रहना और ज्ञान प्राप्ति एवं संवर्धन के लिए लगातार प्रयत्न करते रहना। इन्होंने लिखा कि "पहले तीन सिद्धांतों के अनुरूप आचरण करना सरल है परंतु चौथे सिद्धांत के अनुसार स्वयं को ढालना उतना ही मुश्किल है। मैंने चौथे सिद्धांत के अनुकूल स्वयं को बनाने के लिए बहुत प्रयास किया और सफलता भी हासिल की।"

द्विवेदी जी ने अपनी पहली पुस्तक 1895 ईसवी में लिखी जिसका नाम "श्रीमहिम्नस्तोत्र" है , जो "पुष्पदंत "द्वारा रचित संस्कृत काव्य का बृज भाषा में काव्य रूपांतरण है। द्विवेदी जी ने पद रचनाओं का भावार्थ खड़ी बोली गद्य में भी किया है। इन्होंने इस के प्रारंभ में लिखा है –" मैं इस कार्य के लिए होशंगाबाद मध्य प्रदेश स्थित बाबू हरिश्चंद्र कुलश्रेष्ठ का ऋणी रहूंगा जो मध्य प्रदेश राजधानी नागपुर में विराजमान हैं।" अपने आत्म निवेदन में उन्होंने लिखा है कि बचपन में ही मेरी रुचि "तुलसीकृत रामायण"और ब्रजवासी दास द्वारा रचित "ब्रज विलास" पर हो गई थी। छोटी–छोटी कविताएं भी मैंने सैकड़ों की संख्या में कंठस्थ कर ली थी। होशंगाबाद में निवास करते हुए भारतीय हिंदू हरिश्चंद्र कवि के वचन सुधा और गोस्वामी राधाचरण के एक मासिक पत्र ने मेरी काव्यात्मकता में अच्छी प्रकार से वृद्धि कर दी। दूसरे शब्दों में कहें तो काव्य के प्रति मेरा प्रेम बढ़ता चला गया। बाबू हरिश्चंद्र कुलश्रेष्ठ नाम के सज्जन जो वहीं कचहरी में मुलाजिम थे ने पिंगल रचित छंद शास्त्र का पठन करवाया। उसके बाद मुझे यह अनुभव होने लगा कि मैं किसी महाकवि से कमतर नहीं हूं।

द्विवेदी जी ने सन् 1889 ई० से 1892 ई० तक कई पुस्तकों को प्रकाशित करवाया। जिनमें विनय विनोद, विहार वाटिका ,सनेह माला, ध्तु तरंगिणी, देवी स्तुति शतक एवं श्री गंगालहरी आदि शामिल हैं। द्विवेदी जी की साहित्य लेखनी ने यह स्पष्ट कर दिया कि इन्हें आचार्य क्यों कहा जाने लगा। डॉ रामविलास शर्मा, द्विवेदी जी के विषय में लिखते हैं कि "द्विवेदी जी ने अपने साहित्य जीवन के आरंभ में पहला काम यह किया कि उन्होंने अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। उन्होंने जो पुस्तक बड़ी मेहनत से लिखी और जो आकार में

उनकी और पुस्तकों से बड़ी है, वह "संपत्ति शास्त्र" है। अर्थशास्त्र का अध्ययन करने के कारण इन्होंनें बहुत से विषयों पर ऐसी टिप्पणियां लिखी जो शुद्ध साहित्य की सीमाएं लांघ गई।" उस समय जो फूहड़ता का परिवेश बना हुआ था उसमें सुधार हुआ, जो द्विवेदी जी की साहित्यिक समझ, शैली तथा स्पष्टता का ही प्रयास था। जिसका परिणाम यह रहा कि वह सामाजिक सद्भाव एवं चेतना के प्रसार के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्तित्व सिद्ध हुए। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी एक महान ज्ञान दीप थे परंतु पंडित रामविलास शर्मा से पहले जितने भी आलोचक थे उन्होंने प्रसाद जी का मूल्यांकन अनुचित रूप से किया। परिणाम स्वरूप उनके व्यक्तित्व का अवमूल्यन ही किया गया। इनके आलोचकों में पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी, पंडित रामचंद्र शुक्ल एवं पंडित नंददुलारे वाजपेई प्रमुख रूप से शामिल है।

पंडित रामचंद्र शुक्ल द्वारा द्विवेदी जी के बारे में जो इतिहास में लिखा है वह इस प्रकार है "द्विवेदी जी ने सन 1930 ई० में सरस्वती के संपादन का भार ग्रहण किया, तब से अपना सारा समय लिखने में ही लगाया । वे लिखने की सफलता इस बात में मानते थे कि पाठक भी उनसे बहुत कुछ समझ जाएं। कई उपयोगी पुस्तकों के अतिरिक्त उन्होंने फुटकर लेख भी बहुत लिखे परंतु इन लेखों में अधिकतर लेख बातों के संग्रह के रूप में ही हैं । भाषा के नूतन शक्ति चमत्कार के साथ–साथ नए विचारों की भावना वाले निबंध बहुत ही कम मिलते हैं। भाषा निबंधों की श्रेणी में चार ही लेख ऐसे है जो कवि और कविता प्रतिभा को पूर्ण कर सकते हैं परंतु इनके लेखन का हाल देखकर यह नहीं लगता की सुख सुविधा की दृष्टि से लिखे गए हैं। कवि और कविता एक गंभीर विषय है यह कहने की आवश्यकता नहीं परंतु इस विषय की बहुत मोटी–मोटी बातें बहुत मोटे तौर पर कही गई हैं।"...."कहने की आवश्यकता नहीं कि द्विवेदी जी के लेख या निबंध विचारात्मक श्रेणी में आएंगे परंतु विचार कि वह गूढ़ परंपरा उनमें नहीं मिलती। जिससे पाठक की बुद्धि उत्तेजित होकर किसी नए विचार पद्धति पर दौड़ पड़े । शुद्ध विचारात्मक निबंधों का चरम उत्कर्ष वही कहा जा सकता है जहां एक पैराग्राफ में विचारों को दबा दबाकर कसा गया हो और एक एक वाक्य किसी संबंध विचार खंड के लिए हो । द्विवेदी जी के लेखों को पढ़ने से ऐसा जान पड़ता है कि लेखक बहुत मोटी अकल के पाठकों के लिए लिख रहा है।"

कुल मिलाकर पंडित रामचंद्र शुक्ल की उपर्युक्त टिप्पणियों को पढ़कर कोई भी हिंदी भाषा पाठक श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के लेखन के प्रति कितनी रुचि रख पाएगा इसका अच्छी प्रकार से विवरण प्राप्त हो जाता है। हिंदी भाषा विद्यार्थी, पंडित रामचंद्र शुक्ल की विद्वता के कारण इनके द्वारा लिखित इतिहास को बहुत ही ध्यान से पढ़ते हैं और समझते हैं। इसी ऐतिहासिक योगदान को श्री शुक्ल जी ने सिर्फ हिंदी भाषा उत्थान के रूप में स्वीकार किया है। शुक्ल जी के अनुसार "यद्यपि द्विवेदी जी ने हिंदी के बड़े–बड़े कवियों को लेकर गंभीर साहित्य समीक्षा का स्थाई समाधान नहीं प्रस्तुत किया पर नई निकली पुस्तकों की भाषा की कड़ी आलोचना करके हिंदी साहित्य का बड़ा उपकार किया है।"

पंडित रामचंद्र शुक्ल जी जिस आलोचना पद्धति का सहारा लेकर लिख रहे थे उसे अंग्रेजी में जुडिशल क्रिटिसिज्म और हिंदी में निर्णयात्मक आलोचना कहते हैं और इसका सबसे बड़ा दोष यह था की आलोचना के क्षेत्र में आलोचकों का ध्यान ऐतिहासिक युग , वातावरण एवं जीवन से हटाकर अधिकांशतः कलापक्ष तक ही सीमित कर दिया गया। कला पक्ष के आलोचकों का मत है कि उस समय की परिस्थितियां, युगीन चेतना निरंतर परिवर्तनशील है। अतः इन्हें आधार नहीं बनाया जा सकता परंतु सत्य यह भी है कि ऐसी दशा में निर्णयात्मक

आलोचना का कोई महत्व नहीं रहता। इसका मुख्य कारण है–ऐसे आलोचक की रचना और उसके रचनाकार पर फतवे (नियम) जारी कर देना। यही कारण है कि पंडित रामचंद्र शुक्ल ने द्विवेदी जी के विचारों को उनकी अर्जित ज्ञान राशि पर ध्यान न देकर केवल भाषा पर ही विचार किया।

यदि अभिव्यक्ति के संदर्भ में बात की जाए तो इसमें कोई शंका नहीं कि वह भाषा है लेकिन आलोचनात्मक रूप से उन्होंने कह दिया कि जिस लेखक को भाषा सतह की समझ होगी वह दूसरे लेखकों की भाषा को कैसे ठीक व सुधारात्मक रूप से पहचान पाएगा? इस तरह की बातों से शुक्ल जी का इतिहास भरा पड़ा है। उन्होंने हिंदी नवरत्न की समीक्षा लिखते हुए लिखा है कि इस तरह की बातें किसी इतिहासकार के ग्रंथ में प्राप्त हो तो उस इतिहासकार के इतिहास का महत्व कम हो जाता है। शुक्ल जी ने बताया कि इतिहासकार के लेख की भाषा नपी तोली होनी चाहिए। उसके अंदर आधारहीन बातों का समावेश नहीं होना चाहिए। अतिशयोक्ति लिखना एक इतिहासकार का कार्य नहीं है। उसे चाहिए कि वह प्रत्येक शब्द और वाक्यांश के अर्थ को अच्छी प्रकार से समझ कर ही उसका प्रयोग करें।

निष्कर्ष :–

द्विवेदी जी के लेखन साहित्य का निष्कर्ष यही है की उन्होंने जिस साहित्य का सृजन किया है वह स्पष्टता, निश्चल भावना और व्यवहारिक भाषा से ओतप्रोत है। उनका जीवन बहुत ही संघर्षमय रहा और उन्होंने अपने सत्य विचारों एवं आत्मसम्मान के कारण ही हर संघर्ष पर विजय प्राप्त की। ऐसे महान विचारक एवं युग प्रवर्तक, युग–युगांतर तक याद किए जाएंगे और हिंदी साहित्य सृजन में रुचि लेने वालों और समाज सुधारकों के मार्गदर्शक एवं प्रेरणास्रोत बने रहेंगे।

9467405511

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 318-319
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

निर्मला सिंह के कथा साहित्य में नारी

-भावना देवी
पीएचडी शोधार्थी, हिंदी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।

नारी की स्थिति को दर्शाने के प्रयास साहित्य में बराबर होते आए हैं किन्तु कुछ वर्षों से इसकी चर्चा अधिक होने लगी है। पुरातन काल से ही नारी का जीवन अत्यन्त संघर्षशील रहा है। उत्थान पतन के दौर से गुजरती हुई नारी अनेक प्रकार के तनावों तथा संघर्षों का सामना कर रही है। शिक्षित और अशिक्षित सभी औरतें मर्द के अत्याचार सह रही हैं। हमारे देश में औरत का जन्म ही एक अभिशाप है। कोई दहेज के पीछे कोई बांझ होने के कारण, कोई आदमी के बलात्कार का शिकार होकर, कोई पुत्र न जन्मने के कारण घुट–घुटकर जी रही हैं। वर्तमान समय में नारी की दयनीय स्थिति के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हुए लेखिका का कहना है– ''आज के वैज्ञानिक युग में जब दुनिया उन्नति के शिखर पर है तब भी हमारे देश में औरत की जिन्दगी गुलामों से भी बदतर है, कोई मान–मर्यादा नहीं है, जब जी चाहता है आदमी औरत को भोग्या वस्तु–सा भोग लेता है, जब जी चाहता है कूड़े–कचरे सा बाहर फेंक देता है।''1

'आज की शकुन्तला' उपन्यास में लेखिका ने इस बात को स्पष्ट किया है कि नारी निकेतन जैसी संस्थाओं में भी नारी सुरक्षित नहीं है। वहाँ नौकरी करने वाले कर्मचारी अनाथ लड़कियों से धन्धा करवाते हैं। उपन्यास की पात्रा सुनीता का नेहा से कहना है– ''दीदी... यहाँ... यहाँ जबरदस्ती अधिक्षिका हम लोगों को आदमियों के साथ कमरे में बन्द कर देती है। कभी यह मैनेजर साहब अकेले काम करते हैं तो कभी अपने साथ और आदमी लाते हैं जो लड़कियों को कमरे में बन्द करके कुकर्म करते हैं.... खूब चीखती है लड़कियाँ, रोती है, चिल्लाती है... मना करती है जब उनको मारा–पीटा जाता है... दीदी यहाँ तो लड़कियाँ वेश्याओं से भी बदतर है।''2

वर्तमान में कामकाजी नारी भी शोषण का शिकार है। 'अक्षम्य' उपन्यास में यूको बैंक में प्राविजन अधिकारी के पद पर कार्यरत एक लड़की ट्रेन में बलात्कार की शिकार होती हैं– ''उसका दुपट्टा छीन लिया... वह बिचारी डरती, सहमती घबराई सी शौचालय में भाग गयी। लेकिन उसके पीछे–पीछे वह बदमाश चाकू लेकर शौचालय में धक्का देकर घुस गया... और उसकी श्वेत चादर पर धब्बा लगा दिया। पल भर में ही उस बिचारी, मासूम लड़की की इज्जत लुट गयी।''3

'सरोरुह' उपन्यास की पात्रा माया का एम.एल.ए. के लड़के द्वारा बलात्कार किये जाने पर वह पागल हो जाती है। वर्तमान में इतने नियम कानून बनने के उपरान्त भी नारी का शोषण हो रहा है जिसका चिन्तन लेखिका ने व्यक्त किया है। नारी के प्रति न्याय व्यवस्था ढीली होने के कारण पुरुष माया जैसी लड़कियों का बलात्कार

कर खुले आम निडर मन से घूमते हैं। 'अक्षम्य' उपन्यास में भी लेखिका ने शोषित नारी के प्रति चिन्ता व्यक्त की है– ''हमारा समाज भी कैसा? पापी अपराधी मौज उड़ाता है, शिकार ग्रस्त पीड़ा सहता है। कैसा है कानून? कैसे हैं संस्कार? कैसा है मनोविज्ञान कि पुरुष समाजकर्त्ता है तब स्वतन्त्र है, अपनी इच्छा का मालिक है और नारी निर्मात्री है तब भी गुलाम है, दासी है, छिः घृणा होती है ऐसे समाज से।''4

'लैण्ड्स एण्ड' उपन्यास में एक तलाकशुदा स्त्री की स्थिति के विषय में लेखिका का कहना है– ''एक तलाकशुदा नारी की चाहे वह किसी भी देश में हो, इज्जत, मान–सम्मान लगभग समाप्त हो जाता है, वह बिना दीवार के आँगन सी हो जाती है।"5

'कैक्टस के कांटे' कहानी में लेखिका ने नारी के शोषित रूप के साथ–साथ नारी की सहनशीलता को भी अभिव्यक्ति दी है। कहानी की पात्रा मीना का अपनी सहेली से कहना है– ''त्याग–त्याग तू त्याग की बात करती है। मैंने शादी के बाद अब तक सिर्फ त्याग ही किया है क्योंकि नारी हूँ और नारी को सदा त्याग की मूर्ति कहा गया है। मैं इतनी सुरक्षित सुसंस्कृत उच्च विचारों वाली औरत होकर भी सदा इनके अनुरूप ढली। लेकिन क्या मिला मुझे? तिरस्कार, अघृणता, लांछन और अपमान। मेरे विद्यार्थी जीवन के मित्र पीयूष का नाम लेकर व्यंग्य कसते रहते हैं– जो शूलों से चुभते हैं और मेरा अन्तरस्थ लहुलुहान होता रहता है। पर स्वयं अपनी आदतों और बुरी लतों के बारे में नहीं सोचते हैं।''6

लेखिका ने 'अक्षम्य' उपन्यास में नारी के विद्रोही रूप का भी चित्रण किया है। उपन्यास में बार्ड व्याय के दूसरी शादी करने पर उसकी पत्नी का अपने पति से कहना है– ''मैं... मैं तुम्हारी बीवी हूँ मेरी छाती पर तुम मूंग दलो, मेरे सामने तुम दूसरी औरत के साथ प्रेम रचाओ और मैं कुछ न कहूँ। ऐसा कभी हो सकता है?.... तू मुझे हाथ लगाकर तो देख।''7 'क्षितिज के पार' कहानी की पात्रा विधवा सीता का नत्थू जमादार के शादी प्रस्ताव को ठुकराते हुए कहना है– ''शादी–शादी–शादी! तू करेगा मेरे साथ शादी तो मैं अपने पहले मर्द के बच्चों को कहां फेंक दूंगी? तू रखेगा उनको अपनी औलाद की तरह से? कभी नहीं। मैंने बहुत मर्द अपनी जात में देखे, ऐसे दूसरी औरत बिठालकर फिर दो–चार बच्चे जनवा कर छोड़ देते हैं। मैं अपने बच्चों को बिना बाप के पाल सकती हूँ लेकिन माँ–बाप दोनों छिन जाएं यह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकती। कुत्ते के पिल्लों की तरह मेरे बच्चे पलें यह मैं नहीं चाहती। मैं इतनी गई–गुजरी और स्वार्थी नहीं हूँ कि अपने बच्चों की जिन्दगी, अपनी शारीरिक भूख शान्त करने के लिए बर्बाद कर दूँ...।''8

स्पष्ट है कि लेखिका ने जहाँ नारी के शोषित रूप के साथ–साथ उसकी सहनशीलता को दर्शाया है वहीं दूसरी ओर अन्याय के विरुद्ध उसके विद्रोह को भी अभिव्यक्ति दी है।

संदर्भ :–

1. निर्मला सिंह, अक्षम्य, पृ–5
2. वही, आज की शकुंतला, पृ–45
3. वही,अक्षम्य,पृ–49
4. वही,अक्षम्य ,पृ–8
5. वही, लैंड्स एण्ड, पृ–33
6. वही, कैक्टस के कांटे (कहानी),पृ–43
7. वही, अक्षम्य, पृ–23

8.वही, क्षितिज के पार (कहानी),पृ –25

चलभाष–9906247295, म्उंपस रूठींदबीवनकींतल964 ⁄ हउंपस.बवउ

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 320-322
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रेमचंद की कहानियों में दलित चेतना

–डॉ रमेश यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, महारानी काशीश्वरी कॉलेज, कोलकाता–03

दलित रचना की शुरुआत काव्य से ही हुआ है। हिंदी में प्रथम दलित कविता, भोजपुरी में श्हीराडोमश की सरस्वती पत्रिका में 1914 ई. में छपी, जिसे हिंदी की पहली कविता माना जाता है। इसका संक्षेप में अनुवाद है –ष्हमलोग डोम हैं, कुंए के पास नहीं जा सकते। गंदला कीचड़ का पानी हम पीते हैं। जूतों से पीट–पीट वे हमारे पैर तोड़ देते हैं। हमलोगों को इतनी यातना क्यों उठानी पड़ती है? जिस हाड़–मास का हमारा शरीर बनता है, उसी का इन ब्राह्मणों का, इन ठाकुरों का बना हुआ है, तो क्या बात है कि जो ये पूजे जाते हैं और हमारी पूजा जूतों से होती है।ष कारण यह है कि एक विशिष्ट वर्ग के व्यक्ति की चेतना दूसरे वर्ग के व्यक्ति की चेतना से भिन्न हो सकती है। उसी प्रकार वर्ग के आधार पर भी प्रायः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की चेतना में निश्चित रूप से एक अंतर मिलेगा। हिंदी में दलित जीवन से जुड़ी रचनाओं की शरुआत वैसे तो भक्तिकाल में हुई। निर्गुणवादी कवियों ने बाह्य दुराचार, जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था का विरोध किया था,जो आज दलित आंदोलन का एक स्वर है। सन्त रैदास दलित थे,जाति के चमार थे। उनका जन्म तब हुआ था, जब कि भारत की सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियां जटिल बनी थीं। उन्होंने सरल वाणी से दलितों को उत्पीड़न से ऊपर उठने की प्रेरणा दी थी। कबीर, रैदास, हीराडोम, राहुल सांस्कृत्यायन, निराला, प्रेमचन्द, अमृतलाल नागर और जगदीश चन्द्र के साहित्य में दलित चित्रण मिलता है। भूख और गरीबी दलित जीवन का अविभाज्य अंग है। प्रेमचन्द की कहानियों में दलित समाज के पात्रों की फटेहाल जिंदगी को देखा जा सकता है। मंत्र, सद्गति, मन्दिर, दूध का दाम, कफ़न आदि अनेक कहानियों में ये तथ्य भयानक रूप से त्रासद हैं।मिट्टी के दो–चार बर्तन, घास–फूस की झोपड़ी, तार–तार फ़टे पुराने चीथड़े, घास–पुवाल का बिस्तर यही इनकी सम्पत्ति है। रात–दिन की हाड़तोड़ मेहनत भी इन्हें दो वक्त की रोटी नहीं दे पाती। वस्तुतः प्रेमचन्द वर्ण व्यवस्था को श्रम के मूल्य का शोषण करने वाली व्यवस्था के रुप में देखते हैं। इसी कड़ी में प्रेमचंद की कुछ कहानियों को भी जोड़कर हम देख सकते हैं।

प्रेमचंद को दलित गैर दलित लेखकों के खेमों में भी बांटने की कोशिश की गई, लेकिन यह कहां तक उचित है? सौभाग्य के कोड़े या मन्त्र एक जैसी कहानियों में यद्यपि कोई विशेष दलित चेतना नहीं है, पर दलित जीवन की सशक्त उपस्थिति से इनकार नहीं किया जा सकता। इन कहानियों में यदि तत्कालीन सामाजिक आंदोलनों और संस्थाओं का प्रभाव देखा जाता है तो इससे प्रेमचन्द की इन कहानियों का मूल्य कम नहीं हो जाता है। सद्गति, ठाकुर का कुंआ, दूध का दाम, मंदिर, कफ़न आदि जैसी कहानियों के निहितार्थ केवल

प्रभाव की सीमाओं में आबद्ध नहीं किये जा सकते। इनके मूल में प्रेमचंद का अपना चिंतन और सोच प्रमुख है। चूँकि इन कहानियों में दलित पात्र सामाजिक गैर बराबरी और भेदभाव को चीख–चीख कर कहते हैं। इसमें उनका व्यंग्य भी निहित है।प्रेमचन्द की ऐसी कहानियां उच्च वर्ण की अमानवीयता और बर्बर निर्ममता को सामने लाने वाली कहानियां हैं।इसीलिए वे सवर्ण और दलित समाज के सम्बन्धों को, खान–पान और छुआछूत के सम्बन्धों को अंतर्विरोधों के साथ प्रस्तुत किया है और उच्च वर्ण की विकृतियों का ही बखान किया है। श्ठाकुर का कुंआश में पानी जैसी जीवनदायी वस्तु को अस्तित्व के धरातल पर व्यक्त किया है। अछूत होने के कारण गंगी ठाकुर के कुंए का पानी नहीं ले पाती, उसे पीटा जाता है और गंगी के बीमार पति जोखू को वही सड़ा पानी नसीब होता है तो श्दूध का दमश में सवर्ण जमींदार महेशनाथ अपने बेटे की जिंदगी के लिए भंगिन के दूध से परहेज़ नहीं करते।प्रेमचंद ने दलित समाज पर होने वाले सामंती अत्याचारों का भी सजीवता से चित्रण किया है। सद्‌गति का दुखी कितने धर्मिक उत्साह से पुत्री के शादी की साइत निकलवाने के लिए झोपड़ी में झाड़ू बुहार कर रहा था, सीधा पीसान का बन्दोबस्त कर रहा था, इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए बाबाजी का बेगारी भी करता है लेकिन अब उसी बाबाजी के द्वार पर लाश बनकर गिरा है।उसकी स्त्री और बेटी दहाड़ें मार–मारकर रो रही थीं। प्रेमचन्द ने लिखा है–ष् पंडिताइन– चमार का रोना मनहूस है, पंडित – हाँ, बहुत मनहूस।...पंडित– चमार था ससुरा की नहीं, साध–असाध किसी का विचार है इन सबों।ष1 इसी कड़ी में प्रेमचंद ने श्पूस की रातश कहानी में हल्कू ने कम्बल खरीदने के लिए किसी तरह तीन रुपये एकत्रित करता है, लेकिन दरवाज़े पर महाजन आ उसे भी ले लेता है। उसकी पत्नी रुपये देना नहीं चाहती थी, पर हल्कू उदास मन से कहता है कि क्या गली खाऊं? हल्कू की चिंता माल गुजारी भरने की थी। यह दलित समाज का शोषण ही तो था कि खेत में पैदावर हो या न हो, सूखा पड़े, पाला पड़े, बाढ़ आये उससे सामंती समाज को कोई लेना–देना नहीं था, किसी भी हाल में मालगुजारी चुकाना अनिवार्य था। प्रेमचन्द मुन्नी के माध्यम से लिखते हैं–ष्मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते?मर–मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई।बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है।पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आये। मैं रुपये न दूंगी, न दूंगीश...मगर यह कहने के साथ उसकी तनी भौंहे ढ़ीली पड़ गई।ष2

सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था ने दलितों की चेतना को इस तरह से कुंद कर दिया है कि मानवीय संवेदना और सामाजिक नैतिक सोच उनके लिए नगण्य थीं। श्कफ़नश कहानी इस मामले में बेजोड़ है। कहानी के दलित पात्रों में घीसू और माधव ने अमानवीयता की सीमा को भी पार कर जाते हैं। आर्थिक विषमता एवं महाजन प्रथा ने उस समय की पारिवारिक सम्बन्धों को भीतर से खोखला कर दिया था। अब घीसू–माधव अपने ही खून के बाप–बेटे न थे बल्कि वे दो अनजान व्यक्ति बन चुके थे। प्रेमचन्द ने लिखा है–ष्जिस समाज में रात–दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से बहुत कुछ अच्छी न थी...कोई अचरज की बात न थी।ष3 उनकी प्रमुख कहानी श्मन्दिरश, मन्दिर प्रवेश को लेकर एक सचेत कहानी है, जहाँ मन्दिर प्रवेश दलितों के लिए वर्जित है।लेकिन प्रेमचन्द इसका सख्त विरोधी हैं। प्रेमचंद ने लिखा है–ष् पुजारी मन्दिर का द्वार खुला है। मैंने खट–खट की आवाज सुनी।श सहसा सुखिया बरामदे से निकलकर चबूतरे पर आई और बोली , चोर नहीं है मैं हूं। ठाकुरजी की पूजा करने आई थी। अभी तो अन्दर गई भी नहीं, मार हल्ला मचा दिया।श पुजारी ने कहा अनर्थ हो गया! सुखिया मन्दिर में जाकर ठाकुरजी को भ्रष्ट कर आई।ष4

सुखिया मन्दिर प्रवेश कर मन्दिर ही भ्रष्ट नहीं करती बल्कि वर्षों से चले आ रहे रूढ़ि मान्यताओं को भी चुनौती देती है और पण्डिताई समाज की कलई खोलकर रख देती है। वर्तमान समय में भी प्रस्तुत कहानी की प्रासंगिकता है आज भी भारत देश के ऐसे बहुत से गांव हैं जहाँ दलितों को मंदिरों में जाने की मनाही है। इस प्रकार श्घसवालीश कहानी में दलित ग्रामीण स्त्री द्वारा अपनी सतीत्व रक्षा और उच्च जाति के प्रति विद्रोह एवं उसका शमन करने की यथेष्ट चेष्टा की गई है। मुलिया महावीर की पत्नी है। चमार परिवार के इस दम्पत्ति का एकमात्र सहारा उनका घोड़ा है जो इक्का खींचता है।मुलिया दिन भर घास छीलकर घोड़े का पालन–पोषण करती है। सवर्ण के लोग मुलिया का स्पर्श पाने के लिए घात लगाए बैठे रहते हैं।प्रेमचंद ने लिखा है–ष्चौन सिंह ने कई गज के फासले से ही रुककर कहा, डर मत, डर मत, भगवान जानता है! मैं तुझसे कुछ न बोलूंगा। जितनी घास चाहे छील लें, मेरा ही खेत है।...जमीन आँखों के सामने तैरने लगी।ष्5 इस तरह से हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द की दलित चेतना से जुड़ी कहानियां भले ही पूरी तरह से न जुड़ी हों लेकिन दलित जीवन की संवेदना की महक जरुर है, जो कहीं–न–कहीं दलित जीवन की चेतना को अवश्य उजागर करता है। क्योंकि प्रेमचन्द ग्रामीण परिवेश से थे उन्होंने गरीब दलित लोगों की दशा और दुर्दशा को बहुत निकट से देखा था। इसलिए दलितों वके प्रति उनके मन में घनीभूत सम्वेदना थी।

संदर्भ सूची रू

1. प्रेमचंद, सद्गति, भारतीय दलित जीवन की कहानियां, संस्करण 2011,कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, पृ. 48।

2. वही., पूस की रात, पृ.72

3. वही., कफ़न, पृ.148

4. वही., मन्दिर, पृ.55

5. वही., घसवाली, पृ.168

ई–मेल ramvand79@gmail-com, 9903081233

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 323-326
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मानसरोवर (कथा संग्रह)–नारी विमर्श

–पिंकी
सहायक प्रवक्ता (हिंदी), राजकीय महाविद्यालय, भूना (फतेहाबाद)

मुंशी प्रेमचंद, ये हिंदी और उर्दू के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार, कहानीकार, एवं विचारक थे। इनके बचपन का नाम धनपत राय था। 31 जुलाई 1880 में बनारस के निकट लमही नामक गांव में इनका जन्म हुआ इनके पिता का नाम अजायब लाल था जो डाक मुंशी थे। 7 साल की आयु में इनकी मां और 14 वर्ष की आयु में इनकी पिता का देहांत हो गया इन्होंने पारिवारिक और सामाजिक कष्टों को झेलते हुए भी जीवन अनुभव के कोष को भरपूर समृद्ध किया और इससे अधिक मूल्यवान रचनाकार के लिए दूसरी कोई चीज नहीं। इन्होंने सेवा सदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, निर्मला, गबन, कर्म भूमि, गोदान आदि लगभग डेढ़ दर्जन उपन्यास व कफ़न, सौत, बड़े घर की बेटी, बूढ़ी काकी, दो बैलों की आत्मकथा, पंच परमेश्वर, विमाता, हार की जीत, घास वाली, सती, रानी सारंधा, आदि 300 से अधिक कहानियां लिखी इनमें से अधिकांश हिंदी तथा उर्दू दोनों भाषाओं में प्रकाशित हुई। इन्होंने अपने दौर की सभी प्रमुख उर्दू और हिंदी पत्रिकाओं जमाना, सरस्वती, माधुरी, मर्यादा, चांद, सुधा आदि में अपना योगदान दिया। इन्होंने हिंदी समाचार पत्र जागरण तथा साहित्यिक पत्रिका हंस का भी संपादन किया जीवन के अंतिम वर्षों तक वे साहित्य सृजन में लगे रहे कफन उनकी अंतिम कहानी, मंगलसूत्र अंतिम अधूरा उपन्यास, साहित्य का उद्देश्य अंतिम व्याख्यान माना जाता है। 8 अक्टूबर 1936 ईस्वी में 56 वर्ष आयु जलोदर रोग से पीड़ित यह महान रचनाकार दुनिया से चला गया पर अपनी अमूल्य रचनाओं की धरोहर छोड़कर सदैव के लिए अमर हो गया। हम मानसरोवर में संकलित उनकी कहानियों में नारी विमर्श पर चर्चा करेंगे मानसरोवर मुंशी प्रेमचंद के निधन उपरांत आठ भागों में प्रकाशित हुआ। इसमें 200 से अधिक कहानियां संकलित है इस आलेख में प्रेमचंद द्वारा लिखित हिंदी कहानी (कथा संग्रह) मानसरोवर में स्त्री विमर्श पर एक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और साथ में हिंदी साहित्य में स्त्री महत्व का उल्लेख किया गया। इस आलेख में हम रूढ़ीवादी मान्यताओं जिन्होंने स्त्रियों को वर्षों तक जकड़े रखा है पुरुष प्रधान समाज जिसमें सालों से पुरुषों का वर्चस्व रहा है जिसकी वजह से पितृसत्तात्मक समाज का मापदंड दोहरा रहा है यह लेख उनके अंतर्विरोध को सामने लाता है। स्त्रियों को लंबे समय से ही उनके अधिकारों से वंचित रखा गया है प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में अनेक नारी पात्रों अनेक ऐसी स्त्रियों को स्थान दिया जिन्होंने अपने परिवार व समाज में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस प्रकार से हम उनकी एक कहानी को देखते हैं बड़े घर की बेटी जिसमें आनंदी किस प्रकार से अपने घर को टूटने से बचा लेती है इसीलिए प्रेमचंद ने उसे बड़े घर की बेटी कह कर संबोधित किया प्रेमचंद की कहानीयां अनेकों सामाजिक कुरीतियों और नारी उत्पीड़न, आर्थिक उत्पीड़न के विभिन्न आयामों को अपनी संपूर्ण कलात्मकता के

साथ अनावृत करती है मुंशी प्रेमचंद जी हिंदी साहित्य के ऐसे साहित्यकार हैं जिनकी कहानियां आज लगभग 100 वर्ष बाद भी उतनी ही रुचि से पढ़ी जाती है जितने रुचि से उन्होंने लिखी थी। उनकी कहानी हमारे जीवन से जुड़ी हुई प्रतीत होती है जिन नारी पात्रों को उन्होंने अपनी कहानियों में उस समय चित्रित किया वह आज भी उतने ही प्रासंगिक है। हिंदी साहित्य जगत में मुंशी प्रेमचंद का पदार्पण एक विशेष घटना मानी जाती है। प्रेमचंद जी एक जनवादी और प्रगतिशील लेखक थे। जिस प्रकार से उन्होंने उपन्यासों, कहानियों में घटनाओं की रचना की थी वह आज की सच्चाई बयां करती है चाहे वह स्थिति एक मजदूर की हो या किसान की हो या फिर नारी की ही क्यूं न हो इनकी रचनाएं समाज का वास्तविक रूप प्रस्तुत करती है। प्रेमचंद के नारी पात्रों में शहरी वर्ग, गांव का किसान समुदाय और अभिजात्य वर्ग के दर्शन होते हैं। प्रेमचंद के नारी पात्रों में हमें एक मां, दोस्त, प्रेमिका, बहन, सौतेली, मां, पत्नी, भाभी, ननंद, समाज सुधारक, देश प्रेमी, परिचारिका, आश्रिता आदि कई रिश्ते भी दिखाई देते हैं। प्रेमचंद जी एक ऐसे लेखक थे जिन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से बताया स्त्रियां पारिवारिक और राजनीतिक दोनों ही क्षेत्रों में सशक्त किरदार अदा कर सकती है उन्होंने नारी को केवल कोमलंगी और सौंदर्य की प्रतिमूर्ति नहीं माना है अपितु उसे कर्मठ और पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने वाली संघर्षशील महिला का स्थान दिया है। आज जो समाज नारी को सशक्त बनाने में लगा है प्रेमचंद बहुत पहले ही उस नारी को सशक्त कर चुके हैं। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में भी नारी के सभी रूपों को चित्रित किया है। इसी प्रकार हम देखते हैं ठाकुर का कुआं कहानी में किस प्रकार से वह सामान्य वर्ग से बिना डरे कुए पर जाकर तत्काल व्यवस्था को चुनौती देती है। ठीक उसी प्रकार से एक अन्य कहानी शबड़े घर की बेटीश में आनंदी पूरे परिवार में अपने बर्ताव के कारण अकेली ही मानवीय गुणों से संपन्न दिखाई पड़ती है। हम प्रेमचंद की बहुचर्चित कहानी बूढ़ी काकी को पढ़ते हैं इस कहानी में कहानीकार ने बुद्धि राम जैसे लालची व स्वास्थ्य लोगों के प्रति घृणा व्यक्त की है और साथ में बूढ़ी काकी जैसे वृद्धों के प्रति मानवता का व्यवहार जगाया है। इस कहानी में बूढ़ी काकी की दशा को देखकर पाठक के मन में सेवा का भाव जागृत होता है। इसका एक व्यक्तव इस प्रकार है जिसमें बूढ़ी काकी कहती है ष्मेरा हाथ पकड़ कर वहां ले चलो जहां मेहमानों ने बैठकर भोजन किया थाष□। यह सब अपनी पोति से कहती है। प्रेमचंद ने समाज में वृद्धों की स्थिति का वर्णन कई साल पहले किया वह आज भी उतना ही प्रासंगिक है। आज हमें बहुत सारे वृद्धाश्रम देखने को मिलते हैं। इसी प्रकार हम प्रेमचंद की एक और कहानी पढ़ते हैं शविमाताश इस कहानी में प्रेमचंद जी ने मौसी, विमाता के प्रति समाज के दृष्टिकोण को बदलने की कोशिश की है। इस कहानी में अंबा मुन्नू को अपनी सगी मां से भी अधिक प्यार– दुलार देती है। एक बार जब उनके पिता को मुन्नू की फिक्र होती है तो जब वह घर पहुंच कर देखता है अंबा ने मुन्नू को गोद ले रखा है और प्यार से सने हुए कोमल स्वर में कहती है ष्आज तुम इतनी देर तक कहां घूमते रहे चलो देखो मैंने तुम्हारे लिए कैसी अच्छी–अच्छी फलौरीया बनाई हैष□ मेरा कृत्रिम क्रोध उसी क्षण उड़ गया इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचंद जी ने समाज के दृष्टिकोण परिवर्तन को किस प्रकार चित्रित किया है एक और कहानी जिसमें हम एक देश प्रेमी नारी के दर्शन होते हैं। गोदावरी इस कहानी की नारी पात्र है जो अपने पति मित्र सेठ से तो बहुत प्यार करती है पर उसके विदेशी वस्तुओं के प्रेम से अपने हृदय में घृणा का भाव रखती है। जब मिस्टर सेठ ने विलायती कपड़ों की होलियां जलाने वालों की तैयारियों को देखा तो कहा जरा ष्इन सिरफिरो को देखो कपड़े जला रहे हैं यह पागलपन उन्माद और विद्रोह नहीं तो क्या है किसी ने सच कहा है हिंदुस्तानियों

को ना अक्ल आएगीष्ङ फिर गोदावरी कहती है ष्तू भी हिंदुस्तानी होष्4? साथ में अपने पति के इस प्रकार के रवैए पर कहती है ष्तुम्हें अपने भाइयों का जरा भी ख्याल नहीं आता? भारत के सिवा और कोई देश है जिस पर किसी दूसरी जाति का शासन होष्5 गोदावरी अपने देश से बहुत प्रेम करती है। उसकी देश प्रेमी होने की भावना को प्रेमचंद जी ने अपनी कहानी में दिखाया है। देश प्रेम की भांति ही हम देखते हैं कि प्रेमचंद जी की कहानियों में नारी के पति प्रेम व पतिव्रता धर्म को किस प्रकार निभाती हुई दिखाई देती है इसका एक वक्तव्य हमें उनकी कहानी श्सुहाग का शवश में देखने को मिलता है जिसमें सुभद्रा अपने पति को किस प्रकार निस्वार्थ प्रेम करती है और उसका पति केशव विदेश में जाकर दूसरा विवाह कर लेता है सुभद्रा विदेश में जाकर सब कुछ पता कर लेती है कि किस प्रकार केशव यहां किसी अन्य युवती के साथ रह रहे हैं और उन्होंने शादी भी कर ली है। जब वह सुभद्रा से मिलता है तो उसके चेहरे की हवाइयां उड़ जाती है फिर तिनके सा सहारा पाकर कहता है षविवाह एक प्रकार का समझौता है दोनों पक्षों को अधिकार है जब चाहे उसे तोड़ देष्6 तब इसके प्रत्युत्तर में सुभद्रा केशव से कहती है षकिसी समझौते को तोड़ने के लिए कारण भी तो होना चाहिएष्7 विवाह के आदर्श उसकी पवित्रता और स्थिरता के बारे में बतातीं आती है यहां पर लेखक ने सुभद्रा के माध्यम से भारतीय नारियों की मानसिकता और पुरुषों में उनके आचरण पर कटाक्ष किया है जो विवाह जैसे आदर्श को तोड़ते हैं और बताया है कि किस प्रकार स्त्रियों ने इस बंधन को निभाहा है। प्रेमचंद जी ने अपनी कहानियों में स्वाभिमानी नारी को भी चित्रित किया है उनकी कहानी घास वाली जिसमें मूलिया एक नीची जाति से संबंध रखने वाली स्त्री है पर वह कभी भी ऊंची जाति के मर्दों को डांट फटकार लगा देती है। इसका एक व्यक्तव इस प्रकार है ष्दया मांगते हो इसलिए नहीं कि नीच जाति की हूं और नीच जाति की औरत जरा सी गुड़ की धमकी जरा सी लालच में आ जाएगी कितना सस्ता सौदा है ठाकुर हो ना इतना सस्ता सौदा क्यों छोड़ने लगेष्8। इस प्रकार कहानी के एक अन्य पात्र चौन सिंह को वह खुब लताड़ती है मुलिया का एक और व्यक्तव हमें देखने को मिलता है जिसमें वह कहती है ष्जवानी जोश है बल है, दया है, आत्मविश्वास है, गौरव है और सब कुछ जो जीवन को पवित्र बना देता है जवानी का नशा घमंड है, निर्दयता है स्वार्थ है विषय वासना है, तो टूटता है, और वह सब कुछ जीवन को पशुता, विकार और पतन की ओर ले जाता हैष्। इस प्रकार से मुलिया ने बहुत कम शब्दों में बहुत बड़ी बात बोल दी और चौन सिंह का सारा नशा उतर गया और चौन सिंह उस दिन से दूसरा व्यक्ति ही बन गया उसके व्यक्तित्व में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ जिसका कारण थी मुलिया। इस प्रकार से हम देखते हैं कि लेखक की कहानियों में कितने सारे ही नारी पात्र हैं जिन्होंने व्यक्ति और समाज में भारी परिवर्तन करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है उनके कहानीयों, उपन्यासों में नारी पात्र अपने सशक्त रूप से हमारे सामने आए हैं। धर्म, राजनीति, पारिवारिक हर क्षेत्र में नारी ने अपने क्षेत्र में पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी हुई नजर आती है प्रेमचंद जी के साहित्य में नारी की छवि को देखकर लगता है कि समाज में मानवोचित गुणों की वाहक मात्र नारी है और पुरुष जो मानवीय गुणों से संपन्न है वह भी नारी के प्रभाव में आकर मानवीयता से संपन्न हुए हैं। प्रेमचंद जी अपनी रचनाओं में नारी चरित्रों को शक्ति साहस, शिक्षा, कर्म के क्षेत्र में पुरुषों के समक्ष खड़ा करते हैं प्रेमचंद और उनका साहित्य हमारी संस्कृति की धरोहर है। प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि से नारी की व्यथा को दर्शाया है। जिस प्रकार से बचपन में हम दादी नानी की कहानियां पढ़ते है ठीक उसी प्रकार से बड़े होने पर प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानियां पढ़ी जाती है समाज से जुड़ी हुई कहानी में देशी शब्दों का

प्रयोग, गांव के रीति–रिवाज, लोगों की वेशभूषा, भाषा पाठक को अपनी और आकर्षित करते हैं। हमारे हिंदी साहित्य में प्रेमचंद की कहानियां सबसे अधिक पढ़ी जाती है। जितना योगदान प्रेमचंद जी का अन्य क्षेत्रों में रहा है उतना ही योगदान नारी विमर्श लेखन में रहा है उन्होंने स्त्री समस्या को जिस प्रकार समाज के सामने खोल कर रखा है वह एक महिला रचनाकार की रचना के समीप बैठता है हमें साहित्य में महिला लेखन के रूप में उनकी अनेक कहानियां उपलब्ध होती है नारी विमर्श उनके योगदान को कभी भी विस्मृत नहीं किया जा सकता

संदर्भ–

1. मानसरोवर(खंड–1) पृष्ठ संख्या– 93
2. मानसरोवर(खंड–1) पृष्ठ संख्या–85
3. मानसरोवर(खंड–1) पृष्ठ संख्या–193
4. मानसरोवर(खंड–1) पृष्ठ संख्या–193
5. मानसरोवर (खंड–1) पृष्ठ संख्या–194
6. मानसरोवर(खंड–4) पृष्ठ संख्या–142
7. मानसरोवर (खंड–4) पृष्ठ संख्या–143
8. मासरोवर (खंड–3) पृष्ठ संख्या–182
9. मासरोवर (खंड–3) पृष्ठ संख्या–182

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 327-330
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नारी–विमर्श और भारतीय सांस्कृतिक परिदृश्य

–डॉ. सतीश कुमार
सहायक आचार्य–हिंदी, राजकीय महिला महाविद्यालय, घरौंडा (करनाल) हरियाणा।

नारी–विमर्श की अवधारणा पश्चिम में व्युत्पन्न बीसवीं शताब्दी की देन है। आधुनिक काल में आर्थिक – राजनीतिक क्षेत्र में हुए तीव्र परिवर्तनों से समाज की स्थिरता ही भंग नहीं हुई है, पारंपरिक मूल्य – व्यवस्था भी खंडित हुई है। इससे बृहद समाज के बदले छोटे–छोटे सामाजिक समूहों और व्यक्तियों का महत्व बढ़ा और उन्होंने अपनी स्वतंत्रता, अलग पहचान और महत्व को मनवाने का प्रयत्न किया। विश्व में स्त्रियों, समलैंगिकों, अश्वेतों तथा हासिये पर पड़े अन्य वर्गों ने अपनी पहचान बनाने के प्रयत्न किए जिसके फलस्वरूप समलैंगिक – विमर्श, अश्वेत– विमर्श आदि अनेक विमर्श अस्तित्व में आए। नारी–विमर्श भी स्त्री की अलग पहचान, उसके स्वतंत्र अस्तित्व और उसके अधिकारों की समस्याओं को उठाना और उसके लिए क्रांतिकारी प्रयास किया जाने के रूप में जाना जा सकता है । नारीवाद या नारी विमर्श (फेमिनिज्म/ फ़ेमिनिस्ट डिसकोर्स) के प्रारंभ के विषय में विद्वज्जन एकमत नहीं है। किंतु पश्चिमी जगत में स्त्रियों के मताधिकार और पाश्चात्य संस्कृति में स्त्रियों के योगदान पर चर्चा से ही नारी–विमर्श की शुरुआत हुई ऐसा अधिकांश विद्वान मानते हैं। वर्जिनिया वुल्फ की पुस्तक श्ए रुम ऑफ वंस ओन श्रू1929 (अपना निजी कक्ष) तथा फ्रांसीसी लेखिका सिमोन द् बोउआर की पुस्तकरू श्द सेकेंड सेक्सश्रू1949 ने न केवल यूरोप और अमेरिका के स्त्री–विमर्श को अपितु भारतीय स्त्री विमर्श को भी गहरे तक प्रभावित किया है।

हिंदी में नारी–विमर्श के अतिरिक्त दलित विमर्श ही प्रमुखता पाने में अधिक सफल हो सका है। उषा महाजन, आशारानी व्होरा, मनीषा, क्षमा शर्मा, विभा देवसरे, कुमुद शर्मा, नासिरा शर्मा, श्मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, सुमन राजे प्रभृति लेखिकाओं ने क्रमशरू श्बाधाओं के बावजूद नयी औरत श रू 2001; श स्त्री सरोकारश्रू 2002; श हम सभ्य औरतें श्रू 2002; श्स्त्रीत्व – विमर्शरू समाज और साहित्यश रू 2002; श्स्वागत है बेटीश्रू 2002; श्स्त्री–घोषश्रू 2002; श्औरत के लिए औरतश्रू 2003; श्खुली खिड़कियांश्रू 2003; श्उपनिवेश में स्त्रीरू मुक्ति कामना की दस वार्ताएंश्रू 2003; श्हिंदी साहित्य का आधा इतिहासश्रू 2003 आदि नारीवादी रचनाओं से हिंदी साहित्य की समृद्धि में अप्रतिम योगदान दिया है।

नारी विमर्शकों के अनुसार स्त्री के जातिवाचक रूप में बहुत सारी संभावनाएं अंतर्निहित रहती हैं। हर एक स्त्री एक जैसी नहीं होती । हर स्त्री एक व्यक्ति के रूप में एक विशिष्ट इकाई होती है। फिर प्रत्येक स्त्री जीवन के विभिन्न मोड़ों पर और स्थितियों में अलग–अलग होती है। वह एक ही जीवन में अनेक स्त्री – जीवन जीती है । स्त्री के अनेक रूप हो सकते हैं। इस सब के बावजूद भी स्वयं को स्त्री पर केंद्रित करना स्त्री विमर्शकों

का मुख्य सरोकार है। मार्क्सवाद के अनुसार आर्थिक परिस्थितियाँ और प्रतिस्पर्द्धा मनुष्य के दमन और शोषण का आधार होती हैं। नारी–विमर्शकों का मानना है कि नारी का आर्थिक दमन और शोषण के साथ ही सामाजिक, शारीरिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से भी दमन और शोषण किया जाता है। सामाजिक व्यवस्था उसे शिक्षा और रोजगार के अवसरों से वंचित रखती है। पुरुष की तुलना में शारीरिक स्तर पर कमजोर होने के कारण उसका दमन और शोषण कर उसे मारा–पीटा जाता है। बलात्कार किया जाता है। बच्चे जनना और उन्हें पालना ही स्त्री का काम पुरुष ने बना दिया है।

सांस्कृतिक दमन और शोषण के रूप में यौन शुद्धता अथवा सतीत्व के मूल्य स्त्री से संबद्ध करते हुए उसे पतिव्रता होना चाहिएं किंतु पति का पत्नीव्रती होना कतई आवश्यक नहीं समझा जाता। मनोवैज्ञानिक स्तर पर स्त्री का दमन और शोषण करते हुए उसे समझाया जाता है कि स्त्रियों के पास पुरुषों जैसा सबल तन, मन और मस्तिष्क नहीं होता। सुंदरता, कोमलता, समर्पण आदि उसके गुण हैं। जहां शक्ति, कठोरता, शासन आदि पुरुष के गुण हैं, वहीं नारी के अवगुण। प्रेमचंद विरचित गोदान के पात्र प्रोफेसर मेहता द्वारा वीमेंस लीग में स्थित अपने भाषण में स्त्री और पुरुषों के गुणों – अवगुणों का प्रस्तुत विवरण नारी–विमर्शक इसका प्रामाणिक उदाहरण मानते हैं। डॉ. गिरिधारी लाल जयपाल ने नारी – शोषण को स्वीकार करते हुए कहा है – ६ सभी वर्गों के लोग नारियों का शोषण अलग – अलग तरीके से कर रहे हैं।६१ सिमोन द् बोउआर के अनुसार, ६ स्त्री और पुरुष के जिन भिन्न और परस्पर विरोधी गुणों की बात की जाती है वे मौलिक या प्राकृतिक गुण नहीं है, अपितु मानव – सभ्यता की देन हैं।६२

पितृसत्तात्मक व्यवस्था की बात तो मार्क्सवादियों तथा मनोविश्लेषणवादियों ने भी की है किंतु नारी–विमर्शकों के मतानुसार कोई भी दमनकारी या शोषक व्यवस्था पुरुष की अपेक्षा नारी को अधिक प्रभावित करती है। अतरू वे इन दमनकारी व्यवस्थाओं को समूल बदलने के लिए इनका यथार्थ रूप सामने लाना चाहते हैं। हिंदी साहित्य में नारीवाद या नारी–विमर्श की अवधारणा पूर्णतरू पश्चिम से प्रभावित है। प्रभा खेतान हिंदी की घोषित नारीवादी लेखिका हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक श्उपनिवेश में स्त्रीरू मुक्ति कामना की दस वार्ताएं श में पश्चिम में नारी–विमर्श को लेकर चलने वाली गतिविधियों का सविस्तार हवाला दिया और उन्हीं से प्रेरित हो अपने अनुभव के आधार पर नारी स्वायत्तता और स्वतंत्रता की बात कही है। सुमन राजे की पुस्तक श हिंदी साहित्य का आधा इतिहास श संभवतरू हिंदी की एकमात्र ऐसी पुस्तक है जिसमें सिद्धांत और व्यवहार दोनों स्तरों पर नारी– विमर्श को सक्रिय देखा जा सकता है। उनका मानना है कि पुरुष इतिहाकारों ने महिला रचनाकारों के साथ बहुत अन्याय किया है। यह अन्याय उदासीनता के कारण नहीं अपितु विमुखता के कारण है। इसका प्रतिकार करने तथा स्त्रियों के साथ होने वाले अन्याय के विरुद्ध लड़ाई लड़ने के लिए उन्होंने यह इतिहास लिखा है। ऐसी ही शिकायत अन्य लेखिकाओं को भी होगी। इस प्रकार से नारी–विमर्श जीवन और साहित्य में निरूसंदेह नवीन दृष्टि होने के साथ–साथ विचारोत्तेजक भी है।

भारतवर्ष एक अत्यंत प्राचीन एवं संस्कृति समृद्ध देश रहा है। अपवाद स्वरूप कुछ प्रसंगों को छोड़ दिया जाए तो ज्ञात होता है कि यहां नारी प्रारंभ से ही पुरुष के समकक्ष रही है। उसने अस्तित्व की गरिमा और अपनी स्वतंत्र पहचान सर्वदा बनाकर रखी है और वह अपने अस्तित्व की स्वतंत्र पहचान तथा अधिकारों के प्रति सदैव जागरूक एवं सतर्क रही है। मां दुर्गा, मां काली, कैकेयी, सुलभा, सावित्री, अनुसूया, मैत्रेयी, गार्गी, ध्रुवस्वामिनी,

पद्मावती, मीराबाई, अक्कमहादेवी, लक्ष्मीबाई, सावित्रीबाई फुले प्रभृति अनेक वीरांगनाओं के उदाहरण इस संदर्भ में सरलता से मिल जाते हैं। इसका कारण यहां श्रीमद्भागवत गीता में वर्णित श्समत्वं योग उच्यते श निर्देशित ৳ समता एवं समरसता—भाव ৳ रूपी महान मानवीय मूल्य को पोषित करने की सुदीर्घ परंपरा का निर्बाध प्रवाहित होना है जिसे मनीषी अपने मन, वचन और कर्म से सींचित करते रहे हैं।

सन् 1131 में ब्राह्मण कुल में उत्पन्न एवं उच्च शिक्षित, कर्नाटक के शिवशरण भक्त एवं समाज सुधारक बसवेश्वर ने कल्याण राज्य के प्रधानमंत्री होते हुए भी समाज के शोषित, वंचित, पद— दलित, घृणास्पद, अभावग्रस्त, निम्नजात्योत्पन्न स्त्री और पुरुष सभी के लिए अपने महामने (बड़े घर) के द्वार खोल दिए थे और स्त्रियों को पुरुषों के बराबर रखकर, उनको समान सम्मान दिया। परिणामस्वरूप अक्क महादेवी, आयदक्कि मारय्या, नीलांबिका आदि 30 से भी अधिक महायोगिनी शिवशरणियां निकलीं जिन्होंने वचनों की रचना की, लिंगायत—विचारों की क्रांति को धारदार और प्रभावी बनाया और समाज में समानता — समरसता का संदेश दिया। बसवेश्वर ने नारी और पुरुष में भेद कभी नहीं किया । स्त्री और पुरुष के संबंध में कहा है रू—

जिसके लंबे केश और पयोधर हैं,
वह नारी कहलाती है।
जिसके दाढ़ी और मूंछ हैं,
वह पुरुष कहलाता है।
किंतु इन दोनों के मध्य निवास करने वाली आत्मा न स्त्री है और न पुरुष है।3

राजस्थान में उद्भावित तीन अलग—अलग और स्वतंत्र रामसनेही सम्प्रदायों में सर्वाधिक प्राचीन श्रेणश रामसनेही सम्प्रदायश के प्रवर्तक एवं सम्प्रदायाद्याचार्य संत दरिया साहब (मारवाड़ वाले) और उनकी परंपरा में परवर्ती संतों ने भी स्त्री—पुरुष के सामंजस्य पर बल देते हुए नारी को उसके उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करने का स्तुत्य संदेश दिया है। संभवतः न केवल रामसनेही संतकाव्य परम्परा में अपितु समस्त भारतीय संतकाव्य परम्परा में यही इकलौते ऐसे संत प्रतीत होते हैं जिन्होंने न केवल स्वयं अपितु उनकी परंपरा के परवर्ती संतों ने भी नारी को उनका उचित रीति से सम्मान कर पुरुष के समकक्ष स्थान दिया और किसी भी प्रकार के भेदभाव से अछूते रहे। उन्होंने नारी की निंदा करने वालों की भर्त्सना करते हुए कहा है—

दरीय़ा नारी जंननी जगत की, पाल पोस दे पोष।
मूरष रांम बिसार कर, ताहि लगावै दोष।।4

नारी को मां, बहन और बेटी के सदृश पूर्णता सम्मान देने की बात करते हैं—

नारी आवै प्रीत कर, सतगुर परसै आंणं।
दरीय़ा हित उपदेश दे, माय़ बहिन धी जांण।।5

संत दरिया साहब के शिष्य संत नानगदास ने परनारी को अपनी माता, बहन, भानजी, बेटी आदि के रूप में सम्मान देने की उपदेश दिया है—

प्रनारी सब बहन भांणजी, तौ संतनगत लहीये़।
नानगदास कहा जन तेरा, लाज संत की हिये।।6

संत दरिया साहब की परंपरा में परवर्ती संत बुधाराम भी नारी के प्रति अपने पूर्ववर्ती संतों को संस्कारस्वरूप

सम्माननीय भाव व्यक्त करते हुए कहते हैं–

प्रनारी कूं माता जाणै, बहन भांणजी धी ज्यूं पीछांणै।

नष सष सहत मात का जाणे, ओर भाव मन में नहीं आणै।।7

वस्तुत है स्त्री और पुरुष का भेद केवल बाहरी है अन्यथा दोनों समान हैं और इनमें किसी एक को कम और दूसरे को अधिक नहीं आंका जा सकता। दोनों समान है दोनों में कोई फर्क नहीं है। फिर, जहां राजा जनक, महर्षि याज्ञवल्क्य, गौतमबुद्ध, रामानंद, दयानंद सरस्वती, राजाराममोहन, महात्मा ज्योतिबा फुले, बसवेश्वर, दरिया साहब (मारवाड़ वाले) सदृश समाज सुधारक मनीषी और संत होंगे वहां इस प्रकार के किसी भी विमर्श की संभावना क्षीण होती चली जाती है। किंतु उपर्युक्त सभी तथ्यों के होते हुए भी कहा जा सकता है कि नारीवाद या नारी–विमर्श पश्चिम से प्रभावित जीवन और साहित्य दोनों के क्षेत्र में एक नया उभरता हुआ दृष्टिकोण है। साहित्य सृजन और उसके विवेचन – मूल्यांकन को यह कहां तक और कैसे प्रभावित करेगा यह अभी देखना बाकी है।

संदर्भ सूचीरू

1. भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के विविध आयामरू सं. डॉ. हरीश कुमार, रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर, पृ.111
2. हिंदी साहित्य का इतिहासरू सं. डॉ.नगेन्द्र, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा– 201301, सैंतीसवाँ संस्करण, पृ. 432–36
3. बसव और उनकी शिक्षाएं, पृ.13
4. रामसनेही संतकाव्यरू परम्परा और मूल्यांकन– डॉ. सतीश कुमार, एम.एम. प्रकाशन, सोजती गेट के बाहर, जोधपुर, पृ. 189

5.छुटकर साखी सं. 55, ह. लि. ग्रंथांक 31010, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर

6. फुटकल पदांश , पत्रांक 36, ह. लि. ग्रंथांक 12421, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर
7. छंदांक 21, ग्रंथ प्रश्नौत्तर, ह. लि. ग्रंथांक (9), साधां की जांगा, डेह (नागौर)

मो.9466935540 / 8059135540

email: satishkumardolia@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 331-337
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिंदी काव्य में आदिवासी विमर्श

–यशपाल जंघेल
शोधार्थी, हिंदी विभाग, दानवीर तुलाराम शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय– उतई, जिला दुर्ग (छत्तीसगढ़)

आदिवासी चाहे किसी भी देश या क्षेत्र के हों, वे सदियों से शोषित और उपेक्षित ही रहे हैं। विश्व के सभी देशों में उनकी विद्यमानता रही है। भारत के आदिवासियों को विश्व की प्राचीनतम और सुनियोजित नगर – रचना वाले हड़प्पा और मोहनजोदड़ो जैसे नगरों को विकसित करने वाली सिंधु सभ्यता का जनक माना जाता है। आदिवासी भारत के मूल के निवासी हैं और 300 ई. पू. के पहले ये द्रविड – प्रजा के नाम से जानी जाती थीं। बर्बर आर्यों के अचानक हुए हमलों से उनको अपने मूल स्थान से विस्थापित होना पड़ा। आर्यों ने आदिवासियों की पहचान मिटाने के लिए कई हथकंडे अपनाएं। वैदिक काल में उनको राक्षस, दानव, असुर जैसी उपमाएं दी गईं। महाभारत काल में गुरू द्रोणाचार्य ने आदिवासी एकलव्य से दक्षिणा के रूप में उसका दाहिना अंगूठा ले लिया था।

आदिवासियों के शोषण का यह चक्र आज भी बदस्तूर जारी है। या यूं कहें के शोषण की मात्रा में निरंतर वृद्धि हुई है, तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। पहले तो उन्हें समतल भूमि से बीहड़ जंगलों और दुर्गम पहाड़ों में जाने के लिए मजबूर किया गया। अब विकास के नाम पर उन्हें जंगलों और पहाड़ों से भी खदेड़ा जा रहा है। यूं तो आदिवासियों का उत्पीड़न सदियों से हो रहा है, लेकिन सन् 1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण की नीतियों ने आग में घी का काम किया है। आदिवासियों पर हुए शोषण को मोटे तौर पर दो भागों में बांटकर देखा जा सकता है। प्रथम – उपनिवेष काल में साम्राज्यवाद और सामंतवाद के गठजोड़ से पैदा हुई समस्याएं। द्वितीय – आजादी के बाद शासन की जनविरोधी नीतियों एवं आर्थिक उदारीकरण से उत्पन्न समस्याएं। स्वतंत्रता से पहले जहां आदिवासियों की मूल समस्याएं वनोपज पर प्रतिबंध, तरह – तरह के लगान, महाजनी शोषण, प्रशासन की ज्यादतियां आदि रही हैं। वहीं दूसरी ओर आजादी के बाद सरकार द्वारा अपनाये गये विकास के मॉडल से उन्हें अपने जल, जंगल व जमीन से अलग होना पड़ा है।

''प्रत्येक क्रिया की सदैव बराबर और विपरित दिशा में प्रतिक्रिया होती है'' न्यूटन के गति का यह तृतीय नियम समाजशास्त्र में भी लागू होता है। जब . जब दिकुओं ने उनके जीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप किया, आदिवासियों ने उनका प्रतिरोध भी किया है। बीती दो सदियां आदिवासी – विद्रोह की गवाह रही हैं। ''बिरसा मुंडा'' और ''वीर गुण्डाधुर '' जैसे क्रांतिकारी व्यक्तित्वों ने आदिवासियों को उनके अस्तित्व और आत्मसम्मान की रक्षा के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी हैं। सामाजिक और राजनीतिक प्रतिरोध के अलावा कला और साहित्य द्वारा भी शोषण के खिलाफ आवाज बुलंद की गई है। उत्पीड़न और अत्याचार के विरुद्ध आदिवासियों के विद्राहों

से रचनात्मक ऊर्जा भी निकली है। कई आदिवासी और गैर – आदिवासी रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में आदिवासी जीवन और सामाज को अभिव्यक्त किया है। दलित – विमर्श और स्त्री – विमर्श की तरह हिंदी साहित्य में अब आदिवासी – विमर्श की चर्चा होने लगी है। सन् 1991 के आर्थिक उदारीकरण की नीतियों से तेज हुई आदिवासी – शोषण की प्रक्रिया के प्रतिरोधस्वरुप आदिवासी अस्तित्व व अस्मिता के रक्षा के लिये राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक ऊर्जा ही आदिवासी साहित्य है। लेकिन इसके बहुत पहले ही साहित्य की लगभग सभी विधाओं में आदिवासी समाज की व्यथा – कथा अभिव्यक्ति पा रही थी।

''गोदान'' उपन्यास में आदिवासी स्त्री के संघर्षमय जीवन की थोड़ी सी झांकी दिखायी देती है, जबकि ''मैला आंचल'' में आदिवासियों का जीवन.संघर्ष व्यापक रुप से उभरकर सामने आता है। अपनी जमीन की रक्षा के लिये ''संथाल आदिवासी'' अपने प्राणों की आहुति दे देते हैं। समकालीन दौर में उपन्यास ''ग्लोबल गांव के देवता'' और संजीव कृत ''पांव तले दूब'' में आदिवासियों की समस्याओं को बखूबी के साथ उठाया गया है। वैष्वीकरण के परिणामस्वरुप आज उनके समक्ष अपनी संस्कृति को बचाए रखने की जो चुनौतियां उपस्थित हुई हैं, इन उपन्यासों में व्यक्त हुई हैं।

साहित्य की अन्य विधायों की तरह काव्य में भी आदिवासियों के दुख – दर्द ने अभिव्यक्ति पायी हैं। समकालीन हिन्दी काव्य में आदिवासी जीवन को व्यक्त करने वाले प्रमुख कवि हैं – विनोदकुमार शुक्ल, केदारनाथ सिंह, मदन कश्यप, मंगलेश डबराल, राजेश जोशी, एकांत श्रीवास्तव, लीलाधर मंडलोई, निर्मला पुतुल, हरीराम मीणा, ग्रेस कुजूर, सरिता बड़ाइक, वंदना टेटे, कुमार अंबुज, राकेशकुमार पालीवाल आदि। इन कवियों ने न सिर्फ आदिवासियों की अस्मिता को पहचानने की कोशिष की हैं, बल्कि अन्याय और शोषण के खिलाफ सशक्त प्रतिरोध की जमीन भी तैयार करने का काम किया हैं।

आदिवासी इलाकों में बाहरी तत्वों का हस्तक्षेप उनके लिए सबसे बड़ी समस्या है। यहीं से उनके जीवन में प्रदूषण शुरु होता है और अंत में आदिवासी अस्तित्व का संकट। वर्तमान में उनके सामने अपनी अस्मिता को बचाये रखने की गंभीर चुनौती है। सत्ता और ठेकेदारों के गठजोड़ ने उन्हें अपने जलए जंगल और जमीन को छोड़ने पर विवश किया है। वे कई महानगरों में दिहाड़ी मजदूर के रुप में काम करने पर मजबूर हैं। आदिवासी, आज अपनी पहचान के लिये संघर्षरत है। कवि मंगलेश डबराल, आदिवासियों के अस्तित्व पर आए इस संकट को अपनी कविता में इस तरह व्यक्त करते हैं –

अब क्षितिज पर बार – बार उसकी काली देह उभरती है,
वह कभी उदास और कभी डरा हुआ दीखता है,
उसके पास पेड़ बिना पत्तों के हैं और मिट्टी बिना घास की,
यह साफ है कि उससे कुछ छीन लिया गया है।

जब हम आदिवासियों के इतिहास पर नजर डालते हैं, तो हमें उत्पीड़न का एक अंतहीन सिलसिला दिखायी पड़ता है। पहले लोगों की नजरें उनके जंगलों तक ही थीं, लेकिन अब लोगों की आंखें, उनकी जमीन के अंदर गड़ी अकूत खनिज संपदाओं पर भी गड़ गई हैं। नतीजन विकास के नाम पर उनका विस्थापन आम बात हो गई है। कहीं जबरन, तो कहीं पैसे देकर उन्हें विस्थापित किया जा रहा है। आदिवासियों को उनकी जड़ों से काटने के लिए कई तरह के हथकंडे अपनाए गये हैं। उदारीकरण ने औद्योगीकरण के रास्ते खोल दिये हैं। इससे बाहरी व्यक्ति तो अंदर आ रहे हैं, लेकिन यहां

के आदिवासी रोजी – रोटी की तलाश में बाहर जाने के लिए विवश हो रहे हैं। विस्थापन की इस समस्या पर प्रसिद्ध कवि विनोदकुमार शुक्ल लिखते हैं –

रात के सड़क के पेड़ों के नीचे
सोते हुए आदिवासी परिवार के सपने में,
एक सल्फी का पेड़
बस्तर की मैना आती है,
पर नींद में स्वप्न देखते
उनकी आंखें फूट गई हैं।

आदिवासियों को जिसने चाहा, दोनो हाथों से लूटने का ही काम किया है। सिपाही, महाजन, साहूकार, बिचौलिए, सरकारी मुलाजिम सबने उन पर धौस जमाये हैं। सत्ता और बाजार के जुगलबंदी ने उनकी जीवन – शैली में आमूल – चूल परिवर्तन किये हैं। प्राचीन काल में आदिवासी – समुदाय पूरी तरह से आत्मनिर्भर हुआ करते थे। अपनी जरुरत की सभी चीजें वे जंगल से ही प्राप्त कर लेते थे। जंगल और उनके बीच बेहद आत्मीय रिश्ता था। अंग्रेजों के शासनकाल के दौरान उन पर तरह – तरह के प्रतिबंध लगाने शुरु हुए। तब से लेकर अब तक उन्हें जंगल से तोड़ने का लगातार प्रयास किया जा रहा है। भूमंडलीकरण के इस दौर में आदिवासी अब पूरी तरह बाजार की गिरफ्त में हैं। इसी को इंगित करते हुए लोक से जुड़े कवि केदारनाथ सिंह ने लिखा है –

एक अकेली आदिवासी लड़की को
घने जंगल जाते हुए डर नहीं लगता,
बाघ शेर से डर नहीं लगता
पर महुआ लेकर गीदम के बाजार जाने से
डर लगता है।

नक्सल आंदोलन आज देश के लिए गंभीर चुनौती है। नक्सलियों और सुरक्षाबलों के बीच की लड़ाई में हमेशा आदिवासी ही पीसते आये हैं। उनके घर उजाड़े और जलाये गये हैं। बंदूक की जोर पर नक्सलियों द्वारा आदिवासियों से बेगार लिए जाते हैं। आए दिन फर्जी मुठभेड़ की खबरें भी आती हैं। नक्सलवाद के खात्मे के लिए शासन की ओर से बड़े जोर – शोर से ''सलवा जुडुम'' आंदोलन शुरु किया गया। इससे किसको कितना फायदा हुआए पता नहीं, लेकिन नुकसान तो सिर्फ आदिवासियों को उठाना पड़ा है। इसी सच्चाई को उघाड़ते हुए कवि मदन कश्यप ''सलवा जुडुम 2008'' शीर्षक अपनी कविता में कहते हैं –

हमने हत्या को सांस्कृतिक अनुष्ठान में बदल दिया है,
कोई नहीं कह सकता इसे सत्ता का दमन,
सरकारी उत्पीड़न,
अब कंधे भी तुम्हारे हैं और छातियां भी तुम्हारी,
हम तो सिर्फ तुम्हारे नरमेघ के पुरोहित हैं।

आदिवासियों के जीवन की कल्पना प्रकृति के बिना संभव नहीं है। अनादि काल से वे प्रकृति की गोद में पलते आए हैं। कंदमूल और फलों से वे अपनी क्षुधा मिटाते हैं और नदियों के निर्मल जल से अपनी प्यास।

पहाड़ों को वे हमेशा अपने पितर की तरह पूजते आए हैं। प्राचीन काल से ही आदिवासी प्रकृति की भिन्न – भिन्न भाव – भंगिमाओं के साथ नाचते – गाते रहे हैं। इस उन्मुक्तता के चलते उन्होंने अभाव भरी जिंदगी की भी परवाह नहीं की हैं। समृय्द्ध प्राकृतिक परिवेश में सीमित आवश्यकताओं के साथ एक लंबी, विशुद्ध सांस्कृतिक परपंरा रही है। जीवन का आधार रही यह प्राकृतिक संपदा और सांस्कृतिक धरोहर आज उनसे छीनी जा रही है। प्रकृति और उनकी संस्कृति के साथ छेड़छाड़ उनके लिए आत्मिक पीड़ा की बात रही है। यह केवल आदिवासियों के अस्तित्व का संकट ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानवता और मानवेत्तर प्राणी जगत के लिये खतरा है। आज संपूर्ण विश्व के सामने पर्यावरणीय संकट और सांस्कृतिक पतन की जो समस्याएं विद्रूपताओं के साथ खड़ी हैं, उसे कवि विनोदकुमार शुक्ल ने ''अभी बारिस नहीं हुई है '' शीर्षक कविता में इस तरह व्यक्त किया है–

आदिवासी! पेड़ तुम्हें छोड़कर नहीं गए
और तुम भी जंगल छोड़कर खुद नहीं गए
शहर के फुटपाथों पर अधनंगे बच्चो परिवार
के साथ जाते दिखे इस साल
कहीं यही कारण तो नहीं।

आदिवासी बेहद भोले – भाले होते हैं। उनकी एक अलग ही दुनिया होती है। दुनिया के छल – प्रपंच और षड़यंत्रों से वे अनभिज्ञ रहते हैं। उनकी इच्छाएं सीमित होती हैं। उनमें धन संग्रहण की प्रवृत्ति का लोप रहता है। जितनी जरुरतें होती हैं, प्रकृति से वे उतना ही लेते हैं, उससे ज्यादा नहीं। वनोपज लेकर जब आदिवासी महिलाएं बाजार जाती हैं, तो उनको अपनी आंखों में पेज और नमक ही दिखता है। दुनिया की चकाचौंध से दूर वे अपनी ही धुन में मस्त रहते हैं। प्रसिद्ध कवि राजेश जोशी ने अपनी ' एक आदिवासी स्त्री की इच्छा' शीर्षक कविता में लिखा हैं. ' लड़की इच्छा है, छोटी सी इच्छा, हाट इमलिया जाने की। सौदा – सूत कुछ लेना, तनिक सी इच्छा है ... काजर की, बिंदियां की'

इन आदिवासी और गैर – आदिवासी रचनाकारों ने न सिर्फ आदिवासियों के दुख – दर्द, पीड़ाओं और आंसुओं को अपनी लेखनी में उकेरा है, अपितु शोषण के खिलाफ उपजे आक्रोश और प्रतिरोध को भी व्यक्त किया है। उनकी कविताओं में आदिवासियों के साथ अमानवीय व्यवहार और उत्पीड़न का पुरजोर विरोध हुआ है। आदिवासियों के खिलाफ हो रहे सारे षड़यंत्रों को इन रचनाकारों ने अपनी कविताओं में उघाड़ने के प्रयास किये हैं। ' आदिवासी धुंआ' शीर्षक कविता में कवि राजा पुनियानी शोषण और उत्पीड़न के विरोध में एकजुट का आह्वान करते हैं –

धुंआ ने उठाया है
मुस्कुराते हुए प्रतिरोध की लौ,
धुंए के हाथ में अब तीर है, धनु है,
धुंए के झोले में किताब है, पर्चा है,
धुंए के दिल में गीत है सपना है।

आदिवासियों में वन – संरक्षण की प्रवृत्ति सहज होती है। अतः वे वन एवं वन्य – जीवों से उतना

ही प्राप्त करते हैं, जिससे उनका जीवन सुगमता से चल सके और आने वाली पीढ़ी को वन – स्थल को धरोहर के रुप में सौंप सकें। वन – संवर्धन, जल – संरक्षण और वन्य जीवों की सुरक्षा का परंपरागत कौशल आदिवासियों में सदियों से रहा है। इसी कौशल – दक्षता व प्रखरता के फलस्वरुप उन्होंने प्राकृतिक वातावरण को संतुलित बनाए रखने में सफलता प्राप्त की हैं। उनके रीति –रिवाजों, उत्सव,पर्वों, और सांस्कृतिक मूल्यों को अक्सर ऊल – जुलूल और अवैज्ञानिक करार दिया जाता रहा है। लेकिन ऐसा नहीं है। आदिवासियों के लगभग सभी तीज त्यौहार हमें पर्यावरण – संरक्षण की सीख देते हैं। आज जब विकास की अंधाधुंध दौड़ में पर्यावरण संतुलन बिगड़ता जा रहा है। जल विषाक्त हो रहा है। हवाएं जहरीली होती जा रही हैं। साथ ही मानव पर प्रकृति का प्रकोप भी दिनोदिन बढ़ने लगा है। ऐसे समय में आदिवासियों के संचित ज्ञान की अत्यंत आवश्कता महसूस की जा रही है। 'आस्ट्रेलिया यूथ क्लाइमेंट कोलिश' की ' केली मैकेंजी' कहती हैं – ' जलवायु परिवर्तन का सामना करने और देश की सुरक्षा में इतना कुछ है जो हम आदिवासी से सीख सकते हैं' कवि राकेशकुमार पालीवाल भी अपनी कविता में इसका समर्थन करते हैं –

हम भी यदि सीखना चाहते हैं जीने के असल गुर
गुरू बनाना होगा आदिवासियों को ही,
उन्हीं के चरण कमल में बैठकर सीखना होगा
प्रकृति संरक्षण और पर्यावरण संतुलन का,
वह आईस्टनी समीकरण।

समकालीन हिंदी काव्य में आदिवासी स्त्रियों के दुख, दर्द, और पीड़ाओं ने भी अपनी जगह बनायी हैं। वर्तमान में आदिवासी स्त्रियां रोजी – रोटी की तलाश में गावों से निकलकर शहरों की खाक छान रही हैं। इस क्रम में उनका आर्थिक और दैहिक शोषण भी हो रहा है। महानगरों में ही नहीं वे अपने गांव और घर में भी सुरक्षित नहीं हैं। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व आदिवासी सामाज में सभी कार्य स्त्री और पुरुष सामान रुप से करते थे। संपत्ति पर दोनों का बराबर अधिकार होता था। उनके आगमन के पश्चात् संपत्ति के अधिकार से स्त्रियों को वंचित रखने तथा पुरुष वर्चस्व की दृष्टि से उन्हें हल चलाने, घर का छप्पर छाने या तीर धनुष चलाने जैसे कामों से वर्जित कर दिया गया। आदिवासी स्त्री एक ओर वर्तमान बाजारवाद के कारण मुख्यधारा के सामाज से शोषित हैं, तो दूसरी ओर स्त्री होने के कारण अपने ही सामाज में उपेक्षित हैं। स्त्रियों की इस दशा पर कवयित्री निर्मला पुतुल लिखती हैं –

नहीं जानती कि कैसे सूख जाती हैं
उनकी दुनिया तक आते – आते नदियां,
तस्वीर कैसे पहुंच जाती है उनकी महानगर
नहीं जानती वो नहीं जानती।

भूमंडलीकरण से जिसको सबसे अधिक नुकसान उठाना पड़ा है, वो आदिवासी समुदाय है। उनकी भाषा और संस्कृति के अस्तित्व का संकट गहराता जा रहा है। आजकल तथाकथित सभ्य जनों के लिए ये वर्ग मनोरंजन के साधन मात्र बनकर रह गये हैं। भारतीय सामाज पूर्वाग्रह से युक्त रहा है। यही कारण है यहां उनको हमेशा बर्बर और असभ्य समझा जाता रहा है। जस्टिस मार्कंडेय काटजू और ज्ञानसुधा मिश्र की खंडपीठ

ने 5 जनवरी सन् 2011 को टिप्पणी करते हुए कहा है कि ' यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आदिवासी जो संभवतया भारत के मूल निवासियों के वंशज हैं, अब देश की कुल आबादी 8 प्रतिशत ही बचे हैं वे एक तरफ गरीबी, निरक्षरता, बेरोजगारी, बीमारियों और भूमिहीनता से ग्रस्त हैं, वहीं दूसरी ओर भारत की बहुसंख्यक जनसंख्या जो कि विभिन्न अप्रवासी जातियों के वंशज है, उनके साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार करती है' विडंबना यह है, कि संविधान द्वारा प्रदत्त सुविधाओं, सुरक्षा के उपबंधों और उनके हितों के अनेक प्रावधानों से वे अब तक पूरी तरह अनभिज्ञ हैं। उन्हें देखकर यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि इक्कीसवीं सदी के भारत में ऐसा सामाज और जीवन भी अस्तित्व में है, जिनके पास न कोई आय का साधन है न रहने के लिये घर है, पहनने के लिए कपड़े। कवि राकेशकुमार पालीवाल लिखते हैं –

इन्हें नहीं मालूम कहां मिलता है,
सफेद कागज का वह टुकड़ा,
जिस पर खड़ी है
आदिवासी विकास की सैकड़ों योजनाओं की
बहुरंगी बहुमंजिली भव्य इमारतें।

आदिवासियों को खत्म करने के सारे हथकंडों के बावजूद वे खत्म नहीं होंगे। सृष्टि के आरंभ से अंत तक उनकी मौजूदगी इस धरती पर बनी रहेगी। करोड़ों वर्ष बीत गयें। कई प्राकृतिक आपदाएं आईं। मोहनजोदड़ो की महान सभ्यता भी मौत के आगोश में समा गई, लेकिन आदिवासियों का अस्तित्व आज भी बना हुआ है। कवि कुमार अंबुज लिखते हैं –

यदि मैं पत्थर हूं तो अपने आप में एक शिल्प भी हूं,
जैसा मैं हूं वैसा बनने में मुझे युग लगे हैं,
हटाओ अपनी सभ्यता की छैनी...
मैं पत्थर हूं पत्थर की तरह मेरी कद्र करो,
ठोकर जरा संभलकर मारना
पत्थर हूं।

आखिर आदिवासी कब तक अपने खिलाफ होने वाले उत्पीड़न और शोषण को चुपचाप सहते रहेंगे। कभी न कभी तो उनकी चुप्पी टूटेगी। इतिहास के पन्ने पलटें तो पता चलता है कि समय – समय पर ये आदिवासी समुदाय अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध का बिगुल फूंकते आयें हैं। पिछली सदी में हुईं कई आदिवासी विद्रोहों से इनकी सामाजिक और राजनीतिक चेतना का पता चलता है। साहित्य में इन क्रांतियों का स्वर स्पष्ट सुनायी देता है। भले ही उनका स्वरुप मौखिक रहा हो। कालांतर में लिखित साहित्य में भी उनके विद्रोही तेवर की झलक हमें देखने को मिल रही है। कवयित्री निर्मला पुतुल लिखती हैं –

अक्सर चुप रहने वाला आदमी
कभी न कभी बोलेगा
जरूर सिर उठाकर
चुप्पी टूटेगी एक दिन धीरे – धीरे उसकी

धीरे – धीरे सख्त होंगे उसके इरादें व्यस्था के खिलाफ
भीतर – भीतर ईजाद करते
कई – कई खतरनाक अस्त्र।

समकालीन हिंदी काव्य आदिवासी जीवन और समाज के विभिन्न पहलुओं को न सिर्फ छूता है, अपितु उनकी गहराई में भी उतरता है। आदिवासियों के पर्व – उत्सव, रीति – रिवाज, सांस्कृतिक मान्यताओं के साथ – साथ उनके साथ होने वाले अनाचार व उत्पीड़न भी इनमें व्यक्त हुए हैं। समकालीन हिंदी काव्य आदिवासियों के खिलाफ हो रहे अत्याचार और अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध की ठोस जमीन तैयार करने में पूरी शिद्दत के साथ जुटा है।

मोबा . 9009910363
मेल . लरंदहीमस71 ⁄ हउंपस.बवउ

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 338-342

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

साहित्य में किन्नर वर्ग का सामाजिक दृष्टिकोण

–रमन कुमार

पीएच.डी शोधार्थी, हिंदी, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर यूनिवर्सिटी दिल्ली।

बीज शब्द : यथापरिस्थिति, कार्यशैली, अर्धनारीश्वर, आदिशक्ति, ट्रांसजेंडर, मनमुग्ध, वृहनल्ला, काल्पनिक, नपुसंकलिंग, सम्मानजनक, मनोस्थिति, दुर्व्यवहार, अपमानित, भेदभाव, जागरूकता, विसंगतियों।

सारांशरू इस शोधालेख के माध्यम से भारतीय समाज में किन्नर वर्ग की यथा–परिस्थिति को सामने लाने का प्रयास किया गया है।

साहित्य, समाज और किन्नर यह विषय चर्चा के उद्देश्य से व्यापक है। इस विषय को समझने के लिए इन तीनों (साहित्य, समाज और किन्नर) को एक बार अलग–अलग दृष्टि से समझने की कोशिश करते हैं, ताकि किन्नर वर्ग को, उसकी यथापरिस्थिति को, उसकी मनोस्थिति को, उनके प्रति समाज के रवैये को, उनके प्रति सरकार की कार्यशैली को और वर्तमान समय में भारत में इनके हालातों के बारे में समझा जा सके कि इतिहास के पन्नों में इनकी क्या स्थिति रही है, वर्तमान में इनकी स्थिति कैसी है और भविष्य में कैसी होगी या हो सकती है?

शाब्दिक अर्थ में समझे तो 'किन्नर' को– समाज में हिजड़ा, खोजवा, नपुंसक, छक्का, थर्ड जेंडर, अर्धनारीश्वर आदि नामों से जाना जाता है। मानोबी बंधोपाध्याय बताती है कि– "उन्हें 'कोटी' कहा जाता जाता था, अक्सर ट्रांसजेंडर लोगों के लिए आम बोलचाल की भाषा में इसी शब्द का प्रयोग होता था। इसके अलावा हमें कुछ और नामों से भी पुकारा जाता था, जैसे 'मीठा चावल' और 'मामा'।"1 साधारण शब्दों में 'किन्नर' शब्द को परिभाषित करूं तो कहूंगा कि– समाज में स्त्री और पुरुष के अलावा तीसरा वर्ग भी है जिसकी गणना न तो नर में होती है और न ही नारी में। इसी नर–नारी से बाहर के वर्ग को समाज किन्नर या हिजड़े के नाम से संबोधित करता है। समाज में कुछ लोग तो इन शब्दों को अभद्र भाषा (गाली) के रूप में इस्तेमाल करते हैं। पौराणिक कथाओं और अर्धनारीश्वर के आधार समाज में इसे आदिशक्ति शिव के रूप में भी पहचान मिली है। माना जाता है इनका आधा शरीर पुरुष का होता है और आधा शरीर स्त्री का। इनकी गायन शैली और इनका नृत्य समाज के लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता है।

अब हम इनको और इनकी स्थिति को पौराणिक, वैज्ञानिक एवं सामाजिक दृष्टि से समझने की कोशिश करते हैं। पुराणों के अनुसार 'किन्नर' एक प्रकार से देवलोक का एक उपदेवता था, जिसे संगीत एवं नृत्य का गहन ज्ञान था। इनका नृत्य–गान मनमुग्ध करने वाला होता था। इनका मुंह घोड़े के समान प्रतीत होता था। माना जाता है कि ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में समूचा हिमालय किरात भूमि 'किन्नर' था। पौराणिक दृष्टि से इनकी

उत्पत्ति का विषय अपवादों से भरा है। कहा जाता है कि वह ब्रह्मा की छाया अथवा उनके पैर के अंगूठे से उत्पन्न हुए हैं, इसके अलावा एक दूसरा मत यह है कि इनके आदि जनक अरिष्टा और कश्यप थे।

रामायण और महाभारत में भी इनका जिक्र कहीं–कहीं देखने को मिलता है। रामायण के कुछ संस्करणों में इनका उल्लेख हुआ है। मसलन् जब राम 14 वर्ष के वनवास के लिए अयोध्या छोड़कर जाते हैं तो उनके साथ आ रही प्रजा को वे वापस लौटने को कहते हैं, लेकिन जब राम 14 वर्ष बाद वापस लौटते हैं तो कुछ लोग राम का वहीं इंतजार कर रहे थे, जहां राम उन्हें छोड़कर गए थे और वे लोग थे– किन्नर। उनकी भक्ति से खुश होकर राम ने उन्हें वरदान दिया कि उनका आशीर्वाद हमेशा फलित होगा (लेकिन मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ)। शायद यही वजह रही होगी कि बच्चों के जन्म और शादी जैसे अवसरों के दौरान लोग उन्हें आशीर्वाद देने के लिए बुलाते हैं और वे आशीर्वाद देते हैं। महाभारत में अर्जुन ने किन्नर का वेश बदलकर 'वृहनल्ला' नाम से एक वर्ष तक अज्ञातवास काटा था। शिखंडी को भी किन्नर ही माना गया है जो पांचाल के राजा द्रुपद का पुत्र और पांचाली व धृष्टद्युम्न का भाई था। कृष्ण ने भी मोहिनी के नाम से वेश बदलकर इरावन से एक रात का विवाह रचाया था।

वैज्ञानिक तर्क के अनुसार मानव जाति को दो प्रकार के लोगों से जाना जाता है एक– पुरुष लिंग अर्थात पुलिंग, दूसरा– स्त्रीलिंग। इन दोनों के हार्मोन्स अलग–अलग होते हैं। जब कोई बच्चा जन्म लेता है तो अगर वह पुरुष लिंग का हो तो उसके गुण को ग्ल से परिभाषित किया जाता है और यदि बच्चा स्त्रीलिंग का हो तो उसके गुण को ग्ग से परिभाषित किया जाता है, लेकिन किसी कारणवश यह दोनों गुण आपस में मिल जाते हैं या अलग ही रह जाते हैं तो जो बच्चा पैदा होगा उसमें किन्नर के गुण विद्यमान होंगे। उन गुणों के आधार पर ही उसे किन्नर कहा जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से इसे ग्ग्ग या ल्ल से परिभाषित किया गया है।

पौराणिक कथाओं एवं किंवदंतियों में इनका जिक्र अवश्य हुआ है, लेकिन कहीं भी इनकी उत्पत्ति या जन्म के कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलते। किसी जगह कहा गया है कि इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा की छाया या पैर के अंगूठे से हुई थी। आज हम जिस सदी में जी रहे हैं उसमें इस इस बात को कदापि नहीं स्वीकार नहीं जा सकता। रामायण और महाभारत में इनके बारे में सुनने को मिला है, लेकिन यहाँ इनके जन्म या उत्पत्ति के बारे में स्पष्ट रूप से नहीं बताया गया। इन ग्रन्थों में इनके होने का प्रमाण तो मिलता है, लेकिन इनका जन्म कब, कहाँ और कैसे हुआ इसकी कोई ठोस वजह या प्रमाण नहीं मिलते। जिसे सभी एकमत से स्वीकार कर सके। ब्रह्मा के अगुंठे से या उसकी छाया से इनके जन्म की बात को स्वीकार नहीं कर सकता। किसी बच्चे का खीर से जन्म होना, कोई फल खाने से जन्म होना, मुख से, पेट से, भुजाओं से, पैरों से या फिर अंगूठे से जन्म होना आदि ये सब काल्पनिक कहानी के तौर पर सुनना–सुनाना अच्छा लग सकता है, लेकिन इसे वास्तविक रूप में स्वीकार नहीं किया सकता। हम सब जानते हैं कि मानव प्रजाति के जन्म की प्रक्रिया के लिए स्त्री–पुरुष का मिलन आवश्यक है। इसके अलावा टेस्ट ट्यूब बेबी के जरिए ये संभव है। इसीलिए इनकी जन्म प्रक्रिया को लेकर मैं वैज्ञानिक मत को स्वीकार करना उचित समझूँगा। अर्थात् इनका जन्म भी ठीक उसी प्रक्रिया द्वारा होता है जिस प्रक्रिया से किसी स्त्री या पुरुष का होता है। ये लोग न तो किसी ईश्वर के अवतार हैं और न ही इनका मुख किसी घोड़े के समान प्रतीत होता है। यहाँ यह सब बताने का एकमात्र उद्देश्य यह था कि ये लोग (थर्ड जेंडर) भी ठीक उसी तरह जन्म लेते हैं जैसे कोई समान्य बच्चा जन्मता है। स्त्रीलिंग और पुलिंग के बाद तीसरा लिंग

भी अस्तित्व में आया जिसे आज हम नपुसंकलिंग या 'थर्ड जेंडर' कहते हैं।

पौराणिक कथा–पुरानों और किंवदंतियों से इस बात का निष्कर्ष अवश्य निकाला जा सकता है कि ये लोग भी प्राचीन काल से हमारे साथ रह रहे हैं और वैज्ञानिक तर्कानुसार कहा जा सकता है कि इनका जन्म भी समान्य मानव जन्म प्रक्रिया की तरह ही होता है। थर्ड जेंडर के लोग न तो किसी देवीय शक्ति से उत्पन्न हुए हैं और न ही किसी देवीय पुरुष के अवतार का हिस्सा है। ये मानव प्रजाति का अभिन्न अंग हैं। किन्तु समाज आज भी इन्हें स्वीकार करने से हिचकता है। परिवार के लोग ही इन्हें अपनाने से कतराते हैं। रेणु बहल कृत उपन्यास 'मेरे होने में क्या बुराई है' में एक माँ अपने किन्नर बने बेटे से कहती है कि– "हसरत तो थी तेरे सिर पर सेहरा बंधा देखती, मगर तूने तो हमे कहीं का न छोड़ा। तेरे भाई की शादी में अगर तुझे बुला लेती तो तेरे बाबा घर से निकाल देते। कहाँ जाती यह दर छोड़कर? उनकी मर्जी के खिलाफ एक कदम उठाने का सोच भी नहीं सकती।"2 अब सवाल यह उठता है कि जब परिवार के लोग ही इन्हें हृदय से नहीं अपना पाते तो दूसरा कौन अपनाएगा। सबसे पहले परिवार के लोगों को इन्हें अपनाने कि जरूरत है, इनका और इनकी भावनाओं का सम्मान करने की अवश्यता है। परिवार के लोगों को इनसे दूरी बनाने की बजाय इनके साथ इनका हाथ थामकर चलने की जरूरत है। जिस तरह से हम अपने परिवार के सभी सदस्यों का एक–दूसरे से गर्व के साथ परिचय करवाते हैं ठीक वैसे हमें इनका परिचय भी करवाना चाहिए, ताकि इनमें आत्मविश्वास और स्वाभिमान की भावना का विकास हो सके। लेकिन मुझे दुख के साथ कहना पड़ रहा है कि आज 21वीं सदी में हम इनके साथ सम्मानजनक व्यवहार नहीं करते हैं। ऐसी स्थिति में ये लोग न तो घर के होकर रह पाते हैं और न ही बाहर के। इन विषम परिस्थितियों के मध्य इनकी मनोस्थिति बिगड़ने लगती हैं– "बहुत कम हिजड़े हैं, जो बुढ़ापे की दहलीज तक पंहुचते हैं। अक्सर हिजड़े गुरबत, डिप्रेशन, लाइलाज मर्ज़, नशे के आदी या फिर खुदकुशी का शिकार होकर जवानी में ही दम तोड़ देते हैं।"3 इन सबका मूल कारण है समाज का किन्नर वर्ग और उनके परिवार वालों के प्रति दुर्व्यवहार। कुछ लोग ऐसे होते होते हैं जो नित इन्हें परेशान करने के बहाने खोजते रहते हैं। इनके परिवार वालों को उल्टा–सीधा बोलने से बाज नहीं आते। इसी कारण परिवार के लोग भी इनसे किनारा करने लगते हैं। कुछ ऐसी ही पीड़ा को व्यक्त करती हुई मानोबी बंद्योपाध्याय अपनी आत्मकथा 'पुरुष तन में फंसा मेरा नारी मन' में कहती है– "जल्दी ही उन्होंने मेरे पिता को ताने देने शुरू कर दिये। ये बूढ़ा साथ क्यों आया है? क्या तुम स्कूल के छोकरे... नहीं–नहीं छोकरी हो? एक महिला टीचर ने भद्दी हंसी के साथ कहा। मेरे पिता सुनकर दंग रह गये। वे अक्सर मेरे साथ बाहर जाने पर इसी तरह अपमानित होते थे, इसीलिए वे ऐसी स्थिति में पड़ने पर बचते थे। वे मेरे साथ आने को केवल इसीलिए राजी हुए थे कि यह जगह घर से बहुत दूर थी और मैं पहले कभी इतनी दूर नहीं आयी थी। पर उन्होंने इस बात को हल्के में नहीं लिया। उन्हें गुस्सा आ गया और वे बोले कि वे वापस जा रहे हैं। मैं भ्रमित और भयभीत खड़ी थी, कुछ समझ नहीं आ रहा था कि अब क्या करूँ। हार कर, पिता को, मुझे मेरे भाग्य पर छोड़कर वापस जाना पड़ा।"4 एक लंबे संघर्ष के बाद 15 अप्रेल 2014 को इन्हें माननीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा अपनी मर्जी अनुसार जीने की मान्यता तो मिल गई, समाज से मान्यता मिलनी अभी बाकी है। न जाने समाज इन्हें हृदय से कब अपनाएगा।

आज भी इन्हें जीवनयापन करने के लिए सम्मानजनक कार्य ढूंढने, सार्वजनिक होटलों में या आवासीय स्थान ढूंढने में काफी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। सार्वजनिक स्थानों में शोचालयों का चुनाव करने

और स्वास्थ्य सेवाएँ ग्रहण करने में इन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कहीं–कहीं इन्हें इनकी शारीरिक बनावट के आधार पर भी भेदभाव का सामना करना पड़ता है। मानोबी बंधोपाध्याय को भी इस तरह के भेदभाव का सामना करना पड़ा– "एक बार, हमारी कक्षा को चाँदीपुर ले जया गया, मैं रात को सीधा उस हॉल में चली गयी जिसमें युवतियों को रखा गया था। मैंने पुरुषों के बीच सोने से मना कर दिया। इस वजह से हल्ला सा मच गया पर शंख सर उसी समय मेरे बचाव में आगे आये।... उन्होंने ऐलान किया कि मैं लड़कियों वाले हॉल में ही रहूँगी और उनकी बात पर कोई सवाल नहीं उठा सकता था।"5 समाज में मानोबी बंधोपाध्याय के शंख सर जैसे लोगों की आवश्यकता है, जो इनकी आत्मव्यथा को सुन सके, समझ सके और समय–समय पर मानोबी बंधोपाध्याय जैसे किन्नरों का साथ दे सके।

भारतीय समाज में किन्नर वर्ग के लोगों को एक दृष्टि से पौराणिक कथा–पुराणों के आधार पर पूजनीय समझा जाता है– कभी देवलोक का देवता मानकर तो कभी अर्धनारीश्वर मानकर। लेकिन दूसरी दृष्टि से इन्हें हेय समझता है। सत्यता तो यह है कि इनकी वास्तविक स्थिति अत्यंत दयनीय है। आज भी ये लोग सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, मानसिक एवं शारीरिक रूप से शोषण के शिकार होते हैं। आज भी हम किन्नर वर्ग के लोगों से बात करना तो दूर की बात है, इन्हें देखना तक पसंद नहीं करते हैं। यदि आज भी किसी घर–परिवार में इस प्रकार का बच्चा जन्म लेता है तो कई बार उस बच्चे के माता–पिता तक उसको स्वीकार नहीं करते हैं। इनमें एक उम्र के बाद जो शारीरिक बदलाव होते हैं, इन बदलावों के चलते बच्चा जो महसूस करता है उसे न तो वह अपने माता–पिता से कह पाता है और न ही अपने मित्रों से।

अब देखना यह है कि आखिर कब तक हम इन्हें नहीं अपनाते हैं? कब तक ये लोग शोषित–पीड़ित और अपमानित होते रहेंगे? हम उस इक्कीसवीं सदीं में जी रहे हैं जहां भारत प्रगति के शिखर को छू रहा है, लेकिन दुख इस बात का है कि हम अबतक अपने देश के भीतर की सामाजिक विसंगतियों को दूर नहीं कर सके हैं। इन विसंगतियों के कारण हम भीतर से खोखले होते जा रहे हैं। हम खोखली नींव पर भारत को गौरवान्वित करने वाली मजबूत दीवार बनाने का सपना देख रहे हैं। समाज में थर्ड जेंडर की समस्या आज भी गले की हड्डी बनी हुई है। इन समूह के लोगों को हमारा समाज न तो स्वीकारता है और न ही पूर्ण रूप से अपनाता है। इन्हें एक तरफ तो हम अर्धनारीश्वर के रूप में मानते हैं, दूसरी तरह देखने भर से अपनी भौएं सिकोड़ लेते हैं।
इन सभी समस्याओं से निदान तभी मिल सकता है जब सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थानों द्वारा इनके लिए जागरूकता अभियान चलाया जाए। सरकार इन्हें शिक्षा के क्षेत्र में, सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र में उचित स्थान दे। इसके अलावा मीडिया समाज को जागरूक करने में अपना अहम योगदान अदा करे। घर–परिवार के सदस्य इनकी इच्छाओं–भावनाओं को समझे और जीवन के हर पड़ाव में इनका साथ दे।

संदर्भ सूचीरू

1. पांडे, म. ब. (2018). पुरुष तन में फंसा मेरा नारी मन. नई दिल्ली रू राजपाल. पृ. स.– 21
2. बहल, र. (2020). मेरे होने में क्या बुराई है. नई दिल्लीरू सामयिक प्रकाशन. पृ. स.– 65
3. बहल, र. (2020). मेरे होने में क्या बुराई है. नई दिल्लीरू सामयिक प्रकाशन. पृ. स.– 89
4. पांडे, म. ब. (2018). पुरुष तन में फंसा मेरा नारी मन. नई दिल्ली रू राजपाल. पृ. स.– 83

5. पांडे, म. ब. (2018). पुरुष तन में फंसा मेरा नारी मन. नई दिल्ली रू राजपाल. पृ. स.– 55

अन्य पुस्तकेंरू

1. अहमद, ड. इ. (2017). किन्नर विमर्शरू साहित्य के आईने में. अलीगढ़रू वाङमय बुक्स.

2. मुद्‌गल, च. (2020). पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपरा. नई दिल्लीरू सामयिक प्रकाशन.

इन्टरनेटरू

1. ीजजचेरू/ /ीपदकप.चमांपदहजतमम.पद/इसवह/–330045

2. ीजजचेरू/ /ीपदकप.मइकनदपं.बवउ/दंजंद–कींतउं–ीपेजवतल/पतंअंद–पद–उींइींतंजं–117060600059–1. ीजउस

मोबाइल न.– 9315337171; 7522908194

ईमेल पता– तंउंदजांपलंकन/हउंपस.बवउ

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 343-349
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्त्री आत्मकथाओं में अभिव्यक्त सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिरोध

–नाताशा इन्दुस्काया
शोध–अध्येता, हिन्दी विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

भारतीय समाज की विशेषता है अनेकता में एकता। यहाँ अनेक धर्मों परंपराओं और संस्कृतियों को मानने वाले लोग रहते हैं। चूँकि समाज पितृसत्तात्मक है इसलिए इसे नियंत्रित एवं संचालित करने वाले सभी उपादान जैसे धर्म, परंपरा, संस्कृति आदि भी पितृसत्ता को ही संरक्षित और संवर्धित करते हैं। पितृसत्ता पुरुष को श्रेष्ठ और स्त्री को हीन मानती हैं। वह कभी धर्म के नाम पर, कभी परंपराओं के नाम पर तो कभी संस्कृति की दुहाई देकर, स्त्री शोषण के अपने प्रिय शगल को पूरा करती है। प्राचीन काल से ही स्त्रियाँ इस शोषण की संस्कृति में जीती आ रही हैं जिससे निकल पाना आसान नहीं है। फिर भी वे प्रतिरोध और संघर्ष के उस रास्ते पर पहुँच गयी हैं जिसपे चलकर उन्हें अपनी मुक्ति की मंजिल मिलेगी।

स्त्री के सामाजिक–सांस्कृतिक प्रतिरोध का संदर्भ समाज में व्याप्त रूढ़ियों, कुप्रथाओं, आडम्बरों और स्त्री विरोधी मान्यताओं से जुड़ता है। सोलह संस्कारों और चार पुरुषार्थों का सहारा लेकर बनाए गए समाज के अधिकांश नियम स्त्री विरोधी हैं। इनमें परिवार और विवाह संस्था को स्त्री शोषण का आधार कहा जा सकता है। आज की स्त्री अपने विरूद्ध प्रचलित इन रूढ़ियों, कुप्रथाओं, आडम्बरों और मान्यताओं के मकड़जाल को तोड़ने का सतत् प्रयास कर रही है। विभिन्न संस्कारों ने मिलकर स्त्री शोषण का जो जाल बुना है, उससे मुक्ति के लिए स्त्री निरंतर प्रतिरोध व्यक्त कर रही हैं। समाज की बनी–बनायी लीक के बरक्स वह एक नयी सामाजिक संरचना की निर्मिति करती हैं। स्त्री एक ऐसा समाज चाहती है जहाँ न पितृसत्ता हो, न ही मातृसत्ता। वह एक ऐसी विवाह संस्था में रहना चाहती है जहाँ पति परमेश्वर नहीं, साथी के रूप में हो। वह एक ऐसा समाज चाहती है जिसमें जातिवाद नहीं, समाजवाद हो।

धर्म, संस्कृति एवं परंपरा ने मिलकर अब तक जो स्त्री का शोषण किया है वह उसके विरूद्ध आवाज उठा रही है। वह एक ऐसे समाज व संस्कृति की कल्पना करती है जिसमें कोई भी श्रेष्ठ या अधीन न हो। स्त्री और पुरुष दोनों अपनी स्वतंत्र सत्ता रखते हुए एक दूसरे का सम्मान करें। अपनी इस कल्पना को साकार करने के लिए स्त्री प्रतिबद्ध है। इसलिए वह स्त्री विरोधी धार्मिक आचारों एवं विचारों में परिवर्तन लाने का सतत् प्रयास कर रही है।

स्त्री आत्मकथाओं में उनके सामाजिक–सांस्कृतिक प्रतिरोध के अनेक संदर्भ मिलते हैं जहाँ एक ऐसे समाज की परिकल्पना की गई है जिसमें स्त्री और पुरुष प्रतिद्वन्द्वी नहीं वरन् पूरक की भूमिका में हों। 'लगता नहीं है दिल मेरा' एवं 'और... और... औरत' (कृष्णा अग्निहोत्री), 'कस्तूरी कुण्डल बसै' एवं 'गुड़िया भीतर गुड़िया'

(मैत्रेयी पुष्पा), 'हादसे' 'आपहुदरी' (रमणिका गुप्ता), 'एक कहानी यह भी' (मन्नु भंडारी), 'अन्या से अनन्या' (प्रभा खेतान), 'दोहरा अभिशाप' (कौसल्या बैसन्त्री), 'शिकंजे का दर्द' (सुशीला टांकभौरे), 'आरोह–अवरोह' (सुषम बेदी) इत्यादि आत्मकथाओं में सामाजिक–सांस्कृतिक प्रतिरोध के विभिन्न सन्दर्भ मौजूद हैं।

भारतीय समाज का आधार है, विवाह संस्था। यहाँ विवाह सांस लेने जितना जरूरी माना जाता है। किंतु विवाह के नियम–कायदे, रीति–रिवाज, आचार–विचार कुछ ऐसे हैं कि विवाह के बाद स्त्री का सांस लेना दूभर हो जाता है। आदर्श बहू, आदर्श पत्नी, आदर्श माँ और अन्य अनेक संबंधों के आदर्श रूप में खुद को स्थापित करने के क्रम में स्त्री आजीवन शोषण का शिकार होती है। सुबह सबसे पहले उठ जाना, रात में सबसे बाद में खाना–सोना, सबके लिए खाना बनाना, सबकी सेवा करना आदि जैसे नियमों का पालन करने वाली स्त्री ही इन आदर्श संबंधों की परिभाषा में आती है। किंतु अब स्त्री आदर्श का यह खोल उतारकर फेंक देना चाहती है।

लगता नहीं है दिल मेरा की कृष्णा अग्निहोत्री स्त्री के इस आदर्श रूप का प्रतिरोध करती हैं– "इस पर यदि लड़की से ही केवल यह आशा की जाए कि वह अनेक नए व्यक्तियों से समझौता करे, उनकी आदतों व्यवहार से सामंजस्य बैठाए तो यह स्वाभाविक नहीं। थोड़ी तो इसमें राहत होनी चाहिए कि घर में प्रवेश करते किसी नए सदस्य से ससुराली प्राणी भी थोड़ा सामंजस्य करें। यह क्या कि एकाएक लड़की से अपनी सारी आदतें, स्वभाव, खान–पान, वेशभूषा सभी में परिवार अपनी अपेक्षानुसार परिवर्तन चाहे? आखिर सारे समझौते, बदलाव की आशा एकतरफा क्यों?" बहू कोई देवी नहीं, वह एक साधारण मनुष्य है। वह भी नाराज हो सकती है। ऐसा क्यों है कि एक स्त्री अनेक व्यक्तियों से समझौता करे पर अनेक व्यक्ति मिलकर भी उस एक स्त्री के साथ समझौता न कर सकें।

कस्तूरी कुंडल बसै की कस्तूरी विद्रोही प्रवृत्ति की है। कस्तूरी ब्याह से इनकार करती है। उसने रेशम कुँवर सती की किताब पढ़ी है इसलिए वह जानती है कि पति की चिता पर जलकर मरने वाली स्त्री की लोग पूजा करते हैं। कस्तूरी का ब्याह एक बूढ़े व बीमार आदमी से होना तय हुआ है। उसके मरने के बाद कस्तूरी को सती होना पड़ेगा। कस्तूरी सती होने से डरती है इसलिए ब्याह नहीं करना चाहती। यद्यपि ब्याह होकर रहता है किंतु उस समय में ब्याह न करने की बात कहना भी सामाजिक रीति–रिवाजों के प्रति एक बड़ा प्रतिरोध था।

कस्तूरी की राय में बेटी को ब्याह कर गाय की तरह हाँक देने जैसा कोई दूसरा अपराध नहीं। कस्तूरी हर लड़की को यह हिदायत देती हैं– "मै अब भी कहती हूँ, शादी–ब्याह काठ में पाँव देने जैसा है। प्यार–प्रीति का घूँघट ओढ़कर एक झूठा समझौता। कल के दिन यह लड़की इस बात के लिए भी दोष देने लगे तो मैं इस की नादानी को बुद्धिमानी समझ लूँ? मैं तो समझती हूँ कि यह इसका ही नहीं, हर लड़की के जीवन का मुद्दा है। ऐसा न होता तो बता गौरा कि हम गाँव–गांव क्यों फिरते? 'पढ़ो, सोचो और अपने पाँव खड़ी हो जाओ' का पाठ झूठा है? ब्याह की बेड़ियाँ ही औरत को मौत तक रिहा नहीं होने देती और यहाँ हमसे दहेज जैसी कुप्रथा का जंजाल लिपट गया।" विवाह तो समस्या है ही उसमें दहेज जैसी कुप्रथा का चलन कोढ़ में खाज हो जाता है।

इस समाज में विवाह के बाद स्त्री को ससुराल में कायदे से रहने और परंपराओं के पालन की नसीहते दी जाती हैं। घर–परिवार, पास–पड़ोस, गाँव–समाज में हर कोई समय–समय पर स्त्री को उसके पारिवारिक–सामाजिक कर्तव्यों की याद दिलाता रहता। स्त्री के अधिकारों की बात कोई नहीं करता। अपितु इसी समाज में कस्तूरी जैसी

लोग भी होते हैं। कस्तूरी समाज की इस परंपरागत सोच का विरोध करती हैं। अपनी बेटी मैत्रेयी की विदाई के समय कस्तूरी उसे स्त्री के लिए इन बेड़ियों रूपी परंपराओं को काटने की शिक्षा देती हैं। वे कहती हैं– ''लाली, ब्याह तो हो गया, पर तू नासमझ औरतों की तरह व्यवहार मत करना। पाँव–फाँव मत पूजना किसी के भी। सुन ले कि 'रोटी छुआई' की रस्म, रस्म नहीं, तुझे चूल्हे–चौके से बांधने का मुर्हुत निकलेगा।'' कस्तूरी बेटी के बक्से में कपड़ों की जगह कापी–किताबें भरकर देती है और उसे पी.एच.–डी. करने की सलाह देती है।

कस्तूरी की नजर में ब्याह स्त्री के शोषण प्रमुख कारक है जो धर्म, परंपरा और संस्कृति के नाम पर स्त्री को हमेशा गुलाम बनाए रखना चाहता है। कस्तूरी को साधारण गृहस्थी से चिढ़ है क्योंकि वहाँ स्त्री के लिए सिर्फ खाने, सोने और वंशवृद्धि करने का प्रावधान किया गया है। कस्तूरी की बेटी मैत्रेयी बेटे की चाह में पति, परिवार और समाज के दबाव के कारण तीन–बेटियों को जन्म देती है। कस्तूरी स्त्री के बच्चा जनने की मशीन बन जाने का विरोध करती है। कस्तूरी का मानना है कि बेटा अगर हो भी जाए तो उसमें स्त्री का अपना क्या? इस समाज में आज भी बेटा बाप के नाम से ही जाना जाता है। स्त्री को समाज की इस दकियानूसी सोच के लिए बार–बार अपने शरीर की चीर–फाड़ नहीं करनी चाहिए।

अन्या से अनन्या की प्रभा खेतान प्रेम को ही विवाह मानती हैं। वे बिना विवाह के डॉक्टर सर्राफ के साथ जीवन भर रिश्ता निभाती हैं। विवाह के बारे में अपनी सहेली शांता से बात करती हुयी प्रभा खेतान कहती हैं– ''मेरी राय में विवाह एक ओवररेटेड संस्था है। मैं इस संस्था को ज्यादा तरजीह देने से इंकार करती हूँ, फिर जो कुछ भी है वह मेरे और डॉक्टर साहब के बीच है, बिल्कुल हमारा निजी कोना। सार्त्र, बर्ट्रेंड, रस्सल सभी तो इस संस्था की आलोचना करते हैं।'' प्रभा खेतान गंधर्व विवाह की अवधारणा को मानती हैं। समाज की परवाह न करते हुए वे अपना जीवन डॉक्टर सर्राफ और उनके परिवार के लिए समर्पित कर देती हैं। स्त्री से बिना पूछे स्त्री के जीवन का हर फैसला कर देने वाले परिवार और समाज का वह विरोध करती हैं– ''क्या यही है पढ़ने–लिखने का लाभ कि घर वाले चाहे जिस खूँटे से मुझे बांध आएँ? चुनाव, निर्णय की स्वतंत्रता, प्रतिबद्धता जैसे शब्दों को मैं आज तक सुनती आयी हूँ। आज मैं खुद से पूंछना चाहती हूँ– बस क्या यही है स्त्री की नियति? उसका जीवन?'' डॉक्टर सर्राफ के साथ आजीवन बंधकर रहना उनका अपना निर्णय है। वह एक ऐसा समाज चाहती हैं जिसमें निर्णय की यह स्वतंत्रता प्रत्येक स्त्री के लिए हो।

आमतौर पर समाज में यह देखा जाता है कि स्त्री परिवार और समाज की मान्यताओं का विरोध नहीं कर पाती। खासकर तब जब बात बच्चों की परिवरिश की हो। किंतु रमणिका गुप्ता ने जो संस्थाएँ शुरू की थीं। उन्हें चालू रखने के लिए धनबाद में अकेले रहने का निर्णय लिया। उनके लिए परिवार के साथ कानपुर जाने से अधिक महत्वपूर्ण उन स्त्रियों की आजीविका थी जो इन संस्थाओं पर आश्रित थीं। उनके द्वारा स्वयं सिद्धा होने का संकल्प उनके इस फैसले में नजर आता है– ''मेरी मान्यता थी कि अपने परिवार के लिए तो सभी लोग सब कुछ करते हैं– जो दूसरों के लिए कुछ करे वही इंसान है। मैं धनबाद में ही रह गई। लोगों ने इस फैसले को निर्ममता, क्रूरता और निर्दयता से युक्त बताया। मैंने इसे त्याग और कर्तव्य माना।'' चाहे अपने लिए कुछ करना हो चाहे दूसरों के लिए उन्होंने समाज व लोगों की कभी परवाह नहीं की। सुंदर बच्चे की चाह में पर पुरुष से बच्चा करना हो, पति को तलाक देना हो या राजनीति में सफलता के लिए किए गए समझौते हों, उन्होंने निर्णय हमेशा अपने हाथ में रखा। रमणिका गुप्ता की आत्मकथा स्त्री शुचिता के मिथक को भी तोड़ती हैं। स्त्री शुचिता

के खोखले मुद्दे को ढहाने के लिए उनके जीवन को उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है।

भारतीय समाज में धर्म, परंपरा, संस्कृति, विवाह के साथ ही जाति भी स्त्री शोषण का प्रमुख कारक है। सुशीला टाकभौंरे दलितों में भी सबसे नीची जाति की थीं। उनकी नानी मैला ढोने का काम करतीं। जाति व्यवस्था दलितों के लिए अभिशाप थी। इस अभिशाप का भार उनकी नानी को मैले के रूप में सर पे ढोना पड़ता था। वे भगवान को कोसते हुए कहतीं– ''यह सब तेरी ही करतूत ही है भगवान! मुँह पेट बनायों तो बनायो, जात–पात क्यों बनाई? हम ही क्यों करें नरक सफाई का काम? जिसने रीति बनायी है, कभी वे भी करके देखें, तब पता चलेगों।'' ऊँची जातियों के लोगों के प्रति अपने आक्रोश को व्यक्त करते हुए वे कहतीं– ''हे भगवान, तेरे मुँह में कीड़े पड़ जायें। कोई तोहे पानी देने वालों न रहे। तू तड़फ–तड़फ कर मरे–कोई तेरी मौत मट्टी पर न रोये।'' इस तरह समाज में जाति बनाने वाले लोगों को वह गालियाँ देतीं। यह मनोवैज्ञानिक बात है कि जिस पर गुस्सा आए उसे गालियाँ देने से मन हल्का हो जाता है। सुशीला की नानी और उन जेसे शोषित लोग अपने शोषकों का प्रतिरोध इसी तरह करते हैं। उस समय समाज में नीची जाति के लोगों को गाय पालने की मनाही थी इसलिए सुशीलाजी के घर की गाय को बेचना पड़ा था। कहते हैं कि ये सारे नियम धर्म ग्रंथों में लिखे हैं। सुशीला और उनके गाँव समाज के लोगों ने यह कभी नहीं सोचा कि ये नियम किसने बनाए? आज भी दलित जाति के लोग धर्म, जाति व समाज व्यवस्था के दोहरे वर्ताव का दंश झेल रहे हैं।

सुशीला टाकभौंरे गांधीजी के 'हरिजन उद्धार' को साजिश और भ्रमित करने का जाल समझती हैं जो दलितों को कभी विरोध–विद्रोह की बात सोचने ही नहीं देता था। ''महात्मा गांधी के प्रपंचों में उलझकर ये अछूत हरिजन ही बने रहे। बाबासाहब डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा न तो इन तक पहुँच सकी, न ही ये उन विचारों को समझ सके न ही उन पर कभी अमल कर सके।'' सुशीला जी का मानना है कि दलितों का उद्धार गांधीजी नहीं अपितु अम्बेड़कर की विचार धारा को अपनाने से होगा। वे समाज में व्याप्त घूंघट की प्रथा पर व्यंग्य करती हुए लिखती हैं– ''मामी तो गांव के कुत्ता, बिल्ली से भी घूँघट लेती हैं, ढोर–डंगर से भी घूँघट करती हैं।'' सभी बहुएँ घूंघट लेती थीं और बेटियों को भी उनके भावी जीवन के लिए यही शिक्षा दी जाती थी।

स्त्री–जीवन को प्रभावित करने वाले कारकों में प्रमुख हैं– धर्म, परंपरा एवं संस्कृति। वैसे तो ये समाज को व्यवस्थित करने वाले तत्व हैं, पर जब बात स्त्री की आती है तो ये उसके शोषण के माध्यम बन जाते हैं। प्रत्येक महीने होने वाली एक बेहद प्राकृतिक क्रिया को धर्म ने अशुद्ध होने का परिचायक बना दिया है। मासिक पर धर्म का आवरण चढ़ाकर स्त्री को अछूत बनाने वाली धार्मिकता स्त्री–विरोधी है। कृष्णा अग्निहोत्री जब 'आरक्त' होती हैं तो उन्हें भी धर्म की इस दोहरी मानसिकता का शिकार होना पड़ता जहाँ स्त्री तो अशुद्ध हो जाती है लेकिन उसके उसी अशुद्धपन से निकला हुआ पुरुष पवित्र और श्रेष्ठ बना रहता है। कृष्णाजी की माँ झुझलाते हुए उन्हें रोकती–टोकती हैं– ''ठीक है रसोई में मत आ, पानी मत छूना, करो आराम। अछूत बनाकर आराम थोंपने की यह प्रक्रिया चार दिन तक मुझे काटती ही रहती।'' पीड़ा और दुख के इस कठिन समय में जब स्त्री को स्नेह एवं देखभाल की आवश्यकता होती है तो धर्म द्वारा उसे घृणा एवं उपेक्षा का पात्र बना दिया जाता है। कृष्णा जी धर्म के ऐसे स्वरूप का विरोध करती हैं। कृष्णा अग्निहोत्री ने समाज की इस परंपरा को भी तोड़ा कि स्त्री अपने पिता या माँ की बरसी की पूजा नहीं कर सकतीं। उन्होंने अपनी बहन श्यामा के साथ होशंगाबाद नर्मदा तट पर यह कर्मकांड पूरा किया।

विवाह संस्था स्त्री को एक ऐसे घेरे में कैद कर देती है जहाँ उसके लिए विशेष धर्म का नियमन किया गया है। मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा कस्तूरी कुंडल बसै और गुड़िया भीतर गुड़िया में परंपरा एवं संस्कृति के प्रति विरोध के कई प्रसंग सामने आते हैं। जहाँ यह समाज स्त्री की पुरुष के प्रति एकनिष्ठता को स्त्री के लए स्वर्ग की सीढ़ी बताता है। वहीं पुरुष के लिए एकनिष्ठता का कोई प्रावधान नहीं है। स्त्री के लिए पति और उसके परिवार की सेवा करना और बच्चे पैदा कर उनका पालन–पोषण करना ही हमारे समाज में स्त्री–धर्म माना गया है। तीज, करवाचौथ जैसे त्यौहार यह सुनिश्चित करते हैं कि स्त्री कितनी पतिव्रता है। भूखे रहकर अपना प्रेम दिखाने वाले इन त्यौहारों पर व्यंग्य करते हुए मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं– ''करवाचौथ जैसे त्यौहार हमारे वफादार होने की कसौटी हैं? पतिव्रता का लाइसेंस प्रदान करने वाले ये त्यौहार लोकाचार.... जिनके द्वारा हमारा सतीत्व हर साल रिन्यू होना है।'' स्त्री के लिए निर्धारित धार्मिक व पारंपरिक रीति–रिवाज, कर्मकाण्ड पर वे व्यंग्य करती हैं– ''भारतीय स्त्री को न आर्थिक आत्मनिर्भता सुखी कर सकती है, न चेतना संपन्नता उसकी सहायक हो सकती है। बस उसे पारंपरिक कर्मकांड ही सुखी और सुरक्षित रहने की गांरटी देते हैं।''

भारतीय संस्कृति में स्त्री को देवी, माँ को भगवान और पति को परमेश्वर माना गया है। यहाँ सभी कर्मकांड स्त्री करती है लेकिन उसका फल पुरुष को मिलता है। कैस मजाक है कि पत्नी के भूखे रहने से पति की उम्र बढ़ती है। स्त्री अपने हर रूप में जीवन पयर्न्त त्याग और करूणा की देवी बने रहे, तथाकथित धर्म एवं संस्कृति इस बात की व्यवस्था करते हैं। कभी पति पाने के लिए सोलह सोमवार का व्रत, कभी पति की उम्र के लिए तीज–करवाचौथ का व्रत, कभी बेटे की आयु के लिए जीवित पुत्र का व्रत तो कभी परिवार की सुख शांति के लिए बनाए गए सालभर चलते रहने वाले ये व्रत–त्यौहार स्त्री के सुख नहीं वरन् उसके शोषण की गारंटी देते हैं। स्त्री को यदि अपनी स्थिति में परिवर्तन करना है तो उसे समाज के सांस्कृतिक कारागार को तोड़ना ही होगा।

धर्म का कारोबार डर पर आश्रित होता है। सत्यनारायन की कथा से बीच में उठकर नहीं जाते, प्रसाद के लिए कभी इनकार नहीं करते, व्रत–उपवास को बीच में नहीं छोड़ते, नहीं तो कुछ बुरा हो जायेगा। ऐसे धार्मिक संस्कार व्यक्ति को बचपन से दिए जाते हें। और इस भय के कारोबार को चलाए व जिलाए रखने का पूरा भार स्त्री के सिर मढ़ दिया जाता है। बचपन में प्रभा खेतान के हाथ से गिरकर गणगौर की मूर्ति टूट जाती है। वे पूजा–पाठ की पद्धति का विरोध करते हुए कहती हैं– ''उस दिन के बाद मैंने कभी गणगौर की पूजा नहीं की। पाथर पूजै हरिमिले तो मैं पूजू पहाड़।'' किंतु धार्मिक संस्कारों को न करने परिणाम का भय कहीं न कहीं उनके भीतर मौजूद है। तभी तो वे आगे कहती हैं– ''वैसे गौरा जरूर मुझ पर नाराज हुयी होंगी, गलती मेरी थी कि मैंने माटी की मूरत का सर उलट दिया था। संभव है गौरा की नाराजी से ही मुझे अच्छा घर–वर नहीं मिला।'' प्रभा खेतान जैसी प्रबुद्ध महिला जिसने अपने चुनाव का जीवन जिया, स्त्री संबंधी कई धारणाओं, पूर्वाग्रहों को तोड़ा, वह भी पितृसत्तात्मक संस्कृति के इस भय से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पायीं तो फिर आम स्त्री की बात ही क्या? आज 21वीं सदी में भी धर्म और संस्कृति की ये स्त्री विरोधी परंपराएं खूब फल–फूल रही हैं। स्त्री को यह स्वयं समझना होगा कि वह आगे भी इनका भार ढोना चाहती है या इनसे मुक्त होकर अपनी पहचान बनाना चाहती है ताकि यह समाज देवी मानकर उसका शोषण करने की बजाय व्यक्ति समझकर उसका सम्मान करे।

भारतीय समाज में धर्म, ईश्वर, भाग्यवाद को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। कौशल्या वैसंती के भाई–भाभी ने अपने घर में भगवानों की फौज खड़ी कर रखी थी। कौशल्या के पूछने पर कि तुम यह सब क्यों

करती हो? उनकी भाभी कहती हैं– ''ब्राह्मणों के घर 'देव्हारा' होता है, उनको दिखाने के लिए हमने भी 'देव्हारा' बनाया कि हम भी श्रेष्ठ हैं।'' उन्हें आश्चर्य होता है कि पूजा–पाठ करने से आदमी कैसे श्रेष्ठ होता है। उनका मानना है कि धर्म और संस्कृति की श्रेष्ठता धारण करने वाले ब्राह्मणों से टक्कर लेने के लिए पढ़ाई–लिखाई होनी चाहिए न कि उनका अंधानुकरण। ज्ञान रूपी हथियार से ही इन तथाकथित श्रेष्ठ लोगों से टक्कर ली जा सकती है क्योंकि धर्म, परंपरा एवं संस्कृति ने तो बिना तर्क के, पहले ही इन्हें श्रेष्ठ घोषित कर दिया है।

कौशल्या बैसन्त्री धर्म के प्रति तार्किक दृष्टिकोण रखती हैं। उनके पड़ोसी एक ब्राह्मण परिवार ने एक बार बाहर जाते हुए उनसे कहा कि जरा घर का खयाल रखना। कौशल्या जी ने व्यंग्यात्मक लहजे में प्रश्न किया– ''आपने दरवाजे पर भगवानों का पहरा बैठा दिया है, भगवानों की पूरी पलटन आपके घर की रक्षा नहीं करेगी?'' वे सवर्णों के धार्मिक आडम्बर का विरोध करती हैं जो स्वार्थ होने पर जाति–पाँति को भूल जाते हैं और स्वार्थ नहीं होने पर अपनी श्रेष्ठता के दंभ को धारण किए रहते हैं।

भारतीय समाज में वेद–पुराण, उपनिषद्, स्मृति आदि को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। इनमें मनुस्मृति में अधिकांश स्त्री विरोधी विधान किए गए हैं। मनुस्मृति के विषय में सुशीला टाकभौंरे अपनी आत्मकथा 'शिंकजे का दर्द' में कहती हैं– ''मनुस्मृति में स्त्रियों को हमेशा पिता, भाई, पति और पुत्रों के संरक्षण में रहने के निर्देश दिए गए हैं। स्त्रियों को शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर बनाकर रखा जाता था।'' स्त्री को कमजोर करने में व्रत–त्यौहार विशेष भूमिका निभाते हैं। रक्षाबंधन एक ऐसा ही त्यौहार है जहाँ बहन अपने भाई को राखी बांधकर रक्षा का वचन लेती है। समाज में यह मान्यता है कि स्त्री कमजोर होती है और पुरुष ही उसकी रक्षा कर सकता है। किंतु सुशीला जी का यह कहना है कि बहने यदि सबल हों तो उन्हें किसी रक्षक की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इसके लिए स्त्री को स्वयं आगे आना होगा नहीं तो जिस प्रकार धर्म के नाम पर क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र ब्राह्मणों की उच्चता की रक्षा करते रहे हैं, उसी प्रकार स्त्री, पुरुष की श्रेष्ठता की रक्षा करती रह जायेगी।

सामाजिक धार्मिक धारण है कि बेटा नहीं होगा तो मरने पर मुँह में पानी, मरने पर अग्नि, पितरों को पानी कौन देगा? मुक्ति कैसे मिलेगी। समाज की इस धारण पर सुशीला जी सवाल उठाती हैं– ''समाज में पितृसत्ता है, इस कारण पुत्र ही पिता का वंशज और कुलदीपक कहलाता था। यह कैसी संस्कृति थी? किसने इसे पूरे समाज पर थोपा? कि बेटियाँ प्रिय रहकर भी प्रिय नहीं रह पाती थीं।'' स्त्री खुद भी पुत्र को अधिक महत्व देकर पितृसत्ता को पोषित करती है। यदि पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था व संस्कृति के शोषण से मुक्त होना है तो सर्वप्रथम उसे अपनी यह स्त्री विरोधी सोच बदलकर एक दूसरे का सम्मान करना होगा। सुशीला टाकभौंरे ने विवाह की परंपरागत पद्धति का विरोध कर अपनी बेटी पिंकी का विवाह बौद्ध पद्धति से किया। साथ ही यह एक अंतर्जातीय विवाह भी था।

समाज की अनेक कुप्रथाएँ आज लगभग समाप्त हो गयी हैं लेकिन दहेज प्रथा, घूघंटप्रथा, जातिप्रथा जैसी कई बेड़ियाँ हैं जो अभी काटनी बाकी हैं। इसके लिए विवाह संस्था और उसके आचारों–विचारों में अमूल–चूल परिवर्तन की आवश्यकता है। विवाह की स्त्री विरोधी मान्यताओं, परंपराओं, आदि को यदि स्त्री के अनुकूल करते हुए अधिक मानवीय बना दिया जाये तो विवाह को स्त्री के शोषण का नहीं वरन् उनके संवर्धन का वाहक बनाया जा सकता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पितृसत्तात्मक समाज एवं संस्कृति में मनुष्य के लिए जो विधान किए

गए हैं, उनमें अधिकांश स्त्री विरोधी ही हैं। पुरुष को श्रेष्ठ सिद्ध करती इस संस्कृति में स्त्री के लिए जगह बहुत कम है। यदि स्त्री को अपनी जगह और पहचान बनानी है तो संस्कृति के कठघरे से बाहर निकलना होगा। आज भी समाज में परंपरा के रूप में स्त्री न तो संपत्ति की अधिकारी हो सकती है, न ही घर की मुखिया, शिक्षित, स्वाबलंबी संपन्न होते हुए भी वह घर की मालकिन नहीं होती है। पुरुष अपनी सत्ता को कभी ताकत से, कभी समझदारी से और कभी छलकपट से हमेशा अपने अधिकार में रखता आया है। स्त्री को पुरुष का यह छल समझना होगा। पुरुष द्वारा स्त्री को थोड़ी सी सहूलियत दे देने के बदले उसके अधिकारों को मार लेने की नीति ने ही आज तक संसद में स्त्री (50 प्रतिशत आबादी) के 33 प्रतिशत आरक्षण को रोके रखा है।

सन्दर्भ

कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नहीं है दिल मेरा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ.100
मैत्रेयी पुष्पा, कस्तूरी कुंडल बसै, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2017, पृ.106
वही, पृ.242
प्रभा खेतान, अन्या से अनन्या, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ.85
वही, पृ.87
रमणिका गुप्ता, हादसे, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ.27
सुशीला टाकभौंरे, शिकन्जे का दर्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ.26
वही, पृ.27
वही, पृ.28
वही, पृ.39
कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नहीं है दिल मेरा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ.36
मैत्रेयी पुष्पा, गुड़िया भीतर गुड़िया, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2016, पृ.245
वही, पृ.247
प्रभा खेतान, अन्या से अनन्या, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ.32
वही, पृ.32
कौशल्या बैसन्त्री, दोहरा अभिशाप, परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2015, पृ.111
वही, पृ.115
सुशीला टाकभौंरे, शिकन्जे का दर्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ.34
वही, पृ. 39

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 350-353
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हमारी शिक्षा पद्धति और हिन्दी भाषा

–डॉ. सुशील कुमार

संस्कृत अध्यापक।

हिन्दी भाषा का इतिहास लगभग 1000 वर्ष पुराना माना जाता है । वस्तुतः प्राकृत की अंतिम अवस्था श्अपभ्रंशश से ही हिंदी भाषा का आविर्भाव स्वीकार किया गया है । अपभ्रंश के भी कई रूप मिलते हैं और उनमें से सातवीं शताब्दी के लगभग पद्य रचना आरंभ हुई थी। हिंदी भाषा और साहित्य के विद्वान अपभ्रंश की अंतिम अवस्था श्अवहट्टश से ही हिंदी भाषा का उद्भव मानते हैं । श्चंद्रधर शर्मा गुलेरीश कवि ने भी इसी अवहट्ट को ही श्पुरानी हिंदीश का नाम दिया है। उस समय की जो रचनाएं प्राप्त होती हैं, वे साहित्य की दृष्टि से श्दोहाश रूप में ही उपलब्ध हैं और उनके विषय – उपदेश, नीति, धर्म आदि मिलते हैं । राजा के आश्रित विद्वान और कवि अपने काव्य में शौर्य, श्रृंगार, नीति, पराक्रम आदि के वर्णन को ही अधिक महत्व देते थे। इसी परंपरा में शौरसेनी अपभ्रंश या प्राकृत भाषा भी हिंदी में कई वर्षों तक बोली गई। पुरानी अपभ्रंश भाषा और बोलचाल की भाषा का प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता गया । इसी भाषा को साहित्यकार श्विद्यापतिश ने देसी भाषा का नाम दिया है किंतु यह बताना सरल नहीं है कि श्हिंदीश शब्द का प्रयोग कब और किस प्रांत में आरंभ हुआ, हां यह कहा जा सकता है कि आरंभ में हिंदी शब्द का प्रयोग विदेशी मुसलमानों ने किया था। उस समय श्हिन्दीश शब्द का तात्पर्य अर्थ था – भारतीय भाषा ।

आज जो हिंदी प्रयोग की जाती है वह लगभग 3500 वर्ष पुरानी है । लगभग 1500 ईसा पूर्व हिंदी की जननी लौकिकसंस्कृत भाषा का आरंभ हुआ और 1900 ई० में हिंदी को खड़ी बोली के रूप में लिखना – पढ़ना प्रारंभ किया गया । वास्तव में मनुष्य का स्वभाव है कि वह कम मेहनत करके अधिक लाभ प्राप्त करना चाहता है और कठिन शब्दों को सरल शब्दों में परिवर्तित करता रहता है। यथा – सत्येंद्र को सतेंद्र और सतेंद्र को सतेन तथा सतेन को सते , यदि संभव हो तो सत्तू बोलकर ही काम चलाना चाहता है और यह कम प्रयास ही हिंदी भाषा के प्रारम्भ होने का कारण है।

प्राचीन समय में गुरुकुलों में संस्कृत या हिंदी भाषा में ही अध्ययन – अध्यापन कार्य होता था। इन गुरुकुलों के कारण आंग्ल भाषा का प्रचार – प्रसार नहीं बढ़ रहा था। भारतीय उस समय कॉन्वेंट स्कूलों में अपने बच्चों को नहीं पढ़ाते थे। धीरे–धीरे इन स्कूलों का प्रभाव समाज में बढ़ता गया और गुरुकुलों को सरकार ने मान्यता देना बंद कर दिया । स्वतंत्र भारत में भी इस दशा में सुधार नहीं हुआ और सरकार ने गुरुकुलों की दशा में कोई सुधार नहीं किया। आज भी यह स्थिति है कि कुछ गुरुकुलों में पढ़े हुए विद्यार्थियों को सरकारी नौकरी में योग्य नहीं माना जाता । इसका कारण उन गुरुकुलों में आंग्लभाषा विषय का न होना बताया जाता है। आज

भी यदि हिंदी भाषा को जीवित रखना है तो पुनरू गुरुकुल परंपरा पर आना होगा । जिससे संस्कृत भाषा का भी विकास होगा और यदि संस्कृत भाषा का विकास हुआ तो हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार के क्षेत्र में भी विशेष उन्नति होगी क्योंकि संस्कृत भाषा ही हिंदी भाषा की जननी है। मुगलकाल के पश्चात उर्दू भाषा का प्रभाव अधिक बढ़ता जा रहा है, जिससे हिंदी भाषी क्षेत्रों में भी उर्दू बोली जाने लगी और हिंदी भाषा में भी उर्दू के शब्दों का प्रयोग होने लगा । जिससे हिंदी भाषा की शुद्धता का स्तर कम होता जा रहा है । विदेशों में भी गुरुकुल परंपरा से शिक्षा प्रदान करने का कार्य अति तीव्र गति से बढ़ता जा रहा है । डॉव सतीश प्रकाश द्वारा संचालित न्यूयॉर्क और गुयाना के महर्षि दयानंद गुरुकुल इसके नूतन उदाहरण हैं ।

भारतीय संविधान की धारा 30। के अनुसार हिंदू अपने शिक्षण संस्थाओं में अपने धर्म की शिक्षा नहीं दे सकते, सरकारी या निजी कॉलेज, निजी विद्यालय, निजी गुरुकुल आदि नहीं खोल सकते किंतु मुसलमान संविधान की धारा 30 के अनुसार अपने धर्म के प्रचार – प्रसार और शिक्षा के लिए संस्थाएं चला सकते हैं, निजी विद्यालय खोल सकते हैं, मदरसे चला सकते हैं। धर्मनिरपेक्ष देश होते हुए भी सभी धर्मों को अलग–अलग अधिकार दिए गए हैं। इस प्रकार भारतीय संविधान भी इस विषय में भेदभाव की दृष्टि से बना हुआ है, जिसमें सुधार की आवश्यकता है । जब कोई व्यक्ति अपने बच्चों को अपने धर्म और संस्कृ ति की शिक्षा ही नहीं देगा तो भावी पीढ़ी को अपने धर्म, संस्कृति, भाषा और साहित्य का ज्ञान कैसे होगा और वे अपनी भाषा और साहित्य के प्रति हीन भावना के शिकार होते चले जाएंगे। आजकल फिल्म उद्योग भी पीव केव जैसी फिल्मों का निर्माण कर रहा है। जिससे हिंदी भाषा और हिन्दू धर्म के प्रति बच्चों का दृष्टिकोण बदलता जा रहा है और यह एक प्रकार से हिंदी भाषा के ह्रास का कारण है ।

हरियाणा प्रदेश में अति प्राचीन काल से ही गुरुकुल चलते आ रहे हैं परंतु समय के साथ–साथ इनकी संख्या कम होती जा रही है। हिंदी भाषा के क्षेत्र में यहां के गुरुकुलों का विशेष योगदान है । हरियाणा में गुरुकुल नहीं होते तो हिंदी भाषा इतनी समृद्ध नहीं होती, यदि यह कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि यहां के आचार्यों ने आंग्ल भाषा और उर्दू भाषा का विरोध करते हुए संस्कृत भाषा और हिंदी भाषा के विकास के लिए दिन – रात मेहनत की है। जिसके परिणाम स्वरूप आज इस क्षेत्र में हिंदी भाषा बोली जाती है । हरियाणवी भाषा या बोली भी संस्कृत के अधिक नजदीक है । यहां की भाषा में अनेक शब्द ऐसे मिलते हैं, जो सीधे संस्कृत से ग्रहण किए गए हैं। यथा – श्शुशाश शब्द संस्कृत के श्शशकरूश शब्द का परिवर्तित रूप है ,जिसका हिंदी भाषा में अर्थ है– खरगोश । इसी प्रकार श्मूषाश शब्द संस्कृ त के श्मूषकरूश शब्द का परिवर्तित रूप है, जिसका हिंदी भाषा में अर्थ है– चूहा ।

हरियाणा में यदि देखा जाय तो कितने घरों में अगली पीढ़ी के बच्चे रह रहे हैं और कितने बाहर निकलकर नोएडा, गुड़गांव, पूना, बेंगलुरु, चंडीगढ़, बॉम्बे, कलकत्ता, मद्रास, हैदराबाद जैसे बड़े शहरों में जाकर बस गये। 15 – 20 वर्ष पूर्व तक जिन गली मोहल्लों में 20 – 20 विद्यार्थी विद्यालय में पढ़ने जाते थे और दोस्तों के संग मस्ती करते नजर आते थे। आज उस स्थान पर अधिकतर घरों में एक चुपचाप सा सूनापन देखने को मिलता है, न कोई आवाज़, न बच्चों का शोर, बस कुछ घरों के बाहर या खिड़की में आते जाते लोगों को ताकते हुए बूढ़े जरूर मिलते हैं। आखिर इन सूने होते घरों और खाली होते मुहल्लों के क्या कारण हैं ?

इस भौतिकवादी युग में प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसके एक बच्चा या अधिक से अधिक दो बच्चे हों और बेहतर से बेहतर पढ़ें– लिखें । उनको लगता है या फिर दूसरे लोग उसको ऐसा अनुभव कराने लगते हैं कि छोटे शहर या कस्बे में पढ़ने से उनके बच्चे का भविष्य खराब हो जायेगा या फिर बच्चा बिगड़ जायेगा। बड़े शहरों के होस्टलों में यही सोचकर बच्चे भेजे जाते हैं। दिल्ली और छोटे शहर / गांव में एक कक्षा का पाठ्यक्रम और पुस्तकें लगभग समान होते हैं परन्तु बड़े शहर में बच्चे को पढ़ने के लिए भेजने का मानसिक दबाव आ जाता है। बाहर भेजने पर भी मुश्किल से 1: बच्चे ही पी एम टी या आई आई टी आदि परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो पाते हैं। इस के बाद वही माता – पिता शेष बच्चों का पेमेंट सीट पर मेडिकल, इंजीनियरिंग या फिर बिज़नेस मैनेजमेंट में प्रवेश कराते हैं। 4 – 5 साल बाहर पढ़ते – पढ़ते बच्चे बड़े शहरों के वातावरण में ढल जाते हैं तथा वहीं आजीविका ढूंढ लेते हैं एवं सहपाठियों से शादी भी कर लेते हैं। अपनी इज्जत बचाने के लिए माता – पिता को शादी के लिए हां करनी ही पड़ती है , अन्यथा शादी तो वे अपने इच्छित साथी से ही करेगें और इसके बाद त्यौहारों पर ही घर आते हैं। माता – पिता भी सभी के सामने गौरव से अपने बच्चों की प्रशंसा करते हैं। धीरे धीरे माता – पिता बूढ़े होते जाते हैं और बच्चे लोन लेकर बड़े शहरों में फ्लैट/ मकान खरीद लेते हैं। अपना घर शहर में होने पर त्योहारों पर भी जाना बंद हो जाता है। कभी – कभी जरूरी शादी में ही आते हैं चूंकि शादी ब्याह तो बेंकट हाल में होते हैं इसलिए मुहल्ले और घर जाने की भी ज्यादा अवश्यकता नहीं पड़ती है। यदि शादी में कोई मुहल्ले वाला पूछ भी ले तो बच्चों की पढ़ाई का बहाना देकर बोल देते हैं कि अब यहां आने का समय कम लगता है। फ्लैट में तो इतना स्थान होती नहीं कि बूढ़े या बीमार माता – पिता को साथ में रखा जाये। वे पैतृक मकानों में ही रह जाते हैं। अब प्रॉपर्टी डीलरों की गिद्ध जैसी नजर इन खाली होते मकानों पर रहती है और वो इन बच्चों को उनके मकान की कीमत बताकर कहते हैं कि कैसे घर बेचकर फ्लैट का लोन खत्म किया जा सकता है तथा एक प्लाट भी लिया जा सकता है। माता – पिता को भी बेटे – बहू के साथ बड़े शहर में रहकर आराम से रहने के सपने दिखाकर मकान बेचने को तैयार कर लेते हैं। लगभग सभी के बच्चे बाहर निकल गए हैं। अब वो वापस नहीं आयेंगे । इंग्लिश मीडियम स्कूल नहीं है, हॉबी क्लासेज नहीं है, आई आई टी/पीएमटी की कोचिंग नहीं है, मॉल नहीं है, माहौल नहीं है, कुछ नहीं है यहां, इनके बिना जीवन कैसे चलेगा? परन्तु यूपीएससी, सिविल सर्विसेज का परिणाम देखने से पता चलता है कि सबसे ज्यादा उम्मीदवार ऐसे छोटे शहरों/गावों से ही मिलेंगे। बस मन की संतुष्टि की बात है।

बड़े मॉल, बड़े विद्यालय, बड़े मकान सिर्फ इनसे तो ज़िन्दगी नहीं चलती। एक वक्त अर्थात् बुढ़ापा ऐसा आता है, जब अपनों की ज़रूरत होती है। दिल्ली, मुंबई, कोलकता, पुणे, चंडीगढ़, नौएडा, बेंगलुरु में देखा जाता है कि वहां शव यात्रा चार कंधों पर नहीं बल्कि एक खुली गाड़ी में शीशे की केबिन में सीधे श्मशान में जाती है। मुश्किल से एक – दो रिश्तेदार आते हैं । वास्तव में खाली होते मकान, ये सूने होते मुहल्ले, इन्हें सिर्फ प्रोपर्टी की नज़र से नहीं देखना चाहिये अपितु जीवन की खोती हुई जीवनता की नज़र से देखे तो सभी पड़ोसी विहीन और वीरान हो रहे हैं। आज गांव सूने हो चुके हैं। खाली घर आज भी राह देखते हैं पर कोई नहीं आता द्य इस प्रकार वहां की भाषा, धर्म और संस्कृति सब बदल जाते हैं। व्यक्तियों को समझना चाहिए और जहां तक सम्भव हो अपने स्थान पर ही रहना, बसना चाहिए ताकि वहां की

भाषा और संस्कृति नष्ट न हो तथा छोटे शहरों और गांवों की भाषा, सभ्यता, संस्कृति और साहित्य की रक्षा की जा सके। पढ़ने वाले विद्यार्थी तो सब जगह पढ़ लेते हैं, इस बात में कोई सन्देह नहीं है।

आज इंटरनेट का युग है । हिंदी भाषा की जितनी मांग इंटरनेट पर है, उतनी उपलब्धता नहीं है परंतु जिस गति से हमारे देश में इंटरनेट का विकास हो रहा है, उसी गति से हिंदी भी इंटरनेट पर छा रही है । समाचार पत्रों से लेकर हिंदी ब्लॉग आदि अपनी उपस्थिति अच्छी प्रकार से दर्ज करा रहे हैं । गूगल को भी इस विषय में धन्यवाद देना चाहिए, जिसने हिंदी भाषा में खोजने की उपलब्धता प्रदान की तथा विकिपीडिया ने भी हिंदी की गुणवत्ता और महत्ता को समझते हुए बहुत सारी सामग्री को हिंदी में उपलब्ध कराना आरंभ कर दिया, जिससे हिंदी भाषा में सभी जानकारी सुलभ हो सकी । आज हिंदी भी इंटरनेट की एक अति लोकप्रिय भाषा बनी हुई है । आजकल व्यक्ति अपने विचार और लेखन आदि सामग्री हिंदी भाषा में इंटरनेट पर ज्यादा खोजने लगे हैं । वह दिन अधिक दूर नहीं है, जब हिंदी भाषा इंटरनेट पर खोजी और प्रयोग की जाने वाली सभी भाषाओं में अग्रगण्य होगी।

मो 8295866975

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 354-357

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नारी लेखन में उभरता 'नई स्त्री' का स्वरूप

–डॉ सुनीता देवी

सहायक प्रोफेसर हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय नलवा, हिसार।

नारी शब्द सुनते ही अंतर्मन में हलचल सी होने लगती है भावनाओ का ज्वर उमड़ने लगता है , संवेदनाए हिलोरे लेने लगती है भारतीय संस्कृति में नारियों को जहाँ माता , बहन और पुत्री आदि संबंधो के स्वरूप में अत्यंत सम्माननीय दर्जा दिया गया है वहीं पत्नी के रूप में भी उन्हें भोग्या न समझ कर अर्धांगिनी माना गया है सर्वविदित है कि वक्त बड़ा ताकतवर होता है समय परिवर्तन के साथ ही विदेशी आक्रमणकारियों ने हमारे देश पर आधिपत्य स्थापित कर लिया उसके पश्चात् कुछ विशेष अवधि तक उनके प्रभाव के कारण ऐसा अंधकार का युग हमारे समाज को आच्छादित कर गया कि सभी अपनी परम्पराए ही भूल गये, हमारी संस्कृति में अनेक विकृ तिया आ गई और धीरे–धीरे नारी समस्या में घिर गई द्य बचपन से ही उसे अहसास कराया जाने लगा कि वह पराई है और उसे दूसरे घर जाना है पिता का घर उसका घर नही है फिर ससुराल आकर उसे पता चलता है कि यह घर भी उसका घर नही है इस प्रकार तो वह सर्वथा घर–विहिन है

शिक्षा के प्रचार–प्रसार के कारण नारी कि स्थिति में सुधर हुआ है आज नारी कि सी भी क्षेत्र में पुरुष से पीछे नही है अगर यह कहा जाए कि कुछ क्षेत्रों में तो पुरुष को भी पछाड़ रही है तो अतिश्योक्ति नही होगी आज नारी का स्वरूप बदल रहा है वह घर के साथ–साथ बाहरी कार्यो उचित ढंग से संभाल रही है लेकि न समाज नारी के इस स्वरूप को स्वीकार नही कर पा रहा है और यही कारण है कि स्त्री लेखन में उभरते नई स्त्री के स्वरूप को लेकर साहित्य में कुनमुनाहट शुरू हो गई है

स्कूल,कॉलेज,दफ्तर,सड़क,बस और तमाम सार्वजानिक जगहों पर अब तक केवल पुरुषो का ही एकाधिकार रहा है लेकि न विश्वभर कि नारिया अब इन रुढियो को धता बता रही है इंग्लैंड के गिरजाघरो में अब महिला पादरियों के रूप में नारी उभर रही है अभी तक पुरुष पादरियों पर ही पुरुष श्रेष्ट्तव कि स्वयम्भू मुहर धर्म के ठेकेदारों ने लगाई थी द्य भारत में भी वैदिक काल के बाद एक बार पुनः आध्यात्मिक क्षेत्र में महिलाओ कि श्रेष्ठता स्वीकार कर ली गई है हरिद्वार में हुए महाकुभ के अवसर पर दो महिलाओ को महामंडलेश्वर का दर्जा दिया गया साधवी अमिता गिरी तथा साधवी दुर्गा गिरी सहित अब तक छरू महिलाओ को महामंडलेश्वर कि पदवी से विभूषित कि या गया है पुरुष का एकाधिकार टूटने से पुरुष लेखक समाज में हडबडाहट हुई है दूसरी तरफ कुछ लेखक बाहर आई इस औरत को स्वीकार करने का प्रयत्न भी कर रहे है द्य

स्वीकृति और अस्वीकृति कि यह स्थिति औरत ने घर में झेली है और बाहर भी द्य शायद इसीलिए औरत कि तुलना आटे के दीये से कि जाती है 'अन्दर रखो तो चूहा खाए , बाहर रखो तो कोआ' द्य

"स्त्री लेखन में नारी का स्वरूप कुछ इस प्रकार प्रचारित–प्रसारित कि या जा रहा है कि आज स्त्री बेचारी नही रही अपितु वह हिंसक हो गई है कुलटा हो गई है, बदले कि भावना से ग्रस्त हो गई है द्यऐसे स्त्री विरोधी तथ्यों से हम तनिक भी सहमत नही है हमें अपने व्यवहार के दोगलेपन से बाहर आना होगा क्योकि नारी अपने अपने हर रूप में त्याग कि प्रतिमा है नारी का ह्रदय धरती कि तरह विशाल है जिन्दगी के तूफान व कड़ी धूप इसलिए चुपचाप सह लेती है कि उसकि परिवार पर कोई आंच न आए लेकि न इसका अर्थ यह हरगिज नही है कि वह अपने उपर होने वाले अत्याचारों को समझती नही है धरती से फूटने वाले ज्वालामुखी शायद उसके विद्रोह के ही प्रतीक है

स्त्री विमर्श उस साहित्यक आन्दोलन को कहा जाता है जिसमे स्त्री अस्मिता को केंद्र मानकर संगठित रूप से स्त्री कि रचना कि गई स्त्री विमर्श को अंग्रेजी में फेमिनिज्म कहा जाता है प्रारम्भ में इसे नारीवाद या मातृसत्तात्मक कहा जाता था द्य स्त्री विमर्श का प्रारम्भ हिंदी साहित्य में छायावाद से स्वीकार करते है अपने निबन्ध श्रृंखला कि कड़ियों में महादेवी वर्मा ने नारी सशक्तिकरण को अभिव्यक्ति दी है द्य हम जब स्त्री के विषय में कुछ जानने का प्रयास करते है तो हमें अधिकांश रूप से पुरुष रचित साहित्य ही पढने को मिलता है द्य स्त्री विमर्श कि मजबूत व सशक्त गूंज हमें 1960 के आस पास उषा प्रियम्वदा ,मनु भंडारी ,शिवानी और कृष्णा सोबती आदि महिला लेखको के साहित्य मिलती है द्य

तीसरे सप्तक कि प्रसिद्ध कवियत्री कीर्ति चौधरी का काव्य संग्रह 'खुले हुए आसमान के निचे' स्त्री विमर्श कि जीती जागती तस्वीर है उनकि कविता "सीमादृरेखा" स्त्री कि अस्मिता को खोज रही है उसे कोई बंधन स्वीकार्य नहीं द्य वह सीमा रेखा को पार करके रावण से मुकाबला करने के बारे में सोचती है वह बन्धनों से मुक्ति के लिए छटपटा रही है द्य कीर्ति चौधरी कि तरह ही कात्यायनी कि कविता "सात भाइयो के बीच चंपा" धरातल से जोडती है अज्ञेय ने अपनी कविता "दु:ख मांजता है" में यह बताने का प्रयास कि या था कि दु:ख में व्यक्ति का व्यक्तित्व निखर जाता है लेकि न कात्यायनी का कहना है कि दु:ख यदि मांजता है तो वअह सबसे ज्यादा स्त्री को मांजता है मंजी हुई नारी की संघर्ष क्षमता में ही उसकि पहचान बनाने कि शक्ति होती है द्य

स्त्री के प्रश्न हाशिए के प्रश्न नहीं है बल्कि जीवन धरा के केंद्रीय प्रश्न है किन्तु हिंदी धरा कि मुख्यधारा जिसे वर्चस्वशाली पुरुष लेखन भी कहा जा सकता है स्त्री प्रश्नों अथवा स्त्री मुद्दो कि लगातार उपेक्षा कि जाती रही है इसका अभिप्राय यह न समझा जाय कि स्त्री अथवा स्त्री प्रश्न सिरे से गायब है अपितु कहने का तात्पर्य है कि स्त्री का वर्णन ,उसका बखान या काम वासना के संदर्भ में है द्य

यदि साहित्य का कोई सामाजिक दायित्व है तो हिदी साहित्य में स्त्री विमर्श के नाम पर स्त्री देह को बेचने व स्त्री को सेक्सुअल ऑब्जेक्ट अथवा मार्किट के उत्पाद के रूप में तब्दील कर दिए जाने कि जो पूंजीवादी पितृसत्तात्मक बाजारवादी रणनीति काम कर रही है उस मानसिकता से यह मुक्त क्यों नही है द्य

साहित्य में स्त्री लेखन कि विभिन्न कहानियो, कविताओ तथा आत्मकथाओ में स्त्री कि दैहिक पीड़ा से परे जाकर उसकी वर्गीय, जातीय एवं लैंगिक पीड़ा का वास्तविक स्वरूप प्रतिबिंबित क्यों नही हो पा रहा ? स्त्री साहित्य का मूल्यांकन करते समय हिंदी के आलोचको का स्त्री के प्रति आलोचना में उपेक्षापूर्ण रवैया क्यों मौजूद है द्य अन्तरविषयक अध्ययन होने के कारण स्त्री विमर्श अन्य विषयो के साथ ज्ञानात्मक सम्बन्ध भी कायम करता है द्य नारी के प्रश्नों के प्रति अकादमिक जगत में जगह कायम करने हेतु भी स्त्रीवाद को पढ़ाया जाना अति

आवश्यक है द्य
छायावाद काल से माना जाता है कि महादेवी वर्मा कि कविताओ में वेदना का विभिन रूप देखने को मिलता है द्यप्रेमचन्द से लेकर राजेंद्र प्रसाद तक अनेक पुरुषो ने नारी समस्या को उकेरा है लेकि न उस रूप में नही जिस रूप में स्वयं महिला लेखिकाओ ने लेखनी चलायी है द्यबिना नारी के जगत के कल्याण कि कोई संभावना नही है, पक्षी के लिए एक पंख से उड़ना संभव नही है द्य
सुशीला ताकभौर के काव्य संग्रह स्वातिबुन्द और खरे मोती तथा यह तुम भी जानो काफी चर्चित है द्य
भारत सरकार ने 2001 को महिलाओ के सशक्तिकरण वर्ष के रूप में घोषित कि या आठवे दशक के महिला लेखिकाओ में उल्लेखनीय महिला लेखक है दृ ममता कालिया, कृष्णा, चित्रा मुद्दल, माणिक मोहनी, मृदुला गर्ग, मंजुला भगत, मैत्रेयी पुष्पा,नासिरा शर्मा,दीप्ती खंडेलवाल,कुसुम अंचल आदि द्य
स्त्री कि दशा पर अनेक समाज सुधारको ने चिंता व्यक्त की है और यथा संभव दूर करने का प्रयास भी किया है द्य
जिससे नारी कि स्थिति में परिवर्तन हुआ है द्य ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी,रामकृष्ण मिशन तथा अनेक सरकारी संगठनो ने नारी शिक्षा पर जोर दिया द्य जमीं से आसमां तक दृपृथ्वी से चाँद तक (कल्पना चावला , सुनीता विलियम) उनकि पहुँचे है द्य
बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में स्त्रीवादी विचार को सुअवसर मिला द्य भूमंडलीकरण ने अपने तमाम अच्छाईयो एवं बुराईयों के साथ सभी वर्ग की शिक्षित स्त्रियों को घर से बाहर निकलने का अवसर दिया द्य
स्त्री दृविमर्श वस्तुतरू स्वाधीनता के बाद कि संकल्पना है, स्त्री के प्रति होने वाले शोषण के खिलाफ संघर्ष है द्य डॉ.संदीप रणभिरकर के शब्दों में दृ"स्त्री विमर्श स्वयं कि स्थिति के बारे में सोचने और निर्णय करने का विमर्श है द्य"
तुलसीदास जी ने "ढ़ोल गवार, शुद्र,पशु,नारी दृसकल ताड़ना के अधिकार "कहकर नारी को प्रताड़ना के पात्र समझा है तो मैथलीशरण गुप्त जी ने "अबला जिअवन हरा तुम्हारी यही कहानी,आँचल में दूध,"कहकर नारी कि स्थिति को चित्रित कि या है पप्रसाद ने "नारी तुम केवल श्रद्धा हो" तो सेक्सपियर ने "दुर्लाब्ता तुम्हारा नाम ही नारी है" आदि कहकर नारी अस्तित्व को संकीर्ण कि या है द्य
हिंदी में स्त्री विमर्श मात्र पूर्वाग्रहों या व्यक्तिगत विश्वासों तक ही सिमित नही है उसके और भी कुछ आयाम है और इन आयामों को भी तलाशने की जरूरत हमारे आलोचकों को है न कि सिर्फ चंद नामो के आधार पर एक खास दायरे में बांधने कि द्य

निष्कर्ष रू–

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि नारी को अपनी मर्यादा में रहते हुए घर और बाहर में सामंजस्य स्थापित करना होगा और अपनी शक्ति का समिचित प्रयोग करना होगा, इसके साथ साथ पुरुष को भी नारी के सामर्थ्य और क्षमताओ से वाफिक होकर अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना होगा, तभी स्त्री लेखन में उभरते नई स्त्री के स्वरूप को उचित दिशा मिल सकेगी
महिला लेखिकाओ कि लड़ाई डॉ. ज्योति किरण के गद्यांश में देखी जा सकती है अतः निष्कर्षतरू कहा जा

सकताहै कि नारी आदिकाल से पीड़ित एवं शोषित रही है पुरुष प्रधान समाज मान मर्यादा कि आड़ में सदा उसे दबाकर रखना चाहा द्य कभी घर की इज्जत कहकर तो कभी देवी कहकर चार दिवारी के अन्दर रखा द्य इन्ही परम्परागत पितृसत्तात्मक बेड़ियों को लांघने की लड़ाई है – स्त्री–विमर्श द्य

संदर्भ सूची

आजकल रू मार्च 2013 दृ पृष्ठ 20

पंचशील शोध दृ समीक्षा–पृष्ठ 82

आजकल रू मार्च 2013 दृ पृष्ठ 27

पंचशील शोध दृ समीक्षा–पृष्ठ 87

आजकल रू मार्च 2013 पृष्ठ 24

आजकल रू मार्च 2011 पृष्ठ 25

पंचशील शोध दृ समीक्षा–पृष्ठ 61

प्रतिभा जैन,भारतीय स्त्री, पृष्ठ 66

अंजू दुआ जेमिनी, हक गढ़ती औरत पृष्ठ 16

संपर्क सूत्र – 9813090945

डंपस पक– कमअपकतेनदपजं/हउंपस.बवउ

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 358-361
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी आत्मकथाओं में दलित–विमर्श

–विजय. एम. राठोड
सहायक प्राध्यापक, सरकारी महाविद्यालय यादगीर, जि. यादगीर, कर्नाटक 585202

आधुनिक काल का साहित्य विविध विधाओं में लिखा गया हैंद्य जैसे कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी आदि कथनपरक साहित्य का उद्भव एवं विकास उन्नीसवीं सदी में हुआद्य कथेत्तर साहित्य में रेखाचित्र, जीवनी, संस्मरण, डायरी, पत्रसाहित्य, रिपोतार्ज, यात्रा साहित्य, आत्मकथा आदि जीवनीपरक और सूचनापरक साहित्य का उद्भव एवं विकास बीसवीं सदी की उपलब्धि हैद्य हिंदी में आत्मकथाओं का उद्भव देरी से हुआ हैद्य

आत्मकथा साहित्य कथेत्तर गद्य विधा के अंतर्गत आता हैद्य आत्मपरिचय या आत्मपरक लेखन को आत्मश्लाघा मानकर उससे दूर रहने पर बल देने के कारण प्राचीन काल से साहित्यकार आत्मपरक लेखन से दूर ही रहेद्य परिणामस्वरूप आत्मकथा के द्वारा मिलनेवाली प्रमाणिक जानकारी से पाठक दूर रहाद्य आत्मकथाएँ ऐसा दर्पण होती है जिससे लेखक परिवार एवं समाज को देखा जा सकता हैंद्य अतः अनेक आत्मकथाओं में दलितों का शोषण एवं पीड़ा का चित्रण हुआ हैद्य

आत्मकथा का स्वरुप रू

आत्मकथा शब्द की उत्पत्ति के संबंध में संस्कृत के आचार्यों का कहना है कि इस शब्द की उत्पत्ति 'आत्मन' और 'कथा' से हुई हैद्य "आत्मनः विषये यस्यां सा आत्मकथा"1 अर्थात जहाँ अपने ही विषय में बात की जाए, वही आत्मकथा हैद्य आत्मकथा को अलग–अलग नाम से पुकारते हैद्य जैसे– आत्मकथ्य, आत्मनिवेदन, आत्मवृत्त, आत्मकहानी, आत्मचरित्र आदिद्य

डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने आत्मकथा की परिभाषा बताई है कि "आत्मकथा लेखक के जीवन की दुर्बलताओं सबलताओं आदि का वह संतुलित और व्यवस्थित चित्रण है, जो उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के निष्पक्ष उद्घाटन में समर्थ होता हैद्य"2 आत्मकथा के मुख्यतः कथावस्तु, पात्र, उद्देश्य, भाषाशैली, परिवेश एवं संवाद यह मुख्य रूप हैंद्य

दलित–विमर्श का स्वरुप रू

वर्तमान समय में भारतीय साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में दलित साहित्य के प्रति आम पाठकों एवं जिज्ञासु विद्वानों की अभिरुचि बढ़ रही हैंद्य इसका प्रमुख कारण दलित साहित्य का मुख्य केंद्र बिंदु आम आदमी शोषित, पीड़ित, प्रवंचित दलित हैद्य भारत के वैचारिक एवं सामाजिक क्रांति के प्रणेता डॉ. बाबासाहब आंबेडकर के जीवन दर्शन के वैचारिक धरातल पर भारत की विपुल भाषाओं में दलित चेतना का सामाजिक चित्रण हुआ हैद्य डॉ.बापूराव देसाई का कथन है कि "सामान्यतः दलित साहित्यिक दलित जन–साधारण समाज

के ही हैं और उनमें से कुछ दलित रचनाकारों ने दलितों द्वारा दलितों के लिए लिखे गए साहित्य को ही दलित साहित्य माना हैद्य"3 वास्तव में देखा जाए तो दलित साहित्य सामाजिक अन्याय के विरुद्ध विद्रोह और आक्रोश हैद्य यदि दलित समस्याओं पर लिखना है तो उनमें सहानुभूति, यदि गैर–दलित लेखक दलित साहित्य की अवधारणा को स्पष्ट करने हेतु कुछ दलित साहित्यकारों के विचारों पर ध्यान देना जरुरी हैद्य कुंवलभारती के अनुसार 'दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को स्थापित किया है, अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उसकी अभिव्यक्ति करता हैद्य'

हिंदी आत्मकथाओं में दलित–विमर्श रू–

हिंदी दलित साहित्य अंतर्गत आत्मकथा लिखने की परंपरा डॉ. आंबेडकर से प्रारंभ हुईद्य उनकी प्रेरणा से कई साहित्यकारों ने दलित आत्मकथा लिखीद्य उनका प्रभाव हिंदी दलित साहित्यकारों पर भी पड़ाद्य हिंदी में प्रकाशित आत्मकथाओं में– जूठन (ओमप्रकाश वाल्मीकि), अपने–अपने पिंजरे, भाग–1 और भाग–2(मोहनदास नैमिशराय), तिरस्कृत (सूरजपाल चौहान), दोहरा अभिशाप (कौसल्या बैसंत्री), झोंपड़ी से राजभवन (माताप्रसाद) आदि आत्मकथाएँ उपर्युक्त लेखकों ने लिखकर उसमें पारिवारिक जीवन, तत्कालीन सामाजिक परिवेश तथा विभिन्न तथ्यों का चित्रण दलितों के जीवन संघर्ष एवं पीड़ा पर आधारित हैद्य

दलित साहित्य वह लेखन है, जो वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध संघर्षरत मनुष्य से हैद्य वर्ण व्यवस्था अर्थात द्वेष, शत्रुता, मत्सर, तिरस्कार की युद्ध भावनाद्य इसके विपरीत मूल्य अर्थात प्रेम, बंधुता, समता, शांति एवं समृद्धि महत्त्वपूर्ण हैद्य 'दलित चेतना' से विभिन्न प्रकार का बोध होता हैद्य जैसे– दुख–बोध, अपमान–बोध, दैन्य–दासता–बोध, जाति–वर्ग–बोध, विश्व–बंधुत्व बोध और क्रांति बोध आदिद्य ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार "जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छवि के तिलस्म को तोड़ता है, वही दलित चेतना हैद्य दलित मतलब मानवीय अधिकारों से वंचित–सामाजिक तौर पर जिसे नकारा गया हो, उसकी चेतना यानी दलित चेतनाद्य"4 दलित आत्मकथाओं में अभिव्यक्ति संदर्भ, परिवेश समस्या एवं संघर्ष का स्वरुप मुख्य रूप से उजागर हुआ हैद्य

दलित स्त्री को जीवन में शिक्षित होने हेतु संघर्ष, जातिगत पहचान की वजह से प्रगति के हर कदम पर आनेवाली कठिनाइयों से जूझना, आर्थिक अ के लिए कठिन प्रयास हैद्य दलित नाम से ही उपेक्षित जातियों का परिचय हैद्य जब साहित्य में यह शब्द प्रयुक्त किया जाता है तक उसमें केवल विद्रोह, आक्रोश, क्रांति झलकती हैद्य आत्मकथा में लेखकों ने डालियों की दसता बयान की हैद्य दलित समाज के शोषण, पीड़ितों की दासता का यथार्थ चित्र व्यक्त होता हैद्य आत्मकथा लिखते हुए लेखक को बार–बार अपने दलित होने की अनुभूति होती रहती हैद्य मोहनदास नैमिशराय का मंतव्य है कि "अपनी आत्मकथाएँ लिखते हुए दलित लेखकों को गर्म सलाखें छुने जैसा अनुभव होता है क्योंकि आत्मकथाओं में इतिहास के साथ उनकी स्मुतियाँ भी उतनी हैद्य पीड़ा और आक्रोश उभरता है और उतरती है उनके तल्ख जीवन की सच्चाइयाँ जिनमें उनके लिए सिर्फ बैचौनी का सबब होता हैद्य"5

'दोहरा अभिशाप' की लेखिका कौसल्या बैसंत्री का जन्म महार कोसरे उपजाती में होता हैद्य विवाह तक का संपूर्ण जीवन उन्होंने जिस खलासी लें में बिताया है वह बस्ती शहर में रेल्वे लाईन के बगल में थी जो एक पक्की सड़क से विभाजित की गई थीद्य सड़क के साथ सटे नाले से सटकर यह बस्ती थीद्य यह सड़क मानो

एक रेखा होद्य किराये पर मकान देने से पहले लोग उसकी जाति तक का पता लगा लेते हैद्य लेखिका और उनकी बहनों को स्कूल जाते हुए अपनी जाति परिस्थितियों के कारण छुपानी पड़ती हैंद्य अस्पृश्य होने के कारण उन्हें मंदिर में भी प्रवेश नहीं थाद्य दलित होने के कारण सभी को अत्यधिक तकलीफों से गुजरना पड़ता हैद्य स्कूल में अस्पृश्य होना जैसे सजा लगती हैद्य कक्षा की लडकियाँ उनका मजाक उड़ाती थीद्य सवर्णों की तुलना में दलितों को काफी कष्ट उठाना पड़ा हैद्य लेखिका का कथन है कि ”मैं अस्पृश्य हूँ इसका मुझे बहुत दुख होता था और मैं हीनता महसूस करती थीद्य कोई मेरी जाति न पूछ बैठे इसका मुझे सदैव डर रहता थाद्य”6 कौसल्या जी ने आत्मकथा में दलित नारी से जुडी अनेक समस्याओं का चित्रण किया हैद्य

'अपने अपने पिंजरे (भाग–1)' आत्मकथा में मेरठ के परिवेश का चित्रण हैद्य पुरे शहर में प्रत्येक जाति की अलग–अलग बस्ती हैद्य जैसे– धनुका टोला, कुमारों की बस्ती, कहारों का अड्डा, भंगियाना, चमरौटी आदिद्य दलितों को हिन्दुओं से तिरस्कार या घृणा का शिकार होना पड़ता हैद्य दलितों की स्थिति पर नैमिशराय कहते है कि 'हम लंबे समय से अपमान सहते चले आए थे; पर गुनहगार न थेद्य' दलित समाज की वेदना यहाँ चित्रित हैद्य

'अपने अपने पिंजरे (भाग–2)' आत्मकथा में भारतीय समाज की वर्णव्यवस्था के नीचे दबे दलितों का उपेक्षित जीवन, समस्या एवं संघर्ष को मार्मिक ढंग से चित्रित किया हैद्य दलितों की दरिद्रता, अशिक्षा, अज्ञान एवं उनका अमानवीय शोषण आदि की स्थिति मुखर हैंद्य लेखक ने दलित और गरीब मुसलमानों में होनेवाली स्वाभाविक समानता का वर्णन किया हैद्य दोनों की बस्तियाँ सटी हुई हैद्य दोनों ब्राह्मणवाद के सताए हुए हैंद्य

'जूठन' यह आत्मकथा ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित हैद्य इसमें लेखक का पारिवारिक जीवन, पढाई की समस्या, गाँव में भंगी–चमार जैसे दलित वर्ग की सामाजिक, आर्थिक स्थिति के साथ ही सवर्णों द्वारा उनका शोषण, अन्याय–अत्याचार, दलित वर्ग में रहे अंधविश्वास, आपसी फूट और स्वास्थ्य विषयक समस्याओं का चित्रण हुआ हैंद्य लेखक अपने परिवार वालों एवं अन्य चूहड़ों के दर्दनाक जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रकाश में लेता हैद्य कड़ी मेहनत के बावजूद भी इन्हें दो वक्त का पेट भर भोजन नहीं मिल पाताद्य फसल की कटाई के समय भी सवर्ण लोग गाली–गलौज के साथ बलपूर्वक दलित चमार चूहड़ों को ले जाते हैंद्य

'तिरस्कृत' यह सूरजपाल चौहान द्वारा लिखित आत्मकथा साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैद्य लेखक भंगी परिवार की संतान थेद्य उन्होंने बचपन में आर्थिक दुर्गति की चरम विपन्नता को नज़दीक से देखाद्य सवर्ण समाज की दृष्टि भंगी–चमार के प्रति अन्याय एवं अत्याचार की रहीद्य भंगी–चमार के बच्चे शिक्षा से काफ़ी दूर थेद्य 'तिरस्कृत' में अनुभूति की तीव्रता और प्रामाणिकता भी हैद्य इसमें जहाँ एक ओर ब्राह्मणों के द्वारा लेखक और उनके परिवार वर्गों, रिश्तेदारों के प्रति निष्ठुरता का व्यवहार है तो वही दूसरी और पढ़े–लिखे समृद्ध उच्च वर्ग के दलितों से उपजातिवाले दलितों प्रति अमानवीय व्यवहार का वर्णन हैद्य दलितों में भी भेद वर्ग हैद्य मुख्यतः दलितों के प्रति सवर्ण समाज के व्यवहार से प्रभावित उच्च जाति के दलितों में ऐसा विचार देखने को मिलता हैद्य

निष्कर्ष रू–

दलित आत्मकथाओं के केंद्र में केवल व्यष्टि ही नहींरू अपितु पीड़ित समाज का एक विशिष्ट तबका या जाती के लोग रहे हैंद्य जिन्हें प्रतिष्ठत समाज ने समय–समय पर ठुकराया हैद्य वर्णाश्रम की क्रूर व्यवस्था ने

संबंधित जाति तथा उस व्यक्ति की जो करुणापूर्ण स्थिति कर दी; उसका चित्रण दलित आत्मकथाकारों ने अपनी आत्मकथाओं में मुखर किया हैंद्य क्योंकि दलित साहित्य लेखन करने वाले अधिकांश लेखकों का जीवन दलित नाम की जातियों में व्यतीत हुआ और वहाँ उन्होंने जो भोगा या अनुभव किया उसी की अभिव्यक्ति साहित्य में उभरकर आई हैद्य सवर्ण समाज ने निम्न वर्ग की जातियों को अछूत मानकर उनका शोषण एवं उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया; इसकी अभिव्यक्ति दलित आत्मकथाओं में उजागर हुई हैद्य साथ ही निम्न वर्ग लोगों के साथ उचित व्यवहार होने एवं समाज में समानत्व की दृष्टि से देखने की अभिलाषा व्यक्त की हैद्य

संदर्भ ग्रंथ रू–

1) डॉ. मीना घुमे, महिला आत्मकथाओं में नारी संवेदना, पृ.10
2) वही, पृ.11
3) डॉ.बापूराव देसाई, दलित साहित्य विधा रू शास्त्र और इतिहास, पृ.15
4) डॉ. ओमप्रकाश शर्मा, साहित्य रू विविध वाद, पृ.24.3
5) डॉ. मीना घुमे, महिला आत्मकथाओं में नारी संवेदना, पृ.217
6) कौसल्या बैसंत्री, दोहरा अभिशाप, पृ.55

ईमेल– अउतंजीवक73 ⁄ हउंपस.बवउ
मो.9986522008

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 362-369

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी उपन्यास : विकलांग/दिव्यांग पात्र

–अनाम

पता

कल्पना कीजिये कि आप जन्म से ही सुन नहीं सकते या देख नहीं सकते या चल–फिर सकने में समर्थ नहीं हैं या आपका मस्तिष्क अन्य बच्चों की तरह कार्य नहीं कर पाता; या यूँ सोचिये कि आप अच्छे भले स्वस्थ एवं तंदरुस्त हैं और आपका जीवन–यापन अच्छा चल रहा है; अचानक आपके साथ ऐसी कोई घटना या दुर्घटना घट जाती है कि आप देखने, सुनने, चलने, सोचने या कोई भी अन्य कार्य करने में असमर्थ हो जाते हैं; या आपको कोई ऐसी बीमारी लग जाती है, जिसने आपकी शारीरिक या मानसिक संरचना को नुकसान पहुँचाया हो और ये सब कुछ होने के साथ–साथ वे लोग जिनके साथ ऐसा नहीं हुआ है, आपको ऐसा महसूस करवाए कि अब आप बिलकुल नाकाम हो गये हो, अब आप केवल हमारी दया के पात्र बनने के सिवा किसी लायक नहीं रहे। साथ ही आपके लिए समाज के ढांचे का निर्माण भी इस तरह से कर दिया जाएँ, जिसमें आप कहीं भी शामिल न हो; तो इस तरह की स्थिति व इस तरह के सामाजिक ढांचे के भीतर आप कैसा महसूस करेंगे! ठीक इसी तरह की समस्याओं एवं इसी तरह की मनःस्थिति से जूझ रहे और डग–मग जीवन पटरी पर चलने वाले लोग हैं– 'विकलांग'[1] या 'दिव्यांग'[2] । हालाँकि अब धीरे–धीरे विकलांगों की जीवन–स्थिति में सुधार लाने की दिशा में और कार्य के प्रत्येक क्षेत्र में इन्हें शामिल करने के लिए सरकार, समाज एवं स्वयं विकलांगों द्वारा काफ़ी प्रयास किये जा रहे हैं, लेकिन अभी भी लोगों की मानसिकता, समाज के ढांचे एवं सरकार की नीतियों में बहुत अधिक परिवर्तन करना बाकि है।

21वीं सदी में उत्तर–आधुनिकतावाद की नई बौद्धिक एवं मानव मात्र के प्रति संवेदी दृष्टि ने सभी हाशियाकृत वर्गों– स्त्री, दलित, आदिवासी, तृतीय–लिंगी, विकलांग, वृद्ध, किसान आदि को साहित्य के भीतर भरपूर स्थान दिया। मानवीय संवेदनाओं एवं प्रत्येक मानव के समान अधिकारों की पहल के धरातल पर यह प्रयत्न इन वंचित, उपेक्षित वर्गों को समाज की मुख्यधारा में शामिल करने की दिशा में काफ़ी हद तक सफल साबित हो रहा है। हालाँकि इन सभी वर्गों में से विकलांगों पर इस नई सदी में कोई विशेष या स्वतंत्र साहित्य नहीं लिखा गया, लेकिन इस नवीन उद्भावना ने पुराने लिखे गये साहित्य को पुनः नवीन दृष्टि से खंगालने के लिए पथ–प्रदर्शन किया, जिससे हमें ऐसे अनेक विकलांग पात्र मिलें, जो कहीं नवीन शोध दृष्टि के अलोक के आभाव में दबे हुए थे।

हिंदी–साहित्य में उपन्यास विधा के अंतर्गत प्रेमचन्दपूर्व युग में हमें कोई ऐसा उपन्यास नज़र नहीं आता, जिसमें विकलांगों की जीवन–स्थिति स्पष्ट की गयी हो। प्रेमचन्दयुगीन एवं प्रेमचंदोत्तर युग में हमें अनेक ऐसे उपन्यास

मिलते हैं, जिनमें विकलांग पात्रों को नायक—नायिका, अन्य मुख्य पात्रों एवं गौण पात्रों की भूमिका में चित्रित किया गया है। सभी प्रकार के पात्र, चाहे मुख्य हो या गौण; अपने आप में महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि उनके माध्यम से सहियकार ने विकलांग—जीवन से जुड़े किसी विशेष पहलु को दिखाने का प्रयास किया है। यहाँ केवल ऐसे उपन्यास वर्णित हैं, जिनमें विकलांग पात्रों को नायक—नायिका की भूमिका में रखकर विकलांग—जीवन यथार्थ को दिखाया गया है।

विकलांग पात्र को नायकत्त्व प्रदान कर, हिंदी—साहित्येतिहास का अमर पात्र बनाने वाला प्रथम उपन्यास कथा सम्राट् मुंशी प्रेमचंद द्वारा रचित 'रंगभूमि' है। इसमें औपनिवेशिक युग में औद्योगिकरण एवं पूंजीवाद की होड़ में बड़े—बड़े पूंजीपतियों द्वारा छोटे—छोटे कृषकों की ज़मीन हड़पने, उनका शोषण करने का यथार्थ एवं मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी का केंद्र बिंदु है— अंधा, भीख माँगता हुआ सूरदास। यह पात्र सम्पूर्ण हिंदी—साहित्य के अमर पात्रों में से एक है। प्रेम, करुणा, दया, त्याग, नीतिवान, सत्याग्रही, निडरता, आत्मविश्वास जैसे महान् गुणों से संपन्न यह व्यक्तित्व समाज की नज़रों में अंधा सूरदास है, जो रोज़ भीख माँगता है। लेखक समाज की अंधों के प्रति मानसिकता को स्पष्ट करते हुए लिखता है— "भारतवर्ष में अंधे आदमियों के लिए न नाम की ज़रुरत होती है, न काम की। सूरदास उनका बना—बनाया नाम है और भीख माँगना बना—बनाया काम है। उनके गुण और स्वभाव भी जगत्—प्रसिद्ध हैं— गाने—बजाने में विशेष रूचि, हृदय में विशेष अनुराग अध्यात्म और भक्ति में विशेष प्रेम, उनके स्वाभाविक लक्षण हैं। बाह्य दृष्टि बंद और अंतर्दृष्टि खुली हुई।"3 समाज की नज़रों में सूरदास की यही पहचान है। यहाँ समाज का नेत्रहीनों के प्रति एक पूर्व निर्धारित नज़रिया लेखक ने स्पष्ट किया है, लेकिन सूरदास का व्यक्तित्त्व इस नज़रिए की सीमा से काफ़ी आगे है।

इस कहानी में सूरदास दो मोर्चों पर लड़ता है। एक ओर औद्योगिकरण और पूँजीवाद के विरुद्ध बड़ी—बड़ी ताकतों से; तो दूसरी ओर गाँव के लोगों की ईर्ष्या, द्वेष एवं आपसी षड्यंत्रों को दूर करने के लिए लड़ता है। एक हाथ से वह मनुष्य एवं मनुष्यता का अवमूल्यन करने वाली मशीन को आगे बढ़ने से रोकने का प्रयास करता है; तो दूसरे हाथ से गाँव में फैली अनीति, फूट और कुचालों पर नियंत्रण करने का प्रयत्न करता है। सूरदास जब तक जिंदा रहा तब तक अपनी सत्यधर्मिता की राह पर अडिग रहा। समाज की नज़रों में 'नेत्रहीन' सूरदास सम्पूर्ण समाज को साहस, त्याग, अहिंसा, सत्याग्रह, निडरता, संयम एवं नीति की राह दिखा जाता है। अपने पुरखों की ज़मीन जो अब गाँववालों के लिए सार्वजनिक चरागाह बन चुकी थी, उसके लिए लड़ते—लड़ते वह क्लार्क जैसे पूंजीपति की गोली का शिकार बन जाता है, लेकिन हार नहीं मानता।

उपन्यास के अंत तक सूरदास का व्यक्तित्त्व अपने चरम विकास तक पहुँच जाता है। लेखक जहाँ उपन्यास के आरंभ में 'लाठी टेकता, भीख माँगता हुआ' से उसे पाठकों से परिचित करवाता है, वहीं इस सम्पूर्ण 'रंगभूमि' के पूरे खेल का विजयी खिलाड़ी घोषित कर उपन्यास का समापन करता है— "कोई कहता था सिद्ध था, कोई कहता था वली था, कोई देवता कहता था; पर वह यथार्थ में खिलाड़ी था— वह खिलाडी जिसके माथे पर कभी मैल नहीं आया, जिसने कभी हिम्मत नहीं हारी, जिसने कभी क़दम पीछे नहीं हटाये, जीता तो प्रसन्नचित्त रहा, हारा तो प्रसन्नचित्त रहा, हारा तो जितने वाले से कीना नहीं रक्खा, जीता तो हारने वाले पर तालियाँ नहीं बजायीं, जिसने खेल में सदैव नीति का पालन किया, कभी धाँधली नहीं की, कभी द्वंद्वी पर छिपकर चोट नहीं की। भिखारी था, अपंग था, अंधा था, दीन था, कभी भरपेट दाना नहीं नसीब हुआ, कभी तन पर वस्त्र पहनने को नहीं मिला;

पर हृदय धैर्य और क्षमा, सत्य और साहस का अगाध भंडार था। देह पर मांस न था, पर हृदय में विनय, शील और सहानुभूति भरी हुई थी।"4 वास्तव में रंगभूमि का यह अंधा नायक एक सशक्त, बेमिसाल, प्रेरणादायक पात्र के रूप में पाठकों के मस्तिष्क से होते हुए हृदय के अन्तःस्तल तक पहुँचता है।

रंगभूमि के पश्चात् विकलांग पात्रों को नायक/नायिका की भूमिका में चित्रित कर उनके जीवन पर दृष्टिपात करने वाला उपन्यास राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह विरचित 'सूरदास' है। नेत्रहीनों की मार्मिक पीड़ा को लेखक ने बहुत ही नज़दीक से अनुभूत किया था, तभी वे उपन्यास के आरंभ में ही स्पष्ट करते हैं– "जो हो, मुझे तो बराबर गड़ा है कि आँख की कमी इस ज़िन्दगी की सबसे दर्दनाक कमी है। कमी क्या, वह भी कोई ज़िन्दगी है! उसे सूली की सेज कहें या अंगार की।"5 इस उपन्यास का नायक– सूरदास एवं नायिका– धनिया, दोनों ही नेत्रहीन होते हैं। सूरदास माता–पिता की मृत्यु के पश्चात् गाँव के मठ में ही खुद को प्रभु की सेवा में समर्पित कर देता है। वैसे भी अंधों के लिए यही सबसे अच्छा रास्ता समझा जाता है कि वे ईश्वर की सेवा में खुद को समर्पित करें। वहां कम–से–कम उनका दो वक्त का खाना तो चलता रहेगा। वैसे भी इस समाज में उनके लिए रोज़गार के अन्य रास्ते न के ही बराबर है। मठ में पुराने मठाधीश की मृत्यु के पश्चात् नया मठाधीश सूरदास के अंधे होने का फायदा उठाकर उससे भीख मंगवाता है– "दिन–भर खँजड़ी बजा–बजाकर भीख माँगता फिरे– चिराग़ जलते–जलते मठ पर वापस आ जाय। तीन–चार मील का फ़ासला कोई फ़ासला नहीं। मेले–ठेले के वक्त ख़ासी रक़म हाथ आ सकती है। यों तो बेकार बैठे वह मठ की रोटियां तोड़ रहा है। कहाँ का अंधा दृ न साधु, न बैरागी।"6 सूरदास अपने चाचा की मदद से किसी तरह वहाँ से निकल जाता है और लेखक की कोठी में पंखाकुली का काम करता है। रंगभूमि की भांति यहाँ भी समाज के आयने में अंधे का नाम 'सूरदास' और उसका पेशा 'भीख माँगना' स्पष्ट रूप से परिलक्षित है।

उपन्यास की नायिका धनिया लेखक के वहाँ पंखाकुली का काम करने वाली सुखिया की भतीजी होती है। सुखिया की मृत्यु हो जाती है तो उसके बाद उसके स्थान पर धनिया को बुला लिया जाता है। लेखक की कोठी के माली मिट्ठु का बेटा भजुआ धनिया की नेत्रहीनता का फायदा उठाकर उसकी इज्ज़त पर हाथ डालने का प्रयास करता है। धनिया की तेज़ अंतर्दृष्टि उसे पहचान लेती है और उसे धक्के से दूर कर उससे बच निकलती है। यह खबर सुनकर धनिया का दूर का तथाकथित संरक्षक मिट्ठु धनिया का विवाह 60 वर्ष के बूढ़े शराबी बेनीराम से करवा देता है। यह रिश्ता ढूंढकर वह बहुत अधिक प्रसन्न हो जाता है क्योंकि उसे लगता है कि अंधी के साथ विवाह के लिए किसी जिंदा व्यक्ति का मिल जाना ही बहुत बड़ी बात है। लेखक के पूछने पर मिट्ठु कहता है– "सरकार, वह राजा है, राजा! है तो ज़रा बूढ़ा– बेटे–बेटी से भरा घर भी है; मगर है एक ही खुशहाल। धनिया हाथ पर हाथ रखे दो जून रोटी–दाल तो पाएगी। उस अंधी के लिए यही नियामत क्या कम है?"7 विवाह के बाद बेनीराम धनिया के साथ बहुत मारपीट करता है। आखिर में धनिया उसका घर छोड़ने का निर्णय लेती है। धनिया एवं सूरदास आपस में प्रेम करते हैं। धनिया एक बार सूरदास के पास आती है, लेकिन सूरदास खुद असमर्थ होने के कारण उसे जीवन भर अपने साथ रखने का निर्णय नहीं ले पाता। धनिया वह स्थान छोड़कर किसी अनजान दिशा में निकल जाती है और सूरदास भी उसे ढूंढता हुआ कोई अनजान राह पकड़ लेता है। स्त्री के साथ–साथ विकलांग होना हमारे समाज में एक बहुत बड़ा दुर्भाग्य है क्योंकि माँ–बाप के घर में लड़की का रहना अच्छा नहीं समझा जाता, साथ ही आदमी रुपी भेड़ियों की नज़रें भी उस पर टिकी रहती है और विकलांग होने के कारण

उसके साथ विवाह करने के लिए भी कोई राज़ी नहीं होता। ऐसे में बेनीराम जैसे आदमी की भेंट चढ़ना पड़ता है, जिसका खामियाज़ा एक स्त्री को अपना सब कुछ ख़त्म करके चुकाना पड़ता है।

प्रतापनारायण टंडन द्वारा अपने व्यक्तिगत जीवन–अनुभव के आधार पर लिखा गया उपन्यास 'अंधी दृष्टि' एक विकलांग बच्चे की मनःस्थिति को स्पष्ट करता है। लेखक की अपनी बड़ी बेटी 'रीता' विकलांग थी, उसी यथार्थ अनुभूति को लेखक ने इस उपन्यास में सूक्ष्मता एवं संजीदगी के साथ चित्रित किया है। उपन्यास की नायिका छोटी बच्ची रीति की जन्म से ही कमजोर दृष्टि होती है। उसके माता–पिता उसे अच्छे–से–अच्छे डॉक्टर के पास लेकर जाते हैं। चौदह बार ऑपरेशन करने के बाद भी उसकी दृष्टि वापिस नहीं लौट पाती। अंधी रीति की बाल जिज्ञासा इस संसार के हर रंग को देखने के लिए हमेशा लालायित रहती है, मगर नियति के आगे उसकी जिज्ञासा एक खीज बनकर रह जाती है। उसके मन में सपने होते हैं कि वह भी अपने माता–पिता एवं मित्रों के साथ अंदर–बाहर की पूरी दुनिया को देखें। लेखक ने अपने चक्षुओं से एक नेत्रहीन बच्चे की जिज्ञासाओं, तड़प और मनोविज्ञान को साक्षात् देखा और समझा था, इसीलिए वह इस उपन्यास को इतना संवेदनशील एवं सार्थक बना पाए। यह कहानी केवल रीति की ही नहीं है, न जाने कितने ही ऐसे बच्चे हैं, जिनके भीतर रीति की तरह एक मर्मान्तक पीड़ा भरी हुआ हैं, जिनकी दुनिया मात्र 'अंधे' संबोधन के अन्धकार में गुम हो गई है।

पंजाब के प्रतिष्ठित दलित साहित्यकार जगदीश चन्द्र ने 'टुंडा लाट' नामक उपन्यास में कैप्टन युवक सुनील के विकलांगतापूर्व एवं विकलांगता के बाद के भिन्न–भिन्न जीवन–अनुभव को लेखनीबद्ध किया है। सुनील अस्थाई कमीशन के तहत सेना में कैप्टन पद पर अपनी सेवाएँ देने के बाद वापिस घर आकर अपना वायलिन सीखने का बचपन का सपना पूरा करने के लिए संगीत विद्यालय में दाखिला ले लेता है। वहाँ उसकी मुलाकात रोमिला नामक लड़की से होती है। वे दोनों आपस में प्रेम–सम्बन्ध बनाते है। इसी बीच युद्ध की आपातकालीन स्थिति में उसे वापिस सेना में बुलाया जाता है। इस युद्ध में सुनील का दाँया हाथ कट जाता है। युद्ध समाप्ति के बाद सुनील हमेशा के लिए कटा हुआ हाथ लेकर घर आ जाता है। जब वह दोबारा वायलिन सीखने के लिए संगीत विद्यालय जाता है, तो उसे वहाँ कहा जाता है कि अब वह कभी भी वायलिन बजाना नहीं सीख पायेगा, क्योंकि एक हाथ से वायलिन बजाना संभव नहीं है। अपने बचपन का सपना टूटते देखकर सुनील भीतर तक बुरी तरह से टूट जाता है। इतना ही नहीं उसकी प्रेमिका रोमिला भी उसका हाथ देखकर उसका साथ देने से पीछे हट जाती है। इस दुर्घटना के बाद सुनील लोगों की मात्र कोरी दया का पात्र बनकर रह जाता है। वह बहुत हताश हो जाता है– "सुनील अपने कटे हुए हाथ की ओर देखने लगा। उसे यूँ महसूस हुआ जैसे उसका अँगूठा किसी पथरीले और ऊबड़–खाबड़ मैदान के कोने में खड़े रुंड–मुंड पेड़ की तरह दृ पत्रहीन, पुष्पहीन और फलहीन से ज़्यादा कुछ नहीं है!"8 हाथ के साथ ही जैसे कहीं सुनील का सुनहरा अतीत भी उसके जीवन का नासूर बन जाता है।

कैप्टन सुनील का विकलांगता से जूझने का चित्रण 'टुंडा लाट' उपन्यास के अंतिम चरण में किया गया है। विकलांगता के बाद उभरने वाली एक विचित्र मनःस्थिति एवं विकलांगों के जीवन में आने वाली समस्याओं से पाठकों को विस्तारपूर्वक अवगत करवाने के लिए लेखक ने इसी उपन्यास के कथानक को विस्तारित करके सन 2000 ई. में 'लाट की वापसी' नामक उपन्यास की रचना की। कैप्टन पद पर मातृभूमि के लिए अपनी जान पर खेलने वाले सुनील का हाथ कट जाने से वह बेरोजगार हो जाता है। उसे सेना से हमेशा के लिए छुट्टी मिल

जाती है। हमारे देश की यह विडम्बना है कि पूरा जीवन जिस देश के लिए सेवाएँ दी, उसी सेवा में अपाहिज हो जाने से उसे कहीं नौकरी नहीं दी गयी, दर–दर की ठोकरे खानी पड़ी। नौजवान बेटे का अचानक यूँ विकलांग हो जाने और घर पर बैठे रहने से माँ–बाप का परेशान होना स्वाभाविक है। सुनील को ऐसे घर में अंदर–ही–अंदर पड़ा देख कर उसके माता–पिता बहुत अधिक दुखी एवं परेशान हो जाते है। सुनील का दुःख उनके लिए असहनीय बनता जाता है। उन्हें चिंता सताने लगती है कि जवान बेटा घर में बैठा रहेगा तो घर का खर्च कैसे चलेगा! उनसे भी कहीं अधिक तनावग्रस्त सुनील होता है, वह जानता है कि उसकी वजह से उसके माँ–बाबूजी कितने कष्ट झेल रहे हैं, लेकिन परिस्थितियां ऐसी होती है कि वह उस समय कुछ नहीं कर पाता, उसे अपनी लाचारी और अपंगता पर रोना आ जाता है– "बाबूजी को चाय का कप दे मां रसोई के बाहर पीढ़ी पर आ बैठी और दाल थाली में बिखेर उसे साफ करने लगी। कभी–कभार वह बारी–बारी दालान और चौबारे की ओर भी झांक लेती। दोनों जगह खामोशी थी, लेकिन दिलों में शायद तूफ़ान उफन रहे थे। वह बौखला गई कि जिस घर में अवकाश प्राप्त बाप और अपंग एवं बेकार बेटा हो, वहां शान्ति कैसे हो सकती है! उसकी आंखें डबडबा आईं।"9

सिर्फ यही नहीं इस अपंगता की वजह से कोई भी लड़की सुनील से विवाह करने के लिए राज़ी नहीं होती। लड़की के माँ–बाप भी अपंग, बेरोज़गार लड़के के साथ अपनी लड़की का विवाह भला क्यों ही करवाएंगे! बड़ी दौड़ धूप के बाद आखिरकार सुनील को एक स्टोरकीपर की नौकरी मिल जाती है। विकलांगता का असर उसके मन–मस्तिष्क पर इतना गहरा पड़ गया था कि वह सारा समय अपना कटा हुआ हाथ अपने कोट की जेब में ही रखता था। उसके भीतर समाज की प्रतिक्रियाओं ने इतना डर भर दिया था कि वह बिलकुल अकेला, सभी लोगों से अलग–थलग रहता था, ताकि कोई भी उससे उसके बारे में न पूछे।

सुनील ने देश की सेवा में अपना हाथ समर्पित किया था, इसके लिए लोगों को उस पर गर्व करना चाहिए था, लेकिन लोग कारण को भूलकर केवल उसकी विकलांगता के दृष्टिकोण से ही उसे आंकते थे, इसी डर से हमेशा उसे अपना हाथ छुपाकर ही रखना पड़ता था। लेखक ने इस उपन्यास में विकलांग सुनील के बाह्य जीवन–संघर्ष को ही नहीं; बल्कि उसके आतंरिक संघर्ष का भी बहुत ही सूक्ष्मता से मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। कितने ही नौजवान होंगे यहाँ जो सुनील जैसा जीवन व्यतीत कर रहे होंगे। कलमकार ने आज की इस विकराल समस्या, जिसकी ओर लोगों का बहुत कम ध्यान जाता है, को बहुत ही मार्मिक ढंग से सुनील के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाया है।

विकलांग–जीवन को चित्रित करने वाले नायक–नायिका की भूमिका में उद्धृत पात्रों की इस श्रृंखला में अगला उपन्यास प्रतिष्ठित साहित्यकार मृदुला सिन्हा द्वारा रचित 'ज्यों मेहँदी को रंग' है। विकलांगों के सभी जीवन पहलुओं को समग्रता एवं सूक्ष्मता से दर्शाने वाला यह प्रथम उपन्यास है, जिसका मूल उद्देश्य विकलांगों की ही समस्या को उकेरना रहा है। इसमें लेखिका के व्यक्तिगत अनुभव जीवंत रूप में मूर्त हुए हैं। इस उपन्यास के लगभग सभी पात्र विकलांग हैं, जो विकलांगों से जुड़ी लगभग सभी जीवन स्थितियों को भिन्न–भिन्न ढंग से व्यक्त करते हैं। कथा की मुख्य नायिका शालिनी है, जिसके माध्यम से हम यह जान सकते हैं कि विकलांगता एक स्त्री के जीवन को किस तरह पुरुषों की अपेक्षा एक अलग तरह से प्रभावित करती है। शालिनी के गंगा नदी में डेकर से उतरते हुए दोनों पैर कट जाते हैं। वही सुंदर पैर जिन पर उसका पति राजेश और सासू माँ

जान बार देते थे। पैर कट जाने के बाद शालिनी की सास और पति राजेश के व्यवहार में अविश्वसनीय परिवर्तन आ जाता है। ऐसा लगता है जैसे उनके लिए शालिनी से अधिक उसके पैरों के अस्तित्त्व का महत्त्व था। राजेश उससे बहुत अधिक दूरियां बना लेता है और उसकी सास भी उसके प्रति अच्छा रवैया नहीं रखती। समाज की नज़रों में तो वैसे भी वह अब निकृष्ट बन चुकी थी। सारे रिश्तेदार और अन्य जान–पहचान के जितने भी लोग उसे देखने घर पर आते थे सभी राजेश की माँ को राजेश का दूसरा विवाह करवाने का मशवरा देकर जाते थे। एक दिन शालिनी एक औरत को कहते हुए सुनती है– "राजेश की माँ, बेटे को समझाओ! अभी वह नासमझ है। दुनियादारी समझता नहीं। पूरी ज़िन्दगी पड़ी है उसकी। गाँव की किसी गरीब से शादी कर दो, जो उसे भी सँभालेगी और खटिया पर पड़ी अपाहिज सौत को भी।"10 यह सुनकर तो जैसे शालिनी का शरीर पतंग की डोर की भांति काँपने लग जाता है। जो वह सुन रही थी वह उसने कभी सपने में भी नहीं सोचा था। इस भय से उत्पन्न अवसाद में डूब गयी थी शालिनी।

शालिनी के माता–पिता एक सड़क हादसे में गुज़र गए थे। उसके लिए अब राजेश का परिवार ही सब कुछ था। लेकिन राजेश के दूसरे विवाह का प्रस्ताव सुनकर उसके इस परिवार के भी छिन जाने की पूरी–पूरी सम्भावना थी। पैर का घाव सूख जाने के बाद वह अपने पिता के मित्र की संस्था में पैर लगवाने जाती है। वहाँ उसे लगभग एक साल होने वाला होता है, लेकिन इस पूरे एक साल में कोई भी उसका हाल पूछने नहीं आता। उसे यह भी पता चलता है कि राजेश दूसरा विवाह कर चुका है। यह खबर शालिनी का दिल दहला देती है। वैसे तो राजेश के एक साल के रवैये से वह जान ही चुकी थी, लेकिन वास्तविकता सुनकर थोड़ी देर विश्वास नहीं कर पाई। वह जानती थी कि अब वह उस घर में दोबारा अपनी जगह नहीं बना सकती। यह हमारे समाज एवं कानून व्यवस्था की एक बहुत बड़ी विडम्बना है कि यहाँ एक स्त्री पत्नी पद से अपदस्थ हो जाने पर उस घर से भी बेहक हो जाती है। शालिनी के साथ भी ऐसा ही हुआ। वह अब लगभग बेघर हो चुकी थी।

परिस्थितियों ने शालिनी पर काफ़ी गहरा आघात किया था, लेकिन वह बहुत ही जल्दी इस आघात से बाहर निकलने का रास्ता तलाश लेती है और निर्णय लेती है कि अब वह इसी संस्था में विकलांगों की सेवा करेगी। शालिनी के इस निर्णय ने उसे मज़बूती प्रदान की और उसमें जीवन की इस कठिन परीक्षा की घड़ी में लड़ने का साहस भर दिया। वह अपनी विकलांगता को न ही अपनी कमजोरी मानती थी और न ही कमजोरी बनने देना चाहती थी। लेखिका उसके इस प्रेरणादायक सशक्त व्यक्तित्व के विषय में लिखती है– "शालिनी की चाल में गुरुता थी। उसे अपनी क्षमता, अपनी सफलता का अहसास भी था, गरूर नहीं। उसके अन्दर क्रोध बहुत ज्यादा था। लेकिन कभी किसी ने उस क्रोध की अरुणाई तक न देखी थी। व्यवहार–कुशलता, समय–असमय के ज्ञान का सर्वोपरि स्थान था, उसके व्यक्तित्व में।"11 शालिनी का विकलांग होना, विकलांगता से पूर्व एवं पश्चात् की जीवन परिस्थितियों में परिवर्तन, राजेश द्वारा दूसरा विवाह करना, शालिनी का बेघर होना, सेवा व्रत लेना, विपरीत परिस्थितियों में आत्मनिर्भर होना आदि इन सभी क्रमिक घटनाओं के माध्यम से लेखिका ने विकलांगों के जीवन का एक वास्तविक एवं सम्पूर्ण परिदृश्य चित्रित कर विकलांगों; विशेषकर विकलांग स्त्रियों के लिए एक मिसाल पेश की है और साथ ही यह भी दिखाया है कि इस स्थिति से उभरने के लिए, आत्मनिर्भर बनने के लिए विकलांगों को ही दृढ़ निश्चयी बनना पड़ेगा।

रामदरश मिश्र द्वारा रचित उपन्यास 'बिना दरवाज़े का मकान' में भी इन्हीं उपन्यासों की भांति एक ऐसे

विकलांग की कहानी वर्णित है, जिस पर पूरे परिवार के पालन–पोषण की जिम्मेवारी होती है और विकलांग हो जाने के बाद ये सारी जिम्मेवारियां उसकी पत्नी पर आ जाती है। उपन्यास का नायक बहादुर दीपा नाम की लड़की से विवाह कर एक अच्छा जीवन जीने का सपना लेकर शहर चला जाता है। वहाँ वह रिक्शा चलाने का काम करता है। एक दिन अचानक एक कार के साथ दुर्घटना में उसका पैर रिक्शे के नीचे आ जाता है। उसके पास इतने पैसे नहीं होते कि वह किसी अच्छे अस्पताल में अपना इलाज़ करवाए। दीपा उसका इलाज़ करवाने के लिए जगह–जगह बसों में धक्के खाकर अस्पतालों के चक्कर काटती है, लेकिन सस्ते अस्पतालों में अधिक भीड़ होने से तथा अच्छे उपकरण न होने से उसका इलाज़ नहीं हो पाता। उसका घाव धीरे–धीरे नासूर बन विकलांगता का रूप धारण कर लेता है।

बहादुर चलने–फिरने में असमर्थ हो जाता है तो घर की सारी ज़िम्मेदारी दीपा पर आ जाती है। घर का गुज़ारा चलाने के लिए वह लोगों के घर–घर जाकर झाड़ू–पोछा का काम शुरू करती है। हर जगह लोग उसके अकेलेपन का फायदा उठाने का प्रयास करते रहते हैं। दीपा के कुछ भी कहने पर अड़ोस–पड़ोस की औरतें उसके पति की अपाहिजता का मज़ाक उड़ाकर उसे नीचा दिखाने की हर कोशिश करती हैं– "ओह! इतना गुमान अपाहिज की इस बीवी को।"12 लोग उसे ताने मारने लग जाते हैं कि पति के असमर्थ हो जाने के बाद वह अब आज़ादी से घूम–फिर सकती है, जो चाहे कर सकती है और जहाँ चाहे जा सकती है, उसे अब किसी भी प्रकार की रोक–टोक नहीं हैं; इसी वजह से हर आदमी उसे गलत नज़रों से देखता है और उसका फायदा उठाने का प्रयास करता है। पति के विकलांग या असहाय हो जाने से पुरुष प्रधान समाज में पत्नी का जीना कितना असुरक्षित और दूभर हो जाता है, इसका दीपा से बेहतर कोई और उदहारण नहीं हो सकता। विकलांगता केवल एक व्यक्ति को नहीं, बल्कि पूरे परिवार की व्यवस्था को प्रभावित करती है।

विकलांग हो जाने के बाद बहादुर बहुत घुट–घुट कर जीवन–जीता है। उसने दीपा को हमेशा खुश रखने का सपना देखा था। दीपा के प्रति लोगों का रवैया देखकर वह क्रोध से तिलमिला जाता है, लेकिन कर कुछ नहीं पाता। इस अकर्मण्यता ने उसे अन्दर से इतना तोड़ दिया था कि उसकी जीवन–जीने की इच्छा ही समाप्त हो गई थी। अपने भीतर के इस दर्द को वह दीपा से कहता है– "हाँ, और मेरा तो रोज़ का हाल हो गया है। आज तो तुम साथ थीं, रोज़ तो अकेले–अकेले यह भारी समय काटना पड़ता है। मेरी भी क्या ज़िन्दगी हो गयी है जैसे घर के भीतर पड़ा हुआ सड़ता मुर्दा हो। इससे तो अच्छा होता खतम ही हो जाता।"13 बहादुर की इस स्थिति के पीछे उसकी गरीबी और रोज़ हो रही सड़क दुर्घटनाएँ जिम्मेवार है। जिस सेठ की गाड़ी से बहादुर का रिक्शा टकराता है, वह उसके इलाज का कोई प्रबंध नहीं करता। उसे उसकी हालात में छोड़कर चलता बनता है। उसकी यह लापरवाही दीपा और बहादुर की ज़िन्दगी तबाह कर देती है। ऊपर से सरकारी अस्पतालों के हालात इतने ख़राब कि वहाँ अच्छे इलाज की तो क्या मामूली इलाज़ की भी उम्मीद नहीं रखी जा सकती। विकलांगों के प्रति समाज एवं सरकार का यह रवैया उनकी ज़िन्दगी को नर्क बना रहा है।

उपर्युक्त वर्णित उपन्यास विकलांग–जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं को सूक्ष्म–यथार्थ के साथ वर्णित करते हैं। विकलांगों की रोज़गार, विवाह आदि से संबंधित समस्याएँ, उनका शोषण जैसे– भीख मँगवाना, बात–बात में दृष्टिहीन को अंधा या सूरदास कहकर पुकारना, चलने–फिरने में अक्षम व्यक्ति को नाम की बजाय लंगड़ा कहना, अपाहिज कहकर उनकी दुःखती रगों पर हाथ रखना आदि और उन्हें धैर्य और साहस बंधाने की जगह यह

महसूस करवाना कि वे किसी भी काम के लायक नहीं है, ये सभी ऐसी चुनौतियाँ हैं, जिनसे विकलांगों को रोज़ रु–बरु होना पड़ता है। विकलांगों के प्रति समाज का यह रवैया उन्हें समाज की मुख्यधारा में जुड़ने और सशक्त बनने में बाधा उत्पन्न करता है। इन उपन्यासों में साहित्यकारों ने विकलांगों की समस्याओं को चित्रित करने के साथ–साथ उनके समाधान की ओर भी दृष्टिपात किया है। कुछ ऐसे पात्रों की भी सृष्टि की है, जो अपने जीवन–संघर्ष को सकारात्मकता के साथ सशक्तीकरण में परिवर्तित करते हैं। ऐसे पात्र विकलांगों एवं अन्य सभी के लिए भी प्रेरणादायक है। हिंदी–साहित्य के भीतर विकलांग–विमर्श धीरे–धीरे अपनी जड़ें मज़बूत कर रहा है और यह अवश्य ही शोध की इस नई दिशा में उन्नति करेगा।

सन्दर्भ–सूची दृ

1. वर्मा, आचार्य रामचंद्र (सं.), लोकभारती वृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश, इलाहबाद, लोकभारती प्रकाशन, ग्यारहवाँ संस्करण, 2004, पृ. 831

(लोकभारती वृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश (आचार्य रामचंद्र वर्मा द्वारा सम्पादित) के अनुसार 'विकलांग' शब्द का अर्थ है–

("जिसका कोई अंग टूटा या बेकाम हो, खंडित अंगवाला।")

2. ꣸ ꣸ ꣸ . इ इ ब . बवउ/पिदकप/पदकपं/2016/01/160123–कपेंइसमक–बवउउनदपजल–वइरमबजपवद–कपअलंदह–चउ–उस (09.01.2020)

("प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने 27 दिसंबर, 2015 को अपने रेडियो संबोधन 'मन की बात' में कहा था कि शारीरिक रूप से अशक्त लोगों के पास एक दिव्य क्षमता है और उनके लिए 'विकलांग' शब्द की जगह 'दिव्यांग' शब्द का इस्तेमाल किया जाना चाहिए।")

3. प्रेमचंद, रंगभूमि, नयी दिल्ली, प्रकाशन संस्थान, संस्करण, 2019, पृ. 05
4. पूर्वोक्त, पृ. 477
5. प्रसाद, राजा राधिकारमण, सूरदास, सूर्यपुरा (शाहबाद), श्री राजराजेश्वरी साहित्य मंदिर, तृतीय संस्करण, पृ. 04
6. पूर्वोक्त, पृ. 13
7. पूर्वोक्त, पृ. 125
8. चन्द्र, जगदीश, टुंडा लाट, नयी दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1978, पृ. 248
9. चन्द्र, जगदीश, लाट की वापसी, पंचकूला (हरियाणा), आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम संस्करण, 2017, पृ. 09
10. सिन्हा, मृदुला, ज्यों मेहँदी को रंग, नयी दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, दसवाँ संस्करण, 2016, पृ. 53
11. पूर्वोक्त, पृ. 124
12. मिश्र, रामदरश, बिना दरवाज़े का मकान, दिल्ली, विद्यार्थी प्रकाशन, संस्करण, 2012, पृ. 105
13. पूर्वोक्त, पृ. 92

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 370-373
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दलित कविता और पौराणिक दलित पात्र

–प्रा. नवनाथ जगताप
अध्यक्ष, हिंदी विभाग, श्री संत दामाजी महाविद्यालय, मंगलवेढा, जि.सोलापुर – महाराष्ट्र –413 305

प्रस्तावना :–

मराठी और हिंदी दलित पात्रों का जो चित्रण साहित्य एवं कविता में हमें दिखाई देता है। वह मानवता के विरोधी समाज का आईना है। इन पात्रों पर अत्याचार और अन्याय की एक लंबी परंपरा हमें कविताओं में दिखाई देती है। सवर्ण समाज से भरे हुए लोगों के बिच दलित पात्र छटपटाता हुआ हमें नजर आता है। परंपरागत रूढिवादी विचारों के कारण आज भी उन्हें प्रताडित किया जाता है। दलित पात्रों की विकास बाधा सवर्ण समाज की मानसिकता है। शिक्षा पाकर दलित पात्र अपना विकास करना चाहते है, किंतु सवर्ण मानसिकता आज उनके विकास में रोडा बनकर खडी है।

हिंदी दलित कविता में 'पौराणिक दलित पात्र'रू

सदियों से मनुवादी व्यवस्था द्वारा दी गई विषमता की कालकोठरी से दलितों को मुक्त करना दलित कविता का उद्देश्य है। धर्मव्यवस्था, जातिव्यवस्था तथा अन्याय, अत्याचार की बेडियों को तोडकर मानवमुक्ति का संदेश आज का कवि देता है। पौराणिक पात्र इस प्रकार से आसानी से बाहर नहीं आ पाए।

मराठी की तरह हिंदी दलित कविता में फुटकर रूप में दलित पात्र नहीं मिलते। हिंदी कवियों ने पौराणिक दलित पात्रों को चुनकर उनके विचार वृत्ति तथा कार्य को काव्य के जरिए हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है। हिंदी कवियों का यह कार्य स्वनोचित है।

हिंदी कवियों के पौराणिक दलित पात्रों का चित्रण निम्नांकित है–

1) शबरीरू

'शबरी' त्रेता युग की एक दीन–दलित नारी जिसका मार्मिक एवं प्रभावशाली चित्रण कवि नरेश मेहता ने किया है। शबरी की कथा निम्नवर्ग की एक साधारण स्त्री के आत्मिक एवं अध्यात्मिक संघर्ष की ऐसी कथा है जो रामायण के शीर्षस्थ पात्रों, चरित्रों में भी अपनी पहचान बनाई रखती है।

शबरी एक सहृदय नारी थी, जिसका मन प्यार और दया से ओतप्रेत था। पशु–पक्षियों का शिकार कर जीवनयापन करना उसे पसंद नहीं था। उसे अपना घर बुचडखाना जैसे लगता था–

ष्घर क्या था बुचडखाना था,
माँस महकता रहता,
कोई छूरी से काटता

रक्त –लकीर भूमि पर।ष्1
शबरी एक मेहनती स्त्री है। इसका वर्णन कवि करता है–
ष्सुर्योदय के पहले ही,
गुरू–गोशाला में होती,
दाना–पानी दे सबको,
तब गाएँ दुहती होती,
ताजे गोबर से नित ही,
तब आँगन लीपे जाते,
आश्रम की होती नित्य सफाई।ष्2
प्रभु की सेवा करने की इच्छा से वह भागी थी। इसलिए उसकी हत्या करने के लिए उसके परिजन आश्रम पहुँचे। वहाँ वह भक्ति में लीन थी–
ष्अब भी शबरी तन्मय थी,
था दीपक भी तो निश्च्चल,
दिग्विमूढ़ वह खडा हुआ था,
शबर और शाबर–दल।ष्3
शबरी अब मनुष्य नहीं रही। वह मानवजाति से उपर उठ चुकी है। इसका चित्रण कवि ने किया है–
ष्जब तक शबरी शुद्रा थी,
थी तब तक वह प्राकृतजन,
अब वह नर से भी उपर
हे! शक्तिदेवी नारायण,
वह जन्म–मरण से उपर।ष्4
शबरी को मनुष्य जाति की क्षुद्रता का सही ज्ञान प्राप्त हुआ है, इसलिए वह प्रार्थना करती है–
ष्तेरी विशाल रचना में,
मैं ज्हास–पात ही केवल,
शबरी को तो है तू ही,
आराध्य और बस तप–बल।ष्5
उपर्युक्त पंक्तियों से शबरी के असामान्य और असाधारण होने का परिचय होता है। इस तरह कवि नरेश मेहता ने 'शबरी' में शबरी जैसी दलित और अछूत नारी का चित्रण किया है।

2) शम्बूकरू

'शम्बूक' खंडकाव्य में 'शम्बूक' का चरित्र महत्त्वपूर्ण है। भले ही इसमें राम राजा के रूप में प्रस्तुत हुए है। फिर भी कथावस्तु का मूलाधार 'शम्बूक' पर आधारित है। अतरू हम उसे प्रस्तुत खंडकाव्य का प्रधान नायक भी कह सकते है। शम्बूक एक निम्न जाति में उत्पन्न साधारण भूमि–पुत्र है, जो उच्चवर्ग के द्वारा प्रताडित एवं तिरस्कृत हुआ है। वह समता का पक्षधर है–

कवि ने शम्बूक को एकशूद्र एवं भूमि–पुत्र दिखाया है–

ष्शुद्र हूँ मैं,
मानव समाज में,
मेरा अस्तित्व बहुत अल्प है।ष्6

शम्बूक आधुनिक विचारों से संपन्न साधारण मनुष्य के रूप में चित्रित किया है–

ष्वर्ण से होगा नहीं अब त्राण,
कर्म से ही मनुज का कल्याण,
जन्म से निश्घ्चित न होगा वर्ण,
वर्ग तक सीमित न होगा स्वर्ण,
कर्म से ही श्रेष्ठता अधिकार,
कर्म सबके लिए सम आधार।ष्7

अतरू हम कह सकते है कि शम्बूक का चरित्र आज के युग का परिलक्षित होता है। वह व्यक्ति को महत्त्वपूर्ण मानते हुए उसकी श्रेष्ठता का विधान कर्म को मानता है न कि जाति एवं वर्ण को। शम्बूक समता का पक्षधर होने के साथ–साथ, स्पष्टवक्ता, निर्भिक भी है। अतरू अपने विचारों से आज के समान में व्याप्त बुराईयों, वर्ग सीमित व्यवस्था पर करारा व्यंग करता है और स्वस्थ्य समाज और व्यवस्था के लिए कर्मप्रधान जीवनप्रणाली को महत्त्वपूर्ण मानता है।

3) कर्णरू

'कर्ण' महाभारत महाकाव्य का अत्यंत यशस्वी पात्र है। उसका जन्म पांडवों की माता कुंती के गर्भ से हुआ था। कुंती अविवाहित थी इसलिए उसने कर्ण को मंजूषा में रख पानी में बहा दिया। वह मंजूषा अधिरथ नाम के सूत को मिली। अधिरथ की कोई संतान नहीं थी, इसलिए उन्होंने और उनकी पत्नी राधा ने कर्ण को अपना बच्चा मान लिया।

कर्ण का शुद्रत्व कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

ष्जिसके पिता सूर्य थे और माता कुंती,
उसका पलना हुई धार बहती हुई पिटारी,
चखा भी नहीं जननि का क्षीर,
निकला सूत–पूत्र कर्ण सभी,
युवकों में अद्भूत वीर।ष्8

हस्तिनापुर के रणकौशल मैदान में अर्जुन से लडने के लिए कर्ण को इसलिए रोका गया कि वह सूतपूत्र है। वही दुर्योधन ने उसे अपना मित्र बनाकर अंगदेश का राजा बना दिया।

ष्अर्जून से लडना हो तो,
मत बनो सभा में मौन,
नाम–धाम कुछ कहो,
बताओ! तुम जाति हो कौन?ष्9

एक दिन परशुराम कर्ण की जाँघपर सिर रखकर सो रहे थे, तब कर्ण सोचता है–

ष्हाय कर्ण! तु क्यों जन्मा था?
जन्मा तो क्यों वीर हुआ?
धँस जाए वह देश अतल में,
गुण की जहाँ नहीं पहचान,
जाति, गोत्र के बल से ही,
आदर पाते है जहाँ सूजान।ष्10

कर्ण का जीवन, कर्ण का व्रत, कर्ण के वचन सब आदर्श थे। एक शूद्र, दलित होकर भी उसने इतने बडे आदर्श विश्ध्व के सामने रखे है। कवि कर्ण के चित्रण से तमाम दलित, पीडित को बदल देना चाहता है। कर्ण का जीवन संघर्ष, दुविधा से भरा हुआ था।

इस तरह रामकुमार वर्मा की कविता एकलव्य के निहित गुणों को उजागर किया गया है। समाज जिन्हें शुद्र मानता है, उनमें सचमुच श्रेष्ठता के गुण दिखाई देते है। कई बार वर्णव्यवस्था, जातिव्यवस्था के कारण वे अपने गुणों का प्रदर्शन नहीं कर पाते। वे अपना विकास नहीं कर पाते और अपनी प्रगति से वंचित रह जाते है।

निष्कर्षरू

हिंदी कवियों ने पौराणिक दलित पात्र चुने है लेकिन उन्होंने आज के दलित की दशा का जिम्मेदार उन्हें नहीं ठहराया और न गुस्सा उतारा है। उन्होंने पौराणिक दलित पात्रों को अपने–अपने काल में सर्वश्रेष्ठ साबित किया है। शबरी को श्रेष्ठ भक्त के रूप में, शम्बूक को अन्यायी समाजव्यवस्था पर विजय प्राप्त करते हुए और कर्ण को महान योध्दा के रूप में दिखाया है। हिंदी कवियों के इन दलित पात्रों के चित्रण से दलित को प्रेरणा मिलती है।

संदर्भ सूचीरू

1. नरेश मेहतारू शबरी, पृ.27
2. वही, पृ.28
3. वही, पृ.29
4. वही, पृ.30
5. वही, पृ.31
6. डॉ. जगदीश गुप्तरू शम्बूक, पृ.14
7. वही, पृ.8
8. रामधारी सिंह 'दिनकर'रू रश्मीरथी, पृ.13
9. वही, पृ.32
10. वही, पृ.35

चलभाषरू 9765318383

ई–मेलरू दंअदंजीरंहजंच70 ⁄ हउंपस.बवउ

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 374-377
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी पत्रकारिता को हरियाणा का योगदान

–अनिल कौशिक

अध्यापक, राजकीय मॉडल संस्कृति वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय सांघी, रोहतक।

हरियाणा पत्रकारिता का बहुत बड़ा केंद्र रहा है, आजादी से पहले भी और बाद में भी। यहां की पत्रकारिता ने संपूर्ण भारतवर्ष में एक विशेष पहचान एवं स्थान बनाया। सन् 1884 ई० में श्री जियालाल जैन ने "जयप्रकाश" के नाम से हरियाणा में पहला अखबार प्रकाशित किया। जिसका प्रकाशन फारुखनगर (हरियाणा) से किया गया । पत्रकारिता ने ही हरियाणा प्रदेश में आजादी की ज्वाला को तीव्र प्रज्वलित करने के लिए अलख जगाई।

30 मई का दिन हिंदी पत्रकारिता के लिए बहुत ही शुभ दिन कहा जा सकता है क्योंकि इसी दिन ष्उदंत–मार्तंडष नामक प्रथम हिंदी समाचार पत्र का प्रकाशन हुआ। 30 मई 1826 को पंडित जुगलकिशोर शुक्ल ने इस समाचार पत्र को साप्ताहिक अंक के रूप में कोलकाता से प्रकाशित करना आरंभ किया। उदंत–मार्तंड का शाब्दिक अर्थ है – "समाचार सूर्य"। उदंत–मार्तंड अपने नाम के अनुरूप ही वास्तव में हिंदी पत्रकारिता की दुनिया में सूर्य के समान रहा। उस समय हिंदी भाषा के जानकारों को इस प्रकार के समाचार पत्र की बहुत ही आवश्यकता महसूस हुई। सभी प्रकार के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए, चाहे वे उद्देश्य राजनीतिक हों या सामाजिक हों, को ध्यान में रखकर इस समाचार पत्र का प्रकाशन किया गया ।भारत में पत्रकारिता की शुरुआत पंडित जुगलकिशोर शुक्ल ने ही की थी परंतु इसका श्रेय राजा राममोहन राय (जोकि बहुत बड़े समाज सुधारक थे) को भी दिया जाता है। राजा राममोहन राय ने सर्वप्रथम प्रेस को सामाजिक उद्देश्यों से जोड़ा । उन्होंने भारत में सामाजिक, राजनीतिक , धार्मिक एवं आर्थिक हितों का समर्थन करते हुए समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं अंधविश्वास को जड़ से मिटाने के लिए अपने पत्रों द्वारा जनता में जागरूकता पैदा की। जिसमें सबसे अहम पत्र "बंगाल–गजट" रहा जो वर्ष 1816 में प्रकाशित हुआ । बंगाल गजट भारतीय भाषा का पहला समाचार पत्र है। इस समाचार पत्र को श्री गंगाधर भट्टाचार्य जी ने संपादित किया। लोगों में चेतना फैलाने के लिए श्री राजा राममोहन राय जी ने संवाद कौमुदी, बंगाल हेराल्ड एवं मीरातुल जैसे पत्र भी निकाले।धीरे–धीरे इस तरह के हिंदी भाषा के कई प्रकाशन शुरू हुए, जिनमें पंडित जुगल किशोर शुक्ल का समाचार पत्र उदंत मार्तंड भी था, जिसको हिंदी भाषा का पहला समाचार पत्र माना जाता है। इस पत्र ने समाज में चल रहे विरोधाभासों और अंग्रेजी शासन के विरुद्ध आम जन–भावना की आवाज को प्रज्वलित किया परंतु 19 दिसंबर 1827 को इस प्रकाशन को बंद करना पड़ॉ जिसका कारण कुछ कानूनी गतिविधियां और ग्राहकों का पर्याप्त सहयोग न मिलना रहा और धीरे–धीरे प्रकाशक पंडित युगल किशोर शुक्ल की माली हालत खस्ता होती गई। हिंदी पत्रकारिता ने बहुत ही लंबा सफर तय किया है। उस समय पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने उदंत मार्तंड को जो रूप दिया, उस समय

किसी ने भी यह कल्पना भी नहीं की होगी कि हिंदी पत्रकारिता इतना शुदृढ और लंबा सफर तय करेगी। आपातकाल एवं आजादी की लड़ाई से दो–दो हाथ करने के लिए इन समाचार पत्रों ने लोगों में जागृति पैदा की । समाचार पत्रकारिता या अखबारों के क्षेत्र में इन 190 वर्षों में बहुत ही तेजी देखने को मिली तथा देश–प्रदेश में साक्षरता की दर बहुत बढी । ग्राम सत्र पर राजनीतिक और सामाजिक चेतना भी बढी एवं हिंदी भाषी पाठक हिंदी समाचार पत्रों को पूर्ण रूप से समर्थन देने लगे। समाचार पत्रों का कागज बेशक अंग्रेजी समाचार पत्रों से बेहतर ना हो फिर भी वे हिंदी समाचार पत्रों को तवज्जो देते और खरीदते, जिससे हिंदी भाषा पत्रकारिता को प्रोत्साहन मिला।

हरियाणा के पत्रकारिता इतिहास के संबंध में देखा जाए तो इसकी विरासत का भी चर्चा होती है। हरियाणा 1 नवंबर 1966 को राज्य के रूप में अस्तित्व में आया। इससे पहले पंजाब और हरियाणा संयुक्त रूप से पंजाब राज्य कहा जाता था। हरियाणा अस्तित्व में आने से पहले की पत्रकारिता के राष्ट्रीय केंद्र के रूप में पंजाब की विशिष्ट पहचान थी। आजादी से पहले जहां एक तरफ कोलकाता, भोपाल , मुंबई, इलाहाबाद इत्यादि पत्रकारिता के मुख्य केंद्र थे दूसरी ओर लाहौर इनके बाद सबसे अधिक सक्रिय केंद्र था। भारत–पाक विभाजन के समय लाहौर पत्रकारिता का दो तिहाई भाग जालंधर व अंबाला में स्थानांतरित हो गया और कुछ पत्रकारिता समूह राजधानी दिल्ली आकर बस गए। इन सभी बदलावों के बावजूद हरियाणा ने पत्रकारिता के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट एवं स्वतंत्र उपस्थिति दर्ज कराई है।

पंडित राधाकृष्ण मिश्र, बाबू बालमुकुंद गुप्त एवं पंडित माधव प्रसाद जैसे पत्रकारिता के विद्वानों ने हरियाणा राज्य की पहचान राष्ट्रीय स्तर पर बनाने में अहम भूमिका निभाई। बाबू बालमुकुंद गुप्त को विशेषकर शिखर पत्रकार के रूप में जाना जाता है, उन्होंने अपनी पत्रकारिता लाहौर और मथुरा से शुरू की परंतु पंडित मदनमोहन मालवीय को वे प्रेरणा स्रोत मानकर कालाकांकर चले गए। सन् 1887–1888 में भारत मित्र और बंगवासी के माध्यम से उन्होंने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। बाबू बालमुकुंद गुप्त और श्री माधव प्रसाद मिश्र समकालीन थे। गुप्तजी रेवाड़ी के समीप स्थित गांव गुड़ियानी के निवासी थे जबकि मिश्र जी भिवानी के रहने वाले थे। मिश्रा जी सन् 1900 में सुदर्शन के संपादक बने और उसके बाद शॉप वैश्योपकारक (कोलकाता) के संपादक भी बने। वैश्योपकारक समाचार पत्र के द्वारा उन्होंने हिंदी पत्रकारिता को नया आयाम प्रदान किया। श्री राधाकृष्ण मिश्र जो कि श्री माधव प्रसाद मिश्र जी के छोटे भाई थे, उन्होंने भारत मित्र और वैश्योपकारक के रूप में पत्रकारिता की बहुत ही प्रशंसनीय सेवा की।

हरियाणा साहित्य अकादमी के निदेशक एवं वरिष्ठ पत्रकार डॉक्टर चंद्र त्रिखा कहते हैं कि – "आश्चर्यजनक एवं विशिष्ट बात यह थी कि गुप्त जी की शैक्षणिक पृष्ठभूमि अधिक समृद्ध नहीं थी लेकिन स्वाध्याय, चिंतन व अनुभव के बल पर उन्होंने एक लंबी व चर्चित पारी खेली। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे दिग्गज भाषाविद् एवं पत्रकारों से प्राय बहस होती तो निर्णय सदा गुप्त जी के ही पक्ष में रहता था।" शिव शंभू का चिट्ठा नामक निबंध संग्रह की रचना के उपरांत वे अपने समय के कद्दावर पत्रकारों की सूची में शामिल हो गए। विद्यार्थियों के लिए हरियाणा की पत्रकारिता शोध का विषय है। इसके लिए पंडित माधव प्रसाद मिश्र, बाबू बालमुकुंद एवं पंडित राधाकृष्ण मिश्र के नाम से विश्वविद्यालयों में चेयर स्थापित की गई हैं।

हरियाणा में पत्रकारिता की शुरुआत फारुखनगर गुरुग्राम से हुई। श्री जीयालाल जैन ने सन 1884 में

पहला मासिक समाचार पत्र "जैन प्रकाश" के नाम से प्रकाशित किया। कुछ समय बाद इस समाचार पत्र का नाम "जियालाल प्रकाश" कर दिया गया और फिर इसका नाम "जियालाल प्रकाश हिंदुस्तान" रखा गया। कुछ लोग "हरियाणा झज्जर" को भी राज्य का पहला अखबार मानते हैं, जिसके संपादक दीनदयाल शर्मा थे लेकिन विद्वान की सर्व सहमति मान्यता श्री जियालाल जैन के अखबार को ही मिलती है। वरिष्ठ पत्रकार डॉ केशवानंद ममगाईं की पुस्तक में भी श्री जियालाल जैन के अखबार का पहले समाचार पत्र के रूप में उल्लेख मिलता है। इनके समकालीन बाबू कन्हैयालाल ने "जाट समाचार" नामक पत्र का प्रकाशन सन् 1888 में गुरुग्राम से शुरू किया। भिवानी से पंडित नेकीराम शर्मा ने सन् 1922–23 में संदेश नामक राष्ट्रवादी पत्र का प्रकाशन किया और इसी समय "भक्ति" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन भी रेवाड़ी से शुरू हुआ। इसी समयावधि में अंबाला छावनी से "ब्राह्मण" पत्र का संस्करण शुरू हुआ तथा सन् 1926 में "अहिर हितेषी" और "यादव हितेषी" नामक समाचार पत्रों का प्रकाशन शुरू किया गया। हाथ से लिखे अखबार का प्रकाशन सन् 1942–43 में शुरू हुआ, जिसको "नवप्रयास" के नाम से जाना जाता था।

हरियाणा राज्य अलग होने के बाद से अनेक समाचार पत्र प्रकाशित हुए कुछ निरंतर चलते रहे और कुछ बाद में बंद हो गए। हरियाणा राज्य बनने से पहले निम्नलिखित समाचार पत्र अस्तित्व में थेरू– आदर्श बाल पत्रिका, सुधारक, हिंदी संदेश, आर्य, राष्ट्रदूत, अमर ज्योति, वक्त की आवाज, हरियाणा संदेश, सरकार, चेतना, जगत नेत्र, ग्राम भावना, पुरानी यादें, शुभ समाचार, न्याय पक्ष, हिसार मिल पत्रिका, पूर्वी पंजाब, रोहतक निर्माण, हरियाणा दर्पण, नरकेसरी, ज्ञानोदय ज्योतिष और जागृत समाज इत्यादि। इन सभी पत्र–पत्रिकाओं ने अपने समय में स्वस्थ सामाजिक मूल्यों का सृजन किया और स्वयं को समाज का आधारभूत स्तंभ स्थापित किया।

हरियाणा राज्य के अस्तित्व में आने के पश्चात यहां प्रकाशित होने वाले पत्र–पत्रिकाओं की संख्या में वृद्धि हुई। एक के बाद एक बहुत से पत्र पत्रिकाएं यहां से प्रकाशित होने लगे। आपातकाल सन 1977 के बाद हरियाणा राज्य से अनेक हिन्दी समाचार पत्रों का प्रकाशन होने लगा। डॉक्टर चंद्र त्रिखा के अनुसार "हरियाणा दैनिक पत्रिका जो सन 1969 में प्रकाशित हुई उसे एक उपलब्धि माना गया। इसके बाद हरियाणा कांग्रेस पत्रिका, विशाल हरियाणा, हरियाणा चित्र, जैन साहित्य, सप्तसिंधु, हरियाणा संवाद, पंचायती राज हरियाणा, हरियाणा सहकारी प्रकाश, हरियाणा चिल्ड्रन, हरियाणा खेती उद्यान, कुरुक्षेत्र टाइम्स, राजधर्म, आजाद दीप, सुधारक संदेश, भिवानी पत्रिका, करनाल दर्पण, युवक संसार, जांगिड़ ब्राह्मण और हरियाणा संघ जैसे बहुत ही उच्च स्तर के समाचार पत्र प्रकाशित होने लगे। नवनाद, संभावना, शोषित समाज, अंबाला संदेश, मानस मयंक, तेरी मेरी बात, भारत जाने और राष्ट्र सुधार जैसे अनेकाअनेक दैनिक, साप्ताहिक, मासिक एवं त्रैमासिक पत्र–पत्रिकाओं का हरियाणा राज्य से प्रकाशन शुरू हुआ।

हरियाणा राज्य से पहला राष्ट्रीय हिंदी अखबार 5 सितंबर 1996 को प्रकाशित होना शुरू हुआ। अब लगभग 400 समाचार पत्र और पत्रिकाएं हरियाणा राज्य से हिंदी भाषा में प्रकाशित होते हैं। इतनी बड़ी संख्या में पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन यह दर्शाता है कि समाज में पत्र–पत्रिकाओं की आवश्यकता और रुचि किस प्रकार बढ़ रही है। किस प्रकार पत्र, पत्रिकाएं और समाचार पत्र समाज को नई दिशा देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। हिंदी भाषा युक्त पत्र–पत्रिकाएं राष्ट्र निर्माण में मील का पत्थर साबित हुई हैं। सुनीत मुखर्जी जो महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय के पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग के सहायक प्रोफेसर एवं निदेशक के अनुसार "इस

डिजिटल युग में मोबाइल जर्नलिज्म तथा न्यू मीडिया माध्यम के जरिए प्रभावी भाषा पत्रकारिता करने के लिए टेक्नोलॉजिकल टूल्स की जानकारी होना अत्यंत आवश्यक है।"

निष्कर्ष :–

सभी प्रकार की पत्र–पत्रिकाओं की भाषा सरल , मूल्य कम और समाज के हर क्षेत्र में उपलब्धता अनिवार्य होनी चाहिए ताकि सामान्य जनमानस तक पहुंच बनाई जा सके। पत्र–पत्रिकाओं को राजनीति से प्रभावित न होकर स्वतंत्र रूप से वास्तविकता का दर्पण होना चाहिए और अब इस विषय पर भी विचार करना है कि समाज को सही दिशा देने के लिए इन समाचार पत्रों और पत्र–पत्रिकाओं का कैसा रूप होना चाहिए जिससे आधुनिक समाज में सुधार हो और बुराईयों एवं समस्याओं का समाधान हो सके ।

फोन नंबर – 9253008024
गांव व डाकखाना– घिलौड़ खुर्द
त. व जिला – रोहतक
पिन कोड– 124303

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 378-380
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी भाषा के क्षेत्र में गुरुकुल शिक्षा का योगदान

–डॉ. सुशील कुमार

संस्कृत अध्यापक

भारतवर्ष में अनादिकाल से विद्यार्थी गुरुकुल में विद्या अध्ययन करते रहे हैं। वैदिक साहित्य में भी इसके अनेक प्रमाण देखने को मिलते हैं। प्राचीनकाल में गुरु – शिष्य परंपरा से ही विद्या ग्रहण की जाती थी। विद्यालय या गुरुकुल में विद्यार्थी अपने परिवार से दूर रहकर गुरु के परिवार का अंग बनकर शिक्षा ग्रहण करता था। समाज में गुरुकुल का बहुत अधिक महत्व एवं प्रतिष्ठा होती थी। प्रसिद्ध एवं श्रेष्ठ आचार्यों के गुरुकुल में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को समाज में विशेष सम्मान मिलता था। इसके अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं – श्रीराम ने वशिष्ठ ऋषि के आश्रम में रहकर विद्या प्राप्त की। इसी प्रकार पांडवों ने द्रोणाचार्य के पास रहकर विद्या ग्रहण की और श्रीकृष्ण ने संदीपनि ऋषि के गुरुकुल में ज्ञान ग्रहण किया। प्राचीन समय में गुरुकुल में अनेक प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी। प्रत्येक क्षेत्र की शिक्षा के लिए एक पृथक गुरु होता था, जो अपने क्षेत्र में निपूर्ण होता था। प्रायरू विद्यार्थी को सामान्य शिक्षा या प्रारम्भिक शिक्षा के लिए अन्य तथा बाद में उच्च शिक्षा या विशिष्ट शिक्षा के लिए भिन्न आश्रम या गुरु के पास अध्ययन करने के लिए भेजा जाता था क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति सभी विद्याओं में दक्ष नहीं हो सकता। जो विद्यार्थी विद्या ग्रहण करने में अग्रगण्य होता था, उसको स्वयं गुरु भी अपने स्तर की शिक्षा पूर्ण होने पर अन्य विद्याओं की शिक्षा ग्रहण करने के लिए दूसरे गुरुकुल में भेज देते थे।

प्राचीन शिक्षा प्रणाली में अनौपचारिक तथा औपचारिक दो प्रकार के शैक्षणिक केन्द्रों का उल्लेख मिलता है। औपचारिक शिक्षा आश्रमों, गुरुकुलों और मंदिरों के माध्यम से प्रदान की जाती थी तथा परिवार, पण्डित, सन्न्यासी आदि के माध्यम से अनौपचारिक शिक्षा मिलती थी। धर्मसूत्रों में वर्णन प्राप्त होता है कि माता ही बच्चे की प्रथम और श्रेष्ठ गुरु होती है। बाद में सामाजिक विकास के साथ – साथ शैक्षणिक संस्थाएँ स्थापित होने लगी। वैदिककाल में परिषद, शाखा, चरण आदि संस्थाओं की स्थापना तो हुई परन्तु व्यवस्थित शिक्षण संस्थाएँ तो बाद में बौद्धों द्वारा ही आरंभ की गई। उस समय आश्रम या गुरुकुलों के अंतर्गत प्रायरू तीन प्रकार की शिक्षा संस्थाएं होती थी –

1) गुरुकुल – इस संस्था में विद्यार्थी गुरु के पास रहकर विद्या ग्रहण करते थे।

2) परिषद – इस संस्था में विशेषज्ञों के द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती थी।

3) तपस्थली – इस संस्था में बड़े–बड़े सम्मेलनों, प्रतियोगिताओं, सभाओं और प्रवचनों से ज्ञान अर्जित किया जाता था। नैमिषारण्य इसका उत्तम उदाहरण है।

गुरुकुल या आश्रम के आचार्यों को उपाध्याय और प्रधानाचार्य या कुलपति को महा उपाध्याय कहा जाता

था। वस्तुतः बाद में इसके अर्थ में परिवर्तन देखने को मिलता है, जो अध्यापक धन ग्रहण करके शिक्षा प्रदान करते थे, उन्हें उपाध्याय कहा गया और निशुल्क शिक्षा प्रदान करने वाले को आचार्य कहा जाता था। गुरुकुलों की स्थापना प्रायः वनों में या गावों से बाहर की जाती थी। अधिकतर आचार्य निर्जन वनों में निवास करना पसन्द करते थे। वाल्मीकि, सन्दीपनि आदि ऋषियों के आश्रम वनों में ही थे और इनके गुरुकुल में दर्शनशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष एवं वेद भी पढ़ाये जाते थे। जिससे उन्हें एकान्त एवं पवित्र वातावरण प्राप्त हो सके। इससे दो लाभ थे; एक तो गृहस्थ आचार्यों को आजीविका हेतु सामग्री एकत्रित करने में सुविधा रहती , दूसरे ब्रह्मचारियों को भिक्षाटन में अधिक समय नहीं लगता। प्रायरू राजा का प्रोत्साहन पाकर विद्वान् उनकी राजधानी तथा आसपास के तीर्थ स्थानों में ही रहने लग जाते और वह नगर शिक्षा का केन्द्र बन जाता । इसी प्रकार तक्षशिला, पाटलिपुत्र, मिथिला, काशी, नासिक आदि प्रसिद्ध केन्द्रों का निर्माण हुआ है।

हिन्दू सम्प्रदायों एवं मठों के आचार्यों के कारण द्वितीय शताब्दी के आस पास मठ शिक्षा के केन्द्र बन गये। इनमें शंकराचार्य, मध्वाचार्य, रामानुजाचार्य, निंबार्काचार्य आदि के मठ प्रसिद्ध हैं। सार्वजनिक शिक्षण संस्थाएँ सर्वप्रथम बौद्ध विहारों में प्रारम्भ हुई थीं। महात्मा बुद्ध ने उपासकों की शिक्षा–दीक्षा पर अत्यधिक ध्यान दिया। इन संस्थाओं में धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन, अध्यापन एवं आध्यात्मिक ज्ञान दिया जाता था। लगभग 300 ई० पू० सम्राट अशोक ने बौद्ध विहारों पर विशेष ध्यान दिया। इसके बाद ये विद्या के महान केन्द्र बनते चले गये। वास्तव में ये उस समय के गुरुकुल ही थे। ये शिक्षा प्रचार की दृष्टि से जनसाधारण के लिए सुलभ और सुगम्य थे। तक्षशीला विश्वविद्यालय लगभग 1000 ई० पू०, नालन्दा विश्वविद्यालय लगभग 450 ई०, वल्लभी लगभग 700 ई. , विक्रमशिला लगभग 800 ई० आदि मुख्य शिक्षण संस्थाएँ थीं। इन संस्थाओं का अनुसरण करते हुए सनातन धर्मावलंबियों ने भी मन्दिरों में विद्यालय खोले जो बाद में मठों के रूप में परिवर्तित होते गए।

9वी० शताब्दी में आदि शंकराचार्य ने आचार्य बादरायण द्वारा प्रणीत वेदांतसूत्रों की गहनता और गंभीरता के कारण उनकी व्याख्या करने की आवश्यकता अनुभव की। इसलिए इन सूत्रों पर 11भाष्य विभिन्न आचार्यों द्वारा लिखे गए किंतु उन सभी में विशेष प्रसिद्धि आचार्य शंकर के शारीरक भाष्यश को प्राप्त हुई। आचार्य शंकर ने न केवल प्रस्थान–त्रयी (ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् और भगवद्गीता) पर अद्वैतवेदांत की दृष्टि में भाष्य प्रस्तुत किया अपितु अन्य अनेक मौलिक ग्रंथों की रचना की और भारत की चारों दिशाओं में मठ स्थापित करते हुए अद्वैत की भागीरथी को संपूर्ण विश्व में प्रवाहित किया। भारत में चारों दिशाओं में विद्यमान इन चारों आश्रमों ने ही वैदिक शिक्षा पद्धति का प्रचार – प्रसार किया और गुरुकुल परंपरा को आगे बढ़ाते हुए सनातन संस्कृति की रक्षा की।

गुरुकुल पद्धति आप्त आचार्यों एवं तत्त्वदृष्टा ऋषियों का गूढ चिंतन है। गुरुकुल–शिक्षा के मन्तव्यों और सिद्धांतों को जगतकल्याण हेतु जन – जन तक पहुंचाने एवं प्रसारित करने की आवश्यकता है। एकमात्र प्राचीन शिक्षा प्रणाली ही श्रेष्ठ है, आज यह तथ्य किसी भी तथ्य की तुलना में मानव मन को संतुष्टि प्रदान करने में अधिक सक्षम है। इसके द्वारा एक आदर्श एवं मर्यादित समाज की संरचना की जा सकती है किन्तु आज समाज में व्यक्ति अपने बच्चों को गुरुकुल में नहीं पढ़ाना चाहते। वे गुरुकुलों की शिक्षा को केवल पूजा – पाठ आदि की प्राचीन शिक्षा पद्धति मानते हुए, आधुनिक आंग्लभाषा के विद्यालयों में शिक्षा दिलाते हैं, जिसके कारण बच्चों को ना तो संस्कार ही मिलते हैं और ना ही अपनी मातृभाषा का ज्ञान प्राप्त होता है। मातृभाषा के ज्ञान के बिना ऐसे बच्चे समाज में सामान्य व्यवहार भी नहीं कर पाते। आंग्लभाषा के विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थी अपनी

मातृभाषा या बोलचाल की प्रांतीय भाषा को न बोल ही पाते हैं और ना ही समझते हैं। आज हरियाणा प्रदेश के शहरों में 70: से अधिक बच्चे ऐसे हैं, जिनको हिंदी भाषा की संख्या और वर्णमाला का भी ज्ञान नहीं है। समाज में हिंदी भाषा के प्रति गलत दृष्टिकोण होता जा रहा है, व्यक्ति हिंदी बोलने वालों को पिछड़ा हुआ मानते हैं, जबकि हिंदी भाषा का व्याकरण और व्यावहारिक शब्दावली अधिक श्रेष्ठ है।

आंग्लभाषा के विद्यालयों में बढ़ने वाले सभी विद्यार्थी विदेश नहीं जा पाते लेकिन जो यहां रह जाते हैं, उनको न तो अपनी भाषा का ही ज्ञान प्राप्त होता है और न साहित्य – संस्कृति का ही। ऐसे संस्कारहीन विद्यार्थी भविष्य के अच्छे नागरिक भी नहीं बन सकते और अपने बुजुर्गों की सेवा भी नहीं कर सकते। इसी कारण आज समाज में वृद्ध – आश्रमों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। आज संस्कारहीनता के कारण ही समाज में अनेक ऐसी बुराइयां देखने को मिलती है, जो कुछ वर्ष पूर्व हमारे समाज में नहीं थी । यथा – धूम्रपान, मद्यपान, दवाईयों का नशा इत्यादि। आंग्लभाषा के विद्यालयों में पड़े हुए विद्यार्थी केवल अपने अधिकारों के बारे में तो जानते हैं किंतु आजीवन वे अपने कर्तव्यों से अनभिज्ञ रहते हैं। इसलिए समुचित रूप से अपने दायित्व को वहन नहीं कर पाते जबकि गुरुकुल में अपने देश, धर्म और संस्कृति का ज्ञान भी बच्चे को आरंभ से ही दिया जाता है, जिससे बचपन से ही विद्यार्थी के अंदर देश प्रेम की भावना विकसित होने लगती है और वह युवा अवस्था तक आते – आते देश व समाज के प्रति अपने कर्तव्यों और दायित्वों को अच्छी प्रकार से समझने लगता है, जिससे वह एक अच्छे नागरिक के रूप में स्वयं को प्रस्तुत करने का प्रयास आजीवन करता रहता है।

आजादी से पहले भारत में लगभग 37000 गुरुकुल थे और इस समय मान्यता प्राप्त गुरुकुलों की संख्या 50 से भी कम है । अधिकतर गुरुकुल मैकाले की शिक्षा नीति के कारण अवैध घोषित कर दिए गए । भारतीय शिक्षा पद्धति बहुत अधिक श्रेष्ठ थी, इसी कारण मैकाले ने कहा था कि जब तक भारतीयों की शिक्षा पद्धति नहीं बदली जाएगी तब तक इनको नियंत्रित करना असंभव है। अंग्रेजों को ऐसे भारतियों की आवश्यकता थी, जो शरीर से भारतीय हों और मानसिकता से अंग्रेज तथा मैकाले की शिक्षा नीति लागू होने से ऐसा ही हुआ। लोगों ने अपने बच्चों को गुरुकुल में भेजना बंद कर दिया । जो गुरुकुल में पढ़ता था, उसकी उपाधियों को सरकार ने मान्यता देना बंद कर दिया और सभी गुरुकुलों के अनुदान और सहयोग राशि भी बंद कर दी गई। जिसके कारण गुरुकुल संचालन में समस्या होने लगी और अधिकतर गुरुकुल बंद होते चले गए । हरियाणा प्रदेश में पहले गुरुकुलों की संख्या 100 से भी ज्यादा थी किंतु आज मुश्किल से 15 – 20 गुरुकुल बचे हुए हैं। इनमें से कुछ गुरुकुलों में तो विद्यार्थियों की संख्या बहुत ही कम है । इन गुरुकुलों में कुछ में विद्यार्थियों से कोई फीस नहीं ली जाती तथा रहना और खाना भी निशुल्क होता है किंतु कुछ गुरुकुल में सहायता राशि के रूप में फीस ली जाती है। हरियाणा के मुख्य गुरुकुल –. कुरुक्षेत्र गुरुकुल, झज्जर गुरुकुल, खानपुर गुरुकुल, कालवा गुरुकुल, कुंभाखेड़ा गुरुकुल, नीलोखेड़ी गुरुकुल, चमनवाटिका गुरुकुल, लाढौत गुरुकुल, घासाहेड़ा गुरुकुल, बरोना गुरुकुल, सुंदरपुर गुरुकुल, भिवानी गुरुकुल, जुलाना गुरुकुल आदि।

हिंदी भाषा के विकास में गुरुकुलों का विशेष योगदान है । गुरुकुल नहीं होते तो हिंदी भाषा इतनी समृद्ध नहीं होती, यदि यह कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि यहां के आचार्यों ने आंग्ल भाषा और उर्दू भाषा का विरोध करते हुए संस्कृत भाषा और हिंदी भाषा के विकास के लिए दिन – रात मेहनत की है। जिसके परिणाम स्वरूप आज बहुत बड़े क्षेत्र में हिंदी भाषा बोली जाती है ।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 381-384
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य : बाल विमर्श

–तितिक्षा जी वसावा

शोधार्थी, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभविद्यानगर, आणन्द, गुजरात।

प्राचीनकाल से देखे तो साहित्य के क्षेत्र में बाल विमर्श पर सर्वप्रथम विचार भारतीय साहित्य में ही किया गया है द्य जब बच्चों के लिए साहित्य को अलग पहचान भी नही मिली थी द्य किसी ने बच्चों के अलग साहित्य के विषय में सोचा भी नही था, तब हमारे संस्कृत के विद्वान आचार्य विष्णुशर्मा जी ने बच्चों के लिए 'पंचतंत्र' नामक एक ग्रंथ की रचना की द्य ये पुरे विश्व में बाल–साहित्य का सबसे प्राचीन ग्रंथ है द्य इससे प्रेरित होकर दुनिया के सभी देशो के विद्वानों ने अपने–अपने देश की भाषाओं में बच्चों के लिए साहित्य सृजन करना प्रारंभ किया द्य

"यत्नवे भाजने लग्नरू संस्कारों नान्यथा भवेत् द्य
कथाच्छलेन बालानां नीति स्तदिह कश्यते द्यद्य"१

अर्थात् जिस प्रकार किसी नवीन पात्र के कोई संस्कार नहीं रहते उसी प्रकार बच्चों की स्थिति रहती है द्य इसलिए उन्हें तो कथा कहानी आदि के द्वारा ही नीति के संस्कार बताना चाहिए द्य यहां पर आचार्य विष्णुशर्मा जी ने बच्चों को नीति का ज्ञान देने के लिए कहानी या कथा को माध्यम बनाने की बात कही है द्य साहित्य के क्षेत्र में 'हितोपदेश' दुसरा ग्रंथ है, जो बच्चों के लिए रचा गया है द्य हिंदी साहित्य के साहित्यकारों ने भी संस्कृ त से चली आयी इसी परंपरा को आगे बढ़ाया है द्य बचपन में पढ़ी पुस्तकों का प्रभाव किसी बच्चे के जीवन में इतना गहरा होता है कि अंत तक वह उसे मन से निकाल नही सकता द्य

हिन्दी साहित्य की सुप्रसिद्ध कवियत्री महादेवी वर्मा का बच्चों के लिए साहित्य के विषय में मत है कि –"मैं समझती हूँ कि साहित्य की जो परिभाषा है, बाल साहित्य की परिभाषा उससे भिन्न नहीं होती क्योंकि मनुष्य की पूरी पीढ़ी बनाने का कार्य वह करती है द्य"२ यहां महादेवी वर्मा जी ने साहित्य और बाल साहित्य की परिभाषा को एक ही माना है द्य बच्चे बड़े होकर कल के भविष्य बनेंगे तो उसमें साहित्य का बहुत योगदान रहता है द्य वड्र्सवर्थ ने बच्चों के लिए कहा है कि "बच्चा इश्वर का अंश लेकर संसार में प्रकट होता है, किंतु सांसारिक प्रभावों से धीरे–धीरे उसका जीवन मलिन और कुंठित हो जाता है द्य यहां तक कि प्रोढ़ता प्राप्त करते–करते वह पूर्ण रूप से पार्थिव हो जाता है द्य बालक के लिए सच्ची शिक्षा स्कूलों में नहीं वरन प्रकृति के साहचर्य से ही संभव हो सकती है द्य"३ इनके अनुसार बच्चों को प्रकृति के सानिध्य में रखने से उन्हें सही ज्ञान दिया जा सकता है, तभी उनको सही शिक्षा मिलेगी साथ ही पुस्तक और स्कूल से प्रकृति को अधिक महत्त्व देने को कहा है द्य खलील जिब्रान नामक विद्वान का बच्चों के विषय में कहना है कि– "बच्चे स्वतंत्र होते हैं द्य वे हर कदम पर मुक्त

होकर साँस लेते है, जीते हैं और विभिन्न स्थितियों के बारे में अपनी परिभाषाएँ अपने अर्थ निर्मित करते है द्य”४ बच्चों का संसार बडो से सर्वथा भिन्न होता है द्य वे हर चीज को अपने अलग नजरिये सेदेखतें है द्य बच्चों की दुनियां पवित्र और गगन की भांति काफ़ी विशाल होती है द्य

”हमारे यहाँ चर्चा तो बहुत की जाती है कि हिंदी के बड़े साहित्यकरों ने बच्चों के लिए नहीं लिखा, पर बाल–साहित्य में किन–किन बड़े लेखकों की उपस्थिति दर्ज है और कितने बड़े लेखकों ने बाल–साहित्य का भंडार भरा हुई, इसका ब्योरा बहुतो की आँखे खोल देने वाला हो सकता है द्य”५ प्रकश मनु जी ने ‘हिंदी बाल साहित्य का इतिहास’ पुस्तक में ये बात कही है द्य देखा जाए तो स्वतंत्रता पूर्व श्रीधर पाठक, हरीऔध, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहाण, रामनरेश त्रिपाठी तथा दिनकर जी ने बच्चों के लिए रचनाएँ की है द्य उसके पश्चात् हरिवंशराय बच्चन, भवानीप्रसाद मिश्र, प्रभाकर माचवे, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, रधुवीर सहाय, महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, निराला, रामवृक्ष बेनीपुरी, भूपनारायण दीक्षित, मस्तराम कपूर, आनंदप्रकाश जैन, भीष्म सहनी, मोहन्मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, विष्णु प्रभाकर, भारतेन्दु, केशवचन्द्र वर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, श्रीकृष्ण, मस्तराम कपूर, रेखा जैन आदि साहित्यकारों ने बच्चो के लिए ढेर सारा साहित्य सृजन किया है द्य आज तो बच्चों के अलग साहित्य को बाल साहित्य के रूप में अच्छी पहचान भी प्राप्त हो चुकी है द्य जिसमे बच्चों से जुड़ी हर बात को सही तरीके से प्रस्तुत किया जाता है द्य

आज के समय में प्राथमिक शालाओं के शिक्षण की स्थिति बदल गई है द्य हमारी भारतीय संस्कृति तथा परंपराओं को छोडकर, जहाँ देखो विदेशीपन छाया हुआ है द्य बच्चों का जो कुदरती बचपन है, वो कही खो गया है द्य बच्चों का भोलापन, हंसी–खुशी, बोलचाल, हल्की–फिल्की सरल कविता, कहानी, गीत अब पाठ्यक्रम में कम दिखाई देता है द्य यही कारण है कि आज के समय में बच्चों का भाषा ज्ञान कम होता दिख रहा है द्य बच्चों का व्यक्तित्व कुंठित हो गया है, ये सारी चीजे चिंता करने का विषय बनी है, इसका एक ही उपाय सूझता है और वो बाल साहित्य है द्य बच्चों को यदि कोई बात सरलता से समझानी हो तो बाल साहित्य से मार्गदर्शन लेना चाहिए द्य बच्चों के विषय में रचित साहित्य भी उन्हीं की भांति सरल होता है, जिस कारण वे उसे आसानी से समज सकते है द्य बाल साहित्य बालकों को जीवन से जुड़ी हर एक बात सिखने में उपयोगी साबित होता है द्य बच्चों के लिए ज्यादातर मनोरंजनात्मक रचनाएँ की जाती है, उसके साथ ही अच्छी और शिक्षाप्रद बातों से बच्चों को बाल साहित्य में रूचि बढती है द्य हमारे समाज में कई धर्म के लोग रहते है, फिर भी भाई–चारे और एकता से रहने में ही सबकी भलाई है, यह बात सभी भारतीय जानते है द्य यही अनेकता में भी एकता के गुण बच्चों को बाल साहित्य के माध्यम से मिलते है द्य बच्चों को बचपन से ही जात–पात के भेदभावपूर्ण व्यवहार से दूर ही रखना चाहिए द्य उन्हें सिखाना चाहिए कि भारत में रहनेवाले सभी भारतीय है द्य

बच्चों के सामाजीकरण में बाल साहित्य महत्वपूर्ण साबित होता है द्य बच्चों को साहित्य के माध्यम से उचित–अनुचित का भेद समझ में आता है द्य अपने आस–पास में किस प्रकार का वातावरण है और लोग आपस में एक–दूजे के साथ कैसा व्यवहार करते है, यह सभी चीजे बच्चे ध्यान पूर्वकदेखतें है और समझने का प्रयत्न करते है द्य माता–पिता और परिवार के अन्य सदस्यों से बच्चें संस्कार प्राप्त कर एक अच्छा नागरिक बनने का प्रथम कदम उठाते है द्य बाल साहित्य में हिंदी बाल साहित्यकारों ने अत्यंत सुंदर रचनाएँ की है, जिससे बच्चों को काफ़ी कुछ सिखने को मिलता है द्य बच्चें भविष्य में देश के होनेवाले नागरिक है द्य इसलिए उन्हें सही राह

दिखाएं इस प्रकार के साहित्य सृजन की आवश्यकता है द्य बाल्यावस्था हर व्यक्ति का सबसे सुंदर समय होता है द्य यह वो दौर है, जब बालक अपने आस–पास घटित होने वाली हर चीज या घटना को ध्यानपूर्वक देखता है और अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए प्रयत्नशील रहता है द्य ऐसे सुंदर वक्त में बाल साहित्य उसे मार्गदर्शन के रूप में मिल जाए तो बच्चें के लिए इससे बड़ी और उपयुक्त बात कोई नही होगी द्य बचपन में बच्चों का सही पथप्रदर्शन होना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि उसके चरित्र निर्माण का यह श्रेष्ठ समय होता है द्य ऐसे वक्त में उचित राह न मिलने पर बच्च अनुचित मार्ग पर चला जाए, एसी संभावनाएं बढ़ जाती है द्य ये बच्चे के लिए दुर्भाग्यपूर्ण साबित होता है द्य साथ ही समाज के लिए भी ये अच्छा नही है द्य बाल्यकाल में बच्चा कोरे पन्ने की भांति होता है द्य बचपन में जो अच्छी–बुरी चीजे उसके सामने आएगी, वो उसे सीधे–सीधे ग्रहण कर लेगा द्य इसलिए ये उत्तम समय है, जब बच्चें को बाल साहित्य जैसी सुंदर चीज से अवगत कराया जाए द्य अपने परिवार के आलावा सिर्फ बाल साहित्य ही है, जो बालक को उचित राह पर चलकर अच्छा इंसान बनने में सहायक सिद्ध होता है द्य साहित्य का ज्ञान मिलने से बच्चों की बुद्धि और अधिक विकसित होती है द्य वे अच्छे–बुरे का भेद करना सीखते है, जो उन्हें आजीवन काम आएगा द्य

अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम और देशभक्ति की भावना बच्चों में जगाने के लिए बाल साहित्य का सहारा लेना सर्वथा उचित है द्य बच्चों को साहित्य के द्वारा ही हमारे देश का इतिहास और पौराणिक समय में भारत की समृद्धि और वैभव के विषय में जानकारी मिलेगी द्य वैभवशाली भारत में कितने विदेशी आए और क्यां कुछ ले गए तथा कुछ तो यहीं आकर बस गए ये सब ज्ञात होगा द्य बाल साहित्य में भारत के वीर पुरुषो और वीरांगनाओं की शोर्यगाथएं और यशोगाथएं इस प्रकार रोमांचक तरीके से सुनकर या पढकर बच्चों के रोम–रोम में साहस और ज़ोश उमड़ आएगा द्य देश के भविष्य और कलके नागरिक बच्चों के लिए दिशा सुचन बाल साहित्य ही कर सकता है द्य प्राचीनकाल से बाल साहित्य रचा गया है, तब से बालकों में लोकप्रिय साबित हुआ है द्य वे उसके पाठक, श्रोता और वक्ता बनकर बाल साहित्य को समझते है तथा उसके महत्व को अपने लिए आवश्यक मान ग्रहण भी करते है द्य बच्चों के मन – मस्तिष्क में जो सुंदर काल्पनिक दुनियां बसी होती है, बाल– साहित्यकार उसे समजकर अपनी लेखनी का जादू चलाकर सरल शब्दों में प्रस्तुत करतें है द्य समाज में हो रहें दुसरे किसी बदलाव या समाज सुधार और परिवर्तनों के विषय में नहीं लिखा जाता , क्योंकि ये सारी बाते बच्चों के समज से बहोत अलग होतीं है द्य बाल– साहित्य में शिशुगीतो, छोटी कविताएँ, कहानियाँ, शिक्षाप्रद नाटकों पर रचनाएँ होती है द्य बच्चों की बुद्धि का विकास हो, उन्हें प्रेरित करे एसी रचनाएँ बाल– साहित्य में अधिक दिखाई देती है द्य बच्चों को यदि कुछ सीखना है, तो सबसे ज्यादा उपयुक्त तरीका मनोरंजन के माध्यम से शिखाने से वे जलदी और बिना आलस के रूचि के साथ सीखेंगे द्य बच्चों के साहित्य के विषय माता–पिता , दादा–दादी , नाना–नानी , भाई–बहन जैसे परिवार के सदस्य होने चाहिए द्य ऐसा होने पर बच्चों के मन को उस साहित्य के प्रति अधिक जानने की जिज्ञासा बढ़ेगी द्य छोटे बालकों को मोर, कौआ, तोता, चिड़ियाँ, कबूतर, कोयल, उल्लू, मुर्गा, हंस जैसे पंछियों पर रचनाएँ अच्छी लगती है द्य आगे देखे तो हाथी, शेर, बंदर, गाय, बकरी, भालू, बैल, घोडा, हिरन, लोमड़ी जैसे जानवरों के माध्यम से लिखी रचनाएँ भी पसंद आएगी द्य बाल– साहित्य में कोई गहराईयों में जाने की जरूरत नही होती सिर्फ बाल मानस को समझना पड़ता है, और यदि उनकें हिसाब से साहित्यकार लिखे तो बच्चों का दिल जितना मुस्किल न होगा द्य भोले बालक कोई कृतिमता या बनावट नही

चाहतें द्य वे तो सीधीसादी सरल रचनाएँ ही समजते है द्य बाल– साहित्य का एक विषय अलग–अलग खेल पर रचना करना होना चाहिए, ये बच्चों के लिए फायदेमंद साबित होता है द्य उसमें क्रिकेट, गेंद, गुल्ली–डंडा, होकी, कबड्डी जैसे विषय भी होते है द्य गुरु और शिष्य, पड़ोसी, मित्र पर भी रचनाएँ होती है द्य बच्चों को मौसम से परिचित करवा ने के लिए बारिश, ठंड और गर्मी की ऋतुओ पर रचनाएँ बच्चों को लुभा सकती है द्य

साहित्य में रूखापन बच्चों के लिए की गई रचना को कही पूरी तरहा निरस नहीं बना देता है, इसलिए शहद जैसी मीठी वस्तु में डुबोकर बच्चों को जीवनोपयोगी बातें सिखानी चाहिए द्य छोटी उम्र के बच्चों के लिए पशु–पक्षिओ से सम्बधित कविता, गीत और कहानी लिखना उचित रहता है द्य उन्हें आकर्षित कर पाए ऐसा साहित्य सृजन करे, ऐसे बाल–साहित्यकार अपनें उद्देश्य को आसानी से प्राप्त करतें है द्य जो साहित्यकार अपनी रचना से बच्चों का ध्यान बाल – साहित्य की ओर लाकर उन्हें जीवन से जुड़ी अच्छी बाते सिखाने में योगदान दे पाए वह उसकी सबसे बड़ी सफलता होती है द्य बाल साहित्य में छोटे बच्चों को बुद्धिमान बनने में सहायक हो एसी रचनाएँ प्रायः की जाती रही है द्य बालक को मानसिक सुझावों के बोझ तले नहीं दबाना चाहिए द्य बालक के पुरे व्यक्तित्व के गठन में काम आये वही उपयुक्त बाल – साहित्यमाना जाएगा द्य बच्चों की रुचिओ, द्रष्टिकोण, क्षमताओं को ध्यानपूर्वक समझकर ही बाल– साहित्यकार को लिखना होता है द्य आज के बच्चों को साहित्य में नए– नए प्रयोग अच्छे लगतें है, तो साहित्य में भी नयापन चाहिए उनको, वे अपनी जगह पे सही भी है द्य

अंततः बच्चों के बालमानस को देख जो रचनाएँ की गई उसमें देखा जाए तो बच्चों को मनोरंजनात्मक और रुचिकर लगे ऐसा साहित्य अधिक मात्रा में लिखा गया है द्य ऐसा साहित्य जिसमे बोझिल और गंभीर विषय को त्याग कर केवल हल्की–फुल्की मस्ती से भरी हुई रचनाएँ लिखी जाने लगी द्य यदि बच्चों को भारी–भरखम और क्लिष्ट भाषा में लिखी गई रचनाएँ दी जाए तो वे कभी उसे न पढ़ेंगे, न सुनेंगे द्य वे उसे पूर्णतया अस्वीकार देंगे द्य क्योंकि वे एसी उलझन भरी बातों को नापसंद कर उससे दूर रहना ही उचित समझेंगे द्य हर साहित्यकार यही चाहता है कि ज्यादा से ज्यादा लोग उसकी रचना को पढ़े और सुने तथा उसे पसंद करे किंतु ये तभी संभव है, जब पाठक या श्रोता की रूचि–अरुचि को समझने में वो सफल हो द्य

संदर्भ ग्रंथ रू–

१. हिंदी बाल साहित्य रू एक अध्ययन,डॉ. हरिकृष्ण देवसरे,पृष्ठ सं.४,रामलाल पूरी, संचालक,आत्माराम एंड संस,कश्मीरी गेट दिल्लि६ १६६६

२. हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन – मस्तराम कपूर, पृष्ठ सं.७०, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर, दरिया गंज, नई दिल्ली (२०१५)

३. शब्द – ब्रह्म(भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका)पृष्ठ सं.३० (१७ दिसंबर –२०१६)

४. शब्द – ब्रह्म(भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका)पृष्ठ सं.३० (१७ दिसंबर –२०१६)

५. हिंदी बाल साहित्य का इतिहास– प्रकाश मनु, पृष्ठ–८, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली (२०१८)

मो 9662028903

डंपसरू जपजपींेअं5 ⁄ हउंपस.बवउ

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 385-388

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य में नारी विमर्श

–रिंकी कुमारी

पीएचडी शोधार्थी, हिंदी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय।

साहित्य समाज का एक ऐसा दर्पण माना जाता है, जिसमें समाज का प्रत्येक युग का सत्य को इसके माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। वैदिक काल से लेकर समकालीन तक नारी के लिए 'स्त्री' शब्द का प्रयोग होता आया है।" स्त्री शब्द 'स्त' धातु से बना है। स्त् का अर्थ है विस्तार करना, फैलाना। स्त्री यानि फैलानेवाली दृ प्रेम को कुल दुनिया में फैलानेवाली। स्त्री शब्द में ही स्त्री का कार्य सूचित किया गया है। प्रेम का विस्तार। प्रेम कि व्यापकता स्त्री द्वारा होगी। स्त्री समाज का तारण करनेवाली तरणी शक्ति हैं। "

'विमर्श 'का अर्थ होता है किसी भी विषय को लेकर विचार, विवेचन, परामर्श, तर्क के साथ अपने विचारों को रखना तथा उसका आदान दृ प्रदान करना विमर्श कहलाता है। अंग्रेजी में क्पेबवनतेम शब्द का प्रयोग होता है। 'बृहद हिंदी शब्दकोश' के अनुसार– विमर्श यानी "समालोचना, परामर्श,परीक्षा, किसी बात पर अच्छी तरह विचार करना। " 'मानक हिंदीकोश' में विमर्श का अर्थ इस प्रकार दिया हुआ है– "सोच–विचार कर तथ्य या वास्तविकता का पता लगाना, किसी बात या विषय पर कुछ सोचना समझाना, विचार करना, गुण दोष आदि की आलोचना या मीमांसा करना।" जब यह दोनों शब्द मिलते हैं तो स्त्री विमर्श कहलाता है। स्त्री विमर्श का अर्थ नारी अस्मिता, नारी मुक्ति, नारी प्रश्न, आदि निम्नलिखित बिंदुओं पर बात की जाती है। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि विचारों का आदान– प्रदान से स्त्री जीवन संघर्ष एंव उसके अस्तित्व को कायम रखने या स्थापित करने की जद्दोजहद स्त्री विमर्श कहलाती है। स्त्री दृस्वतंत्रता के चिंतन का इतिहास हजारों साल पुराना है। स्त्री जीवन की समस्याएं प्रत्येक काल में किसी न किसी रूप में देखा जा सकता है। भारतीय इतिहास के विभिन्न युगों में स्त्री की मनोदशा लगभग एक जैसी ही दिखाई देती है। चाहे वह रामायणकाल, महाभारतकाल, उपनिषद काल, बौद्धकाल, मध्यकाल, ब्रिटिशकाल एंव आधुनिककाल आदि में स्त्री शोषण की गाथाएं देखा जाता है। आज यह कहना गलत नहीं होगा कि कई मिल के पत्थरों को पार कर स्त्री यहाँ तक आ पहुंची है। इतने सालो में स्त्रियों ने बहुत कुछ खोया और पाया है। स्त्रियों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होना एंव उस पर विचार,चिंतन करना तथा सदियों से स्थापित पुरुष मानसिकता का एक प्रकार का तर्पण किया जाना ही स्त्री विमर्श है। वर्तमान में प्रभा खेतान यह मानती हैं कि 'आज स्त्री ने सदियों की खामोशी को तोड़ी है। उसकी नियति में बदलाव आया है उसके व्यक्तिगत जीवन का उदेश्य, दर्शन, उसका मन दृ मिजाज सभी तो बदल रहा है। इसप्रकार से किसी भी तथ्य की प्रमाणिकता को पूरी तरह से सत्यापित करने के लिए हमें सबसे पहले इतिहास का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है। ठीक उसी तरह स्त्री जीवन की त्रासदी सदियों से चली आ रही है,

और इस त्रासदी के खिलाफ या इन सभी समस्याओं से मुक्त होने के लिए संघर्ष कर रही स्त्रियों का एक वर्ग इतिहास में बड़े पैमाने पर देखने को मिलता है। जब से सृष्टि की रचना हुई हैं और मनुष्य धरती पर आदिमानव के रूप में रहते थे तथा जंगलों में अपना एक दृएक समूह बनाकर रहते थे। उस समय भोजन के लिए कंद मूल एंव जानवरों का शिकार कर अपना जीवन व्यतीत करते थे। माना जाता है कि आदिमानव आग की खोज के लिए एक दुसरे समूहों के साथ लड़ाई किया करते थे। उस समय से लेकर आज तक स्त्रियों का किसी न किसी रूप में शोषण किया गया है। स्त्री के साथ हमेशा से भेद–भाव होता रहा है। जैसे– जैसे मनुष्य की बौद्धिक चेतना का विकास हुआ वैसे उनकी जीवन शैली बदलते गई। जब मनुष्य खेती पर निर्भर हुआ उस समय स्त्री पुरुष की निजी सम्पति बन कर रह गयी। परिवार के सभी पुरुष एक स्त्री के साथ संबंध स्थापित करते थे, जिसे बहुपत्नी का नाम दिया गया।

मध्य युग में स्त्री पुरुषके हाथों की कठपुतली बनकर अपना जीवन यापन करने के लिए मजबूर थी। स्त्री को रीति काल में भी वही पीड़ादायक जीवन जीना पड़ा था। सती प्रथा, बालविवाह, बहुपत्नी प्रथा, परदा प्रथा, अशिक्षा, आदि कठिनाइयों से जूझती रही। 19वी सदी में समाजसेवक राजाराम मोहन राय, स्वामी विवेकानंद, दयानंद स्वरसती ईश्वरचंद विद्यासागर अदि ने स्त्रियों की दयनीय स्थिति में सुधर हेतु भरपूर प्रयास किये। इस प्रकार भारतीय एंव पाश्चत्य संस्कृति में नारी संबंधी परस्पर विरोधी धारणाएं दिखाई देती है। एक ओर तो उसे देवी या माता मानकर उसे पूजा गया तो दूसरी और उसकी तुलना पशु से करके उसकी निंदा भी की गई । संपूर्ण संस्कृति में नारी को एक सवतंत्र व्यक्ति के रूप में कहीं भी नहीं देखा गया। जहा वह पुरुष द्वारा बनाऐ गए नियमो में बांधकर रही हे , वही पूज्य हे और उसने अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाने की कोशिस की वहाँ निंदा का पात्र बनी।

"जहाँ नारी को यौनप्रतिक मानकर निंदा की गई है, वह भी योग्य नहीं है ,और पतिव्रता के रूप में उससे जो अपेक्षाएं की गई है वह भी न्यायोचित नहीं है। वह केवल मानवी या मानुषी है ,न पुरुष से हीन है न पुरुष से श्रेष्ट " महात्मा ज्योतीबा फुले ने पुणे में लड़कियों के लिए सर्वप्रथम स्कुल खोला। अपनी पत्नी सावित्री बाई को शिक्षित कर लडकियों को पढ़ने का कार्य सौंपा। स्त्री आंदोलनकारी रूप पूरी दुनिया के सामने स्त्री विमर्श के नाम से आया। यह कहना गलत नहीं होगा कि स्त्री विमर्श केवल स्त्रियों की अधिकार की लड़ाई नहीं है बल्कि वह एक विश्व स्तरीय विचारधरा के रूप में उभरकर आया है। फ्रांसीसी लेखिका सिमोन द बोउवार ने 1951 में कहा था कि साहित्य, संस्कृति, इतिहास, एंव परम्पराएं पुरुषों के द्वारा बनाए गए है। जिसमें पुरुषों ने अपने को प्रत्येक रूप में सर्वोपरि माना है। स्त्री को दोयमें दर्जा दिया गया है । स्त्रियों को इसी दोयम दर्जे से उद्धार होने की जरूरत है। स्त्रीयों को किसी दासी या देवी के रूप में नहीं बल्कि एक इंसान के रूप में अपने– आप को स्थापित करना होगा। पश्चिम देशों का स्त्री संघर्ष की एक लंबी यात्रा वृतांत है। पश्चिम स्त्री आंदोलन में फ्रांस के लेखिका सिमोन द बउआर, की पुस्तक 'द सेकेंड सेक्स' एंव बेट्टी फ्राइडेन की पुस्तक 'द फ़ेमिनिन मिस्टिक' का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। स्त्रियों में जागरूकता आने के साथ–साथ वह अपने अधिकारों के लिए भी परिचित होते हुये दिखाई देती है। तभी स्त्री आंदोलन की शुरुआत बड़े पैमाने पर सभी जगह दिखने लगता है। पश्चिम से आया स्त्री आंदोलन की लहर भारतीय दलित, एंव शोषित स्त्रियों को बहुत ज्यादा प्रभावित किया था । स्त्रियों की मुक्ति के लिए पश्चिम देशों में संघर्ष स्वयं स्त्रियों के द्वारा किया गया था,

वह अपने अधिकारों के प्रति सजग दिखाई देती हैं। किंतु भारत में इसकी स्त्रियों के अधिकार, जीवन में सुधार आदि के लिए आंदोलन की शुरुआत पुरुषों द्वाराकिया गया था। उसमें सफल भी रहे। स्त्रीयों के अधिकारों के लिए स्त्रियों ने भी अपनी भूमिका निभाई थी जिसमें स्त्री के मताधिकार के लिए उसके अधिकारों और उसकी गरिमा को स्थापित करने की मांग जोड़ों पर था। जिसमें प्रमुख भूमिका एनी बेसेंट, सावित्रीबाई, रमाबाई, काशीबाई कानितकर, आनंदीबाई, गोदावरी समस्कर, पार्वतीबाई, सरला देवी, भगिनी निवेदिता, भिकाजी कामा, कुमुदिनी मित्रा, लीलावती मित्रा जैसे कई नाम सामने आता हैं।

हमारे समाज में स्त्रियों को आदिकाल से लेकर समकालीन समय में स्त्रियों का किसी न किसी रूप में शोषण किया जाता है। समाज में सदियों से ही स्त्रियों की गुलाम होने का प्रमाण देखने को मिलता है। गुलाम स्त्रियाँ अपने मालिक के लिए मजदूरी करने साथ– साथ उनकी काम वासना को भी तृप्त करना पड़ता था। इसप्रकार से इतिहास के प्रत्येक काल में स्त्रियों को गुलाम या उसे अपना निजी संपाति समझकर उसका शोषण किया जाता रहा है । मनुष्य होने के बाद भी वह पशु के समान जीवन यापन करने के लिए मजबूर होती थी। स्त्रियों को अशिक्षित होने के कारण पितृसत्ता का गुलाम बनकर रहने के लिए वेवश थी।

देखा जाए तो स्त्रियों की सम्पूर्ण व्यवस्था उसके शरीर से लेकर आत्मा तक गुलामी के जंजीरों में जकडा हुआ है। परिवार व्यवस्था पितृसत्तात्मक होने के कारण वंश की शुद्धता को बनाए रखने के लिए स्त्रियों को अनेक प्रकार के बंधनों में बाँध कर रखा गया है। पुरुष का स्त्री पर पूर्ण अधिकार स्थापित किया गया। तलाक लेने का अधिकार पुरुष को ही दिया गया। पुरुष विवाह के बाद भी दूसरी स्त्री के साथ यौन संबंध स्थापित करने के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं और स्त्री गलती से भी किसी पराया पुरुष से संबंध बना ले तो उसे कड़ी सजा दी जाती थी। उसे डायन, बदचलन, चरित्रहीन आदि जैसे उपनाम से संबोधित किया जाता है। अगर इतने में भी वह नहीं टूटती हैं, तब उसे पूरे समाज के सामने निवस्त्र कर के घुमाया जाता है। सदियों से समाज में धर्म के नाम परस्त्रियों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक शोषण होता आया है। अगर कोई स्त्री विधवा हो जाती है तो उसे धर्म के नाम पर उसका जीवन यापन करना कठिन कर दिया जाता है। उसकी अस्तित्व उसके पति के साथ ही खत्म कर दिया जाता है। 19 वीं सदी में भारत के साथ– साथ अनेक देशों में स्त्रियों के अधिकार के लिए आंदोलन किया जा रहा था, जिसमें पुरुषों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इस दौर में जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैंड, रूस आदि देशों में बुद्धिजीवियों द्वारा स्त्रियों के सुधार के लिए मुहिम चला रहे थे, जैसे स्त्री शिक्षा, बाल–विवाह, सती प्रथा, विधवा स्त्रियों के स्थिति में सुधार, विधवा पुनर्विवाह आदि जैसे बुद्धजीवियों लेकिन 1856 में हिन्दू विधवा कुसुम त्रिपाठी कहती हैं दृ "पितृसत्तात्मक व्यवस्था में धर्म एक सैद्धांतिक हथियार है। इन सभी धार्मिक व्यवस्थाओं की सुरुआत निजी संपती और एकनिष्ठाता के विकास की प्रक्रिया में हुई थी। इसलीय सभी धर्म, कमोबेश पितृसत्तात्मक व्यवस्थाओं को ही प्रतिबिंबित करते हैं।" मे अपने अधिकार के प्रति जागरूकता दिखाई देने लगता है।

निष्कर्ष :–

स्त्री विमर्श शब्द सुनते ही जेहन में निम्नलिखित प्रश्न उठने लगते हैं। क्या यह विमर्श पुरुष वर्ग के खिलाफ एक प्रकार की लड़ाई है ? या पुरुष वर्ग से छुटकारा पाने की जिद्द है ? इस प्रकार की धारणा हमारे समाज में

बनाई गई है कि स्त्री विमर्श पुरुष वर्ग से मुक्ति पाने का एक आंदोलन है। आखिर इस प्रकार की धारणा हमारे समाज में क्यों बनी ? कैसे बनी ? तथा किसके द्वारा बनाई गई है ? इसका मुख्य कारण है,इसको समझने के लिए स्त्रीसमकालीन स्त्री लेखन के तरफ ध्यान देना जरुरी है। अगर यह कहा जाये कि स्त्री विमर्श कुछ समय से अपने असली मुद्दों से भटक गया है। समकालीन समय में स्त्री विमर्श का अर्थ केवल देह मुक्ति की कामना करना अपना अधिकार मान लिया गया है। बल्कि सही मायने में स्त्री विमर्श का अर्थ है , महिलाओं को शिक्षित होना,अपने अधिकार को समझना, अपने पर हो रहें अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठाना, आत्मनिर्भर बनना, आदि।

इस प्रकार स्त्री पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो सकती है। पुरुष वर्ग से मुक्त होना स्त्री विमर्श का अर्थ नहीं हैं बल्कि उनके वर्चस्ववादी सोच, भोगवादी प्रवृति एंव स्त्री को एक कमजोर अबला समझने वाले सोच के खिलाफ यह विमर्श है । स्त्री विमर्श की अवधारणा है कि स्त्री को उनके सभी अधिकारों से अवगत कराते हुये उन्हें पुरुषों के बराबरी का दर्जा देना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ –

1. विनोबा, स्त्री–शक्ति, वाराणसी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, 2011,
2. प्रसाद कालिका, बृहद हिंदी शब्दकोश, प्रयाग, ज्ञानमंडल लिमिटेड प्रकाशन , 2009 .
3. वर्मा रामचन्द्र, मानक हिन्दीकोश, प्रयाग, हिंदी साहित्य सम्मलेन प्रकाशन, 1952,
4. त्रिपाठी कुसुम, अलगनी पर औरतें, वाराणसी, अगोरा प्रकाशन, 2020,
5. कुमार राधा, स्त्री संघर्ष का इतिहास, नई दिल्ली, वाणी प्रकशन, 2002,
6. यादव रजेंद्र, वर्मा अर्चना, अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2001,

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 389-391
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मैत्रेयी पुष्पा के कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श

-डॉ. प्रवीण तुलशीराम तुपे
कला, विज्ञान व वाणिज्य महाविद्यालय, कोल्हार, तहसील–राहाता, जिला– अहमदनगर

स्त्री संबंधी विचार करना ही स्त्री.विमर्श है। स्त्री.विमर्श को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है. श्स्त्री के विषय में उसके सुख.सुविधाओं से लेकर प्रत्येक समस्या के परिप्रेक्ष्य में ऐतहासिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक ,आर्थिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सूक्ष्म से सूक्ष्मतर चिंतन.मनन कर अस्वस्थ दृष्टिकोणों कों स्वस्थता प्रदान करना ही स्त्री.विमर्श हैं।श बीसवी सदी के अंतिम दशक में उभरे स्त्री–विमर्श नें इक्कीसवी सदी के प्रारंभ में सशक्त रुप धारण किया। जिससे केवल कथा साहित्य ही नहीं ंतो अन्य विधा एवं जीवन के हर क्षेत्र में पहुँचकर समस्त मानव समाज को चौका दिया। वर्तमान उपन्यास साहित्य में स्त्री–विमर्श के अंतर्गत नारी जीवन से जुड़ी सभी समस्याओं का प्रामाणिकता के साथ जिक्र किया गया है। नारी तथा उनकी स्वतंत्रता आदि बातों का वर्णन स्त्री विमर्श में है।साहित्यकारों ने अपनी व्यथा.कथा तक सीमित न रहकर सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्र में भी अपनी आवाज उठाई। कृष्णा सोबती, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, अमृता प्रितम, आदि. ने स्त्री शक्ति को जागृत करने का अथक प्रयास किया। संपूर्ण विश्व का लग–भग 75 प्रतिशत से अधिक साहित्य स्त्री को केंद्र में रखकर लिखा गया हैं। आज स्त्री.विमर्श सिर्फ स्त्रियों द्वारा ही नहीं किया जा रहा बल्कि इसके पीछे अनेक नारीवादीयों, चिंतकों ,साहित्यकारों ,संपादकों, बुद्धि ाजीवियों के भी सशक्त व सार्थक प्रयास परिलक्षित होता हैं। एक प्रकार से नारी जीवन के बाहरी–भीतरी पक्षों को गहराई से चित्रित किया है। स्त्री विमर्श से स्पष्ट है कि आज की नारी अपने अधिकारो के प्रति सजग हुई है साथ ही उसने अपने अस्तित्व और गरिमा को स्थापित किया है। मतलब वह अपने अस्तित्व की तलाश के साथ स्वतंत्र अस्तित्व की संभावनाओं को खोज रही है। और यह विश्व व्याप्त स्त्री विमर्श से संभव हो पाया है। स्त्री विमर्श समाज की सोच और समझ में परिवर्तन लाता नजर आ रहा है।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा साहित्य में स्त्री की कमजोर छवि, विलाप करती हुई छवि, पुरूष संरक्षण की आकांक्षा छवि को आधुनिक स्त्री तोड़ रही है।आजादी के इतने वर्षों बाद भी जिन्हें जीवन का असली चेहरा नहीं मिला उन लोगों के जीवन का सत्य मैत्रेयी ने उद्घाटित किया हैं। अच्छुते विषय को न्याय देना यह मैत्रेयीजी की लेखन विशेषता हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से बुंदेलखंड़ और ब्रज प्रदेश के ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने भारतीय ग्रामीण जीवन के हर पहलू को उजागर किया हैं। उन्होंने कथा साहित्य का परिवेश ग्रामीण, पिछड़े और दलित समाज हैं।उन में भी वह वहाँ की नारी को रेखांकित करती नजर आती हैं। ग्रामीण नारी की समस्या को उन्होंने पहली बार व्यापक धरातल पर उठाया हैं। ग्रामीण और शहरी

संस्कृति को एक साथ अपने साहित्य में उतारनेवाली लेखिका है। नारी के प्रति होने वाले अन्याय का पूरी क्षमता के साथ विरोध करती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा का समूचा लेखन इस बात का प्रमाण है कि उनके यहाँ विचारों का आधार सतर्क निर्भीकता बनी रहती है। उसमें सड़ी.गली पुरातन और मनुष्य विरोधी मान्यताओं का सीधा विरोध तो है ही नए और खुले विचार का स्वागत भी है। मैत्रेयी पुष्पा की 'कस्तुरी कुंडल बसे–गुडिया भीतर गुडिया' आत्मकथा में परंपरागत मूल्य तथा आदर्शों पर प्रश्नचिन्ह है। मैत्रेयी के पुरोगामी विचार सामाजिक नैतिक दायरे को हिला दते है। उन्होंने स्त्री–पुरुषों के काम संबंधों का वर्णन करते समय अपने स्पष्ट विचारों को प्रकट करते हुए समाज में चलने वाले अवैध संबंधों को स्वाभाविक माना है साथ ही विवाहेतर संबंधों को अपराध नहीं माना है। अपने जीवन की पारंपारिक घटनाओं के माध्यम से संकटों पर विजय प्राप्त कर अपना मार्ग खुद ढूँढा है। पुरानी और परंपरागमत मान्यताओं एवं रुढ़ियों पर प्रहार किया है। भारतीय संस्कृतिक में स्त्री–पुरुषों के लिए विवाह करना एक अनिवार्य घटना है। आज भारतीय नारी विवाह के शोषणयुक्त स्वयप को चुनोती दे रही है। इसलिए 'कस्तुरी कुंडल बसे' उपन्यास की नायिका कस्तुरी ''मैं ब्याह नहीं करूॅंगी'' कहने का दुस्साहस करती है। कस्तुरी गॉव की अनपढ़ युवती होकर भी विवाह की मजबूत बेड़ी को जानती थी, जिसे काटकर मुक्त होना स्त्री के लिए असंभव है। इसलिए अपनी स्वेच्छा और आत्मनिर्भर जीवन के लिीए आजीवन अविवाहित रहना पसंद करती है

'चाक' उपन्यास की नायिका रेशम अपना जीवन अपने ढ़ंग से जीने में विश्वास रखती है। पति के रहते और विधवा होने के बाद भी पराए पुरुष से यौन संबंध रखने में संकोच नहीं करती। निड़र व्यक्तित्व के कारण सामाजिक बंधनो की परवाह किए बिना रेशम अपनी यौन तृप्ती पराए पुरुष से पूर्ण करती है। गर्भवती होने के बाद बच्चे को जन्म देने का साहसी निर्णय लेती है। नाजायज संतान को जन्म देना स्त्री के लिए ऐसा खतरनाक अपराधा माना जाता है। जिसकी सजा उसे भूगते बिना माफ नहीं किया जाता। परिणामतः देवर डोरीयॉ उसे जिंदा ही मार देता है।

'इदन्नमम्' उपन्यास की परित्याक्ता कुसुमा–पति यशपाल के द्वारा छोड़ने के बाद जेठ के साथ शरीर संबंध रखने से कतराती नहीं बल्कि बेखौफ होकर उनके पुत्र को जन्म देती है। कुसुमा अपने स्त्रीत्व की रक्षा के लिए लड़ती है। पत्नी के रूप में ठुकराई जाने के बाद प्रमिका के रूप में अपनी पहचान बनाती है संतानद को जन्म देकर अपने अस्तित्व और अस्मिता को बचा लेती है। बेटे के हक के लिए लड़ती है और पिता की संपत्ति का उत्तराधिकारी मानकर जमिन कुछ हिस्सा अपने नाम करवा लेती है। कथाकार ने नैतिकता एवं नारी विषयक मान्यताएॅं कुसुमा भाभी के माध्यम से ंव्यक्त हुई है। कथा का नारी चरित्र नए नारीवाद का प्रतीक मालूम पड़ता है।

'झुला नट' की नायिका शीलो हमेशा इच्छाओं, आवेगों और मनोभावों का अनुसरण करती है मन किसी कामना को कुचला नहीं है। पति सुमेर के द्वारा परित्याक्ता होने पर भी जीवन को समाप्त करने के विचार उसके मन में नहीं आते। वह जिंदगी को सकारत्मक ढ़ंग से जीने में विश्वास रखती है। शीलो समाज, पति और सास की परवाह किए बिना अपने से पॉच साल छोटे देवर बालकिशन के साथ शरीर–संबंध बछियॉ किए बिना स्थापित करती है। वह अपने मन की बात को सर्वोपरि मानती है। उसके मन में अपराध बोध के भाव नहीं आते। रस्म–रित और रिश्तें को नकार कर देवर–भाभी के अनोखे रिश्तें द्वारा लेखिका ने नारी चेतना की दिशा में एक कदम आगे

बढ़ायॉ है।

'विज़न' उपन्यास की डॉ.आभा अपने पति से प्यार पाना चाहती है परंतु पढ़ा लिखा पति मुकुल उसकी भावनाओं को नहीं समझ पाता। वह पत्नी को मारकर अपने पौरूषी धाक जमाना चाहता है तब वह चुप नहीं बैठती। वह परंपरागत पत्नी बनकर पति का हर जुल्म सहने की अपेक्षा उसका खुलकर विरोध करती है। अपने अस्तित्व को बचाने के लिए पति से तलाक लेती है। डॉ.आभा का स्वाभिमान पुरुष के साने झुकता नहीं बल्कि वह निडर होकर कहती है ''मुकुल, आई वांट अ डायवोर्स''। आभा को पुरुष प्रधान समाज द्वारा बनाए गए खोखले आदर्श की खाल से बाहर निकलकर मनुष्य के रूप में जीने कि इच्छाशक्ति और साहस ही अपने पति से अलग करती है। पति के बाद किसी अन्य पुरुष को अपने जीवन में स्थान नहीं देती। पति के इतने क्रुर रूप को देखने के बावजूद आभा जैसी सशक्त महिला का भावात्मक जुड़ाव मुकुल से खत्म नहीं होता और उसकी जगह कोई और नहीं लेता।

निष्कर्ष :– नारीवादियों को अभी एक लंबी लड़ाई लड़ने की आवश्यकता है। तभी स्त्री अपने संवैध ाानिक,सामाजिक,व राजनैतिक अधिकारों का उपयोग कर सकेगी। नारीवादी आंदोलन स्त्री.पुरूष को अलग.अलग वर्गों में बाटकर वर्ग शत्रुता के रूप में नहीं चाहती। यह स्त्री.पुरूष के सम व सह अस्तित्व पर विश्वास करती हैं। इसलिए स्त्री.पुरूष दोनों को मिलकर इसे बदलने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि सही अर्थों में स्त्री.पुरूष दोनों की स्वतंत्रता का आधार परस्पर अस्तित्व पर निर्भर है। यही कारण है कि स्त्री लेखन करने वाली मैत्रेयी पुष्पाजी भी अपने साहित्य लेखन का आरंभ पति का (पुष्पा रमेशचंद्र शर्मा) अपने नाम के साथ न जोड़कर पिता का नाम मैत्रेयी और माता का नाम पुष्पा लेकर मैत्रेयी पुष्पा का नया नाम धारन किया ,जो स्त्री.पुरुष समानता को दर्शाता हैं।मैत्रेयी स्त्री लेखन की चुनौतियों पर गंभीर चिंतन ,वही सामंती पुरुष पक्ष की उडती धज्जियाँ भी नजर आएगी। बाजारू होती औंरतों के विरोध में ही नहीं ,स्त्री.सोच के संस्कारों के खोखलेपन को उजागर करने में भी मैत्रेयीजी की कलम सन्नध रही हैं। उन्होंने इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुकी भारतीय नारी आज पितृसत्ताक के किले में कैद पुरातन परंपराओं की काल कोठरी में घुट रही हैं। स्त्री को हजारों साल से गुलाम बनाए रखने वाली पितृसत्ता द्वारा उद्भूत तथाकथित महान संस्कृति के खिलाफ रणभेदी गुंजाती कथाकार मैत्रेयी पुष्पा के गहन चिंतन को मुखरीत किया हैं। मैत्रेयीजी ने बड़ी बेबाकी से औरत की गहन पीड़ा पर अपनी दृष्टि ड़ाली स्त्री को अपनी संपत्ति मानत हुए उसे पशु एवं दलित बनाए रखकर मनमानी भोगनेवाले पुरूषों के साथ–साथ सुख,सुविधा,सत्ता भोगने की लालसा में भरमी, श्रृंगार और विलास के मंच पर थिरकती औरत की मनसिकता को भी गभीर चिंता की दिशा में प्रस्तुत करती हैं।मैत्रेय जी राम राज्य के आदर्श रूप का विरोध करते हुए मनुष्य की जटील जिंदगी और उलझाव ही उसे सोचने को मजबूर करती है, कि जो नैतिकता हमे दी गई वह आखिर क्या है ? यदि वह मर्यादा हमें जीने नहीं देती। विकास होने में बाधा पैदा करती हैं।

संदर्भ :–

1.'झुला नट', मैत्रेय पुष्पा पृ.80

2.'विजन', मैत्रेय पुष्पा पृ.129

3.'इदन्नमम', मैत्रेय पुष्पा पृ.79

4.'चाक', मैत्रेय पुष्पा पृ.165

5.'कस्तुरी कुंडल बसे, मैत्रेय पुष्पा पृ.98

मो. 9850303126, ईमेल : चतंअपदजनचम76 ⁄ हउंपसण्बवउ

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 392-401
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी ग़ज़ल में दलित चेतना

–डॉ. जियाउर रहमान जाफरी
असिस्टेंट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, मिर्ज़ा ग़ालिब कॉलेज गया, बिहार–803001

हिंदी में दलित साहित्य की अवधारणा भक्ति काल में रैदास की कविताओं से शुरू हुई, लेकिन उसे वास्तविक पहचान आधुनिक काल में दलित लेखकों की आत्मकथा से मिली स हिंदी की पहली दलित कथा मोहनदास नैमिशराय की अपने–अपने पिंजरे(1995) मानी जाती है स उसके बाद ओमप्रकाश वाल्मीकि का जूठन(1997) प्रकाशित होता है स यह दोनों दलित साहित्य के बेहद महत्वपूर्ण आत्मकथा रहे स इसमें दलितों का पूरा जीवन दिखाया गया है कि वह किस तरह की जिंदगी जीने को विवश हैं स इसी क्रम में कौशल्या बैसंती का 'दोहरा अभिशाप' (1999) सूरजपाल चौहान का 'तिरस्कृत'(2002) धर्मवीर का 'मेरी पत्नी और भेड़िया'(2009) तथा तुलसीराम का 'मुर्दहिया'(2010) आदि का नाम भी लिया जा सकता है स स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी दलितों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए जो लंबा संघर्ष करना पड़ा जूठन इसे गंभीरता से उठाती है स मुर्दहिया पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अंचल में शिक्षा के लिए के लिए संघर्ष एक दलित की मार्मिक अभिव्यक्ति है स दोहरा अभिशाप इस बात को मजबूती से रखती है कि स्त्री अगर दलित भी हो तो उसे दोहरे अभिशाप से गुजारना पड़ता है स एक उसका स्त्री होना और दूसरा उसका दलित होना।

आधुनिक हिंदी कविता में दलित दस्तक हीरा डोम की काव्य रचना अछूत की शिकायत से मिलती है स जिसमें कवि भगवान द्वारा भी भेदभाव किए जाने का वर्णन करता है– श्हमनी के दुख भगवनाओं न देखेश कवि प्रश्न करता है एक ही जिस्म हमारा भी है और ब्राह्मण का भी स फिर हम दलितों को वो अधिकार क्यों नहीं है स सितंबर 1914 की सरस्वती पत्रिका में छपी यह पहली और आखिरी दलित कविता है जिसे भोजपुरी भाषा में लिखा गया था स

दलित हिंदू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर है स उसके पास संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकार भी नहीं है स दलित रचनाओं में जहाँ सामाजिक भेदभाव जनित पीड़ा है, वहीं दलित कविताओं में शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति के स्वर भी हैं स अन्य कविताओं की तरह दलित कविता मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि इसमें अपनी पीड़ा और अपना आक्रोश है स दलित कवि डॉ.एन. सिंह ने जिसे 'बे जुबान आदमी की आवाज कहा हैश्स ओमप्रकाश वाल्मीकि, कमल भारती, डॉक्टर युवराज सिंह बेचौन मलखान सिंह, निर्मला पुतुल, जयप्रकाश कर्दम आदि वह दलित कवि है, जिनकी कविताओं में दलित समाज की वेदना, व्यथा, आक्रोश, आकांक्षा और छटपटाहट साफ दिखाई देती है स उदाहरण के लिए जयप्रकाश कर्दम की कविता मेरे अधिकार कहाँ है कि कुछ पंक्तियां देखी जा सकती हैं रू–

तुम कहते हममें यह नहीं
तुम कहते हम सब भाई हैं
फिर क्यों ऊंचे तुम मैं नीचा क्यों
जाति वर्ण की खाई है
तुम चाहो रामराज आए
तुम श्रेष्ठ
शूद्र मैं बना रहा हूं
तुमको सारे अधिकार रहें
मैं वर्जनाओं से लड़ा रहूं स

ग़ज़ल जो एक सामंतवादी विधा थी, हिंदी में आकर सर्वहारा वर्ग से जुड़ गई स फारसी, अरबी, उर्दू की ज़्यादातर ग़ज़लें प्रेम प्रधान थीं स यहां तक कि हिंदी में भी निराला, त्रिलोचन, रंग और शमशेर ऐसी ही ग़ज़लें लिखते रहे, लेकिन दुष्यंत ने ग़ज़ल का लहजा बदला जो गजल श्रृंगार की थी वह गजल घर परिवार की बन गई स उसमें अपनी तकलीफों का बयान होने लगा जो ग़ज़ल राज दरबारों में रह कर आई थी मनुष्य की जरूरतों से जुड़ गई उसमें सत्ता और सामंत के प्रति विरोध दिखाई देने लगा स हिंदी का दलित वर्ग भी इसी आशा असमानता का शिकार रहा, भेदभाव छुआछूत और पाकी नापाकी के बने बनाए हुए मानदंडों ने उन्हें हमेशा हाशिए पर रखा वह जिस धर्म के थे उस धर्म के ठेकेदारों ने भी उन्हें खारिज किया स

हिंदी कविता से हिंदी ग़ज़ल की स्थिति इस अर्थ में भी थोड़ी सी अलग है कि हिंदी दलित कविता में दलित कवियों ने ही प्रमुखता से अपने जज्बात रखें स इसलिए उसमें आत्म पीड़ा भी दिखाई पड़ी स हिंदी गजल में एक दो को छोड़ दें तो मुश्किल से ही कोई दलित गजलकार मिलेंगे, जो है वह उतने चर्चित नहीं है स ऐसे भी हिंदी ग़ज़ल की बीमारी दस बीस ग़ज़लकरों को लेकर ही चलने की है स उसमें भी गुटबाजी मौजूद है स जहाँ तक मुझे पता है हिंदी गजल में दलित और दलित वर्ग की स्थितियों को तलाश करता हुआ यह हिंदी का पहला रिसर्च आर्टिकल है स

हिंदी ग़ज़ल में कई ऐसे शेयर हैं जिसमें दलित के साहस, संघर्ष, दुख दर्द भेदभाव और शोषण उत्पीड़न का वर्णन किया गया है स हिंदी गजल का अध्ययन करने पर पता चलता है कि दलित चेतना को लेकर शायरी करने वाले अदम गोंडवी हिंदी के पहले गजलकार हैं वह स्वयं भी एक प्रकार से इसकी घोषणा करते हुए एक कविता लिखते हैं रू–

आइए महसूस करिए जिंदगी के ताप को
मैं चमारों की गली तक ले चलूंगा आपको
जिस गली में भुखमरी की यातना से डूब कर
मर गई पुलिया बिचारी एक कुएं में डूब कर

हिंदी ग़ज़ल में अदम गोंडवी वैसे गजलगो हैं जिन्होंने कभी चापलूसी नहीं की बल्कि तल्ख तेवर अख्तियार किया स वह वास्तव में इस सदी के महान गजलकार और जन कवि हैं स चर्चित कवि ईश मिश्र मानते हैं कि अदम अन्य दलित दबे कुचले वर्गों के साथ कृषक वर्ग के भी बुद्धिजीवी हैं स वहीं मधु खराटे ने माना है आदम ने

सामाजिक विसंगतियों, आर्थिक विषमता, गरीबी नैतिक पतन, दलित चेतना आदि का चित्रण भी अपनी गजलों में खूब किया है स

अदम की दलित विषयक खेलों में भी यह प्रतिरोध दिखाई देता है रू–

तुम्हारी मेज चांदी की तुम्हारा जाम सोने का
यहां जुम्मन के घर में आज भी फूटी रकाबी है

अदम हिंदी के पहले गजलकार हैं जिन्होंने एक– दो शेर नहीं बल्कि दलितों के हालात पर पूरी की पूरी मुसलसल ग़ज़लें कही है देखें एक– दो गजल के कुछ शेर रूदृ

अंत्यज कोरी पासी हैं हम
क्यों कर भारतवासी हैं हम
अपने को क्यों वेद में खोजें
क्या दर्पण विश्वासी हैं हम
छाया भी छूना गर्हित है
ऐसे सत्यानाशी हैं हम
धर्म के ठेकेदार बताएं
किस ग्रह के आधिवासी हैं हम

ऐसी ही उनकी दूसरी एक ग़ज़ल है–

वेद में जिन का हवाला हाशिये पर भी नहीं
वे अभागे आस्था विश्वास लेकर क्या करें
लोकरंजन हो जहां शंबूक वध की आड़ में
उस व्यवस्था का घृणित इतिहास लेकर क्या करें
कितना प्रतिगामी रहा भोगे हुए छण का यथार्थ
त्रासदी, कुंठा, घुटन, संत्रास लेकर क्या करें

इस तरह की ग़ज़लें लिखना इतना आसान नहीं है इसके लिए अदम को गांव के ठाकुरों का विरोध सहनाा पड़ा स उन्हें ठाकुर जाति पर कलंक की पदवी दी गई अदम के ऐसे शेर भरे पड़े हैं स

हिंदी ग़ज़ल परंपरा में अदम को छोड़कर दलित विषय को लेकर बाजाब्ता शायरी करने वाले कोई नहीं है, लेकिन हिंदी के कई महत्वपूर्ण गजलकार हैं जिन्होंने अपनी शायरी में पूरी मजबूती के साथ दलितों की दशा और दिशा का चित्रण किया है, जिसमें अनिरुद्ध सिन्हा, रामकुमार कृषक, विनय मिश्र, नूर मोहम्मद नूर, कमलेश भट्ट कमल, रामचरण राग, और नचिकेता आदि के नाम लिए जा सकते हैं स इनकी गजलें समाज के सबसे निचले और पिछड़े वर्ग तक पहुंची है स जिसने न मात्र दलित साहित्य को बल्कि गजल साहित्य को भी समृद्ध किया है स

असल में दलित शब्द को समझे बिना दलित चेतना को नहीं समझा जा सकता स दलित समाज का वह तबका है जो आर्थिक दृष्टि से वंचित, शोषित, उत्पीड़ित, दमित और समाज में समझे जाने वाले नीचे कुल का है स अपमान, बेबसी, उपेक्षा का दंश झेलता हुआ यह बढ़ा हुआ है स इनका आशियाना वह मलिन बस्ती

है जहां से शहर भर की गंदगी गुजरती है स दलित को छूने मात्र से कोई नापाक हो जाता है, और ऐसी मानसिकता उसे हाशिए पर ढकेल देती है स हिंदू वर्ण व्यवस्था में चारों जातियों में दलित की गिनती नहीं होती स इसके लिए अछूत, अंत्याजा, पंचम वर्ण आदि शब्द कर लिए गए हैं स इनकी परछाई से ही समाज नष्ट हो जाता है स इनके मरने पर देवता फूलों की बारिश करते हैं स यह ठाकुर के कुएं में पानी नहीं पी सकते हैं स

दलित के लिए यह सारे हिदायत और बंधन हैं स दलित लेखक जयप्रकाश कर्दम मानते हैं कि प्रत्येक दलित ने अपने जीवन में कभी ना कभी किसी न किसी रूप में अन्याय, अपमान और उपेक्षा का दंश झेला है स जातिगत उपेक्षा भेदभाव अपमान हेय समझने की मानसिकता अपने ही बीच के एक आदमी को हिंदी गजल स्वीकार नहीं करती स शायर मानता है कि भेदभाव कभी ईश्वर नहीं सिखाता स यही प्रश्न रविदास और कबीर भी करते हैं, और यही सवाल हिंदी का ग़ज़लगो भी करता है स जब सब कुछ एक हैं तो उस तो उसे निम्न जाति का क्यों समझा जाए रू–

जातों –पातों का क्या करें कोई
ऐसी बातों का क्या करें कोई
यहां पर सब बराबर हैं यह दावा करने वाला भी
उसे ऊपर उठाता है मुझे नीचे गिराता है। – बल्ली सिंह चीमा
क्यों महाजन की आंख है हम पर
हम कोई सूद की रकम तो नहीं। – बालस्वरूप राही
पूरे ढांचे को बदलने की जरूरत होगी
अब ये हालात नहीं यूं ही संभालने वाले। – लक्ष्मी शंकर बाजपेई
यह कहते आए हैं दाई से लेके साईं तक
कि कोई जन्म से छोटा बड़ा नहीं होता। – विजय कुमार स्वर्णकार

ऐसा नहीं है कि हिंदी गजल में सिर्फ दलित की पीड़ा ही है बल्कि कई शेर ऐसे भी हैं इसमें दलित वर्ग के बुद्धि, ताकत, संघर्ष का माद्दा और राजनीतिक तथा सामाजिक चेतना भी दिखाई गई है स कुछ शेर इस संदर्भ में देखे जा सकते हैं रू–

देश का है हाथ वह भी यह समझ
अब दलित भी है नहीं कम देख ले। – मांगन मिश्र मार्तंड
अपने हक के लिए लड़ाई सीधे लड़ना है
लौट ना आए फिर से वही दलालों वाले दिन।– किशन तिवारी
यह बात कोख से तय कैसे हो गई आखिर
के मेरे छूने से गंगा को पाप लगता है। – विजय कुमार स्वर्णकार
उंगली जुबान हाथ नज़र इस्तेमाल कर
बेखौफ हो के वक्त से सीधे सवाल कर। – माधव कौशिक
सदियों तक गम मन ही मन में पाले हैं

पर अब हम आवाज उठाने वाले हैं । – केपी अनमोल

गजल इशारों में बात करती है लेकिन स्थितियाँ हर वक्त इशारों में बात करने वाली नहीं होती स हिंदी गजल ने शुरू से अपना तल्ख तेवर अख्तियार किया है स हिंदी ग़ज़ल के कई ऐसे शेर हैं जिसमें बिना किसी छुपाव के सीधे– सीधे सवाल पूछा गया है स कुछ शेर मुलाहिजा हो रू–

हवा मिट्टी या पानी पर सभी का हक बराबर था
बिगड़ कैसे गया पर्यावरण फिर लोकशाही का।– दिलीप दर्श
हिकारत इस कदर अच्छा नहीं है
दलित भी आदमी होते हैं साहब। – तनवीर साकित
आपके ढंग में चौधराहट हैं
इस तरह मशवरे नहीं होते। – महेश कटारे
आज भी तो है वही सामंतशाही मध्ययुग
ले गए औरत उठाकर रोकता कोई नहीं। – राम मेश्राम
देख भगवे लिबास का जादू
सब समझते हैं पारसा तुमको। – हस्तीमल हस्ती
हमारी मुश्किलें मानो हमारे गम को तुम समझो
कभी तो इस तरह भी हो मुकम्मल हमको तुम समझो। – कमलेश भट्ट कमल

कहना न होगा कि हिंदी ग़ज़ल में दलित के कई रूप सामने आते हैं. दलित समाज में सबसे निचले पायदान पर हैं, लेकिन यह भी सच है कि अब दलितों की स्थितियां पहले से बेहतर हुई हैं स वोट की राजनीति ही सही उनके वजूद को समझा जाने लगा है गजल में कई ऐसे शेर मिलेंगे जिसमें यह बदला हुआ मंज़र दिखाई देता है रू–

मिले हैं टिकट जबसे भूमाफियों को
दलितों की बस्ती बसाने लगे हैं। – लवलेश दत्त
टिकी है आंख गुब्बारे पे उसकी
करेगा कुछ नया मतलू का बेटा। – अनिरुद्ध सिन्हा
गर नहीं सब का तो मैं यह पूछता हूं आपसे
यह जमीं किसके लिए है आसमां किसके लिए। – माधव कौशिक
दलित की बस्तियां होकर कभी गुजरो
मिलेगी हर जगह खुशबू मोहब्बत की। – विकास

भाषिक कला की दृष्टि से दलित रचनाएं इंकार की भाषा है स इसकी भाषा, साहित्य के मानदंडों से थोड़ी अलग है स इसमें गाली गलौज है, इसके प्रतीक भी जो इस्तेमाल किए गए हैं वह भी वीभत्स और घिनौने हैं स इसका अपना कारण भी है कि दलित साहित्य में उसी परिवेश की बोलियों को जगह दी गई है, जिसमें दलित वर्ग जीते आए हैं स अक्सर दलित पर चर्चा करते हुए यह प्रश्न भी उठाया जाता है कि गैर दलित साहित्यकारों की रचना दलित विमर्श में शामिल की जाए या नहीं स एक बड़े वर्ग का तर्क है कि गैर दलित ने

दलितों पर सिर्फ लिखा है भोगा नहीं है स उनकी बात मान लेने से ठाकुर का कुआं लिखने वाले प्रेमचंद से चतुरी चमार लिखने वाले निराला तक दलित साहित्य से खारिज कर दिए जाएंगे स

तुलसीराम का अलग ही मत है वह पूरी तरह से ब्राह्मणवाद के खिलाफ खड़े हैं स दलित के बड़े चिंतक तुलसीराम की दृष्टि में दलित को बंधनों से अलग अपना रास्ता बनाना होगा स वह समयांतर पत्रिका के एक आलेख में लिखते हैं कि ब्रह्मणवादी जो व्यवस्था है उसको मानने वाले तो गैर ब्राह्मण जाति हैं स जिसमें दलित भी शामिल हैं स दलित भी पूजा उसी देवता का करता है जिस देवता को ब्राह्मण पूजता है, वही कर्मकांड जो ब्राह्मण करता है वही दलित भी करता है स तो आप उसके खत्म होने के बात कैसे कर सकते हैं स आज के दौर में दलितों को अधार्मिक हो जाना चाहिए स

यह ठीक है कि दलित आज भी संघर्ष कर रहे हैं अपने स्वाभिमान की लड़ाइयाँ लड़ रहे हैं लेकिन यह भी सच है कि आज दलित जातियाँ इसमें ब्राह्मण भी शामिल है, का एक बड़ा वर्ग दलितों के साथ खड़ा है उनकी रचनाएँ दलित विमर्श पर आ रही है स इसलिए दलित साहित्य से उनकी रचनाओं को खारिज करना या सीधे सीधे आरोप मढ़ देना तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता स आज दलित के लिए पद दलित शब्द का भी इस्तेमाल हो रहा है यह अलग प्रश्न है कि पददलित सिर्फ दलित वर्ग हैं या अन्य ऊँचे समझे माने जाने वाले वर्ग भी स यही प्रश्न रैदास भी पूछते हैं श्जन्मजात मत पूछिए का जात अरु पातश और गज़लकार दीप नारायण भी रूदृ

कौन सी बात पूछते हो तुम
क्यों मेरी जात पूछते हो तुम। – दीप नारायण

शायर यह मानकर चलता है कि दलित को लंबे दिनों तक उनके अधिकार से वंचित रखा गया स्लम बस्तियों में रहने वाला यह बड़ा वर्ग आज भी शुद्ध हवा, शुद्ध पानी, और शुद्ध भोजन की तलाश में है स उसकी जरूरतों में शिक्षा भी है और सम्मान भी वह सिर्फ वोट के लिए नहीं है अपनी जिंदगी सुधारने के लिए भी बने हैं स रामचरण राग ने इस पर एक मुकम्मल ग़ज़ल लिखी है रू–

दलित की चेतना को वोट का अधिकार है केवल
किताबों के अलावा तो दलित लाचार है केवल
युगो से गंदगी का बोझ हम सिर पर उठाते हैं
हमारी इस जिंदगी का बस यही आधार है केवल
हमारे नाम पर होती सियासत की हकीकत है
यहां बस भाषणों में ही दलित उद्धार है केवल
हमें शिक्षा सही लेकर नए प्रतिमान गढ़ने हैं
बिना शिक्षा हमारी जिंदगी बेकार है केवल
भला अंबेडकर का हो दिखाया पथ नया हमको
नहीं तो सांस जीवन पर रही बस भार है केवल। – राम चरण राग

ऐसे ही कुछ अन्य शेर भी देखने योग्य हैं रू–

कुचला गया है कौन यहां और कितनी बार
गिनती में एक पूरी सदी ही मिसाल है। –विनय मिश्र

वे ही पूजित वो ही चर्चित ऐसा वैसा मैं ही क्यों हूं
पांचों उंगली उनकी घी में भूखा प्यासा मैं ही क्यों हूं। – विनय मिश्र
उनकी आंखों के सपने को सजा कर देखो
हां यह दलित बस्ती है जरा नजर उठा कर देखो। – ए. आर. आज़ाद
धंधा ही राजनीति है झंडा उठाइए
जय भीम कह के ताज पे कब्जा जमाइये। – राम मेश्राम
मेरा तो घर भी जूठा कमरा जूठा आंगन जूठा
मेरे घर आई तो बोलो कहां रहेगी गंगा जी। – ज्ञानप्रकाश विवेक
गगनचुंबी इमारत उठ रही है
पचीसों झुग्गियों की जान लेकर। – जहीर कुरैशी
पानी तक वो बांट ले गए
जिनसे थे संबंध लहू के। – उर्मिलेश
जब हुई नीलाम कोठे पर किसी की आरजू
फिर अहिल्या का सरापा जिस्म पत्थर हो गया। – अदम गोंडवी
हुई बरसात तो झुग्गी ने सोचा
अचानक अपने छप्पर की दिशा में। – जहीर कुरैशी

आलोचक ज्ञानप्रकाश विवेक मानते हैं गजल में कविता से कहीं अधिक चुनौतियाँ हैं स असल में गजल समझ आने वाली विधा है स यह ज्यादा प्रतीकों, मिथकों और व्यंजनों में विश्वास नहीं करती स इसलिए पाठक जान जाता है कि शायर क्या कहने वाला है स ग़ज़ल ने अपनी करवटें ली है स कभी समय से कटकर नहीं रही स गजल ने कभी बादशाहों की बात की जमींदारों की बात की स्त्री पुरुष और बच्चों की बात की, पर आज यही गजल दलितों, वंचितों, गरीबों और हाशिए के लोगों की बात कर रही है स यह वह प्रेमिका नहीं है जिसे प्रेम में ही दिल लगता है, या आंख, नाक, और कान खोल कर चलने वाली प्रेयसी है स गजल में जहां बादशाहों का गुणगान होता है, आज वहां दलितों और वंचितों की बातें भी है स यह वह विधा है जो हालात के मुताबिक कभी रुख नहीं बदलती वो उसके साथ शामिल हो जाती है स कुछ शेर उल्लेखनीय हैंरू–

खुदा के वास्ते इस पर ना डालिए कीचड़
बची हुई है यही शर्ट आखरी मेरी। – ज्ञानप्रकाश विवेक
झूठा बता के बाज को बीवी को फाहिशा
हमने दलित विमर्श को अभिनव उछाल दी। – राम मेश्राम
डेढ़ अरब की आबादी में किसको तेरी फ़िक्र पड़ी
जीता है तो जी ले यूं ही वरना तू भी जा कर मर। – कमलेश भट्ट कमल
कहां से और आएगी अकीदत की वह सच्चाई
जो झूठे बेर वाली सिरफरी शबरी से आती है। – उर्मिलेश
बूढ़ा बरगद जानती है किस तरह से खो गई

रमसुधी की झोपड़ी सरपंच की चौपाल में।

आज का समाज किसी की बात को यूं ही स्वीकार नहीं कर लेता, बल्कि उसमें विरोध करने और अपने हक के लिए लड़ने की ताकत है रू–

याचकों के वेश में
हम जिए इस देश में
तुगलकी फरमान था
आपके आदेश में। – अश्वघोष

ठंडा मत हो जाने दो
अपना रक्त तपाते रहना। –चंद्रसेन विराट

अछूतानंद जिन्होंने आदि हिंदू धर्म नाम से एक संस्था चलाई और इस नतीजे पर पहुंचे कि दलित ही वास्तव में प्राचीन हिंदू हैं स उन्होंने एक कविता लिखी थी 'दलित कहाँ तक पड़े रहेंगे जमीं के नीचे गरे रहेंगे' – हिंदी गजल इस प्रश्न का उत्तर तलाशती है स अनिरुद्ध सिन्हा का एक प्रसिद्ध शेर है दृ

बचपन में हर काम सुहाना सीख लिया
दुनिया भर का बोझ उठाना सीख लिया
पास्ता कलम किताब उठाने के बदले
मैंने जूठा प्लेट उठाना सीख लिया। – अनिरुद्ध सिन्हा

इस संदर्भ में कुछ और शेर का भी अपना मूल्य है रू–

नदियों के गंदे पानी को घर में निखार कर
चूल्हा जला रही है वह पत्ते बुहार कर। – डॉ भावना

दलितों की इसी बस्ती से तो मैं भी गुजरता हूं
कभी आते हुए मुंह पर नहीं रुमाल रक्खा है। – डॉ.जियाउर रहमान जाफरी

मेरी ग़ज़लों में लैला है ना कोई हीर मौलाना
मेरे अशआर में है आदमी की पीर मौलाना। –राजेंद्र तिवारी

इस हिकारत की नजर ने जो मुझे तोड़ दिया
सोचा हम जैसों ने यह उम्र गुजारी कैसे। – विजय कुमार स्वर्णकार

या दलित जाने या जाने इक नदी
शहर भर की गंदगी धोने का दुख
आपको हासिल रही ऊंचाइयां
आप क्या जानें दलित होने का दुख। –ए. एफ नज़र

हम ही खा लेते सुबह को भूख लगती है बहुत
तुमने बासी रोटियां नाहक उठाकर फेक दी। –दुष्यंत कुमार

हमारा खून तुम्हारी शराब क्या मतलब
गरीब जिस्म अभी तक कबाब क्या मतलब। – नूर मोहम्मद नूर

अगले कल के लिए जोड़ना भी नहीं
रोज ही माँगना रोज खाना भी है। – जहीर कुरैशी
सर जो मुश्किल है तो फिर पैर ही काटे जाएं
तय हुआ है कि किसी से कोई ऊंचा न रहे। – महेशअश्क

दलित लेखक मनोज सोनकर का मानना है कि दलित कविता का मूल मंत्र है हमें आदमी चाहिए स श्यौराज सिंह को विश्वास है कि वह वक्त जरूर आएगा रू–

हम सुबह के वास्ते आए हैं
हम सुबह जरूर लेकर जाएंगे।

दलित चिंतक कंवल भारती एक व्यक्ति की हत्या को पूरी समष्टि की हत्या स्वीकारते हैं–

शंबूक तुम्हारी हत्या
दलित चेतना की हत्या थी
स्वतंत्रता समानता और न्यायबोध की हत्या थी।

हिंदी ग़ज़ल हद उस विभाजन के खिलाफ है जो मनुष्यता के रास्ते में खड़ी है स हिंदी का शायर मानता है कि जब तक आखिरी पायदान पर बैठे व्यक्ति तक न्याय नहीं पहुँचता कुछ भी न्याय संगत नहीं हो सकता स कुछ शेर काबिले गौर हैं रू–

हम भी स्वाधीनता मनाते हैं
पर दिया पेट का जलाते हैं। – भवानी शंकर
दर्द, बेचौनियां, घुटन, आंसू
ये जहां मुझको और क्या देगी।– गिरिराज शरण अग्रवाल
आदमी होगा मर गया गंगू
फर्ज पूरा तो कर गया गंगू। – रामकुमार कृषक
राहु को सबने पासवां यूं ही न कह दिया
दुनिया में उसका कोई भी सानी न बन सका।– आर. पी घायल
वह दर्द वह बदहाली के मंजर नहीं बदले
बस्ती में अंधेरों से भरे घर नहीं बदले। – लक्ष्मी शंकर बाजपेई
रहना पड़ा जो सांप के जंगल में हाशमी
हमने भी इस शरीर को चंदन बना दिया। – फजलुर रहमान हाशमी
बुझा देते हैं जाकर झोपड़ी में वह चिरागों को
जमीदारों का यह रूतवा हवाओं से कहां कम है। – अनिरुद्ध सिन्हा
पूछिए उस अभागन से उसका पता
जिंदगी को जिसे झुर्रियां खा गई। – अनिरुद्ध सिन्हा
तुम्हारे पांव के नीचे कोई ज़मीन नहीं
कमाल यह के फिर भी तुम्हें यकीन नहीं। – दुष्यंत कुमार

हिंदी गजल के कई शेर ऐसे भी हैं जिसमें शबरी और शंबूक को प्रतीक बनाकर अपनी बात कही गई है रू–

थोड़ा सच्चा थोड़ा झूठा होता है
वर्जित फल का स्वाद अनूठा होता है
शंबूकों को प्राण गँवाने पड़ते हैं
एकलव्य का दान अंगूठा होता है। – राहुल शर्मा

दलित और वंचित वर्ग पर कई तरह के सामाजिक बंदिश लगाए गए स उन्हें मंदिर जाने से रोका गया शादियों में वह घोड़े पर नहीं जा सकते थे स अथवा आसन ऊँचा नहीं कर सकते थे स उनकी स्त्रियाँ पर्दा नहीं कर सकती थी स उन्हें अच्छे नाम से पुकारा नहीं जाता था स उच्च जातियाँ उनकी इज्जत आबरू ले ले तो वह अपराध नहीं था स हिंदी गजल ऐसे मसलों को भी उठाती है कुछ शेर देखें रू–

उन्हें तो चाहिए ज्यादा मगर थोड़ी नहीं मिलते
हमेशा ही निवाले हाथ को जोड़े नहीं मिलते
वह पैदल ही चला जाता रहा बारात को लेकर
अभी भी कुछ दलितों को यहां घोड़े नहीं मिलते। –अंजनी कुमार सुमन

फर्क इन्सान से इंसां का मिटाने देते
मंदिरों में दलितों को भी तो जाने देते – अमान ज़खीरवी

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिंदी ग़ज़ल में दलितों के जीवन और उनकी समस्याओं पर गहराई पूर्वक विचार किया गया है स अपने लेखन शैली और प्रभावी ढंग के कारण हिंदी गजल ने दलित साहित्य की समृद्धि में अपनी प्रभावपूर्ण उपस्थिति दर्ज की है स

संदर्भ ग्रंथ

गूंगा नहीं था मैं, जयप्रकाश कर्दम, पृष्ठ–46–47
हिंदी ग़ज़ल और ग़ज़लकार, मधु खराटे, पृष्ठ29
अष्टछाप, संपादक नचिकेता, पृष्ठ79
हिंदी के लोकप्रिय गजलकार संपादक नीरज, पृष्ठ62
शीशे के फूल, राम मेश्राम, पृष्ठ29
हिंदी के लोकप्रिय ग़ज़लकार, संपादक नीरज, पृष्ठ –121
समुद्र ब्याहने नहीं आया, जहीर कुरैशी, पृष्ठ39
कारखाना, अप्रैल सितंबर1992, पृष्ठ37
अष्टछाप, संपादक नचिकेता, पृष्ठ91
वही, पृष्ठ–140
श्यामयाने कांच के, उर्मिलेश, पृष्ठ–91
शोषितनामा, मनोज सोनकर, पृष्ठ95
नई फसल, शय्योराज सिंह, पृष्ठ –03
मेरी नींद तुम्हारे सपने, फजलुर रहमान हाशमी, पृष्ठ77

मोबाइल –9934847941

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 402-405

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नरेश मेहता के गद्य (उपन्यास) साहित्य में पारिवारिक संस्कृति

–**डॉ. उषस पी.एस.**, शोध निर्देशक

–**दिनेश भ्याण**, शोधार्थी

सह प्राध्यापक, स्नातकोत्तर विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, धारवाड़ (कर्नाटक)

शोध सार :–

वस्तुतः संस्कृति एक जटिल प्रत्यय है, जिसको व्याख्यायित करना इतना सरल नहीं है। इसका कारण यह है कि संस्कृति कोई वर्णनात्मक धारणा नहीं है। मानव–जीवन तथा व्यवहार को समझने के लिए मानव–मनीषा ने इन धारणाओं को बनाया है। किन्हीं प्रत्यक्ष इन्द्रिय ग्राह्य चीजों के वर्णन के लिए नहीं। संस्कृति एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका लक्ष्य अनुभव–जगत् को बुद्धिगम्य बनाना है। भारतीय वाघ्मय में संस्कृति विषयक धारणा का व्यापक पफलक हमें प्राप्त होता है। अर्थ–विस्तार के द्वारा आधुनिक युग में संस्कृति शब्द में पहले की अपेक्षा अधिक गम्भीर अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। यह भी स्वाभाविक है क्योंकि संस्कृति कोई जड़ अथवा स्थिर धारणा का बोधक नहीं है। संस्कृति परिष्कार का बोधक है।

मूल शब्द : नरेश मेहता का गद्य साहित्य।

उपन्यास शब्द 'उप' उपसर्ग और 'न्यास' पद के योग से बना है जिसका अर्थ है अर्थात समीप न्याय रखना, स्थापित रखना। अर्थात वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर पाठक को ऐसा प्रतीत होता है कि यह उसी के जीवन की कथा है उसी की भाषा में कही गई है। उपन्यास की घटनाओं को प्लाट या कथानक कहा जाता है कथानक के अंतर्गत समस्त घटनाएं, विषय आ जाते हैं, जिनके लिए उपन्यास की रचना की जाती है। कथानक ही उपन्यास का मूलाधार है जिसके आधार पर उपन्यास आगे बढ़ता है। कहानी के संदर्भ में नरेश मेहता लिखते हैं " जब कोई विषय वस्तु कथा तमक होकर आई तभी कहानी लिखी गई वस्तुतः कहानियां प्रचलित कहानियों से भाव भाषा सभी में भिन्न है कहानी अभिव्यक्ति होती है घटना मात्र नहीं।"[1]

नरेश मेहता की कथा साहित्य में संपूर्ण कथा साहित्य के अंतर्गत में 8 उपन्यास तथा तीन कहानी संग्रहओं की रचना की उनका प्रथम उपन्यास 'डूबते मस्तूल' की रचना उन्होंने 1954 में आरंभ की थी जो उत्तर कथा खंड एक और दो से लेकर 1980 एवं 1984 तक प्रकाशित हुई थी। मेहता जी हिंदी साहित्य जगत के प्रसिद्ध उपन्यासकारों में एक है। उन्होंने यह स्थान साहित्य जगत को 8 उपन्यास देकर प्राप्त किया। उन्होंने अपने संपूर्ण कथा साहित्य में मालवा क्षेत्र तथा उसके आसपास के सामाजिक जीवन का यथार्थ पूर्वक चित्रण किया है।

'डूबते मस्तूल' नरेश मेहता का प्रथम उपन्यास है जो 1954 में प्रकाशित हुआ। उपन्यास का प्रारंभ लखनऊ स्टेशन से होता है जहां स्वामीनाथन अपने पुराने मित्र से मिलने के लिए लखनऊ आता है। वह लखनऊ

पहली बार आया था। पूरी उसके बचपन का दोस्त था। वह मिशन स्कूल में एक साथ ही पढ़ाई करते थे। स्कूल के बाद उनकी बात केवल पत्रों द्वारा ही हो पाई। स्वामीनाथन के दोस्त पुरी की शादी दो साल पहले ही हुई थी। जब स्वामीनाथन पुरी के बंगले पहुंचता है तो वहां का माली उसे बताता है कि मालिक आज सुबह ही बरेली चले गए हैं। वह वापिस जाने की सोचता ही है कि कि तभी माली उसे आकर कहता है कि आपको मालकिन बुला रही है। नेम प्लेट पर रंजना का नाम देखकर स्वामीनाथन यह समझ लेता है कि श्रीमती रंजना पुरी की पत्नी है।

वह रंजना को "पुरी की पत्नी ही समझ लेता है पर जब रंजना से ही मालूम होता है कि वह पुरी की पत्नी नहीं है तब स्वामीनाथन को अपनी भूल का पता चल जाता है। वह वापस जाना चाहता है लेकिन गाड़ी शाम को होने के कारण रंजना स्वामीनाथन को रोक लेती है। रंजना स्वामीनाथन से बिल्कुल पूर्व परिचितों जैसा व्यवहार करती है, और उसे अपने पूर्व प्रेमी अकलंक के नाम से संबोधित करती है। स्वामीनाथन के नकारने पर भी वह कहती है "तुम कहते हो तुम अकलंक नहीं हो और मैं कहती हूं कि तुम हो।"[2]

जब रंजना 14 वर्ष की थी तब वह एक युवक के साथ भाग जाती है। उस युवक नाम सैयद था, जो उसे अफगानिस्तान ले जाकर अफगानों के बीच बेचना चाहता था। जब रंजना को यह बात पता चलती है तो वह उन्हीं की बंदूक से उनको मार देती है। इसके बाद वह अपने घर वापस आ जाती है। जब रंजना अपने परिवार वालों को यह घटना बताती है तो उसका पूरा परिवार लाहौर आ जाता है। लाहौर आने के बाद वह अकलंक से प्रेम करने लगती है। अकलंक द्वारा राजनीति में सक्रिय होने के कारण वह कुछ नहीं कर पाती और अकलंक को पुलिस पकड़ कर ले जाती है। उसके बाद रंजना का विवाह राय बहादुर के लड़के से हो जाता है। और जब एक बच्चे की मां बनती है तब तक उसके ससुराल वाले उसकी सारी संपत्ति लेकर विलायत चले जाते हैं। रंजना ने एम ए पास किया हुआ है। वह 1939 में नर्स की ट्रेनिंग लेकर मुंबई आ जाती है और वहां आकर अपने नए जीवन का प्रारंभ करती है। ट्रेनिंग के बाद वह महू जाती है जहां वह कर्नल टॉमस से मिलती है। वह रंजना को नृत्य करना और मदिरापान करना सिखाता है। रंजना कभी टॉमस से विवाह नहीं कर पाती क्योंकि उसे टॉमस अपनी नौकरी के लिए युद्ध पर जाता है। उसके जाने के बाद रोनाल्डो नामक बटालियन अफसर रंजना को अकेले पाकर उसका उसका शोषण करता है और इस बात से आहत होकर रंजना महू छोड़कर बैरागढ़ चली जाती है। बैरागढ़ में रंजना की मुलाकात मे जस्टिन से होती है और वह उसे प्रेम करने लगती है। जिसके बाद वह जस्टिन से विवाह करके आमस्तरदम चली जाती है।

जस्टिन के साथ रंजना उसके मित्र वान निकोलस के घर में रहती है। जब रंजना गर्भावस्था में होती है तब जस्टिन उसे वान के पास छोड़कर फ्रंट चला जाता है रंजना एक पुत्र को जन्म देती है और वान उसकी देख रेह करता है। रंजना अपने पुत्र का नाम असीत रखती है। 17 सितंबर 1944 को अर्नहम पर जर्मनी सेना हमला कर देती है जिसमें जस्टिन मारा जाता है। और रंजना एक बार फिर अकेली पड़ जाती है। धीरे–धीरे रंजना पर वान का प्रभाव पड़ने लगता है वह उसे दूर रहने का प्रयास करती है। वह अपने पुत्र को वापस लेकर जाना चाहती है, तो उसका पुत्र वान से कहता है "मम्मी कहीं भी जाए मैं आपको छोड़कर नहीं जा सकता।"[3] रंजना असीत वान और को वहीं पर छोड़कर मुंबई वापस आ जाती है।

मुंबई में उसकी मुलाकात एक मिलिट्री ऑफिसर से होती है, जिसका नाम कुलकर्णी था। कुलकर्णी रंजना

की तरफ आकर्षित हो जाता है। रंजना वान से बचने के लिए कुलकर्णी से विवाह कर लेती है। जब वह कुलकर्णी को अपने बीते जीवन की गाथा सुनाती है तो वहां उसकी अवहेलना करने लगता है, जिसके बाद कुलकर्णी का वास्तविक चेहरा सामने आता है।

एक दिन रंजना के पुत्र असीत का पत्र आता है की वान की तबीयत बहुत खराब हो चुकी है। जब कुलकर्णी उस पत्र को देखता है तो वह रंजना के मुंह पर वह पत्र मारकर उसे घर से निकाल देता है। वहां से रंजना लखनऊ आती है और यहां उसकी मुलाकात पूरी से होती है। यह पूरी कथा सुनाते सुनाते सुबह के तीन बज चुके थे। संपूर्ण रात्रि समाप्त हो चुकी थी। यह कथा जो दोपहर दो बजे से शुरू हुई थी, अभी तक चल रही थी। वह स्वामीनाथन से कहती है कि जब वह आज से 3 दिन पहले अपने लोन में बैठी थी तो उसे उसके पुत्र का खत मिलता है, जिसे वह स्वामीनाथन को पढ़ने के लिए देती है। इसके बाद स्वामीनाथन पत्र लेकर रंजना से अंतिम विदाई लेता है और ट्रेन में जाकर ही वह पत्र निकालकर पड़ता है।

"श्री स्वामीनाथन, मैं जानती हूं कि तुम अकलंक नहीं हो.... तुम्हे मैं जानबूझकर अकलंक कह कर अपने को कह पाऊंगी... तो मेरे मन का बोझ हल्का हो जाएगा।... उसे मैंने तुम्हें कहकर प्रदर्शित किया है कि स्वामीनाथन! रंजना नारी के पुण्य शरीर के रूप में पाप जैसी ही तो है ना... ना इससे कम, ना इससे बेश। एक संबंध हिना रंजना।"[4]

रंजना एक बहुत ही शिक्षित नारी थी, परंतु वह अपने अपनी सभी मर्यादायें भूल जाती हैं और अपने जीवन में कम से कम दस पुरुषों के साथ लैंगिक संबंध बनाती है वह अपने जीवन में चार विवाह करती है। वह सैयद राय बहादुर का लड़के, मेजर कुलकर्णी और जस्टिन के साथ विवाह करती है।उसे अपने आप से घिन आने लगती है। उसे अपना जीवन कष्टदायक लगने लगता है, क्योंकि वह अपने अंदर की यौन वृत्ति नहीं रोक पाती और अंत में उसे यह पश्चाताप झेलना पड़ रहा है। यह कामवासना रंजना के भीतर सैयद ने ही भरी थी। शरीर से भी नफरत होने लगी है।

नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' उपन्यास नारी जीवन पर ही आधारित है। किस प्रकार रंजना इतनी पढ़ी लिखी होने के बाद भी अपने प्रेमी सैयद की बातों में आ जाती है और उसका पूरा जीवन नष्ट हो जाता है। वह अपने जीवन में स्वयं निर्णय लेती है परंतु कहीं भी उसकी तकदीर उसका साथ नहीं देती। अपने साथ हुए शोषण बलात्कार से आहत हो जाती है। अब उसे अपना जीवन बिताना ही मुश्किल लगने लगता है।

नरेश मेहता का 'यह पत्र बंधु था' उपन्यास सन् 1962 में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास में मेहता जी ने पच्चीस साल के जीवन को चित्रित किया है। उपन्यास में सन 1920 से लेकर 1945 तक के समय की संपूर्ण सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक घटनाओं को चित्रित किया है जिसमें मालवा के श्रीधर नामक एक साधारण व्यक्ति की दूब गाथा कहीं गई है।

श्री नाथ कीर्तनयाजी के 3 पुत्र थे। जिसमें सबसे बड़े लड़के का नाम श्री मोहन था। श्री मोहन की पत्नी का नाम सावित्री था। वह बहुत ही चिड़चिड एवं गुस्सैल स्वभाव की महिला थी। मंझला बेटा श्रीधर बाबू थे जो उज्जैन के एक स्कूल में अध्यापक थे। उनकी पत्नी का नाम सरस्वती था। सरस्वती आधुनिक युग की शिक्षित एवं समझदार नारी थी। उनका सबसे छोटा बेटा श्री बल्लभ घोड़ों का डॉक्टर था जो कुछ समय पहले ही अपनी पत्नी को लेकर दूर जाकर बस गया था।

जब श्रीधर बाबू बीस वर्ष के थे तब उन्हें उनका विवाह हो गया था और विवाहित जीवन के 5 वर्षों में उनके 3 बच्चे हुए। जिनमें दो बेटियां एवं एक बेटा था। उनकी पत्नी सरस्वती दिन भर घर के कामों में व्यस्त रहती थी। श्रीधर बाबू को अपनी पुस्तक 'राज्य का गौरवमई इतिहास' को श्रीमंत सरकार ने पुरस्कृत किया। एक दिन गाडगिल साहब ने श्रीधर बाबू को शिक्षा विभाग इंस्पेक्टर का पत्र दिया "श्रीधर बाबू ने अपने इतिहास में श्रीमंत सरकार तथा उनके पुण्य स्मरणीय पितामह का बराबर उल्लेख करते हुए उचित राजकीय संबोधनो एवं पदवियों का प्रयोग नहीं किया। इस कारण राज्य में बड़ा असंतोष फैल गया।

लेखक इस भूल को तत्काल सुधारने तथा क्षमा पत्र श्रीमंत की सेवा में विभाग के मार्फत लिखकर अविलंब भेजें।"[5] श्रीधर बाबू ने अपनी रचना में किसी भी प्रकार के बदलाव को करने से इंकार कर दिया, जिसके लिए उन्हें अपनी नौकरी छोड़नी पड़ेगी। इस बात से पूरा परिवार गहरी चिंता में डूब गया। एक दिन जब वह तालाब पर नहाने जाते हैं तो उन्हें अपने से 10 वर्ष बड़ी बचपन की इंदु दीदी की याद आती है। उन्हें पता चलता है कि वह अपने ससुराल चली गई और अब वह विधवा है और काशी में रहती है। दिवाली की छुट्टियों के बाद विभाग की ओर से श्रीधर बाबू को एक पत्र आता है जिसमें उन्हें त्यागपत्र देने को कहा जाता है। पत्र को पढ़ते ही श्रीधर बाबू तुरंत त्यागपत्र दे देते हैं और वह सोचते हैं कि अब वह यहां नहीं रहेंगे। एक रात वह दो बजे उठे और अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़कर चले गए। पहले उन्होंने उज्जैन जाने की सोची लेकिन उन्हें लगा कि यहां उन्हें सब पहचान जाएंगे इस कारण वह वहां से इंदौर चले जाते हैं। इंदौर में उन्हें एक जुलूस दिखाई देता है जो स्वराज्य की मांग करने वालों का था। इंदौर में श्रीधर बाबू सुरजियों के नेता पुस्तके साहब से मिलते हैं और उन्हीं से वह बाबू विशन से मिलते हैं। बाबू बिशन श्रीधर को कुछ अजीब सी किसम के लगते हैं।।

निष्कर्ष :–

इसके अतिरिक्त कमलेश्वर ने 'प्रथम फाल्गुन" यह उपन्यास सन् 1966 में प्रकशित हुआ उपन्यास में गोपा और महिम के रिश्ते का वर्णन किया गया हैं। गोपा उच्च रिश्ते का वर्णन किया गया है। गोपा उच्च वर्ग की पढ़ी–लिखी व सूझवान स्त्री हैं। गोपा महिम के साथ कलकत्ता के बड़े–बडे होटल, बाल–डॉंस थियटर में जाती हैं। महिल एक विश्वविद्यालय व चित्रकार भी है। गोपा की आर्थिक सपन्ता को देखकर महिम गोपा के परिवार की और मोहित होता हैं। महिम गोपा को अपनी पत्नी बनाने का प्रयत्न करता है। गोपा जारज की औलाद है। यह बात समझकर महिम का गोपा के अंत में दोनों अलग हो जाते है। इस उपन्यास में सन् 1930 के लखनऊ के समाज जीवन का मुख्य रूप से वर्णन हुआ है। इस उपन्यास में स्वातन्त्र्यपूर्व काल के उच्च वर्ग के समाज जीवन के चित्रण के साथ रहन–सहन सामाजिक संबंध उत्सव, परंपरा, धार्मिक आदि का वर्णन हुआ हैं। समाज में उच्च वर्ग जीवन सामान्य लोगों के लिए एक लालसा रहा है। उच्च वर्ग के लोगों के पास सुख–सुविधाएँ तो होती ही है। लेकिन उनकी भी सामाजिक परेशानियाँ होती है। इस उपन्यास को यह उपन्यास पेश करता है।

संदर्भ :–

1. नरेश मेहता– प्राक्कथन, 'तथापि'
2. नरेश मेहता– डूबते मस्तूल, पृष्ठ 46
3. नरेश मेहता– डूबते मस्तूल, पृष्ठ 46
4. नरेश मेहता– डूबते मस्तूल, पृष्ठ 240–241
5. नरेश मेहता– यह पत्र बंधु था, पृ0 28

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 406-410
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी के उपन्यासों में नारी की आर्थिक समस्या

–डॉ. आशा सहारन, शोध निर्देशिका
–संगीता राव, रिसर्च स्कॉलर
विभागाध्यक्ष एवं अधिष्ठाता, मानविकी संकाय हिन्दी विभाग,
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक।

आर्थिक समस्या :–

'अर्थ' को समाज की नींव माना गया है। आर्थिक परिस्थितियों से व्यक्ति व समाज दोनों प्रभावित होते हैं। मनुष्य की भौतिक आवश्यकताएँ अर्थ (धन) से ही पूर्ण होती है। इन भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति व धन प्राप्ति के लिए मनुष्य निरन्तर संघर्षशील रहता है। आर्थिक परिस्थितियों की मार जहाँ पुरूष झेलता है, वहीं नारी भी आर्थिक विषम परिस्थितियों से पीड़ित होती है। घर, परिवार की चिन्ताओं का हमला नारी पर भी होता है। संतान की जननी होने के कारण संतति से जुड़े आर्थिक अभाव उसे सालते हैं। डा0 राधेश्याम सारस्वत आर्थिक परिस्थितियों के विषय में बताते हैं कि–''हमारे स्वतन्त्र भारत में आर्थिक अभाव और शोषण के शिकार मात्र पुरूष ही नहीं बल्कि स्त्रियाँ भी हैं। वे चाहे पुत्री, पत्नी, माँ, बहन अथवा अन्य किसी भी रूप में शोषण का शिकार हो सकती है। हमारे समाज में आर्थिक अभावों से पीड़ित होने पर भी पुरूष एक पत्नी के बाद दूसरी लड़की से शादी कर लेता है अथवा एक के मरने के बाद उसके बच्चे जीवित होने पर और घर में घोर आर्थिक तंगी तथा भुखमरी के शाप से शापित होने पर भी दूसरी पत्नी ले आता है।''[1]

आर्थिक अभावों की परिणति त्रासदी में होती है। तारा जैसी आदर्श जीवन जीने वाली नारी आर्थिक तंगी के कारण कुढ़ती रहती है। तारा अपनी तीनों बेटियो के खान–पान व शिक्षा के लिए चिन्तित रहती है–''इनकी पढ़ाई और जिन्दगी बनाने के लिए खुद उसे ही रास्ता ढूंढकर आत्मनिर्भर बनना होगा। दु:खों और संघर्षों को झेलकर ही वह इनका कल्याण कर सकती है। उसे न पाकर कुछ दिन रो–पीटकर ये चुप हो जाएगी। दादी–बाबा बरबस देखभाल करेंगे ही। जब वह नौकरी पाकर दो पैस कमाने लगेगी तब अपनी लड़कियों को आकर चुपके से ले जाएगी। उन्हें पढ़ा लिखाकर होशियार बना देगी जिससे उसकी जिन्दगी का काला इतिहास उनकी जिन्दगी का कलंक न बन सके।''[2]

आर्थिक तंगी में जी रही रधिया को तो न्याय भी नहीं मिल पाता–''एक बार भी आपने यह नहीं पूछा कि मैडम टिकुलिया को कफन कहाँ से मिला? उसकी अनाथ बेवा माँ रधिया कहाँ है? उसकी झोंपड़ी को राख में किसने बदला? उसका मुआवजा कैसे और कब मिलेगा।''[3]

स्त्रियों को भी दूसरे जमींदार या महाजनों के यहाँ काम करणा पड़ता है। ये जमीन्दार और महाजन काम

तो लेते ही हैं, लेकिन साथ ही शारीरिक रूप से नारी शोषण करते हैं। गरीब नारी को जीवन में आर्थिक तंगी के साथ–साथ अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ता है। नारी संघर्ष का एक प्रमुख कारण भूख की समस्या है। इसी आर्थिक विवशता के कारण, दुःख भोगने के लिए गरीब नारियां बाध्य हैं। 'फसक' की 'पुष्पा' भी आर्थिक तंगी के कारण दुकान पर बैठती है लेकिन पुष्पा को भी जीवन में अनेक आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पति की मृत्यु पश्चात् पुष्पा के लिए जीवन यापन के साधन जुटाना मुश्किल हो गया–''छह महीने से घर में राशन की भारी किल्लत है। जेठानी राशन कार्ड देने में आनाकानी करने लगी! पड़ोसियों को जब पता चलता है कि इस बार राशन में काले गेहूँ आये है या चावल ज्यादा मोटे हैं, तब भी चार बार चिरौरी करने के बाद ही कोई अपना राशन कार्ड देता है।''[4]

सत्यम् इदम् इव' की 'तारा' आर्थिक अभावों के कारण दूसरों के घरों में नौकरानी बन अपनी बेटी आशा को पढ़ा–लिखा आत्मनिर्भर बनाना चाहती है। यह आर्थिक तंगी है जो सेठ लक्ष्मीचन्द व डा0 बंसल के घर में उसे तिरस्कार व लांछन सहना पड़ता है–''लड़कियाँ अनबोल है। नमक–रोटी खाकर भी हँसती रहती है। इनकी पढ़ाई और जिन्दगी बनाने के लिए खुद उसे ही रास्ता ढूँढकर आत्मनिर्भर बनना होगा। दुःखों और संघर्षों को झेलकर ही वह इनका कल्याण कर सकती है। उन्हें पढ़ा–लिखाकर होशियार बना देगी जिससे उसकी जिन्दगी का काला इतिहास उनकी जिन्दगी का कलंक न बन सके।''[5]

''आक्षरी–माक्षरी'' की 'आछरी' को अपने बच्चे के लालन–पालन व स्वयं के जीने के लिए अर्थ (धन) कमाने की चिन्ता रहती है–''हफ्ता दस दिन यों ही बीत गये। आछरी ने जहाँ लोक लाज से स्वयं को मुक्त पाया वहीं उसकी चिंता एक दूसरी तरह की खड़ी हो गयी। बच्चा दिन रात बढ़ने लगा। अब यूं तंबू के अन्दर ही रहना संभव नहीं था। राशन पानी भी हफ्ता दस दिन और चल सकता था। 'रूकसक' खाली होने को थे। नवजात शिशु को न अकेला तम्बू में छोड़ने का मन होता, न साथ उठाकर भिकियासैण बाजार जाने की हिम्मत।''[6]

''पिछल्ले पन्ने की औरतें'' में सुश्री शरद सिंह ने ऐसी अनेक नारियों का वर्णन किया है जो अर्थ प्राप्ति के लिए वेश्यावृत्ति के जीवन को अपनाती हैं। आर्थिक व सामाजिक सुरक्षा का अभाव नारी में असुरक्षित जिन्दगी का भय उत्पन्न कर देता है। ये नारियाँ अपनी सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों से मजबूर होकर देह व्यापार का कार्य करने को विवश है। यदि यह कार्य सुख व धन संचय के लिए किया जाता तो निश्चित ही घृणास्पद होता। श्यामा ऐसी स्त्री है जो परिवार के पालन–पोषण के लिए देह व्यापार को अपनाती है–''एक अनपढ़ देहाती औरत जो एक ऐसे समुदाय की हो जिसमें देह व्यापार ही आय का प्रमुख स्त्रोत है, भला और कौन सा रास्ता चुन सकती है।''[7]

बैंक कर्मचारी के रूप में कार्यरत नारी पति का अर्थोपार्जन में हाथ बंटाती है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर स्त्रियाँ अपना जीवन शांतिपूर्वक व्यतीत करना चाहती है, लेकिन समाज और परिवार के लोगों को जब भी मौका मिलता है इनका शारीरिक और मानसिक शोषण करने से नहीं चूकते। 'कल्याणी' के साथ भी यही होता है। कल्याणी के परिवार के लोग उसे इस हद तक उत्पीड़ित, भयभीत और तिरस्कृत तथा अपमानित करते हैं कि वह पूरी तरह टूट जाती है।

अतः अधिक पढ़ी लिखी और अच्छे पद पर कार्यरत नारी के प्रति पुरूष (पति) समाज नारी की प्रतिष्ठा से ईर्ष्या और राग द्वेष कर नारी को तनावमय बना देता है। क्योंकि भारतीय समाज में पुरूष ने सदा से नारी

को आर्थिक दासता की जंजीरों में जकड़ रखा है। पुरूष ने हमेशा नारी की आर्थिक स्वतन्त्रता को नष्ट करके स्वयं के प्रभुत्व को प्रबल बना लिया। जब आधुनिक नारी आत्मनिर्भर बन पुरूष से भी श्रेष्ठ पद एवं प्रतिष्ठा पा रही है तो पुरूष के लिए यह असहनीय हो रहा है। इससे पुरूष के अहंकार को चोट पहुँचती है। पुरूष या तो पत्नी की नौकरी छुड़वाता है या फिर उस पर लांछन लगाने शुरू कर देता है। आर्थिक समस्या से जूझती नारी परिवार व कार्यक्षेत्र के भार को ढ़ोते–ढ़ोते चिड़चिड़ा स्वभाव बना लेती है। उसका दाम्पत्य जीवन तनावमय व निरस बन जाता है। 'पत्ताखोर' उपन्यास की वन देवी की स्थिति कुछ इस प्रकार ही है–''तुम्हारे अनुसार अब यदि मैं दो वर्ष के लिए घर बैठ भी जाऊँ तो फिर क्या मुझे मिल जाएगी इतनी सुरक्षित बैंक की नौकरी।''[8]

''एक जमीन अपनी'' की अंकिता व नीता, ''विश्वासगाथा'' की कल्याणी, ''सत्यम् इदम् इव'' की तारा, ''सुबह के इन्तार में'' की फुलवा और रोजिया आदि नारियाँ आर्थिक स्वावलंबन या आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा से घर से बाहर नहीं निकली, अपितु प्रतिकूल परिस्थितियों ने उन्हें ऐसा करने के लिए विवश किया है। ये नारियाँ या तो पारिवारिक कामकाज या व्यवस्था की क्रूरता के आगे विवश होकर कामकाज के लिए घर से बाहर निकली। अतः नारी की आर्थिक समस्या उन्हें घर व बाहर दोनों जगह संघर्ष करने के लिए विवश कर रही है।

आर्थिक अभाव के कारण ही ''सत्यम् इदम् इव'' की परबतियां का सौदा किया जाता है, वहीं तारा का विवाह नशाखोर इन्द्रमणि से करवाया जाता है। ''माया शबनम'' जी ने 'सत्यम् इदम् इव' उपन्यास में आर्थिक अभावों को झेलती नारी त्रासदी का पूंज समक्ष रख दिया, जिसे पढ़ने पर मन करूणा से भर जाता है। उपन्यास में गोरखपुर की बुचिया का उसकी भाभी ने मात्र दो हजार रूपए के लिए अपहरण करवा दिया। व्यवस्थापिका सुनीता देवी स्वयं वैधव्य नारकीय जीवन से पीड़ित हो, रोजी रोटी कमाने के लिए घर से भाग आश्रम तक पहुँची। उपन्यास की जस्सो को भी अर्थ (दहेज) के लालच में भस्म करने की कोशिश की जाती है, वहीं हिना को 12 वर्ष की उम्र में उसी के मामू द्वारा अरब के अमीरजादों के हाथ बेच चंद रूपयों की कमाई की जाती है। अर्थाभाव के कारण ही 'बेतवा बहती रही' की उर्वशी का पुनर्विवाह अधेड़ उम्र के बुरजोर सिंह से करवाया जाता है। उर्वशी के विवाह के बदले में भाई अजीत बुरजोर सिंह से जमीन व पैसे लेता है। अतः भाई की आर्थिक क्षुधा पूर्ति ने बहन को विकट परिस्थितियों में ड़ाल दिया।

आज की नारी यह अच्छी तरह समझ गयी है कि आर्थिक स्वावलम्बन के बिना वह पुरूष की अधीनता से मुक्त नहीं हो सकती। बाजारवाद व खुली अर्थव्यवस्था ने स्त्री पुरूष के संबंधों के समीकरण को प्रभावित तो किया परन्तु नारी उत्पीड़न, शोषण व प्रताड़ना के अनेक साक्ष्य आज भी समाज में मिलते हैं। नारी चाहे किसी भी वर्ग (उच्च, मध्यम या निम्न) से सम्बन्ध रखती हो, वह किसी न किसी प्रकार से शोषित ही है। आज महिलाएँ राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यवस्था को चुनौती तो दे रही हैं लेकिन नारी मुक्ति तभी संभव है जब नारी को आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ सामाजिक स्वतन्त्रता भी मिले। प्राचीन काल से ही नारी शारीरिक और मानसिक रूप से तो शोषित, पीड़ित होती आयी है। अर्थ की अतिरिक्त लालसा नारी–पुरूष, संबंधों में तनाव उत्पन्न कर देती है। 'पिछल्ले पन्ने की औरतें' उपन्यास की गुड़्डी का पति अर्थ प्राप्ति के लिए धंधा करवाना चाहता है। जब इसका प्रतिकार करती है तो उसे परेशान किया जाता है–''उसे सास के हाथों मार खानी पड़ती। उसकी सास उसे मारते हुए कहती, हमारे भाग फूटे थे जो खिलान को तुझसे ब्याह करने दिया। अभी कोई और बहू होती

तो सामानों से घर भर देती। तेरी माँ तो धंधा कर–करके लाखों कमा रही है, उससे खिलाने के लिए मोटरसाईकिल मंगा ले। गुड्‌डी सास की बातें, सुनकर बस रोती रहती।''[9]

अतः गुड्‌डी के दाम्पत्य संबंधों के टूटने का कारण अर्थ लालसा है। अर्थाभाव की स्थिति मनुष्य को जीवन के प्रति निराशामय बना देती है। अर्थाभाव कभी–कभी तो नारी को नैतिक मूल्यों को तोड़ने के लिए भी विवश कर देती है। 'सुश्री शरद सिंह' ने 'पिछल्ले पन्ने की औरतें' उपन्यास में शिक्षिका शशि के माध्यम से इस समस्या को स्पष्ट किया है–''उसका अपना पति है जो यह सोचकर खुश होता रहता है कि चलो, मुकदमा लड़ने के पैसे तो नहीं लग रहे हैं। उसे शशि के रात–रात भर उन छुटभैया अधिवक्ताओं के पास रहने पर कोई आपत्ति नहीं है। वह अपनी वेतनवृद्धियाँ पाने के लिए छुटभैया अधिवक्ताओं का बिस्तर गर्म करने वाली औरत बन चुकी है। अ बवह इसे अपनी खूबी समझने लगी है।''[10]

''सुबह के इन्तजार में'' उपन्यास में अर्थाभाव के संकट को मिटाने के लिए व बच्चों के पालन–पोषण के लिए 'फुलवा' देह का सौदा करने के लिए भी तैयार हो जाती है। ''अन्ततः मैं भी दुकान छोड़कर देह बेचने पर मजबूर हो गई।''[11]

'एक जमीन अपनी' की नीता आर्थिक तंगी से निपटने के लिए विज्ञापन की दुनिया में कदम रखती है। अर्थ प्राप्ति के लिए नीता अपने शरीर का खुला प्रदर्शन करने से भी नहीं झिझकती–''देह पर है मात्र......वक्षस्थल को ढँकता हुआ अँगोछे–सा कोई कपड़े का टुकड़ा और घुटने के नीचे तक फैली हुई लहँगा स्कर्ट.....। लड़की की निर्वस्त्र पीठ कैमरे की आँखों में है।''[12]

वर्तमान समय में प्रत्येक नारी की इच्छा भौतिक सुख–सुविधाओं को प्राप्त करना है। इसका प्रमुख कारण नारी का भौतिक सुख–सुविधाओं के प्रति आकर्षण, पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव तथा सुविधा प्राप्ति की अति महत्त्वाकांक्षा लिए अनेक समस्याएँ लेकर आती है। 'पत्ताखोर' की 'वनश्री' अर्थ लालसा के कारण पुत्र की अच्छी परवरिश नहीं कर पाती, वहीं 'एक जमीन अपनी' की 'नीता' अर्थ लालसा के कारण सुखमय पारिवारिक जीवन नहीं भोग पाती। साथ ही इस आर्थिक कालचक्र में अगणित नारियों को वेश्या जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ा। सुश्री शरद सिंह ने इस समस्या को बखूबी 'पिछल्ले पन्ने की औरतें' उपन्यास में स्पष्ट किया है। 21वीं सदी के भारतीय समाज में व्यावसायिकता और आजीविकावाद को प्रधानता दी जा रही है। अतः पति–पत्नी–माँ व संतान के मध्य संवेदना एवं आत्मीयता नष्ट होती जा रही है।

आज नारी अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की सुषुप्त चेतना को उतरोत्तर जागृत करती हुई दिखायी दे रही है। आज की नारी समझ गयी है कि अपनी स्थिति में सुधार हेतु उसे केवल आर्थिक रूप से आश्रित न होकर आत्मनिर्भर बनना होगा। आर्थिक स्वतन्त्र व आत्म निर्भर नारी ही समाज के कुशासन से लड़ सकती है। नारी का स्वयं के अनुसार जीवन जीने की लालसा आर्थिक स्वतन्त्रता के द्‌वारा ही पूरी हो सकती है। तसलीमा नसरीन ने सही लिखा है–''स्त्री शिक्षित हो, आत्मनिर्भर हो, तभी वह अपने अधिकार के प्रति सचेत होगी। वरना उसे क्या पाना है और क्या नहीं, यह वह स्वयं ही नहीं जान पायेगी।''[13]

कुल मिलाकर देखा जाए तो आज की नारी अपनी कार्यक्षमता का विस्तार कर नारी कार्य कुशलता को प्रदर्शित कर आर्थिक स्वतन्त्रता के अधिकार को वहन कर रही है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. रामदरश मिश्र की कहानियों में पारिवारिक संबंधों का स्वरूप, सं0 डा0 अमिता, पृ0 संख्या– 206
2. सत्यम् इदम् इव, पृ0 संख्या– 20
3. सत्यम् इदम् इव, पृ0 संख्या– 223
4. फसक, सं0 राकेश तिवारी, पृ0 संख्या– 15
5. सत्यम् इदम् इव, पृ0 संख्या– 20
6. आक्षरी की माछरी, पृ0 संख्या– 20
7. पिछल्ले पन्ने की औरतें, पृ0 संख्या– 261
8. पत्ताखोर, पृ0 संख्या– 19
9. पिछल्ले पन्ने की औरतें, पृ0 संख्या– 298
10. पिछल्ले पन्ने की औरतें, पृ0 संख्या– 262
11. सुबह के इन्तजार में, पृ0 संख्या– 140
12. एक जमीन अपनी, पृ0 संख्या– 94
13. महिला उपन्यासकारों के साठोत्तरी प्रतिनिधि उपन्यास : एक अध्ययन, सं0 डा0 अन्जू सराणा, पृ0 संख्या– 165

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 411-414
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मधु कांकरिया का कथा साहित्य और नारी विमर्श

–नरेन्द्र
शोधार्थी–पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

हिन्दी साहित्य के विकास में समकालीन हिन्दी साहित्यकारों का विशेष योगदान रहा है। समकालीन साहित्यकारों ने नवीन विषयों पर साहित्य लेखन कर हिंदी साहित्य में विभिन्न विमर्शों को नवीन आयाम प्रदान किये हैं। कथाकार मधु कांकरिया समकालीन हिंदी साहित्यकारों में प्रमुख हस्ताक्षर हैं। मधु कांकरिया का जन्म 23 मार्च 1957 को कलकत्ता के मध्यवर्गीय जैन परिवार में हुआ था। इनके पिता जी का नाम धर्मचन्द बार्डिया और माता जी का नाम अक्षया बार्डिया है। मधु कांकरिया को अपने पिता से अधिक स्नेह प्राप्त हुआ। बचपन से ही उनकी रुचि साहित्य के प्रति रही है। पिता जी द्वारा लाये गये प्रेमचंद, टेगौर, शरतचन्द्र आदि के साहित्य को अध्ययन करती रहती थी। साहित्य यात्रा–मधु कांकरिया ने 18 से 28 वर्ष की आयु तक छोटी–छोटी कहानियां लिखती रही। अध्ययन काल में कॉलेज पत्रिका में उनकी उनकी एक कहानी को स्थान मिला। दाम्पत्य जीवन के कटु सत्यों और अनुभवों ने उनके साहित्य को यथार्थ के अधिक नजदीक ला दिया है। उनकी पहली कहानी वागार्थ पत्रिका में प्रकाशित हुई थी।

उपन्यास प्रकाशन वर्ष :–

1. खुले गमन के लाल सितारे सन् 2000
2. सलाम आखिरी सन् 2002
3. 'पत्ताखोर' सन् 2005
4. सेज पर संस्कृत सन् 2008
5. सूखते चिनार सन् 2012
6. हम यहां थे सन् 2018

कहानी संग्रह :–

1. बीतते हुए सन् 2004
2. ......और अंत में ईशु सन् 2001
3. युद्ध और बुद्ध सन् 2014

मधु कांकरिया का साहित्य यथार्थ के अधिक नजदीक दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने अपने साहित्य में वृद्धों, महिलाओं और शोषित पीड़ित समाज के स्वर को बुलंद किया है। उन्होंने अपने साहित्य में नारी की पीड़ा को व्यक्त करने का सार्थक प्रयास किया है। 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में उन्होंने धर्मिक आडम्बरों और कुप्रथाओं

का जमकर विरोध किया है। भारतीय समाज में नारी को देवी तुल्य माना गया है। नारी के प्रति आदर और सम्मान का भाव रखा जाता है। 'ऋग्वेद में नारी को किसी कार्य का नेतृत्व करने, वीरता सम्बंधी कार्य करने का उल्लेख मिलता हैं। मध्यकाल में नारी की स्थिति में गिरावट देखने को मिलती है। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने नारी को भोग्या के रूप में देखा। वर्तमान समय में की समाज का नारी के प्रति दृष्टिकोण सराहनीय नही है। वर्तमान में महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

नारी विमर्श :-

जब विमर्श का विषय नारी हो तो यह विमर्श नारी—विमर्श का रूप धारण करता है। नारी और नारी से सम्बधिंत विभिन्न विषयों का अध्ययन 'मुख्यों रुप से अधिकारो, समस्याओं तथा उसके सामाजिक या पारिवारिक सम्बंधों का अध्ययन नारी विमर्श कहलाता है।

'प्रभा खेतान' ने नारी सम्बंधी दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए कहा है, ''नारीवाद स्वीकारता है कि हर स्त्री को सत्ता से न्याय मिलना चाहिए। अभिव्यक्ति, जीवन और चुनाव की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। स्त्री नागरिक के प्रति राष्ट्र की जिम्मेदारी भी यही है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भी स्त्री की यही माँग रही है।''[1]

नांसिरा शर्मा ' नारी विमर्श पर टिप्पणी करते हुए कहती है, ''नारी विमर्श द्वारा शताब्दियों से चले आ रहे अंकुश की जंजीरो को तोड़ा जाता है जो औरत की जबान और जज्बात को बांधे हुए है।''[2]

कथाकार मधु कांकरिया ने पीड़ित, शोषित नारी की आवाज को अपने कथा—साहित्य में बुलंद किया है। मधु कांकरिया का कथा—साहित्य नारी विमर्श की विराट चेष्टा दृष्टिगोचर होता है।

मधु कांकरिया के कथा-साहित्य में नारी विमर्श :-

1. **स्त्री सलम्बन :-** प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक स्त्रियों की दशा में अनेक उतार—चढ़ाव देखने को मिलते हैं। 21वीं सदी महिलाओं की सदी के नाम से जानी जाती है। ग्रामीण परिवेश और महानगरीय परिवेश में महिलाओं की स्थितियों में बहुत बड़ा अंतर देखने को मिलता है। महानगरीय महिलाएं आत्मनिर्भर एवं शिक्षित है। मधु कांकरिया ने 'पत्ताखोर' उपन्यास के माध्यम से स्त्री स्वालम्बन का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया है। 'पत्ताखोर' उपन्यास के हेमन्त बाबू चाहते हैं कि उनकी पत्नी अपने पुत्र आदित्य का लालन पालन अच्छे ढंग से करे। वनश्री एक महत्वाकांक्षी महिला है। वह अपने जीवन का आनन्द लेना चाहती है। वह एक गृहिणी की भूमिका के साथ—साथ कामकाजी महिला के रूप में स्वयं को देखना चाहती है। हेमन्त बाबू और वनश्री का संवाद लेखिका के शब्दों में—''उस समय जमाना अलग था। इतनी महँगाई नहीं थी। महिलाएँ इतनी व्यस्त नहीं थी। आज का कहाँ सम्भव कि मैं हमेशा उसके साथ खेलती रहूँ... परछाई की तरह उसके साथ चिपकी रहूँ... मेरे पास तो मेरे लिये ही समय नहीं है। फिर मेरा भी अपना व्यक्तित्व है, जो सिर्फ हाउस वाइफ बने रहने से इंकार करता है। मेरी स्वतंत्रता का भी तो कुछ अर्थ है।''[3]

2. **बलात्कार और घरेलू हिंसा :-** बलात्कार और घरेलू हिंसा जैसे बढ़ते अपराध मानवीय संवेदन शून्यता का संकेत है। ग्रामीण और महानगरीय परिवेश में महिलाओं के प्रति अपराध दिन—प्रतिदिन बढ़ते ही जा रहे हैं। बलपूर्वक किसी महिला के साथ यौन सम्बंध स्थापित करना यौनापराध की श्रेणी में आता है। महानगरों में होने वाले अपराध टी.वी. चैनलों की सुर्खियां बन रहे हैं। 'सलाम आखिरी' उपन्यास की मीना काम की तलाश में कलकत्ता आती है। पांच—छह वर्ष की बालिका को सम्भालने का कार्य करती है, जिसकी माँ की अकला मृत्यु

हो चुकी है। उसका मालिक उसे बंद अंधेरे कमरे में ले जाकर उससे बलात्कार करता है। मीना के शब्दों में–''मैं माँ दुर्गा का जाप करती रही और वह मुझे लूटता रहा। मेरे मुँह से सिसकारी निकली तो उसने थप्पड़ मारकर मुझे चुप करा दिया। बाद में हथेलियों से मुँह छिपा कर जब मैं रोने लगी तो उसने हँसते हुए कहा, ''कुछ नहीं बस एक खेल खेला है, शहरों का खेल ऐसा ही होता है।''[4]

सेज पर संस्कृत उपन्यस में कथाकार मधु कांकरिया ने महानगरों में महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध का यथार्थ की प्रस्तुत किया है। लक्खी दा के शब्दों में–''दिल्ली की एक झुग्गी–बस्ती मायापुरी में एक औरत के साथ चलती गाड़ी में सामूहिक बलात्कार किया जाता है। तुम्हें डराने के लिए नहीं बिटिया बस समझाने खातिर कर रहे है बिटिया।''[5] लक्खी दा के शब्द महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराधों का संकेत है।

3. **भ्रूण-हत्या :-** महानगरों में भ्रूण–हत्या जैसे अपराध साधारण सी घटना बन चुके हैं। कलकत्ता जैसे महानगरों में वेश्याएं भ्रूण–हत्या जैसे अपराध को अंजाम दे रही हैं। शिक्षित और सम्पन्न लड़कियां भी भ्रूण–हत्या करने में भी पीछे नहीं है। घरेलू कारण भी भ्रूण–हत्या जैसे अपराधों को बढ़ावा दे रहे हैं। ....और अंत में 'ईशु' कहानी में राजेश की पत्नी अपने पति की ड्रग्स की आदत के कारण भ्रूण हत्या करवा देती है। राजेश के शब्दों में ''मुझसे दु:खी होकर पत्नी ने अपना ही एबार्शन करवा डाला... कि इस जाहिल का गर्भधारण नहीं करूँगी।''[6]

'बीतते हुए' कहानी संग्रह की कहानी 'शून्य होते हुए' में डॉ. विजय अविवाहित आदिवासी लड़की का गर्भपात करता है। गर्भपात की प्रक्रिया उसे बैचेन कर देती है। डॉ. विजय की मनः स्थिति कथाकार के शब्दों में –''हाथों के दस्ताने उतार जब वापस अपने चैंबर में बैठे तो भी चित्त वही दौड़ रहा था ...उसी भ्रूण के पास। एनाटॉमिकल विभाग में उस भ्रूण की फिडल बोन्स को निकाल लिया जाएगा।...चिकित्सा विज्ञान के छात्रों के अध्ययन के लिए... ।''[7] महानगरीय भौतिकतावादी दृष्टि ने मानव को संवेदन शून्य का दिया है। इसी कहानी का पात्र अश्विन अपनी पत्नी को लैंगिक जांच करवाने के लिए दबाव बनाता है। लैंगिक असमानता के परिणामस्वरूप महिलाओं के प्रति अपराध बढ़ता ही जा रहा है। कथाकार के शब्दों में–''यदि लड़का हुआ तो तुम्हारी किस्मत पर, यदि लड़की हुई तो गर्भपात। यदि तुमने इस पर भी जिद्द रखी तो सोच लो मैं इसकी परवरिश के लिए धेला भी नहीं दूँगा और तो और मैं उसे देखने तक नहीं आऊँगा क्योंकि वह सिर्फ तुम्हारी मर्जी से होगी। कारण उसकी जिम्मेदारी तुम्हारी और तुम्हारी होगी। डॉक्टर साहब बड़ी अनिच्छा से राम–राम करती मैं सोनोग्राफी के लिए भीतर घुसी, दमसाधे पड़ी रही, पर जैसे ही डॉक्टर ने कहा–बेबी गर्ल, मेरी सांस रुक गयी। मेरे प्राण सूख गये। आँखों के आगे वही पालिथीन बैग झूलने लगा। मैंने बहुत गुजारिश की, बहुत हाथ पैर जोड़े कि जिंदगी में इंसान से प्रिय कुछ भी नहीं है।''[8] कथाकार ने महानगरीय मानव के गिरते मूल्यों और संवेदन शून्यता को उजागर किया है। घरेलू हिंसा महानगरीय जीवन का कटु सत्य हैं कथाकार मधु कांकरिया ने घरेलू हिंसा के यथार्थ को स्वयं झेला है। कथाकार के शब्दों में–''अम्मा अभी तक सोचती थी कि चूंकि 'कुवंर सा' के पास ढंग की नौकरी नहीं है। इसलिए तनाव के चलते वे मारपीट और गाली गलौच पर, उतर आते हैं। अम्मा चाहती थी कि मैं उनहें थोड़ा समय और दूं। पर मुझे लगता है कि उन्हें समझाना बंजर जमीन में बीज बोना है।''[9]

4. **वेश्यावृत्ति :-** वेश्यावृत्ति महानगरीय जीवन का एक कटु सत्य हैं वेश्या जीवन को सबसे कंलिकत जीवन माना जाता है। 'सलाम आखिरी' उपन्यास वेश्या जीवन का महाकाव्य है। इस उपन्यास में कथाकार मधु कांकरिया ने वेश्याओं के रेडलाइट से लेकर रेडक्रास तक के सफर के यथार्थ को उजागर किया है। बलात्कार के पश्चात्

महिलाओं को कोठों पर बेच देना महानगर की सामान्य घटना है। इसी उपन्यास की मीना का बलात्कार उसके मालिक द्वारा किया जाता है। एक दिन वह मौका लगाकर वहां से भाग निकलती है। बगैर टिकट यात्रा के अपराध में टी.टीउसे पकड़ लेता है। एक स्थानीय रेलवे कर्मचारी उसे छुड़वा कर अपने रेलवे क्वार्टर ले जाता है। वह भी उसका बलात्कार कर उसे सोनागाच्छी की बदनाम गलियों में बेच देता है। अफसाना और आयशा नामक दो लड़कियों को उनकी माँ चकले में बेच फरार हो जाती है। वेश्याओं का प्रथम शोषण अपने ही एकदम नजदीकी रिश्तेदारों, मसलन भाई या पिता द्वारा ही होता है। कथाकार मधु कांकरिया ने इसी उपन्यास पिता द्वारा अपनी पुत्री के यौन शोषण का यथार्थ चित्रित किया है। कथाकार के शब्दों में –''न कोई संगीत, न कोई कविता, न साहित्य, न कोई मित्र, न ही मनोरंजन, जिंदगी ने चूस–चूसकर हर प्रकार के नैतिक बोध की हवा निकाल दी थी। घर अभावों का जंगल था। पिता–पुत्री में पैसे को लेकर अक्सर भयंकर झगड़े एवं मारपीट तक हो जाती। सम्बंधों की भूमि पूरी तरह तड़की हुई। ऐसे में ही रात देशी दारु के नशे में उसने उसी झोपड़ी में कपड़े बदलती पुत्री को देख लिया और टूट पड़ा।''[10]

निष्कर्ष :–

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि मधु कांकरिया ने अपने कथा साहित्य में नारी से सम्बंधित समस्याओं को स्थान दिया है। 'सलाम आखिरी' उपन्यास में उन्होंने एक स्त्री के वेश्या बनने के कारणों पर चर्चा करते हुए उनके दर्दनाक अंत का यथार्थ प्रस्तुत किया है। यदि 'सलाम आखिरी' उपन्यास को वेश्या जीवन का महाकाव्य कहा जाए तो अतिश्योक्ति न होगी। 'हम यहां थे' उपन्यास में एक परित्यक्ता नारी के जीवन संघर्ष को यथार्थ रूप में चित्रित किया है। मधु कांकरिया के साहित्य में नारी–विमर्श के प्रत्येक पहलू पर दृष्टिपात किया गया है।

संदर्भ सूची :–

1. खेतान, प्रभा उपनिवेश में स्त्री (मुक्ति कामना की दस वार्ताएं नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, 2003 पृ. 48
2. शर्मा, नासिरा : औरत के लिए और नई दिल्ली, सामयिक प्रकाशन, 2003, पृ.–58
3. कांकरिया, मधु, पत्ताखोर, पृ. 19–20
4. कांकरिया, मधु : सलाम, आखिरी, पृ. 35–36
5. कांकरिया, मधु : सेज पर संस्कृत, पृ. 58
6. कांकरिया, मधु : ...और अंत में ईशु, पृ. 16
7. कांकरिया, मधु : 'बीते हुए', शून्य होते हुए, पृ. 149
8. कांकरिया, मधु : हम यहां थे, पृ. 17
9. कांकरिया, मधु : हम यहां थे, पृ. 17
10. कांकरिया मधु : सलाम आखिरी, पृ. 149

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 415-418
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

टॉपिक

–अनाम

पता

हिमाचल की कहानियाँ सामजिक संस्कारों एवं परम्पराओं की अभिव्यक्ति करती है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास परिवार में रहकर ही होता है। इसलिए परिवार को समाज का छोटा रूप माना जाता है। परिवार स्त्री, पुरुष और उनके बच्चों का एक प्रारम्भिक संगठन होता है। स्त्री और पुरुष जीवन रुपी गाड़ी के दो पहिये माने जाते है एक बिना दूसरा अधूरा है। स्त्री को हमारे समाज में दोयम दर्जे का प्राणी माना जाता है। आज नारी ने स्वतंत्रता के चाहे कितने भी पड़ाव पार कर लिए है धरती से अंतरिक्ष तक उसने अपने कदमों के निशान छोड़े है तथापि वास्तविकता यही है कि नारी आज भी शोषित है।

आचार्य हजारे लिखते है, ''सभ्यता चाहे मध्ययुगीन हो या आधुनिक, नारी को अपने सांचे में ढालती रही है। उसके निजी व्यक्तित्व को तहस–नहस करती रही है। अन्तर मात्र इतना ही है कि सभ्यता के तरीके अलग–अलग है। अर्थात हर युग में नारी का शोषण होता ही रहा। बहुविवाह, दहेज प्रथा, बलात्कार, अपहरण, छुआछूत कई धार्मिक स्थलों में निषेध, डायन प्रथा इत्यादि कुरीतियाँ स्त्री पर लगी है और उनका जीवन कठिनाईयों से भरा गया और इनका जीवन बद से बदतर होता गया।

नारी का जीवन वर्तमान में अत्याचार, बन्धन, पीड़ा, घुटन तथा कुण्ठा से ग्रस्त है। नारी की दशा में परिवर्तन या सुधार होने की अपेक्षा उसके संत्रास निरन्तर बढ़ते ही गए। यह सत्य है कि हमारा समाज पुरुष प्रधान समाज है। स्त्री सदियों से शोषण, भेदभाव सहती आई है लेकिन यह भी सत्य है कि वैदिक काल में स्त्री को पुरुष के समान अधिकार प्राप्त था। कोई भी धार्मिक राजकीय कार्य स्त्री बिना सम्भव नहीं होता था। जैसे–जैसे समय बदलता गया विभिन्न संस्कृति से सम्बन्ध होते गए। स्त्री की स्थिति दयनीय होती चली गयी। आधुनिक युग में शिक्षा में कारण स्थिति में परिवर्तन हुआ समाज सुधारकों के कारण पर्दा प्रथा, बाल विवाह, बहु विवाह आदि पर प्रतिबन्ध लगे। समय के बदलते स्वरुप के साथ स्त्री के सामने नयी समस्याए आने लगी। अशिक्षा, घरेलू हिंसा, आर्थिक निर्भरता, धार्मिक निषेध, स्त्री नेतृतत्व का अभाव तथा पुरुषों का उनके प्रति अनुचित दृष्टिकोण। स्त्रियों से माता और गृहिणी की भूमिकाओं की आशा की जाती है।

वर्तमान मे शिक्षा के व्यापक प्रचार के कारण नारी भी बुद्धि जीवी हो गई है अन्यथा भारतीय समाज में किसानों व मजदूरों के बाद वृहद शोषित समूह भारतीय नारी है। वर्तनाम समाज में नारी पूर्ण रूपेण पारम्परिक

बन्धनो से मुक्त नहीं हो पाई। पिछले तीन चार दशक से स्त्री को शिक्षा देने तथा समाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए जो सुधार आन्दोलन प्रारम्भ हुआ उससे समाज में नई जागरूकता उत्पन्न हुई। गाँधी जी ने कहा था कि एक लड़की की शिक्षा की उपेक्षा अधिक महत्त्पूर्ण है क्योंकि लड़के को शिक्षित करने पर वह अकेला शिक्षित होता है किन्तु एक लड़की की शिक्षा से पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है। शिक्षा से नारी आर्थिक, राजनितिक व समाजिक न्याय तथा पुरुष के साथ समानता व अपने अधिकार के विषय में सचेत होती है।

हिमाचल की कहानियों में नारी सवेंदना विषय में हम हिमाचल के हिन्दी कहानीकार ओम भारद्वाज, सुन्दर वशिष्ठ, रमेश चन्द्र शर्मा और पी॰सी॰ के प्रेम की कहानियों का चित्रण करेंगे।

हिमाचल की हिन्दी कहानी में हिमाचल का समाजिक परिवेश स्पष्ट उजागर हुआ है। हिमाचल के हिन्दी कहानीकारों ने नारी संवेदना को यथार्थ पूर्ण चित्रित करने का सफल प्रयास किया है। यहाँ की नारी माँ, पत्नी, बहन, बहु, जेठानी, देवरानी, चाची, मामी सभी सम्बन्धो का निर्वाह सफलतापूर्वक करती दर्शायी गई है। वह अपनी मर्यादा में रहती है और मर्यादा से विपरीत जाना उसके संस्कारों में नहीं। पी॰सी॰ के प्रेम की कहानी 'दिन बीत गए' में ग्रामीण स्त्री का चित्रण किया गया है। कहानी की पात्र एक ऐसी स्त्री जो संस्कारित है लेखक उसके संस्कारों का चित्रण करता है।

"आंगन में प्रवेश करते ही उसने अपना आँचल संभाला और संस्कारगत आंगन नतमस्तक हो स्पर्श किया। फिर बरामदे में तख्तपोश पर विराजे, हुक्का पीते ससुर के चरण छुए और दहलीज पर पाँव तब धरा जब दोनों हाथो से झुककर उसे स्पर्श नहीं किया।" लक्ष्मी कहती है ज्यादा कुछ नहीं जानती लेकिन इतना जरुर समझती हूँ कि मुझे..... इस बड़े घर द्वार की मर्यादा पर आँच नहीं आने देनी है। लक्ष्मी ऐसी नारी है जो ससुराल में सास, ससुर को माँ–बाप की तरह मानती है और इन संस्कारो को जिन्दा रखना। परम्पराओं का पोषण करना उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य है। स्त्रियों से पतिव्रत्य, सेवा, सयम और त्याग का जीवन बिताने की अपेक्षा की जाती है। जबकि पुरुष इन सबसे स्वच्छ है। हिन्दू धर्म के अनुसार नारी को बचपन में अपने पिता की आज्ञा माननी चाहिए। युवावस्था में अपने पति और बुढ़ापे में अपने पुत्र की अर्थात स्त्री आजीवन स्वतन्त्र नहीं रहनी चाहिए।

दूसरी और सुदर्शन वशिष्ठ की "सेमल के फूल" कहानी पात्र जानकी को उस नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है जो मालिकों की खुशी के लिए पत्नियों को उनकी सेवा क लिए प्रस्तुत करते है। इस संदर्भ में जानकी का कथन नारी शोषण को चित्रित करता है।

"बिल्कुल निखटटू हो गए है ये मर्द जहाँ भी काम होता है जवान औरतों को भेज देते हैं, वक्त बेवक्त, जगह कुजगह कुछ नहीं देखते फिर मर्दानगी भी अपनी ही औरतो पर दिखाते हैं..... अपनी ही औरतें रह गयी है जैसे तुम्हे पीटने के लिए। उन्हें क्यों नहीं कहते जो.....।

स्पष्ट है की पुरुष सदैव नारी का शोषण करता आया है वह अपने मालिकों की खुशी तथा अपनी नौकरी बचाने के लिए पत्नी को दुसरो के सामने पेश करने से भी नहीं हिचकिचाते।

वर्तमान समय में महिलाओ का शारीरिक तथा सामाजिक शोषण ही नहीं होता उससे अधिक मानसिक

शोषण। वह अपनी पीड़ा व्यक्त करने में असमर्थ हो जाती है। उसका जीवन पीड़ा, बन्धन, घुटन एवं कुण्ठा से ग्रस्त दुःखी जीवन हो जाता है। वर्तमान समय में आर्थिक रूप से स्वतन्त्र शिक्षित नारी भी प्रताड़ना का शिकार होती है उसे घर तथा दफ्तर दोनों से पर्याप्त सहयोग नहीं मिलता जैसे ओम भारद्वाज की ''दाग'' कहानी की नायिका किस तरह से इस मानसिक प्रताड़ना का शिकार होती है।

''मीटिंग त्रिवेदी साहब तब रखते जब दूसरे दिन छुट्टी हो ताकि गाँव जाने व्यक्ति समय पर ऑफिस से न निकल पाए। मेरे साथ हमेशा ही ऐसा होता है। शनिवार को पोने पाँच बजे उसके कमरे में हाजिर होना पड़ता। साढ़े पाँच बजे के बाद ऑफिस से निकल पाती। शंकाग्रस्त पति के माथे पर बल पढ़ जाते। रविवार का पूरा दिन पति को समझने में लग जाता।

सुदर्शन वशिष्ठ ने नारी जीवन के प्रत्येक पहलुओं को अपनी कहानियों में चित्रित किया तथा नारी जीवन से सम्बन्धित विविध प्रकार की समस्याओं को प्रस्तुत करके नारी को सचेत करने की चेष्टा भी की है। सुदर्शन वशिष्ठ की ''पिंजरा'' कहानी लोक नारी का चित्रण करती है। ''नैना'' कहानी की नायिका है जिसमें हिमाचली नारी के गुण विद्यमान है। उसके गुणों को बताता हुआ तोता राम कहता है ''वह सीती थी घर के सारे कपड़े। हाथ से सिलाई मारता की कपड़ा फट जाये सिलाई न उधड़े। मैना कस्तूरी बनी हुई थी सारे घर–परिवार के लिए।'' इससे स्पष्ट होता है कि वह पूरे परिवार का दिल जीत लेती है लेकिन उसके दिल में दबे दर्द को कोई महसूस नहीं करता।

सुदर्शन वशिष्ठ की ''दीमक के पंख'' कहानी में सुदर्शन वशिष्ठ ने स्त्री की दुःखद, सोचनीय व दयनीय स्थिति का चित्रण किया। ''उस दिन तो गोवर्धन ने माँ की इज्जत बचा ली फिर उसकी माँ ने जेलदार का काम छोड़कर शहर में एक लाला के यहाँ नौकरी कर ली। उसे क्या पता था कि मरियल लाला उसके साथ जेलदार से भी अधिक बुरा व्यवहार करेगा।

ओम भारद्वाज ने विविध रूप अपनी कहानी में नारी को चित्रित किया। उन्होंने नारी पर मानसिक प्रताड़ना, शारीरिक शोषण तथा उन्होंने नारी की बाल्य, प्रौढ़ तथा वृद्ध आदि सभी अवस्थाओं को बखूबी से अपनी कहानी में चित्रित किया साथ ही सदियों से सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक धरातल पर शोषण का शिकार होती आ रही नारी किस प्रकार विरोधी परिस्थितियों का सामना करती है इसका चित्रण हमें ''झाला'' कहानी में मिलता है। ''खबरदार मेरे बेटे को झाला कहा। झाला होगा तेरा बाप मैं बता दूंगी समय आने पर, मोहणू का बाप कौन है? इसी पंची में बैठा है वो भी।'' सब एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। शांवली पता नहीं किसका नाम ले। लोग एक–एक करके उठने लगे। दो मिनट में खलिहान खाली हो गया।

रमेश चन्द्र शर्मा की कहानी ''आगन्तुक'' में ऐसे दो पुरुष प्रधान व्यक्तियों का चित्रण है जो सून्दर और पढ़ी–लिखी लड़कियों को नौकरी का झांसा देकर उनका पूरा–पूरा लाभ उठाते है। ''मैं कोई गारंटी नहीं दे सकता नौकरी पाने के लिए बड़े–बड़े पापड़ बेलने पड़ते है, किसी का मनोरंजन कर सकोगी।''

स्त्री जब–जब आगे बढ़ती है जाने कितने रीति–रिवाज़ों, परम्पराओं, पौराणिक आख्यानों की दुहाई देकर

उसे गुमनाम जीवन जीने पर विवश कर दिया जाता है। इसका प्रमाण यह होता है कि मानसिक रूप से वह अपने को पुरुष से हीन समझती है यही भावना समस्या बन जाती है जो जीवन पर्यन्त नहीं बदलती।

वर्तमान मानव जाति की उन्नति के लिए अधिक से अधिक यही किया जा सकता है कि स्त्री के साथ पूर्ण समानता का व्यवहार किया जाए। पुरुष तथा स्त्री को एक ही शिक्षा दी जाए जो कि समस्त लिंग भेदों से ऊपर हो तब शायद भारत वर्ष जो विभिन्नताओं और विषमताओं का देश है, नयी उपलब्धियों को छू सके। आज हर क्षेत्र में कानून स्त्री को पुरुष के समान अधिकार देती है लेकिन कोई भी कानून स्त्री को तब तक बन्धनमुक्त नहीं कर सकता।

संदर्भ :–

1. जब तक वह स्वयं ही बन्धन मुक्त न हो जाए।
2. रमेश चन्द्र शर्मा, कैक्टस के फूल
3. सुंदर वशिष्ठ, पिंजरा
4. ओम भारदवाज, चाँदी का रूपया
5. पी॰सी॰ प्रेम, चौपाल खामोश है।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 419-421
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वतंत्रता आंदोलन : "स्त्री और स्त्री साहित्यकार"

–सुषमा रानी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र।

सारांश :–

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की प्रकृति मूलतः पुरूष प्रधान थी और सम्भवतः यही कारण है कि राष्ट्रीय आंदोलन पर लिखी गई तमाम पुस्तकों, लेखों आदि में महिलाओं की सहभागीता और उनके योगदान को यथोचित स्थान नही मिल सका है। वास्तव में तत्कालीन पितृसत्ताम्क समाज में महिलाओं की दुनिया घर की चारदीवारी के भीतर सीमित थी और उसे पुरूष की अनुगामिनी ही माना जाता था। फिर भी, राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास तमाम ऐसी महिलाओं के साहस, त्याग व बलिदान से भरा पडा है, जिन्होंने अपनी पारिवारिक भूमिका के साथ–साथ राष्ट्रवादी गतिविधियों में भी भूमिका निभाई। स्त्रीयों ने अपनी वीरता, साहस और नेतृत्व–क्षमता का परिचय देते हुए भारत की स्वतंत्रा के लिए पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष किया। ष्गांधी जीष ने भी स्वीकार किया था कि स्त्रियों के योगदान के बिना यह स्वतंत्रता का संघर्ष सम्भव नहीं था।

स्वतंत्रता आंदोलन और स्त्री और स्त्री सहित्यकार :– सन् 1857 के प्रथम स्वंतत्रता आंदोलन में रानी लक्ष्मीबाई, बेगम जीनत महल, बेगम हजरत महल जैसी तेजस्वी, वीरांगना स्त्रियों ने भाग लिया और अपने साहस का परिचय दिया। आगे चल कर अग्रेंजो की गुलामी से मुक्ति के लिए किए गए आंदोलनो में सभी वर्गों की महिलाओं ने उत्साह से भाग लिया। स्त्रियों द्वारा विदेशी कपड़ों की होली जला देना, जलियाँवाला बाग हत्याकांड में जनरल डायर के क्रूरतापूर्ण, आतंकपूर्ण आदेश की अवहेलना करने का अथक कार्य किया। गांधी जी द्वारा चलाए गए ष्सत्याग्रह आन्दोलनष् ष्सविनय अवज्ञा आन्दोलनष् में स्त्रियों की जर्बदस्त भागेदारी रही। स्वतंत्रता आंदोलन को अहिंसक बनाए रखने के ष्गाधी जीष के संकल्प के कारण भारत में आजादी की अधिक लडाई कलम से लड़ी गई। यह कलम ही थी जिसने जनमानस को सचेत किया।

क्रांतिकारियों व आंदोलनकारियों के साथ ही लेखक, कवयित्री और पत्रकारों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी गौरव गाथा हमें प्रेरणा देती है कि हम स्वतंत्रता के मूल्य को बनाए रखने के लिए कृत संकल्पित रहें। सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी' कविता को कौन भूल सकता है, जिसने अग्रेंजो की चूलें हिला कर रख दी। वीर सैनिकों में देशप्रेम का अगाध संचार कर जोश भरने वाली अनूठी कृति आज भी प्रासांगिक है:–

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकूटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई, फिर से नई जवानी थी,

गुमी हुई आजादी की, कीमत सबने पहिचानी थी,
दूर फिंरगी को करने की सबने मन में ठानी थी,
घ्घ्घ उठी सन् सत्तवन में वह तलवार पुरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुहं हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

'सरोजिनी नायडु' भारतीय राजनीतिक कार्यकर्ता और कवयित्री के साथ—साथ देश प्रमिका और गायिका भी थी। ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ स्वंतत्रता के लिए संघर्ष करने वाली भारत की प्रथम स्त्रियों में से एक थी उनकी कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है—

भारत देश है हमारा बहुत प्यारा,
सारे विश्व में है यह सबसे न्यारा,
अलग—अलग हैं यहां सभी के रूप रंग,
पर सुर सब एक ही गाते,
झंड़ा ऊंचा रहे हमारा,
हर परदेश की है यहाँ अलग एक जुबान,
पर मिठास कि है सभी में शान,
अनेकता में एकता को पिरोकर,
सबने हाथ से हाथ मिलाकर देश सवारा।

महात्मा गांधी जीष ने स्त्रियों को सम्मानजनक स्थान दिलाने तथा प्रगति के पथ पर अग्रसर करने का भरसक प्रयास किया। गाँधी जी के नेतृत्व में स्त्रियों का आंदोलन आगे बढा। सरोजिंनी नायडु, कमला देवी चट्टोपाध्याय, कस्तूरबा गांधी, विजया लक्ष्मी पंडिता, उषा मेहता, सुचेता कृपलानी, महादेवी वर्मा आदि स्त्रियों ने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भाग लेकर स्त्री के साहस और पराक्रम की झलक दिखाई। ष्महादेवी वर्माष ने षांध ी जीष के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर बौद्ध भिक्षुणी बनने का विचार त्याग दिया और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लिया। ष्महादेवी वर्माष सत्याग्रह आंदोलन में अपनी कविताएं सुनाती थी। गांधीवादी पत्रकार राजकिशोर ने ष्स्त्रीवादी आंदोलनष की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि "यह इस आंदोलन का ही प्रताप है कि आज स्त्री के अधिकारों को व्यापक मान्यता मिली हुई हैं।"

निष्कर्ष :—

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि स्त्रियों तथा महिला साहित्यकारों ने स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़—चढ़ कर भाग लिया। आंदोलनो और स्वाधीनता संग्राम के माध्यम से स्त्री जागृति और प्रगति की जो लहर चली, वह अवरोधों को तोड़ते हुए आगे बढ़ी। इस प्रकार घ्घ्घ की आजादी और स्त्री मुक्ति का प्रश्न साथ—साथ उभरा और आजादी कि लडाई तक स्त्री आंदोलन मुख्य धारा में शमिल रहा।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :-

1. महात्मा गांधी का संदेशः यू.एस. मोहनराव, पृ0 42
2. आशारानी व्होरा, भारतीय नारीः दशा और दिशा, पृ027
3. महादेवी वर्मा, नए दशक में महिलाओं का स्थान, पृ03
4. राष्ट्रीय-सहारा, दैनिक समाचार पत्र, 24 दिसम्बर 2004
5. रजनीश, आधुनिक विद्रोही स्त्री, पृष्ठ 3
6. जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, पृ0 176
7. आशारानी व्होरा, नारी विद्रोह के भारतीय मंच, पृ05
8. डॉ0 प्रज्ञा शुक्ल, उपलब्धिः स्त्रीवादी लेखन, पृ0 52
9. महादेवी वर्मा, दीपशिखा, भूमिका
10. कल्याण- नारी विशेषांक, पृ 109.110
11. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, पृ0 15
12. डॉ0 शीला रजवार, स्वातंन्योत्तर कथा-साहित्य में नारी के बदलते संदर्भ, पृ0 19

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 422-425

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अष्टभुजा शुक्ल की कविताओं में 'कृषि-संस्कृति'

-योगेश कुमार

पता

वर्तमान समय में जनता की आवाज बनकर सामने आने वाले कवियों की संख्या अपेक्षाकृत कम ही है; जिनमें अष्टभुजा शुक्ल हमें आगे की पंक्ति में खड़े नजर आते हैं। समाज के उन विषयों पर कवि अपनी दृष्टि ले जाते हैं जिन पर अक्सर सहजता से ध्यान नहीं जाता है। उन विषयों को आसानी से अपनी कविता में सम्मिलित कर लेने का हुनर अष्टभुजा शुक्ल में मौजूद है। यही कला उन्हें समकालीन कवियों में विशिष्ट बनाती हैं। हिंदी में ऐसे कवियों की संख्या कम रही है जो सीधे खेती से जुड़े हों। अपने को कृषि और ऋषि की मिलीजुली परम्परा का बताने वाले अष्टभुजा शुक्ल कृषि से प्रत्यक्ष रूप से जुड़` रहे हैं। जिससे उनकी कविता में किसान, जीवंतता के साथ उभर कर सामने आता है। किसान क्रेडिट कार्ड, फसल बीमा योजना जैसी योजनाओं को भी किसानों तक पहुँचाने के लिए लग रहा है कि हाथा ही मारना पड़ेगा। किसानी जीवन का मार्मिक चित्रण और बार–बार अनछुई रह जाने वाली सरकारी योजनाओं का रोष इनकी कविताओं में स्पष्ट परिलक्षित होता दिखाई पड़ता है। उन्हें स्वयं खेत में जाकर हाथा मारना पड़ता है। 'हाथा मारना' कोई मुहावरा नहीं है बल्कि एक क्रिया है। जिसका आशय असिंचित या अचढ़ जमीन तक के पौधों में पानी पहुँचाना है। हाथा मारना, गेहूँ में जो सरसों बोई जैसी कविता लिखने के लिए खेत में उतरना पड़ता है; खेत को अपने पसीने की बूँदों से सींचना पड़ता है। ''मैंने कहा कि हाथा मार रहा था। वह चकारा गया और बोला। हाथ तो जानता हूँ, हाथी समझता हूँ। हथियाने की कला भी सीख चुका हूँ। लेकिन यह हाथा मारना क्या होता है। क्या यह आँख मारने, झख मारने या रडे. मारने जैसा। कोई मुहावरा है?''1

'हाथा मारना' कविता हिन्दी भाषा की ही कविता नहीं है अपितु प्रत्येक किसान की कविता है। अष्टभुजा शुक्ल के यहाँ किसान जीवन को केन्द्र में रखते हुए उनकी स्थिति पर अनेक प्रश्न–चिह्न खड़े किए हैं। आज के समय में मंत्रियों, अफसरों से दूर; पांच सितारा होटलों के सुखी जीवन को त्यागकर किसान की भूमिका में आकर जमीनी स्तर की कविता करना कठिन कार्य है। इस कठिन कार्य को सहजता से कर दिखाने का हुनर अष्टभुजा शुक्ल में है। 'हाथा मारना' जैसे शब्दों का अपनी कविता में प्रयोग करना ही एक कवि का खेती से जुड़ाव इंगित करता है।

आज भी भारत की आधी से ज्यादा आबादी गाँवों में रहती है जो अपने जीवनयापन के लिए खेती पर निर्भर है। लेकिन वर्तमान समय में निरंतर बढ़ रहे बाजारवाद और भूमंडलीकरण से किसानों की स्थिति में कोई सुधार देखने को नहीं मिला है बल्कि उनका जीवन और अधिक कष्टकर हो गया है। हालांकि भौतिक सुख–सुविध

ााओं के बढ़ ने से बड़े किसानों को काफी राहत मिली है लेकिन साधारण किसानों के लिए ये सुविधाएं जुटाना मुश्किल है।

किसानों से फसल खरीदने और उन्हें उचित कीमत दिलाने के नाम पर बिचौलिए ही बड़ी रकम डकार जाते हैं। पूँजीपति वर्ग किसानों से कच्चा माल सस्ते में खरीदकर उससे बनाई खाद्यान्न सामग्री या अन्य सामान महँगे दामों में बाजार में उतारते हैं। इससे किसान को दोहरी मार पड़ ती है; पहली, वह अपना अनाज कम कीमत पर देने को मजबूर है; दूसरा, उसी फसल से बनी सामग्री को महंगे दामों में खरीदना पड़ता है। अष्टभुजा शुक्ल के साहस को बताते हुए कपिलदेव लिखते हैं, ''अष्टभुजा शुक्ल का यह साहस किसी विचार, विचार–धारा या विमर्श के अकादमिक शोर में शामिल कवियों वाला साहस नहीं है। यह उस कवि का साहस है जो सचमुच ही खेती करते हुए– हाथा मारना जैसी कविता, यानी उत्पादन–प्रक्रिया में हिस्सेदारी करते हुए, निजी तौर पर हासिल सजीव जीवन–बोध की, कविताएँ लिखता है। न केवल लिखता है, बल्कि कविता और खेत के बीच लगातार बढ़ती हुई दूरी को मिटा कर अपने हस्तक्षेप से अन्योन्याश्रित बना डालता है। कविता में चौतरफ व्याप्त मध्यवर्गीयताओं से बेपरवाह रहते हुए वह यह दावा करना भी नहीं भूलता कि जो खेत में लिख सकता है, वही कागज पर भी लिख सकता है।

मैं कागज पर उतना अच्छा नहीं लिख पाता,
इसलिए खेत में लिख रहा था,
यानी हाथा मार रहा था।

खेत में अच्छा और कागज पर खराब लिखने की आत्म–स्वीकृति उसी कवि के यहाँ सम्भव है जो कविता करने के मुकाबले किसानी करने को बड़ा मूल्य मानता हो यानी जो कविता का किसान बनने के लिए तैयार हो।''[2]

अष्टभुजा शुक्ल खेत में लहलहाती फसलों के बीच उम्मीद लगाए बैठे किसान के सुर में सुर मिलाते नजर आते हैं। वातानुकूलित चेम्बरों में बैठकर किसानों के श्रम का मूल्यांकन करना थोड़ा मुश्किल जान पड़ता है। उस श्रम का असल ज्ञान तो खेत के बीच में खड़े होकर ही लगाया जा सकता है। चाहे जाड़े की कड़कड़ाती ठंड हो या आग उगलती धूप; किसान की कविता तो खेत में ही लिखी जा सकती है। कविता की खेती और खेती की कविता में अन्तर स्पष्ट करते हुए वे स्वीकार करते हैं कविता की खेती, खेती की कविता से अपेक्षाकृत आसान है। अष्टभुजा शुक्ल लिखते हैं, ''हमारे असमंजस ही। हमारे दुख हैं। कविता की खेती में। जितने सुख हैं। खेती की कविता में। उतने ही दुख और असमंजस''[3]

इनकी कविताओं में हमें लोक के अनेक रूप देखने को मिलता है जिनमें मजदूरों, किसानों, दलितों, शोषितों को सहज रूप से चित्रित किया गया है। इन शोषित वर्गों में खुशहाली के दिनों की एक उम्मीद–भर है। किसानों के जिन वादों को लेकर सरकार सत्ता में आती है; सरकार का कार्यकाल तो पांच वर्ष मं पूरा हो जाता है लेकिन किसानों के वादें पूरे नहीं होते। अन्ततः किसान अपनी मांगों को लेकर सड़कों पर उतरने को मजबूर हो रहा है। अष्टभुजा शुक्ल किसानों के लिए समाजवाद की कल्पना करते हैं, जहां सबको समान सुख–सुविधाएं प्राप्त होगी। दरअसल बड़े भू–भाग के मालिक जमींदार वर्ग तो आज भी सुखी जीवन जी रहे हैं लेकिन छोटे भू–खंड के मालिक आम किसान पूर्णतः उसी फसल की आमदनी पर ही अपना निर्वाह करता है, ''किसान की।

किस पीढ़ी का बच्चा। सोने की कटोरी में। दधू भात खाएगा। एवं किस युग के किस चरण में। रामराज्य अथवा समाजवाद आएगा।''[4]

किसानों की स्थिति आँकड़ों में और जमीनी स्तर पर अलग–अलग है। सरकार अपनी ओर से स्थिति में सुधार का दावा करती लेकिन वास्तविकता तो कुछ और ही होती है। हमने आषाढ़ के बादल, भाद्रपद के बादल आदि सुने है लेकिन चैत के बादल अष्टभुजा शुक्ल के यहीं देखने को मिलते हैं। जब रबी की फसल पककर तैयार हो जाती है तब बिन मौसम; बिना जरूरत के बादल बरसने लगते हैं। किसान इस फसल पर ही अपनी अर्थव्यवस्था चलाने, अपनी आजीविका चलाने के लिए निर्भर रहता है। लेकिन चैत के ये बादल उस पकी फसल को तबाह कर देते हैं। ये बादल किसान के लिए विडंबनापूर्ण होते है; शोक के बादल होते हैं। जब भी आसमान में ये बादल उमड़ते हैं तो आमजन के भीतर अष्टभुजा शुक्ल की कविता चैत के बादल की गूँज सुनाई पड़ती है। चैत के बादल आना किसान के लिए किसी त्रासदी से कम नहीं है,

''मुँह अनहारे। सन्न मारे।
गाँव में माया पसारे।
कहाँ से उपरा गये।
भडुए अभी ये चैत के बादल!
बलियों से झुकी–झपकी–पकी।
धरती सम्पदा का।
गेहुँ अई आँचल।
इनकी कृपा पर छोड़कर
आश्वस्त होना। भूल होगी।
इनका, कौन धाया, क्या ठिकाना?''[5]

'गेहूँ में जो सरसों बोई' कविता में कवि गेहूँ और सरसों को एक साथ बोने की बात कहते हैं। कम जगह में अधिक उपजाने की उम्मीद में किसान दो फसलों को साथ उगाता है। खेती, किसान को अवकाश प्रदान नहीं करती है। वह मांग करती है कि उसकी चौबीस घंटे रक्षा की जाये। खेती के दृश्य तो अनेक कवियों के यहां मिल जायेंगे लेकिन जो कविता की जीवंतता है, वह इन्हीं की कविता में देखने को मिलती है, ''खेती ऐसी दिनचर्या है कि चौबिस घंटे नधे रहो। पशुओं के पगहे खुल जाएँ तो खुद खूँटे से बँधे रहो। पादने की फुर्सत नहीं मित्र! इस मिट्टीमुखी किसानी में। अक्सर बूढ़े हो जाते हैं, सारे भूपुत्र जवानी में।''[6]

किसानी जीवन में बादल आशा, उम्मीद का प्रतीक होता है लेकिन इन चैत के बादलों के कारण बादलों के प्रति कृषक का मोहभंग–सा हो जाता है। खेतों में खड़ी फसल का नुकसान तो प्राकृतिक कारण मानकर किसान ईश्वर को कोसता है लेकिन धान की मंडियों में पहुँचने के बाद भी धान पानी के साथ बह जाता है; ये सरकार की लापरवाही के कारण होता है जिसे फसल बर्बाद होने का राजनीतिक कारण कहा जा सकता है।

इस प्रकार हम पाते हैं अष्टभुजा शुक्ल की कविताओं में बताया गया किसान का दर्द, उसकी संवेदना काल्पनिक नहीं है अपितु उनकी कविताएं उस लहलहाती फसल के बीच खड़े होकर लिखी गई है। उनका खेती

से जुड़ाव बचपन से रहा है जिसका प्रभाव उनकी कविता पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। हम कह सकते हैं कि अष्टभुजा शुक्ल आम जनजीवन के व्यवहार और श्रम को उजागर करने वाले कवि है।

संदर्भ :–

1. शुक्ल, अष्टभुजा; इसी हवा में अपनी भी दो चार साँस है; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; पहला संस्करणः 2010; पृ. 41.
2. शुक्ल, अष्टभुजा; रस की लाठी; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; पहला संस्करण : 2019; पृः फ्लैप
3. शुक्ल, अष्टभुजा; इसी हवा में अपनी भी दो चार साँस है; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; पहला संस्करणः 2010; पृ. 52.
4. शुक्ल, अष्टभुजा; चैत के बादल; रामकृष्ण प्रकाशन, म.प्र.; प्रथम संस्करणः 1999; पृ. 66.
5. शुक्ल, अष्टभुजा; पद–कुपद; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; पहला संस्करणः 2012; पृ. 72.
6. शुक्ल, अष्टभुजा; पद–कुपद; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; पहला संस्करणः 2012; पृ. 35.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श सेमिनार विशेषांक Page No. : 426-429
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी कविता में युद्ध विमर्श

–आरती देवराड़ी
शोधार्थी, हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल, केंद्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर, गढ़वाल, उत्तराखण्ड.

मानव जाति का इतिहास जब से शुरु हुआ है, युद्धों की शुरुआत भी तभी से मानी जाती है। पौराणिक तथा आधुनिक काल में युद्ध के अनेक कारण रहे हैं, लेकिन युद्ध के परिणाम सदैव समान रहे हैं। यदि विश्व के इतिहास को देखते हैं तो ऐसा कोई देश या सभ्यता नहीं मिलेगी, जो युद्ध से विमुक्त रही हो। प्रकृति ने मनुष्य को जीवन जीने के लिए अनेक संसाधन प्रदान किए हैं, किंतु मनुष्य ने अपनी लिप्साओं के कारण युद्ध के अनेकानेक रूपों को जन्म दे डाला। ''जैसे–जैसे सभ्यता बढ़ी, वैसे–वैसे प्रत्येक शताब्दी ने महाविनाशक युद्ध देखे जो कि पहले युद्धों से कहीं अधिक विनाशकारी और निर्मम सिद्ध हुए। सम्राटों के युद्ध राष्ट्रों के युद्ध हाने लगे। विश्व रंगमंच, विश्व नाट्य से कभी भी रिक्त नहीं रहा। यदा–कदा पटाक्षेप केवल उसको अधिक बर्बर और क्रूर बनाने के लिए केवल अवकाशमात्र थे।''[1]

हिंदी साहित्य के आदिकाल के अन्य नाम वीरगाथा काल नाम से ही स्पष्ट होता है कि हिंदी साहित्य का यह काल युद्धों की ही गाथाओं का युग था। आदिकालीन सभी रासो ग्रंथ की वीररसात्मक हैं। युद्धों का प्रमुख कारण यह भी रहा कि उस समय भारतवर्ष छोटे–छाटे राज्यों में विभाजित था तथा राज्य विस्तार हेतु राजाओं में परस्पर युद्ध हुआ करते थे। वहीं पश्चिमी भारत पर मुस्लिम आततायियों का आक्रमण होने लगा था। वीरगाथा काव्य में वीर रस के साथ–साथ विभिन्न युद्ध कौशलों का वर्णन भी मिलता है। इस काल के युद्ध वर्णन में सजीवता तथा यथार्थता है, कारण यह है कि स्वयं कवि भी युद्ध क्षेत्र में जाकर युद्ध किया करते थे। ''जिस समय हमारे हिंदी साहित्य का अभ्युदय होता है, वह लड़ाई–भिड़ाई का समय था, वीरता के गौरव का समय था और सब बातें भी पीछे पड़ गई थी।''[2]

आदिकालीन युद्ध यश, कीर्ति, वीरता, आत्मसम्मान हेतु लड़े जाते थे। आदिकालीन भरतेश्वर बाहुबलिरास, महापुराण, रिठणेमिचरउ, चंदनबालारास, पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, परमाल रासो, विजयपाल रासो, हमीर रासो, खुमाण रासो आदि काव्यों में युद्ध वर्णन की ही प्रधानता है। तत्कालीन युद्ध कवियों के लिए भोगा हुआ यथार्थ था। अतः कवियों ने राजा की वीरता के साथ–साथ युद्ध नीतियों, युद्ध कौशलों तथा अस्त्र–शस्त्रों का वर्णन भी पर्याप्त मात्रों में किया है। आदिकाल में युद्ध समय एवं परिस्थिति की आवश्यकता के अनुरूप ही हुए हैं।

राजा खुमाण के द्वारा कुल 24 युद्ध किए गए। इस प्रकार आदिकालीन युद्ध वर्णन भाट या चारण द्वारा सम्मान पाने की लालसा से परिस्थितिजन्य अधिक है। यदि भक्तिकाल में युद्धों का अन्वेषण किया जाए तो धार्मिक

काव्यों की ही प्रधानता मिलती है। भक्तिकालीन साहित्य में श्रद्धा भक्ति, प्रेम, वात्सल्य, मनोभावों का ही सुंदर चित्रण हुआ है। इन काव्यों में गौण रूप में ही वर्णन मिलता है। भक्तिकालीन काव्यों का प्रमुख उद्देश्य सामंजस्य और संतुलन की स्थापना करना ही रहा। यद्यपि प्रसंगवश 'रामचरितमानस', 'पद्मावत', 'हंसावली', 'मृगावती', 'मधुमालती' आदि काव्यों में युद्ध प्रसंग भी आए हैं, किंतु उनका उद्देश्य धार्मिक, न्यायपूर्ण रहा है। भक्तिकाल में रणमल्ल छंद, विजयपाल रासो, राणा रासो, क्यामत खाँ रासो आदि वीरकाव्य मिलते हैं, किंतु इस समय की प्रमुख प्रवृत्ति धार्मिक तथा प्रेमपूर्ण ही रही।

रीतिकाल में युद्ध वर्णन दो रूपों में हुआ है – प्रबंधकाव्यों तथा भुक्तक काव्यों के रूप में। प्रबंधात्मक वीरकाव्यों के रचयिताओं में माल, पद्माकर, सूदन, जोधराज आदि हैं तथा मुक्तक काव्यों में भूषण और बांकीदास प्रमुख हैं। भूषण रीतिकालीन वीरकाव्य के प्रतिनिधि कवि हैं, उन्होंने शिवाजी की वीरता का यथार्थ वर्णन 'शिवाबावनी' में किया है। ''भूषण राष्ट्रीय भावों के गायक हैं। उन्होंने राष्ट्रीयता की परिभाषा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से की है। उसकी वाणी प्रपीड़ित राजा के प्रति एक अपूर्व आश्वासन है।''[3] भूषण ने अपना काव्यनायक शिवाजी तथा छत्रसाल जैसे वीरों को बनाकर मातृभूमि के प्रति अगाध प्रेम को व्यक्त किया है। 'शिवाबावनी' में प्रथम पद से अंतिम पद तक वीर रसात्मक चित्रण हुआ है :–

''साजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
'भूषण' भनत नाद विहद नगारन के,
नदी नद मद गैबरन के रलत है।।''[4]

अधिकतर युद्ध राष्ट्रीयता की भावना से ही होते हैं, किंतु राष्ट्रीयता के आश्रय में कभी–कभी गलत धाराणाओं को फैलाकर युद्ध की भूमिका तैयार की जाती है। रीतिकालीन युद्ध भी राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर लड़े गए। भारत में छोटे–छोटे राज्य होने के कारण कई युद्ध राजाओं के आपसाी वैमनस्य तथा राज्य विस्तार हेतु किए गए। रीतिकाल में युद्ध वर्णन गौण रूप में ही मिलता है, किंतु रीतिकालीन युद्धों में कल्पना से अधिक यथार्थ वर्णन मिलता है।

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल युद्ध विमर्शों की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा। आधुनिक कविता में युद्ध के कारणों युद्ध से होने वाली क्षति, युद्ध का मनोविज्ञान जैसे विषयों पर साहित्यकारों ने रचना कर्म किया। आधुनिक काल युद्धों की दृष्टि से अत्यधिक संवेदनशील रहा। एक ओर भारत अंग्रेजों की पराधीनता झेल रहा था, वहीं दूसरी ओर सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत दयनीय अवस्था में था। ऐसे में आधुनिक कवियों ने प्राचीन मिथक काव्यों से प्रेरणा लेकर आधुनिक प्रवृत्तियों को दृष्टिगत रखते हुए युद्ध और शांति जैसे विषयों पर सूक्ष्म दृष्टि से चिंतन किया। 'संशय की एक रात' में राम युद्ध से होने वाले भयंकर नरसंहार से विमुख होकर कहते हैं कि अततः मानवीयता की रक्षा करना ही श्रेष्ठ गुण है। यथा –

''यही तो है बात
लक्ष्मण।
राम ने कभी नहीं किया अविश्वास
सही तो है बात।

मैं केवज युद्ध को बचाना चाहता रहा हूँ बन्धु।
मानव में श्रेष्ठ जो विराजा है
उसको ही
हां उसको ही जगाना चाहता रहा है बन्धु।
क्या यह संभव है?
क्या यह नहीं है?''[5]

इस प्रकार आधुनिक हिंदी काव्यों में युद्ध की अपेक्षा शांति और मानवता को प्राथमिकता दी जाने लगी। आधुनिक युग में युद्ध की अनेक क्रूरतम घटनाएं घटित हुई। प्रथम विश्व युद्ध, जिसमें अनेक सैनिक मारे गए, द्वितीय विश्व युद्ध में हिरोशिमा तथा नागासाकी पर परमाणु बमों की बौछारें। इस तरह की घटनाओं से संपूर्ण विश्व दहल चुका था। नए–नए आविष्कारों और भौतिकतावाद से प्रभावित विश्व यांत्रिकता से संचालित हो रहा है। यही कारण था कि हिंदी साहित्य की नई कविता समकालीन कविता में निराशा, कुंठा, अकेलापन, घृणा जैसे मनोभावों की अभिव्यक्ति हुई। आधुनिक युग में मनुष्य आंतरिक द्वंद्वों से जूझ रहा है। जीवन के प्रति सर्वत्र निराशा ही व्याप्त है। ''द्वितीय महायुद्ध (1939–1945) को इस प्रसंग में तिथि जैसा मानने का कारण है। यह स्पष्ट है कि मूल्य विघटन की इस स्थिति में लाने में विज्ञान और प्रविधि का सबसे अधिक हाथ है।''[6] द्वितीय महायुद्ध में जिस क्रूरता का परिचय महाशक्तियों ने दिया, उसका वर्णन शमशेर बहादुर सिंह इस प्रकार करते हैं –

''ऐटमी बेड़े, हवाईया ने हजारों ही जमा,
क्या है अमरीका की ताकत का ठिकाना देखिए।''[7]

इसी प्रकार भारत भी अंग्रेजों की गुलामी झेल रहा था। भारतेंदु युग से प्रगतिवाद तक साहित्यकारों ने राष्ट्रीय भावना, अतीतगौरव का गान करके भारतीय युवाओं में जागृति का संचार किया। 'राम की शक्ति पूजा' में निराला श्रीराम के माध्यम से आंतरिक शक्ति को जगाने का प्रयास कर रहे हैं –

''होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन
कह महाशक्ति राग के वदन में हुईं लीन।''[8]

दिनकर की वाणी में न्याय हेतु सर्वत्र युद्ध की ही हुंकार दिखती है। उन्होंने अपनी काव्यरचनाओं में कर्ण, अर्जुन, श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर जैस पात्रों के माध्यम से युद्ध की आवश्यकता तथा मनोविज्ञान को सामने रखने का सफल प्रयत्न किया।

''अधिकार खोकर बैठ रहना, यह महा दुष्कर्म है,
न्यायार्थ अपने बंधु को भी, दण्ड देना धर्म है।''[9]

निष्कर्ष रूप में आधुनिक कविता में युद्ध विमर्शों पर पर्याप्त चिंतन हुआ है। आधुनिक काल में युद्ध पर अनेक दृष्टिकोण से विमर्श हुए हैं। युद्ध के कारण मनोविज्ञान, आवश्यकता, लाभ–हानि, धर्म आदि दृष्टियों से साहित्यकारों ने युद्ध वर्णन किया है और युद्धों की सार्थकता और निरर्थकता का वर्णन किया है। साहित्य समाज का प्रतिनिधित्व करता है और समाज तथा आम व्यक्ति ने कभी भी युद्ध को स्वीकार नहीं किया है। ''वर्षों से सामूहिक वध देखते–देखते हम निष्ठुर हो गए हैं और भयानकताओं को देख–देखकर हम कठोर हो गए हैं। बहुत उन्नत राष्ट्रों में बड़ी मात्रा में बर्बरता है और बहुत पिछड़ी जातियों में भी सभ्यता का बड़ा अंश है। एक जमाने

में सभ्यताएं बाहर से बर्बरों द्वारा नष्ट कर दी गई थीं। हमारे समय में इस बात की संभावना है कि वे अंदर से उन बर्बरों द्वारा नष्ट कर दी जाएं, जिन्हें हम पैदा कर कर रहे हैं। प्रौद्योगिकी क्रांति की जोड़ी की एक नैतिक क्रांति करनी पड़ेगी।''

संदर्भ ग्रंथ-सूची :-

1. युद्ध का अध्ययन सैन्य मनोविज्ञान एवं युद्ध और शांति की समस्याएं, लल्लन जी सिंह, प्रकाश बुक डिप्पो, बरेली, पृ0सं0 – 02.
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पवन पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, पृ0सं0 – 33.
3. हिंदी साहित्य का इतिहास, नगेन्द्र, हरदयाल, मयूर पेपरबैक्स, पृ0सं0 – 371.
4. शिवाबावनी, भूषण, हिंदी साहित्य सम्मेलन, पृ0सं0 – 03.
5. संशय की एक रात, नरेश मेहता, लोकभारती प्रकाशन, पृ0सं0 – 18 .19
6. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, पृ0सं0 – 193.
7. सुकून की तलाश, शमशेर बहादुर सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0सं0 – 69
8. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, पृ0सं0 – 197.
9. भारतीय संस्कृति : कुछ विचार, डॉ0 राधाकृष्णन, राजपाल प्रकाशन, पृ0सं0 – 74 .75.

मो. 8958363792

Mail - devrariarti@gmail.com